

अनेकान्त की वार्षिक-विषय-सूची

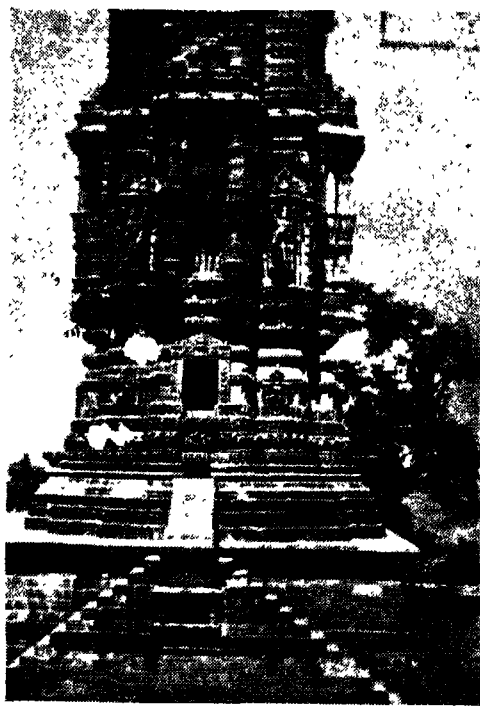
प्रनेकान्त—मुनि श्री उदयचन्द	१०४	इच्छा नियन्त्रण—परमानन्द शा०	१०३
प्रनेकान्त एक आदर्श पत्र—पं० मिलापचन्द रतन- लाल कटारिया	१६५	ऊन पावागिरि के निर्माता राजा बल्लाल— नेमचन्द धन्नुसा जैन	२७
प्रनेकान्त और उसकी सेवाएँ—डा० दरबारीलाल कोठिया	१८५	एक प्रतिक्रित द्वार—गोपीलाल अमर एम. ए. कवितार्ण	६० २२४
अनेकान्त और परमानन्द शास्त्री—श्री मती पुष्पलता जैन	१६१	कहानियाँ	२२३
अनेकान्त का दिव्य आलोक—पं० पन्नालाल साहित्याचार्य	१३६	काचन का निवेदन—मुनि कन्हैयालाल ग्वालियर के कुछ काण्टासघी भट्टारक— परमानन्द शास्त्री	३०१ ६४
अनेकान्त द्वै मासिक एक दृष्टि में—पं० गोपीलाल 'अमर'	२५३	ग्वालियर के कुछ मूर्ति यत्र लेख—परमानन्द शा०	१२२
अनेकान्त पत्र का इतिहास—पं० परमानन्द शा०	१५६	गुणस्थान एक परिचय—मुनि श्री मुमैरमल	२१३
अनेकान्त पत्र का गौरव—पं० जयन्तीप्रसाद शास्त्री	१८४	गोपाचल दुर्ग के एक मूर्तिलेख का अध्ययन— डा० राजाराम जैन	२५
अनेकान्त के लेखक—गोपीलाल 'अमर'	२४२	जैन काव्य में विग्रहानुभूति—डा० गगाराम	३३
अनेकान्त में प्रकाशित रचनाएँ—	१६४ से २४०	जैन कीर्तिस्मभ चित्तीड के प्रकाशित शिलालेख— श्री रामवल्लभ सोमानी	३६
अनेक स्थान नाम गभित भ० पार्श्वनाथ स्तवन— भवरलाल नाट्टा	२६४	जैन तीर्थकर की कुछ मृण्मूर्तियाँ—संकटाप्रसाद शुक्ल एम. ए.	२७६
अब मुखरित विनाश के पथ पर तूतन अनुसंधान है (कविता)—कल्याणकुमार जैन 'शशि'	१४४	जैन विद्या का अध्ययन अनुशीलन प्रगति के पथ पर —प्रो० प्रेममुमन जैन	१८७
अमरकीर्ति नामके आठ विद्वान—पं० परमानन्द शास्त्री	२८६	जैनसमाज की कुछ उप जानियाँ— परमानन्द शास्त्री	५०
अलव्य पर्याप्तक और निगोद—पं० मिलापचन्द रतनलाल कटारिया	१५५	ज्ञानपीठ साहित्य पुरस्कार	२६०
अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग व शान्ति किस प्रकार हो सकती है ?—शान्तिनिलाल वनमाली सेठ	८५	तीर्थकर प्रथम स्तवन आ० यतिवृषभ	१
अतरीक्ष पार्श्वनाथ विनति—नेमचन्द धन्नुसा जैन	६१	तीर्थकरों की प्राचीनता—कम्पूचन्द जैन 'मुमन'	६८
अहंहरमेष्टी स्तवन—मुनि श्री पद्मनन्दि	४६	द्वितीय जंबूद्वीप—पं० गोपीलाल 'अमर'	२०
आत्म-सम्बोधन—परमानन्द शास्त्री	७३	घनपात की भविष्यदत्तकथा के रचनाकाल पर विचार—परमानन्द शास्त्री	२
आत्मा का देह प्रमाणत्व—डा० प्रद्युम्नकुमार	२२५	नरेन्द्र सेन—पं० के० भुजवली शास्त्री	२७७
आधुनिकता, आधुनिक और पुरानी—डा० प्रद्युम्न- कुमार	२८०	निर्वाणकाण्ड के पूर्वधार तथा उसके रूपान्तर— डा० विद्याधर जोहरापुरकर	७

पत्रिकाएँ कैसे चले ? — डा० गोकुलचन्द	१८२	विजोलिया के जैन लेख—रामवल्लभ सोमानी	१५५
पद्मावती—प्रकाशचन्द सिधई एम. ए. बी. टी	२६७	विविध	२३७
पंडित शिरोमणिदास विरचित धर्मसार—		विश्व मैत्री का प्रतीक पयूषण पर्व—प्रो० भागचन्द	
डा० भागचन्द जैन	१६	‘भागेन्दु’	११०
पांडे लालचन्द का वरांगचरित— डा० भागचन्द		व्यक्तिगत (परिचय अभिनंदन आदि)	२२८
‘भास्कर’	१०४	बीर सेवामन्दिर का साहित्यिक शोधकार्य—	
पुरातत्त्व (इतिहास, संस्कृति, स्थापत्य, कला)	२२२	परमानन्द शास्त्री	१६८
बारह प्रकार के सभोग पारस्परिक व्यवहार—		शहडोल जिले में जैन संस्कृति का एक अज्ञात केन्द्र	
मुनि श्री नथमल	१२७	प्रो० भागचन्द जैन	७१
भगवान् ऋषभदेव—परमानन्द शास्त्री	७८	शुभचन्द का प्राकृत व्याकरण—डा० ए. एन.	
भगवान् महावीर और छोटा नागपुर—		उपाध्ये	३२
बा० सुबोधकुमार	२७५	श्री आदिनाथ स्तुति—कविवर भूषरदाम	१६३
भगवान् महावीर का मन्देश—डा० भागचन्द		शीलव्रती मुदर्शन (कहानी)—	
भागेन्दु एम. ए. पी.एच. डी.	३०८	परमानन्द शा०	३०२
भाग्यशाली लकड़हारा—परमानन्द शास्त्री	३०६	श्री पार्श्वनाथ जिन स्तुति—कविवर बनारसीदास	६७
भारते में वर्णनात्मक कथा साहित्य—		सकलन	२४०
डा० ए. एन. उपाध्ये एम. ए. डी. लिट्	२६६	समीक्षा	२२२
भारतीय दर्शनों में प्रमाण भेद की महत्वपूर्ण चर्चा		सामयिक	२३२
—डा० दरबारीलाल कोठिया	११	संस्कृत सुभाषितों में सज्जन-दुर्जन—	
मगध सम्राट् राजा बिम्बसार का जैनधर्म परिग्रहण		लक्ष्मीचन्द सरोज	२६०
—परमानन्द शास्त्री	८१	संस्कृति की सीमा—प्रो० उदयचन्द जैन	१३८
मुस्लिम युगीन मालवा का जैन पुरातत्त्व—		सालोनी ग्राम में उपलब्ध प्राचीन मूर्तियाँ—	
तेजसिंह गोड़ एम. ए.	७६	महेशकुमार जैन	२४१
युक्त्यनुशासन एक अध्ययन—डा० दरबारीलाल		साहित्य	२०१
कोठिया	७३	साहित्य-समीक्षा	४७, ६३, २६२
राजस्थान के जैन सन्त मुनि पद्मनन्दी—		निद्र स्तुति—पद्मनन्दाचार्य	२६५
परमानन्द शास्त्री	२८३	मैदान्तिक (धर्म, दर्शन, न्याय, व्याकरण)	१६४
रामपुरा के मंत्री पाथू शाह—डा० विद्याधर		स्वामी समन्तभद्र की जैनदर्शन की देन—	
जोहरापुरकर	२८८	डा० दरबारीलाल जैन	१७७
लक्ष्मर में मेरे पाच दिन—परमानन्द शा०	६१	हरिवंशपुराण की प्रशस्ति एवं वत्सराज—	
ध्यायपुराण और जैन कथाएँ—डा० विद्याधर		रामवल्लभ सोमानी	१३१
जोहरापुरकर	१३३	हृदय की कठोरता—	
वसुनन्दि के नाम से प्रा० का एक सग्रह ग्रन्थ		मुनि श्री कन्हैयालाल	८०
तत्त्वविचार—प्रो० प्रेमसुमन जैन	३६		

द्वे मासिक

अप्रैल १९६६

अनेकान्त



चित्तौड़ के दि० जैन कीर्तिस्तम्भ के नीचे का भाग

समन्तभद्राश्रम (वीर-सेवा-मन्दिर) का मुख पत्र

विषय-सूची

क्र०	पृ०
१ तीर्थंकर त्रय स्तवनम्—आ० यतिवृषभ	१
२ घनपाल की भविष्यदत्त कथा के रचनाकाल पर विचार—परमानन्द शास्त्री	२
३ निर्वाणकाण्ड के पूर्वाधार तथा उसके रूपान्तर— डा. विद्याधर जोहरापुरकर	७
४ भारतीय दर्शनो में प्रमाणभेद की महत्त्वपूर्ण चर्चा —डा. दरबारी लाल कोठिया	११
५ मुस्लिम युगीन मालवा का जैन पुरातत्त्व— तेजसिंह गौड़ एम. ए. रिसर्चस्कालर	१४
६ पण्डित शिरोमणिदास विरचित धर्मसार— डा. भागचन्द्र जैन	१६
७ द्वितीय जम्बूद्वीप—प. गोपीलाल 'अमर' शास्त्री एम. ए.	२०
८ गोपाचल-दुर्ग के एक मूर्तिलेख का अध्ययन —डा. राजाराम जैन	२५
९ ऊन पादागिरि के निर्माता राजा बल्लाल— प. नेमचन्द्र धन्नुसा जैन	२७
१० शुभचन्द्र का प्राकृत व्याकरण—डा. ए. एन. उपाध्ये	३२
११ जैन काव्यमें विरहानुभूति—डा. गगाराम गर्ग	३३
१२ जैन कीर्तिस्तम्भ चित्तीड के अप्रकाशित शिलालेख —श्री रामवल्लभ सोमानी, जयपुर	३६
१३ वसुनन्दि के नाम से प्राकृत का एक सग्रह ग्रन्थ : तत्त्वाविचार—प्रो. प्रेममुमन जैन एम. ए. शास्त्री	३८
१४ साहित्य-समीक्षा—परमानन्द शास्त्री	४७



सम्पादक-मण्डल
डा० आ० ने० उपाध्ये
डा० प्रेमसागर जैन
श्री यशपाल जैन
परमानन्द शास्त्री

अनेकान्त के पाठकों से

२१वें वर्ष की गत किरण ५-६ युगवीर विशेषांक के साथ सभी ग्राहकों का वार्षिक मूल्य समाप्त हो जाता है। यह २२वें वर्ष की प्रथम किरण पाठकों की सेवा में भेजी जा रही है। प्रेमी पाठकों से साग्रह अनुरोध है कि वे अपना अपना वार्षिक शुल्क ६) रुपया मनीआर्डर द्वारा भिजवा कर अनुगृहीत करें। अन्यथा अगला अंक बी. पी. से भेजा जायगा। जिसमें १) रुपया अधिक देना होगा।

व्यवस्थापक : 'अनेकान्त'

'वीरसेवामन्दिर' २१ दरियागंज, दिल्ली



दानवीर श्री साहू शान्तिप्रसाद जी द्वारा दो लाख रु० का दान

दानवीर साहू शान्तिप्रसाद जी ने मैसूर विश्वविद्यालय में जैन चैयर की स्थापना के लिए २ मई को सप्रू हाउस नई दिल्ली में एक समारोह काप्रेस अध्यक्ष निज-लिगप्पा की अध्यक्षता में हुआ, जिसमें मैसूर विश्वविद्यालय के कुलपति डा० श्री माली को दो लाख रुपये का चेक भेंट किया गया। इसी अवसर पर डा० ए.एन. उपाध्ये का भारतीय साहित्य संस्कृति की समृद्धि में कन्नड़ के जेना-चार्यों और साहित्य मनोपियों का योगदान' विषय पर महत्त्वपूर्ण भाषण हुआ। साहूजी द्वारा जैन संस्कृति के लिये जो कार्य किया जा रहा है वह महत्त्वपूर्ण तो है ही, साथ ही उनकी विवेकशीलता और उदारताका परिचायक भी है।



अनेकान्त का वार्षिक मूल्य ६) रुपया
एक किरण का मूल्य १ रुपया २५ पंसा

अनेकान्त में प्रकाशित विचारों के लिए सम्पादक मण्डल उत्तरदायी नहीं हैं। — व्यवस्थापक अनेकान्त

ग्रोम् ग्रहम्

अनेकान्त

वीर सेवा गौरी पुस्तकालय

जमा नं 4256

परमागमस्य बीजं निषिद्धजात्यन्धसिन्धुरविषयनम् ।

सकलनयविलसितानां विरोधमथनं नमाम्यनेकान्तम् ॥

वर्ष २२
किरण १

वीर-सेवा-मन्दिर, २१ दरियागंज, दिल्ली-६
वीर निर्वाण सवत् २४६५, वि० सं० २०२६

{ अप्रैल
सन् १९६६

तीर्थकर त्रय स्तवनम्

केवलराण दिणोसं चोतीसादिसयभूदि संपण्णं ।
अप्पसरूवम्मि ठिदं, कुंथु जिणोसं णमंसामि ॥६६
संसारणवमहरां तिहुयणभवियाण मोक्ख संजराणं ।
संदरिसिय सयलत्थं अर जिणराणाहं णमं सामि ॥६७
भव्वजणमोक्खजराणं मुण्णिद-देविद-णमिद-पयकमलं ।
अप्प - सुहं - संपत्तं मल्लि जिणोसं णमंसामि ॥६८

—आचार्य यतिवृषभ

अर्थ—जो केवलज्ञानरूप प्रकाश युक्त सूर्य है, चोतीस अतिशयरूप विभूति से संपन्न, और आत्मस्वरूप में स्थित है, उन कुंथु जिनेन्द्र को नमस्कार करता हूँ ॥

जो संसार-समुद्र का मथन करने वाले और तीनों लोको के भव्य जीवों को मोक्ष के उत्पादक है तथा जिन्होंने सकल पदार्थों को दिखना दिया है ऐसे अर जिनेन्द्र को नमस्कार करता हूँ ॥

जो भव्य जीवों को मोक्ष प्रदान करने वाले है, जिनके चरण कमलों को मुनीन्द्र और देवेन्द्रों ने नमस्कार किया है, और जो आत्मसुख को प्राप्त कर चुके है, उन मल्लि जिनेन्द्र को नमस्कार करता हूँ ॥

धनपाल की भविष्यदत्त कथा के रचनाकाल पर विचार

परमानन्द शास्त्री

संस्कृत और प्राकृत की तरह अपभ्रंश भाषा में भी कथा साहित्य की सृष्टि की गई है। कथा साहित्य की सृष्टि कब से प्रारम्भ हुई, यह अभी निश्चित नहीं हो सका है। विक्रम की ७ वीं, आठवीं और नवमी शताब्दी में रचे गये कथा ग्रन्थों और बाद में उपलब्ध ग्रन्थों में पचमी कथा के नामोल्लेख उपलब्ध होते हैं। चउमुह और स्वयंभू ने 'पचमी' कथा बनाई, किन्तु आज वह उपलब्ध नहीं है। अपभ्रंश 'प्रशस्ति सग्रह' में मैंने इस भाषा की ४० कथाओं के आदि अत भाग दिए हैं। इनके अतिरिक्त और भी कथाएँ हैं जिनके सम्बन्ध में अभी तक कुछ नहीं लिखा गया। कविवर धनपाल की भविष्यदत्त कथा के रचनाकाल पर विचार करना ही इस लेख का प्रमुख विषय है। अपभ्रंश भाषा की दो भविष्यदत्त कथाएँ उपलब्ध हैं जिनमें एक के रचयिता धर्कटवशी धनपाल है। और दूसरी के रचयिता विबुध श्रीधर है। उनमें धनपाल की भविष्यदत्त कथा का रचनाकाल विक्रम की दशवी शताब्दी माना जाता है। और विबुध श्रीधर की कथा का रचना समय वि० स० १२३० है और यह कथा अभी तक अप्रकाशित है। किन्तु धनपाल की भविष्यदत्त कथा का सम्पादन डा० हर्मन जैकोबी ने बड़े परिश्रम से किया था और सन् १९१८ में जर्मनी से उसका प्रकाशन हुआ था। भारत वर्ष में इस काव्य कथा का स्वरूप सी. डी. दलाल और बी. डी. गुणे के द्वारा तैयार किया गया जो गायक-वाङ्मय ओरियन्टल सीरीज बडौदा से सन् १९२३ में प्रकाशित हुआ है। इस ग्रंथ में काव्यतत्त्वों की संयोजना का १. परणाह विक्कमाइच्च काले, पवहतए सुहयारए विसाले।

वारह सय वरसहि परिगएहि,

फागुणमासम्भि बलक्ख पक्खे।

दसमिहि दिण तिमिरुक्कर विवक्खे,

रविवार समाणिउ एहु सत्थु ॥

—जैन ग्रन्थ प्र० सः पृ० ५०।

सक्षिप्तरूप बड़ी खूबी के साथ दर्शाया गया है। काव्य की दृष्टि से भी यह कृति महत्वपूर्ण है। सम्पादकों ने प्रस्तावना में इसके सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश डाला है। और उसका रचना काल दशवी शताब्दी बतलाया है।

परन्तु डा० देवेन्द्रकुमार जी रायपुर ने 'अपभ्रंश' की अन्य जैन कथाओं के साथ धनपाल की भविष्यदत्त कथा पर एक शोध-निबन्ध लिखा, जिस पर आगरा विश्व-विद्यालय से उन्हें पी. एच. डी. की उपाधि मिली। वह शोध-प्रबन्ध अभी तक अप्रकाशित है। उसमें उन्होंने उसका रचना काल बिना किसी प्रामाणिक आधार के, तथा आगरा की स० १४८० की एक हस्तलिखित प्रति में स० १३६३ वे में लिखाने वाले की प्रशस्ति को मूल-ग्रन्थकार की प्रशस्ति मान कर उसका रचना काल विक्रम की १४ वी शताब्दी बतलाया और दशवी शताब्दी के विद्वानों द्वारा सम्मत रचना काल को अमान्य किया। उनका लेख 'भविष्यदत्त कथा का रचना काल' नाम से हाल की राष्ट्रभाषा परिषद पत्रिका में प्रकाशित हुआ है। उसकी एक अतिरिक्त कापी उन्होंने मेरे पास भेजी है। उसे पढ़कर ज्ञान हुआ कि उन्होंने उक्त कथा के रचना काल पर कोई प्रामाणिक विचार नहीं किया। और न कोई प्रामाणिक अनुसन्धान कर ऐसे तथ्य को ही प्रकट किया जिससे उक्त भविष्यदत्त कथा का रचना काल १४वी शताब्दी निश्चित हो सकता। किन्तु स० १३६३ की प्रशस्ति के अनुसार भ्रमवश धनपाल की उक्त कथा का रचना काल १४ वी सदी सुनिश्चित किया है। जो उनकी किसी भूल का परिणाम है, अब वह प्रशस्ति जो डा० सा० के रचना काल का आधार है, जिसे लेख में ग्रंथकार की प्रशस्ति मान लिया गया है। और ग्रंथ की प्रतिलिपि करने या कराने वाले को रचयिता स्वीकृत किया गया है। उस पर विचार करने और डा० सा० की भूल का परिमार्जन करना ही लेखक का प्रयास है।

जिससे भविष्य में इस प्रकार की भूलों की पुनरावृत्ति न हो, और साहित्यिक विद्वान खूब सोच समझ कर लिखें।

लिपिकार की प्रशस्ति की भाषा का मूलग्रन्थकार की भाषा से भी कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता। वह मगलाचरण के साथ एक जुड़ी प्रशस्ति है, मूलग्रन्थ के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। प्रशस्ति में प्रयुक्त 'लिहिय' शब्द ग्रंथ लिखने या लिखाने का वाचक है, रचने का नहीं। मूलग्रन्थकार ने 'विरइउ' शब्द का प्रयोग किया है 'लिहिय' शब्द का नहीं। मूलग्रन्थकार ने अपने को 'घर्कंट' धक्कड़ वंश का वणिग सूचित किया है। और प्रतिलिपिकार ने दिल्ली के अग्रवाल वंश का श्रेष्ठी हिमपाल का पुत्र साहू वाधू। इतना स्पष्ट भेद रहने पर भी डा० देवेन्द्र कुमार का ध्यान उस पर नहीं गया। उसका कारण संभवतः स० १४८० का प्रतिलिपिकार का समय है उसी के कारण उक्त भ्रम हुआ जान पड़ता है। अनेक ग्रंथों में प्रतिलिपिकारों द्वारा, पूर्व लिपि प्रशस्ति भी मूलग्रन्थ के साथ लिपि की हुई मिलती है। उदाहरण के लिए स० १४६४ में लिखित मलयगिरिकृत मूलाचार प्रशस्ति भी १७ वीं शताब्दी में लिखी जाने वाली प्रतियों में मिलती है। लिपि प्रशस्ति की भाषा मूल ग्रन्थ की भाषा से कुछ घटिया दर्जे की है, और सरल है।

मूल ग्रन्थकार ने ग्रन्थ के अंत में अपना सक्षिप्त परिचय निम्न पद्य में दिया है, जिसमें अपने को धक्कड़ (घर्कंट) वंशी वणिग बतलाया है और अपने पिता का नाम माएसर (मातेश्वर) और माता का नाम 'घनसिरि' (घनश्री) प्रकट किया है।

धक्कड़ वणिगसि माएसरह समुग्गिभिणि ।

घणसिरि देवि सुएण विरइउ सरसइ संभविण ॥

प्रशस्ति के अन्तिम घत्ते में तथा सधि पुष्पिकाओं में भी अपना नाम घनपाल बतलाया है।

निसुणंत पड़ंतह परचिततह अप्पहिय ।

घणवालि नेण पचमि पंच पयार किय ॥

१. इय भविसयत्त कहाए पयडिय धम्मत्थ काम मोक्खाए
बुह घणवाल कयाए पंचमि फल वण्णणाए ।
कमलसिरि भविसदत्त भविसाणुरूव मोक्खगमणोणाम
बावीसमो संधी परिच्छेओ सम्मतो ॥

इस वाक्य से स्पष्ट है कि कवि ने पंचमी कथा आत्महित के लिए की है। किसी अन्य के द्वारा वह नहीं बनवाई गई। कवि ने अपने उक्त परिचय के साथ, राजा का नाम, रचनास्थल और रचनाकाल नहीं दिया। अन्यथा यह विवाद ही उपस्थित नहीं होता।

डा० देवेन्द्रकुमार जी ने अपने लेख के पृ० २७ पर लिखा है कि—“प्रथम घनपाल का जन्म जिस वंश में हुआ था, उसी में जम्बूस्वामी के रचयिता महावीर, धर्म-परीक्षा के कर्ता हरिषेण आदि उत्पन्न हुए हैं।”

आपके इस निष्कर्ष में प्रथम घनपाल के समान जम्बूस्वामीचरित के रचयिता कवि वीर को भी घर्कंट वंश (धक्कड़ वंश) का लिखना अति साहस का कार्य है। वीर कवि का वंश 'लाल वागड' था घर्कंट या धक्कड़ नहीं। जम्बूस्वामीचरित की रचना में प्रेरक तखडु श्रेष्ठी अवश्य घर्कंट वंश के थे। वे मालव देश की घन-धान्य समृद्ध सिन्धु वर्षी नगरी के निवासी धक्कड़ वंश के तिलक मधुसूदन के पुत्र थे। इनके भाई भरत ने भी उसे पुष्ट किया था। ऐसी भूले भट-पट कलम चलाने से हो जाया करती है। डा० सा० जैसे उदीयमान विद्वानों को अच्छी तरह से विचार कर ही निष्कर्ष निकालना आवश्यक है।

कवि का घर्कंट वंश एक प्राचीन ऐतिहासिक वंश है। यह वंश परम्परा पूर्व काल में अच्छी प्रतिष्ठित रही है। इसमें अनेक प्रतिष्ठित पुरुष हुए हैं। इसका विकास 'सिरि उजपुर' या सिरोज (टोक) से निर्गत बतलाया है। धर्मपरीक्षा के कर्ता हरिषेण (१०४४) भी इसी घर्कंट वंशीय गोवर्द्धन के पुत्र और सिद्धसेन के शिष्य थे। यह

२. देखो, जम्बूस्वामी चरित प्रशस्ति ।

३. अहमालवम्मि घणकण दरिसि,

नयरी नामेण सिन्धुवरिसी ।

तहि धक्कड़वग्ग वंश तिलउ,

महसूयण नंदण गुण निलउ ।

नामेण सेट्टि तखडु वसइ

—जम्बूस्वामीचरितप्रशस्ति ।

४. इह मेवाड देशे जण सकुले,

सिरि उजपुर निग्गय धक्कड़ कुले ।

—धर्मपरीक्षा प्रशस्ति ।

धनपाल की भविष्यदत्त कथा के रचनाकाल पर विचार

परमानन्द शास्त्री

संस्कृत और प्राकृत की तरह अपभ्रंश भाषा में भी कथा साहित्य की सृष्टि की गई है। कथा साहित्य की सृष्टि कब से प्रारम्भ हुई, यह अभी निश्चित नहीं हो सका है। विक्रम की ७ वीं, आठवीं और नवमी शताब्दी में रचे गये कथा ग्रन्थों और बाद में उपलब्ध ग्रन्थों में पंचमी कथा के नामोल्लेख उपलब्ध होते हैं। चउमुह और स्वयम्भू ने 'पंचमी' कथा बनाई, किन्तु आज वह उपलब्ध नहीं है। अपभ्रंश 'प्रशस्ति सग्रह' में मैंने इस भाषा की ४० कथाओं के आदि अंत भाग दिए हैं। इनके अतिरिक्त और भी कथाएँ हैं जिनके सम्बन्ध में अभी तक कुछ नहीं लिखा गया। कविवर धनपाल की भविष्यदत्त कथा के रचनाकाल पर विचार करना ही इस लेख का प्रमुख विषय है। अपभ्रंश भाषा की दो भविष्यदत्त कथाएँ उपलब्ध हैं जिनमें एक के रचयिता धर्कटवशी धनपाल हैं। और दूसरी के रचयिता विबुध श्रीधर हैं। उनमें धनपाल की भविष्यदत्त कथा का रचनाकाल विक्रम की दशवी शताब्दी माना जाता है। और विबुध श्रीधर की कथा का रचना समय वि० स० १२३० है* और यह कथा अभी तक अप्रकाशित है। किन्तु धनपाल की भविष्यदत्त कथा का सम्पादन डा० हर्मन जैकोबी ने बड़े परिश्रम से किया था और सन् १९१८ में जर्मनी से उसका प्रकाशन हुआ था। भारत वर्ष में इस काव्य कथा का संस्करण सी. डी. दलाल और बी. डी. गुणे के द्वारा तैयार किया गया जो गायकवाड ओरियन्टल सीरीज बडोदा से सन् १९२३ में प्रकाशित हुआ है। इस ग्रंथ में काव्यतत्त्वों की संयोजना का

१. णरणाह विक्कमाइच्च काले, पवहतए सुहयारए विसाले ।

वारह सय वरसहि परिगएहि,

फागुणमासम्भि बलक्ख पक्खे ।

दसमिहि दिण तिमिरक्कर विवक्खे,

रविवार समाणिउ एहु सत्थु ॥

—जैन ग्रन्थ प्र० सं० पृ० ५० ।

संक्षिप्तरूप बड़ी खूबी के साथ दर्शाया गया है। काव्य की दृष्टि से भी यह कृति महत्वपूर्ण है। सम्पादकों ने प्रस्तावना में इसके सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश डाला है। और उसका रचना काल दशवी शताब्दी बतलाया है।

परन्तु डा० देवेन्द्रकुमार जी रायपुर ने 'अपभ्रंश' की अन्य जैन कथाओं के साथ धनपाल की भविष्यदत्त कथा पर एक शोध-निबन्ध लिखा, जिस पर आगरा विश्व-विद्यालय से उन्हें पी एच. डी. की उपाधि मिली। वह शोध-प्रबन्ध अभी तक अप्रकाशित है। उसमें उन्होंने उसका रचना काल बिना किसी प्रामाणिक आधार के, तथा आगरा की स० १४८० की एक हस्तलिखित प्रति में स० १३९३ के में लिखाने वाले की प्रशस्ति को मूल-ग्रन्थकार की प्रशस्ति मान कर उसका रचना काल विक्रम की १४ वीं शताब्दी बतलाया और दशवी शताब्दी के विद्वानों द्वारा सम्मत रचना काल को अमान्य किया। उनका लेख 'भविष्यदत्त कथा का रचना काल' नाम से हाल की राष्ट्रभाषा परिषद् पत्रिका में प्रकाशित हुआ है। उसकी एक अतिरिक्त कापी उन्होंने मेरे पास भेजी है। उसे पढ़कर ज्ञात हुआ कि उन्होंने उक्त कथा के रचना काल पर कोई प्रामाणिक विचार नहीं किया। और न कोई प्रामाणिक अनुसन्धान कर ऐसे तथ्य को ही प्रकट किया जिससे उक्त भविष्यदत्त कथा का रचना काल १४वीं शताब्दी निश्चित हो सकता। किन्तु स० १३९३ की प्रशस्ति के अनुसार भ्रमवश धनपाल की उक्त कथा का रचना काल १४ वीं सदी सुनिश्चित किया है। जो उनकी किसी भूल का परिणाम है, एव वह प्रशस्ति जो डा० सा० के रचना काल का आधार है, जिसे लेख में ग्रन्थकार की प्रशस्ति मान लिया गया है। और ग्रंथ की प्रतिलिपि करने या कराने वाले को रचयिता स्वीकृत किया गया है। उस पर विचार करने और डा० सा० की भूल का परिमार्जन करना ही लेखक का प्रयास है।

जिससे भविष्य में इस प्रकार की भूलों की पुनरावृत्ति न हो, और साहित्यिक विद्वान खूब सोच समझ कर लिखें।

लिपिकार की प्रशस्ति की भाषा का मूलग्रन्थकार की भाषा से भी कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता। वह मगलाचरण के साथ एक जुदी प्रशस्ति है, मूलग्रन्थ के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। प्रशस्ति में प्रयुक्त 'लिहिय' शब्द ग्रंथ लिखने या लिखाने का वाचक है, रचने का नहीं। मूलग्रन्थकार ने 'विरइउ' शब्द का प्रयोग किया है 'लिहिय' शब्द का नहीं। मूलग्रन्थकार ने अपने को 'घर्कट' घक्कड़ वंश का वणिक् सूचित किया है। और प्रतिलिपिकार ने दिल्ली के अग्रवाल वंश का श्रेष्ठी हिमपाल का पुत्र साहू वाधू। इतना स्पष्ट भेद रहने पर भी डा० देवेन्द्र कुमार का ध्यान उस पर नहीं गया। उसका कारण संभवतः स० १४८० का प्रतिलिपिकार का समय है उसी के कारण उक्त भ्रम हुआ जान पड़ता है। अनेक ग्रंथों में प्रतिलिपिकारों द्वारा, पूर्व लिपि प्रशस्ति भी मूलग्रन्थ के साथ लिपि की हुई मिलती है। उदाहरण के लिए स० १४९४ में लिखित मलयगिरिकृत मूलाचार प्रशस्ति भी १७ वीं शताब्दी में लिखी जाने वाली प्रतियो में मिलती है। लिपि प्रशस्ति की भाषा मूल ग्रन्थ की भाषा से कुछ घटिया दर्जे की है, और सरल है।

मूल ग्रन्थकार ने ग्रन्थ के अंत में अपना सक्षिप्त परिचय निम्न पद्य में दिया है, जिसमें अपने को घक्कड़ (घर्कट) वंशी वणिक् बतलाया है और अपने पिता का नाम माएसर (मातेश्वर) और माता का नाम 'धनसिरि' (धनश्री) प्रकट किया है।

घक्कड़ वणिक्सि माएसरह समुग्गिबिण।

धनसिरि देवि सुएण विरइउ सरसइ संभविण॥

प्रशस्ति के अन्तिम घट्टे में तथा सधि पुष्पिकाओं में भी अपना नाम धनपाल बतलाया है।

निसुणंत पड़ंतह परचिततह अप्पहिय।

धनवालि नेण पचमि पंच पयार किय॥

१. इय भविसयत्त कहाए पयडिय धम्मत्थ काम मोक्खाए
वुह धनवाल कयाए पंचमि फल वण्णणाए।
कमलसिरि भविसदत्त भविसाणुरुव मोक्खगमणोणाम
बावीसमो संधी परिच्छेओ सम्मतो॥

इस वाक्य से स्पष्ट है कि कवि ने पंचमी कथा आत्महित के लिए की है। किसी अन्य के द्वारा वह नहीं बनवाई गई। कवि ने अपने उक्त परिचय के साथ, राजा का नाम, रचनास्थल और रचनाकाल नहीं दिया। अन्यथा यह विवाद ही उपस्थित नहीं होता।

डा० देवेन्द्रकुमार जी ने अपने लेख के पृ० २७ पर लिखा है कि—“प्रथम धनपाल का जन्म जिस वंश में हुआ था, उसी में जम्बूस्वामी के रचयिता महावीर, धर्म-परीक्षा के कर्ता हरिषेण आदि उत्पन्न हुए हैं।”

आपके इस निष्कर्ष में प्रथम धनपाल के समान जम्बूस्वामीचरित के रचयिता कवि वीर को भी घर्कट वंश (घक्कड़ वंश) का लिखना अति साहस का कार्य है। वीर कवि का वंश 'लाल वागड' था घर्कट या घक्कड़ नहीं। जम्बूस्वामीचरित की रचना में प्रेरक तत्त्व श्रेष्ठी अवश्य घर्कट वंश के थे। वे मालव देश की धन-धान्य समृद्ध सिन्धु वर्षा नगरी के निवासी घक्कड़ वंश के तिलक मधुसूदन के पुत्र थे। इनके भाई भरत ने भी उसे पुष्ट किया था। ऐसी भूले भट-पट कलम चलाने से हो जाया करती है। डा० सा० जैसे उदीयमान विद्वानों को अच्छी तरह से विचार कर ही निष्कर्ष निकालना आवश्यक है।

कवि का घर्कट वंश एक प्राचीन ऐतिहासिक वंश है। यह वंश परम्परा पूर्व काल में अच्छी प्रतिष्ठित रही है। इसमें अनेक प्रतिष्ठित पुरुष हुए हैं। इसका विकास 'सिरि उजपुर' या सिरोज (टोंक) से निर्गत बतलाया है। धर्मपरीक्षा के कर्ता हरिषेण (१०४४) भी इसी घर्कट वंशीय गोवर्द्धन के पुत्र और सिद्धसेन के शिष्य थे। यह

२. देखो, जम्बूस्वामी चरित प्रशस्ति।

३. अहमालवम्मि धनकण दरिसि,

नयरी नामेण सिन्धुवरिसी।

तहि घक्कड़वग्ग वंश तिलउ,

महमूयण नंदणु गुण निलउ।

नामेण सेट्ठि तक्खडु वसइ.. ..

—जंबूस्वामीचरितप्रशस्ति।

४. इह मेवाड देशे जण सकुले,

सिरि उजपुर णिगय घक्कड़ कुले।

—धर्मपरीक्षा प्रशस्ति।

चित्तीड़ के रहने वाले थे और कार्यवश अचलपुर चले गए थे। और वहाँ पर उन्होंने स० १०४४ में 'धर्म-परीक्षा' का निर्माण किया था। धर्कट वंश दिल्ली के आस-पास रहा नहीं जान पड़ता, किन्तु वह मारवाड़ राजपूताने और गुजरात आदि में रहा है। मालव देश की समृद्ध नगरी सिन्धुवर्षी में भी धर्कट वंश के तिलक मधुसूदन श्रेष्ठी के पुत्र तक्खडु और भरत थे, जिनकी प्रेरणा से वीर कवि ने जम्बूस्वामी चरित की रचना की थी। भविष्यदत्त कथा का रचयिता भी संभवतः उनमें से किसी एक प्रदेश में रहा हो। इस वंश का उल्लेख दि० श्वे० दोनों ही सम्प्रदायों में पाया जाता है।

डा० देवेन्द्रकुमार जी ने आगरा की जिस लिखित प्रति की प्रशस्ति से रचनाकाल विक्रम की १४वीं शताब्दी बतलाया है उस पर भी यहाँ थोड़ासा विचार करना उप-युक्त जान पड़ता है, जो डा० देवेन्द्रकुमार के लेख का प्रमुख आधार है, और जिस पर से अन्य विद्वानों के समयादिक को अमान्य ठहराया है। वह प्रशस्ति भविसदत्त कथा लिखाने वाले अग्रवाल साहु बाघू की है जो दफराय बाद में लिखी गई है।

प्रशस्ति-परिचय

प्रशस्ति में मगलाचरण के बाद बतलाया गया है कि — 'जम्बू द्वीप भारत-क्षेत्र में अत्यन्त धन-धान्य से परिपूर्ण आसीयवणु, आशीय या आशीवन नाम का नगर है, जो मन्दिर, उद्यान, ग्राम आदि से युक्त और धनकण से समृद्ध एवं शोभायमान है। उस नगर में ऋद्धि-वृद्धि से परिपूर्ण श्रेष्ठिजन, धर्मात्मा सज्जन अपने समस्त परिजनों के साथ सुखोपभोग करते हुए निवास करते थे। उससे पश्चिम दिशा में साठ कोश की दूरी पर दिल्ली है वहाँ जैन धर्म के पालन करने वाले अनेक लोग रहते हैं। उनमें जिनधर्म में अनुरक्त बुद्धिमान और कामदेव समान रूप-वान बहा के निवासियों में प्रसिद्ध अग्रवाल कुल में समुत्पन्न रत्नपाल नाम का सेठ था, उसका पुत्र महर्नसिंह परोपकारी था, उसके चार पुत्र हुए, दुल्लहु (दुर्लभसेन) णइपाल (नतपाल) सहजपाल और पजुणपाल। उनमें ज्येष्ठ पुत्र दुर्लभसेन अत्यन्त गुणवान था। उसके तीन पुत्र थे। हिमपाल, देवपाल और सबसे कनिष्ठ पुत्र का

नाम लुहपाल था। इनमें हिमपाल अधिक धर्मात्मा था, उसकी धर्मपत्नी का नाम 'रइयाही' था जो नियम और शील सयम से युक्त थी। वे दोनों दिल्ली में रहते थे वहीं उनके बाघू नाम का पुत्र हुआ। इसी बीच काल के प्रकोप से लोग क्षीण वैभव हो गए। धनिक वर्ग भी दुख के सागर में पड़ गए और अपने नियम धर्म का परित्याग करने लगे। समस्त पृथ्वी करभार से पीड़ित हो गई। बसे हुए सेठ साहूकार अपने निवास स्थान को छोड़कर चारों दिशाओं में भागकर दूर देशों में जा बसे। उस समय दिल्ली में प्रचण्ड राजा मुहम्मद शाह तुगलक का राज्य था, जिसने राजाओं का मानमर्दन कर बहुत दिनों तक एक छत्र राज्य किया था।

मुहम्मद शाह तुगलक वंश का अच्छा शासक था, जहाँ वह बुद्धिमान, बहुभाषाविज्ञ, तर्क, न्याय आदि विद्याओं में निपुण था और विद्वानों का समादर करता था, वह उदार, स्वतंत्र विचारक, दानशील, प्रजा हितैषी, वीर योद्धा और सदाचारी था। वहाँ वह क्रोधी, उतावला, अदूरदर्शी, अव्यवहारिक, अत्यन्त निर्दयी और कठोर शासक था, इसमें सन्देह नहीं कि वह न्यायी शासक था, किन्तु विद्रोहियों को कड़े से कड़ा दण्ड देता था। उसने अपने दोनों भानजों और कई उच्च पदाधिकारियों तथा एक काजी को भी खुले आम मृत्यु दण्ड दिया था। उसकी दण्ड व्यवस्था में अल्प या अधिक अपराध करने पर दण्ड में कोई परिवर्तन नहीं होता था। सबको एक सा दण्ड देता था। उसने सन् १३२७ (वि० स० १३८४) में दौलताबाद (देवगिरि) में राजधानी स्थानान्तरित करने के लिए दिल्ली को खाली करने का हुक्म दिया था। उससे जन-धन की जो बर्बादी हुई और जनता को कष्ट भेलने पड़े उसकी चर्चा से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। सन् १३४० (वि० स० १३९७) में बादशाह ने पुनः राजधानी स्थानान्तरित करने की महान गल्ती की थी। जिसमें उसे भारी असफलता मिली, हजारों लोग काल-कवलित हो गए। और अनेक राजधानी छोड़कर यत्र-तत्र भाग गए। जन-धन से रिक्त हो दरिद्री बन गए। उसी समय उत्तरा पथ में भयंकर दुष्काल पड़ा था। सहस्रों लोग भूखों मर गए, यह उसकी अदूरदर्शिता का

ही अभिशाप था, जिससे जनता को महान् कष्ट का सामना करना पड़ा। राजधानीके प्रथम स्थानान्तरण के समय साहू बाबू भी दिल्ली छोड़कर दफराबाद चला गया। जहाँ उसने अपनी कीर्तिके लिए, अनेक शास्त्र उपशास्त्र लिखवाए, तथा अपने लिए श्रुत पंचमी की कथा लिखी या लिखवाई थी। जिसका समय वि० स० १३६३ पौष शुक्ला १२ सोमवार रोहिणी नक्षत्र बतलाया गया है। यह बादशाह सन् १३२५ (वि० सं० १३८२) में मुहम्मद साहू बिन तुगलक के नाम से दिल्ली की गद्दी पर बैठा था। इसने सन् १३५१ (वि० सं० १४०८) तक राज्य किया है।

उपसंहार

प्रस्तुत भविष्यदत्त कथा प्रशस्ति इसी के राज्यकाल की रचना है। प्रशस्ति में अंकित घटना उसी के राज्यकाल में

घटित हुई थी। इससे यह प्रशस्ति अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। अग्रवाल जाति के लिए यह घटना अनुपम है। ऐतिहासिक दृष्टिसे उसका महत्व है ही। उक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उक्त प्रशस्ति मूलग्रन्थकार घनपालकी नहीं है, जब उक्त प्रशस्ति घनपाल रचित नहीं तब उसके आधार पर डाक्टर देवेन्द्रकुमार ने ग्रन्थ की १४वीं सदी रचनाकाल की जो काल्पनिक दीवाल बनाने का प्रयत्न किया था वह घराशायी हो जाती है। उसके बल पर भविष्यदत्त कथा का रचनाकाल विक्रम की १०वीं शताब्दी नहीं हो सकता। किन्तु पूर्व विद्वानों द्वारा सुनिश्चित दशमी शताब्दी समय ही अंकित रहता है, और वह तब तक अंकित रहेगा जब तक कोई दूसरा सही प्रामाणिक आधार नहीं मिल जाता। आशा है डा० देवेन्द्रकुमार जी अपनी इस भूल का परिमार्जन करेंगे।

भविष्यदत्तकथा की सं० १३६३ की लिपि प्रशस्ति

जिण चलण णमंसिखि थुइ सुपसंसिखि, मागमि थोबउ किपि णिरु ।
 सुह बुद्धि समासउ कलिमलु णासउ, हो दुत्तर ससार तरु ॥
 इह जंबूदीवि भरहम्मिल्लि, संपुण्ण मही बहु रिद्धि वित्ति ।
 तह वण्णण को सक्कइ करेवि, तिकारणि कहिउ समुच्चएवि ॥
 इत्थतरि अइ रमणीउ रम्म, णामेण णयरु 'आसीयवण्णु' ।
 पुरमंदिर गामाराम जुत्तु, धण-कणय-समिद्धउ अइ विचित्तु ॥
 णिवसहि णायर जण बहु महंत, मह रिद्धि विद्धि संपुण्णवत ।
 धम्मधर सुट्ठ महाविणीय, सकल पुत्त परियण समीय ।
 सुट्ठ भुंजहि माणहि परम भोय, एवं विट्ठ तहि णिवसंत लोय ।
 'दिल्ली' पच्छिम विसि सट्ठि कोस, तहि सावय जण णिवसहि असेस ।
 जिण धम्मरत्त सुहमइ विसाल, मयरद्धरूवे तणु कणय माल ।
 तहि मज्झि पसिद्धउ 'अयरवालु', णामेण पउत्तउ 'रयणपालु' ।
 तह सुउ 'महर्णासिह परोवयारि, तहि गेहि उपण्ण [इ] पुत्त चार ।
 'कुल्लह' 'णइवालु' 'सहजपालु', अण्णिक्कु कणिट्ठउ 'पजुणपालु' ।
 तहि मज्झि जु कुल्लह गुणगरिट्ठ, रयणत्तउ जायउ तेणि सुट्ठ ।
 'हिमपालु' पढमु पुणु 'देवपालु', तह लहयउ पउत्तउ 'लहपालु' ।
 'हिमपालु' जु इह मज्झम्मि उत्तु, जिण चरण भत्तु अइ चार चित्तु ।
 'रइयाही' णामे भज्ज भत्त, वय-णियम-शील-संजम सइत्त ।
 दिल्ली मज्झम्मि वसंतएण, तहि जायउ बाधु पुत्तु तेण ।
 घत्ता—इत्थतरि लोयइ कालपमोयइ खीण बिहवि संपत्तइ ।
 वुट्ठ सागरि पडियइ माया जडियइ, णियम-धम्म परिचत्तइ ॥ १ ॥

कर पीडिया पुहइ सयला समग्गा, वसाउव्व साहूय चउरो वि मग्गा ।
 णियट्ठाण वासाइं लोएहि चत्ता, महा दुग्ग दूरम्मि बेसेहि पत्ता ।
 मुहंमहसाहो वि राओ पयंडो, लिओ तेण सायर पमाणेहि बंडो ।
 उसक्किट्ठ णिछलिवि मलिओ वि माणो, किओ रज्जु इक्कच्छति उवयंतमाणो ।
 पयट्ठे वि दूस्मि काले रउद्दे, पट्ठतो सुबाषूय वफरायवादे ।
 इहति परत्ते सुहायार हेउ, तिणे लिहिय सुअपचमो णियहं हेउ ॥
 लिहेऊण सत्थोपसत्थाय लोए, पवुच्छामि जसु कित्त जिम पयडहोए ।
 सुसंवच्छरे अक्किरा विक्कमेण, अहोएहि तेणववि तेरह सएणं ।
 वरिस्सेय पूसेण सेयम्मि पक्खे, तिहि वारसी सोम रोहिणिहि रिक्खे ।
 सुहज्जोइमय रगओ बुद्धु मत्तो, इओ सुंदरो सत्थु सुह दिणि समत्तो ।
 जु भव्वीयणो पडइ भव्वीयण लोए, सुदुक्कम्म णिग्गट्ठ करइ मच्च लोए ।
 जु धारेइ वउ पुणु जहा जुत्ति कहिओ, मणो णिच्चले बंभज्जोहि सहिओ ।
 मुरिद्धीइविद्धीइ संपुण्णवतो, पुण देवलीयम्मि ठाणे पट्ठतो ।
 घत्ता—तारायणु ससिहरु जाम रवि, जावंचिय जिणधम्म कहा ।

णिसुणत पढंतह भव्वीयण ता णंदउ महि सत्थु इह ॥ २ ॥

संवत् १४८० वर्ष कातिग वदि सुक्र दिन श्री राइसीह पुत्र हलू पुस्तकु लिषितं ।

तंलाव रक्षेद् जलाव रक्षेद् रक्षेद् सिथिलबन्धनात् । परहस्तगतं रक्षेत् एवं वदति पुस्तिका ॥

देह से राग करना अहितकर है

कविवर दौलतराम

मत कीजौ जी यारी, घिनगेह देह जड़ जानिके ॥ मत की० ॥टेक॥
 मात-तात-रज-बीरजसों यह, उपजी मल फुलवारी ।
 अस्थिमाल-पल-नसा-जालकी, लाल लाल जलवारी ॥ मत की० ॥१॥
 कर्मकुरगथलीपुतली यह, मूत्रपुरीष भंडारी ।
 चर्ममंडी रिपुकर्मघड़ी धन, -धर्म चुरावनहारी ॥ मत की० ॥२॥
 जे जे पावन वस्तु जगत में, ते इन सर्वविगारी ।
 स्वेदमेदकफक्लेदमयी बहु, मद-गद-व्यालपिटारी ॥ मत की० ॥३॥
 जा संयोग रोगभव तोलौ, जा वियोग शिवकारी ।
 बुध तासों न ममत्व करै यह, मूढ़मतिन को प्यारी ॥ मत की० ॥४॥
 जिन पोषी ते भये सदोषी, तिन पाये दुख भारी ।
 जिन तप ठान ध्यानकर शोषी, तिन परनी शिवनारी ॥ मत की० ॥५॥
 सुरधनु शरदजलद जलबुदबुद, त्यों भट विनशनहारी ।
 यातें भिन्न जान निज चेतन, दौल होहु शमधारी ॥ मत की० ॥६॥

निर्वाणकाण्ड के पूर्वाधार तथा उसके रूपान्तर

डा० विद्याधर जोहरापुरकर

१. प्रस्ताविका :—

दिगम्बर जैन समाज में निर्वाणकाण्ड एक सुपरिचित रचना है। १६ प्राकृत गाथाओं में निबद्ध यह रचना कई पूजापाठों तथा स्तोत्रसंग्रहों में प्रकाशित हो चुकी है। इसका भैया भगवतीदास जी ने जो हिन्दी अनुवाद किया है। वह भी कई बार छप चुका है। इस निबन्ध में निर्वाणकाण्ड के अन्य रूपान्तरों तथा उसके पूर्वाधारों का परिचय दिया जा रहा है।

२. उदयकीर्ति :—

इनकी तीर्थवन्दना में अपभ्रंश भाषा में १८ पद्य हैं। निर्वाणकाण्ड के कैलास, चम्पापुर, ऊर्जयन्त, पावापुर, सम्मेशिखर, गजपथ, तारापुर, पावागिरि, (लवकुश-सिद्धिस्थान), शत्रुजय, तुंगी, रेवातट तथा वडवानी इन बारह तीर्थ क्षेत्रों का उदयकीर्ति ने उल्लेख किया है। सवणागिरि, सिद्धवरकूट, रिसिदगिरि, कोटिशिला, कुथुगिरि, मेढागिरि, द्रोणगिरि तथा पावागिरि (सुवर्णभद्र-सिद्धिस्थान) का उन्होंने उल्लेख नहीं किया है। अतिशय क्षेत्रकाण्ड के नागद्रह, मगलपुर, अस्सारम्भ, पोदनपुर, हस्तिनापुर, वाराणसी, अम्गलदेव, सिरपुर तथा हुलगिरि इन नौ तीर्थों का उदयकीर्ति ने उल्लेख किया है तथा मथुरा, अहिछत्र, जम्बूवन एवं वरनगर का उल्लेख नहीं किया है।

उदयकीर्ति ने निर्वाणकाण्ड में अनुलिखित पांच क्षेत्रों का अधिक उल्लेख अपनी रचना में किया है, ये क्षेत्र हैं—मालव शान्तिजिन, तिउरी के त्रिभुवनतिलक, कर्णाटक के वाडवजिनेन्द्र, तिलकपुर के चन्द्रप्रभ तथा माणिकदेव।

उदयकीर्ति का समय निश्चित ज्ञात नहीं है तथापि इतना कहा जा सकता है कि वे बारहवीं सदी के बाद के हैं क्योंकि हुलगिरि के वर्णन में उन्होंने विज्जण राजा का उल्लेख किया है। विज्जण बारहवीं सदी में कल्याण के कलचुर्य वंश में हुआ था। त्रिपुरी और तिलकपुर के वर्णन

के कारण वे चौदहवीं सदी के बाद के भी प्रतीत नहीं होते।

३. गुणकीर्ति :—

पन्द्रहवीं सदी में गुणकीर्ति ने धर्माभूत नामक मराठी ग्रन्थ लिखा। इसके १६७वें परिच्छेद में निर्वाणकाण्ड-वर्णित सभी १६ तीर्थों का उल्लेख है तथा अतिशयक्षेत्रकाण्ड के मथुरा, अहिछत्र तथा वरनगर को छोड़कर सभी तीर्थों का उल्लेख है। मालवशान्तिनाथ, तिलकपुर, वाडवजिनेन्द्र तथा माणिकदेव ये जो क्षेत्र उदयकीर्ति द्वारा वर्णित हैं इनका भी गुणकीर्ति ने उल्लेख किया है। उनके वर्णन में तीर्थनामों के रूपान्तर इस प्रकार हैं—मगलपुर के स्थान में मगलावती, अम्मारंभ के स्थान में आसारम्य पाटन। पावागिरि के स्थान में पावा महागढ़ तथा तारापुर के स्थान में तारगागिरि। उन्होंने कुथुगिरि के स्थान पर केवल वसथल पर्वत कहा है, चलना नदीतट का उल्लेख किया है किन्तु पावागिरि यह नाम छोड़ दिया है, इसी प्रकार फलहोडी ग्राम का उल्लेख किया है किन्तु द्रोणगिरि यह नाम छोड़ दिया है।

४. मेघराज :—

इनकी गुजराती तीर्थ वन्दना में २२ पद्य हैं। ये सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुए हैं। इनकी रचना में निर्वाणकाण्ड वर्णित तीर्थों में सिद्धवरकूट, पावागिरि (सुवर्णभद्र-सिद्धिस्थान) तथा द्रोणगिरि को छोड़कर शेष सभी का उल्लेख है। अतिशयक्षेत्रकाण्ड के नागद्रह, पोदनपुर, हस्तिनापुर, मिरपुर तथा होलागिरि (इसके नामान्तर लक्ष्मीस्वर का उल्लेख है) इन पांच तीर्थों का मेघराज ने उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त बेलगुल के गोमटस्वामी, तेर के वर्धमान, समुद्र के आदिनाथ, वडभोई के पार्श्वनाथ, जीराउल के पार्श्वनाथ तथा तिलकपुर के चन्द्रनाथ का भी उन्होंने उल्लेख किया है।

५. चिमणापण्डित :—सत्रहवीं शताब्दी में उन्होंने मराठी में ३७ पद्यों की तीर्थवन्दना लिखी है। इसमें

निर्वाणकाण्ड में वर्णित सभी तीर्थों का उल्लेख है। चिमणा-पण्डित ने कैलास की वन्दना में भरतनिर्मित मन्दिरों का, पावापुर के पद्मसरोवर का तथा पावागिरि (लवकुश-सिद्धिस्थान) में गंगादास द्वारा निर्मित मन्दिरों का भी उल्लेख किया है। इन्होंने तारगा में कोटिशिला का सबध जोड़ा है। यद्यपि कर्लिंगदेश का नाम भी इन्होंने दिया है। मेढगिरि के स्थान में वे मुगतागिरि नाम का प्रयोग करते हैं तथा वहाँ मेढा (मराठी शब्द जिसका तात्पर्य बकरा है) के उद्धार की चर्चा करते हैं, वहाँ की अखड तीर्थधारा (नदी का प्रवाह) तथा अपार मन्दिरों व मूर्तियों का भी उन्होंने जिक्र किया है। अतिशयक्षेत्रकाण्ड के क्षेत्रों में वे सिर्फ सिरपुर का उल्लेख करते हैं तथा वहाँ के अन्तरिक्ष पासोजी (पार्श्वनाथ) की खरदूषण तथा श्रीपाल राजा द्वारा पूजा की चर्चा करते हैं। इसके अतिरिक्त लतासर्व-वेष्टित गोमटस्वामी तथा प्रतिष्ठान के मुनिमुव्रतमन्दिर का उन्होंने वर्णन किया है। निर्वाणकाण्ड की दो प्रक्षिप्त गाथाओं का अनुवाद भी इनकी रचना में मिलता है जिनमें नर्मदातीर पर संभवनाथ की कैवल्यप्राप्ति का तथा मेघ-वर्ष तीर्थ में मेघनाद की मुक्ति का उल्लेख है।

६. अन्य उल्लेखकर्ता :—

उपर्युक्त चार लेखकों ने मुख्यतः निर्वाणकाण्ड के आधार पर अपनी रचनाएँ लिखी प्रतीत होती हैं। कुछ अन्य लेखकों ने भी तीर्थसम्बन्धी कृतियों में निर्वाणकाण्ड-वर्णित कुछ तीर्थों के नाम सम्मिलित किये हैं। सत्रहवीं सदी के लेखक ज्ञानसागर की सर्वतीर्थवन्दना में कुल ७८ स्थानों का वर्णन १०० छप्पयों में मिलता है। इन्होंने संमेदाचल, चम्पापुर (तथा वहाँ के प्रचंड मानस्तम्भ), पावापुर (तथा वहाँ का तालाब के मध्य का मन्दिर), ऊर्जयन्त (तथा वहाँ के सहसावन, लक्खावन, राजुन की गुफा, भीमकुड, ज्ञानकुड तथा सात टोके), शत्रुंजय (तथा वहाँ के ललित सरोवर एवं अखयवड), तुगी, गजपथ, मुक्तागिरि (तथा वहाँ की नदी, मन्दिर, धर्मशाला तथा पाँच दिन की यात्रा), कैलास, तारगा (तथा कोटिशिला), पावागड, कुंथुगिरि, बडवानी तथा सहेणाचल (सम्भवतः सवणाबिरि के स्थान पर) इन निर्वाणकाण्डवर्णित स्थानों का उल्लेख किया है। वे उनका भी वर्णन करते हैं किन्तु

पावागिरि नाम का या सुवर्णभद्र का उल्लेख नहीं करते। अतिशयक्षेत्रकाण्ड के तीर्थों में उन्होंने वाराणसी, मथुरा, जम्बूवन, सिरपुर, आगतदेव, हुलगिरि, इन छः स्थानों का वर्णन किया है।

पन्द्रहवीं सदी के लेखक श्रुतसागर की बोधप्राभृत टीका में गाथा २७ के विवरण में कैलास, चम्पापुर, पावापुर, ऊर्जयन्त, समेदाचल, शत्रुंजय, पावागिरि (गुजरात में), तुगीगिरि, गजपथ, सिद्धकूट, तारापुर, मेढगिरि, चूलगिरि, द्रोणगिरि, नर्मदातट, कुंथुगिरि, चलनानदीतट, कोटिशिला इन तीर्थों का नामोल्लेख है तथा अतिशयक्षेत्रकाण्ड के तीर्थों में से वाराणसी, हस्तिनापुर तथा जम्बूवन का नामोल्लेख है। इन्हीं की पत्याविधानकथा की प्रशस्ति में ईडर के मन्त्री भोजराज की कन्या पुत्तलिका द्वारा तुगी और गज-पन्थ की यात्रा का भी वर्णन है।

पन्द्रहवीं सदी में ही अभयचन्द्र ने मांगीतुंगी के विषय में एक विस्तृत गीत (जिसमें मुख्यतः श्रीकृष्ण के अन्त व बलराम के स्वर्गवास की कथा है) लिखा है। इसमें ४४ पद्य हैं।

पूर्वोक्त गुणकीर्ति ने भी ५ पद्यों का एक गीत तुगी-गिरि के विषय में लिखा है।

सोलहवीं सदी के सुमतिसागर की जम्बूद्वीपजयमाला तथा तीर्थजयमाला में कुल ४० तीर्थ स्थानों के नाम उल्लिखित हैं। इनमें कैलाश, समेदाचल, चम्पापुर, पावापुर, गजपन्थ, तुगी, शत्रुंजय, ऊर्जयन्त, मुक्तागिरि, तारगा (तथा कोटिशिला), वासीनयर (कुंथुगिरि के लिए), रेवातट तथा विध्याचल (चूलगिरि के लिए) ये तेरह तीर्थ निर्वाणकाण्ड-वर्णित भी हैं। इन्होंने अन्तरिक्ष (सिरपुर के पार्श्वनाथ) का भी नामोल्लेख किया है।

सोलहवीं सदी के लेखक ज्ञानकीर्ति ने समेदाचल पर राजा मानसिंह के मन्त्री साहू नातू द्वारा जिनमन्दिरों के निर्माण का वर्णन किया है। यह उनके यशोधररचित की प्रशस्ति में प्राप्त होता है।

सत्रहवीं सदी के लेखक सोमसेन की पुष्पाजलि जयमाला में कैलास, चम्पापुर, पावापुर, संमेदाचल, गिरनार बडवानी, गजपन्थ, शत्रुंजय, मुक्तागिरि, नर्मदातट ये निर्वाणकाण्डवर्णित तथा गोमटदेव एवं अन्तरिक्ष (सिरपुर) :

अतिशयक्षेत्रकाण्डवर्णित तीर्थ उल्लिखित है।

सत्रहवीं सदी के ही लेखक जयसागर की तीर्थजयमाला में कुल ४६ तीर्थों का नामोल्लेख है। इनमें निर्वाणकाण्ड-वर्णित कैलास, समेदाचल, चम्पापुर, पावापुर, गिरिनार, शत्रुजय, वशस्थल, मुक्तागिरि, तुगी, गजपन्थ, तारगा तथा अतिशयक्षेत्रकाण्डवर्णित आगलदेव, गोमटदेव, सिरपुर, हुलगिरि इन तीर्थों के नाम पाये जाते हैं।

सत्रहवीं सदी के ही विश्वभूषण की सर्वत्रैलोक्यजिनालय जयमाला में २६ तीर्थों का उल्लेख है जिनमें सोनागिरि, रेवातट, सिद्धकूट, वडवानी ये तीर्थ निर्वाणकाण्ड-वर्णित तथा अगलदेव, हुलगिरि, गोमटदेव ये अतिशयक्षेत्रकाण्ड वर्णित हैं।

सत्रहवीं सदी में ही मेरुचन्द्र तथा गंगादास द्वारा तुगीगिरि की यात्रा के लिए लिखे गये बलभद्र-अष्टक प्राप्त हुए हैं।

अठारहवीं सदी के प्रारम्भ में कारजा के भ० देवेन्द्रकीर्ति ने गजपन्थ, तुगी, तारगा, शत्रुजय तथा गिरिनार की यात्रा सप्तसहित की थी। उन्होंने तत्संबन्धी छप्पयों में यात्रातिथियाँ भी दी हैं। उनके शिष्य जिनसागर की लहु-अकुश कथा में राम-पुत्रों के निर्वाणस्थान पावागिरि का उल्लेख है।

सत्रहवीं सदी में घनजी ने तथा अठारहवीं सदी में राघव ने मुक्तागिरि की जयमाला व आरती की रचना की थी। उनमें पहली मस्कृतमिश्रित हिन्दी में तथा दूसरी मराठी में है।

कारजा के भ० देवेन्द्रकीर्ति के शिष्य पंडित दिलमुख ने सन् १८३७ में अकृत्रिम चैत्र्यालय जयमाला में पावागिरि (दोनों), द्रोणागिरि तथा सिद्धवरकूट को छोड़कर निर्वाणकाण्ड वर्णित सभी तीर्थों का नामोल्लेख किया है।

उसी समय के लगभग कवीन्द्रमेवक की मराठी तीर्थ-वन्दना में कैलास, शत्रुजय, मागीतुगी, गिरिनार, मुक्तिगिरि तथा गजपन्थ का उल्लेख प्राप्त होता है।

७. पूर्वाधार :—

निर्वाणकाण्ड में वर्णित पहले पाँच तीर्थों का (कैलास चम्पापुर पावापुर, ऊर्जयन्त तथा समेदाचल का) वर्णन पद्मचरित, हरिवंशपुराण, महापुराण आदि अनेक पुरातन

ग्रन्थों में मिलता है।

बलराम के स्वर्गवास स्थान में तुगीगिरि का तथा पाण्डवों के निर्वाणस्थान शत्रुजय का वर्णन भी हरिवंश-पुराण तथा महापुराण में प्राप्त है। किन्तु राम, हनुमान आदि का तुगीगिरि से सम्बन्ध निर्वाणकाण्डकर्ता के पहले किसी ने नहीं जोड़ा था।

गजध्वज पर्वत के समीप पहले बलभद्र श्रीविजय के समवसरण का उल्लेख उत्तरपुराण में मिलता है। किन्तु उनका तथा अन्य छः बलभद्रों का निर्वाण गजपन्थ पर हुआ यह मान्यता निर्वाणकाण्ड के पहले उपलब्ध नहीं होती।

वरदत्त के निर्वाणस्थान तथा वरांग के स्वर्गवास-स्थान के रूप में मणिमान पर्वत का वर्णन जटासिंहनन्दि के वरागचरित में मिलता है। इसका जो स्थान उन्होंने बतलाया है वह वर्तमान तारंगा से मिलता-जुलता है। यहाँ पर गुजरात के आठवीं सदी के राजा वत्सराज ने तारादेवी का मन्दिर बनवाकर तारापुर ग्राम बसाया था। निर्वाणकाण्ड में मणिमान पर्वत का नाम न देकर केवल इतना बताया है कि यह स्थान तारापुर के निकट है इस तरह दोनों वर्णनों में कोई विरोध नहीं है।

लव कुश के निर्वाणस्थान का कोई वर्णन निर्वाणकाण्ड के पूर्व नहीं मिलता। यह बात सवणागिरि, सिद्धवरकूट, पावागिरि (मुवर्णभद्र-मिद्धिस्थान), मेढगिरि तथा रिम्मिन्द गिरि के बारे में भी है।

इन्द्रजित तथा कुम्भकर्ण का निर्वाणस्थान पद्मचरित अनुसार क्रमशः विध्य पर्वत के महावन में मेघरव तथा नर्मदा के किनारे पिठरक्षन यह था। निर्वाणकाण्ड में दोनों का निर्वाण वडवानी के पास चूलगिरि पर बताया है। चूलगिरि विन्ध्य पर्वत के महावन में भी है तथा नर्मदा के तीरे के पास भी है। इस तरह पद्मचरित के वर्णन से यह मिलता-जुलता है। हो सकता है कि पुराने समय में चूलगिरि के ही आसपास के दो स्थान मेघरव तथा पिठरक्षन के नाम से प्रसिद्ध हों तथा निर्वाणकाण्डकर्ता ने दोनों के लिए समीपवर्ती चूलगिरि का नाम दे दिया हो (जैसे कि मणिमान पर्वत के लिए उन्होंने तारापुर का नाम दिया है)।

द्रोणमत पर्वत पर गुरुदत्त की सिद्धिप्राप्ति का उल्लेख शिवार्यकृत भगवती आराधना तथा हरिवेण के वृहत्कथा-कोश में आता है। इसी को निर्वाणकाण्ड में द्रोणगिरि कहा है। हरिवेण के अनुसार यह लाट देश (दक्षिण गुजरात) में था।

वशस्थलपुर के समीप राम द्वारा देशभूषण-कुलभूषण के उपसर्ग के निवारण की कथा पञ्चचरित में आती है। वहाँ इस पर्वत का नाम वशगिरि अथवा रामगिरि बतलाया है। निर्वाणकाण्ड में इन नामों के स्थान पर कुन्धुगिरि नाम दिया है जो सम्भवतः उसी प्राचीन स्थान के लिए उनके समय में अधिक प्रचलित था।

कोटिशिला का वर्णन भी पञ्चचरित तथा हरिवश-पुराण में आता है। किन्तु यशोधर राजा के पुत्रों के निर्वाणस्थान के रूप में निर्वाणकाण्ड में इसका जो परिचय दिया है वह उससे पूर्व उपलब्ध नहीं होता। निर्वाणकाण्ड में उसे कालिगदेश में बतलाया है। इसके स्थान के बारे में विभिन्न ग्रन्थकर्ताओं में मतभेद है।

संस्कृत निर्वाणभक्ति (जो टीकाकार प्रभाचन्द्र के कथनानुसार पादपूज्य स्वामी की कृति है तथा आधिकाश विद्वान् पादपूज्य को पूज्यपाद देवन्द का ही नामान्तर समझते हैं) में कैलास, चम्पापुर, पावापुर, ऊर्जयन्त, सम्मेदाचल, शत्रुजय, तुंगी, गजपथ, सुवर्णभद्र का सिद्धिस्थान नदीतट (नदी का नाम नहीं बतलाया है), द्रोणमत, मेढक, वरसिद्धकूट, ऋष्यद्रि, विंध्य, इन निर्वाणकाण्डवर्णित तीर्थों का उल्लेख मिलता है—इस तरह निर्वाणकाण्ड के पूर्वाधारों में यह सबसे मुख्य रचना है। इसमें पहले पाँच स्थानों में तीर्थकरों के निर्वाण का उल्लेख है। शत्रुजय में पाण्डवों के तुंगी में बलभद्र के तथा नदीतट पर सुवर्णभद्र के सुगतिप्राप्ति का भी उल्लेख है। शेष स्थानों के केवल नाम हैं।

निर्वाणकाण्ड में आठ कोटि यादव राजा (गजपन्था), पाँच कोटि लाट राजा (पावागिरि), आठ कोटि द्रविण राजा (शत्रुजय) तथा तारापुर के निकट ३॥ कोटि, ऊर्जयन्त पर ७२ कोटि सातसी, तुंगीगिरि पर ९९ कोटि रेवातट पर २॥ कोटि, सवणागिरि पर २॥ कोटि, सिद्धवरकूट पर ३॥ कोटि, मेढगिरि पर ३॥ कोटि मुनियों की

निर्वाणप्राप्ति की चर्चा की है इसका भी कोई पूर्वाधार प्राप्त नहीं है।

८ निर्वाणकाण्ड का रचना काल :—

ऊपर वराग के निर्वाणस्थान की चर्चा में बतलाया है कि सातवीं सदी में जटासिंहनदि ने यह स्थान मणिमान पर्वत बतलाया है तथा आठवीं सदी में यहाँ तारापुर ग्राम बसाया गया था जिसका नाम निर्वाणकाण्ड में मिलता है। इस पर से प्रतीत होता है कि यह रचना आठवीं सदी के बाद की है। प्रभाचन्द्र की दशभक्तिटीका में संस्कृत निर्वाणभक्ति की टीका है किन्तु निर्वाणकाण्ड की नहीं है इस पर से प्रतीत होता है कि यह दसवीं सदी के बाद की रचना होनी चाहिए। यदि अतिशयक्षेत्रकाण्ड के कर्ता और निर्वाणकाण्ड के कर्ता एक ही हों तो भी उनका समय दसवीं सदी के बाद का होगा, क्योंकि अतिशयक्षेत्रकाण्ड में उल्लिखित सिरपुर के पादवेनाथ की स्थापना दसवीं सदी में ही हुई थी। ऊपर निर्वाणकाण्ड के रूपान्तरों का जो परिचय दिया है उसमें सर्वप्रथम रूपान्तरकार उदयकीर्ति का समय तेरहवीं-चौदहवीं सदी बतलाया है। अतः निर्वाणकाण्ड ग्यारहवीं या बारहवीं सदी की रचना प्रतीत होती है।

९ उपसंहार :—

प० नाथूराम जी प्रेमी तथा डा० हीरालाल जी जैन ने सर्वप्रथम सन् १९३९ में जैन सिद्धान्त भास्कर में हमारे तीर्थक्षेत्र शीर्षक विस्तृत लेख में निर्वाणकाण्ड की समीक्षा की थी। बाद में प्रेमी जी के जैन साहित्य और इतिहास में भी यह निबन्ध प्रकाशित हुआ है। ऊपर निर्वाणकाण्ड के जो पूर्वाधार बताये हैं वे बहुत कुछ इसी निबन्ध से लिए गये हैं। किन्तु उक्त निबन्ध लिखते समय सम्भवतः निर्वाणकाण्ड के जिन रूपान्तरों का हमने परिचय दिया है वे उपलब्ध नहीं थे। हमने तारगा, चूलगिरि, द्रोणगिरि तथा कुन्धुगिरि के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये हैं वे भी उपर्युक्त निबन्ध से भिन्न हैं।

इस निबन्ध में चर्चित कृतियों के मूल पद्य हमारे तीर्थवन्दनसंग्रह (जीवराज जैन ग्रन्थमाला, शोलापुर द्वारा १९६५ में प्रकाशित) में पूर्णतः सकलित हैं। यहाँ विस्तार-भय से उन्हें उद्धृत नहीं किया गया है।

भारतीय दर्शनों में प्रमाणभेद की महत्त्वपूर्ण चर्चा

डा० दरबारीलाल कोठिया

भारतीय दर्शनों में प्रमाणभेद की महत्त्वपूर्ण एवं ज्ञातव्य चर्चा उपलब्ध है। सभी दर्शनों ने उस पर विमर्श किया है। प्रस्तुत में विचारणीय है कि प्रमाण, जो वस्तु-व्यवस्था का मुख्य साधन है, कितने प्रकार का है और उसके भेदों का सर्वप्रथम प्रतिपादन करनेवाली परम्परा क्या है? दार्शनिक ग्रन्थों का आलोडन करने पर ज्ञात होता है कि प्रमाण के प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द इन चार भेदों की परिगणना करने वाले न्यायसूत्र-कार गौतम से भी पूर्व प्रमाण के अनेक भेदों की मान्यता रही है, क्योंकि उन्होंने^१ ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव इन चार का स्पष्ट रूप में उल्लेख करके उनकी अतिरिक्त प्रमाणता की समीक्षा की है तथा शब्द में ऐतिह्य का और अनुमान में शेष तीन का अन्तर्भाव प्रदर्शित किया है। प्रशस्तपादने^२ प्रत्यक्ष और अनुमान इन दो प्रमाणों का समर्थन करते हुए उल्लिखित शब्द आदि प्रमाणों का इन्हीं दो में समावेश किया है। तथा चेष्टा, निर्णय, आर्प (प्राप्तिभ) और सिद्धदर्शन को भी इन्हीं के अन्तर्गत मिद्ध किया है।

प्रशस्तपाद में पूर्व उनके सूत्रकार कणादने^३ प्रत्यक्ष और लैङ्गिक के अतिरिक्त अन्य प्रमाणों की कोई सम्भा-

वना या गौतम की तरह उनके समावेशादि की चर्चा नहीं की। इससे प्रतीत होता है कि प्रमाण के उक्त दो भेदों की मान्यता प्राचीन है। चार्वाक के मात्र अनुमान-समीक्षण और केवल एक प्रत्यक्ष के समर्थन से भी यही अवगत होता है। जो हो, इतना तथ्य है कि प्रत्यक्ष और अनुमान इन दो को वैशेषिकों^४ और बौद्धों ने^५; प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द इन तीन को सांख्यों ने^६; उपमान सहित उक्त चार को नैयायिकों ने^७ और अर्थापत्ति तथा अभाव सहित उक्त छह प्रमाणों को जैमिनीयों (मीमांसकों) ने^८ स्वीकार किया है। आगे चलकर जैमिनीय दो सम्प्रदायों में विभक्त हो गये—भाट्ट और प्राभाकर। भाट्टों ने तो छहों प्रमाणों को मान्य किया। पर प्राभाकरो ने अभाव को छोड़ दिया यथा शेष पांच प्रमाणों को स्वीकार किया। इस तरह विभिन्न दर्शनों में प्रमाण भेद की मान्यताएँ प्राप्त होनी हैं^९।

जैन दर्शन में प्रमाण के भेद :—

जैन दर्शन में भी प्रमाण के सम्भाव्य भेदों पर विस्तृत

१. प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दा प्रमाणानि ।
—गौतम अक्षपाद, न्यायसू० १।१।३।
२. न, चतुष्टयम्, ऐतिह्यार्थापत्तिसम्भवाभावप्रामाण्यात् ।
३. शब्द ऐतिह्यानर्थान्तरभावादनुमानेऽर्थापत्तिसम्भवाभावानर्थान्तरभावाच्चाप्रतिषेधः ।
—वही, २।२।१।२।
३. शब्दादीनामप्यनुमानेऽन्तर्भाव समानविधित्वात् ।....।
—प्रश० भ।० पृ० १०६-१११। १२७-१२८।
- ४, ५. तयोनिपत्तिः प्रत्यक्षनैङ्गिकाम्याम् ।
—वैशेषि० सू० १०।१।३।

६. प्रत्यक्षमनुमान च प्रमाण द्विद्विषयम् ।
प्रमेयं तत्प्रयोगार्थं न प्रमाणान्तरं भवेत् ॥
—दिङ्नाग, प्रमाणसमु० (प्र० परि०) का० २, पृ० ४।
७. दृष्टमनुमानमाप्तवचनं च सर्वप्रमाणमिद्धत्वात् ।
त्रिविधं प्रमाणमिष्टं प्रमेयसिद्धिं प्रमाणाद्धि ॥
—ईश्वरकृष्ण, सा० का० ४।
८. अक्षपाद, न्यायसू० १।१।३।
९. शाबरभा० १।१।५।
१०. जैमिनेः षट्प्रमाणानि चत्वारि न्यायवेदिनः ।
सांख्यस्य त्रीणिवाच्यानि द्वे वैशेषिकबौद्धयोः ॥
—अनन्तवीर्य, प्रमेयरत्नमा० २।२ के टिप्पण में उद्धृत पद्य, पृ० ४३।

ऊहापोह उपलब्ध है। भगवती सूत्र में चार प्रमाणों का उल्लेख है—१. प्रत्यक्ष, २. अनुमान, ३. उपमान और ४. आगम। स्थानागसूत्र में प्रमाण के अर्थ में हेतु शब्द का प्रयोग करके उसके उपर्युक्त प्रत्यक्ष विचार भेदों का निर्देश किया है। भगवती और स्थानागका यह प्रतिपादन लोक सग्रह का सूचक है।

आगमो मे मूलतः ज्ञान-मीमासा ही प्रस्तुत एव विवक्षित है। षट्खण्डागम में विस्तृत ज्ञान-मीमासा दी गयी है। वहाँ तीन प्रकार के मिथ्याज्ञानों और पाँच प्रकार के सम्यग्ज्ञानों का निरूपण किया गया है तथा उन्हें वस्तु-परिच्छेदक बताया गया है। यद्यपि वहाँ प्रमाण और प्रमाणाभास शब्द अथवा उस रूप में विभाजन पुष्टिगोचर नहीं होता। तथापि एक वर्ग के ज्ञानों को सम्यक् और दूसरे वर्ग के ज्ञानों को मिथ्या प्रतिपादित करने से अवगत होता है कि जो ज्ञान सम्यक् कहे गये हैं वे सम्यक् परिच्छित्ति कराने से प्रमाण तथा जिन्हें मिथ्या बताया गया है वे मिथ्या ज्ञान कराने से अप्रमाण (प्रमाणाभास) इष्ट है। हमारे इस कथन की सम्पुष्टि तत्त्वार्थसूत्रकार के निम्न प्रतिपादन से भी होती है।

१. 'गोयमा—से कि त पमाण ? पमाणे चउव्विहे पणत्ते—तं जहा पच्चक्खे अणुमाणे ओवम्मे आगमे जहा अणुओगदारे तहा णेयव्व पमाण।
—भ० सू० ५।३।१६१-१६२।
२. अहवा हेऊ चउव्विहे पणत्ते, त जहा पच्चक्खे अणुमाणे ओवम्मे आगमे।
—स्था० सू० ३३८।
३. णाणाणुवादेण अत्थि मदि-अण्णाणी सुद-अण्णाणी विभगणाणी आभिणिवोहिय णाणी सुद-णाणी ओहि-णाणी मणपज्जव-णाणी केवलणाणी चेदि। (ज्ञान की अपेक्षा मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान, विभगज्ञान, आभिनिबोधक-ज्ञान, श्रुत-ज्ञान, अवधि-ज्ञान, मनःपर्यय-ज्ञान और केवल ज्ञान ये केवल आठ ज्ञान हैं। इनमें आदि के तीन ज्ञान मिथ्याज्ञान और अन्तिम पाँच ज्ञान सम्यग्ज्ञान हैं।)
—भूतबली-पुष्पदन्त, षट्ख० १।१।१५।

मतिश्रुतावधिमनः पर्ययकेवलानि ज्ञानम्। तत्प्रमाणे।
मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल ये पाँच ज्ञान सम्यग्ज्ञान हैं और वे प्रमाण हैं।

आशय यह कि षट्खण्डागम में प्रमाण और प्रमाणाभास रूप से जानों का विवेचन होने पर भी उस समय की प्रतिपादन शैली के अनुसार जो उसमें पाँच ज्ञानों को सम्यग्ज्ञान और तीन ज्ञानों को मिथ्याज्ञान कहा गया है। वह प्रमाण तथा प्रमाणाभास का अवबोधक है। राज-प्रशनीय, नन्दीसूत्र और भगवती सूत्र में भी ज्ञानमीमासा पायी जाती है। इस प्रकार सम्यग्ज्ञान या प्रमाण के मति, श्रुत, आदि पाँच भेदों की परम्परा आगम में वर्णित है।

परन्तु इतर दर्शनों के लिए वह अज्ञान एव अलौकिक जैसी रही, क्योंकि अन्य दर्शनों के प्रमाण-निरूपण के साथ उसका मेल नहीं खाता। अतः ऐसे प्रयत्न की आवश्यकता थी कि आगम का समन्वय भी हो जाय और अन्य दर्शनों के प्रमाण-निरूपण के साथ उसका मेल भी बैठ जाय। इस दिशा में सर्व प्रथम दार्शनिक रूप से तत्त्वार्थसूत्रकार ने समाधान प्रस्तुत किया। उन्होंने तत्त्वार्थसूत्र में ज्ञान-मीमासा को निबद्ध करते हुए स्पष्ट कहा कि जो मति आदि पाँच ज्ञानरूप सम्यग्ज्ञान वर्णित हैं वह प्रमाण हैं और मूल में वह दो भेद रूप हैं—१. प्रत्यक्ष और २. परोक्ष। अर्थात् आगम में जिन पाँच ज्ञानों को सम्यग्ज्ञान कहा गया है वे प्रमाण हैं तथा उनमें मति और श्रुत ये दो ज्ञान इन्द्रियादि पर सापेक्ष होने से परोक्ष तथा अवधि, मनःपर्यय और केवल ये तीन पर सापेक्ष न होने एवं आत्म मात्र की अपेक्षा से होने के कारण प्रत्यक्ष

४. आ० गृह्यपिच्छ, त० सू० १।६, १०।
५. वैशेषिक दर्शन के प्रवर्तक कणाद ने भी इसी शैली से बुद्धि के अविद्या और विद्या ये दो भेद बतलाकर अविद्या के सशय आदि चार तथा विद्या के प्रत्यक्षादि चार कुल आठ भेदों की परिगणना की है। तथा दूषित ज्ञान (मिथ्याज्ञान) को अविद्या और निर्दोष ज्ञान (सम्यग्ज्ञान) को विद्या कहा है।
—देखिए, वै० सू० ६।२।७, ८, १० से १३ तथा १०।१।३।
६. त० सू० १।६, १०, ११, १२।

प्रमाण है। आचार्य गृह्यपिच्छ की यह प्रमाण द्वय की योजना इतनी विचार युक्त और कौशलपूर्ण हुई कि प्रमाणों का आनन्त्य भी इन्हीं दो में समाविष्ट हो जाता है। उन्होंने^१ अति संक्षेप में आगमोक्त मति, स्मृति, सज्ञा (प्रत्यभिज्ञान), चिन्ता (तर्क) और अभिनिबोध (अनुमान) को भी प्रमाणान्तर स्वीकार करते हुए उन्हें मतिज्ञान कह कर 'आद्ये परोक्षम्'^२ सूत्र द्वारा उनका परोक्ष प्रमाण में समावेश किया; क्योंकि ये सभी ज्ञान परसापेक्ष है। वैशेषिकों और बौद्धों ने भी प्रमाण द्वय स्वीकार किया है, पर उनका प्रमाण द्वय प्रत्यक्ष और अनुमान रूप है तथा अनुमान में स्मृति, प्रत्यभिज्ञान और तर्क का समावेश सम्भव नहीं है। अतः आ० गृह्यपिच्छ ने उसे स्वीकार न कर प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप प्रमाण द्वय का व्यापक विभाग प्रतिष्ठित किया। उत्तरवर्ती जैन तात्त्विकों के लिए उनका यह विभाग आधार सिद्ध हुआ। प्रायः सभी ने अपनी कृतियों में उसी के अनुसार ज्ञानमीमासा और प्रमाण मीमासा का विवेचन किया है। पूज्यपाद ने^३ न्यायदर्शन आदि दर्शनों में पृथक् प्रमाण के रूप में स्वीकृत उपमान, अर्थापत्ति और आत्म्य आदि प्रमाणों को परसापेक्ष होने से परोक्ष में अन्तर्भाव किया और तत्त्वार्थसूत्रकार ने प्रमाण द्वय का समर्थन किया है। अकलङ्क ने^४ भी इसी प्रमाण द्वय की सम्पुष्टि की, साथ ही नये आलोक में प्रत्यक्ष और परोक्ष की परिभाषाओं तथा उनके भेदों का भी बहुत स्पष्टता के साथ प्रतिपादन किया है। परोक्ष की स्पष्ट सख्या^५ सर्वप्रथम उनके ग्रन्थों में ही उपलब्धि होती है और

प्रत्येक के लक्षण भी वही मिलते हैं। लगता है कि गृह्यपिच्छ और अकलङ्क ने जो प्रमाण निरूपण की दिशा प्रदर्शित की उसी पर उत्तरवर्ती जैन तात्त्विक चले हैं। विद्यानन्द,^६ माणिक्यनन्दि,^७ हेमचन्द्र,^८ और धर्मभूषण^९ प्रभृति तात्त्विकों ने उनका अनुगमन किया और उनके कथन को पल्लवित किया।

स्मरणीय है कि आ. गृह्यपिच्छ के इस प्रत्यक्ष-परोक्ष प्रमाण द्वय विभाग से कुछ भिन्न प्रमाणद्वय का प्रतिपादन भी हमें जैन दर्शन में प्राप्त होता है। वह प्रतिपादन है स्वामी समन्तभद्र का। स्वामी समन्तभद्र ने प्रमाण (केवल-ज्ञान) का स्वरूप युगवत्सर्वभासी तत्त्वज्ञान बतलाकर ऐसे ज्ञान को अक्रमभावी और क्रमशः अल्पपरिच्छेदी ज्ञान को क्रमभावी कहकर प्रमाण को दो भागों में विभक्त किया है। समन्तभद्र के इन दो भेदों में जहाँ अक्रमभावी मात्र केवल है और क्रमभावी मति, श्रुत, अवधि और मन पर्यय ये चार ज्ञान अभिमत हैं वहाँ गृह्यपिच्छ के प्रत्यक्ष और परोक्ष इन दो प्रमाण भेदों में प्रत्यक्ष तो अवधि, मन पर्यय और केवल ये तीन ज्ञान हैं तथा परोक्ष मति और श्रुत ये दो ज्ञान दृष्ट हैं। प्रमाण भेदों की इन दोनों विचार-धाराओं में वस्तुभूत कोई अन्तर नहीं है। गृह्यपिच्छ का निरूपण जहाँ ज्ञान कारणों की सापेक्षता और निरपेक्षता पर आधारित है वहाँ समन्तभद्र का प्रतिपादन विषयाधिगम के क्रम और अक्रम पर निर्भर है। पदार्थों का क्रम से होनेवाला ज्ञान क्रमभावी और युगवत् होने वाला अक्रम-भावी प्रमाण है। पर इस विभाग की अपेक्षा गृह्यपिच्छ का प्रमाण द्वय विभाग अधिक प्रसिद्ध और तात्त्विकों द्वारा अनुसृत हुआ है।

१. मतिः स्मृतिः सज्ञा चिन्ताअभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम्।

—त० सू० १।१४। २. वही, १।११।

३. अत उपमानागमादीना मत्रैवान्तर्भावः।

—पूज्यपाद, स० सि० १।११।

४. प्रत्यक्ष विशद ज्ञान मुख्यसव्यवहारतः।

परोक्ष शेषविज्ञान प्रमाणे इति सग्रहः॥

—अकलङ्क, लघीय, १।३।

ज्ञानस्यैव विशदनिर्भासित प्रत्यक्षत्वम्, इतरस्य परोक्षता। —वही, स्व० वृ० १।३।

५. ज्ञानमाद्य मतिः सज्ञा चिन्ता चाभिनिबोधकम्।

प्राङ् नामयोजनात् शेष श्रुत शब्दानुयोजनात्॥

—वही, १।११ तथा ३।६१।

६. विद्यानन्द, प्र० प० पृ० ६६।

७. माणिक्यनन्दि, परो० मु० २।१, २ तथा ३।१, २

८. हेमचन्द्र, प्र० मी० १।१।६, १० तथा १।२।१, २

९. धर्मभूषण, न्यायदी० प्रत्य० प्रका०, पृ० २३ तथा परो० प्रका० पृ० ५३

१०. तत्त्वज्ञान प्रमाण ते युगपत्सर्वभासनम्।

क्रमभावि च यज्ज्ञान स्याद्वादनयसंस्कृतम्॥

समन्तभद्र, आप्तमी० का० १०१

मुस्लिम युगीन मालवा का जैन पुरातत्व

तेजसिंह गोड़, एम. ए. रिसर्च स्कालर

संवत् १३६७ के पश्चात् मालवा में राजपूतों का प्रभाव पहले जैसा नहीं रहा। जब जयसिंह देव चतुर्थ मालवा में राज्य कर रहा था तब मुसलमानों ने बड़ा उत्पात मचाया था। एक प्रकार से जयसिंह देव चतुर्थ अन्तिम राजपूत राजा था। राजपूत कालीन जैन पुरातत्व के विषय में मैं अपने एक निबन्ध^१ के द्वारा प्रकाश डाल चुका हूँ। इस लघु निबन्ध में मुस्लिम युगीन मालवा के जैन पुरातत्व पर प्रकाश डालने का प्रयास किया जा रहा है।

जयसिंह देव चतुर्थ के उपरान्त मालवा के मुसलमान शासकों के अधीन चला गया। इस काल में जैन मन्दिरों का निर्माण प्रचुर मात्रा में नहीं हो पाया तथापि कहीं-कहीं इस काल के बने हुए मन्दिरों के भग्नावशेष उपलब्ध होते हैं जो इस प्रकार हैं :—

(१) कोठड़ी :—यह ग्राम मन्दसौर जिले की गरोठ तहसील से २४ मील की दूरी पर स्थित है। यहाँ पर १४वीं शताब्दी का एक जैन मन्दिर है जो बाद में ब्राह्मण धर्म के मन्दिर रूप में परिवर्तित कर लिया गया है^२।

(२) सामौन :—यह ग्राम गुना जिले में स्थित है। यहाँ हिन्दू व जैन मन्दिरों के समूह उपलब्ध हुए हैं। मूर्तियाँ भी मिली हैं तथा मन्दिरों में नक्काशी का काम भी है^३।

(३) चैनपुरा :—यह ग्राम मन्दसौर जिले में है। यहाँ एक दीर्घकाय जैन प्रतिमा मिली है। यह प्रतिमा आजकल भानपुरा में है^४।

१. अनेकान्त ।

२. Bibliographv of Madhyabharat Part I पृष्ठ 29.

३. वही पृष्ठ २४ ।

४. Bibliography of Madhya Bharat part I पृष्ठ ८ ।

(४) छपेरा :—यह ग्राम जिला रायगढ़ (ब्यावरा) में है। यहाँ कुछ जैन मूर्तियाँ मिली हैं जिन पर कुछ लेख भी उत्कीर्ण हैं^५।

इसके अतिरिक्त इस युग की कुछ और जैन प्रतिमाएँ मिलती हैं जिन पर लेख उत्कीर्ण हैं। लेख में अंकित संवत् के आधार पर वे प्रतिमाएँ इस काल की प्रमाणित होती हैं। एक प्रतिमा पर स० ६१२ का लेख उत्कीर्ण है। इसमें इस मूर्ति की प्राचीनता सिद्ध होती है; किन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। श्री नन्दलाल लोढा^६ का कहना है कि इस लेख में संवत् ६१२ विचारणीय है, क्योंकि इस समय माँडवगढ़ के अस्तित्व का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं, उपलब्ध प्रमाणों से तो सन् ६७१ के महाराजा वाक्पति-राज के पुत्र वैरीसिंह की अधीनता में माँडवगढ़ का होना प्रमाणित हुआ है। इसके पहले के प्रमाण अभी मिले नहीं हैं। अतः यह शायद स० १६१२ सम्भावित दिखता है। इन जमाने में माँडवगढ़ के महमूद खिलजी के दीवान चाँदाशाह का उल्लेख इतिहास में मिलता है। सम्भव है कि इस लेख में धनकुबेर के विशेषण से उल्लिखित शा० चन्द्रसिंह शायद ये ही चाँदाशाह हों। यह प्रतिमा तारापुर तीर्थ से सम्बन्धित है और लेख निम्नानुसार है —

“सन् ६१२ वर्ष शुभ चैत्रमासे शुक्ले च पंचम्या तिथौ भोमवामरे श्रीमडपदुर्गे मध्यभागे तारापुर स्थित पादर्वनाथ प्रसादे गगनचुम्बी—(बि) शिखरे श्री चन्द्रप्रभ बिम्बस्य प्रतिष्ठा कार्या प्रतिष्ठाकर्ता च धनकुबेर शा० चन्द्रसिंहस्य भार्या जमुनापुत्र श्रेयार्थ प्र० जगच्चन्द्र सूरिभिः^७।”

मालवा के सुन्तान श्री गयासुद्दीन के समय का एक

५. वही पृष्ठ ६ ।

६. माँडवगढ़ तीर्थ पृष्ठ ४३-४४ ।

७. जैन तीर्थ सर्वसंग्रह भाग २ पृष्ठ १ ।

लेख मिलता है जो तारापुर तीर्थ निर्माण-काल पर प्रकाश डालता है तथा जिससे यह प्रमाणित हो जाता है कि उप-युक्त लेख से उत्पन्न भ्रांति दूर हो जाती। पूरा लेख निम्नानुसार है।—

१॥८०॥ श्रीजिनाय नमः । जयति परमतत्त्वानन्द केली-विलास × त्रिभुवनमहनीयः सत्त्वरूपविधिवासः—२ दलित-विषयदोषोरिक्तजन्मप्रयासः प्रभुरनुपमधामावकृतः श्रीमु-पासः ॥१॥ सवत १२५१ वर्षे...शाके—(३) १४१६... वैसाखसुदी षष्ठी शुक्रवासरे पुनरवसुनक्षत्रे (मालवीन्द्र) सुलताण श्री ग्यासदीन विजय ४ राज्ये । तस्य पुत्र सुलताण श्री तासिरसाही युवराज्ये । मन्त्रीवर माफरकमलिक श्री पुजराज बाधव मुजराज सहिते ॥ श्रीमालजातीय बुहरा-गोत्रे बुहरारणमल्ल भार्या रयणाय । पुत्र बुहरा श्रीपारस भार्याउभय ६ कुलानन्ददायिकी सत्पुत्र रत्नगर्भा...पुत्र बुहरा गोपाल । उभयकुलालंकरण । सुश्रीताभार्या पूनी ७ पुत्र सग्राम जी जा बुहरा सग्राम भार्या करमाई । जी जा भार्या जी वारे । प्रमुख स्वकुटुम्बयुतेन ॥ श्रीभिनमाला ८ वडगच्छे श्रीवादी देवसूरी मनाने । स्वगुरु श्रीवीरदेवसूरीः । तत्पट्टे श्री अमरप्रभसूरी तत्पट्टालकार विजयवता ९ गच्छ नायक पूज्यश्री श्री कनकप्रभसूरीश्वराणाम । उप-देशेन प्रगटप्रतापमत्नेन । परोपकारकरणचतुरेण १० निजभुजोपाजितवित्तव्ययपुण्यकार्य स्वजन्म सफलीकरणेन । राजराजेन्द्रसभा सशोभितेन । सज्जनजन ११ मानसराज-हसेन । श्री शत्रुजयादितीर्थारवतारचतुष्टय पट्ट निर्माप-णेन श्री देवगुरु आत्मपालनतत्परेण । सर्व ॥१२॥ कार्य विदुरेण श्रीमालजाति बुहराणाच विभूषणेन । सर्वदा श्री जिनधर्म सत्कर्मकरण निर्दूषणेन । श्रीमन् १३ मडपाचल निवासीय विजयवत् बुहरा श्रीगोपालेन । मडपपुर्यात् दक्षि-णदिगविभागे तलहट्या श्री तारापुरे स्वपुण्यार्थ मनोवाञ्छित दायक सद्धर्म श्रीसुपाश्वर्ज जिनेन्द्रस्य सर्वजन सजनिताल्हादः सुप्रसादः प्रादादः कारितः १५ सा गोपालः शीलाभरण-विलसद्वृत्ति रमलो विनीतः प्रजावान् विविधमुकृत्तारंभ-

निपुणः जिनाधीनः स्वांतः १६ स्वगुरुचरणाधनपरः । पुनी-भार्या मुक्तोनुभवतिग्रह स्वाश्रयमुख ॥१॥ चिर नदत् ॥ सर्व शुभ भवतु ॥ श्रीरस्तु ॥

इस युग में भी बड़े-बड़े पदों पर कुछ जैनों नियुक्त थे । उनमें सग्रामसिंह सोनी, चादाशाह, जीवणशाह, पुज-राज, मन्त्री मेघराज और जीवनराज आदि आदि । सग्रामसिंह सोनी के द्वारा मक्सी पाशवंताथ तीर्थ का निर्माण हुआ, ऐसा उल्लेख मिलता है ।

चन्देरी का चौबीसी जैन मन्दिर भी उल्लेखनीय है । इस मन्दिर का निर्माण विक्रम सं० १८६३ अर्थात् सन् १८६३ में हुआ था । और इसके बाद के भी अनेक उदा-हरण हमें मिल सकते हैं ।

चूँकि इस काल में निर्माण के स्थान पर तोड़-फोड़ एवं विध्वंस अधिक हुआ है । इसके प्रमाण यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं तथा इतिहास भी इसका साक्षी है । अनेक देवल्यों को मुसलमान शासकों ने मस्जिद में परिवर्तित कर लिया है और जिसके प्रमाण हमें बगैर मिलते हैं । श्री गणेश-दत्त शर्मा 'इद्र' का कहना है, "आगरा की जामामस्जिद जिसे "होशंगशाही मस्जिद" भी कहते हैं, एक जैन मन्दिर तोड़कर बनवाई गई । इस मस्जिद में उस समय का एक शिलालेख भी है, जो फारसी भाषा का होने से ठीक-ठीक पढ़ा और समझा नहीं जा सका ।" उज्जैन की बिना बीक की मस्जिद के विषय में श्री ब्रजकिशोर चतुर्वेदी का कथन है, "यह मस्जिद अनन्तपेठ में एक जैन मन्दिर को तोड़कर सन् १३९७ ई० में मालव के सूबेदार दिलावर खान गौरी ने बनवाई थी ।" ये तो साधारण से उदा-हरण हैं । यदि केवल मन्दिर परिवर्तन के प्रकरण को लेकर समस्त भारतवर्ष में अनुसन्धान किया जाय तो हमें इस प्रकार के अनेक प्रमाण मिल सकते हैं ।

१. माडवगढ तीर्थ पृष्ठ २६

२. Annual Report of the Archaeological Deptt Gwalior State for 1924-25. PP. 12

३. मध्यभारत सदेश १५ मई १९५४ पृष्ठ ५

४. मस्कृति केन्द्र उज्जयिनी पृष्ठ १४०

१. Parmar Inscriptions-in Dhar State 875-1310 A. D. By C.B. Lele. पृष्ठ ८६-९०

पण्डित शिरोमणिदास विरचित धर्मसार

डा० भागचन्द्र जैन

नागपुर के परवार जैन मन्दिर के हस्तलिखित ग्रन्थों को देखते समय मुझे एक गुटका मिला जिसमें छोटे-मोटे अनेक ग्रन्थों के साथ धर्मसार ग्रन्थ की भी प्रतिलिपि की गई है। पन्नों को पलटने से ऐसा लगा कि यह ग्रन्थ अत्यधिक उपयोगी और महत्वपूर्ण है। भट्टारक सकलकीर्ति के उपदेश से पण्डित शिरोमणि ने इस ग्रन्थ का निर्माण किया। प्रतिलिपि सन् १८२१ की है।

ग्रन्थ का आदि भाग—

ग्रन्थ के प्रारम्भ में जिनेन्द्र भगवान की स्तुति कर पण्डितजी ने अपने आपको भट्टारक सकलकीर्ति का शिष्य बताया और कहा कि उन्हीं के उपदेश से धर्मसार ग्रन्थ की रचना की जा रही है। ग्रन्थ का आदि भाग इस प्रकार है—

वीर जिनेसुर पनऊ देव । इन्द्र नरेंद्र करं सत सेव ॥
अरु बढौ हो गये जिनराय । सुमरत जाके पाप नसाय ॥१
वर्तमान जे जिनवर ईस । कर जोरें पुन नाऊं सीस ॥
जे जिनेन्द्र भवि मुनि कहे । पूजों ते में सुर मुनि महे ॥२
जिनवानी पनऊं धरि भाव । भव-जल पार उतारन नाव ।
पुनि बढौ गौतम गनराय । धर्म भेद जिन दयौ बताय ॥३
आचारज कंदकुंद मुनि भये । पूजौ तमें सुर मुनि भये ।
अरु जे जतिवर भये अपार । पनऊं जितने भवदधि तार ॥४
सेऊं सकल कीरति के पाय । सकल पुरान कहै समुझाय ॥
जिन सत गुर कहि मगल कहै । धर्मसार सुभ ग्रथहि कहै ॥५
ज्ञानवत जे मति अति जान । ते पुन पंथन सकैं बखान ॥
मे निलज मूरख अति सही । कह न सकौ जैसी गुर कही ॥६
अव यांनु तजौ बहुमद जनै । तौ कह सूरज किरनहिं गनं ॥
जिनवर सेऊं मनवचन काय । धर्मसार कहौ सुखदाय ॥७
भव जीव सुनिकं मन धरै, मूरख सुनि बहु निदा करै ॥
सुगति कुगति को यह सुभाव । गहै जीव मंटौ को भाव ॥८
सुनहु भव्य तुम सुधिरचितुलाइ ।

सुगतिपंथ मारग यहु आइ ॥

आवक जीत वर भेद अपार ।

बरनन करौं सकल हितकार ॥९

ग्रन्थ का अन्तिम भाग

ग्रन्थ के अन्त में पण्डित जी ने अपनी गुरु परम्परा का उल्लेख किया है। साथ ही आचार्य जिनसेन और सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्र का भी स्मरण किया है।

जैसी गनधर बानी कही । सो धर्म मुनि तेंसी सही ॥
नेमिचन्द्र सिद्धांत बखानौ । धर्म भेद पुन तिनतें जानौ ॥७८॥
जिनसेन भये गुन की खान । धरम भेद सब कहौ बखान ॥
तिन तें जतिवर भये अनेक । राखी बहुत धर्म की टेक ॥७९॥
सूरज बिन दीपक भये जंसे । गनधर बिन मुनि जानौ तेंसे ।
जस कीरति भट्टारक संत । धर्म उपदेस दयौ गुनवन्त ॥८०॥
ललितकीर्ति भव जन सुख पाइ । जिनवर नाम जपैं हित लाइ
धर्मकीर्ति भये धर्म विधान । पदमकीर्ति मुनि कहे बखान ॥
जिनके सकलकीर्ति मुनि राजें । जप तप सजम सोल विराजें
ललितकीर्ति मुनि पूरव कहै । तिनके ब्रह्म सुमति पुनि भये ॥
तप आचार धर्म सुभ दीन । जिनवर सौं राखैं निजु प्रीत ।
तिनके सिव भयं परवीन । मिथ्या मति सब कीनी छीन ॥
पडिन कहै जु गंगादास । व्रत तप विद्या सोल निवास ।
पर उपगार हेत अति कियौ । ग्यान दान पुन बहुतन दियौ ॥
तिन्ह के शिष्य सिरामन जान । धर्मसार पुन कहौ बखान ।
करम क्षिपक कारन सो भई । तव यह धर्म भेद विधि ठई ॥

इसके बाद धर्मसार की उपयोगिता प्रदर्शित करते हुए ग्रन्थ समाप्ति के स्थान और काल का दिग्दर्शन कराया है—

जो या पड़ै गुनं चित लाय । समकित प्रगटै ताको आय ।
व्रत आचार जानें सुभ रूप । पुनि जानें सिसार सरूप ८६
जिन महिमा जानें सुखदाई । पुनि सो होइ मुक्ति पुर राई
अक्षर भात तीन तुक होइ । फेरि सुधारी सज्जन सोइ ८७

सिंहरीन नगर उत्तिमसुभनाम । सातिनाथ जिन सोहै धाम ॥
प्रतिमा अनेक जिनवर की असं । दरसन देखत पाप विनासं
श्रावग बसं धर्म के लीन । अपने मारग चले प्रवीन ॥
कुटुंबसहित मिलि हेत जु कियो । तहाँ ग्रन्थ यऊ पूरन कियो ।
क्षत्रपती सोहै सुलतान । औरंगपातसाहि जु बखान ॥
देवीसिंघ राजा तह चन्द । वरिन को दोनो बहु दण्ड ।
प्रजा पुत्र सम पाले घोर । राजन में सोहै बरवीर ॥
तिनके राज यह ग्रन्थबनायो । कहैंसिरोमनि बहु सुख पायो ।
संवत् सत्रासंबत्तीस । बैसाख मास उज्ज्वल पुन दीस ॥
त्रितिया तिथि है समझऊ समेत । भवनजनको मंगलमुखहेत ।
ग्रन्थ सातसे त्रैसठ जान । दोहा चौपही कही बखान ॥

इति धर्मसार ग्रन्थे श्री सकलकीर्ति उपदेसेन पंडित
सिरोमनिदास विरच्यने सप्तम सधि । इसके बाद प्रतिलिपिकार ने समय लिखा है प्रतिलिपि समाप्त होने का—चैत्रसमासे शुक्लपक्षे तिथि ३ बुधे सवत १८२१ भी ...। श्री के बाद कुछ भी नहीं लिखा । अतएव प्रतिलिपिकार का नाम अज्ञात ही है ।

विषय विवेचन

समूचे ग्रन्थ में ७६३ दोहे और चौपाइयाँ हैं । ग्रन्थकार ने उन्हे सात सन्धियों में विभक्त किया है—१. श्रेणिक प्रश्न, २. सम्यक्त्व महिमा, ३. त्रेपनक्रिया वर्णन, ४. कर्म विपाक कथन, ५. योगीश्वर महिमा फल, ६. केवलज्ञान महिमा और ७. पंचकल्याणक विधि ।

१. श्रेणिक प्रश्न :—जैन साहित्य सृजन श्रेणिक प्रश्नों के माध्यम से अधिक हुआ है । श्रेणिक (विम्बसार) भारतीय इतिहास का एक उज्ज्वल व्यक्तित्व है जिसने जैनधर्म और साहित्य की अनुपम सेवा की है । पांडित शिरोमणि ने श्रेणिक से प्रश्न कराये और उनका उत्तर भगवान् महावीर से दिलाये । प्रश्न है—धर्म के भेद क्या है ? स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति कैसे होती है ? जीव चतुर्गति में परिभ्रमण क्यों करता है और वह परिभ्रमण कैसे दूर किया जाता सकता है ?—

श्रेणिक पूछें मनवचकाय । धर्म भेद कहिए समुझाय ।
श्रावक मोक्ष फल कैसे होय । सोउ कहिये हम पर सोय ॥
श्रावक जतिवर भेद है जैसे । सो समुझावें मुनिवर तैसे ।
कैसे जिय चहुंगति में परें । कैसे जिय भवसागर तरें ॥

पंगु ग्रंथ निर्धन धनवन्त । जड़ पंडित पद पावें संत ।
पुत्र हीन बहु रोग अपार । अरु बहु दुख भुगतें संसार ॥

२. सम्यक्त्व महिमा :—धर्म का मूल सम्यक्त्व मानकर पण्डित जी ने उक्त सभी प्रश्नों के उत्तर सम्यक्त्व भूमिका पूर्वक प्रस्तुत किये हैं । सर्वप्रथम उन्होंने बताया कि सम्यक्त्व की उत्पत्ति कैसे होती है और उसके बिना जीव क्यों भटकता है । इस प्रसंग में मूढता, मद, शकादिक दोषों का तथा उनके अतिचारों और पंच मिथ्यात्वों का वर्णन है । इसके बाद सम्यक्त्व की महिमा का कथन किया गया है । मूढता वर्णन करते समय तत्कालीन कुछ ऐसी मूढताओं का भी वर्णन किया है जो वैदिक धर्मावलम्बियों के प्रभाव से जैनो में आ गई थी । उदाहरणतः हाथी, घोड़ा, बैल, गाय आदि की पूजा करना, बड़, पीपर, ऊमर, तुलसी, दूब आदि वृक्षों की सेवा करना, अन्तर, भूत, सती, सीतला, सूर्य, चन्द्र, यक्ष, नाग आदि को देवी-देवता मानना, गोबर थापकर उनकी पूजा करना, गाय का मूत्र पीना, मुजरिया बनना आदि ।

३. त्रेपन क्रिया वर्णन ।—श्रावक का मूल धर्म त्रेपन क्रियाओं का परिपालन करना है । इनका वर्णन इस अध्याय में दिया गया है ।

अष्टमूलगुणवत् सुन बार । द्वादस तप सामायिक चार ।
येकादस प्रतिमा सुन हेत । बारा दिन में कहौ सुचेत ॥
जलगालन इक ग्रन्थऊ लीन । तीन तत्त्व वह कहौ प्रवीन ।
ये त्रेपन किरिया परवान । बरनन करो सुनो दे कान ॥
जैसी विधि ग्रन्थन में जानी । तैसी में पुनि कही बखानी ।
जे नर विषई धर्म न जानें । धर्म सार विधि ते नहि मानें
जे नर धर्म सील मन लावें । धर्मसार सुनकें सुख पावें ।

यहां पण्डित जी ने ८ मूल गुण, १२ व्रत, १२ तप, ४ सामायिक, ११ प्रतिमा, जलगालन, रात्रि भोजन त्याग, ४ दान इन ५३ क्रियाओं का वर्णन किया है । कवित्त में उनका यथास्थान उल्लेख नहीं हो पाया । इसमें १६४ दोहे, सोरठे और चौपाइयाँ हैं । इनमें कुछ शब्द ऐसे हैं जो आज भी उसी रूप में प्रचलित हैं । जैसे—ग्रन्थऊ, कुम्हड़ा, भटा, कलीदे, नैत्र, भूत, तुरकीवात, थाती इत्यादि । उक्त त्रेपन क्रियाओं का विस्तार से सुन्दर शैली में वर्णन किया

गया है यद्यपि उक्त कवित्त में उनकी स्पष्टता उतनी अधिक नहीं है।

४. कर्मविपाक कथन—इस अध्याय में निगोद तथा नरक तिर्यंच, मनुष्य और देव गति के दुःखों और उन दुःखों के कारणों का विस्तृत वर्णन है। किस कषाय और किस दुष्कर्म से जीव जिस गति में भ्रमण करता है इसका स्पष्ट कथन है।

५. योगेश्वर महिमा वर्णन—इसमें व्रत, तप, अनु-प्रेक्षा, तत्त्व आदि का वर्णन है।

६. केवलज्ञान महिमा—इसमें भगवान के अतिशयों गुणों और ऋद्धियों का वर्णन है तदनन्तर ज्ञान प्राप्ति की प्रक्रिया व उसकी महिमा दिखाई गई है।

७. पंच कल्याणक वर्णन—प्रस्तुत अध्याय में समव-शरण का चित्रण और पंच कल्याणको का वर्णन किया गया है।

भाषा शैली—

पण्डित जी की भाषा में सरस प्रवाह है। उनके शब्द और भाषा में पर्याप्त सामञ्जस्य है। यद्यपि ग्रन्थ वर्णनात्मक शैली से लिखा गया है फिर भी रुचिकर बन पड़ा है। लौकिक शब्दों का यहाँ प्रयोग अधिक है। ग्रन्थ में केवल दोहा, चौपई, सोरठा, अडिल्ल और कवित्त छन्दों का प्रयोग है। इनमें कवित्त और सबैया अधिक प्रभावक है। उदाहरणतः कवित्त की सुन्दरता देखिये—

जो अपजस की डंक बजावत लावत कुल कलंक परधान ।
जो चारित की वेइ जुलांजुल गुन वन कौ बाबानल दान ॥
सो शिव पंथ किवारि बतावत आवत विपति मिलन कौ थान
चित्तामन समान जग जे नर सोल रतन जो करत भजान ॥

इसी प्रकार सबैया की सरसता का पान कीजिए—

कलह गयंद उपजाइवे कौ विवागिरि,
कोप गीष के अघाइवे कौ सुमसान है ।
सकट भुजग के निवास करिबे कौ बिल,
बैर भाव चोर कौ मह निसा समान है ।
कोमल सुगुन धन खंडिबे कौ महा पौन,
पुनवन बाहिबे कौ बाबानल दान है ।
नीत नय नीर जन साइबे कौ हिम रासि,
ऐसी परिग्रह राग बोष कौ निदान है ॥२-६२॥

ग्रन्थकर्ता का जीवन-दर्शन—

पण्डित शिरोमणिदास मूलतः आगरा के रहने वाले थे। मध्यावधि उनके दो ग्रन्थ मिलते हैं—धर्मसार और सिद्धान्त-शिरोमणि। दोनों ग्रन्थों के देखने से पता चलता है कि उनमें भक्ति काल की मूल प्रवृत्तियाँ समाविष्ट हैं। धर्मसार में जहाँ निर्गुण और सगुण भक्ति का दिग्दर्शन है वहाँ सिद्धान्त-शिरोमणि में उसका दूसरा पक्ष सन्दर्शित है। दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायों के बीच मध्य काल में बढ़ते सिथिलाचार की वहाँ घोर निन्दा की है। श्वेताम्बर मुनि और दिगम्बर भट्टारक उनकी इस निन्दा के मुख्य मात्र हैं।

गुरुपरम्परा—पण्डित जी भट्टारक सकलकीर्ति को अपना अप्रत्यक्ष गुरु मानते थे। ग्रन्थ के आदि भाग में जिन आचार्यों का उन्होंने नामोउल्लेख किया है उनमें भट्टारक सकलकीर्ति भी है। उनके विषय में लिखा है—
सेऊँ सकलकीरति के पाय । सकल पुरान कहै समुझाय ॥
ग्रन्थ के अन्त भाग में पण्डित जी ने अपनी गुरु परम्परा इस प्रकार दी है :—

यशःकीर्ति
|
ललितकीर्ति
|
धर्मकीर्ति
|
पद्मकीर्ति
|
सकल कीर्ति
|
ललितकीर्ति
|
ब्रह्म सुमति
|
पण्डित गंगादास
|
पण्डित शिरोमणिदास

इस आचार्य परम्परा के देखने से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पण्डित शिरोमणिदास बलात्कार गण की उत्तरीय जेहरट शाखा से सम्बन्धित रहे हैं। डॉ० विद्या-धर जोहरापुरकर के भट्टारक सम्प्रदाय में सकलकीर्तिके

शिष्य ललितकीर्ति को छोड़कर शेष सभी भट्टारकों का उल्लेख मिलता है। उक्त ललितकीर्ति के साहित्यिक योगदान से भी हम परिचित नहीं। बलात्कार गण की जेरहट शाखा के अन्तिम भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति थे जिनका उल्लेख धर्मसार में नहीं किया गया। यदि प्रतिलिपिकर्ता की भूल न मानी जाय तो सम्भव है कि सुरेन्द्रकीर्ति के शिष्य ललितकीर्ति रहे हैं। और चूँकि ललितकीर्ति समाज अथवा साहित्य के क्षेत्र में अधिक कार्य नहीं कर सके इसलिए उनका उल्लेख नहीं मिलता। जो भी हो, जेरहट शाखा की परम्परा में एक और आचार्य (भट्टारक) का नाम रखा जा सकता है। इस दृष्टि से धर्मसार के उल्लेख का महत्त्व निश्चित ही उल्लेखनीय है। इस उल्लेख से यह भी पता चलता है कि जेरहट शाखा के अन्तिम भट्टारक ललितकीर्ति रहे और उनके बाद उनके शिष्य-प्रशिष्य पण्डित कहे जाने लगे।

धर्मसार की प्रस्तुत प्रति में सं० १७३२ रचना काल दिया गया है। डॉ० प्रेमसागर ने जयपुर के वधीचन्द्र जी के मन्दिर में संरक्षित एक अन्य प्रति का भी उल्लेख किया है जिसमें रचना सं० १७५१ लिखा है। स्व० प्रेमी जी ने १७३२ को रचना काल और १७५१ को लेखन काल माना है। डॉ० प्रेमसागर ने इस सन्दर्भ में अपना मत स्पष्ट नहीं किया फिर भी, लगता है, प्रेमी जी की स्वीकृति में ही उनकी स्वीकृति निहित है। परन्तु वे निष्कर्ष ठीक नहीं दिखते। डॉ० विद्याधर जोहरापुरकर ने सुरेन्द्रकीर्ति को बलात्कार गण की जेरहट शाखा का अन्तिम भट्टारक माना है और उनका समय सं० १७५६ बताया है। इसका

१. हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास, बम्बई, पृ. ६७

२. हिन्दी जैन-भक्ति काव्य और कवि, पृ. २७६

प्रमाण है आदिनाथ स्तोत्र की निम्न पंक्तियाँ—

मूलसंघ को नायक सोहे सकलकीर्ति गुरु बन्दो जू ।
तस पट पाट पटोघर सोहे सुरेन्द्रकीर्ति मुनि जागे जू ॥
संवत् सत्रासो छप्पण है मास कार्तिक शुभ जानो जू ।
बास बिहारी बिनती गावे नाम लेत सुख पावे जू ॥

इसके अतिरिक्त सम्बन्धित सुरेन्द्रकीर्तिके अन्य उल्लेख मेरे देखने में नहीं आये। पर इस उल्लेख से इतना तो निश्चित है कि सं० १७५६ तक सुरेन्द्रकीर्ति निश्चित ही गद्दी पर रहे होंगे। और उन्होंने अपने उत्तराधिकारी का चुनाव इसके पूर्व ही कर दिया होगा। उत्तराधिकारी ललितकीर्ति ने अपनी शिष्य परम्परा भी प्रारम्भ कर दी होगी। उस शिष्य परम्परा में अग्रगण्य होंगे पण्डित गंगादास। पण्डित गंगादास सं० १७५१ तक वृद्ध हो गये होंगे और उनके शिष्य पण्डित शिरोमणिदास युवक रहे होंगे। अतः निष्कर्ष यह हो सकता है कि धर्मसार का लेखन काल सं० १७५१ ही हो, १७३२ नहीं। इस सन्दर्भ में सिहरौन नगर, जहाँ धर्मसार की रचना समाप्त हुई, के राजा देवीसिंह का उल्लेख भी महत्त्वपूर्ण है। उनका समय भी यही है।

पण्डित शिरोमणिदास के दोनों ग्रन्थ धर्मसार और सिद्धान्तशिरोमणि भाव और भाषा की दृष्टि से उत्तम-कोटि के हैं, दोनों ग्रन्थों के प्रकाशन से जहाँ तत्कालीन जैनसमाज और संस्कृति का परिचय मिलेगा वहाँ भाषा-विज्ञान की दृष्टि से भी वे उपयोगी सिद्ध हुए होंगे। ●

३. भट्टारक सम्प्रदाय, पृ. २०५

सुगुरु सीख

हम तो कबहूँ न हित उपजाये। सुकुल-मुदेव-सुगुरु-सुसगहित, कारन पाय गमाये ॥टेक॥

कवि
वर
बो
ल
त
राम

ज्यों शिशु नाचत आप न माचत, लखन हार बौराये ।
त्यों श्रुतबांचत आप न राचत, औरन को समुझाये ॥१॥
सुजस-लाहकी चाह न तज निज, प्रभुता लखि हरखाये ।
विषय तजे न रजे निजपद में, परपद अपद लुभाये ॥२॥
पापत्याग जिन-जाप न कीन्हों, सुमनचापतप-ताये ।
चेतन तन को कहत भिन्न पर, देह सनेही थाये ॥३॥
यह चिर भूल भई हमरी अब, कहा होत पछिताये ।
दौल अजों भव-भोग रचौ मत, यों गुरु वचन सुनाये ॥४॥

द्वितीय जम्बूद्वीप

पं० गोपीलाल अमर शास्त्री, एम. ए.

प्रारम्भिक :—

जम्बूद्वीप की मान्यता भारतीय लोकविद्या में व्यापक रूप से प्राप्त होती है। वैदिक और बौद्ध मान्यता में जम्बूद्वीप नाम का एक-एक ही द्वीप है जबकि जैन मान्यता में दो जम्बूद्वीप उपलब्ध होते हैं। ऐसा नहीं कि एक ही द्वीप के दो भाग करके उन्हें दो द्वीप मान लिया गया हो बल्कि इस नाम के दो पृथक्-पृथक् द्वीप हैं, जैन मान्यता के अनुसार विद्यमान हैं। जम्बूद्वीप से आगे सख्यात् समुद्रों और द्वीपों के पश्चात् अतिशय रमणीय दूसरा जम्बूद्वीप है। इसका वर्णन करने से पूर्व तीन-लोक की रचना पर

१. जम्बूद्वीप के विस्तृत और तुलनात्मक अध्ययन के लिए देखिए : डॉ० सैयद मोहम्मद अली 'दि जॉग्रफी ऑफ दि पुराणस'।

२. देखिए वसुबन्धु 'अभिधर्म कोश' तथा अन्य ग्रन्थ।

४. देखिए 'जम्बूद्वीपणत्ती' आदि ग्रन्थ।

५. एक ही नाम के दो या दो से अधिक द्वीप और भी बहुत से हैं, यद्यपि उनके नाम नहीं दिये गये हैं (एककणाम बहुबाण)

६. देखिए, 'तिलोयपणत्ती', ५, २७

'जबूदीवाहितो संखेज्जाणि पयोधिदीवाणि।

गंतूण अत्थि अण्णो जबूदीओ परमरम्मो ॥'

'तिलोयपणत्ती' ५, १७६

७. 'तिलोयपणत्ती' (महाधिकार ५, गाथा १८६-२३७) में इसका वर्णन सविस्तार आया है। 'हरिवंश पुराण' (माणिकचन्द्र, ग्रथमाला) में द्वितीय जम्बूद्वीप का उल्लेख केवल एक श्लोक (सर्ग ५ श्लोक १६६) में ही कर दिया गया है। हाँ, इस पुराण में प्रथम जम्बूद्वीप के वर्णन में ही सुदर्शन मेरू की चारों दिशाओं में स्थित नगरियों (जगती) का जो वर्णन है वह द्वितीय जम्बू के (तिलोयपणत्तीगत) वर्णन से पूर्णतः मिलता-जुलता है।

एक विहङ्गम दृष्टिपात उपयोगी होगा जिसके अंग के रूप में यह द्वीप विद्यमान है।

लोकरचना : एक विहङ्गम दृष्टि :—

त्रिलोकी का आकार ऐसे पुरुष की आकृति से मिलता-जुलता है जो दोनों पैर फैलाकर और दोनों हाथ कमर पर रखकर खड़ा हो। इसके मध्य के एक लाख योजन में मध्यलोक है, जिसके नीचे नरक लोक और ऊपर स्वर्ग-लोक की रचना है। मध्यलोक की पूर्व-पश्चिम लम्बाई और उत्तर-दक्षिण चौड़ाई एक-एक राजू और ऊँचाई एक लाख योजन है।

मध्यलोक में, बीचो-बीच, एक योजन लम्बा और उतना ही चौड़ा एक मण्डलाकार महाद्वीप विद्यमान है।

८. त्रिलोकी के आकार की यह मान्यता भारतीय लोक-विद्या में सर्वथा अटूटी है। इसका प्रतीकार्थ तो अभी शोषक विषय है लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे पूर्वाचार्यों ने देवों और नारकियों के आकार-प्रकार को ही दृष्टिगत रखा होगा।

९. दूरी के नाप की एक अलौकिक इकाई=उतनी दूरी जिसे पुद्गल का एक स्वतंत्र परमाणु अपनी पूरी रफ्तार से चलकर समय के सूक्ष्मतम भाग में ही पार कर ले। 'राजू' शब्द का संस्कृत रूप है 'रज्जु' जिसका अर्थ होता है रस्सी और जिसे बुन्देलखण्ड में पगहिया (संस्कृत में 'प्रग्रहिका') कहते हैं। बहुत से स्थानों पर पगहिया को आज भी दूरी नापने की एक इकाई माना जाता है।

१०. यह महायोजन है जो हजार कोश के बराबर होता है। साधारणतः एक योजन चार कोश के बराबर माना जाता है।

११. 'तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो-जम्बूद्वीपः।' 'तत्त्वार्थसूत्र' ३, ६

इसे जम्बूद्वीप कहते हैं^{१२}। यह प्रथम और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण द्वीप है। जम्बूद्वीप के चारों ओर घेर कर एक महा-समुद्र विद्यमान है जो अपने खारे जल के कारण लवण समुद्र कहलाता है। इस समुद्र को चारों ओर से घेरे हुए एक द्वीप है। उसका नाम घातकीखण्ड है। उसे भी काल समुद्र घेर कर विद्यमान है। काल समुद्र को घेर कर पुष्कर द्वीप है। वह स्वयं इसी नाम के समुद्र से घिरा हुआ है। इस प्रकार, उत्तरोत्तर प्रत्येक द्वीप एक समुद्र से और वह समुद्र एक द्वीप से घिरा हुआ है। समुद्र का नाम वही है जो उसके पूर्ववर्ती द्वीप का है। इनमें विशेष रूप से उल्लेखनीय द्वीपों में आठवाँ^{१३} नन्दीश्वर, ग्यारहवाँ^{१४} कुण्डलकर, तेरवाँ^{१५} रुचक्रवर^{१६}, सख्यातवाँ जम्बूद्वीप और अंतिम^{१७} स्वयम्भूरमण है। प्रथम ढाई द्वीपों में नदी, पर्वत और क्षेत्र-विभाजन आदि की मनुष्यानुकूल रचना है। उनके पश्चात् जो भी द्वीप उल्लेखनीय है उनमें रचना तो अवश्य है परन्तु वह मनुष्यानुकूल न होकर देवानुकूल है। उनमें भवनवासी वर्ग के देव और देवियाँ निवास करती हैं। विभिन्न पर्वतों और कूटों पर विद्यमान अक्रान्तिम चैत्यालय इन द्वीपों की विशेषता है।

द्वितीय जम्बूद्वीप : सामान्य लक्षण :—

द्वितीय जम्बूद्वीप सख्यात द्वीपों और समुद्रों को घेर कर एक चूड़ी के आकार में स्थित है। इसकी चौड़ाई और परिधि का निश्चित मान नहीं दिया जा सकता

१२. क्योंकि इसके मध्य में जम्बू (जामुन) का एक अक्षय वृक्ष है।
१३. चौथे से सातवें तक क्रमशः वारुणीवर, क्षीरवर, धृतवर, क्षौद्रवर।
१४. नौवाँ अरुणवर और दशवाँ अरुणाभास।
१५. बारहवाँ शखवर
१६. चौदहवाँ भुजगवर, पन्द्रहवाँ कुशवर, सोलहवाँ क्रौञ्चवर।
१७. अन्त से प्रारम्भ करने पर स्वयम्भूरमण से पूर्व क्रमशः अहीन्द्रवर, देववर, यक्षवर, भूतवर, नागवर, वैद्यर्यवर, काञ्चन, रूप्यवर, हिंगुल, अञ्जनवर, श्याम, सिन्दूर, हरिताल, मनःशिल।

क्योंकि यह उल्लेख प्राप्त नहीं होता कि यह जम्बूद्वीप प्रथम जम्बूद्वीप से जिसका निश्चित मान उल्लिखित है और जिसके आधार शेष द्वीप-समुद्रों का मान निकाला जाता है, कितने द्वीप-समुद्रों के पश्चात् है। इसकी आभ्यन्तर और बाह्य परिधियाँ एक एक समुद्र द्वारा घिरी हैं। बाह्य परिधि को घेरने वाले समुद्र का नाम नियमानुसार जम्बू समुद्र है। इनमें आठवे, ग्यारहवे और तेरहवे द्वीपों के समान ही देवानुकूल रचना है पर यह रचना चित्रा पृथ्वी के ऊपर न होकर वज्रा पृथ्वी के ऊपर चित्रा के मध्य में है। रचना के अतर्गत साङ्गोपाङ्ग नगरियाँ, जिनालय आदि उल्लेखनीय हैं। इनकी विशालता और विविधता अत्यन्त आकर्षण की वस्तु है। अन्य द्वीपों और समुद्रों की भाँति इस द्वीप के भी दो अधिपति व्यन्तर देव हैं परन्तु उनके नामों का उल्लेख नहीं है क्योंकि शेष द्वीप समुद्रों के अधिपति देवों के नाम का उपदेश इस समय नष्ट हो गया है।^{१८}

नगरी-वर्णन :—

इस द्वीप की चारों दिशाओं में विजय आदि देवों की दिव्य नगरियाँ स्थित हैं। ये नगरियाँ बारह हजार योजन विस्तृत जिन भवनो से विभूषित और उपवन-वैद्याओं से समृद्ध हैं। इन सब नगरियों के प्राकार साढ़े सैनीस योजन ऊँचे तथा आधे योजन गहरे हैं^{१९} और उन पर रंग विरगी ध्वजाओं के समूह फहरा रहे हैं। उत्तम रत्नों से निर्मित इन सुवर्ण प्राकारों का भूविस्तार साढ़े बारह योजन और मुखविस्तार सवा छह योजन है।

इन नगरियों की एक-एक दिशा में सुवर्ण से निर्मित और मणिमय तोरणस्तम्भों से रमणीय पक्कीस गोपुर हैं। इन नगरियों के उत्तम भवनो की ऊँचाई बासठ योजन, विस्तार इकतीस योजन और गहराई दो कोश है।

प्रत्येक नगरी के मध्य में तरह-तरह के अनेक भवनो

१८. सैसाण दीवाण वारिणिहीण च अहिर्बई देवा।

जे केइ ताण णामस्सुवणो सपहि पणट्ठो ॥

—‘ति० प०’, १, ४८

१९. इस गहराई (अवगाह) का तात्पर्य चित्रा पृथ्वी में उसकी निचली सतह से हो सकता है।

से अतिशय रमणीय, बारह सौ योजनप्रमाण विस्तार से सहित और एक कोश ऊँचा राजागण स्थित है। इस स्थल के ऊपर चारों ओर दो कोश ऊँची, पाँच सौ धनुष विस्तीर्ण और चार गोपुरों से युक्त वेदिका स्थित है। राजागण के बीचोंबीच एक सौ पचास कोश विस्तारवाला, इससे दूना ऊँचा दो कोश गहरा और मणिमय तोरणों से परिपूर्ण प्रासाद है। इसका वज्रमय कपाटों से सुशोभित द्वार आठ योजन ऊँचा और चार योजन चौड़ा है।

प्रासादों की संयोजना :—

इसके चारों ओर एक-एक दिव्य प्रासाद है। उनसे आगे छठे मण्डल तक उत्तरोत्तर चार-चार गुने प्रासाद है। प्रत्येक मण्डल के प्रासादों का प्रमाण अप्रलिखित है। एक (मध्य का) प्रासाद मुख्य है। प्रथम मण्डल में चार प्रासाद है। द्वितीय मण्डल में सोलह, तृतीय में चौसठ, चतुर्थ में दो सौ छप्पन और पाँचवें मण्डल में एक हजार चौबीस प्रासाद है। छठे मण्डल में चार हजार छद्यानव प्रासाद है। आदि के दो मण्डलों में स्थित प्रासादों की ऊँचाई, विस्तार और अवगाह सबके बीच में स्थित मुख्य प्रासाद की ऊँचाई, विस्तार और अवगाह के समान है। तृतीय और चतुर्थ मण्डल के प्रासादों की ऊँचाई आदि इससे आधी है। इससे भी आधी पञ्चम और छठे मण्डल के प्रासादों की ऊँचाई आदि है। प्रत्येक प्रासाद की कलापूर्ण एक-एक वेदिका है। प्रथम प्रासाद की वेदिका दो कोश ऊँची और पाँच सौ धनुष विस्तीर्ण है। प्रथम और द्वितीय मण्डल में स्थित प्रसोपा की वेदिकाएँ भी इतनी ही ऊँची और विस्तीर्ण है। तृतीय और चतुर्थ मण्डल के प्रासादों की वेदिका की ऊँचाई और विस्तार पूर्वोक्त वेदिकाओं से आधा और इससे भी आधा पाचवें और छठे मण्डल के प्रसोपा की वेदिकाओं का है। गुणित क्रम से स्थित इन सब भवनों की संख्या पाँच हजार चार सौ एकसठ है।

सभाभवन-वर्णन :—

प्रथम प्रासाद के उत्तर भाग में साठे बारह योजन लम्बी और इससे आधे विस्तारवाली सुवर्ण सभा स्थित है। सुवर्ण और रत्नमयी यह सभा नौ योजन ऊँची और दो कोश गहरी है। इसके उत्तर भाग में इतने ही विशाल

जिनभवन हैं। प्रथम प्रासाद की वायव्य दिशा में जिनन्द्र-भवन के समान सुवर्ण और उत्तम रत्नों से निर्मित उप-पादसभा स्थित है। प्रथम प्रासाद के पूर्व में उपपादसभा के समान विचित्र रचना वाली अभिषेक सभा स्थित है। इसी दिशा में अभिषेक सभा के समान विस्तार आदि वाली और मणिमय तोरण द्वारों से रमणीय अलंकार सभा है। इसी दिशा में पूर्व सभा के समान ऊँचाई और विस्तार से सहित, सुवर्ण एवं रत्नों से निर्मित और सुन्दर द्वारों से सुसज्जित मन्त्रसभा है। इन छह प्रासादों के पूर्वोक्त मंदिरों में जोड़ने पर भवनों की समस्त संख्या पाँच हजार चार सौ अड़सठ होती है।

आवास-योजना ;—

जिनकी किरणें चारों दिशाओं में प्रकाशमान हो रही हैं ऐसे ये भवन उत्तम रत्नमय प्रदीपों से नित्य प्रकाशित रहते हैं। पुष्करिणिओं (सरोवरों) से रमणीय, फल-फूलों से सुशोभित, अनेक प्रकार के वृक्षों से सहित, और देव-युगलों से संयुक्त उपवनो से वे प्रासाद शोभायमान होते हैं। इनमें से कितने ही भवन मृगे जैसे वर्णवाले कितने ही कपूर और कुन्दपुष्प के सदृश, कितने ही सुनहरे रंग के और कितने ही वज्र एवं इन्द्रनीलमणि के सदृश हैं। उन भवनों में हजारों देवियों के साथ विजय नामक देव निवास करता है। वहाँ नित्य-युवक, उत्तम रत्नों से विभूषित शरीर से संयुक्त, लक्षण और व्यञ्जनो से सहित, धातुओं से विहीन, व्याधि से रहित, तथा विविध प्रकार के सुखों में आसक्त अनेक देव भी बहुत विनोद के साथ क्रीड़ा करते रहते हैं। इन भवनो में मृदुल, निर्मल और मनोरंजक, आकर्षक, रत्नमय शय्याएँ और आसन विद्यमान हैं।

विजयदेव और उसका परिकर :—

प्रथम प्रासाद के बीचोंबीच अतिशय रमणीय, पादपीठ सहित, सुवर्ण एवं रत्नों से निर्मित विशाल सिंहासन है। वहाँ पूर्वमुख प्रासाद में सिंहासन पर आरूढ़ विजय नामक अधिपति देव अनेक प्रकार की लीलाओं का आनन्द प्राप्त करता है। विजय के सिंहासन की उत्तर दिशा और विदिशा में उसके छह हजार सामानिक देव रहते हैं।

मुख्य सिंहासन की पूर्व दिशा में विजय देव की छह अनुपम अग्रदेवियाँ रहती हैं। उनके सिंहासन रमणीय हैं। इनमें से प्रत्येक अग्रदेवी की परिवारदेवियाँ तीन हजार हैं जिनकी आयु एक पत्य से अधिक होती हैं। ये परिवारदेवियाँ भी अपने-अपने भवनों में रहती हैं। विजय देव की बाह्यपरिषद् में बारह हजार देव हैं। उनके सिंहासन स्वामी के सिंहासन के नैऋत्य में हैं। उसकी मध्यम परिषद् में दस हजार देव होते हैं जिनके सिंहासन स्वामी के सिंहासन के दक्षिण में स्थित होते हैं। उसकी अग्र्यन्तर परिषद् में जो आठ हजार देव रहते हैं, उनके सिंहासन स्वामी के सिंहासन के आग्नेय में स्थित हैं। सात सेनामहत्तरो के उत्तम सुवर्ण एवं रत्नों से रचित दिव्य सिंहासन मुख्य सिंहासन के पश्चिम में होते हैं। विजय देव के जो अठारह हजार शरीर रक्षक देव हैं, उन सभी के चन्द्रपीठ चारों दिशाओं में स्थित हैं। वहाँ अनेक देव विविध प्रकार के नृत्य संगीत आदि द्वारा विजय का मनोरंजन करते हैं। राजागण के बाहर परिवार देवों के, फहराती हुई ध्वजा-पताकाओं से मनोहर और उत्तम रत्नों की ज्योति से अत्यन्त रमणीय प्रामाद है। जो बहुत प्रकार की रति के करने में कुशल है, नित्य यौवन से युक्त है, नाना प्रकार की विक्रिया को करती है, माया एवं लोभादि से रहित है, हास-विलास में निपुण है, और स्वभाव से ही प्रेम करने वाली है ऐसी समस्त देवियाँ विजय देव की सेवा करती हैं। अपने नगरो के रहने वाले अन्य सभी देव विनय से परिपूर्ण और अतिशय भक्ति में आसक्त होकर निरन्तर विजय देव की सेवा करते हैं।

वन और चैत्यवृक्ष :—

उस नगरी से बाहर पचीस योजन की दूरी पर चार वन हैं। उनमें से प्रत्येक में चैत्यवृक्ष हैं। अशोक और सप्तपर्ण, चम्पक और आम्रवृक्षों के ये वन पूर्वादि दिशाओं में प्रदक्षिणाक्रम से हैं। प्रत्येक वन बारह सौ योजन लम्बा और पाँच सौ योजन चौड़ा है। इन वनों में जो चैत्यवृक्ष हैं उनकी सख्या भावनलोक के चैत्यवृक्षों की सख्या के बराबर है। उनकी चारों दिशाओं में चार जिनेन्द्र प्रतिमाएँ हैं जो देवों और अशुरों द्वारा पूजित, प्रातिहार्यों से अलंकृत, पद्मासन में स्थित और रत्ननिर्मित हैं।

अशोक प्रासाद :—

प्रत्येक चैत्यवृक्ष की ईशान दिशा में इकतीस योजन एक कोश विस्तार वाला दिव्य प्रासाद स्थित है। रंग-विरंग मणियों से निमित्त स्तम्भों वाले इस प्रासाद की ऊँचाई साढ़े बासठ योजन और अवगाह दो कोश है। उसके द्वार का विस्तार चार योजन और ऊँचाई आठ योजन है।

यह प्रासाद देदीप्यमान रत्नदीपको से प्रकाशित रहता है, विचित्र शय्याओं और आसनों से परिपूर्ण रहता है और उसमें उपलब्ध शब्द, रस, रूप, गंध एवं स्पर्श से देवों के मन आनन्द में भर उठते हैं। स्वर्गमय भित्तियों पर अंकित विचित्र चित्रों से उसका स्वरूप निखर उठा है। बहुत कठने से क्या, वह प्रासाद अनुपम है। उस प्रासाद में उत्तम रत्नमुकुट को धारण करने वाला और चामर-छत्रादि से सुशोभित अशोक नामक देव हजारों देवियों के साथ आनन्द से रहता है।

शेष वैजयन्त आदि तीन देवों का सम्पूर्ण वर्णन विजयदेव के ही समान है। इनके भी नगर क्रमशः दक्षिण पश्चिम और उत्तर दिशा में स्थित हैं।

मननीय :—

जैसा कि टिप्पणी ७ में कहा जा चुका है, यह लेख मुख्य रूप से तिलोयपण्णत्ती पर आधारित है। यह ई० ४७३ से ६०६ के मध्य की रचना मानी गई है।^{१५} भारतीय इतिहास में यह काल स्वर्णयुग के नाम से विख्यात है। इस तथ्य की पुष्टि तिलोयपण्णत्ती के पारायण से शतशः होती है।

उसने स्थान-स्थान पर उल्लिखित विभिन्न प्रकार की नगर योजनाएँ और भवनों की विन्यास रेखाएँ (ले आउट प्लान) संस्कृति और पुरातत्त्व के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करती है।

नगरियाँ योजनो लम्बी-चौड़ी होती थी जैन मन्दिर और उपवन उनमें अवश्य होते थे। प्राकारों और गोपुरों की अनिवार्यता थी। भवन और प्राकार न केवल ऊँचे होते थे, उनकी नींव भी काफी गहरी (अवगाह) खादी जाती थी। राजागण एक विशाल, सर्वसुविधासम्पन्न,

सुदृढ़ और अलंकृत दुर्ग होता था, जिसके चारों ओर योजनाबद्ध भवनों की पक्तियाँ होती थी। नगरी में ज्यों-ज्यों बाहर से भीतर की ओर बढ़ा जाता, त्यो-त्यो भवनों की ऊँचाई भी बढ़ती जाती थी। भवनों की गणना रेखा-गणित के आँधार पर की जा सकती थी। सार्वजनिक उपयोग के लिए सभाएँ (विशाल हाल) होते थे। उनमें से सुधर्मा सभा, उपपाद सभा, अभिषेक सभा, अलंकार सभा और मन्त्र सभा उल्लेखनीय थी। भवनों की साज-सज्जा रत्नों, स्वर्ण, चित्रकारी, पताकाओं आदि द्वारा होती थी और उनमें नृत्य संगीत आदि के आयोजन होते रहते थे। उपवनों में अशोक, सप्तवर्ण, चम्पक, आम आदि की प्रधानता थी। चैत्यवृक्ष को विशेष महत्व दिया जाता था।

गुप्त युग के जो कुछ मन्दिर आज भी ध्वंसावशिष्ट हैं। उन्हें देखकर यह कल्पना नहीं की जा सकती कि उस समय यहाँ भवन-निर्माण कला इतनी विकसित हो चुकी थी। परन्तु, दूसरी ओर काल का कराल परिपाक, मौसम के निर्दय थपेड़ों और आततायियों की निर्मम तोड़फोड़ का स्मरण आते ही मजूर करना पड़ता है कि तिलोय-पणत्ती और तत्सदृश ग्रन्थों के विवरण कागज पर ही न रहते होंगे उन पर अमल भी किया जाता होगा।

प्रस्तुत लेख में आये विवरणों में देवों के रहन सहन, तौर-तरीकों, धार्मिक मान्यता, वर्ग-विभाग आदि पर विशद प्रकाश पड़ता है। यदि इन विवरणों का आदर्श तत्कालीन मनुष्यों से लिया गया माना जाय तो गुप्त-कालीन संस्कृति और सभ्यता हमारे समक्ष और भी अधिक विस्तृत, स्पष्टतर एवं सप्रमाण हो उठेगी। विजय नामक देव की तत्कालीन सम्राट् का तो नहीं, पर उसके

एक औसत क्षत्रप या सामन्त का प्रतीक अवश्य माना जा सकता है। इस लेख में आये विवरण स्त्रियों की दशा पर भी अच्छा प्रकाश डालते हैं। बहुपत्नी प्रथा का उन दिनों जोरदार प्रचलन था, पर स्त्रियों में सदाचार पर बल दिया जाता था वे विविध कलाओं में जिनमें रतिकला की प्रमुखता थी, निपुण होती थी।

इस लेख में आये विवरणों से तत्कालीन धार्मिक मान्यता का भी अच्छा परिज्ञान होता है। प्रत्येक नगरी में जैन मन्दिर अवश्य हुआ करता था। उन दिनों तक यक्षों और देवों की पूजा का प्रचलन नहीं हुआ था, उनकी मान्यता तीर्थकरों के भक्तों के रूप में थी। वे जैन मन्दिरों में जाकर समय-समय पर धर्मोत्सवों का आयोजन करते थे। सुधर्मा सभा कदाचित् धार्मिक व्याख्यानों और स्वाध्याय के उपयोग में आती थी। इसी प्रकार अभिषेक सभा में कदाचित् तीर्थकर की मूर्ति के अभिषेक आदि अनुष्ठान संपन्न होते थे।^{११}

तिलोयपणत्ती में द्वितीय जम्बूद्वीप आदि जैसे कुछ और भी ऐसे विषय हैं जिनका उल्लेख अन्यत्र नहीं मिलता, इस दृष्टि से भी यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आशा है, इस तथा ऐसे ही ग्रन्थों की धार्मिक अध्ययन के ही दायरे से निकाल कर इतिहास, भूगोल, खगोल, संस्कृति, समाज आदि के अध्ययन का भी विषय बनाया जायगा।

२०. देखिए 'ति० प०' (सोलापुर), भाग २, प्रस्तावना, पृ० १५।

२१. 'हरिवंश' (५, ४१६) में ऐसी ही सभाओं में एक व्यवसाय सभा का भी उल्लेख है, जो आजकल के बाजार या मंडी के रूप में प्रयुक्त होती होगी।

आत्म अनुभव की महत्ता

कविवर भागचन्द

आतम अनुभव आवैं जब निज, आतम अनुभव आवैं। और कछू न सुहावैं ॥टेक॥

रस नीरस हो जात ततच्छिन, अक्ष विषय नहीं भावैं ॥१॥

गोष्ठी कथा कौतूहल विघटे, पुद्गल प्रीति नसावैं ॥२॥

राग दोष जुग चपल पक्षजुत, मन पक्षी मर जावैं ॥३॥

ज्ञानानन्द सुधारस उमगैं, घट अंतर न समावैं ॥४॥

'भागचंद' ऐसे अनुभव के हाथ जोरि सिरनावैं ॥६॥

‘सम्मत्तगुणणिहारण’ कव्व की प्रशस्ति के आलोक में :

गोपाचल-दुर्गके एक मूर्तिलेखका अध्ययन

प्रो० डा० राजाम जैन

गोपाचल का मध्यकालीन इतिहास वस्तुतः तत्कालीन जैन अग्रवालों की सम्यता एवं संस्कृति का इतिहास है। विक्रम की १४वीं सदी के प्रारम्भ से १६वीं सदी तक का समय गोपाचल का स्वर्ण काल कहा जा सकता है और उसके मूल में जैन अग्रवाल ही प्रमुख रहे हैं। तोमरवशी राजाओं को उन्होंने अपने आचरण, बुद्धि-कौशल, चतुराई, साहस, कुशल सूझ-बूझ, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अभिरुचि, साहित्यकारों के प्रति महान् आस्था एवं कलाप्रेम आदि से प्रभावित कर उन्होंने महाकवि रङ्ग के शब्दों में गोपाचल को ‘श्रेष्ठ तीर्थ’ बना दिया था। यहाँ पर उक्त सभी तथ्यों पर प्रकाश डालने का प्रसंग नहीं है; क्योंकि उन पर विस्तृत रूप में अन्यत्र प्रकाश डाला जा चुका है। यहाँ गोपाचल का एक मूर्ति लेख ही चर्चनीय प्रसंग है जिसका अध्ययन एवं अनुवाद आदि किन्हीं कारणोंवश अमपूर्ण होता रहा है किन्तु महाकवि रङ्ग की एक प्रशस्ति से उसका पूर्णतया संशोधन एवं स्पष्टीकरण हो जाता है। पठित मूर्ति लेख निम्न प्रकार है :—

श्री आदिनाथाय नमः ॥ संवत् १४६७ वर्षे वैशाख... ७ शुक्ले पुनर्वसुनक्षत्रे श्री ‘गोपाचल दुर्ग’ महाराजाधिराज राज श्री डुग... संवत्तमानो श्री काञ्चीसधे, मायू रान्वयो पुष्करगण भट्टारक श्री गणकीर्तिदेव तत्पदे यत्यः कीर्तिदेवा प्रतिष्ठाचार्य श्री पण्डित रघू तेषं आभाए अग्रोतवंशे मोद्गलगोत्रा सा ॥ धुरात्मा तस्य पुत्रः साधु भोपा तस्या भार्या नाल्ही। पुत्र प्रथम साधु क्षेमसी द्वितीय साधु महाराजा तृतीय असराज चतुर्थ धनपाल पञ्चम साधु पाल्का। साधु क्षेमसी भार्या नोरादेवी पुत्र ज्येष्ठ पुत्र मघायि पति ‘कौल’ ॥ भ—भार्या च ज्येष्ठ

१. जैन लेख संग्रह (द्वितीय भाग, पूरनचन्द्र नाहर, कलकत्ता, १९२७ ई०) लेखक १४२७।

स्त्री सरसुती पुत्र मल्लिदास द्वितीय भार्या साध्वी सरा पुत्र चन्द्रपाल। क्षेमसी पुत्र द्वितीया साधु श्री भोजराजा भायो देवस्य पुत्र पूर्णपाल। एतेषां मध्ये श्री ॥ त्यादि जिन-संघाधिपति ‘काला’ सदा प्रणमति।

उक्त लेखमें मोटे टाइपके पद विचारणीय हैं। यह तो सर्वविदित ही है कि गोपाचल (ग्वालियर) काष्ठासध माथुरगच्छ की पुष्करगण शाखा के अनुयायी भट्टारकों का सुप्रसिद्ध केन्द्र रहा है^१। वहाँ के सभी जैन अग्रवालों के वे ही परम्परा गुरु एवं समाजनेता रहे हैं। महाकवि रङ्ग ने भी उस परम्परा के भट्टारकों को अपना गुरु माना है। रङ्ग भगवान् आदिनाथ के परमभक्त थे इसके अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। कविता के क्षेत्र में अधिक लोकप्रियता प्राप्त करने के बाद राजा डूगरसिंह ने जब उन्हें अपने दुर्ग में रहकर साहित्य साधना करने हेतु आमन्त्रित किया तब रङ्ग ने उसे स्वीकार तो अवश्य कर लिया किन्तु भ० आदिनाथ के दर्शन बिना उनका मन नहीं लगता था। अतः उनके बाल-सखा एवं शिष्य साहू कमलसिंह संघवी, जो कि मुद्गलगोत्रीय जैन अग्रवाल थे, तब राजा डूगरसिंह के अत्यन्त विश्वस्त पात्र एवं समृद्ध नगर सेठ थे, उन्होंने कवि की इच्छापूर्ति हेतु गोपाचल दुर्ग में ५७ फीट ऊँची आदिनाथ भगवान् की विशाल जिन प्रतिमा का निर्माण कराया था और उनकी प्रतिष्ठा स्वयं महाकवि रङ्ग ने की थी^२। रङ्ग विरचित ‘सम्मत्तगुणणिहारणकव्व’ नामक ग्रन्थ-प्रशस्ति से उक्त घटना बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है। प्रशस्ति का पद्यांश निम्न प्रकार है :—

२. जैन शिला लेख संग्रह (स्मारिका सीरीज) तृ० भा०, भूमिका, पृ. १५३।

३. सम्मत० १।१३ तथा जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह द्वि० भा० (सम्पादक पं० परमानन्द जी शास्त्री) पृ. ८६।

गोपायलि डुंगरराय रज्जि ।
 सिबउ राइणा विहिय कज्जि ॥
 तहि निव सम्माणे तोसियगु ।
 बुह्यणहं विहिउ जं निक्ख संगु ॥
 कण्णावल्ली वण धवण कंडु ।
 सिरि 'अइरवाल कुल' कुमुयचन्दु ॥
 सिरि 'भोपा' नामे हुवउ साहु ।
 सपत्तु जेण धम्मे लहाउ ॥
 तहु 'णालहाही' नामेण भज्ज ।
 अइ सावहाण सा पुण्ण कज्ज ॥
 तहु णंवण चारि गुणोहवास ।
 सत्तिणिह जस भर पूरिय दिसास ॥
 'खेमसिहु' पसिद्धउ महि गरिट्ठु ।
 'महराज' महामइ तहु कणिट्ठु ॥
 'असरराज' बुहिय जण आसऊर ।
 'पाल्हा' कुलकमलवियाससूर ।
 एयहु गरुवउ जो खेमसोहु ।
 वणिगउ एक्ख भव-भमण वोहु ॥
 तहु 'णिउरादे' भामिणि पउत्त ।
 विण्णण कलागुण सेणिजुत्त ॥
 पढमउ संघाहिबउ 'कमलसोहु' ।
 जो पयलु महीयलि सिवसमीहु ॥
 नामेण 'सरासइ' तहु कलत्त ।
 बीइ जि स सेविय पायभत्त ॥
 खउ बिह बाणें पोणिय सुपत्त ।
 अहु जितु बिरइय जिणणाह जत्त ॥
 तहु णंवण नामे 'मल्लिवासु' ।
 सो संपत्तउ सुहगइ निवासु ।
 संघाहिब 'कमलसु' तहुव भाउ ।
 नामेण पसिद्धउ 'भोयराउ' ॥
 तहु भामिणि 'देवइ' नाम उत्त ।
 बिह पुत्तहि सा सोहइं सउत्त ॥
 नामेण भणिउ गुरु चन्दसेणु ।
 पुणु 'पुणपालु' लहुवउ अरेण ॥
 बत्ता—इय परिपण जुत्तउ एच्छणिह ।
 कमलसोहु संघाहिब चिर णंवउ ॥

भावार्थ—गोपाचल में महाराज डुंगरसिंह राज्य करते थे । उनके राज्य में अग्रवाल वंशोत्पन्न भोपा नामक साहु निवास करते थे । उनकी पत्नी णाल्हासे खेमसिंह, महाराज, असराज एवं पाल्हा नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए । खेमसिंह की णिउरादेवी (नोरादेवी) नामक पत्नी से कमलसिंह एवं भोजराज नामक पुत्र उत्पन्न हुए । कमलसिंह की दूसरी पत्नी सरस्वती से मल्लिदास नामक पुत्र एवं भोजराज की देवकी नामक पत्नी से चन्द्रसेन एवं पूर्णपाल नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए । कमलसिंह संघवी का यही परिवार था ।

महाकवि रङ्घू ने भट्टारक गुणकीर्ति एवं उनके पट्टशिष्य भ० यशःकीर्ति की प्रेरणा से कई ग्रन्थों की रचना की है । कवि ने अनेक स्थानों पर उन्हें अपने गुरु के रूप में स्मरण किया है । पहले तो ये दोनों भट्टारक सहोदर भाई थे किन्तु बाद में गुरु-शिष्य हो गये थे । कवि ने उनका बड़ी ही श्रद्धा भक्ति के साथ उल्लेख किया है । यशःकीर्ति के विषय में लिखा है—

ताहं कमागय तवतवियंगो ।

णिच्छब्भासिय पवयणसंगो ॥

भव-कमल-सरबोहपयंगो ।

बंदिबि सिरि 'जसकिति' असगो ॥

तस्स पसाएं कव्वु पयासमि ।

चिर भवि विहिउ असुह गिण्णासमि ॥

सम्मइ० १।३।४-६

महाकवि रङ्घू के इन सन्दर्भों से यह स्पष्ट है कि उक्त मूर्ति लेख में आये हुए पूर्वोक्त रेखांकित पद वस्तुतः डुंगरसिंह, काष्ठासंघ, माधूरान्वय, गुणकीर्तिदेव, यशःकीर्ति रङ्घू आम्नाय, कमलसोह एवं कमलसिंह है । काञ्चीसंघ आदि पाठ पूर्णतः भ्रमात्मक हैं और इस प्रकार महाकवि रङ्घू के 'सम्मत्तगुणिहाणकव्व' की प्रशस्ति को सम्मुख रखकर उक्त मूर्ति लेख के अशुद्ध पढ़े गये पाठों को शुद्ध किया जा सकता है । दोनों के तुलनात्मक अध्ययन करने से निम्न निष्कर्ष सम्मुख आते हैं :—

१. तोमरवंशी राजा डुंगरसिंह के राज्यकाल में गोपाचल दुर्ग की ५७ फीट ऊँची आदिनाथ की मूर्ति का निर्माण एवं प्रतिष्ठा वि० सं० १४६७ की वंशाख...सप्तमी शुक्र-

वार को हुई थी।

२. अग्रवाल कुलोत्पन्न मुद्गलपोत्रीय साहू कमलसिंह संघवी इसके निर्मापक थे तथा महाकवि रङ्गू इसके प्रतिष्ठाचार्य थे।

३. भट्टारक गुणकीर्ति के छोटे भाई एवं शिष्य भट्टारक यशःकीर्ति थे जो गोपाचल के काष्ठासघ माथुरगच्छ एवं पुष्करगण शाखा के अत्यन्त प्रभावशाली भट्टारक थे तथा उन्होंने रङ्गू को शिष्य मानकर उन्हें हर दृष्टि से प्रशिक्षित कर योग्य बनाया।

४. मूर्ति लेख में भोपा साहू के पाँच पुत्रों के नामोल्लेख हैं किन्तु रङ्गू प्रशस्ति में चार पुत्रों के ही उल्लेख हैं। उसमें चतुर्थ पुत्र धनपाल का नामोल्लेख नहीं है। यह प्रतीत होता है कि प्रशस्ति के अंकन के समय तक धनपाल की मृत्यु हो गई थी इसलिए कवि ने उसके नाम का अंकन नहीं किया।

५. प्रशस्ति में णिरादेवी का ज्येष्ठ पुत्र कमलसिंह बताया गया है, किन्तु मूर्ति लेख में भघायिपति कौल अंकित है। वस्तुतः यहाँ कौल नहीं 'कमलसिंह' होना चाहिए और 'भघायि' (या भद्रा) सम्भवतः उसकी प्रथम पत्नी का नाम रहा होगा। रङ्गू ने इस पत्नी का उल्लेख नहीं किया। हाँ, कमलसिंह की द्वितीय पत्नी सरस्वती का

उल्लेख मूर्ति लेख एवं प्रशस्ति दोनों में उपलब्ध है।

६. मूर्ति लेख के अनुसार कमलसिंह की द्वितीय पत्नी का नाम ईसरा था जिससे चन्द्रपाल नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। किन्तु प्रशस्ति के अनुसार उसका नाम मल्लिदास था। हो सकता है कि उसके ये दोनों ही नाम रहे हैं। एक नाम छुटपन का हो और दूसरा नाम बड़प्पन का।

प्रशस्ति के अनुसार कमलसिंह के भाई भोजराज की देवकी नाम की पत्नी से दो पुत्र उत्पन्न हुए चन्द्रसेन एवं पूर्णपाल। जबकि मूर्ति लेख के अनुसार भोजराज का एक ही पुत्र था पूर्णपाल।

उक्त अन्तर को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मूर्ति लेख के प्राथमिक वाचन में काफी भ्रम हुआ है। वस्तुतः उसके पुनर्वाचन की आवश्यकता है। उससे बहुत सम्भव है कि हम सत्य के अधिक निकट पहुँच सकें।

जैन मूर्तिलेखों एवं शिलालेखों के अध्ययन में इस प्रकार की कई गलतियाँ हुई हैं और एक बार जो गलती होती है उसका सुधार बड़ी कठिनाई से हो पाता है। पूर्वपिक्षया आज हम अधिक साधन-सम्पन्न हैं, ऐसी स्थिति में क्या ही अच्छा हो कि उनका पुनर्वाचन कर उनका प्रशस्तियों के साथ तुलनात्मक अध्ययन करें और जैन-इतिहास के विवाद ग्रस्त अशों का सशोधन करें।

ऊन (पावागिरी) के निर्माता राजा बल्लाल

पं० नेमचन्द धन्नुसा जैन

यह दिगंबर जैन सिद्धक्षेत्र मध्यप्रदेश के निमाड जिले में है। यह ब्राह्मण गांव से २७ मील तथा खरगौन से १० मील है। इस क्षेत्र के इतिहास के बारे में प्रो० हीरालालजी जैन लिखते हैं, "यह क्षेत्र रेवा नदी के किनारे है तथा गाँव के आसपास अनेक खण्डहर दिखाई देते हैं। जनश्रुति है कि यहाँ बल्लाल नामक नरेश ने व्याधि से मुक्त होकर सौ मन्दिर बनवाने का संकल्प किया था। किन्तु अपने जीवन में वह ९९ ही बनवा पाया। इस प्रकार एक मन्दिर कम रह जाने से यह स्थान 'ऊन' नाम से प्रसिद्ध हुआ। (इन्दौर स्टेट गभेटीयर, भाग १, पृष्ठ

६६९) हो सकता है ऊन नाम की सार्थकता सिद्ध करने के लिए ही यह आख्यान गढ़ा हो। किन्तु उसमें कुछ ऐतिहासिकता हो तो, बल्लाल नरेश होयसल वंश के वीर बल्लाल द्वि०) हो सकते हैं, जिनके गुरु एक जैन मुनि थे।" (भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान-पृष्ठ ३३२)।

इन्दौर गजेटीयर में बताया है कि—एक समय बल्लाल राजा किसी दुर्घर व्याधि से ग्रस्त हो गया था। इसलिए राज्य का कारभार छोड़कर वह गंगा की यात्रार्थ निकला। किसी समय वह राजा रानी के साथ इस क्षेत्र में मुक्काम को

आया। एक रात्रि में राजा गाढ़ निद्रा में सो रहा था और रानी की नींद यकायक खुल गई। उसने सुना कि दो नाग आपस में बातचीत कर रहे हैं। एक नाग दूसरे से कह रहा था, “अरे तेरा जीवन कितना छोखे में है, राजा अगर थोड़ा चूना खा जायगा तो तू मर जायगा और राजा की व्याधि भी चली जायगी।

बाद में दूसरा भी पहले को कहने लगा, “अरे तेरा भी जीवन छोखे में ही है। अगर राजा उवाला हुआ तेल तेरे बीच में डाल दे तो, तू समूल नष्ट होगा और वहाँ की घन-राशि राजा को प्राप्त होगी।”

रानी ने यह शुभ समाचार प्रातःकाल राजा को सुनाया। राजा ने प्रतिज्ञा की, कि अगर यह सच हो जाय तो मैं यहाँ उसी घनराशि से सौ मंदिर बनवाऊँगा। राजा ने ठीक वैसा ही किया। उससे राजा निरोग और घनवान (तथा शत्रु रहित) हो गया। राजा ने वहाँ सौ मन्दिर बनवाना प्रारम्भ किया। लेकिन वह ६६ ही बनवा पाया। इसीलिए पावागिरि को ऊन भी कहते हैं। आदि।

गजेटीयर में उल्लिखित इस बल्लाल राजा को प्रो० हीरालालजी ने होयसल नरेश बताया है, जो प्रायः जैन और समकालीन नरेश थे। लेकिन इसी समय के दरम्यान एक मालव नरेश बल्लाल का भी इतिहास में उल्लेख मिलता है। जिसको परमार राजा यशोधवल ने या कुमारपाल ने मारा था।

एक ही व्यक्ति के विषय में ऐसे परस्पर भिन्न दो उल्लेख क्यों हैं? इस पर मेरी यह समझ थी कि, चौलुक्य सिद्धराज जयसिंह और परमार राजा विक्रमसिंह का १२ साल तक संघर्ष चलता रहा। और विक्रमसिंह कुमारपाल यद्यपि प्रारम्भ में शरण आया, तो भी बाद में विरुद्ध हो गया था। वह मालव नरेश बल्लाल को मिला था। उसको मारकर उसका राज्य उसके भतीजे यशोधवल को (शायद) इस शर्त पर दिया था, कि उसे बल्लाल के विरुद्ध कुमारपाल की सहायता करना।

राज्य प्राप्ति के लोभ में उसने यह भी प्रतिज्ञा की, “मैं बल्लाल का शिरच्छेद करके आपको अर्पित करूँगा, तब ही सिंहासन ग्रहण करूँगा। इस प्रतिज्ञा पूर्ति में यशोधवल को सैनिक सहायता कुमारपाल ने दी होगी,

उससे यशोधवल विजयी हुए। और उन्होंने बल्लाल का शिरकमल कुमारपाल को भेट के रूप में अर्पण किया होगा।

यशोधवल ने बल्लाल को मारा इसलिये कि उनका उल्लेख शिलालेख में आना स्वाभाविक है। तथा यह सामन्त राजा होने और कुमारपाल की सहायता से बल्लाल को हराया इसलिए सार्वभौम के नाते कुमारपाल को ‘बल्लाल राज के मस्तक पर उछलने वाला सिंह’ भी कहा हो। इस प्रकार के विचार से संतोष तो कर लिया था। मगर आशंका बनी रहती थी।

लक्ष्मीशंकर व्यास के ‘चौलुक्य कुमारपाल’ नाम की पुस्तक का जब बारीकी से अध्ययन किया तब पता चला कि, उस समय बल्लाल नाम के दो राजा कुमारपाल के विरुद्ध थे। व्यासजी पृष्ठ १०२ पर लिखते हैं—“अपने किसी से कुछ प्रतिज्ञा कर.....उज्जयिनी के राजा बल्लाल तथा पश्चिमी गुजरात के राजाओं से मैत्री कर ली।.....उज्जयिनी राज देश देशान्तर में भ्रमणशील व्यवसायियों से गुजरात की वास्तविक स्थिति से परिचित हो चुका था। उसने मालव नरेश बल्लाल से एक सैनिक अभिसन्धि कर ली थी।

आमुख लेखक डॉ० राजबली पाण्डेय जी पृष्ठ ४ पर लिखते हैं कि, ‘सपादलक्ष के चौहान राजाने अपने वर्तमान नागौर की ओर से चढ़ाई की, तो दूसरी ओर से उज्जयिनी के राजा बल्लाल ने और तीसरी ओर से चंद्रावती के अधिपति विक्रमसिंह ने आक्रमण कर दिया।

व्यासजी पृष्ठ १०७ पर लिखते हैं—“अर्णोराज गुजरात के सीमांत की ओर बढ़ आया और उसने अंबन्ती नरेश बल्लाल के राज्य की सीमा में प्रवेश कर अर्णहिल पुर की ओर अग्रसर हो रहा था। कुमारपाल तत्काल ही अपनी सेना एकत्र कर बल्लाल का सामना करने के लिये रवाना हुआ। हाथी पर सवार कुमारपाल ने बल्लाल पर प्रहार कर उसे पराजित किया।

वही पृष्ठ १०६ पर—बडनगर प्रशस्ति में कहा गया है कि, ‘मालव नरेश अपने देश की सुरक्षा करते हुए हत हुआ। उसका सिर कुमारपाल के राज प्रासाद के द्वार पर लटकाया गया था।

वही पृष्ठ १११ पर—विक्रमसिंह के राजगद्दी पर उसके भ्रातृ पुत्र यशोधवल को स्थापित कराया गया। इस घटना की 'पुष्टि तेजपाल के वि० सं० १२८७ की आबू पहाड़ी प्रशस्ति से भी होती है। इसमें कहा गया है, "अबुंद परमार यशोधवल ने, यह विदित होते ही कि, बल्लाल कुमारपाल का विरोधी तथा शत्रु हो गया है, मालवाधिप बल्लाल को हत कर दिया।" इन विवरणों से बलाल नाम के दो भिन्न व्यक्ति प्रतिभाषित होते हैं।

इतना स्पष्ट होते हुए भी कहीं-कहीं मालव नरेश की ही उज्जयिनी नरेश समझकर वर्णन मिलता है। जैसा कीर्ति-कौमुदी के अनुसार—कुमारपाल ने गुजरात पर आक्रमण करने वाले मालवराज बल्लाल का शिरच्छेद कर दिया था। ऐसा ही अभिप्राय प्रायः व्यासजी का भी दिखता है। जबकि वे स्वयं पृष्ठ १०२ पर लिखते हैं कि, —उसने (उज्जयिनी नरेश ने) मालव नरेश बल्लाल से एक सैनिक अभिसन्धि कर ली थी।"

इसका समाधान शायद इस तरह हो सकता है कि, किसी समय मालवा की राजधानी उज्जयिनी थी। इसलिए मालव नरेश को उज्जयिनी नरेश कहा गया हो। लेकिन मुज या भोज परमार राजाओं के समय से मालवा की राजधानी धारा नगरी थी। यानी ई० सन् की ११वीं शदी से पूर्व ही उज्जयिनी का महत्त्व कम हो गया था। अतः उस समय से मालव नरेश को उज्जयिनी नरेश नहीं कहा जाता।

ऐसा हो सकता है कि, धाराधिपति परमार राजाओं की परम्परा में (उस समय या बाद) बल्लाल नाम के किसी भी राजा का उल्लेख न मिलने से उज्जयिनी नरेश को ही मालव नरेश कह दिया हो।

अतः उज्जयिनी नरेश एक विशिष्ट और निश्चित स्थान के राजा होने से उनकी ऐतिहासिक खोज होनी चाहिए। इसके लिए कवि सिंह या सिद्ध विरचित प्रद्युम्न चरित प्रशस्ति संशोध्य हैं। ग्रंथ प्रशस्ति में 'बह्मणवाड' नगर का वर्णन करते हुए लिखा है कि, उस समय वहां रणघोरी या रणवीरका पुत्र बल्लाल था, जो अर्णोराज को भयभीत करने के लिए काल स्वरूप था। और जिसका मांडलिक भृत्य अथवा सामन्त गुहिल वंशीय क्षत्रिय भुल्लन

उस समय बह्मणवाड का शासक था। (जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह भाग २ प्रस्तावना पृष्ठ ७८)

इससे रणघोरीय के पुत्र बल्लाल ने अर्णोराज को भयभीत किया होगा ऐसा लगता है। कुमारपाल चरित में ठीक इसके विरुद्ध लिखा है कि, खुद कुमारपाल ने ही चौहान वंशी अर्णोराज की हत्या की थी। लेकिन यह कवि सिंह का उल्लेख समकालीन होने से अधिक प्रमाण लगता है। इससे राजा बल्लाल की शक्ति की ठीक कल्पना आती है। बह्मणवाड के क्षत्रिय भुल्लण भी जब उसके सामन्त राजा थे, तब ऐसा लगता है कि अर्णोराज की हत्या कर यह बल्लाल (उज्जयिनीराज) ऊपर बताये मुजब गुजरात में आक्रमण कर कुमारपाल के विरुद्ध रहा होगा। और इसी समय कुमारपाल ने इसकी हत्या की होगी।

अतः ऐसे उज्जयिनी नरेश बल्लाल की ऐतिहासिक खोज स्वतंत्र होनी चाहिए। क्योंकि सम्पूर्ण मालव राज्य पर अधिकार जमाने वाला होगा या न होगा, लेकिन इसी समय 'मालवनरेश' ऐसी उपाधि जिसको होगी और जिसकी हत्या यशोधवल ने की थी, ऐसे एक बल्लाल राजा के इतिहास पर हाल ही खेरला शिलालेख से प्रकाश पड़ने की सम्भावना है।

ता० २४-१२-६७ को डॉ० य० खु० देशपाण्डे तथा प्रो० म० श० वावगावकर इन्होंने नागपुर के 'तरुण भारत' नाम के दैनिक वर्तमान पत्र में 'खेरला गाँव' (जिला बैतुल-म० प्रदेश) के एक शिलालेख पर प्रकाश डाला है। उसमें एक राजा नृसिंह-बल्लाल-जैतपाल ऐसी राज परंपरा दी है। लेखन का काल आरम्भ में शक सं० १०७६ (ई०

१ बह्मणवाडउ नामे पट्टणु, अरिणरणाह-सेणदल वट्टणु।

जो भुंजई अरिण समकाल हो,

रणघोरीय हो सुअहो बल्लाल हो ॥

जामु भिच्छु दुज्जण-मणसल्लणु,

खत्तिउ गुहिल उत्तु जहि भुल्लणु ॥

लहि सपत्तु मुणोसरु जावहि,

भव्वु लेउ आणदिउ तावहि ॥

पज्जुण चरियं (आदि भाग)

स० ११५७) है। तथा दो लाईन के बाद यह लेख खण्डित या अपूर्ण है। उसके बाद शायद ऊपर को पूरक ऐसा लेख है। उसका काल शक स० १०६४ (ई० स० ११७२) है। यह लेख एक वापिकादान के हेतु उत्कीर्ण होने से इसमें इन राजाओं के कर्तृत्व या इतिहास पर खास प्रकाश नहीं पड़ता। तो भी इस शिलालेख का प्रारंभ 'जिनानु-सिद्धिः' से शुरु होने से ये राजा ई० स० १२५७ में जैनधर्मीय थे और बाद एकादशी व्रतमान्य वेदधर्मीय बने ऐसा उल्लेख है। उसका काल ई० स० ११७२ दिया है।

इस समय जैतपाल राजा थे। उनको मराठी के ब्राह्म-कवि मुकुंदकाज ने वेदधर्म का उपदेश देकर ब्रह्म साक्षात्कार कराया था। ऐसा उल्लेख स्वयं मुकुंदराज ने शक स० १११० (ई० स० ११८८) के 'विवेक सिंधु' नामके ग्रंथ में किया है। और उस समय राजा सारंगधर राज्य कर रहा था ऐसा भी बताया है।

इस शिलालेख से यह स्पष्ट होता है की, ई० स० ११५७ से ११७२ तक जैतपाल राज्य कर रहा था। अगर उसका राज्य काल इस मर्यादा के आगे पीछे पांच साल याने ई० स० ११५२ से ११७७ तक ऐसे २५ साल माने जाएं तो ई० स० ११७७ से ११८८ के दरम्यान ही उसका अंतिमकाल निश्चित होता है। तथा बडनगर प्रशस्ति के आधार पर अनेक इतिहास-कारों का यह अभिप्राय है कि राजा बल्लाल की मृत्यु ई० स० ११५१ में या इसके पूर्व ही हुई है। अतः जैतपाल ई० स० ११५१ से ही राज्यारूढ़ होंगे।

राजा बल्लाल के राज्य करने के उल्लेख प्रायः ई० स० ११३५ के मिलते हैं। क्योंकि लक्ष्मीशंकर व्यास जी इस सम्बन्ध में लिखते हैं कि, ऐतिहासिक तौर पर इस बल्लाल का पता लगाना कठिन है। इतना तो निश्चित है कि, बल्लाल ने ई० स० ११३४-४० में यकायक राज्य प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की हो। इससे कम से कम यह बल्लाल ई० स० ११६५ से ११५० तक राज्य करता रहा यह स्पष्ट है। वैसे ही उसके पिता नृसिंह-नरसिंह का राज्य काल ज्यादा से ज्यादा ३५ साल भी माने तो भी ई० स० ११०० से ११३५ तक हो सकता है। निदान इसके पीछे तो जा नहीं सकता।

यह सब देने का कारण यह है कि, इन राज पुरुषों को एलिचपुर के राजा श्रीपाल उर्फ ईलके ही वंशज माना जाता है। क्योंकि खेरला यह गाँव श्रीपाल राजा के आधीन था इतना ही नहीं किन्तु वहाँ के किले में वह रहता था। (आर्चियॉलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, न्यू सिरीज, वाल्यूम १६ पृष्ठ ४५) कितनेक खेटक को खेडला भी कहनेसे खटइल-खेडइल-ऐसे उत्पत्तीके साथ राजा ईल ने ही बसाया है; ऐसा ही मानते हैं। इसी ईल राजा के वंश में जयतपाल राजा हुआ। देखो लिस्ट एन्टिक्वेरियन् रीमेन्स इन् द सेंट्रल प्रॉव्हन्सेस ग्रैंड बेरार-कम्पेन्स, १८६७, पृष्ठ ४६। तथा बैतूल गजेटियरसेल, १७०६ पृष्ठ २६; और बेरार गजेटियर-सर आल्फ्रेड लायस पृष्ठ ११४) इस लेख में प्रो० बाबगावकरके अनुसार-राजा श्रीपाल, जयतपाल के १५० साल पहले हुआ, ऐसा बताया है।

डॉ० य० खु० देशपांडे, राजा श्रीपाल की मृत्यु ई० स० १०७५ के दरम्यान मानते हैं। साथ में यह भी मानते कि राजा श्रीपाल के साथ मुहम्मद गजनी का भांजा दुल अब्दुल रहमान का खेडला और एलिचपुर के पास युद्ध हुआ था। इस समय मुहम्मद गजनी जिन्दा था। मुहम्मद गजनी का काल प्रायः ई० स० ६६६ से १०२७ है। और 'तवारिख-इ-अब्जदिया' के अनुसार श्रीपाल विरुद्ध अब्दुल रहमान का युद्ध ई० स० १००१ में हुआ। तो इस काल में १०-१५ साल का अंतर पड सकता है। ७५ साल का अंतर नहीं आ सकता। निदान १०२७ के पहले श्रीपाल की मृत्यु माननी ही पड़ी।

इससे राजा श्रीपाल तथा नृसिंह तक चार पीढ़ी हो गई हो ऐसा लगता है। क्योंकि इनमें १०० साल का अंतर है। इन को साधनेवाला प्रमाण मिल जाय तो एक लुप्त प्राय दिगंबर जैन राजवंश का पता चल जायगा। बताया जाता है कि, खेरला के किले में एक और शिलालेख है। उसको देखने पर या उसके प्रकाश में आने पर अधिक संशोधन हो सकता है।

या प्रारम्भ में जिस ऊन क्षेत्र का उल्लेख किया, वहाँ के मूर्तिलेखों का या खण्डहरों का अधिक बार किसी विद्वान द्वारा अध्ययन हो जाय तो भी इस राजवंश पर अधिक प्रकाश पड़ने की संभावना है। क्योंकि वहाँ के प्राचीन मूर्तिलेखों

काल वहीं है। यथा^१—(१) मूर्ति संभवनाथ स० १२१८ यह दो लाईन में होते हुए भी अस्पष्ट है (२) अदाजा १२॥ फुट ऊंची मूर्ति ३ के प्रत्येकी लेख संवत १२६३ जेष्ठ वदी १३ गुरी.....आचार्य श्री यशकीर्ति प्रणमति। (यह लेख बहुत बड़ा है) (३) स० १२६३ जेष्ठ वदी १३ गुणे (गुरी) सिधी प० तरगसिंह सुत जीतसिंह प्रणमति। (४) आचार्य श्री प्रभाचन्द्र प्रणमति नित्य। स० १२५२ माघ सुदी ५ श्री चित्रकूटान्वये साधु (हु) बाल्हु भार्या शाल्ह तथा मन्दोदरी सुत गोल्ह रतन भालू प्रणमति नित्यम्। तथा कुछ मूर्तियों पर इस प्रकार प्रतिभासित होता है—(५) स० १२४२ माघ सुदि ५..... ...आदि।

इन मूर्तिलेखों के काल का अध्ययन करने से पता चलता है कि इस क्षेत्र पर मन्दिरों की रचना ई० स० ११६२ के पूर्व ही हो गयी होगी। अतः खेरला शिलालेख में उद्धृत नृसिंह के पुत्र बल्लाल ही उनके निर्माता हैं। न कि होयसल नरेश बल्लाल। क्योंकि इस होयसल वीर बल्लाल का काल ई० स० ११७३ से १२२० है। राजा बल्लाल के जीते जी ही वहाँ प्रतिष्ठा नहीं हो सकती कारण जब राजा बल्लाल वहाँ एक अंतिम मन्दिर नहीं बनवा पाया (सिर्फ ६६ ही बनवा पाया) तब १०० मन्दिर की पूर्ति के पहले मन्दिरों में प्रतिष्ठा कार्यों में वह तैयार नहीं हो सकता। तथा इस होयसल नरेश की मृत्यु कोई यकायक होने का उल्लेख नहीं मिलता जिससे उसकी १०० मन्दिर बनवाने की प्रतिज्ञा अधूरी रह जाय। अतः होयसल नरेश के बदले उज्जयिनी नरेश बल्लाल की संभावना जरूर है। लेकिन जब तक उसके जैनत्व पर प्रकाश न पड़े तब तक उसको उनके निर्माता या जैन मन्दिरों के निर्माता नहीं कहा जा सकता। मन्दिरों के निर्माता के सम्बन्ध में वहाँ के एकाध मन्दिर पर शिलालेख अवश्य ही प्राप्त होगा।

दूसरी महत्व की बात यह है कि, उनके प्रमुख मन्दिर को 'ग्वालेश्वर मन्दिर' कहते हैं। यद्यपि इसका अर्थ वहाँ वाले या इतिहासकार यह बताते हैं कि, 'इस मन्दिर के १ यह सब मूर्तिलेख ऊन तीर्थ के प्रसिद्ध किताब पर से लिये हैं।

पास अनेक गायें चरती हैं तथा विश्राम के लिये यहाँ बैठती है, अतः इस मन्दिर को 'ग्वालेश्वर मन्दिर' कहते हैं।' लेकिन मेरा अनुमान विशेषण से वहाँ पर कुछ ऐतिहासिकत्व बताना ऐसा है। जैसे—शिरपुर के एक प्राचीन मन्दिर में एक शिलालेख में—रामसेन के शिष्य—ग्वालगोत्री होने का उल्लेख है। तथा कोशरिया जी के मन्दिर में ग्वाल (ग्वाल) गोत्री दिगंबर जैनों द्वारा प्रतिष्ठा करने के उल्लेख है, उसी प्रकार उस मन्दिर के प्रतिष्ठाकार कोई ग्वालगोत्रीय होंगे। ग्वालीय गढ़ किले का निर्माता कोई ग्वाल राजा था ऐसा बताया जाता है। अतः इस बाबत कुछ सशोधन होना चाहिए। क्योंकि रामसेन के शिष्य के नाते शिरपुर के इतिहास में श्रीपाल राजा को ही ग्वाल गोत्रीय बताया जा सकता है उसी प्रकार उसके वंशज बल्लाल का यह प्रमुख मन्दिर अगर हो और उससे इस मन्दिर को ग्वालेश्वर मन्दिर कहते हों तो भी खेरला शिलालेख उद्धृत मालव नरेश बल्लाल को ही इसके (उनके) निर्माता कह सकते हैं।

तथा इस बल्लाल को ई० स० ११३५ में अचानक राज्य प्राप्ति में सफलता मिल गयी होगी। ऐसा इतिहासकारों का कथन है इससे भी उनके निर्माता राजा बल्लाल के आख्यान से पुष्टी हो मिलती है तथा उसने दोनों नागों का नाश कर घन प्राप्त करने का उल्लेख तो किया ही है कि, जिसके अतर्गत शत्रु तथा बाह्य शत्रु का नाश कर और विपुल घन संचय कर ई० स० ११३५ में महत्व प्राप्त किया हो।

इसकी अधिक पुष्टि के लिये उज्जयिनी नरेश की स्वतंत्र खोज, और उन क्षेत्रों का बारीकी से अध्ययन तथा उत्खनन होना चाहिए। क्योंकि वहाँ १२वीं सदी के अनेक अवशेष प्राप्त हुये हैं तथा और होने की संभावना व्यक्त की जाती है। इन्दौर गजेटीयर में उल्लेख है कि वहाँ इसी समय के धारा नगरी के परमार राजाओं के शिलालेख पाये जाते हैं। (ई० स० ११६५ धारा में सुमलवर्म देव का राज्य था।) अतः इसी क्षेत्र के साथ इसका परिकर को अगर इस दृष्टि से देखा जाय तो ही इस क्षेत्र के निर्माता व इतिहास पर पूरा प्रकाश पड़ सकता है।

शुभचन्द्र का प्राकृत व्याकरण

डा० आ. ने. उपाध्ये एम. ए. डी. लिट्

अनेकान्त (अक्तूबर १९६८, वर्ष २१, किरण ४) में डा० नेमिचन्द्र शास्त्री ने एक लेख लिखा है। इस विषय में संशोधक विद्वानों के लिए कई सन्दर्भों का निर्देश करना मैं अपना कर्तव्य मानता हूँ।

(१) 'शुभचन्द्र और उनका प्राकृत व्याकरण' तथा उसका 'श्रुतसागर के प्राकृत व्याकरण के सम्बन्ध' इस विषय पर पूर्व में बहुत कुछ लेखन हो चुका है। उसका सदर्भ इस प्रकार है : i) शम्भुचन्द्र एण्ड हिज प्राकृत ग्रामर, अर्न्ल्स ऑफ दि भांडारकर ओरिएण्टल इन्स्टिट्यूट, पूना, भाग—१३, अंक १, पृष्ठ ३७-५८, ii) कार्तिकेयानुप्रेक्षा, अगस्त १९६०, प्रस्तावना, पृष्ठ ७९-८८, iii) नितिडोलची का प्राकृत व्याकरणों पर लिखा हुआ फ्रेन्च ग्रन्थ।

(२) इस व्याकरण के प्रकाशन के बारे में बहुत कुछ प्रयत्न पहले हुए थे, परन्तु विपुल हस्तलिखित ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुए और जो हुए वे भी असमाधानकारक थे। व्याकरणसरीखे ग्रन्थों का जल्दबाजी से सम्पादन करना दुःसाहस है' यह दिवंगत पंडित प्रेमी जी की सूचना ध्यान में रखकर इस ग्रन्थ की प्रसिद्धि अब तक नहीं हुई।

(३) पंडित अण्णाशास्त्री उदगांवकर ने जो हस्त-लिखित प्रति मुझे दी थी, वह अब दुर्मिल है। ईडर प्रति से पं० प्रेमी जी ने जो प्रतिलिपि कराई थी, वह सम्भवतः पं० प्रेमी जी के सग्रह में होगी ही।

(४) इस प्राकृत व्याकरण की प्रतियाँ विपुल मात्रा में नहीं मिलती हैं। डा० नेमिचन्द्र शास्त्री ने किस प्रति का उपयोग किया है, इसका उल्लेख नहीं है। जिन रत्न-कोश में इसका निर्देश 'चिन्तामणि व्याकरण' ऐसा किया है, किन्तु वहाँ भी हस्तलिखितों का निर्देश नहीं है। मैं सुनता हूँ कि इसकी एक हस्तलिखित प्रति व्यावर में है, और उसकी प्रतिलिपि शायद शोलापुर में उपलब्ध है।

(५) मैंने १९३० में शुभचन्द्र व्याकरण के सूत्रपाठ की प्रतिलिपि की थी, वह अभी मेरे पास उपलब्ध है।

शुभचन्द्र के प्राकृत व्याकरण का अध्ययन तथा उसकी मौलिकता का निर्णय करते समय दो मुख्य बातें ध्यान में रखनी चाहिए। 'शुभचन्द्र ने अपने व्याकरण में ऐसे कितने नियम और उदाहरण दिये हैं, जो पूर्ववर्ती व्याकरणकारों ने—खासकर त्रिविक्रम और हेमचन्द्र ने—नहीं दिये हैं। (२) और ऐसे कौन-से साहित्य का—खासकर प्राकृत ग्रन्थों का—शुभचन्द्र ने अपने व्याकरण में निर्देश और उपयोग किया है जिनका उपयोग हेमचन्द्र और त्रिविक्रम ने नहीं किया है।

मैं आशा करता हूँ कि इस विषय पर जहाँ-जहाँ सशोधनात्मक कार्य हुआ है, उसे ध्यान में लेकर आगे कार्य करने से ही सशोधन का क्षेत्र बढ़ जायेगा। ●

संग्रह और दान

कवि—जलधर ! तुझे रहने के लिए बहुत ऊँचा स्थान मिला है। तू सारे ससार पर गर्जता है। सारा मानव-समाज चातक बनकर तेरी ओर निहार रहा है। तेरे समागम से मयूर की भाँति जन-जन का मानस शान्ति उद्यान में नृत्य करने लग जाता है। तू सबको प्रिय लगता है। तू जहाँ जाता है, वही तेरा बड़ा सम्मान होता है। पर थोड़ा गौर से तो देख, तेरे पिता समुद्र की आज क्या स्थिति हो रही है। पिता होने के नाते उसे भी बहुत ऊँचा सम्माननीय स्थान मिलना चाहिये था। किन्तु उसे तो रसातल—सबसे निम्न स्थान मिला है। उसकी सम्पत्ति का तनिक भी उपयोग नहीं होता। मेघ ! इतना बड़ा अन्तर क्यों ?

जलधर—कविवर ! इस रहस्य की गिरि-कन्दरा में एक गहन तत्त्व छिपा हुआ है। वह है—सग्रहशील न होना। संग्रह करना बहुत बड़ा पाप है। यही मानव को नीचे की ओर ढकेलने वाला है। संग्रह वृत्ति के कारण ही समुद्र को रहने के लिए निम्न स्थान मिला है और उसका पानी भी पड़ा-पड़ा कड़वा हो गया। समुद्र ने अपने जीवन में लेना ही अधिक सीखा है और देना अत्यन्त अल्प। मैं देने का ही व्यसनी हूँ। सम्मान और असम्मान का, उन्नति और अवनति का, निम्नता और उच्चता का यही मुख्य निमित्त है।

जैन काव्य में विरहानुभूति

डा० गंगाराम गर्ग

कवियों की साधना में विरह का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विरह की अनुभूति प्रेम में तीव्रता, नवीनता लाने के लिए बड़ी उपादेय होती है तथा काव्य-मर्मज्ञों के लिए मर्मस्पर्शी तथा मधुर, इसीलिए श्रेष्ठ कवि अपने काव्य में विरह का वर्णन करते आये हैं। आदि कवि वाल्मीकि के राम के प्रलाप, कालिदास के भ्रज और रति के विलाप तथा पत्थरों को भी रुला देने वाले भवभूति की करुणा विगलित वाणी से काव्य-प्रेमियों का मन आज भी सित्त है। हिन्दी में जायसी की नागमती के आसू युग-युगो तक न भुलाये जा सकेंगे। समाज के कर्मप-कर्म को फेंकने में प्रयत्नशील कबीर आदि सत कवियों ने भी अन्तःकरण में ज्ञान उत्पन्न करने के लिए मार्मिक विरह रागिनियों अलापी है। कृष्ण काव्य-भूमि का वह भाग अधिक मधुर और आकर्षक जो गोपिकाओं की अविरल अश्रुधारा से अभिसिञ्चित है। इसी प्रकार दानतराय, जगजीवन, नवल, पार्श्वदास आदि जैन साधकों का विशाल काव्य-सागर की विरह-उर्मियों द्वारा तरगायित होने से वंचित नहीं रहा है।

हिन्दी काव्य में विरह के दो रूप होते हैं—१. लौकिक विरह २. अलौकिक विरह। लौकिक विरह में आलम्बन और आश्रय लौकिक होते हैं अथवा लौकिक प्रतीत होते हैं यथा—नागमती-रत्नसेन, गोपी कृष्ण। अलौकिक विरह में आलम्बन अलौकिक होता है। कबीर, दादू आदि सभी सन्तों का विरह इसी प्रकार का है। जैन कवियों का विरह वीतरागी तीर्थंकरों के प्रति है, अतः वह अलौकिक है। जैन कवियों ने अपनी विरहजन्य वेदनायें राजमती के माध्यम से परोक्षरूप में नेमिनाथ (तीर्थंकर) तक पहुँचाई हैं। जूनगढ़ के राजा उग्रसेन की पुत्री राजमती का विवाह नेमिनाथ से होना था। नेमिनाथ वाराणसी की भोज्य-सामग्री के लिए एकत्रित पशुओं को देखकर इस हिंसक संसार से विरक्त हो गये और राजमती विरह में

तड़पती ही रही। राजमती की नेमिनाथ से मिलन की इसी तड़पन और पीड़ा में जैन भक्तों की आराध्य के प्रति विकलता व आतुरता अन्तर्निहित है। जैन साधकों ने चेतन के कुमति से प्रेम करने पर सुमति की तड़पन दिखलाकर आध्यात्मिक विरह के भी थोड़े चित्र प्रस्तुत किये हैं।

हिन्दी साहित्य में विरह की १० अवस्थायें मानी गई हैं—अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण। इनमें से 'उन्माद' के के अतिरिक्त विरह की सभी अवस्थायें जैन काव्य में उपलब्ध होती हैं—

अभिलाषा :—

अभिलाषा विरहानुभूति की पहली अवस्था है। इनमें विरहिणी को प्रिय-दर्शन की सामान्य इच्छा रहा करती है। राजमती नेमिनाथ के दर्शन पर ही अपनी प्रसन्नता आधारित मानती है—

देख्यो, री ! कहीं नेमिकुमार ।

नैननि प्यारो नाथ हमारो प्रान जीवन प्रानन आधार ।

—भूधरदास

चिन्ता :—

सामान्यतः अभिलाषा से ही जब प्रियतम के दर्शन नहीं होते, तो विरहिणी को उसका विरह पीड़ित करने लगता है। अब वह चिन्तित रहने लगती है। राजमती विद्योग के प्रारम्भिक क्षणों में स्वप्न में प्रिय-दर्शन का किञ्चित् लाभ उठा लिया करती थी, किन्तु कोरे स्वप्न उसके वेदनाग्रस्त हृदय को कब तक सहलाते? रंगीन स्वप्नों का महल भी जब ढह गया तो वह तड़पती पुकार उठी—

अब क्यों देर हो, जनुपति नेमिकुमार प्रभू सुनि ।

किञ्चित् सुख सपने का वीत्यो, अब बुःख भयो सुमेर हो ।

मैं अनाथ मोहि साथ निबाहो, अब क्यों करत अबेर हो ।
'मानिक' अरज सुनो रजमति प्रभु राखो चरननि लेर हो ।
स्मृति :—

प्रिय-दर्शन की चिन्ता के बढ़ते रहने के साथ प्रियतम की स्मृतियाँ विरहिणी के विरहदग्ध हृदय को कुरेदने लग जाती हैं । तो उसकी आकुलता अधिक बढ़ जाती है । स्मृतियों में प्रियतम के अनुपम रूप और सयोगकालीन मधुर घटनाओं की ही अभिव्यंजना नहीं होती, अपितु उसके निर्मोहीपन को उलाहना भी निहित रहता है । राजमती ने नेमिनाथ के सौम्यरूप और दयार्द्र मन को कई बार याद किया है किन्तु उसके निर्मोहीपन की कसक वह मन से नहीं निकाल पाई है—

हे जी, मोकूँ सुरतिहिहारी सय्यं हो नैना लागि ।
जब सँ चढ़े गिरि सुधिह ना लीनी, तुमनं पिया हो ।

गुणकथन :—

इस अवस्था में प्रियतम की गुण पयस्विनी का प्रवाह विरहिणी के हृदय सागर में होकर कण्ठ के माध्यम से उन्मुक्त निस्सरित होने लगता है । लोक-लाज की अभेद्य प्राचीरों भी उसे वाधित नही कर पाती । नेमिनाथ की दया और विरक्ति भाव से प्रभावित राजमती अपने मन को समझाने में असमर्थ होकर कहती है—

कैसे कं समझाऊँ मेरी सजनी,
ओ जडुपति प्रभु सौं प्रीति लगी ।

पशुयन बंध निहारि दयानिधि,

जग असारि लखि भये हैं विरागी ॥ —माणिकचंद

वन को प्रस्थान करने वाले नेमिनाथ लौकिक माया-मोह से उदासीन राजमती को पहचान न सके - राजमती का यह उलाहना कितना मार्मिक है—

कहारी, कित जाऊँ सखी मैं नेमि गये वन छोरे री ।

कहा चूक प्रभु सौं मैं कीनी, जो पीड मोह न लारें री ।

—द्यानतराय

उद्वेग :—

इस अवस्था में पहुँच कर विरहिणी को सुखद वस्तुएं दुःखद प्रतीत होती हैं । राजमती को भी पावस कालीन घटाएँ, नन्हीं नन्हीं फुहारें कीर, कोयल पपीहादि के स्वर अब अच्छे नहीं लगते । सप्तरंगी इन्द्रधनुष, घन गर्जन तो उसका हृदय बेधते हैं—

सखी री सावन घटा ई सतावे ।

रिमझिम बूँद बदरिया बरसत नेमि नेरे नहि आवे ।

कूजत कीर कोकिला बोलत, पपीहा वचन न भावे ।

दाबुर मोर घोर गन गरजत, इन्द्र धनुष डरावे ।

रजनी, शुभचन्द्र, रजत रश्मि या नक्षत्र भी राजमती को बड़ी पीडा देते हैं—

नेम निशाकर बिन यह चंदा, तन मन दहत सकल री ।

किरन किधों नाविक शर, तति कं ज्यों पावक की झलरी ।

तारे हैं कि अंगारे सजनी, रजनी राकस दलरी ।—भूधरदास प्रलाप :—

बहुत दिनों तक तडपते रहने पर भी प्रियतम के दर्शन न पाकर विहरिणी लोक-लज्जा को भी कतई भूल जाती है तथा अपनी प्रेमातुरता को गुरुजनों के समक्ष स्पष्ट करने में भी नहीं हिचकती । प्रलाप की अवस्था राजमती के विरह-वर्णन में भी देखी जा सकती है—

मां विलंब न लावरी, पठाव तहारी, जहं जगपति प्रिय प्यारो
और न मोहि सुहाव कुछ अब, दीसैं जगत अंधारो री ।

मीरा की तरह राजमती भी ढोल बजा-बजाकर कहती फिरती है कि वह न तो नेत्रों में काजल डालेगी, न श्रृंगार करेगी । स्नान करने तथा अलको को मोती-मांग से संवारने में भी अब उसकी रुचि नहीं । वह तो वैरागिनी होगी । नेमिनाथ की सच्ची दासी बनेगी—

कहां ये मंडल करूं कजरा नैन भरूं,

होऊँ रे बंरागन नेम की चेरी ।

शीश न मंजन देउं, मांग मोती न लड्डे,

अब पूरहु तेरे गुनन की बेरी ।

—रत्नकीर्ति

व्याधि :—

इस अवस्था में विरहिणी को प्रिय-मिलन की आशा अत्यन्त क्षीण हो जाती है । उसको शामिल करने के प्रसाधन भी प्रतिकूल साबित होते हैं । राजमती भी प्रिय-वियोग में इतनी संतप्त है कि कर्पूर, कमलदल चन्द्र-किरण आदि प्रसाधन उसके संताप को बढ़ाते ही हैं—

नेमि बिना न रहै मेरा जियरा ।

हेररी हेली तपतउरकंसो, लावत क्यों न निज हाथ न नियरा ।

करि करिवूर कपूर कमलदल, लगत करूर कलाबरसियरा ।

'भूधर' के प्रभु नेमि पिया बिन, शीतल होय न हियरा ।

जड़ता :—

जड़वत् सुख-दुःख को महसूस न कर पाना, खाने-पीने तथा सोने आदि की आवश्यकता न होना वियोग की 'जड़ता' अवस्था है। जैन कवियों के कई पदों में 'जड़ता' अवस्था के दर्शन होते हैं—

नहिं न भूख नहिं तिसु लागत, घरहिं घर मुरझात ।
मन तो उरभि रह्यो मोहन सूं, सेवन ही मुरझात ।
नाहिं न नौद परत निसि, बासुर होत विसुरत प्रात ।

—कुमुदचन्द्र

मात तात परयन न सुहावे, पान पान विष ह्वै गया ।
अब हमकूं घर में नहिं रहनो, चित वंशन बिन बह गया ।
मरण—

यह विरह की अन्तिम अवस्था है। इसमें विरहिणी या तो आत्मघात करने लगती है या ईश्वर से मरने की प्रार्थना करती है। साहित्य में यह अवस्था विरल है। जैन काव्य में विरहिणी ने कभी आत्मघात करने या मरने की बात नहीं सोची। एकाध स्थल पर उसे अपने निराधार जीवन के अधिक दिनों तक चल सकने की शका अवश्य हो गई—

देखो रैन वियोगिनी चकई, सो बिलखै निशि सारी ।

एक रूपक

“एक फूल डाली पर हंस रहा था, अने रूप और सौरभ पर गदराया हुआ। पास ही में एक पत्थर पड़ा था, बिल्कुल श्री-हीन ! बेडिल ! पत्थर की ओर देखकर फूल का अहंकार उदीप्त हो उठा—“पत्थर ! तुम्हारी भी कोई जिन्दगी है ! न रूप है, न सौन्दर्य ! न सौरभ और न सरसता ! तुच्छ और व्यर्थ है तुम्हारा जीवन ! सिर्फ जगत् की ठोकरे खाने लायक ? एक ओर मुझे देखो—हजारों लाखों आंखें मेरी रूप-सुधा को पी रही हैं, मधुर-सुवास पर मानव ही क्या, हजारों-हजार भौरे मँडराए आ रहे हैं, सृष्टि का समस्त सौन्दर्य मेरे मधुकोपो में उछल रहा है।”

पत्थर फिर भी मौन था, फूल के अहंकार का उत्तर देने के लिए समय की प्रतीक्षा करने लगा। एक कलाकार (शिल्पी) आया, पत्थर को उठाकर छैनी और हथौड़ों से तरासा, सुन्दर दिव्य देव प्रतिमा बनाई, किसी घनिक श्रद्धालु ने एक भव्य एवं विराट मन्दिर बनाकर, उसे भगवान के सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया। और पूजा के लिए वही फूल तोड़ कर भगवान् के चरणों में चढ़ाया गया।

फूल ने देखा, तो स्तब्ध ! अरे, यह तो वही पत्थर है, जिसकी मैं हँसी उड़ाया करता था, आज यह भगवान् बन गया और मुझे इसके चरण-स्पर्श करने पड़े यह सब क्या हुआ ?

पत्थर की देव प्रतिमा फूल को यों चढ़ा देख कर हलकी-सी मुस्कराहट के साथ बोली—“पुष्प ! तुम वही हो न, जो कल अपनी डाली पर इतराए मुझे नफरत की नजरों से घूर कर व्यर्थ और तुच्छ बता रहे रहे थे। कब क्या हो एकता है, कुछ पता नहीं। यह ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर का खेल सदा होता रहता है। इसमें उदास होने जैसी क्या बात है भाई।”

फूल बिल्कुल मौन था, अपनी दयनीय दशा को वह आँख खोल कर ठीक तरह देख भी नहीं सका।

आश बांधि अपने जिय राखें, प्रातः मिले पिय प्यारी ।
मैं निराश निरधारिनी कसैं जीवों अती दुःखारी ।
इह विधि विरह नदी में व्याकुल उपसेन की बारी ।

उक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि अभिव्यक्ति की शैली के अन्यथा होने पर भी जैन कवियों की विरह-स्थितियाँ हिन्दी के अन्य कवियों जैसी ही हैं। जैन कवियों के विरह में 'उन्माद' की स्थिति न मिलने का कारण उसकी आध्यात्मिकता है। 'उन्माद' की अवस्था में विरहिणी आत्म-विस्मृत और विभ्रष्ट-सी रहती है—कभी रोना, कभी हसना, कभी पति में अनुरक्त होना तथा कभी विरक्त होना आदि। जैन कवियों के विरह में राजमती के माध्यम से परमात्म के प्रति आत्मा की व्याकुलता का निदर्शन है अतः उसमें आत्म विस्मृति कैसी ? 'उन्माद' के अभाव के अतिरिक्त जैन कवियों की विरह उक्तियों में न तो सूफी कवियों के से बीभत्स प्रसंग है और न रीतिकालीन कवियों जैसी उनहात्मकता। 'मान' आदि से रहित जैन कवियों का विरह-वर्णन अपनी सजीवता, नैरन्तर्य व मर्मस्पर्शिता के कारण हिन्दी विरह-काव्य में निराले स्थान का अधिकारी है। ●

कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर

जैन कीर्तिस्तम्भ चित्तौड़ के अप्रकाशित शिलालेख

श्री रामवल्लभ सोमानी जयपुर

“महाराणा कुम्भा” और “वीर भूमि चित्तौड़” पुस्तक लिखते समय मुझे कई दिनों तक चित्तौड़ रहना पड़ा था और यहाँ के शिलालेखों के बारे में भी विस्तृत अध्ययन करने का अवसर मिला था। उदयपुर महाराणा साहब के संग्रह में कई शिलालेखों की प्रतिलिपियाँ देखने को मिली। इनमें से ३ लेख जैन कीर्तिस्तम्भ से सम्बन्धित हैं और एक किसी विस्तृत प्रशस्ति का खंड था। ये लेख मेवाड़ के विस्तृत इतिहास “वीर विनोद” लिखते समय सग्रहीत व राखे गये थे। इनमें से कुछ उदयपुर संग्रहालय में रखे हैं और अब तक अप्रकाशित हैं। लेख बहुत अधिक खंडित हैं।

वि० सं० १५४१ के मूर्ति लेख में जैन कीर्तिस्तम्भ स्थापित करने वाले साहू जीजा और उसके पुत्र पुण्यसिंह का नामोल्लेख है। प्रस्तुत लेखों में एक जीजा का और दूसरा श्रेष्ठ पुण्यसिंह का है।

मैंने कुछ वर्षों पूर्व “चित्तौड़ और दिगम्बर जैन सम्प्रदाय” नामक विस्तृत लेख शोध पत्रिका (उदयपुर) में प्रकाशित कराया था। इसके बाद गंगराल और सेणर्वाँ जिला (चित्तौड़) से प्राप्त १३७५-७६ और १३८६ के दिगम्बर जैन लेख भी ‘वीरवाणी’ जयपुर में प्रकाशित कराये थे। इन लेखों के मिल जाने से चित्तौड़ में दिगम्बर सम्प्रदाय की स्थिति का विस्तृत परिचय मिलता है।

श्रेष्ठ जीजा साहू सम्बन्धी ३ लेख मिले हैं। इनमें से २ लेख इसके साथ दिये जा रहे हैं। तीसरा लेख बहुत ही अधिक खंडितावस्था में है। पहले में प्रथम श्लोक में कैलाश शैल शिखर स्थित आदिनाथ देव की स्तुति की गई है। दूसरे श्लोक में अरिष्टनेमि की स्तुति की गई है। इसके बाद पावापुरी सम्मेलन शिखर आदि निर्वाण स्थलों का उल्लेख है। कुल १२ श्लोक हैं। पाठ अधिकतर खंडित हैं। अन्त में “संघ जीजान्वितं सदा” उल्लेखित है। दूसरे लेख में जिसका आगे का कुछ भाग खंडित हो गया है। संघपति जीजा का सुन्दर वर्णन है। इसमें उसके द्वारा स्तम्भ निर्माण करने का भी उल्लेख किया है। इसे बघेरवाल

जाति का वर्णित किया है। [बघेरवाल जातीय सा० नाथ सुतः जीजा केन स्तम्भः कारापितः]।

पुण्यसिंह सम्बन्धी लेख सम्भवतः किसी मन्दिर में लग रहा था। इसका प्रस्तुत खंड गुसाईजी के चबूतरे पर स्थित समाधि पर लग रहा है जिसे किसी ने बुरी तरह से घिस दिया है जिसे अब अच्छी तरह से पढ़ नहीं सकते हैं। इस लेख को ढूढ़ने के लिए गत वर्ष मई में चित्तौड़ गया था। तब वहाँ अनायास ही जैन कीर्ति स्तम्भ के पास महावीर प्रसाद प्रशस्ति वि० सं० १४६५ का खंड मिल गया है जिसे मैंने “वरदा” पत्रिका में प्रकाशित करा दिया है।

श्रेष्ठ पुण्यसिंह वाला यह लेख कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इसमें जैन साधु विशालकीर्ति और शुभकीर्ति का उल्लेख है जो निस्संदेह दिगम्बर सम्प्रदाय के हैं। प्रस्तुत लेख में इनका बड़ा सुन्दर वर्णन है। इन्हें बड़ा विद्वान् वर्णित किया गया है। श्लोक सं० ४० से ४२ तक विशालकीर्ति का वर्णन है। ये सम्भवतः दर्शनशास्त्र के विद्वान् थे। श्लोक सं० ४३ एवं ४४ में शुभकीर्ति का उल्लेख है।

प्रारम्भ में श्लोक सं० २२ से २५ तक जीजा श्रेष्ठ का वर्णन है। इसके द्वारा सुन्दर मन्दिर निर्माण का उल्लेख है। दुर्ग के अतिरिक्त चित्तौड़ की तलहटी, खोहर सांचोर आदि में भी जैन मंदिर बनवाये। इसका पुत्र पुण्यसिंह था जो महाराणा हमीर का समकालीन था। इसका प्रस्तुत प्रशस्ति में बड़ा सुन्दर वर्णन है।

इन प्रशस्तियों के मिल जाने से यह विवादास्पद प्रश्न समाप्त हो जाता है कि जैन कीर्तिस्तम्भ दिगम्बर सम्प्रदाय का ही था। इसे श्रेष्ठ जीजा ने बनाया था। इसके पुत्र पुण्यसिंह ने भी कई निर्माण कार्य कराये। संभवतः कीर्तिस्तम्भ की प्रतिष्ठा विशालकीर्ति से कराई गई थी, क्योंकि लेख की अंतिम पंक्ति में ‘मानसस्तम्भ’ की प्रतिष्ठा का जो वर्णन आता है वह संभवतः इससे ही सम्बन्धित रहा हो। इसका निर्माणकाल भी १३वीं शताब्दी सिद्ध होता है।

गुसाईं जी के चबूतरे के पास की अपूर्ण प्रशस्ति

सुनुस्तस्य तु दीनाको वाच्छो भार्या समन्वितः अधः
सूरोति पूजायै पुरदरसचीरुचं ॥२१॥ नायक्यः
सूनुरयासीत् नायकाद्धर्म कर्मणि अथवा न.....
कर्मसु सद्धंदा ॥२२॥ विशाल कच्छके तुच्छ च्छाया
छलध्वज ब्रजैः निज प्रासाद सौधाग्रनृत्यतुगकरैरिव
॥२३॥ तत्रयः कारयामास.....मदिरमिदिर मुन्दरं
रम्यकाम्यं सम्यक्त्व वेतसा ॥२४॥ स्वःसोपानोपदेश
द्रव्यति च जिनः श्रीपदोत्कंठितानां । सोपानंमंडपोपि
प्रकटयति ह.... विवाहः उच्चैः प्रासाद चचत्कनक
मय महा कुंभ शुभदध्वजाग्रैरारूढा नृत्यनीवप्रभु-
पदजयिनी मानसी सिद्धिरस्य ॥२५॥ नागश्री
संगतो देन.....जडाग्नयः कालकूटान्वयोन्माथी
योवृषांकः कलौयुगे ॥२६॥ हान्लजिजुस्तथा न्योट्टल
ऽमभिधः श्री कुमार स्थिराख्य पटः श्री ए.....
पि विजयिनश्चक्रवर्ती श्रियस्त तेषां या जिजु नामा
जनि जनि हनप्रप्राण पोराणमार्ग्यः प्रज्ञाति श्रीत्रिवर्ग
प्रभुरभव दसो जैन [जैनधर्माभिलम्बी] ॥२७॥ यश्च-
न्द्र प्रभमुच्चकूटघटनं श्री 'वित्रकूट' नटत्कोत्रतपल्लव
तालवी जनमरुप्रध्वस्तसुर्याश्रमे श्री चैत्ये तलहट्टिका-
समघटी श्रीसाद पीध्या.....वि जिनेश्वरस्य सदन
श्री खोटुरेसत्पुरे ॥२८॥ बूढा डोगरके भ, घा च
सुमिरी जाने समारभ्यतन्मानस्तम्भ महादिम.....
मिदनिर्वर्त्य.....सत्य सय सुमगला य जयिने 'श्री-
पूर्णसिंहायवैः' । गीर्णोदयिनीश्च यं समगम-
धर्मानुरागोत्वणः ॥२९॥ पुण्यसिंहोपि धर्मधुरा
धवलवृहणः जितारिः पितृसद्भारदत्तस्कंधो जयत्य-
सौ ॥३०॥ किंचि दारोपित स्कंधोऽभ्यास योगाद्दिने
दिने विषमेऽधिवलो भूयोद्धवलः शवलोचन ॥३१॥
अन्वयागत सद्धर्म भार धोरेय विक्रमः अकिणां कष्ट
शु स्कन्धः 'पुण्यसिंहो' महाद्भुतम् ॥३२॥ यत्पुण्यं
निटले भाति भारती चक्रमण्डले यत्कीर्तिस्त्रिजग-
त्सौधे धर्मलक्ष्मीर्मलांबुजे ॥३३॥ अपूर्वाय धनीक-
श्चिद्यच्छन्नपिय दृच्छया वद्धयत्य निशं स्व स्वं
परं सत्पुण्य संचयः ॥३४॥ उररीकृत निर्वाहनिव
सौम्यैव संपदः स्थिरा श्रयपदं मेजुस्तेजो कुभित-

विग्रहाः ॥३५॥ 'पुण्यसिंहो' जयत्येष दानिनां जन-
कुञ्जरः यत्कीर्ति कामिनी नेत्रे कञ्जल भुवनांबरं
॥३६॥ कि मेरुः कनकप्रभः किमु हरि गौर्वाण-
प्रियः कि सोमः सकलं चकारस्पुन्योदयात्पेयं धर्म-
धुराधराविजयते श्री पूर्णसिंहः कलौ ॥३७॥ कि
मेरु कि न मेरु किमुत सुरगुरुः कि हरिः कि
मुरारिः कि रुद्रः कि समुद्रः किमुत च विलसच्चं-
द्रिका चद्र चद्रः उन्नत्या स्वेष्टदत्त्या विमलतर-
धियासद्धि भूत्या विमत्या गोनीत्या रत्नभूत्यासकल
तनुतया पूर्णसिंहः पृथिव्यां ॥३८॥ ध्येयस्तस्य
'विशालकीर्ति' मुनिपः सारस्वत श्रीलता कंदोद्धेद-
धनाय मानवधनः स्याद्वादविद्यापतिः, वर्गत्या
स गर्वचो विलोम् विलसद्भोलिदीर्यत्यक्ष क्षोणी
[चं] चचत्स मयास्तपो निधिरसा वासीद्धरश्री तले
॥३९॥ कतावर्काकाच्छंश्य कृतसित परवादि द्विप
मदं क्वनिः श्रीमत् प्रेमप्रचुररस निस्यदि कवितो
पन्यास प्राप्ते क्वच विहित वगव्य जनिता मनो
गम्य रम्य श्रुतमिह यदीय विलसितं ॥४०॥ योगा
नगत्रिनेत्रस्त्रिभुवनरचनानूतनेऽपित्रिनेत्रो मीमांसा
वाग्निरोध प्रकटनदिन कृत् सांख्य मत्तेभसिंहः
उद्यद्वोद्वाहि दप्पस्फुरदुजगुरुडः प्रौढयाधीक शैल-
श्रेणी सपात शंपा कलित वर वचो वर्णिनी वल्ल-
भो यः ॥४१॥ तत्पुत्रः 'शुभकीर्ति'रुजित तपोनुष्ठान
निष्ठापति श्री संसारविकार कारण गुणस्तृप्यन्मनो
देवतः प्रारब्धाय पद प्रयाण कलसत्पंचाक्षरोच्चारण
पुत्यत्कीकृत निर्भवे हिमककुक्षध्वत्स माध्याब्धिठः
॥४२॥ सिद्धांतोदधिबीचिवद्धनस्त्रद्धं द्रोवितं द्रोधुना
विख्यातोऽस्ति समग्रशुद्ध चरितः श्रीधर्मव.....
यतिः तत्कीर्तिः किल धोर वाद्धि नृपति श्रीनार-
सिंहादिह स्वीकृत्य प्रकटीचकार सततं 'हमीर'वीरो-
प्यसौ ॥४३॥ तच्चरण कमलमधुपेमानस्तम्भ
प्रतिष्ठयामानं । प्रकटी चकार भुवने धनिकः श्री-
'पूर्णसिंहोऽत्र' ॥४४॥

जैन कीर्तिस्तम्भ सम्बन्धि लेख

"खाति साय न सुधा सं प्राव मं प्रोदयाः ॥१॥
द्वारप्रतिपक्षशक्तविभवन्यग्भावभगोद्गत स्व

व्यापारमनारतयद वृ.....

पदस्वाद्याकाररसानुरक्ति खचितं क्षोभभ्रमा-
वतितं चित्तं क्षेत्र नियंत्रितं महदणु ख्यात्यं कितं
विघ्नित त्यागादि.....

तत् कौटस्थ्यं प्रति पद्यनंदथ सदामुद्धि परा विभ्रता
॥४॥ प्रत्येकार्पित सप्त भंग्यु पहितेर्द्धमैरनंतैर्विधि...

नत द्रूप विद्रूप शाश्वदने दसानवलवी भावम्ब सा
कुर्वत भावान्निविशतः पराकृत तृषो द्वेष्या न शेषा...

मचलस्तच्छ प्रभगेस्फुरन् दूरं स्वरंमसंकरव्यति-
करंति तिर्यङ्...लेतोर्द्धतां आकारं वियुत युतं च ...

स्व महसि स्वार्थं प्रकाशात्मके मज्जन्नो निरुपाक्ष
मोथचिद चिन्मोक्षाधितीर्थ क्षिपः कृत्वा नाद्य.....

स्थिति कृते स्वर्गापवर्गात्तयो यः प्राज्ञैरनुमीयते
स्वीकृति ना 'जीजेन निर्मापित स्तम्भः' सै.....

शुभा लोकेनैकं ख्यते 'बधेरवाल जातीय' सा 'नाय-
सुतः जीजाकेन' स्तम्भः कारापितः । शुभ भवतु ॥४॥

३ यत्रार्हता गणभृतां श्रुतपारगणा,
निर्वाणभूमिरिह भारतवर्षजानाम् ।
ता मद्य शुद्धमनसा क्रियया वचोभिः,
संस्तोतुमुद्यतमतिः परिणौमि भक्त्या ॥१॥
कैलाशे शैलशिखरे परिनिवृत्तोऽसी ।
शैलेशिभावमुपपद्य वृषो महात्मा ।
चम्पापुरे च वसुपूज्यसुतः सुधीमान् ।
सिद्धि परामुपगतो गतरागबधः ॥२॥
यत्प्रार्थ्यते शिवमयंविबुधेश्वराद्यैः,
पाखण्डिभिश्च परमार्थं गवेशशीलैः ।
नष्टाष्टकर्मसमये तदरिष्टनेमिः,
संप्राप्तवान् क्षितिधरे बृहदूर्जयन्ते ॥३॥
पावापुरस्य बहिरुन्नतभूमिदेशे,

॥ ये दोनो लेख पाषाणखड्डों मे अपूर्ण और त्रुटित होने के कारण अत्यन्त अशुद्ध है । फिर भी वे अपनी इष्ट सिद्धिमे सहायक है । अतएव उन्हें जैसे का तैसा दिया जाता है । हां, तीसरा लेख पूज्यपादकी निर्वाणभक्ति के अन्त मे १२ पद्यों में निबद्ध है, उससे शुद्ध करने मे मुझे सहायता मिली है । वे १२ पद्य जैन कीर्तिस्तम्भ के शिलालेख मे अंकित है । अन्तिम पद्य में जीजा के सघ की रक्षा की कामना की गई है ।

परमानन्द शास्त्री

पद्मोत्पला कुलवतां सरसां हि मध्ये ।

श्रीवर्द्धमान जिनदेव इतिप्रतीतो,

निर्वाणमापभगवनप्रविधूत पाप्मा ॥

शेषास्तु ते जिनवराहतमोहमल्ला,

ज्ञानार्कभूरिकरणैरवभास्य लोकान् ।

स्थानं परं निद्रवधारितसौख्यनिष्ठं,

सम्मदपर्वततले समवा पुरीशाः ॥

आद्यश्चतुर्दशदिनै विनिवृत्तयोगः,

षष्ठेन निष्ठितकृतिजिनवर्द्धमानः ।

शेषा विधूतवनकर्मनिबद्धपाशा,

मासेन ते यतिवरास्त्वभवान्वियोगाः ॥

माल्यानिवाक्स्तुतिमयः कुसुमैः, मुदृद्धा

—न्यादायमानसकरैरभिमतः किरतः ।

पर्येम आदृति युताभगवन्निपद्या,

सप्राथिता वयमिमे परमा गति ताः ॥७॥

शत्रुंजये नगवरे दमितारिपक्षाः,

पंडोः सुताः परमनिवृत्तिमभ्युपेताः ।

तुंग्या तु संगरहितो बलभद्रनामा,

नद्यास्तटे जितरिपुश्च सुवर्णभद्रः ॥८॥

द्रोणीमति प्रबलकु डलमेढ्रके च,

वैभारपर्वततले वर सिद्धकूटे ।

ऋष्यद्रिके च विपुलाद्रि बलाहके च,

विन्ध्ये च पौदनपुरेवृषदीपके च ॥९॥

सह्याचले च हिमवत्यपि सुप्रतिष्ठे,

दंडात्मके गजपथे पृथुसारयष्टौ ।

ये साधवो हतमलाः सुगतिप्रयाताः,

स्थानानि तानिजगति प्रथितान्यभूवन् ॥१०॥

इक्षोर्विकाररसपृक्तगुणेन लोके,

पिष्टोऽधिकं मधुरतामुपयाति यद्वत् ।

तद्वच्च पुण्यपुरुषैरुषितानि नित्यं,

स्थानानितानि जगतामिह पावनानि ॥११॥

इत्यर्हता शमवतां च महामुनीनां,

प्रोक्ता मयात्र परिनिवृत्तिभूमिदेशाः ।

ते मे जिना जितभया मुनयश्च शांता,

दिश्यासुराशु सुगतिं निरवद्यसौख्याम् ॥१२॥

तेन सुवानंत जिने[श्वरा]णां मुनिगणानां च[निर्वाण]

स्थानानि निवृत्त्यैः [वा] पांतु संघ जीजान्वितं सदा । ●

वसुनन्दि के नाम से प्राकृत का एक संग्रह-ग्रन्थ: 'तत्त्वविचार'

प्रो० प्रेमसुमन जैन एम. ए., शास्त्री

'तत्त्व विचार' की सं० १६८८ में लिखित प्रति का मैंने अवलोकन किया है, पन्नालाल सरस्वती भवन व्यावर से प्राप्त हुई थी। इतनी आधुनिक प्रति होने पर भी अशुद्धियाँ इसमें काफी हैं। जगह-जगह पाठ भी छूटे हैं। कुछ गाथाएँ भी लुप्त हैं। ग्रन्थ का प्रारम्भ श्री पार्श्वनाथ की वन्दना के साथ प्रारम्भ होता है—

णमिय जिनपासपयं विरवहरं पणय बंछिप्रत्यपयं ।

बुच्छं तत्त्वविचारं सखेवेण निसामेह ॥१॥

तदुपरांत पञ्चमस्कार मन्त्र की महिमा एवं फल का निरूपण २७ गाथाओं में किया गया है। मन्त्र को जिन शासन का सार बतलाया गया है—

जिन सासनस्य सारो चउदसपुष्पाण जो समुद्धारो ।

जस्स मणे णवकारो संसारो तस्य किं कुणई ॥२८॥

इसके बाद दूसरे धर्मप्रकरण में १३ गाथाओं द्वारा दस धर्मों का वर्णन, तीसरे एकोनत्रिंशद् भावना प्रकरण में २६ गाथाओं द्वारा भावनाओं का वर्णन, चौथे सम्यक्त्व प्रकरण में २१ गाथाओं द्वारा सम्यक्त्व का वर्णन, पाँचवें पूजाफल प्रकरण में २० गाथाओं द्वारा पूजा एवं उसके फल का वर्णन, छठे विनयफल प्रकरण में १६ गाथाओं में पाँच विषयों का स्वरूप एवं फल का वर्णन, सातवें वैयावृत्य प्रकरण में १४ गाथाओं द्वारा वैयावृत्य का वर्णन, आठवें सप्तव्यसन प्रकरण में १३ गाथाओं द्वारा सात व्यसनों का वर्णन, नौवें एकादश प्रतिमा प्रकरण में ४० गाथाओं द्वारा प्रतिमाओं का विशद वर्णन, दसवें जीवदया प्रकरण में २३ गाथाओं द्वारा अहिंसा आदि का वर्णन, ग्यारहवें श्रावकविधि प्रकरण में ६ गाथाओं द्वारा जिन प्रतिष्ठा आदि का वर्णन, बारहवें अणुव्रत प्रकरण में १० गाथाओं द्वारा संक्षेप में अणुव्रतों का स्वरूप

वर्णन तथा तेरहवें और अन्तिम दान प्रकरण में ५६ गाथाओं द्वारा सभी प्रकार दानों का स्वरूप एवं फल निरूपण किया गया है।

अन्त की दो गाथाओं में से प्रथम ग्रन्थ और ग्रन्थकार का नाम निर्दिष्ट है तथा अन्तिम गाथा आशीर्ष वचन के रूप में है—

जो पढइ सुणइ अक्खइ अण्णं पढाइ वेई उवएसं ।

सो हणइ णियय कम्मं कमेण सिद्धालयं जाइ ॥२९५॥

प्रस्तुत 'तत्त्वविचार' के सम्पादन आदि के विषय में भाई सा० डा० गोकुलचन्द्र जैन, वाराणसी मुझे बराबर प्रेरित करते रहे। अतः मैं इसी दृष्टि से इस ग्रन्थ को देख रहा था। 'तत्त्वविचार' को बहुत समय तक मैं वसुनन्दि सैद्धांतिक की ही एक अन्य रचना मानता रहा। ग्रन्थ में स्वयं इस बात का निर्देश है—

एसो तत्त्वविचारो सारो सज्जण जणाण सिवसुहवो ।

'वसुनदिसूरि रइओ भव्वाण पवोहणट्ठं खु ॥२९४॥

वसुनदिसूरि, आचार्य वसुनन्दि, वसुनन्दि सैद्धान्तिक ये सब एक ही व्यक्ति के विशेषणयुक्त नाम मुझे प्रतीत हुए। 'तत्त्व विचार' के लिपिकार ने अपनी प्रशस्ति में भी इसी बात की पुष्टि की है—'इति वसुनन्दी सैद्धांती विरचित तत्त्वविचार समाप्तः।' १० आशाधर ने वसुनन्दि की बहुमुखी प्रतिभा, संस्कृत-प्राकृत की उभय भाषा विज्ञता एवं अनेक सैद्धान्तिक ग्रंथों के रचयिता होने के कारण उन्हें सैद्धान्तिक कहा है—'इति वसुनन्दि सैद्धान्तिकमते'—^१ इससे भी मुझे अपनी मान्यता के लिए बल मिला। साथ ही 'तत्त्वविचार' और वसुनन्दि श्रावकाचार के विषय की सम्यता, भाषा की एकता और श्रावकाचार की लगभग १०० गाथाओं का 'तत्त्वविचार' में पाया जाना आदि ने मुझे यह मानने को मजबूर कर दिया कि प्रस्तुत 'तत्त्व-

१. प्रति में 'इति सप्त व्यसन प्रकरण ॥८॥' लिखना छूट गया है। अतः ग्रन्थ में १३ प्रकरण होने पर भी १२ प्रकरण का ही निर्देश है।

२. सागार धर्मावृत्य अ. ३, श्लोक १६ की टीका तथा ४-५२ की टीका में।

विचार' श्रावकाचार के रचयिता वसुनन्दि की ही परवर्ती रचना होनी चाहिए। क्योंकि दूसरे के ग्रन्थ की इतनी गथाएँ अपने मौलिक ग्रंथ में कौन लेखक उद्धृत करेगा ?

'तत्त्वविचार' के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करते समय श्री अग्ररचद जी नाहटा का 'तत्त्वविचार' के सबध में एक लेख राजस्थान भारती^१ में देखने को मिला। इसमें उन्होंने 'तत्त्वविचार' को राजस्थानी का गद्य-ग्रंथ बतलाते हुए थोड़ा-सा परिचय दिया है। प्रकाशित अश में 'तत्त्व-विचार' की प्रथम गाथा के बाद राजस्थानी में टीका है, जिसमें बारह व्रतोंका वर्णन दिया गया है। और अन्त में—

एयं तत्त्वविचारं रइयं सुयसागराइ उद्धरिय।

थोवक्खरं गह्त्थं भव्वाण मणुगाट्ठाणं ॥

गाथा के द्वारा 'तत्त्वविचार' प्रकरण के समाप्ति की सूचना दी गयी है। बीच में सम्यक्त्व का वर्णन करते हुए एक गाथा और आई है—

अरिहं देवो गुरुणो सुसाहुणो जिणमयं महापमाण।

इच्चाइ सुहो भावो सम्मतं विति जग गुरुणो ॥

उक्त ये दोनों गाथाएँ 'तत्त्वविचार' की चर्चित प्रति-लिपि में नहीं हैं। दूसरी बात, श्री नाहटा द्वारा प्रकाशित इस अश में १२ व्रतों का वर्णन भी 'तत्त्वविचार' के व्रतों के वर्णन से भिन्न है। तथा अन्त में अरिहत देव का जो स्वरूप उसमें वर्णित है वह भी श्वेताम्बर परम्परा से अधिक सम्बन्ध रखता है। यथा—“अरिहत देवता किसउ होइ ?.....वारह भेदे तपु कीजइ। सत्तरहे भेदे सजमु पालियइ ॥ आठ प्रवचन माता उपयोगु दीजइ। रजो हरणु मुहुत्ती। गोछउ। पडिगहिउ घरइ।” इन सब कारणों से श्री नाहटा जी द्वारा प्रकाशित अश प्रस्तुत 'तत्त्वविचार' ग्रन्थ से सम्बन्धित नहीं माना जा सकता। दोनों के स्वरूप एवं भाषा में भी भेद है। केवल प्रथम मंगल गाथा (जमिय जिण...) का दोनों में एक-सा पाया जाना इस और संकेत करता है कि सम्भवतः किसी एक ही स्रोत से दोनों जगह उक्त गाथा ग्रहण की गयी है।

'तत्त्वविचार' के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करते समय केटलाग ऑफ़ संस्कृत एण्ड प्राकृत ऑफ़ सी. पी. (पृ. ६४७) में सेनगण जैन मन्दिर कारंजा और बलात्कार

गण जैन मन्दिर कारंजा में उपलब्ध 'तत्त्वविचार' की दो प्रतियों की सूचना मिली। उन्हे मैं अभी देख नहीं पाया हूँ। उपलब्ध होने पर प्रस्तुत ग्रंथ पर अधिक प्रकाश पड़ सकता है।

अनेकान्त (वर्ष प्रथम, किरण ५) में स्व० प० श्री जुगलकिशोर जी मुख्तार ने 'तत्त्वविचार और वसुनन्दि' नाम से एक नोट लिखा है। इसमें उन्होंने ग्रन्थ के १२ प्रकरणों का उल्लेख करते हुए ग्रन्थ परिमाण केवल ६५ गाथाओं का बतलाया है, जबकि प्रस्तुत प्रति में ग्रंथ की गाथा सख्या २८५ है। यह भूल इस कारण हुई प्रतीत होती है कि प्रति में अन्तिम गाथा का न० ६५ ही पड़ा है। ग्रन्थकार अथवा लिपिकार न १०० गाथाओं के बाद पुनः अगली गाथा में १ नम्बर दिया है। अतः सरसरी निगाह में देखने पर ऐसी भूल होनी स्वाभाविक थी। श्री मुख्तार साहब ने स्वयं 'पुरातन जैन वाक्यसूची' की प्रस्तावना (पृ. १००) में स्पष्ट लिखा है कि उन्होंने बम्बई में थोड़े समय में इस ग्रंथ की प्रति को देखा था। और उसी आधार पर यह नोट लिखा है।

किन्तु 'तत्त्वविचार' की गाथाओं का मिलान करने पर उनकी सख्या २६५ भी नहीं हो पाती। कारण, गाथा न. ११ के बाद १३ न. पड़ा है। ८१, ८२ न. की गाथाएँ समान हैं। तथा ८७ न. के बाद ८९ एव १८६ के १८८ नं. लिख दिया गया है। इस तरह चार गाथाएँ कम हो जाने से २६१ गाथाएँ ही बचती हैं। किन्तु ग्रन्थ में जगह-जगह विषयभग को देखते हुए लगता है कि लिपिकारों की अमावधानी के कारण गाथाएँ “छूटी हैं। सम्भवतः ३०० गाथा-प्रमाण” यह ग्रन्थ रहा होगा।

स्व० श्री मुख्तार सा० ने अपने उक्त नोट में कहा है कि यह ग्रन्थ श्रावकाचार के रचयिता वसुनन्दि का नहीं हो सकता, क्योंकि उसमें कई जगह विषय क्रम भेद है। यथा—‘तत्त्वविचार’ में व्रत प्रतिमा के वर्णन में ‘गुणव्रत’ और ‘शिक्षाव्रत’ के इस प्रकार भेद किये गये हैं—१ गुणव्रत—दिग्विदिक प्रत्याख्यान, अनर्थदण्डपरिहार और भोगो-पभोग संख्या^४। (२) शिक्षाव्रत—त्रिकालदेव स्तुति, पर्व में

४. दिसिबिदिसि पच्चक्खाण अणत्थदंडाण होई परिहारो।

आओवभोयसंखा एए ह्नु गुणव्वया तिण्णि ॥१५७॥

प्रोषधोपवास, अतिथिसंविभाग और मरणान्त में सल्लेखना'। जबकि बसुनन्दि श्रावकाचार का कथन 'इससे भिन्न है। उसमें दिग्विरति, देशविरति और अनर्थदण्डविरति को गुणव्रत' तथा भोगविरति, परभोगनिवृत्ति, अतिथि-संविभाग और सल्लेखना इन चार को शिक्षाव्रत कहा गया है'। और 'तत्त्वविचार' में दो गाथाएँ भावसंग्रह की भी प्राप्त होती हैं। अतः इसे मौलिक ग्रन्थ न होकर, संग्रह ग्रंथ होना चाहिए।

श्री मुख्तार सा० की इस सूचना के कारण 'तत्त्वविचार' को बसुनन्दि का ही परवर्ती ग्रंथ मानने में मुझे भी हिचक हुई। श्री नाहुटा जी से विचार-विमर्श करने पर भी इसके संग्रह ग्रन्थ होने की पुष्टि हुई। अतः मैं इसके सदर्थ खोजने में जुट गया। परिणामस्वरूप जो तथ्य सामने आये उनसे यह भलीभाँति प्रमाणित हो गया कि 'तत्त्वविचार' में न केवल बसुनन्दि के श्रावकाचार और भावसंग्रह से गाथाएँ उद्धृत की गई हैं, बल्कि लगभग २०-२५ प्राचीन ग्रंथों की गाथाएँ इसमें संगृहीत हैं। कुछ गाथाएँ श्वेताम्बर ग्रन्थों की भी हैं, जिनके कारण इसमें न केवल विभिन्न गाथाओं का संग्रह है, अपितु विभिन्न विचारों का भी समावेश है। यथा—'तत्त्वविचार' की एक गाथा में 'णमो-कारमन्त्र' के एक लाख जाप से निःसन्देह तीर्थंकर गोत्र का बन्ध होना' बतलाया है जो श्वेताम्बर परम्परा का प्रभाव है'।

'तत्त्वविचार' की प्रस्तुत २६१ गाथाओं में से अधिकांश गाथाओं के सन्दर्भ निम्नलिखित ग्रंथों में खोजे जा सकते हैं, जो इसके संग्रह ग्रंथ होने के लिए पर्याप्त है। यथा—

५. देवे शुबइ तिदाले पव्वे पव्वे य पोसहोवासं ।
- अतिहीण संविभाओ मरणते कुणइ सल्लिहण ॥१५८॥
६. वसु. श्रा. गाथा २१४, १५, १६ ।
७. वही, गा० २१७-२० ।
८. जो गुणइ लक्खमेणं पूयविही जिण णमोक्कारं ।
- तित्थयरनामगोत्तं सो बंधइ णत्थि सदेहो ॥१-१५॥
९. 'लघुनवकारफल' श्वेताम्बर ग्रन्थ की गाथा नं० १२ ।

ग्रन्थ का नाम	उद्धृत गाथा	संख्या
१. बसुनन्दि श्रावकाचार	से ६०	गाथाएँ
२. भावसंग्रह	" ७५	"
३. लघुनवकारफल	" २३	"
४. जीवदया प्रकरण	" १७	"
५. कात्तिकेयानुप्रेक्षा	" १२	"
६. मोक्षपाहुड	" ६	"
७. मूलाचार	" ४	"
८. भगवती आराधना	" ३	"
९. वृद्धनवकारफल	" २	"
१०. आयणाणतिलय, ११. आराधनासार,		
१२. कल्याणालोयणा, १३. छेदसत्थ,		
१४. नियमसार, १५. तिलोयपण्णत्ति		
१६. दंसण पाहुड, १७. घम्मरसायण		
१८. वारस अणुवेक्खा, १९. पचत्थिपाहुड		
२०. पचसंग्रह, २१. रिट्ठसमुच्चय		
२१. सीलपाहुड । इन ग्रंथों में से १-१		
यथा—	१३	"

२४५ कुल

शेष लगभग ५० गाथाओं में से अधिकांश तीसरे एकोनत्रिशत्प्रकरण एवं तेरहवें दान प्रकरण की गाथाएँ हैं, जिनके सन्दर्भ नहीं खोजे जा सके। सम्भवतः इस नाम के प्रकरण जिन ग्रन्थों में हैं उन्हींसे ये गाथाएँ ली गयीं होंगी। अथवा संग्रहकर्ता ने शायद इतनी गाथाएँ मौलिक रूप से लिखीं होंगी। इसका निर्णय आगेके अध्ययन से हो सकेगा।

'तत्त्वविचार' संग्रह प्रमाणित हो जाने के बाद प्रश्न उपस्थित करता है, उतने उसके मौलिक ग्रंथ होने में न उठते। कुछ प्रमुख प्रश्न विचारणीय हैं। यथा—१. 'तत्त्व-विचार' का संग्रहकर्ता कौन ? २. उसका पाण्डित्य एवं समय ? ३. संग्रह ग्रंथ निर्माण का प्रयोजन ? ४. ग्रन्थ के रचयिता में बसुनन्दिमूर्ति के नाम देने का रहस्य ? ५. दिगम्बर व श्वेताम्बर परम्परा के विचारों के समन्वय का उद्देश्य ? आदि। इस सब पर प्रामाणिक रूप से विचार करना समय सापेक्ष है। अमसाध्य भी। विद्वानों से अनु-रोध है, इस सम्बन्ध में कोई जानकारी हो या आगे प्राप्त हो तो कृपया सूचित करेंगे। ●

तत्त्वविचार की गाथानुक्रमणिका एवं सन्दर्भ

तत्त्व० नं०

अ

७-१२७ अहवाल बुद्ध रोगाभिभूय वसु० सा० ३३७

१३-२६५ अकइ य णियाण सम्मो भावसं० ४०५

१-२२ अडवि गिदि रन्त मज्जे लघु० २१

१३-२७० अणिमा महिमा लहिमा वसु० ५१३

भावसं० ४१० तिलो० पं० ४-१०२२

१३-२७३ अणुकूल परियणय भावसं० ४१३

३-४३ अथिरं जीवं रिद्धि

३-५१ अथिराण चंचराण य

१३-२३२ अभय पयाणं पढमं भावसं० ४८६

६-१२२ अभय समो णत्थि रसो

१३-२४६ अवगाहिय तेण संच्छ

५-१०४ अहिसेय फलेण णरो वसु० सा० ४६१

१३-२६६ अंतरमुहुत्त मज्जे भावसं० ६७८

६-१७८ आयबिलणिज्जियडोए वसु० सा० २६२

भग० आ० २५४ मूला० २८२ छेदसं० ३

३-६४ आरंभ सयाइं जणो वसु० सा० ३५१

१२-२२७ आलिउ भजयहु दुव्वयणु

१-६ अवाइहि पि पडिज्जइ लघु० ६

१३-२४२ आहारमओ देहो भावसं० ५१६ भग० आ० ४३५

१३-२४४ आहारासण णिहा वि भावसं० ६१७

आरा० सा० २६ मोक्खपा० ६३

१३-२८३ आहारेण य देहो भावसं० ५२१

इ

१०-१६७ इक्कं चिय जीवदया जीव० १६

६-१२० इच्चेवमाइकाइय वसु० सा० ३३०

६-१२१ इति पच्चक्खा एसो वसु० सा० ३३१

१-२१ इय एसो णवकारो लघु० २०

१३-२७८ इय चित्तो पसरइ भावसं० ४१८

३-७० इय जाणिऊण एयं भावसं० ५८५

कत्ति० अणु० ३ माक्खपा० ३२

आय० ति० १०-२५

३-५३ इय णाऊण असारे जीव० ८५

१३-२८० इय बहुकालं सगो

५-६४ इय संखेवं कहियं भावसं० ४४७

२-३५ इह परलोय सुहाणं जीव० ४००

३-६५ इह लोयम्मि वि कज्जे

उ

५-६२ उच्चारिऊण मंते भावसं० ४४१

८-१४५ उज्जाणम्मि रमंता वसु० सा० १२६

१-५ उड्डमघो तिरियमिह दु मूला० ७५ लघु० ३

१३-२८१ उत्तमकुले महतो भाव० सा० ४२१

उत्तमणाण पहाणो जीव० ३६५

६-१६६ उत्तम-मज्ज-जहणं वसु० सा० २८०

६-१७४ उत्त विहाणेण तओ ,, ,, २८८

६-१६१ उट्ठिपिड विरउ ,, ,, ३१३

१३-२८२ उत्पण्णो रयणमए भावसं० ४१२

४-८६ उवगूहण गुणजुत्तो वसु० सा० ५५ भावसं० २८३

६-११६ उवयारि ओ वि विणओ वसु० सा० ३२५

१३-२३५ उसह दाणेण णरो

८-१४१ उबर वटारिपलपिय ,, ,, ५८

१३-२५० ऊसर छेत्ते बीयं भावसं० ५३२

ए

८-१५१ ए ए महाणुभावा भावसं० ५४०

१-७ एको वि णमोकारो

३-६६ एगे दोघदघडारहेहि

१-० एयाण णमोयारो लघु० २

६-१८६ एयारसम्मिठाणे वसु० सा० ३०१

५-११० एयारसंगघारी वसु० सा० ४७६ भावसं० १२२

१-१७ एरावएहि पंचहि लघु० १४

४-८७ एरिसगुण अट्ट जुवं वसु० सा० ५६ भावसं० २८४

६-१८० एवं चतुच्छ ठाणं वसु० सा० २६४

७-१४० एव णाऊण फलं ,, ,, ३५०

६-१६५ एवं तइयं ठाणं ,, ,, २७६

६-१५४ एव दंसण सावय ,, ,, २०५

८-१५३ एवं बहुप्पयारं दुक्खं ,, ,, ७६

६-१५६ एवं बारसभेयं ,, ,, ३७३

- १-१६ एसो अणाइकालो लघु० १६
२-६१ एसो तच्च विचारो
२-४१ एसो दहम्ययारो कति० ग्रन्थ० ४०४

क

- ७-१२८ करचरणपिट्ट सिराणं वसु० सा० ३३८
१०-२१४ कल्लाण कोडि जणणी
१३-२५४ कस्स थिरा इह लच्छी भावसं० ५६०
६-१६२ काउसग्गम्मि ट्टिउ वसु० सा० २७६ मूला०
६६४

- ६-१७२ काऊण किं चि रत्ति
६-११६ कायाणु रूव मट्ठण वसु० सा० ३२६
१३-२५३ किवणेण संचिय घणं भावसं० ५५६
१-१३ किं एस महारयणं लघु० ६
३-६६ किं जंपिएण बहुणा वसु० सा० ३४७
७-१३७ किं जंपिएण बहुणा तिलो० ४६३
५-१०६ किं जंपिएण बहुणा तीसु
१३-२७७ किं दाणं मे दिण्णं भावसं० ४१७
४-७३ किं बहुणा भणिएणं मोक्ख० पा० ८८
३-५६ किंससि सुससि सुससि
५-६८ कुसुमेहि कुसेसय वयण वसु० सा० ४८५
५-१०६ कुंथु भरिदलमेत्त ,, ,, ४८१
१३-२७६ को हं इह कच्छाउ भावसं० ४१६
२-१६ कोहेण जो ण तप्पदि कत्ति० ग्रन्थ० ३६४
३-५२ कोहो माणो माया मूला० १२२८
बा० ग्रन्थ० ४६ कल्लाणा० ३३

ख

- ११-२२३ खण भंगुरे सरीरे
ग
६-१७५ गहिऊण य सम्मत्तं मोक्खपा० ८६
४-७२ गतूण य णियगेहं वसु० सा० २८६
१२-२३० गाढ परिग्गह गहिउ
६-१६६ गुरुपुरउकिरयम्मं वसु० सा० २८३
घ
१-३ घणघाइ कम्म मुक्का णियमसा० ७१
लघु नवकारफलं १
५-१०२ घंटाहि घंट महाउलेसु वसु० सा० ४८६

- ३-४४ धरवासे वा मूढो अच्छइ

च

- २-३६ चइऊण मिट्ठभोजं
१३-२५१ चंडाल-भिल्ल-छिपिय भावसं० ५४३
५-६६ चंदन-सुयंघ-लोमो ,, ४७१
१४-२६७ चम्मं रुहिरं मंसं भावसं० ४०७
१३-२८६ चलणं वलणं चिता भावसं० ६६७
चितामणिरयणाइं लघु० १०

छ

- ५-१०३ छत्तेहि एयछत्तं भुजंद वसु० सा० ४६०
४-७८ छुहा तण्हा भय दोसो ,, ,, ८

ज

- १२-२२६ जइ णिव्वउ दुह पवरणि
३-५७ जइ पइससि पायाले
१२-२२८ जइ पाणहिंसलइ चठहिज्जइ
११-२१६ जच्छ पुरे जिण भवणं
५-६५ जलघारा णिक्खवणेण वसु० सा० ४८३
७-१३६ जल्लोसहि सम्बोसहि ,, ,, ३४६
१३-२४६ जस्स ण तवो ण चरणं भवसं० ५३१
१०-२१२ जस्स दया सो तवसी जीव० ६५
१०-२११ जस्स दया तस्स गुणा ,, ६५
१-११ जह ग्रहिणा दट्ठाणं लघु० ८
६-१७६ जह उक्किट्ठं तहम्मि वसु० सा० २६०
११-२२२ जह गेहेसु पलित्ते कूपं
१३-२३६ जह नीरं उछगयं
६-१८४ जं किं चिं गिहारंभं वसु० सा० २६८
१०-२०२ जं किं चिं णाम दुक्खं जीव० २ण लघु० ११
१-१४ जं किं चिं परम तत्तं लघु० ११
६-१६० जं किं पि पडियभिक्ख वसु० सा० ३०८
३-५८ जं चेव कय त चेव भुंजसि
३-५५ जं ण कयं ग्रण भवे
६-११७ जं दुप्परिणामाओ मणं वसु० सा० ३२६
६-१८१ जं बज्जिज्जिदि हरिदं ,, ,, २६५
३-४६ जं मारेसि रसते जीवा
१३-२४८ जं रयणत्तय रहियं भावसं० ५३०

- ६-१६२ जं सवकइ तं कीरई दसंणपा० २२
 ३५० जं हरसि परघणाई
 १-८ जाए वि जो पठिज्जइ लघु० ५
 १३-२८६ जाणंतो पेछंतो कालत्तय भावसं० ६७४
 ५-६६ जायइ णिविज्जदानेण वसु० सा० ४८६
 ५-६७ जायटि अक्खयणिहि ,, ,, ४८४
 १२-२२४ जिणवंदण गुण विणउ
 ६-१६१ जिणवयणधम्म चेइय वसु० सा० २७५
 २-३३ जिणवयणमेव भासदि कत्ति० अणु० ३६८
 १-२८ जिणसासणस्स सारो लघु० २३
 ३-४७ जीव तुमं णावमासे
 ४-८० जीवाजीवासव बंध वसु० सा० १०
 १०-२१० जीवदया सच्चवयणं सीलपा० १६ जीव० ४७
 १-२१५ जीविय जलबिडु समं
 ८-१४३ जूयं-मज्जं-मंसं वेसा रिट्टस० ५
 १-२० जे केवि गया मोक्खं लघु० १७
 १२-२३१ जे जिणणाह हं मुहकमलि
 १-१८ जेण मरंत्तेण इमो लघु० १५
 १०-१६४ जे पुणु छ जीव वहं कुणं
 १३-२६२ जेहिण दिण्णं दाणं भावसं० ५६६
 ६-१२४ जो कइ विउव एसा इहपर
 १०-२०८ जो कुणइ जणो धम्मं जीव० ४३
 १०-२०६ जो कुणइ मणे रवंती ,, ४१
 १-१५ जो गुणइ लक्खमेगं लघु० १२
 २-३१ जो चित्तेइ ण वंक्कं कत्ति० अणु० ३६६
 १०-२१३ जो जीवदया जुत्तो जीव० ६६
 २-३४ जो जीव-रक्खण-परो कत्ति० अणु० ३६६
 २-३६ जो णवि जादि वियारं
 १०-२०६ जो देइ अभयदानं जीव० २०
 १०-१६६ जो देइ अभय दाणं सो जीव० ४४
 १०-१६६ जो देइ परे दुक्खं जीवद० १४
 २६२ जो पठइ सुणइ अक्खइ भावसं० ७००
 ६-१६३ जो पस्सइ समभावं वसु० सा० २७७
 २-३८ जो परिहरेदि संप्सां जीव० ४०३
 १०-२०७ जो पहरइ जीवणं जीव० ४२
 ५-१०८ जो पुज्जइ अणवरयं भावसं० ४५६

- ५-१०७ जो पुणु जिणिद भवणं वसु० सा० ४८१
 १२-२२५ जो संतावइ अणुदि

ठ

- ४-८५ ठिदिकरण गुणपउत्तो भावसं० २८२

- य -

ण

- १३-२६० णट्टुकम्मबंधण भावसं० ६६८
 १२-२८७ णट्टु पयडिबधो ,, ६८७
 ३-५६ ण परं करेइ दुक्खं
 १/१ णमिय जिणपास पयं
 १-२४ ण य (नहु) किं चि तस्स पहवइ लघु० १८
 २-४० णयणाणमो कलाणं
 १३-२६८ णहदंत सिरणहारू भावसं० ४०८
 १०-१६५ णाऊण दुहमणंतं
 ८-१४६ णासावहार दोसेण वसु० सा० १३०
 ६-११३ णाणेणाणुवयरणे य ,, ,, ३२२
 १२-२२६ णिग्घिण णिट्ठुर दुट्ठ
 ४-७६ णिहा तहा विसाओ वसु० सा० ६
 १०-१६८ णिवाओ ण होइ गुलो जीवदया० १६
 ४-८४ णिव्विदिणिछो राओ वसु० सा० ५३ भावसं०

२८१

- ६-११२ णिस्संकिय संवेगाइ जे वसु० सा० ३२१
 १३-२८३ णिस्संगो णिम्मोहो भावसं० ६१८
 १३-२७४ णिसुणतो योत्तसए ,, ४१४

त

- १३-२८२ तच्छवि सुहाइं भुत्तं
 ७-१३८ तरुणि मण णयणहारि वसु० सा० ३४८
 १-२७ तवसंजमणियमरहो वृहद पंचनमस्कार फल

१००

- ४-७७ तं सम्मत्तं उत्तं जत्थ भावसं० २७२
 १३-२७५ तितंइ किं एवउत्तमम्भ
 २-३७ तिविहेण जो विवज्जइ कत्ति० अणु० ४०२
 १-१६ तेण इमो णिच्चम्मि य लघु० ४
 १३-३६० ते घणा लोय तए तेहि
 ४-८१ तेणुत्त णव पयत्था भावसं० २७८

४-७१ ते घण्णा ते घणिणो भ. आरा. २००२

४-७४ ते घण्णा सुकयत्था मोक्ख पा. ८६

थ

१-२४ थंभेइ जलं जलणं लघु. २२

द

६-१११ दसण णाण चरित्ते वसु. सा. ३२०

१३-२३६ दाणस्साहार फलं को भावसं. ४६३

१३-२३७ दायारो उवसतो मणवय ,, ४६५

६-१५७ दिसिविदिसि पंचक्खा ,, ३५४

५-१०० दीवेहि दीवियासे वसु. सा. ४८७

३-६७ दीहरं पवास सहयर

१३-२५५ दुक्खेण लहइ वित्तं भावसं. ५६१

१३-२७१ देवाण होई देहो ,, ४११

१०-१६३ देविदं चक्कवट्टि तणाइं भ. आरा. १२६५
१६५५
२१४८

६-१२५ देविदचक्कहरमंडलीय वसु. सा. ३३४

६-१५८ देवे थुवइतियाले पव्वे भावसं. ३५५

७-१३२ देहतवणियमसयम वसु. सा. ३४२

१३-२४० देहो पाणारुअं विज्जा भावसं. ५१७

घ

१०-२०१ घम्म करेइ तुरिया जीव. २४

३-३१ घम्मेण कुल पसइ

३-६६ घम्मेण घणं विमल

३-६० घम्मेण विणा जइचितयाइ

३-६२ घम्मो मंगल मूलं ओसह

६-१८७ घम्मेल्लाणं चयणं कयेरि

५-१०१ धूवेण सिसिरक्करषवल वसु. स. ४८८

न

१०-२०३ नर णरवइ देवाणं जीव. २६

१-१० नवसिरि हुंति सिराणं लघु. ७

५-६३ न्हवणं काऊणपुणो

१३-२४३ ना देहा ता पाणा तत्त

७-१३१ नित्संकिर्यं सवेगाइ वसु. सा. ३२१, ३४१

प

६-१६८ पक्खालिऊण वयणं वसु. सा. २८२

१३-२५२ पच्छ रमया वि दोणी

६-१७३ पच्चूसे उट्टित्ता वंदण वसु. सा. २८७

१३-२५७ पडिकूलमाइ काउं भावसं. ५६३

७-१२६ पडिजगणेहि तणु वसु. सा. ३३६

३-६८ पणयजण पूरियासा

६-१८६ परकालिऊण पत्तं

७-१३५ परलोए वि सरुवो वसु. सा. ३४५

६-११४ पचविह चारित्तं ,, ,, ३२३

८-१४१ पचुवर सहियाइं ,, ,, ५७

६-१५५ पचय अणुव्वयाइं भ. आरा. २०७६ घम्मर. १४२

४-८६ पंच वि थावरवियले पंचसं. १-३६

१३-२७६ पुणरवि तमेव घम्मं (काया) भावसं. ४१६

१३-२६३ पुण्णेण कुल विउलं ,, ५८६

पुण्णेण कुलं विउलं ,, ५८६

५-६० पुराणस्स कारणं फुड्ड

६-१८३ पुव्वुत्तणव विहाणं वसु. सा. २६७

फ

५-६१ फासुय जलेण्णहाइय भावसं. ४२६

ब

बालोयं बुड्डोयं वसु. सा. ३२४

भ

१३-२३८ भत्ती सद्धायखम सत्त

७-१३४ भमइ जए जस किंती वसु. सा. ३४४

११-२२० भवणं जिणस्स ण कयं

११-२२१ भावहुअणुव्वयाइ पालट्ट भावसं. ४८८

१३-२४५ भुक्खाकयमरणभयं ,, ५२३

१३-२४१ भुक्ख समो णहु वाही

६-१८६ भुजेइ पाणिपत्तम्मि भायणे वसु. सा. ३०३

म

६-१८२ मणवयण काय-कय वसु. सा. २६६

८-१४६ संसासणेणगिद्धो ,, ,, १२७

१३-२३७ महिसीए तिणदिणं पत्त

११-२१६ महूमज्ज मंस विरई भावसं. ३५६

१०-२०५ मा कीरउ पाणिबहो

६-१७७ मुणिऊण गरुवकज्जं वसु. सा. २६१

१३-२६१ मुणि भोयणेण दव्वं भावसं. ५६७

६-१८५ मोत्तूणवच्छमेत्तं वसु. सा. २६६

र

८-१४४ रज्ज्वभंसं वसणं बारह वसु. सा. १२५

६-१७१ रयणि समयम्मि ठिच्चा वसु. सा. २८५

४-८३ रायगिहे णिस्संको वसु. सा. ५२ भावसं. २८०

३.५४ रे जीव पावणिग्घणं

-४८ रे जीव संपयं चिय

ल

३-४६ लहिकुण माणुसत्तं

१३-२८५ लहिकुण सुक्कभाणं भावसं. ४८६

१०-२०० लोभाओ आरंभो आरंभाउ

१३-२८८ लोयग्ग सिहरखित्तं भावसं. ६८८

व

५-१०५ विजय पडाएहिणरो संगामे वसु. सा. ४६२

११-२१७ विणउ वेय्या वच्च वसु. सा. ३१६

६-१२३ विणएण ससकुज्जल " " ३३२

विणओ तिबिहेणतओ

१३-२५६ वित्तं चित्तं पत्तं तिणि

६-१७० वायणकहाणुपेहण वसु. सा. २८४

ब

७-१३६ वारवइएवेज्जा वच्चं " " ३४६

४-८८ वारह मिच्छा वायइ

१-२५ बाहि जल जलणतवकर लघु. १६

बाहिविमुक्क सरीरो

३-४५ बाही दिट्ठवि उग्गो

स

६-१२६ सत्तू वि मित्तं भावं जम्हा वसु. सा. ३३६

६-१६७ सत्तमि तेरसि दिवसम्मि " " २८१

७-१३० संथार मोहणे हिय " " ३४०

२-३२ सम संतो स-जलेणं कत्ति. अणु. ३६७

१३-२६४ सम्मादिट्ठि पुण्णं ण होइ भावसं. ४०४

८-१४७ सव्वत्थ णिउण बुद्धी वसु. सा. १२८

१३-२३३ सव्वेसि जीवाणं अभयं भावसं. ४६० पंचत्थि-

६०

१.१६ सट्ठिसयं विजयाणं लघु. १३

४-८२ संकाइ दोसरहियं भावसं. ६७८

४-७६ संवेओ णिव्वेओ णिदा वसु. सा. ४६ भावसं-

२६३

३-४२ संसारम्मि असारे णसि

८-१५२ साकेए सेवंतो सत्तवि वसु. सा. १३३

६-१६४ सिद्धसरूवं भायइ वसु. सा. २७८ भावसं.

५६८

६-१७६ सिरण्हाणुवट्ठण गंध वसु. सा. २६३

१३-२६६ सुइ अमलो वरवण्णो देहो भावसं. ४०६

७-१३३ सुभपरिणामो जायइ

१३-२३४ सुय दाणेण य लब्भइ भावसं. ४६१

१-२ सुय सायरो अपारो

१३-२५८ सो किह सयणो भण्णइ भावसं. ५६४

१०-२०४ सो दाया सं तवस्सी जीव. ३१

१३-२५६ सो सयणो सो बंधू भावसं. ५६५

ह

१-२६ हियय गुहाये नवकार

६-११८ हियमियपुज्जं सुत्ता वसु. सा. ३२७

४-७५ हिंसा रहिए घम्मे भावसं. २६८ मोक्खपा.

६०

११-२१८ हिंसा रहिए घम्मे अट्ठारह

६-१५६ हिंसा विरई सच्च अदत्त भावसं. ३५३ मूला-

४

६-१६० होइ(ऊण)सुइ चे इय गिहम्मि वसु. सा. २७४

८-१५० होऊण खयरणाहो " " १३१

८-१४८ होऊण चक्कवट्ठि वसु. सा. १२६ भावसं.

४८४

साहित्य-समीक्षा

१. गद्यचिन्तामणि—मूल वादीभसिंह सूरि, सम्पादक अनुवादक पं. पन्नालाल जैन साहित्याचार्य प्रकाशक-भारतीय ज्ञानपीठ काशी। बड़ा साइज पृष्ठ सख्या ५०० मूल्य सजिल्द प्रतिका १२.०० रुपया।

प्रस्तुत ग्रन्थ कादम्बरी के समकक्ष का एक महत्वपूर्ण गद्य संस्कृत काव्य है, जिसके कर्ता आचार्य वादीभसिंह सूरि हैं। जो अपने समय के एक विशिष्ट विद्वान थे। आचार्य वादीभसिंह ने प्रौढ़ संस्कृत में जीवधर का यह चरित्र निबद्ध किया है। जैन साहित्य में इस पर विविध भाषाओं में अनेक ग्रंथ लिखे गए हैं, जिससे उनकी महत्ता का सहज ही आभास हो जाता है। जीवधर कुमार भगवान महावीर के समय होने वाले राजा सत्यधर के क्षत्रिय पुत्र थे। आपने अपने पिता के राज्य को पुनः प्राप्त किया, और अन्त में उसका परित्याग कर आत्म-साधना सन्पन्न की। कवि ने अपनी पूर्ववर्ती साहित्यिक उपलब्धियों को आत्मसात नहीं किया किन्तु उनकी विशाल प्रतिभा ने उस युग के सांस्कृतिक जीवन के जो चित्र ग्रहण किये, उन्हें कवि ने कुशल मणिहार निर्माता की भांति सावधानी से काव्य में उतार दिया है। कर्ता ने मणिहार की तरह काव्यग्रंथ के एक-एक शब्द को इस तरह पिरोया है कि लम्बे दीर्घ समासों में भी काव्य का लालित्य एवं सौन्दर्य कहीं खोया नहीं, किन्तु जागृत रहा है।

इस संस्करण में सम्पादक ने संस्कृत व्याख्या और मूलानुगामी सरल हिन्दी अनुवाद देकर ग्रंथ को अत्यन्त उपयोगी बना दिया है। और प्रस्तावना में ग्रन्थ और ग्रन्थकार के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी दे दी है। और परिशिष्ट में व्यक्ति वाचक, भौगोलिक, परिभाषिक तथा विशिष्ट शब्दों का एक शब्दकोष भी दे दिया है जिससे ग्रंथ की उपयोगिता बढ़ गई है। गद्यचिन्तामणि का यह विशिष्ट संस्करण ग्रन्थेताओं के लिए विशेष रुचिकार होगा। ग्रंथ का प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ के

अनुरूप हुआ है। प्राचीन भारतीय संस्कृत के ग्रन्थेताओं को इस ग्रंथ को मंगाकर अवश्य पढ़ना चाहिए। इस उत्तम प्रकाशन के लिए भारतीय ज्ञानपीठ ग्रन्थवाद की पात्र है।

२. योगासार प्राभृत—मूल अमितागतिप्रथम सम्पादक अनुवादक पं० जुगलकिशोर मुख्तार प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ काशी, बड़ा साइज, सजिल्द प्रति मूल्य ८.०० रुपया।

प्रस्तुत ग्रंथ देवसेनाचार्य के शिष्य निस्संग अमितागति प्रथम की रचना है, जो अध्यात्म विषय का एक सुन्दर ग्रंथ है। इस ग्रंथ में ९ अधिकार हैं और ५४० पद्य हैं जिनमें आत्म-तत्त्व की प्राप्ति का सरस वर्णन है। सात अधिकारों में जीवादि सप्त तत्त्वों का दिग्दर्शन कराते हुए उनकी महत्ता का कथन किया गया है। और आठवाँ अधिकार चारित्र्याधिकार है, जिसके १०० पद्यों में चारित्र्य का बड़ा ही सुन्दर और संक्षिप्त कथन दिया है। उसे पढ़ कर प्रवचनसार के चारित्र्याधिकार की स्मृति हो जाती है। और अन्तिम तूलिकाधिकार में योगी के योग का स्वरूप बतलाते हुए भोग से उत्पन्न सुख की विशिष्टता, सुख का लक्षण, तथा योग के स्वरूप का कथन करते हुए भोग को महान रोग बतलाते हुए उससे छुटकारा मिलने पर उसे फिर संसार में जन्म नहीं लेना पड़ता। भोग से सच्चा वैराग्य कब होता है। उसका भी निर्देश किया है। और भी संबद्ध विषय का सुन्दर विवेचन किया है।

मुख्तार सा. ने ग्रंथके पद्योंका मूलानुगामी अनुवाद देकर उसके विषय को अच्छी तरह विशद किया है। टिप्पणियों में भी उसका स्पष्ट संकेत किया और प्रस्तावना में अमितागति प्रथमके संबंधमें जो विचार किया है वह सुन्दर है। ग्रंथ की छपाई सफाई ज्ञानपीठ के अनुरूप है। और वह मुख्तार साहब के जीवन काल में ही छप कर तैयार हो गया था, उसे देख कर उन्हें आत्म संतोष हुआ होगा। इस ग्रंथ को सभी मंदिरों, स्वाध्यायशालाओं, अध्यात्म के विचारकों को मंगाकर अवश्य पढ़ना चाहिए।

३. कर्म प्रकृति संस्कृत—मूल अभयचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती, सम्पादक अनुवादक डा० गोकुलचन्द्रजी एम० ए० पी० एच० डी०, प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ काशी । पृष्ठ ७५, मूल्य दो रुपया ।

प्रस्तुत ग्रंथ संस्कृत के गद्यसूत्रों में कर्म प्रकृतियों के स्वरूप का वर्णन किया है । प्रकृति, प्रदेश स्थिति और अनु-भाग इन चार प्रकार के बंधों का स्वरूप भी दिया हुआ है । अनुवाद मूलानुगामी है । ग्रन्थ कर्ता अभयचन्द्र सैद्धान्तिक चक्रवर्ती है । उनका समय ईसा की तेरवीं शताब्दी है ग्रंथ-कार के सम्बन्ध में सम्पादकजी ने जो लिखा है वह प्रायः ठीक है । अभयचन्द्र सिद्धान्ती की इस कृति का अनेकान्त के आठवें वर्ष की किरण ११ में मुख्तार साहब ने परिचय दिया था । ग्रंथ उपयोगी है । पाठकों को कर्म प्रकृति मंगा कर अवश्य पढ़ना चाहिए ।

४. अणुव्रत (विशेषांक)—सम्पादक रिषभदास रांका, प्रबन्ध सम्पादक हर्षचन्द्र प्रकाशक रामेश्वरदयाल अग्रवाल, अ० भा० अणुव्रत समिति छतरपुर रोड, महरोली, नई दिल्ली ३०, वार्षिक मूल्य १० रुपया ।

प्रस्तुत विशेषांक गांधी शताब्दी के उपलक्ष्य में प्रकाशित किया गया है । यह अणुव्रत समिति के नैतिक जागरण का अग्रदूत पाक्षिक पत्र है । तेरा पंथी सम्प्रदाय के विद्वान् आचार्य तुलसीगणी के प्रयत्नों का यह सुफल प्रयास है कि अणुव्रत का व्यापक प्रचार करने एवं जीवन की अनंतक धारा को नैतिकता में बदलने में अणुव्रत एक

साधन के रूप में अपनाया गया है । इस अंक में गांधीजी के सिद्धान्तों और जैन सिद्धान्तों की तुलना की गई है । इस अंक में अनेक लेख पठनीय हैं—जैसे स्वतंत्रता संग्राम में अहिंसा की भूमिका—श्री उ० न० ढेवर । अध्यक्ष खादीग्रामोद्योग कमीशन । गांधीजी के जीवन में अहिंसा का प्रयोग, मांसाशन का मन और तन पर कुप्रभाव, दया जब हिंसा बन जाती है ? अहिंसा के कुछ सूत्र आदि । इस सामयिक उपयोगी सामग्री प्रकाशन के लिए अणुव्रत समिति धन्यवाद की पात्र है ।

५. महावीर जयन्ती स्मारिका—प्रधान सम्पादक पं० भंवरलाल पोल्याका जैन दर्शनाचार्य प्रकाशक राजस्थान जैन सभा, जयपुर, मूल्य २ रुपया ।

प्रस्तुत स्मारिका ४ खंडों में विभाजित है । ३ खंड की सामग्री हिन्दी भाषा में दी हुई है और चतुर्थ खंड की अंग्रेजी में । लेखों का चयन सुन्दर और नयनाभिराम है । स्मारिका अपने उद्देश्य में सफल होती जा रही है । राजस्थान सभा की कर्तव्य परायणता और सम्पादक एवं सम्पादक मंडल तथा प्रकाशक की तत्परता शोध-खोज के लेखों से परिपूर्ण स्मारिका, पत्र जगत में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है । श्रद्धेय पं० चैनसुखदासजी का अभाव सचमुच खटकता है । ऐसे पत्रों में खोजपूर्ण लेखों के साथ कुछ ऐतिहासिक और पुरातात्विक चित्रों का न होना कुछ खटकता है । परन्तु उनका शिष्य वर्ग उनके आदर्श कार्य को कायम रखेगा ऐसी आशा है । ★

दानी महानुभावों से

वीर-सेवा-मन्दिर एक प्रसिद्ध शोध-संस्थान है, उसकी लायब्रेरी से अनेक रिसर्चस्कालर अपनी थीमिस के लिए उपयोगी ग्रंथ लेकर अनुसन्धान करते हैं । लायब्रेरी में इस समय पांच हजार के लगभग ग्रन्थ हैं । गोम्मत सार जीव-काण्ड की भारतीय जैन सिद्धान्त प्रकाशनी संस्था कलकत्ता से प्रकाशित बड़ी टीका की लक्षणावली के लिए आवश्यकता है जो महानुभाव भेंट स्वरूप या मूल्य से प्रदान करेंगे इसके लिए हम उनके बहुत आभारी होंगे ।

जिन शास्त्र भंडारों में हस्तलिखित ग्रंथों की व्यवस्था नहीं हो रही है । उनसे निवेदन है कि वे अपने भण्डार के उन हस्तलिखित ग्रंथों को वीर सेवामन्दिर लायब्रेरी को प्रदान कर दें । यहाँ उनकी पूर्ण व्यवस्था है, उससे रिसर्च स्कालरों को विशेष सुविधा हो जायगी । आशा है मन्दिर और भण्डार के प्रबन्धक अपनी उदारता का परिचय देकर अनुग्रहीत करेंगे ।

प्रेमचन्द्र जैन

मंत्री, वीरसेवामन्दिर २१, दरियागंज, दिल्ली ।

एक महान विभूति का वियोग

इस ग्रंथ के छपते-छपते बड़ा ही दुःखद समाचार मिला है कि राष्ट्रपति डा. जाकिरहुसेन का ३ मई को हृदयगति के रुक जाने से अकस्मात् देहान्त हो गया। इस समाचार से सारे देश का शोक-मग्न हो जाना स्वाभाविक ही है। डा० जाकिरहुसेन देश की महान विभूति थे, वह भारत के राष्ट्रपति पद पर आसीन थे। पर उनकी महत्ता इस बात में थी कि वे मानवता के केवल हामी ही नहीं थे किन्तु उसमें बड़े थे। देश के अभ्युत्थान में जिन-जिन क्षेत्रों में उनकी सेवाओं की आवश्यकता हुई वे सदा तत्पर रहे। बुनियादी शिक्षा के क्षेत्र में उन्होंने जो कार्य किया वह हमारे इतिहास में सदा अमर रहेगा। उन्होंने जामा मिलिया के रूप में जो देन दी है, वह महान है।

डा० जाकिरहुसेन ने देश के सामने धर्म-निरपेक्षता की एक ऐसी मिसाल पेश की, जिसने लोक-मानस पर बड़ा प्रभाव डाला। सभी धर्मों के अनुयायी उन्हें आदर की दृष्टि से देखते थे। ऐसी विभूति के निधन से जो स्थान रिक्त हुआ है उसकी पूर्ति सहज ही नहीं हो सकती।

हम दिवंगत आत्मा के प्रति अपनी हादिक श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए आशा करते हैं कि उन्होंने अपने वैयक्तिक गुणों और सेवाकार्यों से जो प्रेरणाएँ दी हैं वे देशवासियों का मार्गदर्शन करती रहेगी। अनेकान्त पत्र के माध्यम से उनके शोक-सन्तप्त परिवार के लिए हमारी समवेदनाएँ।

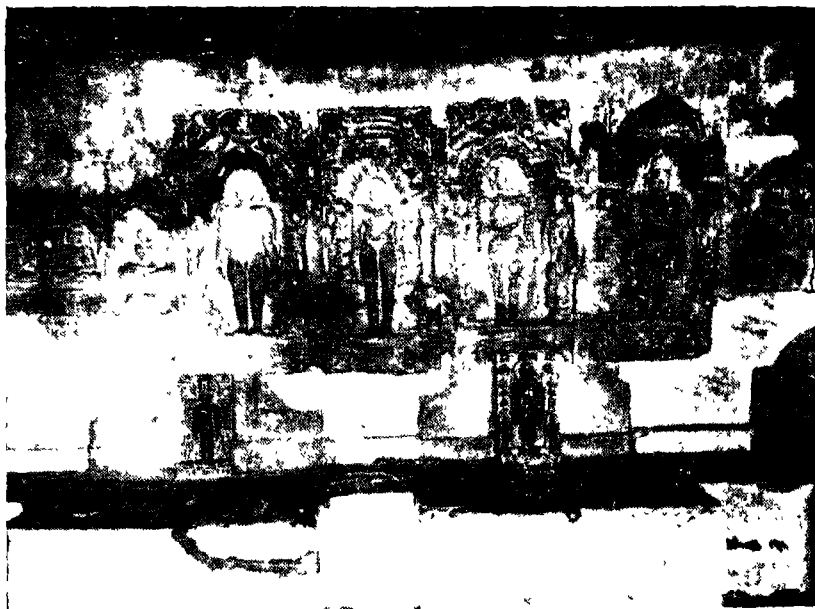
दि० जैन समाज में उपेक्षा का परिणाम

दि० जैन समाज यद्यपि मन्दगति से अपना कार्य कर रहा है। उसकी जैसी प्रगति होनी चाहिए थी नहीं हो सकी। अनेक जैन मन्दिरों और मूर्तियों का निर्माण तथा पंचकल्याणक प्रतिष्ठाओं में अपार धन खर्च किया जाता है। पर तीर्थंकरों की वाणी के प्रसार में या शास्त्रों के जीर्णोद्धार में एक पैसा भी कोई खर्च करने को तैयार नहीं है। दि० जैन मन्दिरों में स्थित शास्त्रभण्डार अव्यवस्थित हैं, चूहा, दीमक और कीटकादि के भक्ष्य हो रहे हैं। अभी ५० परमानन्द शास्त्री का लश्कर जाना हुआ था। उनसे ज्ञात हुआ कि ग्वालियर किसी समय जैन समाज का केन्द्र स्थल था, वहाँ के मन्दिरों में दसवीं शताब्दी से २०वीं शताब्दी तक की प्रतिष्ठित अनेक मूर्तियाँ मन्दिरों में विराजमान हैं। किले में उर्बाही द्वार की दायें बायें दोनों ओर चट्टानों को खोद कर बनाई गयी प्रतिमाएँ अत्यन्त आकर्षक और कला पूर्ण हैं और अधिकांश खण्डित हैं। परन्तु वे जैनो द्वारा सदा उपेक्षित रहो हैं। उनका पत्थर गल रहा है, शिला लेख नष्ट होते जा रहे हैं। अनेक मूर्तियाँ खण्डित हैं। उनकी ओर वहाँ की समाज की पूर्ण उपेक्षा है। मन्दिरों के शास्त्र भण्डारों की कोई व्यवस्था नहीं है। ग्वालियर का भट्टारकीय शास्त्र भंडार ४० वर्ष से बन्द पड़ा है, उसकी न कोई सूची है, और न यही ज्ञात हो सका कि वहाँ कितने और क्या-क्या अमूल्य ग्रंथ हैं। उनकी सार सम्हाल यदि जल्दी न की गई तो फिर इस अमूल्य सम्पदा से सदा के लिये हाथ धोना पड़ेगा। शास्त्र भंडारों की सम्पत्ति जैन समाज की व राष्ट्र की निधि है। उसका संरक्षण देव मन्दिर व प्रतिमाओं के समान ही होना चाहिये। ग्वालियर में ७ हजार जैनियों की संख्या है, २३, २४ मन्दिर हैं। आशा है ग्वालियर और लश्कर की जैन समाज के धर्मात्मा सज्जन इस उपेक्षावृत्ति को छोड़कर धर्म रक्षार्थ मंदिर मूर्तियों की तरह शास्त्रों के प्रति अपनी भक्ति का परिचय देगी, भट्टारकजी के भंडार को भी आदर्श रूप में व्यवस्थित करेगी।

मन्त्री—बीर सेवामन्दिर

- (१) पुरातन-त्रैलोक्य-सूची—प्राकृत के प्राचीन ४६ मूल-ग्रन्थों की पद्यानुक्रमणी, जिसके साथ ४८ टीकादिग्रन्थों में उद्धृत दूसरे पद्यों की भी अनुक्रमणी लगी हुई है। सब मिलाकर २५३५३ पद्य-वाक्यों की सूची। संपादक मुस्तार श्री जुगलकिशोर जी की गवेषणापूर्ण महत्व की ७० पृष्ठ की प्रस्तावना से अलंकृत, डा० कालीदास नाग, एम. ए. डी. लिट् के प्राक्कथन (Foreword) और डा० ए. एन. उपाध्ये एम. ए. डी. लिट् की भूमिका (Introduction) से भूषित है, शोध-खोज के विद्वानों के लिए अनीव उपयोगी, बड़ा साइज, सजिल्द १५-००
- (२) आ त परीक्षा—श्री विद्यानन्दाचार्य की स्वोपज्ञ सटीक अपूर्व कृति, आप्तों की परीक्षा द्वारा ईश्वर-विषयक सुन्दर, विवेचन को लिए हुए, न्यायाचार्य पं० दरबारीलालजी के हिन्दी अनुवाद से युक्त, सजिल्द। ८-००
- (३) स्वयम्भूस्तोत्र—समन्तभद्रभारती का अपूर्व ग्रन्थ, मुस्तार श्री जुगलकिशोरजी के हिन्दी अनुवाद, तथा महन्व की गवेषणापूर्ण प्रस्तावना से सुशोभित। ... २-००
- (४) स्तुतिविद्या—स्वामी समन्तभद्र की अनोखी कृति, पापों के जीतने की कला, सटीक, सानुवाद और श्री जुगल किशोर मुस्तार की महत्व की प्रस्तावनादि से अलंकृत सुन्दर जिल्द-सहित। १-५०
- (५) अष्ट्यात्मकमलमातृण्ड—पद्याध्यायीकार कवि राजमल की सुन्दर आध्यात्मिकरचना, हिन्दी-अनुवाद-सहित १-५०
- (६) युक्त्यनुशासन—नत्वज्ञान से परिपूर्ण समन्तभद्र की असाधारण कृति, जिसका अभी तक हिन्दी अनुवाद नहीं हुआ था। मुस्तार श्री-के हिन्दी अनुवाद और प्रस्तावनादि से अलंकृत, सजिल्द। ... ७५
- (७) श्रीपुरपाद्मनाथस्तोत्र—आचार्य विद्यानन्द रचित, महत्व की स्तुति, हिन्दी अनुवादादि सहित। ७५
- (८) शासनचतुस्त्रिंशिका—(तीर्थपरिचय) मुनि मदनकीर्ति की १३वीं शताब्दी की रचना, हिन्दी-अनुवाद सहित ७५
- (९) समीचीन धर्मशास्त्र—स्वामी समन्तभद्र का गृहस्थाचार-विषयक अत्युत्तम प्राचीन ग्रन्थ, मुस्तार श्रीजुगलकिशोर जी के विवेचनात्मक हिन्दी भाष्य और गवेषणात्मक प्रस्तावना से युक्त, सजिल्द। ... ३-००
- (१०) जैनग्रन्थ-प्रशस्ति संग्रह भा० १ संस्कृत और प्राकृत के १७१ अप्रकाशित ग्रन्थों की प्रशस्तियों का मंगलाचरण सहित अपूर्व संग्रह उपयोगी ११ परिशिष्टों और पं० परमानन्द शास्त्री की इतिहास-विषयक साहित्य परिचयात्मक प्रस्तावना से अलंकृत, सजिल्द। ... ४-००
- (११) समाधितन्त्र और इष्टोपदेश—अध्यात्मकृति परमानन्द शास्त्री की हिन्दी टीका सहित ४-००
- (१२) अनित्यभावना—आ० पद्मनन्दीकी महत्वकी रचना, मुस्तार श्री के हिन्दी पद्यानुवाद और भावार्थ सहित २५
- (१३) तत्त्वार्थसूत्र—(प्रभाचन्द्रोय)—मुस्तार श्री के हिन्दी अनुवाद तथा व्याख्या से युक्त। ... २५
- (१४) श्रवणबेलगोल और दक्षिण के अन्य जैनतीर्थ। १-००
- (१५) महावीर का सर्वोदय तीर्थ १९ पैसे, १६ समन्तभद्र विचार-दीपिका १९ पैसे, (१७) महावीर पूजा २५
- (१८) अध्यात्म रहस्य—पं० आशाधर की सुन्दर कृति मुस्तार जी के हिन्दी अनुवाद सहित। १-००
- (१९) जैनग्रन्थ-प्रशस्ति संग्रह भा० २ अपभ्रंश के १२२ अप्रकाशित ग्रन्थों की प्रशस्तियों का महत्वपूर्ण संग्रह। ५५ ग्रन्थकारों के ऐतिहासिक ग्रंथ-परिचय और परिशिष्टों सहित। स. पं० परमानन्द शास्त्री। सजिल्द १२-००
- (२०) न्याय-दीपिका—आ. अभिनव धर्मभूषण की कृति का प्रो० दरबारीलालजी न्यायाचार्य द्वारा स० अनु० ७-००
- (२१) जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश, पृष्ठ संख्या ७४० सजिल्द (वीर-शासन-सघ प्रकाशन ५-००
- (२२) कसायपाहुड सुत—मूलग्रन्थ की रचना आज से दो हजार वर्ष पूर्व श्री गुणधराचार्य ने की, जिस पर श्री यतिवृषभाचार्य ने पन्द्रह सौ वर्ष पूर्व छह हजार श्लोक प्रमाण तृणिसूत्र लिखे। सम्पादक पं० हीरालालजी सिद्धान्त शास्त्री, उपयोगी परिशिष्टों और हिन्दी अनुवाद के साथ बड़े साइज के १००० से भी अधिक पृष्ठों में। पुष्ट कागज और कपड़े की पक्की जिल्द। ... २०-००
- (२३) Reality भा० पूज्यपाद की सर्वार्थसिद्धि का अंग्रेजी में अनुवाद बड़े आकार के ३०० पृ. पक्की जिल्द ६-००

अनेकान्त



खण्डगिरि में उत्कीर्ण तीर्थंकर मूर्तियां

समन्तभद्राश्रम (वीर-सेवा-मन्दिर) का मुख पत्र

विषय-सूची

क्र०	पृ०
१ अर्हत्परमेष्ठी स्तवन—मुनि श्री पद्मनन्द	४६
२ जैन समाज की कुछ उपजातियां— परमानन्द शास्त्री	५०
३ एक प्रतीकांकित द्वार—गोपीलाल अमर एम. ए.	६०
४ अंतरीक्ष पार्श्वनाथ विनंति— नेमचन्द घन्नुसा जैन	६१
५ आत्म सम्बोधन—परमानन्द शास्त्री	७३
६ ग्वालियर के कुछ काष्ठासबधी भट्टारक— परमानन्द शास्त्री	६४
७ शहडोल जिले में जैन संस्कृति का एक अज्ञात केन्द्र—प्रो० भागचन्द जैन 'भागेंद्रु'	७१
८ युक्त्यनुशासन : एक अध्ययन— डा० दरबारी लाल जैन कोठिया	७३
९ भगवान् ऋषभदेव—परमानन्द शास्त्री	७८
१० हृदय की कठोरता—मुनि कन्हैयालाल	८०
११ मगध सम्राट् राजा बिम्बसार का जैनधर्म परिग्रहण—परमानन्द शास्त्री	८१
१२ अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग व शान्ति किस प्रकार प्राप्त हो सकती है— शान्तीलाल बनमाली शेठ	८५
१३ लङ्कर में मेरे पांच दिन—परमानन्द शास्त्री	९१
१४ साहित्य-समीक्षा—परमानन्द शास्त्री तथा बालचन्द सिद्धान्त शास्त्री	९३



सम्पादक-मण्डल

डा० आ० ने० उपाध्ये

डा० प्रेमसागर जैन

श्री यशपाल जैन

परमानन्द शास्त्री

अनेकान्त में प्रकाशित विचारों के लिए सम्पादक
मण्डल उत्तरदायी नहीं हैं। —व्यवस्थापक अनेकान्त

अनेकान्त के लिए स्थायी ग्राहकों और विशेष सहायक सदस्यों की आवश्यकता

अनेकान्त जैन संस्कृति की प्रतिष्ठित एवं प्रामाणिक पत्रिका है। इतना होने पर भी जैन समाज का ध्यान इस पत्रिका की ओर नहीं है। तो भी पत्रिका घाटा उठाकर भी संस्कृति के प्रचार और प्रसार में संलग्न रहती है। अनेकान्त द्वारा जो खोज की गई है, वे महत्वपूर्ण हैं। अतः हम अनेकान्त के संरक्षकों विशेष सहायकों और स्थायी सदस्यों तथा विद्वानों से प्रेरणा करने हैं कि वे अनेकान्त की ग्राहक सख्या बढ़ाने में हमें सहयोग प्रदान करें। मह-गाई होने पर भी अनेकान्त का वही ६) रु० मूल्य है। जब कि सब पत्रों का मूल्य बढ़ गया है तब भी अनेकान्त का मूल्य नहीं बढ़ाया गया।

अनेकान्तके लिए २५१) प्रदान करने वाले ५० विशेष सहायक सदस्यों, और १०१) प्रदान करने वाले सी स्थायी सदस्यों की आवश्यकता है। कुछ ऐसे धर्मात्मा सज्जनों की भी आवश्यकता है जो अपनी ओर से अनेकान्त पत्रिका कालेजों, पुस्तकालयों और विश्वविद्यालयों को अपनी ओर से भिजवा सकें। साथ ही विवाहों, पर्वों और उत्सवों पर निकाले जाने वाले दान में से अनेकान्त को भी आर्थिक सहयोग प्राप्त हो।

कुछ दानी महानुभाव अपनी ओर से जैन संस्थाओं पुस्तकालयों में अनेकान्त भिजवाएं। व्यवस्थापक

'अनेकान्त'

अनेकान्त के पाठकों से

अनेकान्त प्रेमी पाठकों से निवेदन है कि उनका वार्षिक मूल्य समाप्त हो चुका है। नए २२वें वर्ष का मूल्य ६) रुपया मनीआर्डर द्वारा भिजवा कर अनुगृहीत करें। अन्यथा अगला अक वी. पी. से भेजा जायगा। जिससे आपको १) एक रुपया अधिक खर्च देना पड़ेगा।

व्यवस्थापक : 'अनेकान्त'

'वीरसेवामन्दिर' २१ दरियागंज, दिल्ली



अनेकान्त का वार्षिक मूल्य ६) रुपया
एक किरण का मूल्य १ रुपया २५ पंसा

ओम् अहम्

अनेकान्त

परमागमस्य बीजं निषिद्धजात्यन्धसिन्धुरविधानम् ।
सकलनयविलसितानां विरोधमथनं नमाम्यनेकान्तम् ॥

वर्ष २२
किरण २

}

वीर-सेवा-मन्दिर, २१ दरियागंज, दिल्ली-६
वीर निर्वाण सवत् २४६५, वि० स० २०२६

{ जून
सन् १९६६

अर्हत् परमेष्ठी स्तवन

रागो यस्य न विद्यते क्वचिदपि प्रध्वस्तसंगग्रहात्
अस्त्रादेः परिवर्जनान्तं च बुधद्वेषोऽपि संभाव्यते ।
तस्मात्साम्यमथात्मबोधनमतो जातः क्षयः कर्मणा-
मानन्दादि गुणाश्रयस्तु नियतं सोऽर्हन्सदा पातु वः ॥३॥

मुनि श्री पद्मनन्दि

अर्थ—जिस अर्हन्त परमेष्ठी के पाँचग्रहूपी पिशाच से रहित हो जाने के कारण किसी भी इन्द्रिय विषय में राग नहीं है, त्रिशूल आदि आयुधों से रहित होने के कारण उक्त अर्हन्त परमेष्ठी के विद्वानों के द्वारा द्वेष की भी सम्भावना नहीं की जा सकती है । इसीलिए राग-द्वेष से रहित हो जाने के कारण उनके समताभाव आविर्भूत हुआ है । अतएव कर्मों के क्षय से जो अर्हत् परमेष्ठी अनन्त सुख आदि गुणों के आश्रय को प्राप्त हुए हैं वे अर्हत् परमेष्ठी सर्वदा आप लोगों की रक्षा करें ॥

जैन समाज की कुछ उपजातियाँ

परमानन्द जैन शास्त्री

उपजातियाँ कब और कैसे बनीं, इसका कोई प्रामाणिक इतिवृत्त अभी तक भी नहीं लिखा गया। पर ग्राम-नगरों या व्यवसाय के नाम पर अनेक उपजातियों का नामकरण और गोत्रों आदि का निर्माण किया गया है। दसवीं शताब्दी से पूर्व उपजातियों का कोई इतिवृत्त नहीं मिलता। सम्भव है उससे पूर्व भी उनका अस्तित्व रहा हो। जैन समाज में चौरासी उपजातियाँ प्रसिद्ध हैं। अठारहवीं शताब्दी के विद्वान ५० विनोदीलाल अग्रवाल की 'फूलमाला पञ्चमी' एक पञ्चीस पद्यात्मक रचना है। जिसमें अग्रवाल, खण्डेलवाल, बघेरवाल, गोलापूर्व, परदार, (पौर पट्ट) आदि जातियों का नामांकन किया गया है। ग्राम नगरादि के नाम पर अनेक उपजातियाँ बनीं। ओसा से ओसवाल, बघेरा से बघेरवाल। पालि से पल्ली-वाल, मेवाड से मेवाड़ा। इस तरह ग्राम एवं नगरों तथा कार्यों आदि से उपजातियों और गोत्रों आदि का निर्माण हुआ है। अनेक उपजातियों के उल्लेख मूर्ति लेखों और ग्रन्थ प्रशस्तियों आदि में उपलब्ध होते हैं। पर उनका अस्तित्व अब वर्तमान में नहीं मिलता। जैसे धक्कड़ या धकंट। यह एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक जाति है जिसकी वंश परम्परा पूर्व काल में अच्छी प्रतिष्ठित रही है। इसमें अनेक प्रतिष्ठित विद्वान हुए हैं। इसका विकास 'उजपुर' सिरोंज (टोक) से बतलाया गया है। "इह मेवाड़ देसे जण सकुले, सिरि उजपुर निगगधक्कड़ कुले।" धर्म परीक्षा के कर्ता हरिषेण (१०४४) भी इसी धकंट वंशीय गोवर्द्धन के पुत्र और सिद्धसेन के शिष्य थे। यह चित्तौड़ के निवासी थे और कार्यवश अजलपुर चले गए थे और वहाँ पर उन्होंने सं० १०४४ में धर्म परीक्षा का निर्माण किया था। मालव देश की समृद्ध नगरी सिन्धुवर्षी में भी धकंट वंश के तिलक मधुसूदन श्रेष्ठी के पुत्र तक्खड़ और भरत थे, जिनकी प्रेरणा से वीर कवि ने जम्बू स्वामी

चरित की रचना की थी। यह धकंट वंश दिल्ली के आस-पास नहीं रहा जान पड़ता। यह राजपूताने और गुजरात आदि में रहा है। वर्तमान में इस जाति का अस्तित्व ही नहीं जान पड़ता। सहलवाल, गगेरवाल, गर्गराट, आदि अनेक उपजातियाँ ऐसी हैं जिनका परिचय नहीं मिलता।

कविवर विनोदीलाल ने लिखा है कि एक बार उपजातियों का समूह गिरिनार जी में नेमिप्रभु की फूलमाल लेने के लिए इकट्ठा हुआ और परस्पर में यह होड़ लगी कि प्रभु को जयमाल पहले मैं लूँ। दूसरा कहता था कि पहले मैं लूँ। और तीसरा भी चाहता था कि फूलमाल मुझे मिले। इस होड़ में सभी उपजातियाँ अपने वैभव के अनुसार बोली छुड़ाने के लिए तैयार थीं। फूलमाल लेने की जिज्ञासा ने जन-साधारण में अपूर्व जागृति की लहर उत्पन्न कर दी। और एक से एक बढ़कर फूलमाल का मूल्य देने के लिये तैयार हो गया। पर उन सबमें से किसी एक को ही फूलमाल मिली। यह रचना विक्रम की १८वीं शताब्दी के मध्य काल की है। यद्यपि १६वीं शताब्दी के विद्वान ब्रह्म नेमिदत्त ने भी फूलमाल जयमाला का निर्माण किया है। जो संक्षिप्त सरल और सुन्दर है। जो सज्जन इस महर्षिक फूलमाल को अपनी लक्ष्मी देकर लेते हैं उनके सब दुख दूर हो जाते हैं।

इस लेख में कुछ उपजातियों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है। जिन जातियों का नामादि के अतिरिक्त कुछ परिचय भी नहीं मिला, उन्हें छोड़ दिया गया है।

अग्रवाल—यह शब्द एक क्षत्रिय जाति का सूचक है। जिसका विकास अग्रोहा या 'अग्रोदक' जनपद से हुआ

१. भो भवियण जिण-पय-कमल, माल महिगय लेहु।
णिय लच्छि फलु करिकरहु, दुक्ख जलजलु देहु॥
माला रोहिणी

है। यह स्थान हिसार जिले में है। अग्रोहा एक प्राचीन ऐतिहासिक नगर था। यहाँ के एक साठ फुट ऊँचे टीले की खुदाई सन् १९३६-४० में हुई थी। उसमें प्राचीन नगर के अवशेष और प्राचीन सिक्कों आदि का एक ढेर प्राप्त हुआ था। २६ फुट से नीचे आहत मुद्रा का नमूना, ४ यूनानी सिक्के और ११ चौखूटे ताँबे के सिक्के भी मिले हैं। ताँबे के सिक्कों में सामने की ओर 'वृषभ' और पीछे की ओर सिंह या चैत्यवृक्ष की मूर्ति है। सिक्कों के पीछे ब्राह्मी अक्षरों में—'अगोद के अगच जनपदस' शिलालेख भी अंकित है जिसका अर्थ अगोदक में अगच जनपद का सिक्का होता है। अग्रोहे का नाम अगोदक भी रहा है। उक्त सिक्कों पर अंकित वृषभ, सिंह या चैत्य वृक्ष की मूर्ति जैन मान्यता की ओर संकेत करती है। (देखो एपिग्राफि का इडिकाजिल्द २ पृ० २४४ और इण्डियन एण्टी क्वेरी भा० १५ पृ० ३४३ पर अग्रोतक वैश्यो का वर्णन दिया हुआ है।)

अग्रोहा में अग्रसेन नाम का एक क्षत्रिय राजा था, उसी की सन्तान परम्परा अग्रवाल कहलाते हैं। अग्रवाल शब्द के अनेक अर्थ हैं किन्तु यहाँ उनकी विवक्षा नहीं है। यहाँ अग्रदेश के रहने वाले अर्थ ही विविक्षित है। अग्रवालों के १८ गोत्र बतलाये जाते हैं, जिनमें गर्ग, गोयल, मित्तल, जिन्दल और सिंहल आदि नाम प्रसिद्ध हैं। इनमें दो धर्मों के मानने वाले पाये जाते हैं। जैन अग्रवाल और वैष्णव अग्रवाल। श्री लोहाचार्य के उपदेश से जो जैन धर्म में दीक्षित हो गये थे, वे जैन अग्रवाल कहलाये—उनके आचार-विचार सभी जैन धर्ममूलक हैं। शेष वैष्णव अग्रवाल। दोनों में रोटी-बेटी व्यवहार होता है। रीति-रिवाजो में भी कुछ समानता होते हुए भी अपने-अपने धर्मपरक प्रवृत्ति पाई जाती है। हाँ वे सभी अहिंसा धर्म के मानने वाले हैं। उपजातियों का इतिहास १०वीं शताब्दी से पूर्व का नहीं मिलता, पर हो सकता है कि उनमें कुछ उपजातियाँ पूर्ववर्ती रही हों। अग्रवाल जैन परम्परा के उल्लेख १२वीं शताब्दी से पूर्व के मेरे अवलोकन में नहीं आये।

डा० परमेश्वरीलाल ने लिखा है कि 'अग्रवाल' नामका उल्लेख १४वीं शताब्दी से पहले नहीं मिलता है।

इसका प्राचीनतम उल्लेख मौलाना दाऊदकुत अवधी काव्य चन्द्रामन (रचना काल सन् १३७६ ई०) में हुआ है। 'वामन खतरी' वंसह गुवारा, गहरवार और अग्ररवारा।'

डा० परमेश्वरीलाल का उक्त निष्कर्ष ठीक नहीं मालूम होता, क्योंकि अग्रवाल वंश का सूचक 'अग्रवाल' शब्द अपभ्रंशभाषा के १२वीं से १७वीं शताब्दी तक के ग्रन्थों में उल्लिखित मिला है। वि० सं० ११८६ (सन् ११३२ ई०) में दिल्ली के तोमरवंशी शासक अनंगपाल तृतीय के राज्य काल में रचित 'पासणाह चरिउ' की आदि अन्त प्रशस्ति में अग्रवाल शब्द का प्रयोग हुआ है, यह कवि स्वयं अग्रवाल कुल में उत्पन्न हुआ था। उसने अपने लिये—'सिरि अग्रवाल कुल सम्भवेण, जणणी वील्हा गम्भुम्भवेण' का प्रयोग किया है। कवि स्वयं हरियाणा प्रदेश का निवासी था वहाँ से यमुना नदी को पार कर वह दिल्ली में आया था। उस समय के राजा अनंगपाल तृतीय के मन्त्री सिरि नट्टलसाहू अग्रवाल थे। वे। जिन्हें कवि ने सिरि अग्रवाल कुल कमल, 'मित्तु, सुहधम्म-कम्म पवियण्य-वित्तु।' रूप में उल्लिखित किया है। इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि अग्रवाल शब्द का व्यवहार विक्रम की १२वीं शताब्दी में प्रचलित था, और उनके पूर्वज १२वीं शताब्दी से पूर्ववर्ती रहे हैं। उस समय दिल्ली में अग्रवाल जैन और वैष्णव दोनों का निवास था। कई अग्रवाल अब आर्य समाजी भी हैं। निवास की दृष्टि से मारवाड़ मारवाड़ी कहे जाते हैं। किन्तु रक्त शुद्धि आदि के कारण किसी समय बीसा और दस्सा भेदों में विभक्त देखे जाते हैं। अब मेद वाली बात नगण्य हो गई है। और सब एक रूप में देखे जाने लगे हैं। ये लोग धर्मज्ञ, आचारनिष्ठ, अहिंसक, जन धन से सम्पन्न राज्यमान रहे हैं। इनकी वृत्ति शासन की ओर रही है। तोमरवंशी राजा अनंगपाल तृतीय के राज्य श्रेष्ठी और आमात्य अग्रवाल कुलावतश साहू नट्टल ने दिल्ली में आदिनाथ का विशाल सुन्दरतम मन्दिर बनवाया था जिसका उल्लेख उसी समय के कवि श्रीधर द्वारा रचित पार्श्वपुराण प्रशस्ति में उपलब्ध होता है।

संवत् १३६३ में साहू बाघू अग्रवाल ने मुहम्मद शाह

१०. देखो, अग्रवाल जाति का इतिहास पृ० ६१।

जैन समाज की कुछ उपजातियाँ

परमानन्द जैन शास्त्री

उपजातियाँ कब और कैसे बनीं, इसका कोई प्रामाणिक इतिवृत्त अभी तक भी नहीं लिखा गया। पर ग्राम-नगरों या व्यवसाय के नाम पर अनेक उपजातियों का नामकरण और गोत्रों आदि का निर्माण किया गया है। दसवीं शताब्दी से पूर्व उपजातियों का कोई इतिवृत्त नहीं मिलता। सम्भव है उमने पूर्व भी उनका अस्तित्व रहा हो। जैन समाज में चौरासी उपजातियाँ प्रसिद्ध हैं। अठारहवीं शताब्दी के विद्वान प० विनोदीलाल अग्रवाल की 'फूलमाला पञ्चीसी' एक पञ्चीस पद्यात्मक रचना है। जिसमें अग्रवाल, खण्डेलवाल, बघेरवाल, गोलापूर्व, परदार, (पौर पट्ट) आदि जातियों का नामांकन किया गया है। ग्राम नगरादि के नाम पर अनेक उपजातियाँ बनीं। ओसा से ओसवाल, बघेरा से बघेरवाल। पालि से पल्ली-वाल, मेवाड से मेवाडा। इस तरह ग्राम एवं नगरो तथा कार्यों आदि से उपजातियों और गोत्रों आदि का निर्माण हुआ है। अनेक उपजातियों के उल्लेख मूर्ति लेखों और ग्रन्थ प्रशस्तियों आदि में उपलब्ध होते हैं। पर उनका अस्तित्व अब वर्तमान में नहीं मिलता। जैसे धक्कड़ या धकंट। यह एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक जाति है जिसकी वंश परम्परा पूर्व काल में अच्छी प्रतिष्ठित रही है। इसमें अनेक प्रतिष्ठित विद्वान हुए हैं। इसका विकास 'उजपुर' सिरोंज (टांक) से बतलाया गया है। "इह मेवाड़ देसे जण सकुले, सिरि उजपुर निगमयधक्कड़ कुले।" धर्म परीक्षा के कर्ता हरिषेण (१०४४) भी इसी धकंट वंशीय गोवर्द्धन के पुत्र और सिद्धसेन के शिष्य थे। यह चित्तौड़ के निवासी थे और कार्यवश अचलपुर चले गए थे और वहाँ पर उन्होंने स० १०४४ में धर्म परीक्षा का निर्माण किया था। मालव देश की समृद्ध नगरी सिन्धुवर्षी में भी धकंट वंश के तिलक मधुसूदन श्रेष्ठी के पुत्र तक्खडु और भरत थे, जिनकी प्रेरणा से वीर कवि ने जम्बू स्वामी

चरित की रचना की थी। यह धकंट वंश दिल्ली के आस-पास नहीं रहा जान पड़ता। यह राजपूताने और गुजरात आदि में रहा है। वर्तमान में इस जाति का अस्तित्व ही नहीं जान पड़ता। सहलवाल, गगेरवाल, गर्गराट, आदि अनेक उपजातियाँ ऐसी हैं जिनका परिचय नहीं मिलता।

कविवर विनोदीलाल ने लिखा है कि एक बार उपजातियों का समूह गिरिनार जी में नेमिप्रभु की फूलमाल लेने के लिए इकट्ठा हुआ और परस्पर में यह होंड लगी कि प्रभु को जयमाल पहले में लूँ। दूसरा कहता था कि पहले में लूँ। और तीसरा भी चाहता था कि फूलमाल मुझे मिले। इस होंड में सभी उपजातियों अपने-अपने वंश के अनुसार बोली छड़ाने के लिए तैयार थीं। फूलमाल लेने की जिज्ञासा ने जन-साधारण में अपूर्व जागृति की लहर उत्पन्न कर दी। और एक से एक बढ़कर फूलमाल का मूल्य देने के लिये तैयार हो गया। पर उन सबमें से किसी एक को ही फूलमाल मिली। यह रचना विक्रम की १८वीं शताब्दी के मध्य काल की है। यद्यपि १६वीं शताब्दी के विद्वान ब्रह्म नेमिदत्त ने भी फूलमाल जयमाला का निर्माण किया है। जो संक्षिप्त सरल और सुन्दर है। जो सज्जन इस महर्षिक फूलमाल को अपनी लक्ष्मी देकर लेते हैं उनके सब दुख दूर हो जाते हैं।

इस लेख में कुछ उपजातियों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है। जिन जातियों का नामादि के अतिरिक्त कुछ परिचय भी नहीं मिला, उन्हें छोड़ दिया गया है।

अग्रवाल—यह शब्द एक क्षत्रिय जाति का सूचक है। जिसका विकास अग्रोहा या 'अग्रोदक' जनपद से हुआ

१. भी भवियण जिण-पय-कमल, माल महर्षिय लेहु।

णिय लच्छि फलु करिकरहु, दुखल जलजलु देहु॥

माला रोहिणी

है। यह स्थान हिसार जिले में है। अग्रोहा एक प्राचीन ऐतिहासिक नगर था। यहाँ के एक साठ फुट ऊँचे टीले की खुदाई सन् १९३६-४० में हुई थी। उसमें प्राचीन नगर के अवशेष और प्राचीन सिक्कों आदि का एक ढेर प्राप्त हुआ था। २६ फुट से नीचे आहत मुद्रा का नमूना, ४ यूनानी सिक्के और ११ चौखूटे ताँबे के सिक्के भी मिले हैं। ताँबे के सिक्कों में सामने की ओर 'वृषभ' और पीछे की ओर सिंह या चैत्यवृक्ष की मूर्ति है। सिक्कों के पीछे ब्राह्मी अक्षरों में—'अग्रोद के अग्रच जनपदस' शिलालेख भी अंकित है जिसका अर्थ अग्रोदक में अग्रच जनपद का सिक्का होता है। अग्रोहे का नाम अग्रोदक भी रहा है। उक्त सिक्कों पर अंकित वृषभ, सिंह या चैत्य वृक्ष की मूर्ति जैन मान्यता की ओर संकेत करती है। (देखो एपिग्राफि का इंडिकाजिल्ड २ पृ० २४४ और इण्डियन एण्टी क्वेरी भा० १५ पृ० ३४३ पर अग्रोतक वैश्यों का वर्णन दिया हुआ है।

अग्रोहा में अग्रसेन नाम का एक क्षत्रिय राजा था, उसी की सन्तान परम्परा अग्रवाल कहलाते हैं। अग्रवाल शब्द के अनेक अर्थ हैं किन्तु यहाँ उनकी विवक्षा नहीं है। यहाँ अग्रदेश के रहने वाले अर्थ ही विवक्षित है। अग्रवालों के १८ गोत्र बतलाये जाते हैं, जिनमें गर्ग, गोयल, मित्तल, जिन्दल और सिंहल आदि नाम प्रसिद्ध हैं। इनमें दो धर्मों के मानने वाले पाये जाते हैं। जैन अग्रवाल और वैष्णव अग्रवाल। श्री लोहाचार्य के उपदेश से जो जैन धर्म में दीक्षित हो गये थे, वे जैन अग्रवाल कहलाये—उनके आचार-विचार सभी जैन धर्ममूलक हैं। शेष वैष्णव अग्रवाल। दोनों में रोटी-बेटी व्यवहार होता है। रीति-रिवाजों में भी कुछ समानता होते हुए भी अपने-अपने धर्मपरक प्रवृत्ति पाई जाती है। हाँ वे सभी अहिंसा धर्म के मानने वाले हैं। उपजातियों का इतिहास १०वीं शताब्दी से पूर्व का नहीं मिलता, पर हो सकता है कि उनमें कुछ उपजातियाँ पूर्ववर्ती रही हों। अग्रवाल जैन परम्परा के उल्लेख १२वीं शताब्दी से पूर्व के मेरे अवलोकन में नहीं आये।

डा० परमेश्वरीलाल ने लिखा है कि 'अग्रवाल' नामका उल्लेख १४वीं शताब्दी से पहले नहीं मिलता है।

इसका प्राचीनतम उल्लेख मौलाना दाऊदकुत अवधी काव्य चन्द्रामन (रचना काल सन् १३७६ ई०) में हुआ है। 'वामन खतरी' बंसह गुवारा, गहरवार और अग्ररवारा।'

डा० परमेश्वरीलाल का उक्त निष्कर्ष ठीक नहीं मालूम होता, क्योंकि अग्रवाल वंश का सूचक 'अग्रवाल' शब्द अपभ्रंशभाषा के १२वीं से १७वीं शताब्दी तक के ग्रन्थों में उल्लिखित मिला है। वि० सं० ११८६ (सन् ११३२ ई०) में दिल्ली के तोमरवंशी शासक अनंगपाल तृतीय के राज्य काल में रचित 'पासणाह चरित' की आदि अन्त प्रशस्ति में अग्रवाल शब्द का प्रयोग हुआ है, यह कवि स्वयं अग्रवाल कुल में उत्पन्न हुआ था। उसने अपने लिये—'सिरि अग्रवाल कुल सम्भवेण, जणणी वील्हा गम्बुम्भवेण' का प्रयोग किया है। कवि स्वयं हरियाणा प्रदेश का निवासी था वहाँ से यमुना नदी को पार कर वह दिल्ली में आया था। उस समय के राजा अनंगपाल तृतीय के मन्त्री सिरि नट्टलसाहू अग्रवाल थे। थे। जिन्हें कवि ने सिरि अग्रवाल कुल कमल, 'मित्तु, सुहृद्धम्-कम्म पविग्रय-वित्तु।' रूप में उल्लिखित किया है। इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि अग्रवाल शब्द का व्यवहार विक्रम की १२वीं शताब्दी में प्रचलित था, और उनके पूर्वज १२वीं शताब्दी से पूर्ववर्ती रहे हैं। उस समय दिल्ली में अग्रवाल जैन और वैष्णव दोनों का निवास था। कई अग्रवाल अब आर्य समाजी भी हैं। निवास की दृष्टि से मारवाड़ मारवाड़ी कहे जाते हैं। किन्तु रक्त शुद्धि आदि के कारण किसी समय बीसा और दस्सा भेदों में विभक्त देखे जाते हैं। अब भेद वाली बात नगण्य हो गई है। और सब एक रूप में देखे जाने लगे हैं। ये लोग धर्मज्ञ, आचारनिष्ठ, अहिंसक, जन धन से सम्पन्न राज्यमान रहे हैं। इनकी वृत्ति शासन की ओर रही है। तोमरवंशी राजा अनंगपाल तृतीय के राज्य श्रेष्ठी और आमात्य अग्रवाल कुलावतश साहू नट्टल ने दिल्ली में आदिनाथ का विशाल सुन्दरतम मन्दिर बनवाया था जिसका उल्लेख उसी समय के कवि श्रीधर द्वारा रचित पार्श्वपुराण प्रशस्ति में उपलब्ध होता है।

संवत् १३६३ में साहू बाघू अग्रवाल ने मुहम्मद शाह

१. देखो, अग्रवाल जाति का इतिहास पृ० ६१।

तुगलक के राज्य काल में घनपाल कविकृत भविष्य दत्त पंचमी कथा की प्रतिलिपि कराई थी।

संवत् १४६४ सन् १४३७ में दिल्ली के बादशाह फिरोजशाह तुगलक द्वारा बसाये हुए फिरोजाबादसे दिल्ली में आकर साहू खेतल ने अपनी धर्मपत्नी के श्रुतपंचमी व्रत के उद्यापन के लिए मूलाचार की प्रतिलिपि कराकर भ० धर्मकीर्ति को अर्पित की थी। उनके दिवगत होने पर वह ग्रंथ उनके शिष्य मलयकीर्ति को समर्पित किया गया।

भटानियाकोल (अलीगढ़) वासी साहू पारस के पुत्र साहू टोडरमल अग्रवाल ने मथुरा में ५१४ स्तूपों का जीर्णोद्धार करा कर प्रतिष्ठा कराई थी। और आगरा में जैन मन्दिर का निर्माण कराया था। साथ ही वि० स० १६३२ में पांडे राजमल से जबूस्वामी चरित का निर्माण कराया था। उनके पुत्र ऋषभदास ने ज्ञानार्णव की संस्कृत टीका बनवाई थी। साहू टोडर अकबर की शाही टंकसाल का अध्यक्ष और कृष्णामंगल चौधरी का मन्त्री था। बड़ा धर्मात्मा, उदार और प्रकृति का सज्जन पुरुष था। अग्रवालों ने खालियर किले की सुन्दर मूर्तियों का निर्माण कराया था और कवि रङ्गू से अनेक ग्रन्थों की रचना कराई थी। इसी तरह दिल्ली के राजा हरमुखराय सुगन चन्द्र ने अनेक जैन मन्दिरों का निर्माण कराया था। राजा हरमुखराय भरतपुर राज्य के कोसलर भी थे। इनके द्वारा निर्मित मन्दिर-मूर्तियाँ और ग्रन्थों का निर्माण, शास्त्रों का निर्माण तथा प्रतिलेखन कार्य भी महत्वपूर्ण है।

खंडेलवाल—यह उपजाति भी चौरासी उपजातियों में से एक है। इस जाति का निकास स्थान 'खंडेला' है जो राजस्थान में एक छोटासा स्थान है, जो कभी अच्छा समृद्ध रहा है। इस जाति के चौरासी गोत्र बतलाये जाते हैं। जिनमें छावड़ा, कासलीवाल, बाकलीवाल, लुहाड्या, पाण्ड्या, पहाड्या, सोनी, गोधा, भौसा, काला और पाटनी आदि हैं। इन गोत्रों की कल्पना ग्राम-नगर और व्यवसाय आदि के नाम पर हुई है। इसमें भी दो धर्मों के मानने वाले हैं। जैन और वैष्णव। यह जाति सम्पन्न और व्यापार में कुशल रही है। आज व्यापार आदि की दृष्टि से ही यह भारत के सभी नगरों में पाये जाते हैं।

इस जाति में अनेक धन सम्पन्न, विद्वान कोषाध्यक्ष और दीवान जैसे राज्यकीय उच्च पदों पर काम करने वाले धर्मनिष्ठ व्यक्ति हुए हैं। और वर्तमान में भी हैं। अकेले जयपुर में २५-२६ दीवान हुए हैं। जिन्होंने राज्य की सदा रक्षा की है। इन दीवानों में बालचन्द छावड़ा, रायचन्द्र^१ अमरचन्द्र^२ दीवान अधिक ख्याति प्राप्त हैं। अमरचन्द्र दीवान की महत्ता का लोक में विशेष आदर है। अमरचन्द्र दीवान की सुजनता, उदारता और धर्म तत्परता की जितनी अधिक तारीफ की जाय वह थोड़ी है। उनका जयपुर की रक्षा में प्रमुख हाथ है। उसके लिए उन्होंने अपनी देह तक का उत्सर्ग कर दिया। ऐसे परोपकारी और धर्मात्मा दीवान का कौन स्मरण नहीं करेगा। इनके द्वारा निर्मित मन्दिर और मूर्तियाँ, जैन ग्रन्थों का निर्माण कार्य, और प्रतिलिपि कार्य, महत्वपूर्ण हैं। वर्तमान में भी इनकी सम्पन्नता श्लाघनीय है। खंडेलवालों द्वारा प्रतिष्ठित मूर्ति लेख स० १२०७, १२२३ और १२३७ के देखने में आए हैं^३। खंडेलवाल समाज के अनेक विद्वानों का परिचय भी लेखक द्वारा लिखा गया है जो अनेकान्त में प्रकाशित हैं, पं० टोडरमलजी, दीपचन्द जी शाह, दीलत-रामजी, जयचन्द जी, सदामुखदास जी बुधजन जी (बधीचंद जी) आदि का परिचय पढ़ने योग्य है। इनके द्वारा प्रतिष्ठित मंदिर, मूर्तियाँ और शास्त्रभंडार आदि इनकी महानता के निदर्शक और गौरव के प्रतीक हैं।

१. देखो, अनेकान्त वर्ष १३ कि० १० में दीवान रामचंद छावड़ा वाला लेख
२. देखो, दीवान अमरचन्द, अनेकान्त वर्ष १३ कि० ८ पृ० १६८१
३. संवत् १२०७। माघ वदी ८ खंडेलवालान्वये साहु माहवस्तसुत वाल प्रसन भार्या सावित्री तत्सुत बीकऊ नित्य प्रणमन्ति।

खंडेलवालान्वये साहु धामदेव भार्या पल्हा पुत्र सालू भार्या वस्त्रा स० १२२३ वैसाख सुदी ८ प्रणमन्ति नित्यम्। संवत् १२३७ अग्रहन सुदी ३ शुक्ले खंडिलवालान्वये साहु वाल्हल भार्या वस्ता सुत लाखना विघ्ननाशाय प्रणमन्ति नित्यम्। अनेकान्त में प्रकाशित आहार के मूर्तिलेख वर्ष १०

गोलापूर्व—जैन समाज की ८४ उपजातियों में से यह भी एक सम्पन्न जाति रही है। इस जाति का वर्तमान में अधिकतर निवास बुंदेल खण्ड में पाया जाता है। साथ ही सागर जिला, दमोह, छतरपुर पन्ना, सतना, रोवा आहार, महोबा, नाबई धुवेला, जबलपुर, शिवपुरी और ग्वालियर के आस-पास के स्थानों में निवास रहा है। १२वीं शताब्दी और १३वीं के मूर्ति लेखों से इसकी समृद्धि का अनुमान किया जा सकता है। इस जाति का विकास गोलागढ़ (गोला कोट) की पूर्व दिशा से हुआ है। उसकी पूर्व दिशा में रहने वाले गोलापूर्व कहलाते हैं। यह जाति किसी समय इक्ष्वाकु वंशी क्षत्रिय थी। किन्तु व्यापार आदि करने के कारण वणिकों (वानियों) में इसकी गणना होने लगी। ग्वालियर के पास कितने ही गोलापूर्व विद्वानों ने ग्रन्थ रचना और ग्रन्थ प्रतिलिपि की है। ग्वालियर के अंतर्गत श्योपुर (शिवपुरी) में कवि धनराज गोलापूर्व ने स० १६६४ से कुछ ही समय पूर्व 'भव्यानन्द पचासिका' (भक्तामर का भाषा पद्यानुवाद) किया था और उनके पितृव्य जिनदास के पुत्र खड्गसेन (असिसेन) ने पन्द्रह-पन्द्रह पद्यों की एक संस्कृत जयमाला बनाई थी। इसकी एक जीर्ण-शीर्ण सचित्र प्रति श्वे० मुनि कान्ति सागर के पास है। यह ठीका पाडे हेमराज की ठीका से पूर्ववर्ती है। मूर्ति लेखों और मन्दिरों की विशालता से गोलापूर्वान्वय गौरवान्वित है। वर्तमान में भी उसके अनेक शिखर बन्द मन्दिर मौजूद हैं। धुवेला के स० ११६६ के मूर्ति लेख तो संस्कृत पद्यों में अंकित है। शेष सब गद्य में पाये जाते हैं। अनेक सम्पन्न परिवार और अच्छे विद्वान और ग्रन्थकार इस जाति में पाये जाते हैं। उन पर से इस जाति की समृद्धि का मूल्यांकन किया जा सकता है। गोलापूर्वान्वय के स० ११६६, १२०२, १२०७, १२१३ और १२३७ आदि के अनेक लेख हैं: जिन्हें लेख वृद्धि के भयसे छोड़ा जाता है। इसमें अनेक ग्रन्थकार विद्वान और कवि हैं। वर्तमान में भी अनेक विद्वान डा०, आचार्य और शास्त्री व्याख्याता और सुलेखक विद्वान हैं।

गोलालारे—गोलागढ़ के समीप रहने वाले गोलालारे कहलाते हैं। यह उपजाति यद्यपि संख्या में अल्प रही है; परन्तु फिर भी अपना विकास करती रही है।

इस जाति के द्वारा प्रतिष्ठित अनेक मूर्तियाँ देखने में आती हैं। अनेक विद्वान तथा श्रीमान पुरुष भी इसमें होते रहते हैं और कुछ वर्तमान भी हैं। अनेक ग्रन्थकार और कवि भी हुए हैं। इसके विकास का स्थान गोलागढ़ है। गोलाराडान्वय में खरौआ एक जाति है जिसका गोत्र कुलहा कहा जाता है। इनके गोत्रों की संख्या कितनी और उनके क्या-क्या नाम हैं यह मेरे जानने में नहीं आया। एक ग्रन्थ लेख में 'सेठि' गोत्र मिलता है जिससे गोत्र मान्यता का स्पष्ट आभास होता है।

कवि रङ्गू ने सम्यक्त्व कौमुदी या सावयचरिउ की प्रशस्ति में ग्वालियरवासी साहू सेऊ के पुत्र सधाधिप कुसराज की प्रेरणा से उक्त ग्रन्थ बनाया था और एक जिन मन्दिर का भी निर्माण कराया था जो ध्वजा पंक्तियों से अलंकृत था।

गोलसिंधारे (गोल शृंगार)—गोलागढ़ में सामूहिक रूपसे निवास करने वालों में वे उसके सिंगार कहे जाते हैं। यदि शृंगार शब्द का ठीक अर्थ सहज अभिप्राय को व्यक्त करना ठीक माना जाय तो वे उसके भूषण कहला सकते हैं।

इसके उदय अभ्युदय और ह्रास आदि का कोई इति-

१. स० १४७४ माघसुदी १३ गुरो मूलसंधे गोलाराडान्वये सा० लम्पू पुत्र नरसिंह इद यत्र प्रतिष्ठापित। (अनेकान्त वर्ष १८ कि० ६ पृ० २६४)
स० १६५८ मूलसंधे भ० ललितकीर्ति उपदेशात् गोलालारे सा० रूपनुभार्या रुक्मिणी पुत्र सा० चतुर्भुज भार्या हीरा पुत्र भाउने हरिवंस मनोहर नित्यं प्रणमन्ति। (अनेकान्त वर्ष १८ कि० ६ पृ० २६३)
स० १७२६ माघसुदी १३ रवौ पद्मनन्दि सकलकीर्ति उपदेशात् गोलालारे सेठि गोत्रे सि० लच्छे भा० कपूरा पुत्र खांडे राय भा० वसन्ती पुत्र ३ जेठा पुत्र विमुनदास भा० लालमती द्वि० पुत्र श्रीराम भा० सुवती तृतीय पुत्र भगवानदासेन यत्र प्रतिष्ठितं वरना ग्रामे। (अनेकान्त वर्ष १८ कि० ६ पृ० २६४)
२. जेण कराविउ जिणहरू ससेउ, घयवड पंतिहि रह-सूरतेस।

—अनेकान्त वर्ष १७ कि० १ पृ० १३

वृत्त ज्ञात नहीं हो सका। और न इसके ग्रन्थकर्ता विद्वान् कवियों का ही परिचय ज्ञात हो सका। मूर्ति लेख भी मेरे अवलोकन में नहीं आया। एक सिद्धयंत्र का लेख अवश्य मिला है। जो स० १६८८ है उसमें गोल सिंघार गोत्र का स्पष्ट उल्लेख पाया जाता है जिससे यह स्पष्ट जाना जाता है कि इस उपजाति में भी गोत्रो की मान्यता है। संभवतः लम्धकचुक, गोलाराडान्वय और गोल सिंगारान्वय ये तीनों नाम गोलालारीय जाति के अभिभूचक है। किसी समय ये तीनों एक रूप में रहे होंगे। पर अलग-अलग कब और कैसे हुए, इसके जानने का भी कोई साधन प्राप्त नहीं है। इसलिए इसके सम्बन्ध में विशेष विचार करना संभव नहीं है। वह यत्रलेख इस प्रकार है :—

“सं० १६८८ वर्षे आषाढ वंदी ८ श्री मूलसपे बला-
त्कार गणे सरस्वती गच्छे कुदकुंदात्मन्ये भ० श्री शील-
भूषणदेवास्तत्पट्टे भ० श्री जानभूषणदेवास्तत्पट्टे भ०
श्री जगत्भूषणदेवास्तदात्मन्ये गोलसिंगारान्वये रगा
गोत्रे साहू श्री लालू तस्य भार्या जिना तयो पुत्र कुवेरसी
भार्या चट्टा तयोः पुत्राः चत्वारि ज्येष्ठ पुत्र धरमदास
द्वितीय पुत्र दामोदर तृतीय पुत्र भगवान् [दास] चतुर्थ
जमधरदास भार्या अर्जुना एतेषामध्ये धरमदास दशलक्षणी
व्रत उद्यापनार्थं यंत्र प्रतिष्ठाकारापित। शुभ भवतु।

जैन सं० भा० भा० २ किरण ३ पृ० १८

जैसवाल—यदु, यादव, जायव, जायस ये शब्द एक ही जैसवाल नामक क्षत्रिय जाति के सूचक हैं। यदु कुल एक प्रख्यात एवं ऐतिहासिक कुल है। यदु कुल का ही अपभ्रंश जायव या जायस बन गया है। यह एक प्रसिद्ध क्षत्रिय वंश है। इसी पावन कुल में जैनियों के बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ और श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था जो कृष्ण के चचेरे भाई थे। इस कुल में जैनधर्म के धारक अनेक राजा राजश्रेष्ठी, महामात्य और राज्यमान महा-पुरुष हुए हैं। यह क्षत्रिय कुल भी वैश्य कुल में परिवर्तित हो गया है।

वि० सं० ११४५ में कच्छप वंशी महाराज विक्रम-सिंह के राज्यकाल में मुनि विजयकीर्ति के उपदेश से जैसवाल वंशी पाहड़, सूपंट, देवधर और महीचन्द्र आदि

चतुर श्रावको ने ७५० फीट लम्बे और ४०० वर्ग फीट चौड़े अडाकार क्षेत्र में विशाल मंदिर का निर्माण कराया था और उसके पूजन, संरक्षण एवं जीर्णोद्धार आदि के लिए उक्त कच्छपवंशी विक्रमसिंह ने भूमिदान दिया था।

वि० सं० ११६० में जैसवाल वंशी साहू नेमिचन्द्र ने कवि श्रीधर अग्रवाल से ‘वर्धमान चरित’ की रचना कराई थी^१। जैसवाल कवि माणिक्यराज ने ‘अमरसेन चरित’ और नागकुमारचरित की रचना की थी^२।

तोमरवंशी राजा वीरमदेव के महामात्य जैसवाल वंशी कुशराज ने ग्वालियर में चन्द्रप्रभ का मन्दिर बनवाया था और पद्मनाभ कायस्थ से भ० गुणकीर्ति के आदेश से ‘यशोधर चरित’ अपरनाम दयामुन्दर विधान काव्य की रचना कराई थी। और सवत् १४७५ में आषाढ सुदी ५ के दिन ग्वालियर के राजा वीरमदेव के राज्य काल में कुशराज ने एक यंत्र को प्रतिष्ठित किया था, जो अब नरवर के मन्दिर में विराजमान है^३।

कविवर लक्ष्मण ने, जो जैसवाल कुल में उत्पन्न हुआ

१. See Epigraphica Indica Vol II P. 227-240

२. एयारह सएहि पर विगबहि,
सवच्छर सय णवहि समेयहि।
जेठ पढम पक्खइ पंचमि दिणे,
सूरुवारे गयणगणि ठिइयणे ॥

—वर्धमानचरित प्रशस्ति

३. देखो, जैनग्रंथ प्रगस्ति संग्रह भा० २ पृ० ५७, ६१ दोनों ग्रंथों का रचनाकाल क्रम से १५७६ और १५७६ है।

४. सं० १४७५ आषाढ सुदी ५ गोपाद्रिमया राजाधि-
राज श्री वीरमेन्द्रराज्ये श्री कर्षतां जनैः संधीन्द्र वंशे
[साधु भुल्लण भार्या पितामही] पुत्र जैनपाल भा०
[लोणा देवी] तयो पुत्रः परमश्रावकः साधु कुशराजो
ऽभूत्। भार्या [तिस्त्रा] रत्नो, लक्षण श्री, कौशिरा
तयो तत्पुत्रैः कल्याणमात्र भूत भार्ये धर्म श्री जयतम्मि
दे इत्यादि परिवारेण समे शाह कुशराजा यंत्र
प्रणमति।
नरवर जैन मन्दिर

था, सं० १२७५ में जिनदत्त चरित की रचना की थी^५। और सं० १३१३ में 'अणुवयरयण पईव' की रचना की थी^६। इन्हीं सब कार्यों से इस जाति की सम्पन्नता और धार्मिकता पर प्रकाश पड़ता है। इस जाति के द्वारा प्रतिष्ठित अनेकमूर्ति लेख भी उपलब्ध होते हैं^७। जिनमें से कुछ यहाँ दिये जाते हैं। जिनसे उनकी धर्मप्रियता और जिनभक्ति का परिचय मिल जाता है।

परवार या पौरपट्ट—परवार जाति का उल्लेख पौर पाटान्वय के रूप में मूर्तिलेखों में मिलता है। पर इसका विकास कब कहाँ और कैसे हुआ, इस पर अभी तक कोई प्रामाणिक विवेचन नहीं किया गया। कुछ लोग प्राग्वाट या पोरवाडों के साथ परवारों का सम्बन्ध बतलाते हैं। पर उसमें कोई प्रामाणिक उल्लेख उपस्थित नहीं किया गया। पोरवाड और प्राग्वाट शब्द संभवतः एक

५. बारह सय सत्तरयं पचोत्तरयं विक्कम कालवि इत्तइ ।

पढम पक्खि ग्विवारइ छट्ठि सहारइ पूसमासे सम्मत्तउ ॥

—जिनदत्तचरित प्रशस्ति

६. तेरह सय तेरह उत्तराल,
पग्गलिय विक्कमाइच्च काल ।
मवेयरहइ सब्बहं समक्ख,
कत्तिथ मासम्मि असय पक्खि ।
सत्तमि दिण गुरु वारे समोण,
अट्ठमि रिक्खे साहिज्ज जोण ॥

—अणुवयरयण पईव प्रशस्ति

७. संवत् १२०३ माघसुदी १३ जैसवालान्वये साहु खोने भार्या यशकरी मुन नायक साहु भ्रातृ पाट्ठण पोल्हे, माल्ह परने महिणी सुत श्रीरा प्रणमन्ति नित्यम् ।

संवत् १२०३ माघसुदी १३ जैसवालान्वये साहु बाहड़ भार्या शिवदेवि सुत साहु सोमिनि भ्राता साहु माल्ह जन प्राहड़, लाखू लाल्हे प्रणमन्ति नित्यम् ।

सं० १२०३ माघसुदी १३ जैसवालान्वये साहु खोने भार्या जसकरी सुत नायक साहु शान्तिपाल-बोल्हे-परये-महिपाल सुत श्रीरा प्रणयन्ति नित्यम् ।

सं० १२०७ माघवदी ८ जैसवालान्वये साहु तना त-त्सुताः श्री देवतूकान्त-भूर्पासह प्रणयन्ति नित्यम् ।

—अनेकान्त वर्ष १०, किरण २, ३

अर्थ के वाची हो सकते हैं, किन्तु पौरपट्ट नहीं। पौर-पट्ट के साथ अष्ट शाखा और चतु शाखा का सम्बन्ध उल्लिखित मिलता है पर पोरवाड के साथ ऐसा कोई सम्बन्ध देखने में नहीं आया। उपजातियों में गोत्रों की परम्परा है। वैयाकरण पाणिनी ने गोत्र का लक्षण 'अत्यन्त पौत्र प्रभृति गोत्रम्' किया है। अर्थात् पौत्र से शुरू करके संतति या वंशजों को गोत्र कहते हैं। वैदिक समय से लेकर ब्राह्मण परम्परा में गोत्र परम्परा अखण्ड रूप से चली आ रही है। महाभारत में मूल गोत्र चार बतलाये हैं—अंगिरा, काश्यप, वशिष्ठ और भृगु। जन संख्या बढ़ने पर गोत्र संख्या भी बढ़ने लगी। गोत्र परम्परा ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यो में उपलब्ध होती है। अन्य जातियों में गोत्र परम्परा किस रूप में प्रचलित है यह मुझे ज्ञात नहीं है। परवारों में १२ गोत्र माने जाते हैं जो गोइल्ल, कामिल्ल, भारिल्ल, कोछल्ल और फागुल आदि हैं। किन्तु एक गोत्र के बारह बारह मूर होते हैं। अतएव मूरों की संख्या १४४ हो जाती है। मूर अन्य जातियों में भी प्रचलित हैं या नहीं कुछ ज्ञात नहीं होता। उपजातियों का इतिवृत्त दशवीं शताब्दी से पहले का देखने में नहीं आता। पचराई के शान्तिनाथ मन्दिर में वि० सं० ११२२ का लेख है, उसमें 'पौर पट्टान्वय' का उल्लेख है :—

‘पौर पट्टान्वये शुद्धं साधु नाम्ना महेश्वरः ।

महेश्वरे व विख्यातस्तत्पुतः धर्म सजकः ॥”

चन्देरी की ऋषभदेव की प्राचीन मूर्ति पर भी सं० ११०३ वर्षे माघ सुदि ६ बुधे मूल संघे लिखा हुआ है। इससे पुरातन उल्लेख अभी प्राप्त नहीं हुए।

इस जाति में भी अनेक विद्वान् होते रहे हैं। उनमें से एक विद्वान की कृति के नाम के साथ संक्षिप्त परिचय दिया जाता है :—

सं० १३७१ में कवि देल्हने २६ पद्यात्मक एक चौबीसी छन्द नाम की कविता बनाई थी जो उपलब्ध है जिसका जन्म परवार जाति में हुआ था। इनके धर्मसाह, पैतसाह, उदैसाह तीन भाई थे। यह टिहड़ा नगरी के निवासी थे। इनके द्वारा बनवाए हुए अनेक मन्दिर और मूर्तियाँ तथा ग्रन्थ रचना देखी जाती है। यह भी एक सम्पन्न जाति

है। इसमें अनेक महापुरुष हुए हैं। प्रतिष्ठित मन्दिर और मूर्तियां विक्रम की १२वीं शताब्दी से पूर्व की नहीं मिलतीं।

विक्रम की १३वीं शताब्दी के विद्वान पं० आशाधर जी ने महीचन्द्र साहु का उल्लेख किया है, जो पौरपट्ट वंशी समुद्धर श्रेष्ठी के पुत्र थे। इनकी प्रेरणा से 'सागर-धर्मामृत' की टीका की रचना की। इनके द्वारा प्रतिष्ठित कई मूर्तियां देवगढ़, आहार आदि में पाई जाती हैं। बारहवीं (११२२) शताब्दी के उत्कीर्ण पंचराई लेख का ऊपर उल्लेख किया गया है। १३वीं १४वीं और १५वीं शताब्दी के तीन लेख नीचे दिये जाते हैं :—

स० १२५२ फाल्गुण सुदि १२ सोमे पौर पाटान्वये यशहृद रुद्रगल साधु नाल भार्या यनि.....पुत्र सोलू भीम प्रणमन्ति नित्यम्।

(—चन्देरी का पादर्वनाथ मन्दिर)

सं० १३४५ आषाढ सुदि २ बुधो (धे) श्री मूल सधे भट्टारक श्री रत्नकीर्ति देवा. पौरपाटान्वये साधु याहृद भार्या वानी सुतश्चासी प्रणमन्ति नित्यम्।

(—प्राणपुरा चन्देरी)

स० १२१० वैशाख सुदी १३ पौर पाटान्वये साहू टूडू भार्या यशकरी तत्सुत साहु भार्या दिल्ली नलछी तत्सुत पोषति एतै प्रणमन्ति नित्यम्।

(आहार क्षेत्र लेख)

सं० १४०३ वर्षे माघसुदी ६ बुधे मूल सधे भट्टारक श्री पद्मनन्दि देव शिष्य देवेन्द्रकीर्ति पौरपट्ट अष्टशाखा आम्नाय सं० धणऊ भार्या पुतस्तत्पुत्र स० कालि भार्या आमिणि तत्पुत्र स० जैसिध भार्या महासिरि तत्पुत्र स०...

(चन्देरी की ऋषभदेव मूर्ति)

देवगढ़ के एक लेख में जो स० १४६३ का है, उसमें पौरपाटान्वय के साथ अष्टशाखा का भी उल्लेख है। अष्टशाखा और चार शाखा का उल्लेख परिवारों में ही पाया जाता है। जब तक भारतीय जैन मूर्तियों के समस्त लेख संकलित होकर नहीं आते, तब तक हम उन उपजातियों के सम्बन्ध में विशेष कुछ नहीं कहा जा सकता।

पद्मावती पुरवाल—इस उपजाति का विकास 'पोमा-वइ' (पद्मावती) नाम की नगरी से हुआ है। यह नगरी

पूर्वकाल में अत्यन्त समृद्ध थी। इसकी समृद्धि का उल्लेख खजुराहो के स० १०५२ के शिलालेख में पाया जाता है^१। इस नगरी में गगनचुम्बी अनेक विशाल भवन बने हुए थे। यह नागराजाओं की राजधानी थी। इसकी खुदाई में अनेक नागराजाओं के सिक्के वगैरह प्राप्त हुए हैं। 'नव नागाः पद्मावत्या कातिपुर्या' वाक्य से भी स्पष्ट है। ग्यारहवीं शताब्दी में रचित सरस्वती कथाभरण में भी पद्मावती का वर्णन है। मालती माधव में भी पद्मावती का वर्णन पाया जाता है। वर्तमान में ग्वालियर में 'पद्मपवाया' नाम का एक छोटा सा गाँव बसा हुआ है जो देहली से बम्बई जाने वाली रेलवे लाइन पर देवरा नामक स्टेशन से कुछ ही दूरी पर स्थित है। इस कारण पद्मावती नगरी ही पद्मावती पुरवालों के विकास का स्थल है। उपजातियों में यह एक समृद्ध जाति रही है। जिसकी जनसंख्या चालीस हजार के लगभग है। इसमें भी अनेक विद्वान, त्यागी, ब्रह्मचारी और साधु पुरुष हुए हैं। वर्तमान में भी है जो धर्मनिष्ठ हैं, जैनधर्म के परम श्रद्धालु और श्रावक व्रतों का अनुष्ठान करते हैं। इनके द्वारा अनेक मन्दिर और मूर्तियों का निर्माण भी हुआ है। महाकवि रङ्गू जैसा विद्वान कविभी इसी जाति में उत्पन्न हुआ था। जिसने सं० १४४८ से १५२५ तक अनेक ग्रन्थों की रचना की, और अनेक मूर्तियों की प्रतिष्ठा सम्पन्न की सन् १४६७, १५०६ और १५२५ की प्रतिष्ठित मूर्तियों में कुछ मूर्तियां रङ्गू के द्वारा प्रतिष्ठित मिलती हैं। ग्वालियर किले की मूर्तियों का निर्माण और प्रतिष्ठा रङ्गू के समय में हुई है। कवि छत्रपति की और कवि ब्रह्म गुलाल की कविताएँ भी भावपूर्ण हैं। रङ्गू की प्रायः सभी रचनाएँ तोमरवशी राजा डूंगर सिंह और कीर्ति सिंह के राज्यकाल में रची गई हैं। यद्यपि यह उपजाति अन्य उपजातियों की अपेक्षा कुछ पिछड़ी हुई है। फिर भी अपना शानदार अस्तित्व बनाए हुए है। ये सभी दिगम्बर जैन आम्नाय के पोषक और वीस पथ के प्रबल समर्थक हैं। प्रचारक हैं। पद्मावती पुरवाल ब्राह्मण भी पाये जाते हैं। यह अपने को ब्राह्मणों से सम्बद्ध मानते हैं। इस जाति के विद्वानों में ब्राह्मणों जैसी वृत्ति पाई जाती है। वर्तमान में इसमें अनेक विद्वान और प्रतिष्ठित

धनी व्यक्ति पाए जाते हैं। इस जाति का अधिकांश निवास आगरा जिला, मैनपुरी, एटा, दिल्ली, ग्वालियर और कलकत्ता आदि स्थानों में पाया जाता है।

पल्लिवाल—पालि नगर से पल्लिवालों का विकास हुआ है। यह उपजाति भी अपने समय में प्रसिद्ध रही है। इनके द्वारा भी मन्दिर और मूर्तियों का निर्माण हुआ है। सेठ छदामीलाल जो फिरोजाबाद पल्लिवाल कुल के एक सभ्रान्त परिवार के व्यक्ति है। उन्होंने जैन नगर में एक सुन्दर विशाल मन्दिर का निर्माण कराया है। पल्लिवालों द्वारा प्रतिष्ठित अनेक मूर्तियाँ भी उपलब्ध होती हैं। पं० मकखनलाल जी प्रचारक इसी जाति के भूषण हैं। इस जाति की आवादी अल्प है। इस जाति के लोग दिगम्बर श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायों में पाये जाते हैं।

लमेचू—यह भी एक उपजाति है जो मूर्तिलेखों और ग्रन्थ प्रशस्तियों में 'लम्ब कचुकान्वय' के नाम से प्रसिद्ध है। मूर्ति लेखों में लम्बकचुकान्वय के साथ यदुवशी लिखा हुआ मिलना है। जिससे यह एक क्षत्रिय जाति ज्ञात होती है। यद्यपि वर्तमान में ये क्षत्रिय नहीं हैं वंश्य हैं। इस जाति का विकास किसी लम्ब काचन नामक नगर से हुआ जान पड़ता है। इसमें रपरिया, रावत, ककौआ और पचोले गोत्रों का भी उल्लेख मिलता है। इस जाति में अनेक पुरुष प्रतिष्ठित और परोपकारी हुए हैं। जिन्होंने जिन मन्दिरों और मूर्तियों का निर्माण कराया है, अनेक ग्रन्थ लिखवाए हैं। इनमें बुढेले और लमेचू ये दो भेद पाये जाते हैं, जो प्राचीन नहीं हैं। बाबू कामता प्रसाद जी ने 'प्रतिमा लेख सग्रह' में लिखा है कि—बुढेले लमेचू अथवा लम्ब कचुक जाति का एक गोत्र था; किन्तु किसी सामाजिक अनवन के कारण स० १५६० और १६७० के मध्य किसी समय यह पृथक् जाति बन गया। बुढेले जाति के रावत संघई आदि गोत्रों का उल्लेख मिलता है। इससे प्रकट है कि इस गोत्र के साथ अन्य लोग भी लमेचूओं से अलग होकर एक अन्य उपजाति बनाकर बैठ गये। इन उपजातियों के इतिवृत्त के लिए अन्वेषण की आवश्यकता है। चन्द्रवाड के चौहान वंशी राजा आहवमल्ल के राज्यकाल में लंब कचुक कुल

के मणि साहू सेठ के द्वितीय पुत्र, जो मल्हादेवी की कुक्षी से जन्मे थे, बड़े बुद्धिमान और राजनीति में दक्ष थे। इनका नाम कण्ह या कृष्णादित्य था, आहवमल्लन के प्रधान मंत्री थे। जो बड़े धर्मात्मा थे। उनकी धर्मपत्नी का नाम 'सुलक्षणा' था जो उदार, धर्मात्मा, पतिभक्ता और रूपवती थी। इनके दो पुत्र थे हरिदेव और द्विजराज। इन्हीं कण्ह की प्रार्थना से कविलक्ष्मण ने वि० स० १३१३ में अणुवय-रयण-पईव नाम का ग्रन्थ बनाया था।

कवि धनपाल ने अपने 'बाहुबलि चरित' की प्रशस्ति में चन्द्रवाड में चौहानवंशी राजा अभयचन्द्र के और उनके पुत्र जयचन्द्र के राज्यकाल में लम्बकचुक वंश के साहू सोमदेव मन्त्रि पद पर प्रतिष्ठित थे। और उनके द्वितीय पुत्र रामचन्द्र के समय सोमदेव के पुत्र साहू वासाधर राज्य के मंत्री थे, जो सम्यक्त्वो जिनचरणों के भक्त, जैनधर्म के पालन में तत्पर, दयालु, मिथ्यात्व रहित, बहुलोक मित्र और शुद्ध चित्त के धारक थे। इनके आठ पुत्र। जमपाल, रतपाल, चन्द्रपाल, विहराज, पुण्यपाल, वाहड़ और रूपदेव। ये आठों ही पुत्र अपने पिता के समान धर्मज्ञ और सुयोग्य थे। भ० प्रभाचन्द्र ने स० १४५४ में वासाधर की प्रेरणा से बाहुबलि चरित की रचना की थी। इन्होंने चन्द्रवाड में एक मन्दिर बनवाया और उसकी प्रतिष्ठा की थी। इन सब उल्लेखों से स्पष्ट

१ देखो अणुवय-रयण-पईव, प्रशस्ति, तथा चन्द्रवाड नाम का मेरा लेख जैनसि० भा० भा० २३ कि० १, पृ. ७५ २ तेरह सय तेरह उत्तराल, परिगलियविक्रमाइच्च काल। सत्रेय रहइ सत्वह समक्ख, कत्तिथ-भासम्मि असेय-पक्ख ॥

३ श्री लम्बकचुकुल पञ्चविकासभानुः,
सोमात्मजो दुरितदास चय कृशानु।
धर्मेक साधन परो भुविभव्व बन्धु,
वासाधरो विजयते गुणरत्न सिन्धुः ॥

—बाहुबलि चरित सध ४

जिणणाहचरणभत्तो जिणधम्मपरोदयालोए।

सिरि सोमदेव तणओ णंदउ वासद्धरो णिच्चं ॥

सम्मत्त जुत्तो जिण पायभत्तो दयालुरत्तो बहुलयमित्तो।

मिच्छत्तवत्तो सुविसुद्धचित्तो वासाधरो णंदउ पुण्ण चित्तो ॥

—बाहुबलिचरित सध ३

है कि लम्ब कंचुक आम्नायी भी अच्छे सम्पन्न और राजमान्य रहे हैं। वर्तमान में भी वे अच्छे धनी और प्रतिष्ठित हैं। यहाँ लम्बकंचुकान्वय के एक दी मूर्तिलेख उद्धृत किये जाते हैं :—

१ संवत् १४१३ वर्षे वैशाख सुदी १३ बूधे श्रीमूलसंघे प्रतिष्ठाचार्य श्री जिनचन्द्रदेव लम्बकचुक साहु सहदेव भार्या चम्पा पुत्र दोनदेव भार्या मूला पुत्र लखनदेव, पद्मदेव, धर्मदेव प्रणमन्ति नित्यम् ।

—जैनसि० भा० भा० २ पृ० ६

२ सं० १४१२ वर्षे वैशाख सुदी १३ बूधे मूलसंघे प्रतिष्ठाचार्य प्रभाचन्द्रदेव लम्बकचुक सा० न्याङ्गदेव भार्या ताण पुत्र लाल्ह भार्या महादेवी वारम्बार प्रणमति ।

—जैनसि० भा० भा० २, पृ० ५

वधेरवाल—इस जाति का विकास 'वधेरा' से है। वधेरा राजस्थान में केकड़ी से १०-११ मील के लगभग दूर है। यद्यपि वर्तमान में वहाँ वधेरवालों का एकभी घर विद्यमान नहीं है। किन्तु राजस्थान में अजमेर और जयपुर के आस-पास रहने वाले वधेरवाल अपनी पंतुक जन्मभूमि को देखने और वहाँ की शान्तिनाथ की मूर्ति के दर्शन करने अवश्य आते रहते हैं। सन् ६२ में जब मैं असोज के महीने में केकड़ी से वधेरा गया था तो वहाँ अनेक समागत वधेरवाल सज्जनो से परिचय हुआ। उनसे पूछने पर ज्ञात हुआ कि किसी समय यह स्थान वधेरवालों से आवृत था, हमारे पूर्वज पहले यहीं रहे। वधेरवाल कुटुम्बियों के मध्य में बसा हुआ था, किसी समय उसका विनाश हुआ होगा। वहाँ अनेक खण्डहर पड़े हैं। किसी समय वह एक बड़े नगर के रूप में प्रसिद्ध होगा, इस समय वह एक छोटा-सा गाँव जान पड़ता है। १२वीं १३वीं शताब्दी की प्रतिष्ठित अनेक मूर्तियाँ विराजमान हैं, जिनमें शान्तिनाथ की मूर्ति बड़ी मनोग्य है। यहाँ दो मन्दिर हैं, एक कुछ पुराना और दूसरा नवीन। स्थान अवश्य प्राचीन जान पड़ता है। एक स्थान पर दो बड़े शिलालेख भी देखने में आये पर वे साधन सामग्री के अभाव में पढ़े नहीं जा सके।

इस उपजाति में भी अनेक महापुरुष होते रहे हैं जिन्हें समय-समय पर जैन धर्म के उत्थान एवं प्रसार में

अपना योगदान दिया है। इस जाति के १५ गोत्र बताये जाते हैं जिनका उल्लेख डा० विद्याधर जोहरापुरकर ने किया है। खरोड, खंडारिया, वोखंडिया, गोवाल, चवरिया, जुगिया, ठोला, नगोत्या, पितलिया, वागदिया, भूरिया, मढया, सावला, सेठिया, हरसोरा। इनमें ढोल्या निगोत्या—ये दोनों गोत्र खंडेलवालों के गोत्र ठोल्या और निगोत्या से साम्य रखते हैं और हरसोरा गोत्र राजस्थान के 'हरसोरा ग्राम की याद दिलाता है।' जहाँ आज भी अनेक वधेरवाल जन विद्यमान हैं। वधेरवालों का वर्तमान निवास महाराष्ट्र और राजस्थान (जयपुर) में पाया जाता है। वधेरवालों के २०-२५ घर धार स्टेट में हैं, और अन्यत्र भी होंगे। आचार्य कल्प प० आशाधर जी इसी जाति के अलंकार थे। जिनके द्वारा धर्मावृत नाम का महान ग्रंथ स्वोपज्ञ टीका सहित बनाया गया है। इनका समय विजय की तेरहवीं शताब्दी है। अनंगार धर्मावृत की टीका वि० सं० १३०० में पूर्ण हुई है।

चित्तौड़ के दिगम्बर जैन कीर्ति स्तम्भ के निर्मापक शाह जीजा वधेरवाल वशी है। जो साहु सानाय के पुत्र थे, और जीजा के पुत्र पूर्णसिंह या पुण्यसिंह भी अपने पूर्वजों की कीर्ति का संरक्षण करते रहे हैं। इनके द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियाँ और मन्दिर अनेक स्थानों पर पाये जाते हैं। नेनवां (राजस्थान) में वधेरवालों का अच्छा मन्दिर बना हुआ है। अनेकान्त वर्ष २२ किरण १ में चित्तौड़ के कीर्ति स्तम्भ से सम्बन्धित जो अप्रकाशित अपूर्ण शिलालेख छपा है उससे ऐसा आभास होता है कि उक्त कीर्ति स्तम्भ

१. सं० १५३२ वैशाख सुदी ७ श्री मूलसंघे भट्टारक जिनचन्द्रदेवा वधेरवालान्वये साहु टीकम पुत्र कोनो भार्या धर्मणी तस्य पुत्र वछमाडल नित्य प्रणमति ।

(पादौदी मन्दिर जयपुर)

सं० १५७१ जेठ सुदी २ मूलसंघे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये प्रभाचन्द्राम्नाये वधेलवाल वशे रतन...

सं० १७४६ सावन सुदी ६ मूलसंघे भ० जगत्कीर्ति तदाम्नाये वधेरवालान्वये मघा गोत्रे सा० श्री नेपूसी भार्या नौलादे तयोः पुत्रः सं० श्री किशनदास प्रतिष्ठा कारापिता डूगरसी छीलूनित्य प्रणमति ।

(अनेकांत वर्ष १८ किरण ६ पृ० २६२, २६४),

शाह जोजा ने बनवाया और उनके पुत्र पुण्यसिंह ने उसकी विधिवत प्रतिष्ठा की। प्रतिष्ठाकर्ता मुनि विशालकीर्ति के शिष्य शुभकीर्ति हैं जो बड़े विद्वान और तपस्वी थे। इनसे कीर्ति स्तम्भ के समय पर पर्याप्त प्रकाश पड़ने की सम्भावना है।

वघेरवाल वंश में कृष्णदास नाम के कोई घमिष्ठ श्रावक हुए हैं। वे चाँदखेड़ी के हाडा वंशीय राजा किशोर सिंह के ग्रामात्य थे। राज्य का सब कार्यभार वहन करते थे। उन्होंने चाँदखेड़ी में एक विशाल भोयरे का निर्माण कराया था जो स० १७३६ में बनकर समाप्त हुआ था। उसकी उन्होंने पंच कल्याणक प्रतिष्ठा स० १७४६ में कराई थी, जो महत्वपूर्ण थी। और जिसे ग्रामेर के भट्टारक जयकीर्ति ने सम्पन्न कराई थी^१।

हु बड या हूमड—यह उपजाति भी उन चौरासी उपजातियों में से एक है। इसका यह नामकरण कब और कैसे हुआ, इसका कोई इतिवृत्त नहीं मिलता। पर यह जाति सम्पन्न और वैभवशालिनी रही है। इस जाति का निवास स्थान गुजरात, बम्बई प्रान्त और बागड प्रांत में रहा है। यह दस्सा और वीसा दो भागों में बटी हुई है। इस जाति में भी अनेक महापुरुष और धर्मनिष्ठ व्यक्ति हुए हैं। अनेक राज्य मन्त्री और कोषाध्यक्ष आदि सम्माननीय पदों पर प्रतिष्ठित रहे हैं। इनके द्वारा निर्मित अनेक मन्दिर और मूर्तियाँ पाई जाती हैं। ग्रन्थ

२. देखो अनेकान्त वर्ष २२ किरण १।

३. देखो, कृष्ण वघेरवाला का रासा, जयपुर भण्डार (अप्रकाशित)।

निर्माण में भी यह प्रेरक रहे हैं। इनके द्वारा लिखाये हुए ग्रन्थ अनेक शास्त्र भंडारों में उपलब्ध होते हैं। वर्तमान में भी वे समृद्ध देखे जाते हैं। इनमें १८ गोत्र प्रचलित हैं। खेरजू, कमलेश्वर, काकड़ेश्वर, उत्तेश्वर, मंत्रेश्वर, भीमेश्वर, भद्रेश्वर, विश्वेश्वर, सखेश्वर, अम्बेश्वर, चाचनेश्वर, सोमेश्वर, राजियानो, ललितेश्वर, काशवेश्वर, बुद्धेश्वर और सघेश्वर। इनके अतिरिक्त 'वजीयान' नाम का एक गोत्र और पाया जाता है। इस गोत्र वाली वार्ड हीरो ने जो भ० सकलचन्द्र के द्वारा दीक्षित थी। उसने स० १६६८ में सागवाड़े में सकलकीर्ति के वर्धमान पुराण की प्रति सकलचन्द्र को भेंट की थी।

इस वंश के द्वारा निर्मित मन्दिरों में सबसे प्राचीन मन्दिर भालरापाटन का वह शान्तिनाथ का मन्दिर है, जिसकी प्रतिष्ठा हूमडवशी शाह पीपा ने वि० स० ११०३ में करवाई थी। इस जाति में अनेक विद्वान भट्टारक भी हुए हैं।

भट्टारक सकलकीर्ति और ब्रह्म जिनदास इसी वंश के भूषण थे, जिनकी परम्परा २-३ सौ वर्षों तक चमकी। इस जाति में जैनधर्म परम्परा का बराबर पालन होता रहा है।

इनके अतिरिक्त गंगेरवाल, सहलवाल, नरसिंहपुरा, आदि अनेक उप जातियाँ हैं जिनका परिचय प्राप्त नहीं है, इसलिए उनके सम्बन्ध में यहाँ कुछ प्रकाश नहीं डाला जा सका।

नोट—विशेष परिचय के लिए देखें अनेकान्त वर्ष १३ किरण ५।

अनेकान्त के ग्राहक बनें

'अनेकान्त' पुराना ख्यातिप्राप्त शोध-पत्र है। अनेक विद्वानों और समाज प्रतिष्ठित व्यक्तियों का अभिमत है कि वह निरन्तर प्रकाशित होता रहे। ऐसा तभी हो सकता है जब उसमें छाटा न हो और इस लिए ग्राहक संख्या का बढ़ाना अनिवार्य है। हम विद्वानों, प्रोफेसरों, विद्यार्थियों, सेठियों, शिक्षा-संस्थाओं, संस्कृत विद्यालयों, कालेजों, विश्वविद्यालयों और जैन भूत की प्रभावना में अट्टा रहने वालों से निवेदन करते हैं कि वे 'अनेकान्त' के ग्राहक स्वयं बनें और दूसरों को बनावें। और इस तरह जैन संस्कृति के प्रचार एवं प्रसार में सहयोग प्रदान करें।

व्यवस्थापक 'अनेकान्त'

एक प्रतीकांकित द्वार

गोपीलाल अमर एम. ए.

मन्दिरों के प्रवेशद्वार पर अलकरण की परंपरा प्राचीन है। देव-देवियों और तीर्थकरों की मूर्तियां भी प्रवेश द्वार पर उत्कीर्ण.....होती रहीं। कुछ प्रतीक भी उन पर स्थान पाते रहे। पर एक ऐसा भी प्रवेशद्वार है जिस पर ५६ प्रतीक, ८ बीजाक्षर और दो अभिलेख समूहबद्ध और शास्त्रीय रूप में उत्कीर्ण है।

सागर (म० प्र०) के चकराघाट मुहल्ले में 'बुध्ब्या का दिगम्बर जैन मन्दिर' है। इस आधुनिक मन्दिर के दूसरे खण्ड पर १६३५ ई० में यहाँ प्रसिद्ध दानवीर सिधई रेवाराम ने एक वेदी स्थापित करायी जिस पर आठवें तीर्थकर चन्द्रप्रभ की सफेद संगमरमर की मूर्ति स्थापित है।

यह वेदी जिस गर्भगृह में है उसके प्रवेशद्वार ने आधुनिक होकर भी प्राचीन भारतीय कला की बेसिकमत विरासत सहेज रखी है। ५ फु० ७ इ० ऊँचा और ४ फु० १ इ० चौड़ा यह द्वार देशी पत्थर का बना है। उस पर बानिश कर दिया गया है। द्वार को जालीदार शटर से बंद किया जाता है।

द्वार की आधार शिला पर एक पंक्ति का अभिलेख है। इसके आदि और अंत में तर्जनी दिखाता हुआ हाथ अंकित है। अभिलेख के शब्द हैं 'सिधई उमराव आत्मज बुद्धू लाल तत पुत्र रेवाराम वीर निरवाण सवत् २४६२ विक्रम सवत् १६६२ सन् १६३५'।

बायें पक्ष पर ऊपर से नीचे, पहले से बारहवें तक और दायें पक्ष पर ऊपर से नीचे, तेरहवें से चौबीसवें तक तीर्थकर-चिह्न उत्कीर्ण हैं। जन्मकाल में तीर्थकर के दाये चरण के अगूठे पर जो चिह्न होता है उसी से उनकी मूर्ति की पहचान की जाती है। एक अन्य मान्यता के अनुसार जो व्यावहारिक भी है, तीर्थकर की ध्वजा पर जो चिह्न होता है उसी से उनकी मूर्ति भी पहचानी जाती है। इन चिह्नों की परंपरागत सूचियों में कुछ अन्तर मिलता

है। यहाँ जो चिह्न उत्कीर्ण हैं वे सम्बद्ध तीर्थकर के साथ ये हैं : १. बैल-आदिनाथ, २. हाथी-अजित, ३. घोड़ा-सम्भव, ४. बंदर-अभिनन्दन, ५. चकवा-सुमति, ६. कमल-पद्मप्रभ, ७. स्वस्तिक-सुपाशर्व, ८. चन्द्र-चन्द्रप्रभ, ९. मगर-पुष्पदन्त, १०. कल्पवृक्ष-शीतल, ११. गेड़ा-श्रेंयांस, १२. भैंसा-वासुपूज्य, १३. सुन्नर-विमल, १४. भालू-अनन्त, १५. वज्र-धर्म, १६. हिरन-शान्ति, १७. बकरा-कुन्धु, १८. मछली-अरिह, १९. घड़ा-मल्लि, २०. कछवा-मुनिसुवत, २१. नीलकमल-नमि, २२. शख-नेमि, २३. सर्प-पाशर्व, २४. सिंह-महावीर।

ऊपर, तोरण पर अष्ट मंगल द्रव्य-उत्कीर्ण है : भृंगार कलश, व्यजन, स्वस्तिक, ध्वज, छत्र, चमर, दर्पण। शास्त्रीय दृष्टि से यह क्रम होना चाहिए था : भृंगार, कलश, दर्पण, व्यजन, ध्वज, चमर, छत्र, स्वस्तिक। तीर्थकर के समवशरण की गन्धकुटी के प्रथम द्वार पर ये आठ मंगल द्रव्य शोभित होते हैं।

इनके ऊपर एक पत्थर की जाली है जिसके मध्य में एक अभिलिखित शिलाजड़ी है। उसके दो पंक्तियों के अभिलेख के शब्द हैं : 'श्री सि० रज्जीलाल जी के उपदेश से निर्मित'।

दोनों पक्षों के बाजू में ३ फु० ६ इ० की ऊँचाई तक टाइल जड़े हैं जिन पर मयूर का रंगीन अंकन है।

इनके ऊपर बायें पहले से आठवें तक और दायें नवें से सोलहवें तक, सोलह स्वप्नों का अंकन है जिन्हें तीर्थकर की माता गर्भाधान के समय देखा करती है। ये स्वप्न और उनसे सूचित होने वाले गुण (तीर्थकर के) ये हैं : १. हाथी-उच्चकोटि का आचरण, २. बैल-धर्मात्मत्व, ३. सिंह-पराक्रम, ४. लक्ष्मी-अतिशयलक्ष्मी, ५. दो मालाएँ-शिरोधार्यता, ६. चंद्र-संतोषहरण, ७. सूर्य-तेजस्विता, ८. मछलियों का दो जोड़ा-सौन्दर्य, ९. दो कलश-कल्याण, १०.

सरोवर-वात्सल्य, ११. समुद्र-पूर्णज्ञान, १२. सिंहासन-राज्याधिकार, १३. देव विमान-देवों द्वारा सेवा, १४. नागभवन-नागकुमार जाति के देवों द्वारा सेवा, १५. रत्न-समूह-गुणसमूह, १६. जाज्वल्यमान अग्नि-कर्मदाह। श्वेताम्बर जैन मान्यता के अनुसार माता सोलह नहीं, चौदह स्वप्न देखती है। प्रथम तीर्थंकर के ज्येष्ठ पुत्र भरत चक्रवर्ती और सम्राट् चन्द्रगुप्त (मौर्य) द्वारा भी सोलह-सोलह स्वप्न देखे गये थे, यद्यपि वे भिन्न-भिन्न थे। इन स्वप्नों और उक्त जाली के ऊपर अष्ट प्रातिहार्य उत्कीर्ण हैं। तीर्थंकर की ऐश्वर्य सूचक विशेषताएँ प्रातिहार्य। वे ये हैं : सिंहासन, अशोक वृक्ष, छत्रत्रय, प्रभामण्डल, दिव्य ध्वनि, पुष्पवृष्टि, चमर. देवदुन्दुभि। इस द्वार पर उत्कीर्ण प्रातिहार्यों का क्रम (अशुद्ध) यह है : दिव्य ध्वनि, अशोक वृक्ष, छत्रत्रय, सिंहासन, पुष्पवृष्टि, चमर, प्रभामण्डल, देवदुन्दुभि।

प्रातिहार्यों के ऊपर जो आठ बीजाक्षर उत्कीर्ण हैं उसका सकारण और सक्रम विवेचन कदाचित् उपलब्ध नहीं। इनमें से तीसरा 'ओ' सभी भारतीय धर्मों में मान्य है। जैनधर्म में यह पाँच परमेष्ठियों अर्हन्त, अशरीरी (सिद्ध), आचार्य, उपाध्याय, मुनि (सर्वसाधु) के प्रथम अक्षरों की सन्धि से बना माना गया है। यहाँ का पाँचवाँ बीजाक्षर 'णमो' है, जिसका अर्थ है नमस्कार। जैनधर्म के आदिमन्त्र 'णमोकार' का प्रथम शब्द भी 'णमो' है; इसलिए यह बीजाक्षर संपूर्ण णमोकारमंत्र का प्रतीक मालूम पड़ता है।

इस संक्षिप्त विवरण से भी स्पष्ट है कि यह द्वार अपनी शैली और कला में अनुपम है। भारतीय प्रतीकों का अध्ययन इस द्वार के सन्दर्भ के बिना अपूर्ण ही रहेगा।



अंतरिक्ष पार्श्वनाथ विनंती

नेमचन्द्र धनुसा जैन

श्रुत पंचमी के दिन उपेक्षित कई हस्त लिखित पोथी में से एक गुटका हाथ लगा। सहज ही धूल भटकते हुए उसको खोला तो पृष्ठ ८० पर लिखा हुआ वांछा—'इति अंतरिक्ष पार्श्वनाथ विनंती समाप्त ॥' यह वाच कर जो हर्ष हुआ, लिख नहीं सकता। न मालूम ऐसी कितनी सामग्री अभी अप्रकाशित है। यह एक ऐसी सामग्री है जिसमें कुमुदचन्द्र जी ने बताया है कि डभोई नगर के पार्श्वनाथ की प्रतिमा सागरदत्त वनजारा के स्वप्नों में आई। यह प्रतिमा वालूकामय थी। और डाली थी एक जलकूप में। ऊपर निकालने का मार्ग वनलाया गया था कि—कच्चे सूत को कूप में छोड़ना उसमें बैठ कर प्रभू जी ऊपर आएँ, जयजयकार हुआ। अनेक मंगल वाद्य के साथ वनजारा ने हाथ पर उस प्रतिमा को ले जाकर डभोई नगर में स्थापन किया। इस प्रतिमा का भार कुछ नहीं

था इस लिए इसका नाम (लेडन-पास) 'लेडनपास' ऐसा रखा गया। इस तीर्थ की वंदना से क्या क्या लाभ होते हैं यह अत में बताया है।

शिरपुर के अंतरिक्ष पार्श्वनाथ प्रतिमा का और इस तीर्थ का कोई सम्बन्ध नहीं है तो भी अंतिम पुष्पिका वाक्य में 'अंतरिक्ष' शब्द का प्रयोग क्यों? इसपर विद्वानों को विचार करना चाहिए। साथ ही उस काल सम्बन्धी माहित्य और इतिवृत्त का भी अनुसंधान आवश्यक है। क्या यह लेडन पास की प्रतिमा कभी अंतरिक्ष थी? इसका समाधान होना चाहिए और इस प्रतिमा को स्थापन करने वाले सागरदत्त वनजारा का स्थल काल का पता चलना चाहिए। डभोई क्षेत्र में इस बाबत इससे अधिक इतिहास विदित हो तो उसे प्रकाश में लाना चाहिए। अस्तु।

वह काव्य इस प्रकार है :-

सुमर सारवा देवी माय, राहनीस सुरनर सेवे पाय ।
 आपे वचन विशाल ॥१॥
 लाड देस दीसे अभिराम, नयर डभोइ सुवर ठाम ।
 जाहां छे लोडन पास ॥२॥
 आबे संघ मली मनरंगे, नर नारो बांवे सहू सगे ।
 पूजे परमानंदे ॥३॥
 जयजयकार करे मन हरषे, जिन ऊपरि कुमुमांजलि वरषे ।
 स्तवन करे बहु छंदे ॥४॥
 गायें गीत मनोहर सादें, पच सवद बादे वर नादे ।
 नाचे नारी वृन्द ॥५॥
 बालू मय प्रतिमा वीरनात्, जानें देस विदेसें वात ।
 सोहे सीस फणोंद ॥६॥
 सागरवत्त हतो वनजारो, पाले नेम भले एक सारो ।
 जीन बांदी जम वानो ॥७॥
 एक समे बाटे उतरयो, जम बा वेल जीन सांभले ।
 सच करे प्रतीमानो ॥८॥
 बालुनी प्रतिमा आलेषी, बांदी पूजिने मन हरषी ।
 ते पधरावी कूप ॥९॥
 त्यारे ते बालूनी मूरत, जल मांहे भइ सुंदर सूरत ।
 अंग अनूपम रूप ॥१०॥
 वनजारो ते आव्यो वेहले, बलती लभ धनो एक लख्यो ।
 उत्तरीयो तेने ठाम ॥११॥
 सागरवत्त करे सुबिचार, बाटे कुसल न लागी वार ।
 ते स्वामी ने नामें ॥१२॥
 राते स्वप्न हबु ते त्यारे, केम नाषी हूं कूप मभारे ।
 काठ तीहां मडने ॥१३॥
 तूं काचे तांतन पर बेसाडे, काढे नही हूं लागुं भारे ।
 वचन कहूं छूं तुमने ॥१४॥
 वनजारो जाग्यो वेहल कसुं, उठयो उल्लस धरयो मनसुं ।
 गयो तीहां परभाते ॥१५॥

सज्जन साथे वात करीने, मुक्यो तांतन जिन समरीने ।
 सागर दसें जातें ॥१६॥
 काचे तातें जिनवर वेठा, लेह कता लोके ते दीठा ।
 हलवा फूल समान ॥१७॥
 बाहेर पधरावी बेसाडयो, जय जय जिन सहू कोने जुहाया ।
 आप्या उलट दान ॥१८॥
 जो तां हैवें हरष न माये, वचन रूप कहू नवी जाये ।
 चील अचंभो भाये ॥१९॥
 नाना विघ्न वाजींभ बजाडे, आगल थो खेल नचाडे ।
 माननी मंगल गायें ॥२०॥
 आन्या अधिक दीवाज्या साथे, वनजारे लीधी जिन हाये ।
 रम्य डभोई गाम ॥२१॥
 रुडे दीन मूरत जोई ने, वारू पूजा नमन करीने ।
 पधराव्या जिन धाम ॥२२॥
 नाम धरू ते लाडन पास, पंचम काले पूरे आस ।
 वांका विघ्न निवारें ॥२३॥
 नामे चीरन डे नही बाटे, उज्जड अटवी डुगर घाटे ।
 दरियो पार उतारें ॥२४॥
 भूत पिशाच तणो भय टाले, चेडा चेटक मंत्र न चालें ।
 डांकिनी दूरे त्रासे ॥२५॥
 व्यंतर वापानी भइ जाए, जेह नामे विषधर न विषाये ।
 बाघ न आवे पास ॥२६॥
 भव भवनी भाव भंजे, रन माहे बैरी न विगंजे ।
 रोग न आवे अंगे ॥२७॥
 जेह ने नामे नाहासे सोक, संकट सघल थाये फोक ।
 लक्ष्मी रहे निति संगे ॥२८॥
 नाम जपंतां न रहे पाप, जनम मरन टाले संताप ।
 आये सुगती निवास ॥२९॥
 ज नर समरे लेडन नाम, ते पाये मन वांचित काम ।
 कुमुदचन्द्र कहे भास ॥३०॥

इति अतरिक्ष पाइर्वनाथ वितती समाप्त ॥



‘प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह अपने आचार विचार को पवित्र रखे । आचार विचारों की पवित्रता जीवन की आन्तरिक पवित्रता पर प्रभाव डालती है, उससे जीवन आदर्श और समुन्नत बनता है । —अज्ञात

आत्म-सम्बोधन

कविवर दौलतराम १९वीं २०वीं शताब्दी के प्रमुख विद्वान और कवि थे। वे संस्कृत-प्राकृत भाषा के साथ अध्यात्म ग्रन्थों के अच्छे अभ्यासी थे। उनकी दृष्टि बाह्य कामों में नहीं लगती थी वे अन्तर्दृष्टि की ओर अग्रसर रहते थे। सिद्धान्त-ग्रन्थों के दोहन से निष्पन्न आत्मरस से ओत-प्रोत रहते थे। उनकी दृष्टि में जगत का वैभव ऐश्वर्य और भोगविलास की रमणीय वस्तुएँ जिन्हें रागीजन अपनी समझ उनमें रति करते हैं। कविवर उनसे सदा विमुख रहते थे, उन्हें राग-रग में रहना असह्य हो उठता। उनके जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना है कि मथुरा के प्रसिद्ध सेठ मनीराम जी पंडितजी को जब हाथरस से मथुरा ले गये और अपने सजे हुए मकान में उन्हें बड़े प्रेम एवं आग्रह से ठहराया। पर उन्हें मखमली गद्दों और भाड़ फातूसों और चाँदी सोने की कुंसियों से अलंकृत भवन में रहना दुष्कर हो गया। यद्यपि उन गद्दों पर सीतल पाटी बिछाकर बँठे हुए थे। फिर भी उनके चित्त में 'मैं अनंत जीवों के पिण्ड' पर बैठा हुआ हूँ यह विकल्प मन में शान्ति एवं स्थिरता नहीं आने देता था। जी चाहता था कि मैं यहाँ से अभी चला जाऊँ। पर उन्हें सेठ जी के अत्याग्रह से ३-४ दिन गुजारने ही पड़े। जब वे वहाँ से लश्कर चले गये। तब उनके मन में शान्ति आई। कवि का मन अध्यात्म रस से छकाछक भरा हुआ था। पर द्रव्यों से उनका राग नहीं था, और न उनसे द्वेष ही रखते थे। किन्तु परद्रव्यों से अपनी स्वामित्व बुद्धि का परित्याग करना श्रेयस्कर समझते थे। भोगों को भुजग के समान जानकर उनसे रति करना दुःख का कारण मानते थे। वे अपनी आत्मा को समझाते हुए कहते थे कि— 'मान ले या सिख मोरी, भुके मत भोगन ओरी—' इससे उनकी अन्तरपरिणति का सहज ही आभास हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि वे सदा आत्महित का लक्ष्य रखते थे। वे नीचे पद्य में अपने को सम्बोधन करते हुए कहते हैं कि— जगत के सब द्वन्द्वों को मिटाकर जिन आगम से प्रीति करनी चाहिए। उसी की प्रतीति करनी भी आवश्यक है। जगत के सब द्वन्द्व बध कर और असार है। वे तेरी कुछ भी गरज को नहीं सारते। कमला चपला है। यौवन इन्द्र घनुष के समान अस्थिर है स्वजन पथिकजनो के समान है। इनसे तू वृथा रति क्यों जोड़ता है। विषय कषाय दोनों ही भवों में दुखद है। इनसे तू स्नेह की डोरी तोड़, तेरी बुद्धि बड़ी भोली है तू पर द्रव्यों की अपनावत को क्यों नहीं छोड़ता। जब देवों की सागरो की स्थिति वीन जाती है तब मनुष्य पर्याय की तो स्थिति अल्प ही है। हे दौलतराम ! अब तुम शुभ अवसर पाकर चूक गये तो सागर में गिरी हुई मणि के समान पुनः नरभव मिलना कठिन है।

और सबै जग द्वन्द मिटावो, ली लावो जिन आगम ओरी ॥टेक॥

है असार जग द्वन्द्व बन्धकर, ये कछु गरज न सारत तोरी।

कमला चपला यौवन मुरधनु, स्वजन पथिक जन क्यों रति जोरी ॥१॥

विषय-कषाय दुखद दोनों भव, इन तैं तोर नेह की डोरी।

पर द्रव्यन को तू अपनावत, क्यों न तजै ऐसी बुधि भारी ॥२॥

बीत जाय सागर थिति सुर की, नर परजायतनी अति थोरी।

अवसर पाय दौल' अब चूको, फिर न मिलै मनि सागर बोरी ॥३॥

ग्वालियर के कुछ काष्ठासंधी भट्टारक

परमानन्द शास्त्री

श्रमण संस्कृति युगादि देव (आदिनाथ) के समय से लेकर अन्तिम तीर्थंकर महावीर के परिनिर्वाण काल पश्चात् तक अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित रही है। और उनके निर्वाण के बाद अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु के समय द्वादश वर्षीय दुर्भिक्ष के कारण वह दिगम्बर श्वेताम्बर रूप दो धाराओं में विभक्त हो गई। उक्त दोनों धाराओं में भी परवर्ती कालों में अनेक अवान्तर सघ और गण-गच्छों का आविर्भाव हुआ। इसका कारण दुर्भिक्ष के समय की विकट परिस्थिति, विचार विभिन्नता और संकीर्ण मनोवृत्ति हैं। संकुचित मनोवृत्ति से आत्म परिणति में अनुदारता रहती है। संकीर्ण दायरे में अनेकान्त की सर्वोदयी समुदार भावना तिरोहित हो जाती है। इससे वह परस्पर में सौहार्द को उत्पन्न नहीं होने देती प्रत्युत कटुता को जन्म देती रहती है। दोनों ही परम्पराओं में मत विभिन्नतादि कारणों से विभिन्न गण-गच्छ उत्पन्न होते रहे हैं। और २४ सौ वर्षों के दीर्घ काल में भी गण-गच्छों की विभिन्नता में कोई अंतर नहीं आ पाया है। शिलाभेद के समान इन संधों की विभिन्नता परस्पर में अभिन्नता में परिणत नहीं हो सकी। यदि गण-गच्छादि के सम्बन्ध में अन्वेषण किया जाय तो एक बड़े ग्रंथ का निर्माण किया जा सकता है।

यहाँ ग्वालियर के काष्ठा संध के कुछ भट्टारकों का परिचय दिया जाता है।

ग्वालियर प्राचीन काल से दि० जैन संस्कृति का केन्द्र रहा है। यहाँ के दिगम्बर जैन मन्दिरों में ११वीं शताब्दी तक की धातु मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं। यहाँ काष्ठा संधी भट्टारकों की बड़ी गद्दी रही है जिनके द्वारा वहाँ आस-पास के प्रदेशों में जैन धर्म और जैन संस्कृति का प्रसार हुआ है। अनेक विद्वान और भट्टारकों द्वारा ग्रंथों की रचना हुई है। यहाँ मूलसंधी और काष्ठा संधी

भट्टारक बराबर प्रेम से रहे हैं। दोनों के द्वारा प्रतिष्ठापित अनेक मूर्तियाँ मन्दिरों में विराजमान हैं। उन सब भट्टारकों में भट्टारक गुणकीर्ति अपने समय के विशिष्ट विद्वान, तपस्वी और प्रभावक थे। उनके निर्मल चरित्र और व्यक्तित्व का प्रभाव तोमर वंश के क्षत्रीय शासकों पर अप्रतिहत रूप में पड़ा, जिससे वे स्वयं जैनधर्म के प्रति निष्ठावान हुए। उनके तपश्चरण के प्रभाव से राज्य में सक्रान्ति और विरोध जैसे विकार पास में भी नहीं फट सकते। राजा गण अपने राज्य का संचालन स्वतन्त्रता और विवेक से करते रहे। राज्यकीय विषय समस्याओं का समाधान भी होता रहा। अपनी प्रजा का पालन करते हुए राज्य वृद्धि में सहायक हुए। जनता स्वतन्त्रता से अपने-अपने धर्म का पालन करती हुई सासारिक सुख-शान्ति का उपभोग करती थी। अनेक वरिष्ठ श्रेष्ठ जन राज्य के आमात्य और कोषाध्यक्ष जैसे उच्च पदों पर प्रतिष्ठित रहते हुए निरंतर राज्य की अभिवृद्धि और श्रम में सहायक हुए। उस समय के ग्वालियर राज्य की परिस्थिति का सुन्दर वर्णन कविवर रङ्गू ने पार्श्व नाथ चरित्र में किया है। उससे उम समय की सुखद स्थिति का खासा आभास हो जाता है।

यहाँ उन भट्टारकों का जिनके नाम का उल्लेख कविवर रङ्गू के ग्रंथों और मूर्ति लेखों में उपलब्ध होता है उनका संक्षिप्त परिचय देना ही इस लेख का प्रमुख विषय है।

१ भट्टारक देवसेन—काष्ठासंध, माथुरान्वय, बाला-त्कारगण सरस्वती गच्छ के विद्वान भट्टारक उद्धरसेन के पट्टधर एवं तपस्वी थे। वे मिथ्यात्वरूप अधकार के विनाशक, आगम और अर्थ के धारक तथा तप के निलय और विद्वानों में तिलक स्वरूप थे। इन्द्रिय रूपी भुजंगों

के दलने वाले और गरुड के समान (इंद्रियजयी) थे'। काष्ठा संघ की गुर्वावली में उन्हें अमित गुणों का निवास, कर्मपाश के खण्डक, समय के ज्ञायक निर्दोष, संसार की शंका के नाशक, मदन कदन (युद्ध) के विनाशक, धर्मतीर्थ के नेता वे देवसेन गणी जयवंत रहे'। ऐसा प्रकट किया है। इससे स्पष्ट है कि प्रस्तुत देवसेन अपने समय के बड़े विद्वान् थे। इसीसे उनके यश का खुला गान किया गया है। इनका समय विक्रम की १४वीं शताब्दी संभव है।

दूसरे देवसेन वे हैं जिनका उल्लेख दूव कुण्ड (चडोभ) के मानस्तम्भ के नीचे दो पंक्तियों वाले लेख में पाया जाता है, उसमें देवसेन की भग्नमूर्ति भी अंकित है।

“संवत् ११५२ वैशाखसुदि पंचम्याम्

श्री काष्ठासंधे श्रीदेवसेन पादुका युगलम्।

प्रस्तुत देवसेन किसके शिष्य थे, और इन्होंने क्या-क्या कार्य किये हैं यह अभी कुछ ज्ञात नहीं हो सका। इनका समय विक्रम की १२वीं शताब्दी का मध्यकाल है। यह किसके शिष्य थे और इनकी गुरु परम्परा क्या है यह कुछ ज्ञात नहीं हो सका। क्योंकि इनके साथ काष्ठा-संघ का उल्लेख है। इसलिए यह जानना आवश्यक है यह किसके शिष्य थे।

विमलसेन—यह देवसेन गणी के पट्टधर एवं शिष्य

१. मिच्छन्त-तिमिर हरणाई सुहायर,
आयमत्थहर तव-णिलउ।
णामेण पयडु जणि देवसेणु गणि,
सजायउ चिरु वुह-तिलउ ॥

—सम्मइ जिन चरिउ प्रशस्ति

इदिय-भुअंग णिहलण-वेणु। पद्यपुराण प्रशस्ति।

२. विज्ञानसारी जिनयज्ञकारी,
तत्त्वार्थ वेदी वर सधभेदी।
स्वकर्मभंगी बुधयूयसंगी,
चिरं क्षितौ नंदनु देवसेनः ॥
अमितगुणनिवासः खंडिता कर्मपाशः,
समयविदकलंकः क्षीणसंसार-शंकः।
मदन-कदनहंता धर्मतीर्थस्य नेता,
जयति महतिलीनः शासने देवसेनः ॥

—काष्ठासंध मा० गुर्वावली

थे, जो अनुपम गुणों के धारक, समितियों से युक्त, कर्म-बन्धादि से भय-भीत, तथा चन्द्रकिरण के समान शीतल विमलसेन हमें सुख प्रदान करें। जो भव्यजनो के चित्त को आनन्द प्रदान करने वाले, विमलमति। मलसग के विनाशक, अनुपम गृणमंदिर, ऐसे ऋषि पुगव विमलसेन थे'। इस गुणानुवाद से ज्ञात होता है कि भट्टारक विमलसेन विद्वान्, तपस्वी, द्विविधसंग के त्यागी और प्रतिष्ठा-चार्य थे। इनके द्वारा प्रतिष्ठित धातु की एक पद्यासन चौबीसी मूर्ति सं० १४१४ की प्रतिष्ठित जयपुर (राजस्थान) के पाटीदी मन्दिर में विराजमान है'। और दूसरी प्रतिष्ठित आदिनाथकी एक मूर्ति दिल्ली के नयामन्दिर धर्मपुरा में विद्यमान है जो संवत् १४२८ में किसी जयस-वाल सज्जन के द्वारा प्रतिष्ठित कराई गई थी'। इनकी

३. तास पट्टि णिरुवम गुण मन्दिर,

णिचुभवजणचित्ताणदिह।

विमलमई फंडिय-मल-सगमु,

विमलसेणु णामे रिसि पुगमु ॥

—सम्मइ जिनचरिउ प्रशस्ति

४. सं० १४१४ वैशाख सुदि १५ गुरी श्री काष्ठासंधे माथुरान्वये भट्टारक श्री देवसेन तत्पट्टे प्रतिष्ठाचार्य श्री विमलसेन देवा अग्रोतकान्वये गंग पोत्रे..... साह गोकल भार्या लिरदा पुत्र कुधरा भार्या गयसिर पुत्र देवराज भार्या.....। पाटीदी मन्दिर जयपुर
५. संवत् १४२८ वर्षे जेष्ठ सुदि १२ द्वादश्या सोम-वासरे काष्ठासंधे माथुरान्वये भट्टारक देवसेन देवा स्तत्पट्टे त्रयोदशचारित्ररत्नालंकृता सकलविमल मुनिमडलीशिष्यशिखामणयः प्रतिष्ठाचार्य श्री-भट्टारक विमलसेनदेवाः तेषामुपदेशेन जाइसवालान्वये सा० बूइपति भार्या मदना पुत्र विजयदेव पत्नी पूजा द्वितीय पुत्र लालसिंह तत्पुत्र विजयदेव तत्पुत्र समस्त-दातुधुरीण साधु श्री भोज भार्या ईसरी पुत्र हम्मीर-देवः द्वितीय भार्या कर्षी करपूरा पुत्र शुभराज कोल्हाकी हम्मीर देवा भार्या धर्मश्री तत्पुत्र धर्मसिंह एतेषां स्व श्रेयोऽर्थ शिव तत्पुत्रः आदिनाथ नेमिचन्दा-भ्यां प्रतिष्ठतम् ॥

नया मन्दिर धर्मपुरा दिल्ली वेदी १ कटनी २

उपाधि मलधारी थी। इनका समय १५वीं शताब्दी का पूर्वार्ध है।

धर्मसेन—यह भट्टारक विमलसेन के पट्टघर थे, जो वस्तुधर्म के धारक थे, जिन्होंने लोक में दश धर्मों का विस्तार किया था। व्रत, तप शील गुणों में जो श्रेष्ठ थे, बाह्याभ्यान्तर परिग्रहों के निवारक, वे धर्मसेन मुनि जनता को संसार समुद्र से तारने वाले थे। वे काष्ठासंघ के नायक थे और धर्मध्यान के विधान में दक्ष थे, तथा सकल सध में शोभायमान थे। यह प्रतिष्ठाचार्य भी थे। इनके द्वारा प्रतिष्ठित तीन मूर्तियां पार्ष्वनाथ, अजितनाथ और वर्धमान तीर्थंकर की हिसार जिले के मिट्टी ग्राम से मनीराम जाट को प्राप्त हुई थीं। जो अब हिसारके मन्दिर में विराजमान हैं। जो १४ × १० इंच के आकार को लिए हुए हैं। तीनों मूर्तियां पहाड़ी मटियाले पाषाण की हैं। इससे भट्टारक धर्मसेन का समय विक्रम की १५वीं शताब्दी का मध्यकाल जान पड़ता है।

भावसेन—इस नाम के अनेक विद्वान हो गए हैं। उनमें प्रस्तुत भावसेन काष्ठासंघ मथुरान्वय के आचार्य थे, वे धर्मसेन के शिष्य एवं पट्टघर थे। तथा सहस्रकीर्ति के गुरु थे। सिद्धान्त के पारगामी विद्वान थे, शीलादि व्रतों के धारक, शम, दम और क्षमा से युक्त थे। वैभारादि तीर्थ में हुए प्रतिष्ठोदय में जिन्होंने महान योग दिया था। और जो अपने गुणोंकी भावना में सदा तन्मय रहते थे। इनका समय विक्रम की १५वीं शताब्दी है।

१. वस्तु सरूप धम्म-धुरधारउ, दहविहसम्भु भुवणि
वित्थारउ। वय-तव-शील गुणहि जे सारउ, वज्रभूत
संगणिवारउ, धम्मसेणु मुणि भवसर तारउ,—
सम्मइ जिणचरिउ प्रशस्ति।
काष्ठासध गणनायकवीरः, धर्मसाधनविधानपटीरः।
राजते सकल संघसमेत, धर्मसेन गुणरेव चिदेतः॥

—काष्ठासध मा० पट्टावली

२. संवत् १४४२ वैशाख सुदी ५ शनौ श्री काष्ठासधे
माथुरान्वये आचार्य श्री धर्मसेनदेव. इन्द्रमीनाकः
अग्रोतक वंशे सा० जाल्ह सहाय [भा०] जियतो।

३. भावसेणु पुण भाविय णियगुण।

सम्मइजिण चरिउ प्रशस्ति।

सहस्रकीर्ति—यह भावसेन के पट्टघर विद्वान थे। रत्नत्रय के धारक, कर्म-ग्रन्थों के सार विचारक, व्रतादिक के अनुष्ठाता और अनेक सद्गुणों से परिपूर्ण थे। अपने समय के अग्रे विद्वान थे। इनके द्वारा प्रतिष्ठित कोई प्रतिमा लेख और ग्रंथ रचना अभी तक मेरे देखने में नहीं आई। अन्वेषण करने पर उसकी प्राप्ति सम्भव है। इनका समय भी विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी है।

भट्टारक गुणकीर्ति—यह भट्टारक सहस्रकीर्ति के शिष्य एवं पट्टघर थे। १५वीं शताब्दी के प्रतिभा सम्पन्न विद्वान, विशिष्ट तपस्वी और ज्ञानी थे। ये अपने समय के बड़े प्रभावक और प्रकृति से प्रशान्त एवं सौम्य मूर्ति थे। इनके तप और चारित्र का प्रभाव तोमर वंश के शासकों पर पड़ा, जिससे वे जैनधर्म के प्रति निष्ठावान हुए। उनके तपश्चरण के प्रभाव से राज्य में किसी तरह की कोई सक्रान्ति या विरोध उत्पन्न नहीं हुआ। राजा गण राज्य कार्य का स्वतन्त्रता और विवेक से संचालन करते रहे। और अपनी प्रजा का पुत्रवत् पालन करते हुए धर्म-कर्म में निष्ठ रहकर राज्य वैभव की वृद्धि में सहायक हुए। कविवर रङ्गू और काष्ठासध की पट्टावली आदि में इनका खुला यशोगान किया गया है। वे काष्ठासंघ रूप उद-

धर्मोद्धारविधिप्रवीणमतिकः सिद्धान्तपारंगामी।

शीलादि व्रतधारकः शम-दम-क्षान्तिप्रभा भासुरः।

वैभारादिक तीर्थराज रचित प्राज्यप्रतिष्ठोदय—

स्तत्पट्टाब्ज विकासनैकतरणिः श्री भावसेनो गुरुः॥

—काष्ठासंघ मा० पट्टावली

४. कर्म-ग्रंथ विचारसार सरणी रत्नत्रयस्याकरः,

श्रद्धाबन्धुरलोकलोकनलिनीनाथोपमः साम्प्रतम्।

तत्पट्टेऽञ्जलचूलिकासुतरणिः कीर्तिं प्रपि विवर्धयति।

नित्यं भाति सहस्रकीर्ति यतिपः क्षान्तोऽस्ति दैगम्बरः।

काष्ठासंघ मा० प०

५. तामुपट्टि उदयहि दिवायह, वज्रभूतरुतव-कय-आयह
बुहयण-सत्थ-अरथ-चित्तामणि, सिरिगुणकित्ति-सूरि
मानव जणि।

—सम्मइ जिन चरिउ

(क) दीक्षा परीक्षा-निपुणः प्रभावान् प्रभावयुक्तो
धमदादि मुक्तः।

यादि के लिये दिवाकर थे। बाह्य और आभ्यन्तर तप के आकर थे। बुध जनों में शास्त्र अर्थ के चिन्तामणि थे। दीक्षा परीक्षा में निपुण, प्रभावयुक्त, मदादि से रहित, माथुरान्वय के ललामभूत, राजाओं के द्वारा मान्य आचार्य थे। तपश्चरण से उनका शरीर क्षीण हो गया था। राद्धान्त के वेदी, पापरहित, विद्वानों के प्रिय, माया मान आदि पर्वतों के लिए वज्र, हेयोपादेय के विचार में अग्रणी, काम रूप हस्तनियों के लिए कंठीरव (सिंह) थे। स्याद्वाद के द्वारा वादियों के विजेता, रत्नत्रय के धारक, माथुर-संघ रूप पुष्कर के लिये शशी थे। दम्भादि से रहित, वस्तु तत्त्व के विचारक और जगतजन के कल्याणकर्ता थे। सं० १४६० में वैशाख सुदि १३ के दिन खडेलवाल वंशी पंडित गणपति के पुत्र पंडित खेमल ने पुष्पदन्त के उत्तर-पुराण की एक प्रति भ० पद्मनन्दि के आदेश से भ० गुण-कीर्ति को प्रदान की थी।

वीरमदेव के राज्य में भ० गुणकीर्ति के आदेश से पद्मनाम कायस्थ ने यशोधर चरित्र की रचना की थी। सं० १४६८ में आषाढ वदि २ शुक्रवार के दिन गवालियर में उक्त वीरमदेव के राज्य काल में काष्ठासंध माथुरान्वय

श्रीमाथुरानूकललामभूतो, भूनाथमान्यो गुण-कीर्ति सूरिः।

—समयसार लिपि प्र० कारजाभंडार

(ख) श्रीमान् तस्य सहस्रकीर्तियतिनः पट्टे विकृ-ष्टेऽभवत्।

क्षीणांगो गुणकीर्तिसाधुरनघां विद्वज्जनानां प्रियः।

मायामानमदादिभूषणपद्मी राद्धान्तवेदी गणी, हेयादेय विचारचारुधिषणः कामेभकंठीरवः ३२ यत्तेजोगुणबद्धबुद्धि मनसो मूलाभवन्तो नुताः।

१. संवत् १४६० वैशाख सुदी १३ खंडिलवाल वंशे पंडित गणपति पुत्र पं० खेमलेन एषा पुस्तिका भट्टारक पद्मनन्दिदेवादेशेन गुणकीर्तिये प्रदत्तं॥

—उत्तरपुराण प्रशस्ति आमेरभंडार

२. उपदेशेन ग्रंथोऽयं गुणकीर्ति महामुनेः।

कायस्थ पद्मनाभेन रचितं पूर्वं सूत्रतः॥

—यशोधर रचित प्रश०

पुष्कर गण के भट्टारक गुणकीर्ति की आम्नाय में साहू मर देव की पुत्री देवसिरी ने पंचास्तिकाय टीका की प्रति लिखवाई थी।

सं० १४६९ में माघ सुदी ६ रविवार के दिन राज-कुमारसिंह की प्रेरणा से गुणकीर्ति ने एक धातु की मूर्ति की प्रतिष्ठा कराई थी।

सं० १४७३ में भ० गुणकीर्ति द्वारा एक मूर्ति की प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई। इनका समय सं० १४६० से १५१० तक है। राजा डूंगरसिंह के राज्य काल में जैन मूर्तियों के उत्खनन का जो महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हुआ उस सब का श्रेय भ० गुणकीर्ति को ही है। इनके द्वारा अनेक मूर्तियों की प्रतिष्ठा और निर्माण कार्य हुआ है। इन्होंने क्या-क्या ग्रंथ रचना की यह कुछ ज्ञात नहीं हो सका।

यशःकीर्ति—भ० गुणकीर्ति के लघु भ्राता और शिष्य थे। प्राकृत संस्कृत और अपभ्रंश भाषा के विद्वान, कवि और मुलेखक थे। जैसा कि पार्श्वपुराण के निम्न पद्य से स्पष्ट है :—

“सु तासु पट्टिभायरो वि आयमत्थ—सायरो,
रिसि सु गच्छनायको जयत्तसिक्खदायको,
जसक्खु कित्ति सुन्दरो अक्कपुणायमंदिरो॥

पास पुराण प्रश०

तहो बंधउ जससुणि सीसु जाउ,
आयरिय पणासिय दोसु राउ।

—हरिबंश पुराण

भव्व कमल संबोह पयंगो,
तह पुणु सु-तव-ताव तबियंगो।
णिच्चोग्भासि य पवयण अंगो,

३. संवत्सरेस्मिन् विक्रमादित्य गताब्द १४६८ वर्षे आषाढ वदि २ शुक्रदिने श्री गोपाचले राजा वीरमदेव विजय राज्य प्रवर्तमान श्री काष्ठासंधे माथुरान्वये पुष्कर-गणे आचार्य श्री भावसेनदेवाः तत्पट्टे श्री सहस्रकीर्ति देवाः तत्पट्टे भट्टारक श्री गुणकीर्तिदेवास्तेषामाम्नाये संघइ महाराज वषू साधू मारदेव पुत्री देवसिरी तथा इदं पंचास्तिकाय सार ग्रंथ लिखापितम्।

—कारंजाभंडार

१. सं० १४८६ वर्षे आषाढ वदि ९ शुक्रदिने गोपाचल दुर्गे राजा डूंगरसी (सि) ह राज्य प्रवर्तमाने श्री

बंदिबि सिरि जस कित्ति असंगो ।

—सन्मति जिनच०

यशःकीर्ति असंग (परिग्रह रहित) भव्य रूप कमलों को विकसित करने के लिये सूर्य के समान थे, वे यशःकीर्ति वन्दनीय हैं। काष्ठासंघ माथुर गच्छ की पट्टावली में भी उनकी अच्छी प्रशंसा की गई है। जिनकी गुणकीर्ति प्रसिद्ध थी। पुण्य मूर्ति और कामदेव के विनाशक अनेक शिष्यों से परिपूर्ण, निर्ग्रन्थ मुद्रा के धारक, जिनके चित्रग्रह में जिन चरण-कमल प्रतिष्ठित थे—जिन भक्त थे और स्याद्वाद के सत्प्रेक्षक थे। इनकी इस समय चार कृतियां उपलब्ध हैं। पाण्डव पुराण, हरिवंश पुराण, आदित्यवार कथा और जिन रात्रि कथा।

आपके द्वारा लिखाए हुए दो ग्रंथ विबुध श्रीधरकृत भविष्यदत्त चरित्र और सुकमाल चरित्र स० १४८६ में लिखे गए थे। आपने अपने गुरु की अनुमति से महाकवि स्वयं-भूदेव के खंडित एवं जीर्ण-शीर्ण दशा को प्राप्त हरिवंश पुराण का ग्वालियर के समीप कुमार नगर में पणियार के जिन चंत्तालय में श्रावक जनों के व्याख्यान करने के लिये उद्धार किया था। इनकी दोनों पुराण रचना स० १४६७ और १५०० की है। यह भ० पद पर कब प्रतिष्ठित हुए और कब उसका परित्याग कर अपने शिष्य मलयकीर्ति को उस पर प्रतिष्ठित किया, इसका कोई प्रामाणिक उल्लेख नहीं मिलता है। कवि रङ्ग ने भी इनकी मृत्यु के

काष्ठासंघे माथुरान्वये पुष्करगणे आचार्य श्री सहस्र (स्र) कीर्ति देवास्तत्पट्टे आचार्य गुणकीर्तिदेवास्त-च्छिष्य श्री यशःकीर्तिदेवास्तेन निजज्ञानावरणी कर्मक्षयार्थ इद भविष्यदत्त-पंचमी कथा लिखापितम् ।

—जैन नया मन्दिर धर्मपुरा, दिल्ली

स० १४८६ वर्षे आश्वणि वदि १३ सोमादिने गोपाचलदुर्गे राजा डूगरेन्द्रसिंह देव राज्य प्रवर्तमाने श्री काष्ठासंघे माथुरान्वये पुष्करगणे आचार्य श्री भावसेनदेवास्तत्पट्टे श्रीसहस्रकीर्तिदेवास्तत्पट्टे श्रीगुणकीर्तिदेवास्तच्छिष्येन श्रीयशःकीर्तिदेवेन निजज्ञानावरणी कर्म क्षयार्थ इद सुकमालचरित लिखापितम् कायस्थ याजन पुत्र थलू लेखनीयं ।

—सुकमालचरित प्रश०

सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा। इनका समय स० १४८० से १५१० तक तो है ही, उसके बाद वे कब तक इस भूभाग को अलंकृत करते रहे यह अन्वेषणीय है। आपके अनेक शिष्य थे। और आपने अनेक देशों में बिहार करके जिन शासन को चमकाने का प्रयत्न किया था। यह प्रतिष्ठा-चार्य भी थे। आपके द्वारा प्रतिष्ठित अनेक मूर्तियां होंगी। किन्तु उनका मुझे दर्शन नहीं हुआ। ग्वालियर भट्टारकीय भंडार में उनके द्वारा रचित अन्य ग्रन्थ भी उपलब्ध हो सकते हैं। और मूर्तिलेख भी, ग्वालियर का भट्टारकीय मन्दिर बन्द होने से मैं उनके लेखादि नहीं ले सका। इनके समय में कवि रङ्ग ने अनेकों ग्रन्थों की रचना की है।

मलयकीर्ति—यह यशःकीर्ति के पट्टधर थे। अच्छे विद्वान और प्रतिष्ठाचार्य थे। कवि रङ्ग ने आपका निम्न वाक्यों से उल्लेख किया है:—

उत्तम खम वासेण अमंदउ,

मलयकित्ति रिसिबरु चिरुणंवउ ।

—सम्मइ जिन चरिउ

काष्ठासंघ स्थित माथुरगच्छ पट्टावली में भी, दीक्षा देने में सुदक्ष, सहृदय, सच्चरित, मुक्तिमार्गी, लोभ, क्रोध, और मायारूप मेघों को उड़ाने के लिये मारुति (वायु) देव थे। वे मलयकीर्ति जयवन्त हों।

२. तं जसकित्ति-मुणिह उद्धरियउ,

णिएवि सुत्तु हरिवसच्छचरिउ ।

णिय-गुरु-सिरि-गुणकित्ति-पसाएं,

किउ परिपुण्ण पणहो आणुराए ।

सरह सणेद (?) सेठि आएसं,

कुमर-णयरि आविउ सविसेसैं ।

गोवगिरिहे समीवे विसालए,

पणियारहे जिणवर-चेयालए ।

सावयजणहो पुरउ वक्खाणिउ,

दिट्ठु मिच्छत्तु मोहु अवमाणिउ ।—हरिवंश पुराण प्र०

३. दीक्षादाने सुदक्षोवगतगुरु शिष्यवा क्षेत्रनाथ ।

ध्यायतन्त श्रान्त शिष्टं चरित सहृदयो मुक्तिमार्गं ॥

यो लोभक्रोध मायाजलद विलयने मारुतो माथुरेशः ।

काष्ठासंघे गरिष्ठो जयति स मलयद्यस्ततः कीर्तिसूरिः ।

—काष्ठासंघ मा० प्र०

यह मलयकीर्ति वही जान पड़ते हैं जिन्होंने सं० १४६४ में मूलाचार की प्रशस्ति लिखी थी। यह प्रतिष्ठा-चार्य भी थे। इनके द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियां मन्दिरों में अनेक मिलेंगी किन्तु मुझे तो केवल दो मूर्ति लेख ही प्राप्त हो सके हैं। अन्वेषण करने पर और भी मिल सकते हैं। इनकी रचनाएँ अभी तक प्राप्त नहीं हुईं। जिनका अन्वेषण करना आवश्यक है। या कोई भिन्न मलयकीर्ति है।

भट्टारक गुणभद्र—भ० मलयकीर्ति के पट्टधर एवं शिष्य थे। आप अपभ्रंश भाषा के विद्वान कवि और प्रतिष्ठाचार्य थे। आपने अपने जीवन को आत्म-साधना के साथ धर्म और समाज-सेवा में लगाया था। आपके द्वारा रची गई १५ कथाएँ खजूर मस्जिद दिल्ली के पंचायती मन्दिर के एक गुच्छक में उपलब्ध है। जिन्हे उन्होंने ग्वालियर में रहकर भक्त श्रावकों की प्रेरणा से बनाई थी, जिनके नाम इस प्रकार हैं—१. सवणवारसि कहा, २. पक्खवइ कहा, ३. आयास पंचमी कहा, ४. चदायणवय कहा, ५. चदण छठी कहा, ६. दुग्धारस कहा, ७. णिदुह सत्तमी कहा, ८. मउड सत्तमी कहा, ९. पुष्पांजलि कहा, १०. रयणत्तय कहा, ११. दहलक्खणवय कहा, १२. अणतवय कहा, १३. लद्धिविहाण कहा, १४. सोलहकारण कहा रयणत्तय कहा, १५. सुगध दहमी कहा।

कवि ने इन कथाओं में, व्रत का स्वरूप, उनके

१. सं० १५०२ वर्षे कार्तिक सुदी ५ भीमदिने श्री काष्ठासंधे श्री गुणकीर्तिदेवाः तत्पट्टे श्री यशःकीर्ति देवाः तत्पट्टे मलयकीर्तिदेवान्वये साहु नरदेव तस्य भार्या जेणी।

—अनेकान्त वर्ष १०, पृ० १५६

सं० १५१० माघ सुदि १३ सोमे श्री काष्ठासंधे आचार्य मलयकीर्ति देवाः तैः प्रतिष्ठितम्।
गुणगणमणिभूषो वीतकामादि शेषः,
कृत जिनमत तोषस्तत्पदेशान्त वेयः।
धनचरणविशेषः सत्यघोषे विरोधो,
जयति च गुणभद्र गूरिरानन्दभूरिः।

—काष्ठासं मा० प०

२. देखो, जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह भा० २ पृ० ११२।

आचरण की विधि और फल का प्रतिपादन करते हुए व्रत की महत्ता पर अच्छा प्रकाश डाला है। इनमें से सवण वारसि कहा और लब्धि विधान कहा, इन दो कथाओं की ग्वालियर के संघपति उद्धरण के जिन मन्दिर में बैठकर सारंगदेव के पुत्र देवदास की प्रेरणा से रचा गया है। पुष्पांजलि, दहलक्खणवय कहा और अनंतवय कहा इन तीनों को जयसवालवंसी लक्ष्मणसिंह चौधरी के पुत्र पंडित भीमसेन के अनुरोध से रचा है। और नरक उतारी दुद्धारस कहा, ग्वालियर निवासी साहु बीधा के पुत्र सहणपाल के अनुरोध से रची गई है। भ० गुणभद्र नाम के अनेक विद्वान हो गए हैं। परन्तु उनमें प्रस्तुत गुणभद्र सबसे भिन्न जान पड़ते हैं। इनका समय विक्रम की १६वीं शताब्दी है। इनके समय में अनेक ग्रन्थों की प्रतिलिपि की गई, और मूर्तियों की प्रतिष्ठा भी हुई है। उनमें से दो मूर्ति लेख यहाँ दिये जाते हैं।

१. सं० १५२६ वैशाख सुदि ७ बुधे श्री काष्ठासंधे भ० श्री मलयकीर्ति भ० गुणभद्राम्नाये अग्रोत्कान्वये मित्तल गोत्रे आदि लेख है। यह धातु की मूर्ति भ० आदिनाथ की यक्ष यक्षिणी सहित है।

२. सं० १५३१ फाल्गुण सुदि ५ शुके काष्ठासंधे भ० गुणभद्राम्नाये जैसवाल सा० काष्ठा भार्या [जयश्री] आदि। यह मूर्ति १८ इंच धातु की है।

इस सब विवेचन से पाठक भट्टारक गुणभद्र के व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय प्राप्त कर सकते हैं।

भानुकीर्ति—यह भट्टारक गुणभद्र के पट्टधर थे। अपने समय के अच्छे विद्वान, उपदेशक और प्रतिष्ठाचार्य थे। शब्द शास्त्र, तर्क, काव्य अलंकार एवं छन्दों में निष्णात थे। इनके द्वारा लिखी हुई एक रचिन्नत कथा

२. यो ज्ञानातिसुशब्दशास्त्रमनघ काव्यानि तर्कादिद,
सालाकार गुण्युतानि नियत जानाति छन्दासि च।
यो विज्ञानयुतो दयाशमगुर्णभातीहि नित्योदय,
जीयाच्छ्री गुणभद्रसूरि...श्रीमानुकीर्ति गुरुः॥
कमलकिंस्ति उत्तमखम धारउ,
भवह भव-अम्भोणिहितारउ।
तस्स पट्ट कणयट्टि परिट्टउ,
सिरि सुहचंद सु-तव उक्कट्टिउ॥

मेरे अवलोकन में आई है। परन्तु अन्य रचनाओं का अभी तक पता नहीं चला। इनका समय विक्रम की १६वीं और १७वीं शताब्दी है।

कमलकीर्ति—हेमकीर्ति के पट्टधर थे। यह सं० १५०६ में पट्टधर थे, उस समय चन्द्रबाड में राजा राम-चन्द्रदेव और उनके पुत्र युवराज प्रतापचन्द्र के समय कविवर रङ्ग ने शान्तिनाथ की मूर्ति की प्रतिष्ठा की थी। तब हेमकीर्ति के पट्टधर कमलकीर्ति प्रतिष्ठित थे। इनका समय भी विक्रम की १६वीं शताब्दी है।

इनके दो शिष्य थे शुभचन्द्र और कुमारसेन। उनमें शुभचन्द्र कमलकीर्ति के पट्ट पर सोनागिर में प्रतिष्ठित हुए थे। और कुमारसेन भानुकीर्ति के पट्ट पर आसीन

१. देखो जैन ग्रन्थ प्रशस्तिसंग्रह भा० २ पृ० १११ की टिप्पणी।

२. सिरि-कंजकित्ति-पट्टंबरेसु,
तच्चरथ-सत्थ भासण दिणेषु।
उदइय-मिच्छत्त तमोह-णासु,
सुहचन्द भडारउ सुजस-वासु ॥

—हरिवंश पुराण प्रशस्ति

तत्पट्टमुच्चमुदयाद्रि भिवानुभानुः,
श्रीभानुकीर्तिरिह भाति हतांघकारः।
उद्योतयन्निखिल सूक्ष्मपदार्थसाधार्यं,
भट्टारको भुवनपालक पद्मबन्धुः ॥६२॥

—जम्बूस्वामि चरित पृ० ८

हेमकीर्ति दिल्ली के भट्टारक प्रभाचन्द्र के प्रशिष्य और शुभचन्द्र के शिष्य थे। ये वही हेमकीर्ति जात होते हैं जिनका उल्लेख सं० १४६५ के विजोलिया में उत्कीर्ण शिलालेख में हुआ है। इससे इनका समय विक्रम की १५वीं शताब्दी है।

शिष्येऽयं शुभचन्द्रस्य हेमकीर्ति महासुधीः।

देखो अनेकान्त वर्ष ११ कि० १०, पृ० ३६।

हुए थे। कुमारसेन के शिष्य हेमचन्द्र थे और हेमचन्द्र के शिष्य पद्मनन्दि। पद्मनन्दि के शिष्य यशःकीर्ति थे जिन्होंने सं० १५७२ में केशरिया जी में सभा मण्डप बनवाया था। इन यशःकीर्ति के दो शिष्य थे गुणचन्द्र और क्षेमकीर्ति, गुणचन्द्रका सम्बन्ध दिल्ली पट्ट परम्परा से है।

माथुरगच्छ के एक अन्य कमलकीर्ति का उल्लेख मिलता है जिन्होंने देवसेन के तत्त्वसार की एक संस्कृत टीका बनाई है, वे अमलकीर्ति के शिष्य थे। इन्होंने उस टीका की प्रशस्ति में अपनी गुरु-परम्परा निम्न प्रकार बतलाई है। क्षेमकीर्ति, हेमकीर्ति, संयमकीर्ति, अमलकीर्ति और कमलकीर्ति। हो सकता है कि ये दोनों कमलकीर्ति एक हों। कारण कि सं० १५२५ के मूर्तिलेख में जो कविवर रङ्ग द्वारा प्रतिष्ठित है। उसमें भ० अमलकीर्ति और उनके बाद शुभचन्द्र का उल्लेख है। और यह भी हो सकता है कि दोनों कमलकीर्ति भिन्न ही हों, क्योंकि दोनों के गुरु भिन्न-भिन्न हैं और वह भी सम्भव है कि एक ही विद्वान के दोक्षा और शिक्षा गुरु के भेद से दो विद्वान गुरु रहे हों। कुछ भी हो, इस संबंध में अन्वेषण करना अत्यन्त आवश्यक है।

कुमारसेन—भानुकीर्ति के शिष्य थे। स्याद्वाद रूप निर्दोष विद्या के द्वारा वादीरूपी गजों के कुभस्थल के विदारक थे। सम्यक् दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र के धारक थे। कामदेव के जीतने वाले तथा महाव्रतों का आचरण करने वाले थे। अच्छे विद्वान तपस्वी और जन-कल्याण करने में सदा तत्पर रहते थे। इसीसे पांडे राज-मल जी ने उनकी विजय कामना की है।

३. तत्पट्टमब्धिमभिवर्द्धनहेतुरिन्द्रः,
सौम्यः सदोदयमघोलसदंशुजालैः।
ब्रह्मव्रताचरणनिजितमारसेनो,
भट्टारकोविजयतेऽथकुमारसेनः ॥६३॥

—जम्बूस्वामी चरित पृ० ८

चेतन चित् परिचय बिना, जप तप सब निरर्थक।

कण बिन तुष जिम फटकत, कछु न आवै हृत्थ।

चेतन चित् परिचय बिना कहा भये व्रत धार।

शालि बिहूने जेत की, वृथा बनावत वार ॥

—रूपचन्द्र

शहडोल जिले में जैन संस्कृति का एक अज्ञात केन्द्र

प्रो० भागचन्द्र जैन 'भागेंद्र', एम. ए., शास्त्री

वर्तमान मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़ सम्भाग में भारतीय इतिहास, कला और संस्कृति की अनेक अनुपम निधियाँ अब भी अछूती हैं। शहडोल जिला इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। शहडोल जिले में पर्यटन करने का अवसर मुझे गत माह मिला और इसी सन्दर्भ में, मैंने एक महत्वपूर्ण स्थान का पर्यवेक्षण किया।

शहडोल जिले में, दक्षिण-पूर्वी रेलवे के अनूपपुर जकशन से चिरमिरी जाने वाली ब्राञ्च लाइन पर कोतमा एक महत्वपूर्ण एवं समृद्ध व्यापारिक और राजनैतिक केन्द्र है। कोतमारेलवे स्टेशन से पाँच मील पूर्व की ओर 'किवई' नामक रमणीय नदी बहती है। इस नदी के तट पर अनेक महत्वपूर्ण प्राचीन स्थान होने की सूचनाएं मुझे स्थानीय लोगों से मिली। उनमें से एक स्थान का सर्वेक्षण मैंने किया है, वह यहाँ प्रस्तुत है—

कोतमा से पाँच मील पूर्व में 'किवई नदी' के तटवर्ती प्रदेश को अब रण्डही और गड़ई नामों से पुकारा जाता है। 'रण्डही' अरण्य का 'गड़ई' गढ़ी का अपभ्रंश हो सकता है। कदाचित् पहले इस स्थान पर कोई गढ़ी (छोटा किला) रही होगी, जो अब ध्वस्त हो गई है। वर्तमान में इस तटवर्ती प्रदेश को अरण्य संज्ञा सरलता से दी जा सकती है। यह स्थान निकटवर्ती ग्रामों—चन्दोरी से एक मील पूर्व में, ऊरा से एक मील उत्तर-पश्चिम में तथा कठकोना से एक मील दक्षिण-पश्चिम में किवई नदी के पूर्वी तट पर है। इस स्थान का चारों ओर काफी दूर तक पर्यवेक्षण किया। लेखक का दृढ़ विश्वास है कि प्राचीन काल में यह एक समृद्ध केन्द्र था। प्राचीन नागरिक सभ्यता के अवशेष पर्याप्त मात्रा में अब भी यत्र-तत्र दिखाई देते हैं। तबि तथा लोहे की प्रचीन वस्तुएँ, पकी मिट्टी के खिलौने तथा गृहोपयोगी पत्थर आदि की वस्तुएँ भूमि के अन्दर तथा ऊपर प्रचुरता से प्राप्त होती हैं।

यदि इस स्थान पर उत्खनन कार्य कराया जाय तो निश्चित ही नई सामग्री उपलब्ध होगी। यहाँ उपलब्ध कलाकृतियों और पुरातात्विक अवशेषों से यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि इस प्रदेश में शैव और जैन-धर्मों का अच्छा प्रभाव था।

यद्यपि शैव धर्म से सम्बन्धित शिवलिंग ही यहाँ उपलब्ध होते हैं जबकि जैन तीर्थंकर मूर्ति वहाँ विशेष कही जा सकती है। प्रस्तुत निबन्ध में इस प्रदेश में विशेष रूप से प्रसिद्ध और मान्यता प्राप्त एक जैन तीर्थंकर प्रतिमा का विश्लेषण उपस्थित किया जा रहा है।

प्रथम जैन तीर्थंकर ऋषभनाथ की यह अत्यन्त सुन्दर और प्राचीन प्रतिमा इस प्रदेश में "ठाकुर बाबा" के नाम से विख्यात है। वर्तमान में यह एक बेल के वृक्ष के निकट नवनिर्मित चबूतरा सम्प्रति दो फुट तीन इंच ऊँचा, छह फुट नौ इंच लम्बा और आठ फुट तीन इंच चौड़ा है। इसी चबूतरे के मध्य में कुछ पुराने मूर्ति खण्डों और अन्य शिलाखण्डों के सहारे उक्त तीर्थंकर प्रतिमा टिकी हुई है।

भगवान् ऋषभनाथ की यह प्रतिमा किञ्चित् हरित् वर्ण, चमकदार, काले पाषाण से निर्मित है। यह पत्थर वंसा ही है जैसा कि खजुराहो की मूर्तियों के निर्माण में प्रयुक्त हुआ है। मूर्तिफलक की ऊँचाई दो फुट तीन इंच, चौड़ाई एक फुट दो इंच तथा मोटाई छह इंच है। पद्मासनस्थ इस जिन प्रतिमा के छह इंच ऊँचे पादपीठ में (दोनों ओर) शार्दूलों के मध्य झूलती हुई मणिमाला के बीचोंबीच तीर्थंकर का लाञ्छन बृषभ बहुत सुन्दरता से अंकित है। इसके ऊपर बायें एक श्रावक और दायें एक श्राविका अपने हाथों में फल (कदाचित् नारियल) लिए हुए भक्तिविभोर और श्रद्धावनत हो उठे हैं। कदाचित् ये आकृतियाँ मूर्ति-समर्पकों या प्रतिष्ठापकों की होंगी। पादपीठ में ही दायें गोमुख यक्ष तथा बायें चक्रेश्वरी

यक्षी की लघु आकृतियाँ अंकित है।

पादपीठ पर से मुख्य मूर्ति एक फुट तीन इंच ऊँची एवं एक फुट दो इंच चौड़ी है। मूर्ति में श्रीवत्स का लघु आकार में अंकन, कंधों तक लटकती हुई केश राशि तथा पुष्ठभाग में चक्राकार भामण्डल विशेष उल्लेखनीय है। मूर्ति के शिरोभाग पर क्रमशः तीन छत्र इस भव्यता और चारुता से उत्कीर्ण किये गये हैं कि उनमें गुथा हुआ एक प्रत्येक मणि साकार हो उठा है। छत्रत्रय के दोनों पार्श्वों में भगवान का मानों अभिषेक करने हेतु अपने गुडादण्डों में कलश लिए हुए अत्यन्त सुसज्जित गजराजों का मनोरम निदर्शन दर्शकों का मन सहज ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है।

मुख्य मूर्ति के उभय पार्श्वों में अशोक वृक्ष के नीचे तीन-तीन इंच की दो-दो (प्रत्येक ओर) तीर्थंकर मूर्तियाँ और भी अंकित हैं। इन सबके पुष्ठ भागों में प्रभामण्डल तो हैं ही, कंधों पर केशराशि भी दिखाई गई है।

यद्यपि इस मूर्ति पर कोई लेख नहीं है, तथापि सामयिक कला और मूर्तिगत विशिष्ट लक्षणों के आधार पर इनका निर्माण काल ईसाकी सातवीं-आठवीं शती प्रतीत होता है। इस समय महाकौशल में जैन धर्म एक शक्तिशाली धर्म के रूप में समादृत था और कलचुर वंश के शासकों ने इसे पर्याप्त प्रोत्साहन प्रदान किया था। विवेच्य प्रदेश कलचूरियों की राज्य सीमा में विद्यमान था।

दुःख का विषय है कि कुछ वर्ष पूर्व किसी पागल ने इसे खण्डित कर दिया। किन्तु मूर्ति के तीनों खण्ड सुरक्षित हैं तथा अच्छी स्थिति में हैं।

यद्यपि इस मूर्ति के आस-पास के ग्रामों में अब एक भी जैन नहीं है तथापि उस प्रदेश की जैनोत्तर जनता इसे बहुत श्रद्धा और भक्ति के साथ पूजती है। प्रत्येक

मंगल कार्य में वे बहुत आदर के साथ इसे स्मरण करते हैं तथा यथाशक्ति घी, दूध, नारियल, सुपाड़ी, फूल, फल तथा अगरबत्ती अर्पित करते हैं। नौदुर्गा के अवसर पर एक बड़े मेले का आयोजन भी यहाँ होता है। इस मूर्ति के महत्त्व के सम्बन्ध में निकटवर्ती ग्राम कठकोना के प्रमुख भूतपूर्व जमींदार का जबानी बयान सुनिए, जो अपने पूरे गाँव की ओर से इस मूर्ति की उपासना करने आया था। उसी के शब्दों में प्रस्तुत है—

“हमारा नांव भुन्नू बलद काशीराम है। मोर उमर ६५ साल की है। हम ई गाँव के जमींदार आहूँ। ई मूरत की पूजन हमी करत हूँ। रोटी, नारियल, दम कथा गाँव वारन की तरफ से टैम-टैम से होत रहत है। आस-पास के गाँवन के लोग हर सुम्वार को इकट्ठे होकर फल, फूल, दूध, घी चढ़ाते हैं, भक्तों गावत है। ई देवता जीव नहीं माँगता। ए ही देव हमारे गाँव का रक्षक है।”

इस बयान के समय उसकी श्रद्धा पद पद पर टपक रही थी। गाँव में पहुँचने पर अन्य लोगों से वर्ता में उक्त तथ्यों की पुष्टि पाई। इस मूर्ति से करीब १ फर्लांग दूर एक प्राचीन मन्दिर के अवशेष भी हैं।

किवई नदी के तट पर ही अन्यत्र, कोतमा से करीब दो मील एक शिलालेख उत्कीर्ण होने की सूचनाएँ भी प्राप्त हुई हैं। यदि किवई नदी के तटवर्ती प्राचीन स्थानों का सर्वेक्षण और आवश्यकतानुसार उत्खनन कराया जाता है तो प्राचीन कौशल, विशेष रूप से छत्तीसगढ़ के इतिहास पर नया प्रकाश पड़ेगा।

१. मुझे इस स्थान का पर्यटन कराने का श्रेय श्रीविरती-लाल जैन कोतमा तथा उनके मित्रों को है। अतः उन्हें धन्यवाद।

**सन् १९७१ की जनगणना के समय धर्म के
खाना नं. १० में “जैन” लिखाकर सही आँकड़े
इकट्ठा करने में सरकार की मदद करें ॥**

युक्त्यनुशासन : एक अध्ययन

डा० दरबारीलाल जैन कोठिया

युक्त्यनुशासन के उल्लेख और मान्यता :

युक्त्यनुशासन समन्तभद्र की एक महत्त्वपूर्ण दार्शनिक कृति है। यों तो उनकी प्रायः सभी कृतियाँ अर्थ गम्भीर और दुरूह है। पर युक्त्यनुशासन उनमें भी अत्यन्त जटिल एवं गम्भीर है। इसका एक-एक वाक्य सूत्रात्मक है और बहु-अर्थ का बोधक है। साधारण बुद्धि और आयाम से इसकी गहराई एवं अन्तस्तल में नहीं पहुँचा जा सकता है। इसे समझने के लिए दार्शनिक प्रतिभा, असाधारण मेधा, एकाग्र साधना और विशिष्ट परिश्रम की आवश्यकता है। युक्त्यनुशासन की इन्हीं विशेषताओं के कारण हरिवंश पुराणकार ने 'समन्तभद्र-वाणी को वीर-वाणी की तरह प्रभावशालिनी बतलाया है। विद्यानन्द ने तो उससे प्रभावित होकर उस पर व्याख्या लिखी है और अपने ग्रन्थ में उसके वाक्यों को प्रमाण रूप में प्रस्तुत करके अपने कथन की सम्पुष्टि की है। आप्तपरीक्षा (पृ० ११८) में वैशेषिक दर्शन की समीक्षा के सन्दर्भ में युक्त्यनुशासन (का० ७) के एक प्रमाण-वाक्य "संसर्गहानेः सकलार्थ हानिः" का विस्तृत अर्थोद्घाटन किया है। उसे भाष्य कहा जाय तो आश्चर्य नहीं है। वस्तुतः विद्यानन्द के इस अर्थोद्घाटन से उक्त वाक्य की गम्भीरता और दुरूहता की कुछ भाँकी मिल जाती है। यही बात समग्र युक्त्यनुशासन की है।

विद्यानन्द से दो शती पूर्व भट्ट अकलङ्कदेव (ईसा की ७वीं शती) ने भी युक्त्यनुशासन के वाक्यों और कारिकाओं को उद्धृत किया है। तत्त्वार्थवात्तिक (पृ० ३५) में आगत अनेकान्त लक्षण—“एकत्र सप्रतिपक्षानेकधर्मस्वरूप-निरूपणो युक्त्यागमाम्यामविरुद्धाः सम्यग्नेकान्तः”—पर युक्त्यनुशासन (का० ४८) के “युक्त्यागमाम्यामविरुद्ध-

मर्थप्ररूपणं युक्त्यनुशासनं ते।” इस वाक्य का प्रभाव लक्षित होता है। इसके अतिरिक्त त० वा० १-१२ (पृ० ५७) में ‘प्रत्यक्ष बुद्धिः क्रमने न यत्र’ (युक्त्य० का० २२) इत्यादि पूरी कारिका भी उद्धृत पाई जाती है और उसे “उक्तंच” के साथ प्रस्तुत करके उन्हें उससे अपने प्रतिपादन को प्रमाणित किया है।

अकलङ्कदेव से लगभग दो शताब्दी पहले आचार्य पूज्यपाद—(ई० ५वीं शती) ने भी युक्त्यनुशासन का उपयोग किया जान पड़ता है। युक्त्यनुशासन में दो स्थलों (का० ३६, ३७) में शीर्षोपहार, दीक्षा आदि से देवों की आराधना कर सिद्ध बनने वालों की मीमांसा की गई है, जो मुख की तीव्र लालसा रखते हैं, पर अपने दोषों (राग-द्वेष-मोहादि) की निवृत्ति नहीं करते। यथा—
शीर्षोपहारादिभिरात्मदुःखैर्देवान् किलाराध्य सुखाभिगूढाः।
सिद्धयन्ति दोषापचयानपेक्षा युक्त च तेषां स्वमूर्धनि येषाम्।

+ + +

स्वच्छन्दवृत्तेर्जगतः स्वभावाबुद्धेरनाचारपथेष्वदोषम्।

निर्घुण्य दीक्षासम-मुक्तिमानास्त्वद्बुद्धिबाह्यावत

विभ्रमन्ति ॥३७॥

पूज्यपाद ने भी लगभग इन्हीं शब्दों में अपनी सर्वार्थ सिद्धि (६-२, पृ० ४१०) में संवर के गुप्त्यादि साधनों के विवेचन सन्दर्भ में यही कहा है—

‘तेन तीर्थाभिषेक-दीक्षा-शीर्षोपहार-वेवताराचनादयो निर्वर्तिता भवन्ति; राग-द्वेष-मोहोपासस्य कर्मणोऽन्यथा निवृत्त्यभावात्।’

इन दोनों स्थलों की तुलना से प्रतीत होता है कि पूज्यपाद युक्त्यनुशासन से परिचित एवं प्रभावित थे और उसकी उक्त कारिका का उनके उक्त वाक्यों पर प्रभाव है। युक्त्यनुशासन के “शीर्षोपहारादिभिः” और “दीक्षा-सममुक्तिमानाः” तथा सर्वार्थसिद्धि के “...दीक्षा-शीर्षो-

१. वचः समन्तभद्रस्य वीरस्येव विजृम्भते।

—जिनसेन (द्वितीय), हरिवंश पुराण १-३०।

पद्मर-देवताराधनादयो” इन शब्दों के अतिरिक्त युक्त्यनुशासन के “सिद्धयन्ति दोषापचयानपेक्षा” और सर्वार्थसिद्धि के “राग-द्वेष-मोहोपासस्य कर्मणोऽन्यथा निवृत्त्यभावात्” पद विशेष ध्यातव्य हैं जो स्पष्टतः युक्त्यनुशासन का सर्वार्थसिद्धि पर प्रभाव सूचित करते हैं।

नाम—

संस्कृत टीकाकार आ० विद्यानन्द ने टीका का आरम्भ मध्य और अन्त में ‘युक्त्यनुशासन’ नाम से उल्लेख किया है। आदिवाक्य^१, जो मंगलाचरण या जयकार पद्य के रूप में है, समन्तभद्र के इस स्तोत्र का जयकार करते हुए उन्होंने इसका नाम स्पष्टतया ‘युक्त्यनुशासन’ प्रकट किया है। कारिका ३६ की टीका समाप्ति पर, जहाँ प्रथम प्रस्ताव पूर्ण हुआ है और जो प्रायः ग्रंथ का मध्य भाग है, एक पद्य^२ तथा पुष्पिका वाक्य में^३ भी विद्यानन्द ने प्रस्तुत स्तोत्र का नाम ‘युक्त्यनुशासन’ बतलाया है। इसके अतिरिक्त टीका के अन्त में दिये गये दो समाप्ति पद्यों में से दूसरे पद्य में^४ और टीका समाप्ति पुष्पिकावाक्य में^५ स्वामी समन्तभद्र की कृति के रूप में इसका ‘युक्त्यनुशासन’ नाम स्पष्टतः निर्दिष्ट है।

हरिवंश पुराण के कर्ता जिनसेन^६ (वि० सं० ८४०) ने भी अपने इसी पुराण के आरम्भ में पूर्ववर्ती आचार्यों के गुण वर्णन सन्दर्भ में समन्तभद्र की एक कृति का नाम

१. जीयात्समन्तभद्रस्य स्तोत्रं युक्त्यनुशासनम्।

—युक्त्य० टी० पृ० १, माणिकचन्द्र दि० जैन ग्रन्थ-माला, बम्बई।

२. स्तोत्रे युक्त्यनुशासने जिनपतेर्वीरस्य निःशेषतः।

—वही पृ० ८६।

३. इति युक्त्यनुशासनं परमेष्ठिस्तोत्रे प्रथमः प्रस्तावः।

—वही पृ० ८६।

४. प्रोक्तं युक्त्यनुशासनु विजयिभिः स्याद्वादमार्गानुमैः।

—युक्त्य० टी० पृ० १८२।

५. इति श्रीमद्विद्यानन्दाचार्यकृतो युक्त्यनुशासनालङ्कारः समाप्तः।

—वही पृ० १८२।

६. जीवसिद्धिविधायीह कृत युक्त्यनुशासनम्।

—हरि० पु० १-३०।

‘युक्त्यनुशासन’ दिया है और उन्हें उसका कर्ता कहा है। आश्चर्य नहीं, उनकी वह ‘युक्त्यनुशासन’ नाम से उल्लिखित कृति प्रस्तुत कृति ही हो।

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि उक्त नाम स्वयं समन्तभद्र के लिए भी इष्ट है या नहीं? यदि इष्ट है तो उन्होंने ग्रंथ के आदि अथवा अन्त में वह नाम निर्दिष्ट क्यों नहीं किया? इसका उत्तर यह है कि उपर्युक्त नाम स्वयं समन्तभद्रोक्त है। यद्यपि उन्होंने वह नाम ग्रंथ के आरम्भ में या अन्त में नहीं दिया, तथापि उसके मध्य में वह नाम उपलब्ध है। कारिका ४८ में^७ समन्तभद्र ने युक्त्यनुशासन पद का प्रयोग करके उसकी सार्थकता भी प्रदर्शित की है। उन्होंने बतलाया है कि ‘युक्त्यनुशासन’ वह शास्त्र है, जो प्रत्यक्ष और आगम से अविरुद्ध अर्थ का प्ररूपक है। अर्थात् युक्ति (हेतु), जो प्रत्यक्ष और आगम के विरुद्ध नहीं है, पूर्वक तत्त्व (वस्तु स्वरूप) की व्यवस्था करने वाले शास्त्र का नाम युक्त्यनुशासन है। जो अर्थ प्ररूपण प्रत्यक्ष विरुद्ध अथवा आगम विरुद्ध है वह युक्त्यनुशासन नहीं है। युक्त्यनुशासन की यह परिभाषा प्रस्तुत ग्रंथ में पूर्णतया पाई जाती है। अपनी इस परिभाषा के समर्थन में समन्तभद्र ने इसी कारिका (४८) में एक उदाहरण भी उपस्थित किया है। वह इस प्रकार है—‘अर्थरूप (वस्तुस्वरूप) स्थिति, उत्पत्ति और विनाश इन तीनों को प्रति समय लिए हुए ही तत्त्वतः व्यवस्थित होता है, क्योंकि वह सत् है’ इस उदाहरण में जिस प्रकार वस्तु का स्वरूप सत्पादादित्रयात्मक (युक्ति हेतु) पुरस्सर सिद्ध किया गया है और वह प्रत्यक्ष अथवा आगम से विरुद्ध नहीं है उसी प्रकार वीर-शासन में समग्र अर्थसमूह प्रत्यक्ष और आगमाविरोधी युक्तियों से सिद्ध है। तात्पर्य यह कि प्रत्यक्ष और आगम से अबाधित तथा प्रमाण और नय से निर्णीत अर्थ प्ररूपण वीर-शासन में ही उपलब्ध होता है और उसी प्रकार अर्थ प्ररूपण समन्तभद्र ने युक्त्यनुशासन ग्रन्थ में किया है। अतः प्रत्यक्ष और आगमाविरुद्ध अर्थ (तत्त्व) का प्ररूपक होने से वीर-शासन युक्त्यनुशासन है और वीर-शासन का ही इस ग्रन्थ में प्ररूपण होने से इसे ‘युक्त्यनुशासन’ नाम दिया जाना सर्वथा उपयुक्त है। और वह

७. दृष्टागमाभ्यामविरुद्धमर्थप्ररूपणं युक्त्यनुशासनं ते।

उक्त प्रकार से समन्तभद्र अभिहित ही है।

परवर्ती विद्यानन्द, जिनसेन (हरिवंश पुराणकार) जैसे मूर्धन्य ग्रंथकारों ने समन्तभद्र द्वारा दत्त नाम से ही इसका उल्लेख किया है। उन्होंने वह नाम स्वयं कल्पित नहीं किया।

एक प्रश्न और यहाँ उठ सकता है। वह यह कि यदि उक्त नाम स्वयं समन्तभद्रोक्त है तो उसे उन्होंने ग्रंथ के आदि अथवा अन्त में ही क्यों नहीं दिया, जैसा कि दूसरे ग्रंथकारों की भी परम्परा है? समन्तभद्र ने स्वयं अपने अन्य ग्रंथों के नाम या तो उनके आदि में दिये हैं और या अन्त में। देवागम (आप्तमीमांसा) में उसका नाम आदि में देवागम और अन्त में आप्तमीमांसा निर्दिष्ट है। स्वयम्भूस्तोत्र में उसका नाम आरम्भ में “स्वयम्भुवा” (स्वयम्भू) के रूप में पाया जाता है। इसी प्रकार रत्नकरण्ड-श्रावकाचार में उसका नाम उसके अन्तिम पद्य में आये “...रत्नकरण्डभावं” पद के द्वारा प्रकट किया है। परन्तु प्रस्तुत युक्त्यनुशासन में ऐसा कुछ नहीं है?

इसका समाधान यह है कि ग्रंथकार अपने ग्रंथ का नाम उसके आदि और अन्त की तरह मध्य में भी देते हुए मिलते हैं। उदाहरण के लिए विषापहारकार धनञ्जय को लिया जा सकता है। धनञ्जय ने अपने स्तोत्र ‘विषापहार’ का नाम न उसके आरम्भ में किया और न अन्त में। किन्तु स्तोत्र के मध्य में एक पद्य (१४) में प्रकट किया है, जिसमें ‘विषापहार’ पद आया है और उसके द्वारा स्तोत्र का नाम ‘विषापहार’ सूचित किया है। इसी प्रकार समन्तभद्र ने इस ग्रंथ के मध्य में “दृष्टागमाभ्यामविरुद्धमर्थप्ररूपणं युक्त्यनुशासनं” (का० ४८) इस कारिका वाक्य में प्रयुक्त ‘युक्त्यनुशासनं’ पद से इसका ‘युक्त्यनुशासन’ नाम अभिहित किया है। फलतः उत्तरवर्ती ग्रंथकारों में इसका यही नाम विश्रुत हुआ और उन्होंने उसी नाम से अपने ग्रंथों में निर्देश किया। अतः इसका मूल नाम ‘युक्त्यनुशासन’ (युक्ति शास्त्र) है।

मूल ग्रंथ और उसकी विद्यानन्द-रचित संस्कृत-टीका-पर से इसके अन्य नाम भी प्राप्त होते हैं। वे हैं—वीर-स्तुति, वीर-स्तोत्र, परमेष्ठि-स्तोत्र और परमात्मस्तोत्र।

१. ‘विषापहार’ मणिमोषधानि मन्त्रं समुद्दिष्य रसायनं च ।
—विषापहारस्तोत्र श्लो० १४।

“...स्तुतिगोचरत्वं निनीषवः स्मो वयमद्य वीरं” (का० १) इससे “वीर-स्तुति”, ‘न रागान्नः स्तोत्रं भवति भव पाश-च्छिदि मुनौ’ (का० ६३) और “स्तुतः शक्त्या...वीरो” (का० ६४) इन पदों से तथा “स्तोत्रे युक्त्यनुशासने जिनपतेर्वीरस्य निःशेषतः” (टी० ८६) इस टीका पद्य से “वीर-स्तोत्र”, “इति युक्त्यनुशासने परमेष्ठिस्तोत्रे प्रथमः प्रस्तावः” (टी० पृ० ८६) इस मध्यवर्ती टीका-पुष्पिकावाक्य से “परमेष्ठिस्तोत्रे” और “श्रद्धागुणज्ञतयोरिव परमात्मस्तोत्रे युक्त्यनुशासने प्रयोजकत्वात्” (टी० पृ० १७८) इस टीका-वाक्य से “परमात्म-स्तोत्र” ये चार नाम फलित होते हैं। वस्तुतः समन्तभद्र ने इसमें भगवान् वीर और उनके शासन का गुणस्तवन किया है। अतः इनके ये नाम सार्थक होने से फलित हों तो कोई आश्चर्य नहीं है। ग्रंथ की प्रकृति उन्हें बतलाती है।

नाम पर प्रभाव—

लगता है कि समन्तभद्र ने युक्त्यनुशासन की रचना नागार्जुन की ‘युक्तिषष्ठिका’ से प्रेरित होकर की है। ‘युक्तिषष्ठिका’ ६१ पद्यों की बौद्ध दार्शनिक कृति है। इसमें नागार्जुन ने, जो माध्यमिक (शून्याद्वैत) सम्प्रदाय के प्रभावशाली विद्वान् हैं, और जिन्होंने आचार्य कुन्दकुन्द तथा शुद्धपिच्छ की समीक्षा की है, भाव, अभाव

२. १० फरवरी १९४७ में शान्तिनिकेतन के शोधकर्त्ता श्रीरामसिंह तोमर द्वारा युक्तिषष्ठिका के १ से ४० संख्यक पद्यों में से केवल विभिन्न संख्या वाले २३ पद्य प्राप्त हुए थे। उनसे ज्ञात हुआ था कि चीनी भाषा में जो युक्तिषष्ठिका उपलब्ध है उस पर से ही उक्त पद्य संस्कृत में अनूदित हो सके हैं। शेष का अनुवाद नहीं हुआ। मालूम नहीं, उसके बाद शेष पद्यों का अनुवाद हो सका या नहीं। प्रकट है कि कम-बढ़ पद्य-संख्या होने पर भी युक्तिषष्ठिका ‘षष्ठिका’ कही जा सकती है। विंशतिका आदि नामों से रची जाने वाली रचनाओं से कम-बढ़ श्लोक होने पर भी उन्हें उन नामों से अभिहित किया जाता है।—लेखक।

३. ‘नागार्जुन पर कुन्दकुन्द और शुद्धपिच्छका प्रभाव’ शीर्षक मेरा प्रकाशमान लेख।

आदिरूप से तत्त्वका निरास करके शून्याद्वैत की सम्पुष्टि की है। युक्त्यनुशासन में ६४ पद्य हैं और उनमें भाव, अभाव आदि अनेकान्तात्मक वस्तु की स्याद्वाद द्वारा व्यवस्था की गयी है। अतएव युक्त्यनुशासन नागार्जुन की युक्तिषष्टिका के अन्तर में लिखा गया प्रतीत होता है। इस प्रकार की परम्परा दार्शनिकों में रही है। उद्योतकरके न्यायवार्तिकका उत्तर धर्मकीर्ति ने प्रमाणवार्तिक और कुमारिल ने मीमांसा श्लोकवार्तिक द्वारा तदनुरूप नामकरण पूर्वक दिया है। भक्तलंक का तत्त्वार्थवार्तिक और विद्यानन्द का तत्त्वार्थ-श्लोकवार्तिक भी उक्त परम्परा की ही प्रदर्शक रचानाए हैं। युक्ति शब्द से आरम्भकर रचे जाने वाले ग्रन्थों के निर्माण की भी परम्परा उत्तर काल में दार्शनिकों में रही है। फलतः 'युक्तिदीपिका' (साख्यकारिका-व्याख्या) जैसे ग्रंथ रचे गये हैं।

यहाँ यह भी उल्लेख्य है कि लंकावतार सूत्र पद्यकार ने बुद्ध के सिद्धान्त (देशना) को "चतुर्विधो नयविधिः सिद्धान्तं युक्तिदेशना" (श्लो० २४६) शब्दों द्वारा 'युक्ति-देशना' प्रतिपादित किया है। समन्तभद्र ने वर्धमान वीर के सिद्धान्त (शासन) को 'युक्त्यनुशासन' कहा है। अतः असम्भव नहीं कि युक्त्यनुशासन युक्त देशना का भी जवाब हो; क्योंकि दोनों का अर्थ प्रायः एक ही है, जो 'युक्ति पुरस्सर उपदेश' के रूप में कहा जा सकता है। अन्तर यही है कि लंकावतार सूत्र पद्यकार बुद्ध के उपदेश को 'युक्ति पुरस्सर उपदेश' कहते हैं और समन्तभद्र वीर के उपदेश को समन्तभद्र इतना विशेष कहते हैं कि उस युक्ति पुरस्सर उपदेश को प्रत्यक्ष और आगम से अबाधित भी होना चाहिए, मात्र युक्ति बल पर ही उसे टिका नहीं होना चाहिए।

ग्रन्थ-परिचय—

युक्त्यनुशासन ६४ पद्यों की विशिष्ट दार्शनिक रचना है। देवागम^१ युक्तिपूर्वक आप्त और आप्त-शासन की

मीमांसा करके वह आप्त वीर को और आप्त-शासन वीर-शासन को सिद्ध किया है तथा अन्यो को अनाप्त और उसके शासनों को अनाप्त शासन बतलाया है। इस मीमांसा (परीक्षा) की कसीटी पर कसे जाने और सत्य प्रमाणित होने के उपरान्त वीर और उनके स्याद्वाद-शासन की स्तुति (गुणाख्यान) करने के उद्देश्य से समन्तभद्र ने युक्त्यनुशासन की रचना की है। यह उन्होंने स्वयं प्रथम कारिका^२ के द्वारा व्यक्त किया है। उसमें प्रयुक्त "अद्य" पद तो, जिसका विद्यानन्द^३ ने 'परीक्षा के अन्त में' यह अर्थ किया है, सारी स्थिति को स्पष्ट कर देता है।

टीका के अनुसार यह ग्रंथ दो प्रस्तावों में विभक्त है। पहला प्रस्ताव कारिका १ से लेकर ३९ तक है और दूसरा कारिका ४० से ६४ तक है। यद्यपि ग्रंथ के अन्त में पहले प्रस्ताव की तरह दूसरे प्रस्ताव का नाम-निर्देश नहीं है, व्याख्याकार ने "इति श्रीमद्विद्यानन्दाचार्यकृतो युक्त्यनुशासनालङ्कारः समाप्तः।" इस समाप्ति-पुष्पिका-वाक्य के साथ ग्रन्थों को समाप्त किया है, तथापि ग्रन्थ के मध्य (का० ३९) में जब टीकाकार द्वारा स्पष्टतया प्रथम प्रस्ताव की समाप्ति का उल्लेख किया गया है तो शेषांश द्वितीय प्रस्ताव सुतरां सिद्ध हो जाता है। तथा शेषांशके बीच में किसी अन्य प्रस्ताव की कल्पना है नहीं।

प्रश्न हो सकता है कि प्रस्तावों का यह विभाजन मूलकार कृत है या व्याख्याकारकृत? इसका उत्तर यह है कि यद्यपि ग्रंथकार ने उसका निर्देश नहीं किया, तथापि ग्रन्थ के अध्ययन से अवगत होता है कि उक्त प्रस्ताव-विभाजन ग्रन्थकार को अभिप्रेत है, क्योंकि जिस कारिका (३९) पर व्याख्याकार ने प्रथम प्रस्ताव का विराम माना है वहाँ ग्रन्थकार की विचार-धारा या प्रकरण पूर्वपक्ष (एकान्तवाद-निरूपण व समीक्षा) के रूप में समाप्त है और कारिका ४० से ६४ तक उत्तर पक्ष (अनेकान्त-निरूपण) है। यतः प्रथम प्रस्ताव में मुख्यतया एकान्तवादों

१. लंकावतार सूत्र पद्य भाग की एक दुर्लभ प्रति, जो खण्डित एवं अपूर्ण जान पड़ती है, ३० मार्च ४३ में अद्वेय पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार से प्राप्त हुई थी, उसीसे इन पद्योंको हमने अपनी नोटबुकमें लिखा था।
२. देवागम का. ६, ७; वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट-प्रकाशन, वाराणसी।

३. कीर्त्या महत्या भुविर्वर्द्धमानं
त्वां वर्द्धमानं स्तुतिगोचरत्वम्।

निनीषवः स्मो वयमद्य वीरं
विशीर्णदोषाशयपाशबन्धम्॥

४. अद्यस्मिन् काले परीक्षावसान समये।

—युक्त्य० टी० पृ० १।

की समीक्षा होने से उसे पूर्वपक्ष और द्वितीय प्रस्ताव में अनेकान्तवाद का निरूपण होने से उत्तर पक्ष कहा जा सकता है। अतः विद्यानन्द ने ग्रन्थकार के इस अभिप्राय को ध्यान में रखकर ही दो प्रस्तावों का स्पष्ट उल्लेख किया है।
ग्रन्थ की अन्तिम दो कारिकाएँ—

ग्रन्थकार ने अपने नाम का उल्लेख “भवत्यभद्रोऽपि समन्तभद्रः” इस ६२वीं कारिका में किया है। उनके इस उल्लेख से प्रतीत होता है कि प्रस्तुत ग्रन्थ यही (६२वीं कारिका पर) समाप्त है। स्वयम्भूस्तोत्र में भी “तव देव ! मत्तं समन्तभद्रं सकलम्” (स्वयं० १४३) इस नामोल्लेख वाली कारिका पर ही उनकी समाप्ति है और वही कारिका उसकी अन्तिम कारिका है—उसके बाद उसमें और कोई कारिका उपलब्ध नहीं है। जिनस्तुति आप्त-मीमांसा और रत्नकरण्डकभावाकाचार मे ग्रन्थकार का नाम-निर्देश न होने से उनका कोई प्रश्न ही नहीं उठता। अतः युक्त्यनुशासन में उक्त ६२वीं कारिका के बाद जो ६३ व ६४ नम्बर वाली दो कारिकाएँ अन्त में पायी जाती हैं वे ग्रन्थकारोक्त नहीं जात होती।

प्रश्न है कि फिर आचार्य विद्यानन्द जैसे मूर्धन्य मनीषी ने उनकी व्याख्या क्यों की उससे तो उक्त दोनों कारिकाएँ मूल ग्रन्थ की ही जात होती हैं ?

इसका उत्तर यह दिया जाता है कि विद्यानन्द से पूर्व युक्त्यनुशासन पर किसी विद्वान् के द्वारा व्याख्या लिखी गयी हो और व्याख्याकार ने अपनी व्याख्या के अन्त में उक्त पद्य दिये हों। कालान्तर में वह व्याख्या लुप्त हो गयी हो और व्याख्या के उक्त अन्तिम पद्य मूल के साथ किसी ने जोड़ दिये हों। या यह भी सम्भव है कि किसी पाठ करने वाले विद्वान् ने उक्त पद्य स्वयं रचकर उसके साथ सम्बद्ध कर दिए हो और वही प्रति व्याख्या रहित विद्यानन्द को मिली हो तथा उन्होंने उक्त दोनों पद्यों को उनके साथ पाकर उनकी भी व्याख्या की हो। जो हो, ये दोनों अन्तिम पद्य यथास्थिति के अनुसार विचारणीय अवश्य हैं।

हाँ, एक बात यहाँ कही जा सकती है। वह यह कि ग्रन्थकार ने ग्रन्थ के आरम्भ में प्रथम कारिका में वीर-जिन की स्तुति की इच्छा व्यक्त की है। तथा दूसरी,

तीसरी और चौथी कारिकाओं द्वारा प्रश्नोत्तर पूर्वक “तथापि वैयात्यमुपेत्य भक्त्या स्तोस्ताऽस्मि ते शक्त्यनुरूप वाक्यः” (का० ३) जैसे वाक्यों को लिए हुए उनके प्रति असीम भक्ति का प्रकाशन हो तो आश्चर्य नहीं, और तब उक्त दोनों अन्तिम कारिकाएँ ग्रन्थकारोक्त कही जा सकती हैं।

युक्त्यनुशासन-टीका—

युक्त्यनुशासन पर विद्यानन्द की एक मध्यम परिभाषा की संस्कृत-टीका प्राप्त है। यह टीका ग्रन्थ के हार्द को स्पष्ट करने में पूर्णतः सक्षम है। टीकाकार ने अत्यन्त विशदता के साथ इसके पद-वाक्यादिका अर्थोद्घाटन किया है। व्याख्याकार की सूक्ष्म दृष्टि इसके प्रत्येक पद और उसके आशय के अन्तस्तल तक पहुँची है। वस्तुतः इस पर यह व्याख्या न होती तो युक्त्यनुशासन के अनेक स्थल दुरधिगम्य बने रहते। व्याख्याकार ने अपनी इस व्याख्या का नाम “युक्त्यनुशासनालङ्कार” दिया है, जो युक्त्यनुशासन का अलकरण करने के कारण सार्थक है। इसकी रचना आप्तपरीक्षा और प्रमाणपरीक्षा के बाद हुई है, क्योंकि इस (पृ० १०, ११) में उनके उल्लेख हैं। यह व्याख्या मूल ग्रन्थ के साथ वि० स० १९७७ में भा० दि० जैन ग्रन्थमाला से एक बार प्रकाशित हो चुकी है, जो अब अप्राप्य है और पुनः प्रकाश्य है।

हिन्दी-अनुवाद—

युक्त्यनुशासन के मर्म को हिन्दी भाषा में प्रकट करने के उद्देश्य से स्वामी समन्तभद्र के अनन्य भक्त और उनके प्रायः सभी ग्रन्थों के हिन्दी अनुवादक, प्रसिद्ध साहित्य और इतिहासकार प० जुगलकिशोर मुस्तार ‘युगवीर’ ने इस पर एक हिन्दी-अनुवाद प्रस्तुत किया है, जो विशद, सुन्दर और ग्रन्थानुरूप है। यह अनुवाद उन्होंने विद्यानन्द की उक्त संस्कृत-टीका के आधार से किया है। ग्रन्थ के दुरूह और क्लिष्ट पदों का अच्छा अर्थ एवं आशय व्यक्त किया है। मूल ग्रन्थ का अनुगम करने के लिए यह अनुवाद बहुत उपयोगी और सहायक है। यह वीर-सेवा-मन्दिर दिल्ली से सन् १९५१ में प्रकाशित हो चुका है।

१४ जुलाई १९६९

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

भगवान ऋषभदेव

परमानन्द शास्त्री

भारतीय वाङ्मय में जैनधर्म के आद्य प्रतिष्ठापक, आदि ब्रह्मा, प्रजापति, जातवेदस, विधाता, विश्वकर्मा, हिरण्यगर्भ, विश्ववेदिस, वात्य, स्वयंभू, कपर्दी और वातरशना आदि नामों से जिन ऋषभदेव का संस्तवन किया गया है। वे ऋषभदेव ऐतिहासिक महापुरुष हैं, जो आदि ब्रह्मा और आद्य योगी के नाम से प्रसिद्ध हैं। ऋग्वेदादि में इनकी स्तुति की गई है। ऋग्वेद में उन्हें 'केशी बतलाया है और वातरशना का जो उल्लेख है वह भी ऋषभदेव के लिए प्रयुक्त हुआ जान पड़ता है। महाभारत में इन्हें आठवां अवतार माना गया है। और भागवत के पंचम स्कंध में ऋषभभावतार का वर्णन है। विष्णुपुराण में भी ऋषभभावतार का कथन है। और उन्हीं के उपदेश से जैनधर्म की उत्पत्ति बतलाई है। इन सब प्रमाणों से ऋषभदेव की महत्ता का स्पष्ट भान होता है, वे उस काल के महान योगी थे।

भगवान ऋषभदेव सर्वार्यसिद्धि नामक स्वर्गसे अवधि समाप्त होने पर इस भूमण्डल के जम्बूद्वीपान्तर्गत भरत क्षेत्र के मध्य देशस्थ अयोध्या नगरी में महाराज नाभिराज के घर मरुदेवी के गर्भ से चैत्र वदी नवमी के दिन अवतरित हुए थे। इनके गर्भ में आने से षट् मास पूर्व ही नाभिराज का सदन इन्द्र द्वारा की हुई रत्न वृष्टि से भर पूर हो गया था। इस कारण वे लोक में 'हिरण्यगर्भ' नाम से प्रसिद्ध हुए। ऋषभदेव जन्म से ही तीन ज्ञान के धारक थे। अतएव वे जातवेदस कहे जाते थे। स्वयं ज्ञानी होने के कारण स्वयंभू और महाव्रतों का अनुष्ठान करने

के कारण वात्य नाम से, उल्लेखित किये जाते थे। ऋषभदेव जन्मकाल से ही विशिष्ट प्रतिभा के धनी थे। अतएव उन्होंने जीने की इच्छा करने वाली प्रजा को असि, मधि, कृषि, सेवा, विविध शिल्प, पशुपालन और वाणिज्यादि का उपदेश दिया था। उन्होंने जनता को लोक शास्त्र और व्यवहार की शिक्षा दी थी। और उस धर्म की स्थापना की जिसका मूल अहिंसा है। इसी कारण वे आदि ब्रह्मा कहलाते थे। उनकी दो पत्नियाँ थी। नन्दा और सुनन्दा। नन्दा से भरतादि निन्यानवे पुत्र और एक पुत्री ब्राह्मी का जन्म हुआ था। सुनन्दा से बाहुवली

“सैपा हिरण्यमयी वृष्टिः घनेशेन निपातितः।

विभोहिरण्यगर्भत्वमिव बोधयितुं जगत् ॥”

महापु० प० १२, ६५

“गवमट्टि अस्स जस्सउ हिरण्णवुट्ठी सकचणा पड्डिया।

तेणं हिरण्णगवमो जयम्मि उवगिज्जए उसभो ॥”

पउमच्चरिउ, ३-६८

“दिग्वासा वातरशनो निर्ग्रन्थेशोनिरम्बरः।”

—महापुराण

२ प्रजापतिर्यः प्रथमं जिजीविषु सशास कृष्यादिषु कर्म-
सुप्रजाः।

—वृहत्स्वयंभू स्तोत्र

३ पुरगाम पट्टणादी लोलिय सत्थं च लोय व्यवहारो।

धम्मो वि दयाभूलो विणिम्मियो आदि बम्हेण ॥

—त्रिलोकसार ८२०

४ वायुपुराण में लिखा है कि भगवान ऋषभदेव से वीर भरत का जन्म हुआ, जो कि अश्व नव सै पुत्रों से बड़ा था। भरत के नाम से इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा—

ऋषभाद् भरतोज्जे वीरः पुत्र शताग्रजः।

तस्मात् भारतं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधा ॥

—५२, वायुपुराण

१ ऋग्वेद मं० १० सू० १२१ में—‘हिरण्यगर्भः सम-
पर्वताग्रे’ रूप से उल्लेख किया है। ‘हिरण्यगर्भयोगस्य
वक्ता नान्यः पुरातनः।”

महाभारत शान्तिपर्व० अ० ३४६

और सुन्दरी नाम की कन्या का जन्म हुआ था। जिनका पालन-पोषण माता-पिता ने सम्यक् रीति से किया। अर्द्ध गृहस्थाश्रम का मूलाधार विवेक और सयम है। सन्तान चाहे पुत्र हों या पुत्री, उनका आत्मज्ञानी और विवेकी होना आवश्यक है। इसी कारण भगवान् ऋषभदेव ने अपने पुत्रों से पहले पुत्रियों को शिक्षित किया था। उन्होंने ब्राह्मी और सुन्दरी को अपने पास बैठा कर काष्ठ पट्टिका पर चित्राङ्कण करके उनका मन ललितकला के सौन्दर्य से मुग्ध कर लिया। सुन्दर विटपों और मनोहर शावक शिशुओं के रूप को देखकर उन्हें बड़ा कोतूहल होता था। इस तरह उनका मन शिक्षा की ओर आकर्षित करते हुए ऋषभदेव ने ब्राह्मी को अक्षर लिपिका बोध कराया, वह लिपि ब्राह्मी के कारण 'ब्राह्मीलिपि' के नाम से लोक में ख्यात हुई। भगवान् ऋषभदेव ने दूसरी पुत्री सुन्दरी को अक्षर विद्या सिखलाई। उसी समय उन्होंने अर्कों का आधार निर्धारित किया और गणित शास्त्र के बहुत से गुर बताये। संगीत और ज्योतिष का भी परिज्ञान कराया। आज भी ब्राह्मी लिपि और अङ्कगणित मिलते हैं। भरतादि सभी पुत्रों को भी शस्त्र और शास्त्र विद्या में निष्णात बनाया था। इस तरह ऋषभदेव ने अपने पुत्र और पुत्रियों को विद्याओं और कलाओं में निष्णात बना दिया और उनके कर्ण छेदन मुडन आदि सत्कार किए। इन पुत्रों में भरत आद्य चक्रवर्ती थे जिनके नाम से इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। ऋषभदेव ने चिरकाल तक प्रजा का हित साधन किया और शासन द्वारा

६ पहले इस देश का नाम हिमवर्ष था, नाभि और ऋषभदेव के समय अजनाम। किन्तु ऋषभ के पुत्र भरत के समय इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। विष्णुपुराण में लिखा है—

ऋषभात् भरतो जज्ञे ज्येष्ठः पुत्र शताग्रजः।

ततश्च भारतं वर्षं मेतल्लोकेषु गीयते ॥

—विष्णुपुराण अंश २, अ० १

भागवत में भी ऋषभ पुत्र महायोगी भरत से ही भारत नाम की ख्याति मानी गई है।

येषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठः श्रेष्ठ गुणव्वासीत्। येनेदं वर्षं भारतमिति व्यपदिशन्ति।”

उनकी रक्षा की।

बैराग्य—

किसी एक दिन भगवान् ऋषभदेव राजसिंहासन पर विराजमान थे। राजसभा लगी हुई थी और नीलांजना नाम की अप्सरा नृत्य कर रही थी। नृत्य करते करते यकायक नीलांजना का शरीर नष्ट हो गया, तभी दूसरी अप्सरा नृत्य करने लगी। किन्तु इस आकस्मिक घटना से भगवान् का चित्त उद्विग्न हो उठा—इन्द्रिय भोगों से विरक्त हो गया। उन्होंने तुरन्त भरत को राज्य और बाहुबली को युवराज और अन्य पुत्रों को यथायोग्य राज्य देकर प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। उनकी देखादेखी और भी अनेक राजाओं ने दीक्षा ली; किन्तु वे सब भूल गयास आदि की बाधा को न सह सके और तप से भ्रष्ट हो गए। छह मास के बाद जब उनकी समाधि भंग हुई, तब उन्होंने आहार के लिए विहार किया। उनके प्रशान्त नमन रूप को देखने के लिए प्रजा उमड़ पड़ी, कोई उन्हें वस्त्र भेट करता था, कोई आभूषण और कोई हाथी घोड़े लेकर उनकी सेवा में उपस्थित होता था। किन्तु उन्हें भिक्षा देने की कोई विधि न जानता था, इस तरह से उन्हें विहार करते हुए छह महीने बीत गए।

एक दिन घूमते-घामते वे हस्तिनापुर में जा पहुँचे। वहाँ का सोमवंशी राजा श्रेयान्स बड़ा दानी था, उसने भगवान् का बड़ा आदर-सत्कार किया। और आदर पूर्वक उनका प्रतिगृह करके उच्चासन पर बैठाया, अर्द्धा और भक्ति से उनके चरण धोए, पूजन की और फिर नमस्कार करके बोला—भगवन् ! यह इक्षुरस निर्दोष और प्रासुक है, इसे आप स्वीकार करें। तब भगवान् ने खड़े होकर अपनी अग्रजली में रस लेकर पिया। उस समय लोगों को जो आनन्द हुआ वह वर्णनातीत है। चूँकि भगवान् का यह आहार वैशाख शुक्ला तीज के दिन हुआ था, इसी से यह तिथि 'अक्षय तृतीया'—अखली कहलाती है। आहार लेकर भगवान् फिर वन को चले गए और आत्मध्यान में लीन हो गए। इस तरह ऋषभदेव ने एक हजार वर्ष तक कठोर तपश्चरण द्वारा आत्म-शोधन किया। तपश्चरण से उनका शरीर अत्यन्त कृश हो गया था किन्तु आत्मबल और आत्म तेज अधिक बढ़ गया था।

एक समय भगवान 'पुरिमतालपुर' (प्रयाग) नामक नगर के उद्यान में ध्यानावस्थ थे। उस समय उन्हें केवल-ज्ञान की प्राप्ति हुई। इस तरह वे पूर्णज्ञानी बन गए। भगवान बड़े भारी जन समुदाय के साथ धार्मिक उपदेश देते हुए विचरण करने लगे। उनकी व्याख्यान सभा 'समवसरण' कहलाती थी। और उनकी वाणी 'दिव्य-ध्वनि' कहलाती थी, जिसका स्वभाव सब भाषा रूप परिणत होना है।

समवसरण सभा की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उसमें पशुओं को भी स्थान मिलता था, उसमें सिंह जैसे भयानक और हिरण जैसे भीरू तथा बिल्ली चूहा जैसे जाति विरोधी हिंसक जीव भी शान्ति से बैठकर धर्मोपदेश का पान करते थे। क्योंकि भगवान ऋषभदेव अहिंसा की पूर्ण प्रतिष्ठा को पा चुके थे। जैसा कि पतजलि ऋषि के निम्न सूत्र से स्पष्ट है कि 'अहिंसा प्रतिष्ठाया तत्सन्निधौ वैर त्यागः।' आत्मा में अहिंसा की पूर्ण प्रतिष्ठा होने पर वैर का परित्याग हो जाता है। यही कारण है कि समरसी भगवान ऋषभदेव की वाणी मनुष्य, तिर्यक्- (पशु-पक्षी वगैरह) देव देवाङ्गनाए आदि सभी जीव

सुनते थे। जो उपदेश होता था उसे सभी जीव अपनी-अपनी भाषा में समझ लेते थे, यही उस वाणी की महत्ता थी। इस तरह भगवान ने जीवन पर्यन्त विविध देशों—काशी, अवन्ति, कंशल, सुह्य, पुण्ड्र, चेदि, बङ्ग, मगध, आध्र, मद्र, कर्लिग, पाचाल, मालव, दशार्ण और विदर्भ आदि में विहार कर जनता को कल्याणमार्ग का उपदेश दिया था। और कैलाश पर्वत से माघ कृष्ण चतुर्दशी को निर्वाण पद प्राप्त किया। भगवान आदि नाथ ही श्रमण सस्कृति के आद्य प्रणेता बतलाए गए हैं। हिन्दू पुराणों में भी कैलाश पर्वत से उनका मुक्ति प्राप्त करना लिखा है।

१ काशी अवन्ति कोशलसुह्यपुण्ड्रान्।

चेद्यङ्ग वङ्गमगधान्धकलिङ्गमहान्।

पञ्चालमालवदशार्णविदर्भदेशान्।

सन्मार्गदेशनपरो विजहार धीरः॥

—महापुराण २४-२८७

२ कैलाशे विमले रम्ये वृषभोऽयं जिनेश्वरः।

चकार स्वावधार च सर्वज्ञः सर्वगः शिवः॥

—प्रभास पुराण

१५ जुलाई १९६६

हृदय की कठोरता

चिन्तन—सहकार ! तेरा सौन्दर्य समग्र संसार को आकर्षित कर रहा है। तेरी आकृति का निरीक्षण करने के लिए जनता उत्सुक रहती है। जहाँ तेरा गमन होता है, सभी सोत्साह तेरे से हाथ मिलाना चाहते हैं। तेरे मधुर रस का आस्वादन करने के लिए रसना उतावली हो उठती है और उसकी अभिकांक्षा को शान्त करने के लिए तू अपना स्वत्व विसर्जित करने का प्रशंसनीय प्रयास भी करता है। तू अपनी अपरिमित परिमल के द्वारा दिग् मण्डल को सुरभित करता हुआ जन मानस का केन्द्र बिन्दु बन रहा है। इन सब विशेषताओं के साथ यदि तेरे में एक साधारणता नहीं होती तो क्या तेरा सुयश अनिल की भाँति इससे भी अधिक प्रसारित नहीं होता ?

सहकार—विज्ञवर ! जो कहा गया, क्या वह शतशः सत्य है ?

चिन्तक—स्वयं की स्खलना स्वयं गम्य नहीं होती, इसी अमर सिद्धान्त के अनुसार मैं यह कह सकता हूँ कि स्वयं को अपना दोष ज्ञात नहीं होता। तू सजगता से अपना निरीक्षण कर। तेरा हृदय कैसा है ? वह पाषाण की भाँति कठोर है या नवनीत की भाँति कोमल ? ऊपर की अधिक कोमलता व सरसता क्या तेरी आन्तरिक कठोरता की प्रतीक नहीं है ?

अपने अहं का अनुभव करते हुए सहकार के मुँह से सहसा ये शब्द निकल पड़े—हाय ! मेरा हृदय कठोर है। मेरे अन्तस्थल में यह गाँठ नहीं होती तो आज मैं जन-जन के दाँतों से क्यों पीसा जाता और क्यों मुझे अंगारों की शय्या पर सुला कर जलाया जाता।

—मुनि कन्हैया लाल

मगध सम्राट् राजा बिम्बसार का जैनधर्म परिग्रहण

परमानन्द शास्त्री

एक समय राजा बिम्बसार (श्रेणिक) एक बड़ी सेना के साथ वन में शिकार खेलने के लिए गया। वहाँ उन्होंने उस वन में यशोधर नाम के एक जैन तपस्वी महा मुनि को कायोत्सर्ग में स्थित ध्यानारूढ देखा। महामुनि यशोधर ध्यान अवस्था में निश्चल, निष्कप खड्गासन में स्थित थे। वे परमज्ञानी क्षमाशील और आत्मस्वरूप के सच्चे वेत्ता, उपसर्ग परीषह के जीतने में समर्थ मुनिपुंगव थे। उन्होंने मन को सर्वथा वश में कर लिया था। शत्रु, मित्र, मणि और कंचन में समभाव रखने वाले तत्त्वज्ञ तपस्वी थे। वे परम ब्यालु, निष्कंचन इन्द्रियजयी तथा समतारस में निरत रहते थे। राजा बिम्बसार की दृष्टि उन पर पड़ी, उन्होंने उससे पूर्व कभी कोई जैन श्रमण नहीं देखा था। अतएव उन्होंने पार्श्ववर्ती एक सैनिक से पूछा—

“देखो भाई ! स्नान आदि के संस्कार से रहित एवं मुण्ड मुड़ाए नग्न यह कौन व्यक्ति खड़ा है ? मुझे शीघ्र बतलाओ।”

पार्श्वचर चूँकि बौद्ध था। उसने महाराज से निवेदन किया कि—

“कृपानाथ ! क्या आप इसे नहीं जानते ? यही महाभिमानी महारानी चेलना का गुरु जैन मुनि है।” बिम्बसार की तो यह इच्छा पहले ही थी कि महारानी के गुरु से बदला लिया जाय। पार्श्वचर की बात सुनकर उनकी प्रतिहिंसा की अग्नि भड़क उठी, उन्हें तुरंत रानी द्वारा किये गए अपमान का स्मरण हो आया अतएव उन्होंने ने क्षण एक विचार कर अपने साथ आए हुए सभी शिकारी कुत्तों को मुनिराज के ऊपर छुड़ा दिया।

वे कुत्ते बड़े भयानक थे, उनकी दाढ़ें बड़ी लम्बी थीं, और डील-डोल में भी वे सिंह के समान ऊँचे थे। किन्तु मुनिराज के समीप पहुँचते ही उनकी सारी भयानकता

दूर हो गई। उन्होंने ज्यों ही मुनिराज की परमशान्त मुद्रा देखी, तो वे मंत्र-कीलित सर्प के समान शान्त हो गए। और उनकी प्रदक्षिणा देकर उनके चरणों के समीप शान्त होकर बैठ गए।

बिम्बसार इस दृश्य को दूर से देख ही रहे थे। उन्होंने कुत्तों को जब क्रोध रहित शान्त होकर मुनिराज की प्रदक्षिणा करते देखा, तो मारे क्रोध से उनके नेत्र लाल हो गए। वे सोचने लगे कि यह साधु नहीं, किन्तु कोई धूर्त, वंचक, मन्त्रकारी है। इस दुष्ट ने मेरे बलवान कुत्तों को भी मन्त्र द्वारा कीलित कर दिया है। मैं अभी इसे दण्ड देता हूँ। उनके रोष ने उन्हें विवेक रहित और अज्ञानी जो बना दिया था। इससे उस समय बिम्बसार की उस वक्र दृष्टि का सहज ही आभास हो जाता है।

बिम्बसार रोष के आवेश में गाफिल होकर म्यान से तलवार खींच कर मुनिराज को मारने के लिए चल दिया। जब वह मार्ग में जा रहा था तब एक भयानक काला सर्प फण ऊँचा किए हुए मार्ग में आया, राजा ने सर्प को देखते ही उसे जान से मार डाला। और उसको धनुष से उठा कर मुनिराज के गले में डाल दिया। मुनिराज गले में सर्प पड़ जाने पर भी, अपने आत्मध्यान से जरा भी विचलित नहीं हुए किन्तु संसार की स्थिति का यथार्थ परिज्ञान कर समभाव में स्थित हो गए। मुनिराज की सौम्यता और क्षमाशीलता देखते ही बनती थी।

बिम्बसार शिकार का कार्यक्रम स्थगित कर राजगृह वापिस आ गया, वहाँ अपने गुरुओं को उक्त सब समाचार सुनाया। बिम्बसार द्वारा जैन गुरु का अपमान किये जाने से उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई।

एक प्रहर रात्रि बीती होगी। रानी चेलना अपनी सामायिक समाप्त कर उठ ही रही थी कि राजा बिम्बसार अत्यन्त प्रसन्न होते हुए उसके पास आकर बोले—

“रानी ! तूने जो मेरे गुरु का अपमान किया था उसका बदला लेने का मुझे आज अवसर मिला ।”

राजा के यह वाक्य सुनते ही रानी सन्नाटे में आ गई, उसने एकदम घबरा कर पूछा—

आपने क्या किया महाराज ! मुझे शीघ्र बतलाइये । मेरे हृदय की बेचैनी बढ़ती जाती है ।’

“बिम्बसार बोला कुछ भी नहीं रानी ! तेरे गुरु मुनिराज जंगल में खड़े ध्यान कर रहे थे कि मैंने धनुष से उठाकर एक मरा हुआ सर्प उनके गले में डाल दिया ।’

राजा का वचन सुनते ही रानी का हृदय अत्यन्त व्याकुल हो उठा, मुनि पर घोर उपसर्ग जानकर उसके नेत्रों से अद्विरल अश्रुधारा बहने लगी, उसकी हिचकिया बंध गई और वह फूट-फूट कर रोने लगी । वह रोते-रोते कहने लगी—

“राजन् ! तुमने यह महापाप कर डाला । अब आप का अगला जन्म कभी उत्तम नहीं बन सकता, अब मेरा जन्म निष्फल गया । यह इतना भयंकर पाप है जिसका परिणाम भी अत्यन्त भयंकर है । राजमन्दिर मे मेरा भोग भोगना भी महापाप है, हाय ! मेरा यह सबध ऐसे कुमार्गी के साथ क्यों हुआ ? युवावस्था प्राप्त होते ही मैं मर क्यों न गई ? हाय ! अब मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? कहाँ रहूँ ? हाय हाय ! मेरे प्राण पखेरू इस शरीर से क्यों नहीं विदा हो जाते ! प्रभो ! मैं बड़ी अभागिन हूँ अब मेरा किस प्रकार हित होगा । छोटे से छोटे गांव, वन और पर्वतोंमें रहना अच्छा है, किन्तु जिनधर्म रहित एक क्षण राजप्रासाद में भी जीवन बिताना दूभर है । जिनधर्म ही जीवन की सफलता का मापदण्ड है । उसके बिना वह निष्फल है ।

हाय दुर्दैव ! तुझे क्या मुझ अभागिन पर ही बप्प प्रहार करना था । इस तरह रानी बड़ी देर तक विलख विलख कर रोती रही । रानी के इस रुदन से राजा का पाषाण जैसा कठोर हृदय भी द्रवित हो गया । अब बिम्बसार के मुख से वह प्रसन्नता बिलीन हो गई, वह एक दम किर्तव्य विमूढ होकर रानी को समझाने लगा ।

‘प्रिये ! तू इस बात के लिए तनिक भी शोक न कर, वे मुनि अपने गले से मरा हुआ सर्प फेंक कर वहाँ से चले

गये होंगे । मेरे हुए सर्प का गले से निकालना कोई कठिन काम नहीं है ।’

महाराजा के वचन सुनकर रानी बोली—

“नाथ ! आपका यह कथन भ्रम पर आधारित है । यदि वे मुनिराज वास्तव में मेरे गुरु हैं तो उन्होंने अपने गले से मृत सर्प कभी नहीं निकाला होगा । वे योगीश्वर वहाँ पर उसी रूप में ध्यान में स्थित होंगे । भले ही मुझे चलायमान हो जावे, समुद्र अपनी मर्यादा छोड़ दे, किन्तु जैन मुनि उपसर्ग और परीषद् से अपना मुख कभी नहीं मोड़ते । वे ध्यान अवस्था में उपसर्ग आने पर उसी रूप में सहन करते रहते हैं । उसका स्वयं निवारण नहीं करते । जैन मुनि पृथ्वी के समान सहनशील एवं क्षमाभाव से अलंकृत होते हैं । वे समुद्र के समान गम्भीर, वायु के समान निष्परिग्रह, आकाश के समान निर्मल और अग्नि के समान कर्म को भस्म करने वाले और जल के समान स्वच्छ और मेघ के समान परोपकारी होते हैं । हे प्राणेश्वर ! आप विश्वास रखिए मेरे गुरु निश्चय से परमज्ञानी, ध्यानी और सुदृढ़ वैरागी होते हैं । वे कभी किसी का बुग चिन्तन नहीं करते । सबके साथ सम दृष्टि रखते हैं । वे करुणानिधि होते हैं । अपकार करने वालों के प्रति भी उनका रोष नहीं होता और न पूजा करने वाले के प्रति राग ही होता है । इसके विपरीत, उपसर्ग परीषद् से भय करने वाले व्रत एवं तपादि से शून्य मद्य मास और मधु के लोभी मेरे गुरु कदापि नहीं हो सकते । यही कारण है कि आपके अनेक प्रयत्न करने पर भी जैन साधुओं पर मेरी श्रद्धा कम नहीं हुई । मैं किसी के धर्म पर कोई आक्षेप भी नहीं करती, इतना अवश्य कहती हूँ कि जैन मुनि जैसा पवित्र आचरण अन्य किसी धर्म के साधुओं में नहीं होता ।’

रानी के इन शब्दों को सुन कर बिम्बसार का हृदय भय के मारे कांप गया । वह और कुछ न कह कर केवल इतना ही कह सके—

“प्रिये ! तूने इस समय जो कुछ कहा है वह बहुत कुछ सत्य दिखलाई देता है । यदि तेरे गुरु इतने क्षमाशील हैं, तो हम दोनों उनको इसी समय रात्रि में जाकर देखेंगे और उनका उपसर्ग दूर करेंगे । मैं अभी तेज चलने वाली

सवारी का प्रबन्ध करता हूँ।”

रानी बोली—

“नाथ ! अब आपके मुख से फूल भड़े हैं। यदि आप स्वयं न भी जाते तो मैं स्वयं अवश्य जाती। आपने यह बात मेरे मन की कही, अब आप चलने की शीघ्र तयारी करें।”

यह कह कर रानी चलने की तैयारी करने लगी। राजा ने उसी समय एक तेज घोड़े वाली गाड़ी तय्यार करा कर थोड़े से सैनिक साथ लेकर वन की ओर प्रयाण करना प्रारम्भ किया और थोड़ी देर में ही वे मुनि यशोधर के समीप जा पहुँचे।

इधर तो बिम्बसार मुनिराज के गले में सर्प डालकर वापिस गया, उधर मुनि महाराज ने अपना ध्यान और भी दृढ़ कर इस तरह चिन्तन करना प्रारम्भ किया।

इस व्यक्ति ने मेरे गले में सर्प डाल कर बड़ा उपकार किया है, क्योंकि इससे मेरे अशुभ कर्म शीघ्र ही नष्ट हो जावेंगे। और पूर्व संचित कर्मों की उदीरणा करने के लिए मुझे परीषह सहने का अवसर बड़े भारी भाग्य से मिला है। यह सर्प डालने वाला व्यक्ति मेरा बड़ा उपकारी है जो इसने परीषह की सामग्री मेरे लिए एकत्रित कर दी। यह शरीर जड़ और नाशवान है, और मेरे चैतन्य स्वरूप से सर्वथा भिन्न है। यह कर्मादय से उत्पन्न हुआ है, किन्तु मेरा आत्मा कर्म बन्धन से रहित चिदानन्द है। यह शरीर अनित्य, अपावन, अस्थिर, मल-मूत्र का घर एवं घृणित है। लोग न जाने क्यों इसे अच्छा समझते हैं और इत्र-फुलेल आदि सुगन्धित पदार्थों से इसे संस्कारित करते हैं। शरीर से चैतन्यात्मा के चले जाने पर शरीर एक पग भी आगे नहीं चल सकता। इस शरीर को अपना समझना निरी अज्ञानता है। जो मनुष्य यह कहते हैं कि शरीर में सुख दुःख आदि होने पर आत्मा सुखी-दुखी होता है, उनका यह भ्रम है। क्योंकि जिस तरह छप्पर में आग लग जाने पर छप्पर ही जलता है तद्गत आकाश नहीं जलता, उसी प्रकार शारीरिक सुख-दुःख मेरी आत्मा को सुखी-दुखी नहीं बना सकते। मैं द्रव्य दृष्टि से अपने आत्मा को चैतन्य ज्ञाता-दृष्टा शुद्ध, निष्कलंक समझता हूँ। शरीर तो पुद्गल

परमाणुओं का पिण्ड है।

वह विनाशीक है और आत्मा अविनाशी है। जीव अकेला ही जन्म मरण के दुःख सहता है। इसका कोई सगा साथी नहीं है। शरीर अपवित्र है। व्रत, तप, संयम आत्मा के कल्याणकर्ता है। इस तरह मुनिराज यशोधर अनित्यादि बारह भावनाओं का चिन्तन करते हुए गले में पड़े सर्प के कारण परीषह सहन कर रहे थे। कि इतने में राजा और रानी उनके दर्शन करने शीघ्रता पूर्वक चले आ रहे थे। उन्होंने जब मुनिराज के समीप आकर उन्हें ज्यों का त्यों ध्यानस्थ खड़ा देखा तो आनन्द और अद्भुत के मारे उनके शरीर में रोमांच हो आया। राजा ने सबसे पहले मुनिराज के गले से सर्प निकाला, रानी ने खांड आदि मीठा डाला, जिसकी गंध से चींटियाँ मुनिराज के शरीर से उतर कर नीचे आ गई। उन्होंने मुनिराज के शरीर को काट काट कर खोखला कर दिया था। अतएव रानी ने उनके शरीर को उष्ण जल में भिगोये हुए कोमल वस्त्र से धोया। फिर रानी ने उनके शरीर की जलन दूर करने के लिए चन्दनादि शीतल पदार्थों का लेप किया। इस तरह दोनों मुनिराज के उपसर्ग को अपने हाथों से दूर कर और उनको नमस्कार कर आनन्दपूर्वक उनके सामने भूमि पर बैठ गए। राजा मुनिराज की ध्यान मुद्रा पर आश्चर्य कर रहा था, वह उनके दर्शन से सतुष्ट हुआ।

मुनिराज रात्रि भर उसी प्रकार ध्यान में लीन हो खड़े रहे और राजा रानी जागरण करते हुए उनके सामने उसी प्रकार बैठे रहे। रात्रि समाप्त होने पर जब सूर्य का प्रकाश चारों ओर फैल गया तो रानी ने मुनिराज की तीन प्रदक्षिणा दी और उनकी स्तुति इस प्रकार करने लगी—

“हे प्रभो ! आप समस्त संसार में पूज्य और अनुपम गुणों के भण्डार हैं। आपके गले में सर्प डालने वाले और फूलों का हार पहनाने वाले दोनों ही आपकी दृष्टि में समान हैं। भगवन् ! आप इस संसार रूपी समुद्र को पार कर चुके हैं तथा औरों को भी पार उतारने वाले हैं। आप सभी जीवों के कल्याणकर्ता हैं। हे कृष्ण सागर ! अज्ञानवश आपकी अवज्ञा करके हमसे जो अपराध हो

गया है उसे आप क्षमा करें। यद्यपि मैं जानती हूँ कि आप राग-द्वेष से रहित किसी का भी अहित करने वाले नहीं हैं, तथापि आपकी अवज्ञा-जनित अशुभ कर्म हमें सन्ताप दे रहा है। प्रभो आप मेघ के समान सभी जीवों का उपकार करने वाले, धीर-वीर परमोपकारी हैं। आपके प्रसाद से ही हमारा अशुभ कर्म दूर हो सकता है। हे मुनिपुंगव ! हमें आपकी ही शरण है, आप ही हमारे अकारण बन्धु हैं। आपसे बढ़कर ससार में हमारा कोई हितैषी नहीं है। दयानिधि ! आप हमें क्षमा करें, और कर्म बन्धन से छूटने का विमल उपाय बताएं।”

रानी द्वारा मुनिराज की स्तुति कर चुकने पर उनको राजा तथा रानी दोनों ने पुनः भक्तिभाव से प्रणाम किया। मुनिराज इस समय अपना ध्यान छोड़ कर बैठ गए थे। उन्होंने उन दोनों से कहा—“आप दोनों की धर्मवृद्धि हो।” मुनिराज के मुख से इन शब्दों को सुनकर राजा पर बड़ा प्रभाव पड़ा।

वह मन ही मन इस प्रकार विचारने लगा—

अहो ! यह मुनिराज तो वास्तव में बड़े भारी महा-त्मा है। इनके लिए शत्रु और मित्र सब समान हैं। एक तो गले में सर्प डालने वाला मैं, तथा दूसरे उनकी परमभक्ता रानी, दोनों पर उनकी एक सी कृपा है। यह मुनिवर बड़े धन्य हैं, जो सर्प गले में पड़ने पर अनेक कष्ट सहन करते हुए भी उनका रचमात्र भी मेरे पर कोप नहीं है किन्तु क्षमाभाव को धारण किए हुए है। हाय ! हाय ! मैं बड़ा अधम, पापी और नीच व्यक्ति हूँ, जो मैने ऐसे परम योगी की अवज्ञा की। ससार मे मेरे समान और वज्रपापी कौन होगा ? अज्ञानवश मैने कितना महान् अनर्थ कर डाला। अब इस पाप से छुटकारा कैसे होगा ? अवश्य ही मुझे इस पाप से नरकादि दुर्गंतियों में जाना होगा। अब मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ। इस कमाये हुए पापपुंज का प्रायश्चित्त कैसे करूँ। इस पाप को धोने का केवल यही उपाय अब समझ में आता है कि अपना सिर शस्त्र से काट कर मुनि के चरणों में अर्पण कर मुक्त होऊँ।

राजा बिम्बसार का सिर इस तरह विचार करते हुए लज्जा से झुक गया, और दुःख के मारे उनके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी।

मुनिराज बड़े भारी ज्ञानी थे। उन्होंने राजा के मन की संकल्प-विकल्प की बात जान ली अतएव राजा को सान्त्वना देते हुए बोले—

“राजन् तुमने अपने मन में जो आत्महत्या का विचार किया है, उससे पाप का प्रायश्चित्त न होकर और भीषण पाप होगा। आत्महत्या से बढ़ कर कोई दूसरा पाप नहीं है। पाप से अथवा कष्ट के कारण जो लोग परभव में सुख मिलने की आशा से आत्महत्या करते हैं, उनकी यह भारी भूल है। आत्मघात से कभी सुख नहीं मिल सकता। आत्मघात तो हिंसा है उससे पाप कैसे धुल सकते हैं ? हिंसा से तो पाप की अभिवृद्धि ही होगी। इससे आत्म-परिणामों में संक्लेश होता है, और संक्लेश से अशुभ कर्मों का बन्ध होता है, उससे नर्कादि दुर्गंतियों में जन्म लेकर अनन्त दुःखों का पात्र होना पड़ता है। राजन् यदि तुम अपना भला चाहते हो और दुर्गतिके दुःखोंसे बचना चाहते हो तो आत्महत्या का विचार छोड़ दो, अशुभ सकल्प दुःखों के जनक है यदि तुम्हें प्रायश्चित्त करना है, तो आत्म-निन्दा करो, शुभाचरण में प्रवृत्ति करो। आत्म-हत्या से पापों की शान्ति नहीं हो सकती।”

मुनिराज के वचनों को सुनकर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ और महारानी से कहने लगे, सुन्दरी ! यह क्या बात हुई ? मुनिराज ने मेरे मन की बात कैसे जान ली। तब रानी ने कहा—नाथ ! मुनिराज मनःपर्ययज्ञानी है वे आपके मन की बात के अतिरिक्त आपके अगले-पिछले जन्मों का भी हाल बतला सकते हैं।

रानी के वचन सुनकर राजा ने मुनिराज के मुख से धर्म का वास्तविक स्वरूप सुना, और जैनधर्म को धारण किया। और रानी सहित मुनिराज के चरणों की वन्दना कर उनके गुणों का स्मरण करते हुए नगर में वापिस आ गया।



अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग व शान्ति किस प्रकार प्राप्त हो सकती है ?

शान्तिलाल बनमाली श्रेष्ठ

[भुगोरश्क मास्को (रूस) में होने वाले सर्व धर्म सम्मेलन में जनसमाज की ओर से शान्तिलाल बनमाली श्रेष्ठ ने उसमें भाग लिया, वहाँ आपने जो भाषण दिया उसे यहाँ ज्यों का त्यों नीचे दिया जाता है। —सम्पादक]

सबसे पहले मैं इस सम्मेलन के आयोजकों को हार्दिक बधाई देना चाहता हूँ कि जिन्होंने मानवतावादी मार्क्स टॉल्स्टॉय, और लेनिन की कर्मभूमि—इस सोवियत सघ—में मानवता का मूल्यांकन करने का हमें मौका दिया है।

मुझे इस बात का गौरव है कि आज मैं ऐसे महान् प्राचीन जैनधर्म का प्रतिनिधित्व करने जा रहा हूँ जिस धर्म के प्ररूपक भगवान् महावीर का प्राणतत्त्व एवं जीवन-मंत्र ही 'समता सर्वभूतेषु,—सर्वभूतों के प्रति साम्यभाव रहा है और जिसने सह-अस्तित्व, परस्पर सहयोग द्वारा विश्व को शान्ति एवं मैत्री का जीवन-संदेश दिया है। भ० महावीर अहिंसा मूलक साम्यवाद-सिद्धान्त के प्रमुख उद्घोषक, प्रबल समर्थक, प्ररूपक एवं प्रहरी थे।

आज जिस सहअस्तित्व एवं शान्ति की पवित्र भावना से यह सम्मेलन आयोजित किया गया है वही विश्वशान्ति एवं विश्वमैत्री स्थापित करने के महान् उद्देश्य से भारतीय समन्वय-संस्कृति के प्रखर स्वरवाहक, तेजस्वी जैन संत मुनिश्री सुशीलकुमारजी म० की प्रेरणा से भारत में बम्बई, दिल्ली, कलकत्ता आदि स्थानों पर तीन विश्व-धर्म-सम्मेलन सफलतापूर्वक सम्पन्न हो चुके हैं जिसमें दिल्ली-सम्मेलन में तो आपके यहाँ के तीन महानुभाव प्रतिनिधियों ने भी भाग लिया था, यह सतोष का विषय है। मुनिश्री सुशीलकुमारजी म० अपनी परम्परा की मर्यादानुसार यहाँ साक्षात् उपस्थित नहीं हो सके हैं लेकिन विश्वधर्म सम्मेलन द्वारा विश्व में शान्ति एवं मैत्री स्थापित हो सकती है ऐसा उनका विश्वास है। उन्होंने इस सम्मेलन की सफलता के लिए अपनी शुभ कामनाएं प्रेषित की हैं और आगामी फरवरी १९७० में दिल्ली में होने वाले चौथे विश्वधर्म सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए सत्रेय आमंत्रण भेजा है। आज उन्हीं के एक प्रतिनिधि के रूप

में, इस पवित्र शान्ति-यज्ञ में सम्मिलित होने में मैं गौरव अनुभव करता हूँ।

यह बड़े ही सौभाग्य की बात है कि हम इस शान्ति-यज्ञ का मंगलाचरण ऐसे शुभावसर पर कर रहे हैं जब कि अहिंसक समाज-क्रांति के अग्रदूत भ० महावीर की २५वीं निर्वाण-शताब्दी, अहिंसाके महान् प्रयोगवीर महात्मा गांधी की जन्म-शताब्दी एवं मानवतावादी महान् नेता लेनिन की शताब्दी मनाने जा रहे हैं। विश्वशान्ति के पुरस्कर्ता इन महापुरुषों के जीवन में से पवित्र प्रेरणा पाकर मानव-समाज को एक विश्व-कुटुम्ब के रूप में, अखण्ड बनाने का सत्संकल्प करें यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धाजलि होगी।

विश्व के सभी राष्ट्र शान्ति एवं मैत्री चाहते हैं। क्योंकि प्रत्येक राष्ट्र, जाति एवं व्यक्ति हिंसा के दुष्परिणामों से भयाक्रांत हैं। हिंसक क्रांति का युग समाप्त हो चुका है। हिंसा, वैमनस्य, विद्वेष के स्थान पर आज अहिंसा एवं विज्ञान के समन्वय का, समता तथा शान्ति का युग आ रहा है। इस आनेवाले अहिंसा-युग का यह आह्वान है कि—'विषमता एवं विसंवादिता से दूर रहकर, समता-शान्ति तथा श्रमता का आधार बनाकर शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व एवं पारस्परिक सहयोग-द्वारा समग्र विश्व में शान्ति एवं मैत्री का मधुर वातावरण पैदा करें।'।

वर्तमान युग में दो प्रयोग चल रहे हैं—एक अणु का, अस्त्र का एवं युद्ध का और दूसरा सह अस्तित्व, पारस्परिक सहयोग एवं शान्ति का। एक भौतिक, है दूसरा आध्यात्मिक, एक मारक है, दूसरा तारक, एक मृत्यु है, दूसरा जीवन, एक विष है, दूसरा अमृत।

सह-अस्तित्व एवं पारस्परिक सहयोग का यह नारा है—

“आओ, हम सब मिलकर चलें, मिलकर बैठें, मिलकर समस्याओं का हल करें, कंधे से कंधा मिलाकर सब कल्याण-पथ पर आगे बढ़ते चलें ताकि हम मानव मिलकर रहे। परस्पर विचारों में भेद है, कोई भय नहीं, कार्य करने की पद्धति भिन्न है, कोई खतरा नहीं, सोचने का तरीका अलग है, कोई डर नहीं क्योंकि सबका तन भले ही भिन्न हों पर मन सबका एक ही है, हमारे सुख-दुख एक-से हैं। हमारी समस्याएं समान हैं। क्योंकि हम सब मानव हैं और मानव एक साथ ही रह सकते हैं, बिखर कर नहीं, बिगड़ कर नहीं।”

जो अणु-अस्त्र या युद्ध में विश्वास करता है वह भौतिक शक्ति का पुजारी है, वह अपनी जीवन-यात्रा अणु-अस्त्र पर चला रहा है लेकिन जो सह-अस्तित्व एवं पारस्परिक सहयोग में विश्वास करता है वह अध्यात्मवादी है। पश्चिमी राष्ट्र अधिक भौतिकवादी है जब कि पूर्व अध्यात्मवादी है। एक देह पर शासन कर रहा है और दूसरा देही पर। एक तीर-तलवार में विश्वास करता है और दूसरा मानव के अन्तर मन में, मानव के सहज स्वाभाविक स्नेह-शीलता में। एक मुक्का तानकर सामने आता है और दूसरा मिलने के लिए प्यार का, शान्ति तथा मन्त्री का हाथ बढ़ाता है।

आखिर जीवन-धर्म क्या है? सब के प्रति मंगल भावना, शुभ कामना। सबके सुख में सुखबुद्धि और दुःख में दुःखबुद्धि। समता-योग की, सर्वोदय की इस विराट एवं पावन भावना को ‘धर्म’ के नाम से संबोधित किया गया है। अहिंसा, सयम एवं तपमूलक मंगलधर्म के पालन से ही विश्वकल्याण सम्भवित है।

सभी धर्म केवल मानव-मानव के बीच ही नहीं, समग्र विश्व प्राणियों के प्रति स्नेह-सद्भाव, मैत्रीभाव, गुणिजनों के प्रति प्रमोदभाव, दुःखी प्राणियों के प्रति करुणाभाव एवं दुश्मनों के प्रति माध्यस्थभाव स्थापित करने के लिए हैं। जो धर्म रंगभेद, जातिभेद, वर्णभेद या क्षेत्रभेद को लेकर मानव-मानव के बीच दरार डालते हैं, तिरस्कार, नफरत पैदा करते हैं वे वास्तव में धर्म ही नहीं हैं, ये तो केवल धर्मभ्रम हैं। मनुष्य धर्म का इसलिए पालन करता है कि वह सच्चे अर्थ में ‘मानव’ बने। मानवता ही धर्म की

आधारशिला है। जहाँ मानवता एवं सर्वोदय की भावना नहीं वहाँ ‘धर्मत्व’ नहीं। जब मानवता का जीवन में साक्षात्कार हो जाता है तब प्रत्येक मानव का यह ध्येय मन्त्र बन जाता है कि—‘मैं सर्वप्रथम मानव हूँ। मैं अपना मानव धर्म समझूँ और मानव-समाज के कल्याण के लिए जीऊँ’—यह मेरा पहला कर्तव्य है क्योंकि सभी धर्म महान् हैं लेकिन मानवधर्म उससे भी महान्तम है। जब मानवधर्म का जीवन में साक्षात्कार हो जाता है तब अपने माने हुए राष्ट्र, समाज व धर्म के क्षुद्र सीमा-बधन टूट जाते हैं और ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ की विराट भावना स्वतः पैदा हो जाती है। यह महान् मानवधर्म इतना सीधा-सादा है कि उसे एक ही वाक्य ‘आत्मवत् सर्वभूतेषु’ में प्रकट कर सकत है।

भ० महावीर समता, शान्ति, श्रमशीलता को अपना जीवन ध्येय बनाकर ‘श्रमण’ बन थ और उनका श्रमण-संस्कृति का मूलमन्त्र भी सह-अस्तित्व एवं विश्व शांति था।

आज से करीबन ढाई हजार वर्ष पूर्व मानवता एवं समानता के प्रखर स्वरवाहक, अहिंसक समाज-क्रान्ति के अग्रदूत महामानव महावीर ने आध्यात्मिकता के आधार पर अहिंसा, अनेकान्त एवं अपरिग्रह द्वारा “जीओ और जीने दो” का जीवन-सन्देश दिया था। महामानव महावीर ने मानवधर्म का स्वरूप बतलाते हुए स्पष्ट उद्घोषणा की थी—‘धम्मो मंगलमुक्खिट्ठं अहिंसा, संजमो, तथो।’ जो धर्म अहिंसा, संयम एवं तपःप्रधान होता है वह विश्वकल्याणकारी-मंगलमय ही होता है। उनके समग्र जीवन एवं उपदेश का सार आचार में सम्पूर्ण अहिंसा एवं विचार में अनेकान्तवाद था। अहिंसा द्वारा विश्वशान्ति और अनेकान्त द्वारा विश्वमैत्री का मूलमन्त्र दिया था। भ० महावीर ने जीवन की समता एवं शान्ति के लिए अहिंसा के तीन रूप बताये हैं :—समानता, प्रेम, और सेवा।

समानता

प्रत्येक प्राणी को आत्मनुत्पन्न समझो यही सामाजिक भावना का मूलाधार है। उनका यह उद्देश्य था कि—

सच्चे पाणा पियाउया, सुहसाया, दुक्ख-यड्कूला।

अप्पियवहा, पियजीवणो, जीविउं कामा।

सर्व्वेसि जीविणं पियं, नाइवाएज्ज कंचणं ।

—आचारांग १-२-३

तुमं सि नाम तं चेव जं हंतव्वं ति मन्नसि ।

तुमं सि नाम तं चेव जं अज्जावेदव्वं ति मन्नसि ।

तुमं सि नाम तं चेव जं परियावेयव्वं ति मन्नसि ।

—आचारांग १-५-५

‘सभी प्राणियों को अपनी जिन्दगी प्यारी है । सबको सुख अच्छा लगता है और दुःख बुरा । वध सबको अप्रिय है और जीवन प्रिय । सब प्राणी जीना चाहते हैं । कुछ भी हो, सबको जीवन प्रिय है । सभी सुख-शान्ति चाहते हैं, अतः किसी भी प्राणी की हिंसा न करो ।’ क्योंकि

‘जिसे तू मारना चाहता है, वह तू ही है ।

जिसे तू शासित करना चाहता है, वह तू ही है ।

जिसे तू परित्याप देना चाहता है, वह तू ही है ।’

प्रेम—

जो व्यक्ति निकट परिचय में आते हैं उसके साथ विग्रह और विरोध मत करो । प्रत्येक व्यक्ति को अपना बन्धु समझो और उसके प्रति मैत्रीभावना का—विश्व-वात्सल्य का विकास करो—मिली मे सब्ब भूएसु सबके प्रति मेरा मैत्रीभाव है—यह प्रेम का सन्देश है ।

सेवा—

सेवा का तीसरा उदघोष सामाजिक सम्बन्धों की मधुरता एवं आनन्द का मूल स्रोत है । जहाँ दो व्यक्तियों में परस्पर सहयोग नहीं, वहाँ सामाजिक सम्बन्ध कितने दिन टिकेंगे ! सेवा के क्षेत्र में महावीर ने जो सबसे बड़ी बात कही वह यह थी कि—‘मेरी उपासना से भी अधिक महान् है किसी वृद्ध, रुग्ण और असहाय मनुष्य एवं प्राणी की सेवा । सेवा से व्यक्ति साधना के उच्चतम पद-तथैक-रत्व को भी प्राप्त कर सकता है ।’

—अहिंसा की यह त्रिवेणी अहंकार की कलुषता को धोती है, प्रेम और मैत्री की मधुरता सरसाती है और सेवा-सहयोग को उर्वर बनाकर सर्वतोमुखी विश्वकल्याण की भावना पैदा करती है । वास्तव में ‘अहिंसा’ जीवन-संस्कृति का प्राण है । मानवीय चिन्तन का नवनीत पैदा करती है । समता और मानवता मूलाधार है । ज्ञानी के ज्ञान का सार है । वैर से वैर शान्त नहीं होता है अपितु

वैरभाव का शमन करने से ही मैत्री भावना पैदा होती है । वास्तव में सर्वभूत हितकारी अहिंसा भगवती है । इसलिए अहिंसा परम ‘ब्रह्म’ रूप कही गई है ।

यदि विश्व के नागरिक महावीर द्वारा प्ररूपित अहिंसा को जीवन में उतारें तो विषमता समता के रूप में परिवर्तित हो जाय और विश्वशांति स्थापित हो जाय ।

महावीर की जो दूसरी मौलिक देन है वह ‘अनेकान्त-दृष्टि’ है । अनेकान्त दृष्टि या स्याद्वाद कथनशैली भी वैचारिक अहिंसा की ही एक प्रणाली है । सहिष्णुता-समन्वय दर्शिता एवं उदारता अनेकान्त का प्रगट स्वरूप पारस्परिक विवादों को मिटाकर विश्वमैत्री स्थापित करने की एक व्यावहारिक प्रक्रिया है । “जो सत्य है वही मेरा है और दूसरे की सच्ची बात भी स्वीकार्य सही हो सकती है”—यदि इस अनेकान्त की जीवन-दृष्टि को अपनाई जाय तो विश्व के सभी वैचारिक द्वन्द्व ही समाप्त हो सकते हैं । अनाग्रहवृत्ति और मध्यस्थ बुद्धि का समन्वय ही ‘अनेकान्त या स्याद्वाद’ है । यदि विचारों के समन्वय एवं पारस्परिक सहयोग द्वारा आपस के झगड़े को निपटाने के लिए अनेकान्त सिद्धान्त को अपनाया गया तो विश्वमैत्री स्थापित करने में यह महामूल्यवान् योगदान दे सकता है । वास्तव में विचार वायु के रोग से पीड़ित मानव-समाज को आरोग्य प्रदान करने वाली यह एक अमोघ औषध है । यदि स्याद्वाद-अनेकान्त दृष्टि का सामाजिक एवं राजकीय उल-भ्रान्तों को सुलभाने में उपयोग किया जाय तो विश्व का तनावपूर्ण वातावरण ही समाप्त हो जाय और उसके स्थान पर मैत्री और शान्ति की स्थिति पैदा हो जाय ।

भ० महावीर के जीवन का तीसरा प्रखर स्वर है—अपग्रह । आसक्ति ही जीवन की विडम्बना का मूल है । आज मानव-समाज स्वार्थ, आशा और तृष्णा के अन्दर इस प्रकार उलभ रहा है कि वह कर्तव्य का भान ही भूल गया है । यही कारण है कि एक ओर धन के अंधार लग रहे हैं और दूसरी ओर भूखमरी और गरीबी से मानव छटपटा रहा है ।

समाज की दुःख-दरिद्रता की जड़ सामाजिक विषमता (Disparity) ही है । इस विषमता को दूर करने के लिए समाज के धनाढ्य एवं श्रीमंत वर्ग को महावीर ने

सर्वप्रथम यही उपदेश दिया था कि—“अपनी इच्छाओं को नियन्त्रित करो। भोग की लालसाओं को सीमित करो। अपार सम्पत्ति और अगणित दास आदि जो भी तुम्हारे अधिकार में केन्द्रित हैं, उन्हें मुक्त करो, उनका विसर्जन करो अथवा उनका उचित परिमाण करो।”

गरीबी स्वयं में कोई समस्या नहीं, किन्तु अमीरी ने समस्या बना दिया है। गड़ढा स्वयं में कोई बहुत बड़ी चीज नहीं किन्तु पहाड़ों की असीम ऊँचाईयों ने इस घरती पर जगह-जगह गड़ढे पैदा कर दिये हैं। पहाड़ टूटेंगे तो गड़ढे अपने आप भर जायेंगे, सम्पत्ति का विसर्जन होगा तो गरीबी अपने आप दूर हो जायेगी।

संग्रह की अग्नि भोगेच्छा के पवन से प्रज्ज्वलित होती है। भ० महावीर ने अपरिग्रह को दो रूपों में अभिव्यक्ति दी—वस्तु का परिमाण और भोगेच्छा पर नियन्त्रण। व्यक्ति की भोगेच्छा जब सीमित हो जाती है तो वह विश्व के असीम साधनों को अपने पास बंदोर कर रखने की चेष्टा नहीं करता। जितनी आवश्यकता उतना ही संग्रह। आवश्यकता रूप सयम की आस्था को सुदृढ़ करने के लिए महावीर ने एक बार कहा कि—जो आवश्यकता से अधिक संग्रह करता है—वह स्तेन-कर्म (चोरी) का दोष करता है। अर्थात् आवश्यकता से अधिक संग्रह करने वाला समाज की चोरी करता है। महावीर के इस अपरिग्रह-दर्शन ने समाज-शुद्धि की प्रक्रिया को बल प्रदान किया। समाज में परिग्रह की जगह त्याग की प्रतिष्ठा हुई। जनता की निष्ठा भोग से हटी, त्याग की ओर बढ़ी। त्याग की निष्ठा एवं तप की प्रतिष्ठा ही समाज की पवित्रता और श्रेष्ठता का प्रमाण है।

मार्क्स एवं लेनिन ने समाज के सशोधन की अपेक्षा ऐसे समाज की रचना पर बल दिया है जिसमें बुराईयाँ ही पैदा न हों। बुराई को जन्म लेने का अवसर ही न मिले। समाज-व्यवस्था के नाते मार्क्स एवं लेनिन की यह सैद्धान्तिक प्रक्रिया ठीक है परन्तु वह मानवसमाज पर ऊपर से बलात् नहीं थोपी जानी चाहिए, स्वयं उभरनी चाहिए। मानवता के विकास में मार्क्स, टोल्स्टॉय, तथा लेनिन का महत्वपूर्ण योगदान इतिहास में स्वर्णाक्षरों से अंकित है।

यदि महावीर के अहिंसा, अनेकान्त एवं अपरिग्रह पर नवीन दृष्टि से चिंतन किया जाय, तो इस समस्या का भारत की ओर से सांस्कृतिक समाधान आज हमें मिल सकता है। महावीर ने समाज-रचना की अनेक तात्कालिक एवं चिरकालिक समस्याओं का समाधान जिस अहिंसा और अपरिग्रह की व्यापक प्रक्रिया के द्वारा किया उसके मूल में मानव-चेतना की आन्तरिक शुद्धि एवं पवित्रता पर बल दिया गया था। अतः वह मानव के अन्तर्द्वंद्वों का क्षणिक समाधान नहीं, शाश्वत समाधान था। आज भी इसी प्रक्रिया के बल पर हम समाज को घन की गुलामी से मुक्त करके अपरिग्रह की प्रतिष्ठा कर सकते हैं।

इस प्रकार महामानव महावीर ने हिंसा-शक्ति का सशोधन अहिंसा और मैत्री की प्रक्रिया से, घन की कलुपता का परिमार्जन अपरिग्रह तथा संयम से एवं बौद्धिक विग्रह का समाधान अनेकान्त एवं स्याद्वाद दृष्टि से करने का स्पष्ट मार्गदर्शन किया। अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्त की उपनिधि महावीर के धर्म की महान् उपलब्धि है।

भारतीय संस्कृति प्रारम्भ से ही विश्वशान्ति के लिए सह अस्तित्व एवं पारस्परिक सहयोग की उद्घोषणा करती आई है। स्वतन्त्र भारत की राजनीति का आधार भी शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व एवं पारस्परिक सहयोग रहा है। भारत के प्राचीन ऋषियों ने, भ० महावीर एवं महात्मा बुद्ध ने इसी का जीवन संदेश दिया, हमारे राष्ट्र पिता महात्मा गांधी ने इसी सिद्धान्त को जीवन में प्रगट कर विश्व को मार्गदर्शन किया। भारत के स्व० प्रधान मंत्री प० जवाहरलाल नेहरू, श्री लालबहादुर शास्त्री और वर्तमान प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने भी इसी सह अस्तित्व एवं पारस्परिक सहयोग की राजनीति द्वारा विश्वशान्ति के मार्ग को प्रशस्त किया है और कर रहे हैं। भारत और रूस—इस विश्व की सबसे महान शक्तियाँ आज सह-अस्तित्व सिद्धान्त के आधार पर परस्पर अभिन्न मित्र बने हुए हैं। इतना ही नहीं समग्र विश्व में शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व एवं पारस्परिक सहयोग द्वारा शान्ति एवं मैत्री स्थापित करने के लिए उत्सुक एवं प्रयत्नशील हैं। आज का सम्मेलन भी

विश्वशान्ति व मैत्री को खिरस्थायी बनाने की ओर एक ठोस कदम है।

यदि हम वास्तव में राष्ट्र-राष्ट्र के बीच अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पारस्परिक सहयोग एवं सहअस्तित्व द्वारा विश्व-शान्ति स्थापित करना चाहते हैं तो निम्नलिखित शान्ति-सूत्रों को मूर्तस्वरूप देना आवश्यक होगा :—

१. अखण्डता :

एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र की सीमा का यथासंभव अतिक्रमण न करे। उसकी स्वतन्त्रता एवं प्रभुसत्ता पर आक्रमण न करे। उस पर इस प्रकार का दबाव न डाले, जिससे उसकी अखण्डता पर संकट उपस्थित हो।

२. प्रभुसत्ता :

प्रत्येक राष्ट्र की अपनी प्रभुसत्ता है। उसकी इच्छा के विरुद्ध स्वतन्त्रता में किसी प्रकार की बाधा-बाहर से नहीं आनी चाहिए।

३. अहस्तक्षेप :

किसी देश के आन्तरिक या बाह्य सम्बन्धों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए।

४. सह-अस्तित्व :

अपने से भिन्न सिद्धान्तों और मान्यताओं के कारण किसी देश का अस्तित्व समाप्त करके उस पर अपने सिद्धान्त और व्यवस्था लादने का प्रयत्न न किया जाय। सबको साथ जीने का, सम्मानपूर्वक जीवित रहने का अधिकार है।

५. पारस्परिक सहयोग :

एक दूसरे के राष्ट्र-विकास में सहयोग-सहकार की भावना रखें। एक के विकास में सबका विकास और एक के विनाश में सबका विनाश है।

ये पांच शान्ति-सूत्र हैं जो आज से सहस्रों वर्ष पूर्व भारतीय संस्कृति, श्रमण-संस्कृति एवं गणतन्त्र प्रणाली के प्रयोग-व्यवहार में लाए गए हैं और शान्ति और मैत्री स्थापित करने में सफल सिद्ध हुए हैं।

यदि उक्त पांच शान्ति-सूत्रों को सह-अस्तित्व में अग्र मान लिए जाते हैं तो विश्व की सभी उलझी हुई गुत्थियाँ सहज सुलभ सकती हैं।

आज इन पाँच शान्ति-सूत्रों को पुनः प्रयोग व्यवहार में लाना जरूरी है। समय की भी यही मांग है।

समग्र विश्व में शान्ति एवं मैत्रीमय वातावरण पैदा करने के लिए निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किए जाएं :—

(१) शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व एवं अन्तर्राष्ट्रीय पारस्परिक सहयोग स्थापित करने के लिए एक 'विश्व-नागरिक-संघ' का निर्माण किया जाव जो विश्व की जनता को प्रेमसूत्र से बांध सके और विश्वात्मैक्य के आदर्श को मूर्त कर सके। विश्व के प्रतिष्ठित व्यक्तियों को हर जगह जाने की स्वतन्त्रता हो। पार-पत्र का सीमा-बन्धन न हो।

(२) राजनैतिक एकता के लिए सयुक्त-राष्ट्र-संघ एवं सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक एकता लिए 'युनेस्को' जैसी महान् संस्थाएं स्थापित की गई हैं वैसे ही विश्व में शांति, मैत्री, सहृदयता, मानवता का विशुद्ध वातावरण पैदा करने के लिए एक विश्वधर्म-संसद् जैसी आध्यात्मिक संस्था स्थापित हो। इस संस्था की विश्व भर में शाखाएं हों और उसका एक प्रमुख केन्द्र भारत में रहे। इस संस्था में सभी धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन की व्यवस्था हो जिससे विश्व में सर्व धर्म-समन्वय स्थापित करने में प्रेरणाबल मिल सके।

(३) विश्व में 'अभय' का वातावरण पैदा करने के लिए निःशस्त्रीकरण के सिद्धान्त को मान्यता दी जाय एवं अणु-अस्त्र के निर्माण पर नियंत्रण करके आक्रमण प्रत्याक्रमण की भावना को ही समाप्त की जाय। आण्विक शक्तियों का रचनात्मक कार्यों में सदुपयोग किया जाय।

(४) अहिंसा की भावना को विश्व-व्यापक बनाने के लिए प्रमुख स्थानों पर 'अहिंसा-शोधपीठ' स्थापित किये जाय। जहाँ पर मांसाहार के स्थान पर सात्विक शाकाहार का प्रचार करने के लिए अहिंसा-भावना के विस्तार के साधनों पर अनुसंधान किया जाय। मानव-मानव के बीच जैसी सहृदयता है वैसी सहृदयता प्राणीमात्र—मूक पशु-पक्षी तक विस्तीर्ण हो।

साधियो !

प्रत्येक राष्ट्र, जाति एवं व्यक्ति सभी शान्ति तथा मैत्री चाहते हैं फिर भी क्यों हो नहीं पाती ? इसका मूल कारण यही है शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व एवं अन्तर्राष्ट्रीय पारस्परिक सहयोग की भावना के प्रति बड़े बड़े राष्ट्रों के अधिनायकों के हृदय में दृढ़ श्रद्धा नहीं है ।

यदि हम वास्तव में एक विश्वराष्ट्र, एक विश्वजाति एवं विश्वनागरिक की कल्पना को मूर्त स्वरूप देना चाहते हैं तो सर्वप्रथम सभी राष्ट्रों में सहअस्तित्व एवं पारस्परिक सहयोग की भावना में दृढ़ श्रद्धा पैदा करनी होगी । सम्यग्दृष्टि—सच्ची श्रद्धा नहीं होने के कारण ही बड़े-बड़े राष्ट्रों के अधिनायक स्वीकृत सिद्धान्तों से भटक जाते हैं ।

महामानव महावीर ने स्वीकृत सिद्धान्तों पर दृढ़ रहने के लिए चार अंतरंग साधन बताये हैं जो साध्य की सिद्धि में उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं :—

- (१) स्वीकृत सिद्धान्त में निःशंकित रहे ।
- (२) स्वीकृत सिद्धान्त के अतिरिक्त प्रलोभन में पड़ कर दूसरे सिद्धान्तों की कांक्षा न करें ।
- (३) स्वीकृत सिद्धान्त में फलाकांक्षा नहीं रखते हुए, दृढ़ता रखें ।
- (४) स्वीकृत सिद्धान्त के अनुपालन में अमूढ दृष्टि रखे अर्थात् पूर्वाग्रहों को, परम्परागत रूढ़ि को एक बाजू रखकर सत्यदृष्टि एवं सत्याग्रह को ही बल दें ।

यदि स्वीकृत सिद्धान्त के परिपालन में निःशंका, निःकांक्षा, निर्विचिकित्सा एवं अमूढदृष्टि आ जाती है तो विश्वास रखें कि सहअस्तित्व एवं पारस्परिक सहयोग का शान्ति-पथ अवश्य प्रशस्त होकर ही रहेगा ।

इसी प्रकार जो-जो राष्ट्र सहअस्तित्व एवं सहयोग के शान्ति-प्रस्तावों को स्वीकार कर लेते हैं उन्हें निम्नानुसार सहयोग देकर सहअस्तित्व का प्रत्यक्ष परिचय देना चाहिए अर्थात् उन छोटे-बड़े राष्ट्रों को—

- (१) प्रोत्साहन देना (उपबृंहण), सहयोग देना ।
- (२) स्थिरीकरण—जो राष्ट्र विचलित हो उठते हैं उन्हें सहकार देकर स्थिर करना ।

(३) वात्सल्य—स्नेह-सद्भाव द्वारा राष्ट्र-विकास में सहयोग देना एवं उनके प्रति विश्व-वात्सल्य का परिचय देना ।

(४) प्रभावना—सहअस्तित्व एवं सहयोग के सिद्धान्तों को यशस्वी एवं प्रभावशाली बनाने के लिए सयुक्त प्रयत्न करना ।

यदि आज इस सम्मेलन में हम लोगों ने सहअस्तित्व एवं सहयोग की भावना को मूर्त स्वरूप देने का निष्ठापूर्वक निश्चय कर लिया तो विश्व में 'सर्वोदय' का सूर्योदय अवश्य होगा । इस सर्वोदय की किरणें पाकर सारा विश्व धन्य धन्य और कृतकृत्य हो जायेगा ।

युग दृष्टा भ० महावीर ने शोषण, दोहन और उत्पीड़न पर आधारित आपाधापी का, अपरिग्रह की मौलिक व्याख्या प्रस्तुत कर, अन्त कर दिया था । यदि आज महावीर का 'अ'—मूलाक्षर अर्थात्, अहिंसा, अनेकान्त, अभय, अपरिग्रह, अस्वाद, अद्रोह अदि अकारादि मूलाक्षर-सिद्धान्त मानवमात्र की आत्मा का संगीत बन जाए तो राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय तनाव सभी द्वन्द समाप्त हो सकने हैं । अहिंसा और अनेकान्त यही भगवान् महावीर के जीवन का भाष्य है और यही सर्वोदय के मूलमन्त्र है ।

‘सर्वोदयं तीर्थमिदं तदैव ।’

भगवान् महावीर के तीर्थ को 'सर्वोदयतीर्थ' ही कहा गया है—अर्थात् जहाँ सर्वोदय—सबका भला करने की भावना—अन्तर्निहित हो वही महावीर का 'शासनतीर्थ' है ।

मुझे इस बात का गौरव है कि मेरा भारत देश और मेरा जैनधर्म सहअस्तित्व एवं अन्तर्राष्ट्रीय पारस्परिक सहयोग द्वारा विश्वशांति में विश्वास ही नहीं करता अपितु सहस्राब्दों से विश्वशांति एवं विश्वमैत्री का जीवन-संदेश देने में अग्रसर रहा है । आज हमारे मित्र राष्ट्र के धर्मनायकों ने सहअस्तित्व एवं सहयोग द्वारा विश्वशांति स्थापित करने की दिशा में जो ठोस कदम उठाकर धर्मनीति का परिचय दिया है इसके लिए हम सम्मेलन के आयोजक धन्यवादाहं हैं ।

अन्त में हम सबकी यही अन्तर्भावना हो कि—

सर्वे सुखिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः ।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखं भाग्भवेत् ॥ ●

लश्कर में मेरे पांच दिन

परमानन्द शास्त्री

मैं लश्कर-ग्वालियर में जून महीने के शुरू में वहाँ की प्रगतिशील संस्था नवयुक्त मण्डल के निमन्त्रण पर गया था। सेठ मिश्रीलाल जी पाटनी के पास ठहरा, वे बड़े भद्र परिणामी हैं, और लगन से काम करते हैं। उनकी धार्मिक लगन सराहनीय है। वे नियम से नये मन्दिर में प्रति दिन पूजन करते हैं। संस्था द्वारा निर्मापित 'ग्वालियर निर्देशिका' भी देखी, जिसे उन्होंने बड़े भारी परिश्रम से तैयार किया है, उसके लिए कुछ उपयोगी सामग्री बतलाई, और कुछ सुझाव दिये। नवयुवकों में स्वाध्याय करने की प्रेरणा की। मुझे लगा कि नवयुवक यदि इस तरह से परिश्रम करते रहे तो वहाँ की समाज की अच्छी प्रगति हो सकती है। ग्वालियर निर्देशिका से ज्ञात होता है कि ग्वालियर में इस समय जैनियों की जनसंख्या सात हजार है। लश्कर में २२-२३ जैनमन्दिर हैं।

ग्वालियर का भट्टारकीय शास्त्र भण्डार अस्से से बन्द पड़ा है। वहाँ की समाज को चाहिए कि शास्त्र भण्डार को सम्हालने का यत्न करे उसे खुलवाए और उसकी विधिवत सूची बनाकर प्रकाशित करें, जिससे जनता का अज्ञात कृतियों का पता चल सके।

मैंने ग्वालियर और लश्कर के दो-तीन मन्दिरों के मूर्तिलेख लिए हैं और किले में अग्रवालों द्वारा उत्कीर्णित मूर्तियों का भी अवलोकन किया, वे विशाल मूर्तियाँ जो खडित की गई हैं उनकी मरम्मत होनी चाहिए। मूर्तियों की खुदाई का कार्य डूंगरसिंह और कीर्तिसिंह के राज्य काल में ३३ वर्ष पर्यन्त चला। किले में छोटी-बड़ी एक सहस्र से अधिक मूर्तियाँ उत्कीर्ण की गई हैं। मूर्तियों का पाषाण भरने लगा है, कई लेख भर गए हैं, जो पढ़ने में नहीं आते। यदि उनकी मरम्मत न हुई तो इस महत्वपूर्ण सामग्री का विनाश अवश्यम्भावी है।

ग्वालियर का मूजियम भी देखा, उसमें दो लेख

दिगम्बर सम्प्रदाय के हैं। एक लेख सं० १३१६ का भीमपुर (नरवर) का है, जो ६६ पद्यों में उत्कीर्ण है और जिसमें यज्वपाल के सामन्त जैत्रसिंह द्वारा जैन मन्दिर बनवाने और पौरपट्टान्वयी नागदेव द्वारा प्रतिष्ठा कराने का उल्लेख है। वह लेख भी मूल शिला परसे नोट करके लाया हूँ उसे अनेकान्त के अगले अंकमें दिया जावेगा। दूसरी एक प्रशस्ति है जो एक शिला पर उत्कीर्ण है उसे नोट करने का समय नहीं मिला। इस अंकमें कुछ मूर्ति लेख दिये जाते हैं। और शेष अगले अंक में।

कुछ मूर्ति-यन्त्र-लेख नयामन्दिर लश्कर

१. पार्श्वनाथ मूल नायक पाषाण पीला पद्मासन ढाई फुट, ऊँची-चौड़ाई सवा दो फुट। सं० १५४० वर्षे भट्टारक जिनचन्द्र राजाशिवसिंह जीवराज पापडीवाल प्रतिष्ठा कारापिता।

२ चौबीसी धातु ऊँ० १। फुट चौ. ६ इंच। प्रतिष्ठा सं० १४७६ वर्षे वैशाख सुदी ३ शुक्रवासरें श्रीगणपतिदेव-राज्ये श्री मूलसधे...भट्टारक शुभचन्द्रदेवा मंडलाचार्य पं० भगवत तत्पुत्र संघवी खेमा भार्या खेमादे जिन-बिम्ब प्रतिष्ठा कारापितम्।

३ चौबीसी धातु साइज १ फुट ऊँची ६ इंच चौड़ी।

सं० १६४७ आसाढ़ सुदी ५ प्रतिष्ठा गढ़ नरवर श्री काष्ठासधे भट्टारक श्री शुभचन्द्रदेवा तत्पट्टे भट्टारक श्री यशःकीर्ति आम्नाये श्रीमालजार्ति वसुदेव भार्या गोदेवी —तत्भार्या डरुको तथा पुत्र चतुरघा रत्रिचन्द्र तत्भार्या रतोदेवी तत्पुत्र टोडरमल, महेशदास तत्र टोडरमल देवमती तत्पुत्री खड्गसेन ब्रह्म गाई सेनऊ महेशदास भार्या कपूरदेवी एतेषा आम्नाये मध्ये चतुरघा हेमदासी नित्यं प्रणमति।

चौसठि ऋद्धि यन्त्र

सं० १७२२ वर्षे अगहन सुदी १ सोमे श्री मूलसधे बलात्कारगणे सरस्वती गच्छे कुदकुदाचार्यान्वये श्री भ०

जगत्भूषण देवास्त तत्पट्टे भ० श्री विश्वभूषण देवास्तदा-
म्नाए इक्ष्वाकुवंशे गोलसिधारान्वये सं० पोर्षे भार्या
केसरिदे पुत्र वैकुण्ठ भार्या विशो—देवसेन भा० धर्मावि-
तारी प्रताप भा० श्यामा वलिराम भा० घरमदे एतेषां
मध्ये सं० पोर्षे तेनेदं यन्त्र प्रतिष्ठा कारापितम् ।

सन्यक् चारित्र यन्त्र

सं० १६६४ वर्षे वैशाख...श्री मूलसंघे बलात्कारगणे
भ० श्री ज्ञानभूषणदेवास्तत्पट्टे भ० श्री जगत्भूषणदेवा-
स्तदाम्नाये गोलाराडान्वये सोहान गोत्रे संघाधिप रामचंद्र
स्तदभार्या जया तयोः पुत्रास्त्रयः श्री लाला खरगसेन, पर-
शुराम, अग्ररमल तत्र खरगसेन भार्या परमलदेवी तयो
पुत्राः ५ मकरन्द, कन्हारदास श्री चिन्तामणि पयग श्याम-
दास, मकरंद भार्या राममति पुत्र ३ नामसाहि, संमेदी
विहारी, कन्हार भा० कंचुनदे तत्पुत्र प्रताप किशनदास
भिल्लानी प्रताप भा० ससजादी पु० चन्द्रमणि भा० चंपा
तत्पुत्र ३ भगवत, जीवन, सबलसिंधु पयागलता तद्भार्या
कमल के पुत्र ३ गगाराम, भोगाजीत, श्यामदास भार्या
नागा तत्पुत्र गगदेव जयनाम तत्र एतेषां मध्ये श्यामदास
नित्यं प्रणमति ।

थोबीसी धातु, साइज ६ इंच ऊंची ५ इंच चौड़ी

सं० १५५२ वर्षे ज्येष्ठ सुदि २ सोमे श्री मूलसंघे
बलात्कार गणे सरस्वती गच्छे भ० श्री जिनचन्द्रदेवा भ०
विद्यानन्दिदेवा श्री सा० अससार भा० संतसिरो पुत्र २
ज्येष्ठ पुत्र घरमू भा० सत्तुणा लघुभ्राता.....।

अजितनाथ—पाणन सफेद ऊँचाई सवाफुट, चौड़ाई

१४ इंच ।

सं० १५२६ फाल्गुन सुदि १० मूलसंघे विद्यानन्दि
देवा तद्दीक्षिता अजिका लग्न श्री.....।

मन्दिर फालके का बाजार लश्कर

नेमिनाथ, सं० १५०५ वर्षे वैशाख सुदि ७ बुधे श्री
मूलसंघे भट्टारक श्री जिनचन्द्र देवाः लंबकुचुकान्वये साधु
श्रीपति भार्या सुशीला तयोः पुत्राः [षट्] दामोदर
कमलसिंह उदेसिंह, यतीपाल, दिवाजित, महाजित तेषां
मध्ये सा० महीपाल भार्या चूंदो द्वितीया भार्या सपूता,
तयोः पुत्रा कुडकाले.....होला तयोपुत्र नेमिदास, लउक
भार्या कोडो कमलसी सकला ते नित्यं प्रणमति सूत्रधारि
जाखा ।

इस नए मन्दिरमें अनेक ग्रंथ है । जिन्हें मिश्रीलाल
जी पाटनी प्रदर्शनी में दिखलाते हैं । कुछ सिक्कों का भी
संकलन है, पर वे अधिक पुराने और महत्वपूर्ण नहीं हैं ।
शास्त्र भंडार में कुछ खंडित और कुछ अखंडित शास्त्र हैं ।
कुछ गुच्छक भी हैं । इन सबकी सूची तो है किन्तु वह व्यव-
स्थित और प्रामाणिक नहीं है । उनमें कर्ता, टीकाकार,
भाषा, रचना समय और लेखन काल, विषय, पत्र सख्या
और भंडार का नाम अवश्य रहना चाहिए । यदि अन्त में
ग्रंथ लिपि की प्रशस्ति हो तो वह सकलित होनी आव-
श्यक है । पाटनीजी इस मन्दिर में रोज पूजा करते हैं और
मन्दिर की सार-संभाल भी रखते ही हैं, उन्हें धर्मसे विशेष
लगन है, सरलस्वभावी हैं । आशा है वर्धमान नवयुवक
मण्डल लश्कर के तमाम मन्दिरो के मूर्ति लेखों और शास्त्र
भंडारों को भी व्यवस्थित करने का यत्न करेगा ।

अनेकान्त की पुरानी फाइलें

अनेकान्त की कुछ पुरानी फाइलें अवशिष्ट हैं । जिनमें इतिहास पुरातत्त्व, दर्शन और साहित्य के सम्बन्ध में
खोजपूर्ण लेख लिखे गये हैं । जो पठनीय तथा संग्रहीय हैं । फाइलें अनेकान्त के लागत मूल्य पर ही दी जावेगी ।
पोष्टेज स्वर्ण अलग होगा ।

फाइलें वर्ष ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९ २० तथा २१ की हैं । अगर आप ने
अभी तक नहीं मंगाई है तो शीघ्र मंगवा लें । ये फाइलें अनुसंधाताओं, और थोसिस लिखने वाले विद्वानों के लिए
बहुत उपयोगी हैं । प्रतियां थोड़ी हैं, अतः जल्दी करें ।

मैनेजर 'अनेकान्त'

धीर सेवामन्दिर, २१ दरितागंज, दिल्ली

साहित्य-समीक्षा

१. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास—भाग ४ लेखक डा० मोहनलालजी मेहता, प्रो० हीरा लालजी कापड़िया। प्रकाशक पार्श्वनाथ जैन शोध संस्थान जैनाश्रम हिन्दू यूनिवर्सिटी वाराणसी, आकार डिमाई पृष्ठ संस्था ४०० मूल्य १५ रुपया।

प्रस्तुत ग्रंथ में छह अधिकार हैं, कर्म साहित्य, आगमिक प्रकरण, धर्मोपदेश, योग और अध्यात्म, अनंगार और सांगार का आचार, और विधि-विधान, कल्प मंत्र-तत्र पर्व और तीर्थ।

प्रथम अधिकार में कर्मसाहित्य का परिचय कराया गया है, जिससे जैन कर्मसिद्धान्त का परिचय सहज ही मिल जाता है दिगम्बरों के कर्मसाहित्य का और खट्खण्डागम कसायपाहुड का परिचय ८० पृष्ठों में संक्षिप्त रूप में कराया गया है। डा० मेहता अच्छे सुलेखक हैं। उनकी लेखनी सद्भावपूर्ण, स्पष्ट और सरल होती है। विषय का थोड़े शब्दों में परिचय कराना यह उनकी विशेषता है। कर्म साहित्य का परिचय कराते हुए दिगम्बरीय कर्मसाहित्य की तालिका भी दी है। दिगम्बरीय कर्मसाहित्य के गोम्मटसार की दो टीकाओं का परिचय सम्भवतः मेहता जी को ज्ञात नहीं हो सका। अन्यथा वे उसका उल्लेख अवश्य ही करते। यद्यपि गोम्मट सार की प्राकृत टीका का परिचय अनेकान्त के वर्ष १४ किरण १ पृ. २६ में मुख्तार साहबने कराया है, जो अजमेरके शास्त्र भंडार में सुरक्षित है। यह टीका अपूर्ण है इसी से वे उनके कर्तव्य के सम्बन्ध में विशेष विचार नहीं कर सके हैं। पर उसके देखने से स्पष्ट बोध होता है कि यह टीका शक सं० १०१६ वि० सं० ११५१ में रचित गिरी कीर्ति की गोम्मट पंजिका से पूर्ववर्ती है; क्योंकि कुछ वाक्यों की दोनों में समानता भी देखी जाती है। पंजिका का उल्लेख आ० अभयचन्द्र की मन्दप्रबोधिका टीका में निम्न वाक्यों में पाया जाता है :—

“अथवा सम्मूर्च्छन गर्भोपादात्तानाश्रित्य जन्म भव-

तीति गोम्मट पंजिकाकारादीनामभिप्रायः। (गो० जी० म० प्र० टी० गा० ८३ पृ० २०५ बड़ी टीका)

अभयचन्द्र की मन्दप्रबोधिका टीका का रचना काल ईसा की १३वीं शताब्दी का तीसरा चरण (सन् १२७६) है। क्योंकि अभयचन्द्र का स्वर्गवास इसी समय हुआ है। इससे स्पष्ट है कि पंजिका इससे पूर्ववर्ती है। पंजिकाकार गिरिकीर्ति ने उसका रचनाकाल शक संवत् १०१६ (वि० सं० ११५१) बतलाया है, जैसा कि उसकी निम्न गाथा से स्पष्ट है :—

सोलह सहस्र सहस्से गय सककाले पवड्डमाणस्स।

भाव समस्स समत्ता कत्तियणदीसरे एस।

मेहताजी ने डड्डा के संस्कृत पंचसंग्रह का रचना काल वि० की १७वीं शताब्दी लिख दिया है, जो ठीक नहीं है, डड्डा का पंचसंग्रह तो आचार्य भ्रमिमतगति से भी पूर्ववर्ती है। संभवतः उसका समय विक्रम की दशवीं शताब्दी है।

इसके अनन्तर द्बेताम्बर कर्मसाहित्य का परिचय कराया गया है उसके साहित्य की भी तालिका दी हुई है।

दूसरे आगमिक प्रकरण के प्रारम्भ में ग्रंथों का परिचय दिया है उसमें बोधपाहुड की अन्तिम गाथा के आधार पर विद्वान् उन्हें भद्रबाहु का शिष्य मानते हैं। डा० सा० ने उस मान्यता को ठीक नहीं बतलाया, उस पर प्रामाणिक रूप से विचार करना आवश्यक था। डा० सा० ने उस वाक्य को चलती लेखनीसे ही लिख दिया जान पड़ता है। कुन्दकुन्दाचार्य भद्रबाहु के साक्षात् शिष्य भले ही न हों किन्तु वे उनकी परम्परा के शिष्य थे। इससे कोई इंकार नहीं कर सकता। वे उनसे कुछ समय बाद हुए हों यह सम्भव है।

तीसरे धर्मोपदेश प्रकरण में ‘उपदेशमाला’ जैसे ग्रंथों का परिचय कराया गया है और योग तथा अध्यात्म के प्रकरण में दोनों विषयों का अच्छा विवेचन किया गया

है। अनगर और सागर प्रकरण में उभय धर्मों का कथन भी अच्छा दिया है। और अन्तिम प्रकरण विधि-विधान में पूजादिक के अनुष्ठान के साथ प्रतिष्ठा विधि मन्त्र-तन्त्र-विषयक साहित्य का परिचय कराते हुए उनकी कृतियों का संक्षिप्त विवरण दिया है। इस तरह यह ग्रंथ बहुत उपयोगी हो गया है, प्रकाशन साफ और सुथरा है। इसे मगाकर पढ़ना चाहिए। इस सब कार्य के लिए मेहताजी धन्यवाद के पात्र हैं। सचालक समितिका प्रयास भी समा-दरणीय है।

२. ग्वालियर जैन निर्देशिका—प्रधान सम्पादक प्रो. नरेन्द्रलाल जैन एम. कॉम, साहित्यरत्न, सहसम्पादक श्री कपूरचन्द जी वरैया। प्रकाशक वर्द्धमान दि० जैन नव-युवक संघ डीडवाना ओली लस्कर।

प्रस्तुत निर्देशिका २०×३० आठपेजी साइज के १६८ पृष्ठों में मुद्रित है जिसमें ग्वालियर के ७००० हजार जैनियों का परिचय अंकित किया गया है नवयुवक संघ के कार्यकर्त्ताओं ने इस रुक्ष विषय को सरस बनाने के लिए अनेक प्रयत्न किये हैं। यह निर्देशिका दि० श्वेताम्बर स्थानकवासी और तेरापंथी समाजों की है। जिसमें जैनियों द्वारा संस्थापित शिक्षा संस्थाएँ, औषधालय धर्मशालाएँ, पुस्तकालय, वाचनालय, जैन छात्रावास और सभी सांस्कृतिक संस्थाओं का परिचय दिया है। साथ ही ग्वालियर के अतीत के इतिहास पर भी कुछ पृष्ठ लिखे हैं। जिन पर मेरे लेख की स्पष्ट छाप है। जन गणना से यह भी प्रतीत होता है कि ग्वालियर में वर्तमान में खडेलवाल, अग्रवाल परिवार, गोवापूर्व गोलालारे, गोलासिघारे, लेबकचुक, वरैया हूमड़ आदि विविध जातियों का निवास है। १४वीं १५वीं शताब्दी में वहाँ अग्रवालों की सम्पन्नता थी। ग्वालियर किले में उत्कीर्ण सभी मूर्तियाँ झूगर सिंह और कीर्तिसिंह के राज्यकाल में अग्रवालों की प्रेरणा एवं दानशीलता का परिणाम है। दुःख है कि आज वहाँ की समाज उनका जीर्णोद्धार कराने में भी असमर्थ है। आशा है समाज के नवयुवक अपनी पुरातन सांस्कृतिक वस्तुओं की रक्षा करेगी। निर्देशिका में जाति परिचय और मूर्तिलिखों का न होना खटकता है। इस सब कार्य के लिए वर्धमान नवयुवक संघ और प्रेरक मिश्री-

लाल जी पाटनी और केशरीमल जी पाटनी (महामंत्री उक्त संघ) धन्यवाद के पात्र हैं।

३. आदि-मानव (भगवान् ऋषभदेव)—लेखक लाला महेन्द्रसेन जैन, प्रकाशक अग्रवाल दि० समाज दिल्ली।

लेखक ने भगवान् ऋषभदेव का परिचय कराते हुए उनके सिद्धान्तों का सरल भाषा में परिचय कराने का प्रयत्न किया है। पुस्तक की भाषा जहाँ सरल है वहाँ सुबोध भी है। आशा है लेखक महोदय आगे और भी कोई पुस्तक लिखने का कष्ट करेंगे। समाज को आज सरल सुबोध भाषा वाली पुस्तकों की जरूरत है, जिसमें जैन संस्कृति का परिचय निहित हो। लेखक का प्रयास सराहनीय है। पुस्तक लेखक से मगा कर पढ़ना चाहिए।

—परमानन्द शास्त्री

४. जैन तर्कशास्त्र में अनुमान-विचार—(ऐतिहासिक एवं समीक्षात्मक अध्ययन) ले० डॉ० दरबारीलाल जैन कोठिया, प्रकाशक—वीर-सेवा-मन्दिर ट्रस्ट, पृष्ठसंख्या २६६, डिमाई, मूल्य १२ रुपये।

प्रस्तुत ग्रंथ श्री डॉ० दरबारीलाल जी के द्वारा 'पी० एच० डी०' उपाधि के प्राप्त्यर्थ शोध-प्रबन्ध के रूप में लिखा गया था, जिसे काशी विश्वविद्यालय ने स्वीकार कर उन्हें उनकी विद्वत्ता के अनुरूप उक्त उपाधि प्रदान की है। डॉ० कोठिया जी न्यायशास्त्र के माने हुए विद्वान् हैं। उन्होंने जैन न्याय के अतिरिक्त बौद्ध, मीमांसक, सांख्य, नैयायिक, वैशेषिक एवं चार्वाक आदि इतर प्राचीन दर्शनों के भी विविध तर्क ग्रन्थों का गम्भीर अध्ययन किया है। उसी के बल पर वे ऐसे महत्त्वपूर्ण सुन्दर ग्रन्थ के लिखने में पूर्णतया सफल हुए हैं।

प्रकृत ग्रन्थ पाँच अध्यायों और उनके अन्तर्गत अनेक परिच्छेदों में विभक्त है। उनमें से प्रथम अध्याय में यह स्पष्ट किया गया है कि प्राचीन काल में बौद्ध, नैयायिक, वैशेषिक, मीमांसक, सांख्य और जैन परम्परा में इस अनुमान का क्या रूप रहा है और तत्पश्चात् उसमें फिर उत्तरोत्तर किस प्रकार से विकास हुआ है। इसके अतिरिक्त इस अध्याय में अनुमान के स्वरूप, उसके भेद, अवयव और तद्गत दोषों की भी संक्षेप में चर्चा की गई

है। विस्तार से अवयवों और दोषों का विचार आगे चतुर्थ और पंचम अध्याय में किया गया है।

जैसा कि प्रकृत ग्रंथ में विवेचित है (पृ० २५-२६) जैन आगम ग्रंथों में उक्त अनुमान का कुछ विकसित रूपा अनुयोगद्वारा सूत्र में उपलब्ध होता है। यहाँ प्रथमतः (सूत्र १३१) प्रमाण के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव रूप से चार भेद निदिष्ट किये गये हैं। इनमें से अन्तिम भाव प्रमाण का विचार करते हुए उसके भी ये तीन भेद निदिष्ट किये गये हैं—गुणप्रमाण, नयप्रमाण और संख्याप्रमाण। इनमें गुणप्रमाण जीवगुणप्रमाण और अजीवगुणप्रमाण के भेद से दो प्रकारका है। इनमें भी जीवगुणप्रमाण के तीन भेद कहे गये हैं—ज्ञानगुणप्रमाण, दर्शनगुणप्रमाण और चारित्रगुणप्रमाण, ज्ञानगुणप्रमाण भी प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और आगम के भेद से चार प्रकारका है। इस प्रकार प्रसंग प्राप्त अनुमान के विवेचन में वहाँ उसके मूल में पूर्ववत्, शेषवत् और दृष्टसावर्ण्यवत् ये तीन भेद निदिष्ट किये गये हैं। इनके स्वरूप का विचार करते हुए वहाँ उनके यथासम्भव अन्यान्य भेदों का भी उदाहरणपूर्वक उल्लेख किया गया है।

मलधारीय हेमचन्द्र सूरि ने उसकी टीका में इन पूर्ववत् आदि पदों को मनुष्य प्रत्ययान्त माना है। यथा—पूर्ववत् अनुमान के स्वरूप का स्पष्टीकरण करते हुए वे कहते हैं कि पूर्व में उपलब्ध विशिष्ट चिह्न—जैसे क्षत (फोड़ा आदि) व्रण (घाव) और लांछन (स्वस्तिक आदि) को पूर्व कहा जाता है। उससे युक्त, अर्थात् उसके आश्रय से उत्पन्न होने वाले, अनुमान का नाम पूर्ववत् है। इत्यादि।

इस प्रथम अध्याय के अन्त में भारतीय अनुमान की पाश्चात्य तर्कशास्त्र से भी कुछ तुलना की गई है।

द्वितीय अध्याय में विविध प्राचीन सम्प्रदायों के आधार से प्रमाण के स्वरूप और उसके प्रयोजन का विचार करते हुए समन्तभद्र आदि कितने ही जैन ताकिकों के अभिमता-नुसार प्रमाण के स्वरूप का पृथक्-पृथक् विवेचन किया गया है। साथ ही यहाँ यह भी स्पष्ट किया गया है कि कुछ प्रवादियों के द्वारा जो अर्थापत्ति, अभाव, सम्भव और प्रातिभ ये पृथक् प्रमाण माने गये हैं वे उक्त अनुमान

प्रमाण से भिन्न नहीं है—तदन्तर्गत ही है।

तृतीय अध्याय में वैशेषिक, मीमांसक, सांख्य और बौद्ध सम्प्रदायों में जो अनुमान के भेद स्वीकार किये गये हैं उनके विषय में अकलंक, विद्यानन्द, वादिराज और प्रभाचन्द्र इन जैन ताकिकों का क्या अभिमत रहा है; इसका विश्लेषण करते हुए उक्त भेदों की समीक्षा की गई है। तत्पश्चात् अनुमान के स्वार्थ और परार्थ भेदों की चर्चा करते हुए अनुमान की भित्तिभूत व्याप्ति के विषय में सूक्ष्मता से विचार किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में प्रतिज्ञा, हेतु, दृष्टान्त, उपनय और निगमन; इन अनुमानावयवों में से कितने किस सम्प्रदाय में स्वीकृत है, इसका निर्देश करते हुए उनकी तुलनात्मक रूप से समीक्षा की गई है। इस प्रसंग में यहाँ सर्वप्रथम तत्त्वार्थसूत्र के अन्तर्गत दसवें अध्याय के “तदनन्तरमूर्ध्व गच्छत्या लोकान्तात्” आदि तीन (५-७) सूत्रों को उद्धृत करके उनके आधार से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि यद्यपि तत्त्वार्थसूत्राकार ने अनुमान के अवयव और उनकी संख्या का स्पष्टतया कोई उल्लेख नहीं किया है, फिर भी उनकी रचना के क्रम को देखते हुए यह स्पष्ट प्रतिभासित होता है कि तत्त्वार्थसूत्राकार को प्रतिज्ञा, हेतु और दृष्टान्त ये तीन अनुमान के अवयव अभीष्ट रहे हैं।

यहाँ यह विशेष स्मरणीय है कि उपर्युक्त तीन सूत्र दि० सूत्रपाठ का अनुसरण करते हैं, श्वे० सूत्रपाठ में उक्त तीन सूत्रों में से दृष्टान्त का सूचक अन्तिम सूत्र “आविद्धकुलालचक्रवद्...” आदि नहीं है। इसी प्रकार दि० सूत्रपाठ के अनुसार आगे भी जो लोकान्त के ऊपर मुक्त जीव के गमनाभाव का साधक एक मात्र हेतु अवयव रूप “धर्मास्तिकायाभावात्” सूत्र उपलब्ध होता है वह भी श्वे० सूत्र पाठ में संगृहीत नहीं है। हाँ, लोकान्त के ऊपर मुक्त जीव की गति क्यों सम्भव नहीं है, इस शंका के समाधान में भाष्य में उन्हीं शब्दों (धर्मास्तिकायाभावात्) के द्वारा धर्मास्तिकाय का अभाव ही उसका कारण बतलाया गया है। इसी प्रकार भाष्य में कुलालचक्र, अग्नि, एरण्डीज और अलावु ये दि० सूत्रोक्त दृष्टान्त भी संगृहीत हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ में यहाँ जैन ताकिकों में अनुमानावयवों

का उल्लेख करने वाले उन सिद्धसेन को प्रथम बतलाया गया है, जिन्होंने अपने न्यायावतार में प्रतिज्ञा (पक्ष), हेतु और दृष्टान्त इन तीन अनुमानावयवों का स्पष्टतया निर्देश किया है।

आगे चलकर लेखक ने यह स्पष्ट कर दिया है कि जैन तार्किकों में अधिकांश का यह स्पष्ट मत है कि विजिगीषु कथा (वाद) में तो प्रतिज्ञा और हेतु ये दो ही अनुमान के अवयव पर्याप्त हैं, पर वीतराग कथा—तात्त्विक चर्चा—में प्रतिपाद्य (श्रोता) के अभिप्रायानुसार तीन, चार और पांच भी वे माने जा सकते हैं—उनकी कोई नियत सख्या निर्धारित नहीं की जा सकती।

इसी अध्याय के द्वितीय परिच्छेद में हेतु का विचार करते हुए उसके विविध तार्किकों द्वारा माने गये द्विलक्षण, पङ्कलक्षण और सप्तलक्षण; इन हेतुलक्षणों का उल्लेख करते हुए उनकी समीक्षा के साथ यह बतलाया गया है कि जैन तार्किकों ने अविनाभाव या अन्यथानुपपत्ति रूप एक लक्षण ही हेतु का निर्दोष स्वरूप स्वीकार किया है, अन्त

में यहाँ हेतुभेदों की भी चर्चा की गई है व उनका स्पष्टीकरण तालिकाओं द्वारा किया गया है।

पाँचवें अध्याय में अनुमानाभास का विचार करते हुए साध्याभास, साधनाभास और दृष्टान्ताभास आदि दोषों का भी अच्छा विचार किया गया है। अन्त में उपसहार करते हुए जैन दृष्टिकोण के अनुसार सभी प्रमाणों का अन्तर्भाव प्रत्यक्ष और परोक्ष इन दो ही प्रमाण भेदों में किया गया है।

इस प्रकार अनुमानविषयक सभी चर्चनीय विषयों से संकलित प्रस्तुत ग्रंथ अतिशय उपयोगी प्रमाणित होगा। अनुमानविषयक इतनी विशद और विस्तीर्ण चर्चा सम्भवतः अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होगी। इसके लिए लेखक और प्रकाशक धन्यवादाहं हैं। पुस्तक की छपाई और साक्ष-सज्जा आदि भी आकर्षक है। ऐसे उपयोगी ग्रंथ का सार्वजनिक पुस्तकालयों और जिनमन्दिरों में अवश्य ही संग्रह किया जाना चाहिये।

—बालचन्द्र सिद्धन्त शास्त्री

वीरसेवामन्दिर में वीरशासन जयन्ती सानन्द सम्पन्न

२६ जुलाई दिन मंगलवार को प्रातःकाल ८ बजे वीरशासन जयन्ती महोत्सव बाबू यशपाल जी की अध्यक्षता में सानन्द सम्पन्न हुआ।

परमानन्द शास्त्री के मंगलाचरण के बाद दि० जैन महिलाश्रम की छात्राओं का मधुर भजन हुआ पश्चात् पं० बालचन्द्र जी सिद्धान्त शास्त्री, ला० प्रेमचन्द्र जी जैनावाच, पं० मथरादास जी शास्त्री, प्रिन्सिपल समन्तभद्र महाविद्यालय और अध्यक्ष बा० यशपाल जी सम्पादक जीवन साहित्य के महत्वपूर्ण भाषण हुए।

भाषणों में भगवान महावीर के शासन की महत्ता ख्यापित करते हुए उनके सर्वोदयतीर्थ का प्रवर्तन सबके अभ्युदय के लिए हुआ। यह कम लोग ही जानते हैं, महावीर केवल जैनियों के नहीं थे। उनका उपदेश विश्व कल्याण की भावना से ओत-प्रोत था, उससे दानवता हटी और मानवता का स्वच्छ वातावरण लोक में प्रसारित हुआ। हिंसा पर रोक लगी, और पाप प्रवृत्तियों से बुद्धि हटी, संसार के सभी जीवों को सुख-शान्ति का मार्ग मिला। उनके शासन में ऊँच-नीच का भेद भाव नहीं था इसी से मानव के सिवाय पशुओं तक को आश्रय मिला। सभी ने उनकी वाणी का पान कर आत्मलाभ लिया। महावीर शासन के अहिंसा और अपरिग्रह विश्व कल्याण करने वाले सिद्धान्त हैं उनका जीवन में विकास आवश्यक है। अन्त में मंत्री जी ने उपस्थिति की कमी को महसूस करते हुए कहा कि आगामी वीर-शासन जयन्ती का उत्सव प्रातःकाल की वजाय सायंकाल मनाया जायगा, जिससे उत्सव में भाग लेने वाले सभी महानुभाव समय पर पधार सकें। दूसरे उत्सव को रोचक बनाने के लिए और भी सांस्कृतिक कार्य-क्रमों पर विचार किया जायगा। मंत्री जी ने समागत सभी सज्जनों को धन्यवाद दिया और भगवान महावीर की जयध्वनिपूर्वक उत्सव समाप्त हुआ।

प्रेमचन्द्र जैन

मंत्री वीरसेवा मन्दिर

समाज के तीन महानुभावों का निधन

१. बा० रघुवर दयालजी, वकील दिल्ली आप अच्छे धर्मात्मा और मुस्तार श्री जुगलकिशोर के मित्रों में से थे। वीरसेवामन्दिर के सदस्य थे। पहले प्रबन्धकारिणों के भी सदस्य रहे हैं। जैन साहित्य और संस्कृति के प्रेमी थे।

२. सेठ भागचन्द जी डोंगरगढ़—अच्छे सम्पन्न, धार्मिक कार्यों का अनुष्ठान करने वाले, संस्कृति के प्रेमी, जयध्वला के प्रकाशन में आर्थिक सहयोग प्रदान करने वाले सज्जन थे।

३. ला० कपूरचन्द जी कानपुर—धर्मनिष्ठ जिनवाणी भक्त उदार सज्जन थे, वीरसेवामन्दिर के सदस्य थे। बड़े सहृदय और सरल स्वभावी एवं मिलनसार थे।

ये तीनों ही समाज के मान्य धर्मनिष्ठ महानुभाव थे। ऐसे व्यक्तियों का असमय में वियोग हो जाने से समाज को बड़ी क्षति उठानी पड़ती है। पर काल के सामने किसी की नहीं चलती, वह बड़ा निष्ठुर और निर्दयी है।

हम उन सबके कुटुम्बियों के प्रति सम्वेदना प्रकट करते हैं। और भगवान से प्रार्थना करते हैं कि उन्हें परलोक में सुख-शान्ति की प्राप्ति हो।

—अनेकान्त परिवार

वीर-सेवा-मन्दिर और "अनेकान्त" के सहायक

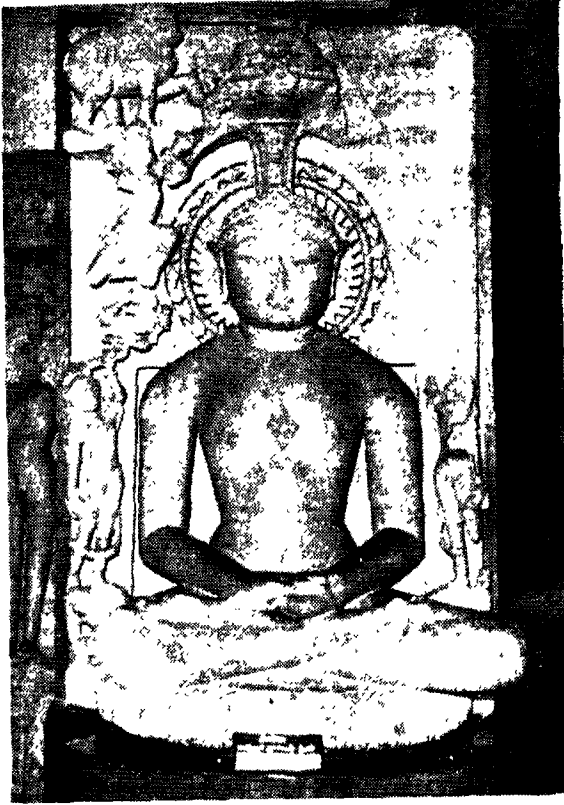
- १०००) श्री मिश्रीलाल जी धर्मचन्द जी जैन, कलकत्ता
- १०००) श्री बेवेन्द्रकुमार जैन, ट्रस्ट
- श्री साहू शीतलप्रसाद जी, कलकत्ता
- ५००) श्री रामजीवन रुगवगी एण्ड सस, कलकत्ता
- ५०) श्री गजराज जी सरावगी, कलकत्ता
- ५००) श्री नथमल जी सेठी, कलकत्ता
- ५००) श्री वैजनाथ जी धर्मचन्द जी, कलकत्ता
- ५००) श्री रतनलाल जी भांभरी, कलकत्ता
- २५१) श्री रा० बा० हरखचन्द जी जैन, रांची
- २५१) श्री अमरचन्द जी जैन (पहाड्या), कलकत्ता
- २५१) श्री स० सि० दण्डकुमार जी जैन, कटनी
- २५१) श्री सेठ सोहनलाल जी जैन,
- मंसस मुन्नालाल द्वारकाबास, कलकत्ता
- २५१) श्री लाला जयप्रकाश जी जैन
- स्वस्तिक मेटल वर्क्स, जगाधरी
- २५०) श्री मोतीलाल होराचन्द गांधी, उस्मानाबाद
- २५०) श्री बन्दीधर जी जुगलकिशोर जी, कलकत्ता
- २५०) श्री जुगमन्दिरदास जी जैन, कलकत्ता
- २५०) श्री सिधई कुन्दनलाल जी, कटनी
- २५०) श्री महावीरप्रसाद जी अग्रवाल, कलकत्ता
- २५०) श्री बी० आर० सी० जैन, कलकत्ता
- २५०) श्री रामस्वरूप जी नेमिचन्द्र जी, कलकत्ता
- १५०) श्री वजरंगलाल जी चन्द्रकुमार जी, कलकत्ता

- १५०) श्री चम्पालाल जी सरावगी, कलकत्ता
- १५०) श्री जगमोहन जी सरावगी, कलकत्ता
- १५०) ,, कस्तूरचन्द जी आनन्दीलाल जी कलकत्ता
- १५०) ,, कन्हैयालाल जी सीताराम, कलकत्ता
- १५०) ,, पं० बाबूलाल जी जैन, कलकत्ता
- १५०) ,, मालीराम जी सरावगी, कलकत्ता
- १५०) ,, प्रतापमल जी मदनलाल पांड्या, कलकत्ता
- १५०) ,, भागचन्द जी पाटनी, कलकत्ता
- १५०) ,, शिखरचन्द जी सरावगी, कलकत्ता
- १५०) ,, सुरेन्द्रनाथ जी नरेन्द्रनाथ जी कलकत्ता
- १०१) ,, मारवाड़ी शि० जैन समाज, व्यावर
- १०१) ,, दिगम्बर जैन समाज, केकड़ी
- १०१) ,, सेठ चन्नुलाल कस्तूरचन्दजी, बम्बई नं० २
- १०१) ,, लाला शान्तिलाल कागजी, दरियागंज दिल्ली
- १०१) ,, सेठ भंवरीलाल जी बाकलीवाल, इम्फाल
- १०१) ,, शान्तिप्रसाद जी जैन, जैन बुक एजेंसी,
- १०१) ,, सेठ जगन्नाथजी पाण्ड्या भूमरीतलैया
- १०१) ,, सेठ भगवानदास शोभाराम जी सागर
- १०१) ,, बाबू नृपेन्द्रकुमार जी जैन, कलकत्ता
- १००) ,, बब्रोप्रसाद जी आत्माराम जी, पटना
- १००) ,, रुपचन्दजी जैन, कलकत्ता
- १००) ,, जैन रत्न सेठ गुलाबचन्द जी टोंगा इन्दौर

वीर-सेवा-मन्दिर के उपयोगी प्रकाशन R. N. 10591/62

- (१) पुरातन-जैनवाक्य-सूची—प्राकृत के प्राचीन ४६ मूल-ग्रन्थों की पद्यानुक्रमणी, जिसके साथ ४८ टीकादिग्रन्थों में उद्धृत दूसरे पद्यों की भी अनुक्रमणी लगी हुई है। सब मिलाकर २५३५३ पद्य-वाक्यों की सूची। संपादक मुख्तार श्री जुगलकिशोर जी की गवेषणापूर्ण महत्व की ७० पृष्ठ की प्रस्तावना से अलंकृत, डा० कालीदास नाग, एम. ए. डी. लिट् के श्रावकथन (Foreword) और डा० ए. एन. उपाध्ये एम. ए. डी. लिट् की भूमिका (Introduction) से भूषित है, शोध-खोज के विद्वानों के लिए अतीव उपयोगी, बड़ा साइज, सजिल्द १५-००
- (२) ग्रात परीक्षा—श्री विद्यानन्दाचार्य की स्वोपज्ञ सटीक अपूर्व कृति, आप्तों की परीक्षा द्वारा ईश्वर-विषयक सुन्दर, विवेचन को लिए हुए, न्यायाचार्य पं. दरबारीलालजी के हिन्दी अनुवाद से युक्त, सजिल्द। ८-००
- (३) स्वयम्भूस्तोत्र—समन्तभद्रभारती का अपूर्व ग्रन्थ, मुख्तार श्री जुगलकिशोरजी के हिन्दी अनुवाद, तथा महन्व की गवेषणापूर्ण प्रस्तावना से सुशोभित। ... २-००
- (४) स्तुतिविद्या—स्वामी समन्तभद्र की अनोखी कृति, पापों के जीतने की कला, सटीक, सानुवाद और श्री जुगल किशोर मुख्तार की महत्व की प्रस्तावनादि से अलंकृत सुन्दर जिल्द-सहित। १-५०
- (५) अध्यात्मकमलमार्ग—पचाध्यायीकार कवि राजमल का सुन्दर आध्यात्मिकरचना, हिन्दी-अनुवाद-सहित १-५०
- (६) युक्त्यनुशासन—तत्त्वज्ञान से परिपूर्ण समन्तभद्र की असाधारण कृति, जिसका अभी तक हिन्दी अनुवाद नहीं हुआ था। मुख्तार श्री के हिन्दी अनुवाद और प्रस्तावनादि से अलंकृत, सजिल्द। ... १-२५
- (७) श्रीपुरपाश्वनाथस्तोत्र—आचार्य विद्यानन्द रचित, महत्व की स्तुति, हिन्दी अनुवाद सहित। ७५
- (८) शासनचतुस्त्रिका—(तीर्थपरिचय) मुनि मदनवीर की १३वीं शताब्दी की रचना, हिन्दी-अनुवाद सहित ७५
- (९) समीचीन धर्मशास्त्र—स्वामी समन्तभद्र का गृहस्थाचार-विषयक अत्युत्तम प्राचीन ग्रन्थ, मुख्तार श्री जुगलकिशोर जी के विवेचनात्मक हिन्दी भाष्य और गवेषणात्मक प्रस्तावना से युक्त, सजिल्द। ... ३-००
- (१०) जैनग्रन्थ-प्रशस्ति संग्रह भा० १ संस्कृत और प्राकृत के १७१ अप्रकाशित ग्रन्थों का प्रशस्तियों का मंगलाचरण सहित अपूर्व संग्रह, उपयोगी ११ परिशिष्टों और प० परमानन्द शास्त्री की इतिहास-विषयक साहित्य परिचयात्मक प्रस्तावना से अलंकृत, सजिल्द। ... ४-००
- (११) समाधितन्त्र और इष्टोपदेश—अध्यात्मकृति परमानन्द शास्त्री की हिन्दी टीका सहित ४-००
- (१२) अनित्यभावना—आ० पञ्चनन्दीकी महत्वकी रचना, मुख्तार श्री के हिन्दी पद्यानुवाद और भावार्थ सहित २५
- (१३) तत्त्वार्थसूत्र—(प्रभाचन्द्राय)—मुख्तार श्री के हिन्दी अनुवाद तथा व्याख्या से युक्त। ... २५
- (१४) श्रवणबेलगोल और दक्षिण के अन्य जैनतीर्थ। १-००
- (१५) महावीर का सर्वोदय तीर्थ १६ पैसे, १६ समन्तभद्र विचार-दीपिका १६ पैसे, (१७) महावीर पूजा १६
- (१८) अध्यात्म रहस्य—प० आशाधर की सुन्दर कृति मुख्तार जी के हिन्दी अनुवाद सहित। १-००
- (१९) जैनग्रन्थ-प्रशस्ति संग्रह भा० २ अप्रकाशित के १२२ अप्रकाशित ग्रन्थों का प्रशस्तियों का महत्वपूर्ण संग्रह। पचपन ग्रन्थकारों के ऐतिहासिक ग्रन्थ-परिचय और परिशिष्टों सहित। स. प० परमानन्द शास्त्री। सजिल्द १२-००
- (२०) न्याय-दीपिका—आ. अभिनव धर्मभूषण की कृति का प्रो० दरबारीलालजी न्यायाचार्य द्वारा स० अनु० ७-००
- (२१) जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश, पृष्ठ सख्या ७४० सजिल्द (वीर-शासन-संघ प्रकाशन ५-००)
- (२२) कसायपाहुड सुत्त—मूलग्रन्थ की रचना आज से दो हजार वर्ष पूर्व श्री गुणधराचार्य ने की, जिस पर श्री यतिवृषभाचार्य ने पन्द्रह सौ वर्ष पूर्व छह हजार श्लोक प्रमाण चूणिपूत्र लिखे। सम्पादक पं. हीरालालजी सिद्धान्त शास्त्री, उपयोगी परिशिष्टों और हिन्दी अनुवाद के साथ बड़े साइज के १००० से भी अधिक पृष्ठों में। पृष्ठ कागज और कपड़े की पक्की जिल्द। ... २०-००
- (२३) Reality भा० पूज्यपाद की सर्वार्थसिद्धि का अंग्रेजी में अनुवाद बड़े आकार के ३०० पृ. पक्की जिल्द ६-००

प्रकाशक—प्रेमचन्द जैन, वीरसेवा मन्दिर के लिए, रूपवाणी प्रिंटिंग हाउस, दरियामंज, दिल्ली से मुद्रित।



नरवर से प्राप्त और शिवपुरी 'ग्वालिघर' के म्यूजियम में
स्थित तीर्थंकर की प्राचीन मूर्ति

(कुन्दनलाल प्रिन्सिपल के सौजन्य से प्राप्त)

समन्तभद्राश्रम (वीर-सेवा-
मन्दिर) का द्वै मासिक
मुखपत्र



अनेकान्त



साहित्य इतिहास अंक



सम्पादक मण्डल
जैनेन्द्रकुमार
यशपाल जैन
अक्षयकुमार जैन
परमानन्द शास्त्री



वर्ष २२]

वार्षिक मूल्य ६)

[अंक ३, ४, ५

इस अंक का मूल्य ४) ६०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१ श्री पार्श्वनाथ जिन स्तुति-कविवर बनारसीदास	६७
२ तीर्थंकरों की प्राचीन ता—कस्तूरचन्द जैन 'सुमन'	६८
३ इच्छा नियंत्रण—सम्पादक (परमानन्द)	१०३
४ पांडे लालचन्द का वरांगचरित— डा० भागचन्द 'भास्कर'	१०४
५ विश्व मैत्री का प्रतीक : पयूषण पर्व— प्रो० भागचन्द 'भागेन्दु'	११०
६ गुण स्थान, एक परिचय—मुनि श्री सुमेरमल	२१३
७ ग्वालियर के कुछ मूर्ति-यत्र लेख— परमानन्द शास्त्री	१२२
८ अनेकान्त—मुनि श्री उदयचन्द जी	१२४
९ बारह प्रकार के सभोग पारस्परिक व्यवहार— मुनि श्री नथमल	१२७
१० हरिवंशपुराण की प्रशस्ति एव वत्सराज— रामवल्लभ सोमाणी	१३१
११ वायुपुराण और जैन कथाएँ— डा० विद्याधर जोहरापुरकर	१३३
१२ अनेकान्त का दिव्य आलोक— प० पन्नालाल साहित्याचार्य	१३६
१३ सस्कृत की सीमा—प्रो० उदयचन्द जैन एम. ए. दर्शनाचार्य	१३८
१४ सालोनी ग्राम में उपलब्ध प्राचीन मूर्तियाँ— महेशकुमार जैन	१४१
१५ अब मुखरित विनाश के पथ पर नूतन अनु- सन्धान है, (कविता)—कल्याणकुमार जैन 'शशि'	१४४
१६ अलब्ध पर्याप्तक और निगोद—प० मिलापचन्द रतनलाल जैन कटारिया	१५५
१७ विजोलिया के जैन लेख—रामवल्लभ सोमाणी	१५५
१८ अनेकान्त पत्र का इतिहास—प० परमानन्द शा.	१५
१९ अनेकान्त और श्री परमानन्द जी शास्त्री— श्रीमती पुष्पलता जैन एम. ए.	१६१



सम्पादक-मण्डल

डा० आ० ने० उपाध्ये

डा० प्रेमसागर जैन

श्री यशपाल जैन

परमानन्द शास्त्री

विषय	पृष्ठ
२० अनेकान्त एक आदर्श पत्र—प० मिलापचन्द रतनलाल जैन कटारिया	१६५
२१ वीरसेवा मन्दिर का साहित्यिक शोध-कार्य— प० परमानन्द जैन शास्त्री	१६८
२२ स्वामी समन्तभद्र की जैनदर्शन को देन— डा० दरबारीलाल कोठिया	१७७
२३ पत्रिकाएँ कैसे चलें ?—डा० गोकुलचन्द जैन	१८२
२४ अनेकान्त पत्र का गौरव—प० जयन्तीप्रसाद शास्त्री	१८४
२५ अनेकान्त और उसकी सेवाएँ— डा० दरबारीलाल कोठिया	१८५
२६ जैन विद्या का अध्ययन-अनुशीलन : प्रगति के पथ पर—प्रो० प्रेम सुमन जैन एम. ए.	१८७
२७ भगवान महावीर का २५वीं निर्वानदिवस—	१९२
२८ श्री आदिनाथ स्तुति—कविवर भूधरदास	१९३
२९ अनेकान्त में प्रकाशित रचनाएँ :— (१) सैद्धान्तिक (धर्म, दर्शन, न्याय, व्याकरण) १९४ (२) साहित्य २०१ (३) पुरातत्त्व (इतिहास, संस्कृति, स्थापत्य, कला) २२२ (४) समीक्षा २२२ (५) कहानियाँ २२३ (६) कविताएँ २२४ (७) व्यक्तिगत (परिचय, अभिनन्दन आदि) २२८ (८) सामयिक २३१ (९) विविध २३७ (१०) सकलन २४०	
३० अनेकान्त के लेखक—गोपीलाल अमर	२४२
३१ अनेकान्त द्वै मासिक : एक दृष्टि में— गोपीलाल 'अमर'	२४३
३२ आत्मा का देह-प्रमाणत्व—डा० प्रद्युम्नकुमार जैन	२५५
३३ ज्ञानपीठ साहित्य-पुरस्कार इस वर्ष वरिष्ठ कवि श्री पंत जी को समर्पित	२६०
३४ साहित्य-समीक्षा—परमानन्द, बालचन्द सि. शा.	२६२



अनेकान्त का वार्षिक मूल्य ६) रुपये

एक किरण का मूल्य १ रुपये २५ पैसे

अनेकान्त में प्रकाशित विचारों के लिए सम्पादक
मलाल उत्तरदायी नहीं हैं । —व्यवस्थापक अनेकान्त

प्रकाशकीय

जैनधर्म और जैन संस्कृति की यह पत्रिका अपने इतिहास और लेखों की वर्गीकृत सूची के साथ प्रस्तुत है; इसमें अनेकान्त के अब तक के प्रकाशित ११२ अंकों की उल्लेखनीय सामग्री का दिग्दर्शन भी कराया गया है। और वह अनेकान्त के जिस वर्ष के जिस अंक में प्रकाशित हुई है उसका भी उल्लेख अंकों द्वारा स्पष्ट किया गया है।

इस सूची के निर्माण करने में काफी श्रम करना पड़ा है। पं० गोपीलाल जी 'अमर' ने हमारी प्रेरणा से अनेकान्त के इतिहास को तथा लेखकों के नाम और लेख सूची का वर्गीकरण किया है, इसके तैयार करने में उन्हें काफी समय लगा है। तैयार होकर आने के बाद इसके संशोधन में तथा छपने में भी बिलम्ब हुआ है। इस सहयोग के लिए गोपीलाल जी 'अमर' का जितना आभार माना जाय वह थोड़ा है। उन्होंने यह कार्य बिना किसी स्वार्थ के किया है, जिसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। आशा है भविष्य में उनका उचित सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

अनेकान्त के इस साहित्य इतिहास अंक के प्रकाशन में आशातीत विलम्ब हो गया है, पाठकगण उसकी उत्कंठा के साथ प्रतीक्षा कर रहे हैं। इस विलम्ब के कई कारण हैं। रचनाओं को समय पर न मिलना, दूसरा कारण अनेकान्त की ऐतिहासिक साहित्यिक सामग्री का वर्गीकरण करने में अधिक समय लगना तीसरे प्रेसकी अव्यवस्था, उसमें छपाई का काम अधिक होने से हुआ है। इसके लिए हम पाठकों से क्षमा चाहते हैं। यह अंक पाठकों को देर से अवश्य मिल रहा है, पर उसमें प्रकाशित सामग्री उनका अनुरंजन अवश्य करेगी।

भविष्य में अनेकान्त के प्रकाशन में विलम्ब न हो, वह समय पर प्रकाशित होता रहे, इसके लिए प्रयत्न किया है। आशा है आगे हम उसके समय पर प्रकाशन में समर्थ हो सकेंगे।

प्रेमचन्द जैन

प्रकाशक 'अनेकान्त'

अनेकान्त को प्राप्त सहायता

अनेकान्त को जिन सज्जनों ने सहायता भेजी या भिजवाई है वे सब धन्यवाद के पात्र हैं। आशा है दूसरे महानुभाव भी इसका अनुकरण करेंगे। सहायता निम्न प्रकार है :—

१०१) सहायता अनेकान्त, बाबू निर्मलकुमार जी, कलकत्ता।

२२) बा० मानमल जी जैन, दो बार कलकत्ता।

२१) जगमोहन जी जैन धर्मपत्नी श्री सुमित्रा देवी, कलकत्ता।

११) ला० इन्द्रलाल जैन दरियागंज, विवाहोपलक्ष में निकाले हुए दान में से।

११) सेठ भंवरीलाल जी कासलीवाल।

सम्पादकीय

‘अनेकान्त’ जैन संस्कृति और साहित्य तथा ऐतिहासिक विषय की द्वैमासिक पत्रिका है। जैन वाङ्मय में उसे जो अप्रकाशित और अनुपलब्ध रचनाएं मिली हैं। अनेकान्त में केवल उनका परिचय ही प्रस्तुत नहीं किया गया, प्रत्युत उनके अन्तः रहस्यका उद्घाटन करते हुए ऐतिहासिक गुत्थियों को सुलभानेका उपक्रम किया है। समाज को चाहिए कि वह ऐसे उपयोगी पत्रको अपना सहयोग प्रदान करे।

अनेकान्त के इस अंक से पाठक उसकी महत्ता को अवगत करेंगे। उससे उन्हें यह सहज ही ज्ञात हो सकेगा कि अनेकान्त में अब तक जो महत्व के लेख प्रकाशित हुए हैं। उनका परिचय पाठकों को तथा ऐतिहासिक विद्वानों को सहज ही मिल सकेगा। इसमें उनके लेखों और लेखकों की भी तालिका मिलेगी।

साथ ही, वीर-सेवा-मन्दिर द्वारा अब तक की शोध खोज का कार्य भी प्रस्तुत किया गया है। उसका भी दिग्दर्शन हो सकेगा। और यह ज्ञात हो सकेगा कि वीरसेवामन्दिर ने जैन साहित्य और इतिहास के बारे में कितनी सामग्री संकलित कर उसका परिचयादि अनेकान्त द्वारा दिया है।

वीरसेवामन्दिर इतिहास और साहित्य जैसे महत्वपूर्ण कार्य में तो अपनी शक्ति लगाता ही है, किन्तु जैन संस्कृति के पुरातात्विक अवशेषों, प्रशस्तियों, ताम्रपत्रों, शिलालेखों और हस्तलिखित ग्रन्थों का भी संकलन करने में तत्पर है। अनुपलब्ध और अप्रकाशित ग्रन्थों के संरक्षण की यहां पूर्ण सुविधा है। जो महानुभाव अपने यहां के हस्तलिखित ग्रन्थों को प्रदान करना चाहें वे वीर-सेवामन्दिर में भिजवा दें, या हमें उनकी सूचना दें। हम उनका संरक्षण सावधानी के साथ करेंगे।

अनेकान्त के इस अंक के प्रकाशन में बहुत अधिक बिलम्ब हो गया है। पाठकगण काफी समय से उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। हमें इस बात का खेद है कि हम उनकी आशा समय पर पूरी न कर सके। किन्तु भविष्य में हम उसे समय पर प्रकाशित करने का प्रयत्न अवश्य करेंगे।

अनेकान्त के लेखक विद्वानों के हम बहुत आभारी हैं जिन्होंने अपनी रचनाएं भेजकर हमें अनुगृहीत किया है। हम खास कर पं० गोपीलाल जी अमर के विशेष आभारी हैं, कि जिन्होंने हमें इस अंक में पर्याप्त सहयोग प्रदान किया है। आशा है भविष्य में उनसे और भी अधिक सहयोग मिलेगा।

—परमानन्द जैन

अनेकान्त पर अभिमत

‘अनेकान्त’ ने जैन साहित्य के शोध क्षेत्र में जो सेवाएं की हैं वे भारतीय साहित्य के इतिहास में स्वर्ण-क्षरों में उल्लेखनीय होंगी। जैन समाज की जागृति एवं विकास के साथ-साथ रूढ़िवादिता से समाज को मुक्ति दिलाने में ‘अनेकान्त’ के प्राण पं० जुगलकिशोर जी मुस्तार की सबल लेखनी ने जो उत्क्रांति पैदा की थी वह सर्व विदित है।

मुस्तार सा० ने इसका जो बीजारोपण किया था उसे अपने ही समय में पल्लवित और पुष्पित होता हुआ देखा था। ‘अनेकान्त’ ने जैन समाज को प्रगति और उत्थान का पथ प्रदर्शन किया था। ‘अनेकान्त’ के विकास और निर्माण में जिन व्यक्तियों ने अपना सर्वस्व बलिदान किया उनमें पं० परमानन्द जी, पं० दरबारीलाल जी कोठिया, बाबू छोटेलाल जी तथा बाबू जयभगवान जी के नाम सर्वथा उल्लेखनीय एवं चिरस्मरणीय हैं। वीर प्रभु से कामना है कि ‘अनेकान्त’ दिन प्रतिदिन प्रगति करता रहे।

—कुन्दलाल जैन
प्रिन्सिपल

ओम् ग्रहम्

अनेकान्त

परमागमस्य बीजं निषिद्धजात्यन्धसिन्धुरविधानम् ।
सकलनयविलसितानां विरोधमपनं नमाम्यनेकान्तम् ॥

वर्ष २२ }
किरण ३-४ }

वीर-सेवा-मन्दिर, २१ दरियागंज, दिल्ली-६
वीर निर्वाण सवत् २४६५, वि० सं० २०२६

{ अगस्त और
अक्टूबर १९६६

श्री पार्श्वनाथ जिन-स्तुति

कविवर बनारसीदास

निरखत नयन भविक जल वरखत, हरखत अमित भविक जन सरसी ।
मदन-कदन-जित परम-धरम हित, सुमिरत भग॥ भगत सब हरसी ।
सजल-जलद-तन मुकुट सपत फन, कमठ बलन जिन नमत बनरसी ॥

सवैया ३१सा

जिन्ह के वचन उर धारत जुगल नाग भये धरनिंद पदमावती पलकमें ।
जाकी नाम महिमा सों कुषातु कनक करे पारस पखान नामी भयो है खलकमें ।
जिन को जनमपुरी नाम के प्रभाव हम अपनों स्वरूप लख्यो भानुसो भलकमें ।
तेई प्रभु पारस महारस के दाता अब, अब बीजे मोहि साता दृग लीलाकी लालकमें ॥



तीर्थङ्करों की प्राचीनता

कस्तूरचन्द्र जैन 'सुमन' एम. ए.

मध्यप्रदेश में प्राप्त जैन अभिलेखों में प्रथम जैन तीर्थङ्कर के दो नाम मिलते हैं। चन्देल शासन कालीन, खजुराहो से प्राप्त सं० ११४२ के एक अभिलेख में आदिनाथ की प्रतिमा की प्रतिष्ठा कराये जाने का उल्लेख है।^१ इससे प्रथम आदिनाथ नाम की जानकारी मिलती है। द्वितीय नाम ऋषभदेव था। दूबकुण्ड प्रशस्ति में मंगलाचरण के रूप में सर्व प्रथम ऋषभदेव का ही स्मरण किया गया है।^१ अहार (टीकमगढ़) से प्राप्त अभिलेख में भी यही नाम मिलता है।^१ पूर्वोल्लेख में दूबकुण्ड प्रशस्ति से यह प्रमाणित होता है कि आदिनाथ या ऋषभदेव ११ वीं शती के आरम्भ में सर्वप्रमुख तीर्थङ्कर स्वीकार किए गए थे। प्रशस्ति में आदिनाथ को सर्वप्रथम स्थान मिलने का अर्थ ही, उनका तीर्थङ्करों में सर्व प्रथम तीर्थङ्कर होना प्रमाणित होता है। इस प्रकार क्या जैन-जैनेतर साहित्य और क्या पुरातत्व सभी दृष्टियों से ऋषभदेव प्रथम तीर्थङ्कर ज्ञात होते हैं। अन्य तीर्थङ्करों की प्राचीनता सम्बन्धी उल्लेख भी म० प्र० से प्राप्त जैन अभिलेखों में दृष्टव्य हैं।

द्वितीय जैन तीर्थङ्कर अजितनाथ की प्रतिमा का उल्लेख खजुराहो के जैन अभिलेख में मिलता है।^१ यजुर्वेद में

भी अजितनाथ का स्मरण किया गया है।^१ तृतीय तीर्थङ्कर संभवनाथ-प्रतिमा पर उत्कीर्ण खजुराहो से प्राप्त अभिलेख प्रतिमा की प्राचीनता म० १२१५ प्रगट करता है।^१ उन से प्राप्त सं० १२५८ का अभिलेख भी संभवनाथ प्रतिमा की प्राचीनता का बोध कराता है।^१ पाँचवे तीर्थङ्कर सुमतिनाथ की प्राचीनतम तिथि सं० १३३१ अजयगढ़ में प्राप्त-चक्रवाक चिन्ह युक्त चरण पर अङ्कित अभिलेख में मिली है।^१

छठवे तीर्थङ्कर पद्मप्रभु का सकेतात्मक उल्लेख "ओ नमः पद्मनाथाय" रूप में म० ११५० के ग्वालियर अभिलेख में मिला है।^१ अभिलेख का लेखक जैन होने के कारण पद्मनाथ-पद्मप्रभु तीर्थङ्कर ही ज्ञात होते हैं। आठवे तीर्थङ्कर चन्द्रप्रभु सम्बन्धी उनके चरण-चिन्ह सहित दो अभिलेख-एक दूबकुण्ड से^१ और द्वितीय होशंगाबाद^१ से प्राप्त

१. कनिष्क रिपोर्ट जि. २ पृ० ४६१।

और

सं० ११४२ श्री आदिनाथ प्रतिष्ठाकारक श्रेष्ठी जीवनशाह भार्या सेठानी पद्मावती"

अनेकान्त, बाबू छोटेलाल स्मृति अङ्क पृ० ५७

२. एपि० इ० जि० २ पृ० २३२-२४०। अभि० पंक्ति २।

३. सं० १२३७ मार्ग सुदी ३ शुके.....श्री ऋषभनाथ प्रणमन्ति नित्यं अहार अभिलेख सं० १२३७, अनु-क्रमाङ्क ६।

४. कनिष्क रिपोर्ट २१, पृ० ६६।

५. डॉ० राधाकृष्णन् इण्डियन फिलासफी : जि० १, पृ० २८७।

६. एपि० इ० जि० १, पृ० १५३।

७. पं० परमानन्द शास्त्री, अनेकान्त : वर्ष १२, पृ० १६२।

८. डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन, अनेकान्त : वर्ष १३ कि० ४, पृ० ६८-६९।

९. इण्डियन एन्टीक्वेरी जि० १५ पृ० ३३-४६। एवं पूर्णचन्द्रनाथ : जैन लेख संग्रह भाग २, पृ० ८५-८२ सख्या १४२६।

१०. जाडथं सस्वदखंडितक्षयमपिक्षीणाखिलोपक्षयं साक्षादीक्षितमभिभिदंषदपि प्रोढं कलंक तथा चित्तरवाद्यदुपांतमाप्यसततं (जातस्तथा) नंदकृत् चन्द्रः सर्वजनस्य पातु विपदश्चन्द्रप्रभोर्हन्स तः ॥ एपि० इ० जि० २ पृ० २३२-२४०, दूबकुण्ड अभिलेख पंक्ति० ४-६।

११. नागपुर संग्रहालय में संग्रहीत।

हुए हैं। जिनमें क्रमशः सं० ११४५ और सं० १२७८ तिथियाँ दी गई हैं। नववें तीर्थङ्कर पुष्पदन्त—जिन्हें सुविधनाथ भी कहा गया है^{१०}—की प्रतिमा के आसन पर सं० १२०८ का अभिलेख मिला है।^{११} इसी प्रकार पन्द्रहवें तीर्थङ्कर धर्मनाथ प्रतिमा के आसन पर उत्कीर्णित सं० १२७१ का एक अभिलेख होसंगाबाद से भी प्राप्त हुआ है।^{१२} सोलहवें तीर्थङ्कर शान्तिनाथ से सम्बन्धित म० प्र० से प्राप्त जैन अभिलेखों में बहोरीबन्द,^{१३} खजुराहो,^{१४} दूब-कुण्ड^{१५} और अहार^{१६} से प्राप्त मूर्तिलेख मुख्य हैं। इनकी प्राचीनतम तिथि १० वीं शती ज्ञात होती है। सत्रहवें तीर्थङ्कर कुन्थनाथ से सम्बन्धित सं० १२०३ का अहार^{१७} से और सं० १२६३ का ऊनसे^{१८} प्राप्त अभिलेख मुख्य हैं।

अठारहवें तीर्थङ्कर अरनाथ या अरहनाथ का एक प्रतिमा लेख सं० १२०६ का अहार से मिला है जिसमें

१२. श्री सूत्रधारमण्डन, प्रतिमाशास्त्र : अध्याय ६ पृ० ३०३-२०४।

१३. मेमॉयर्स ऑफ दि आर्किलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, पत्रिका ११, ई० १६२२, पृ० १४।

१४. नागपुर संग्रहालय में संग्रहीत

१५. तस्य पुत्र महाभोज धर्मदानाध्ययनरतः।

तेनेदं कारितं रम्यं शान्तिनाथस्य मन्दिरम्।

इन्स्क्रिप्शन्स ऑफ दि कलचुरि चेदि एरा, जि. ४, भाग १ पृ० ३०६।

१६. सं० १०८५...श्री सिवि चनुयदेव : श्री शान्तिनाथस्य प्रतिमाकारी। कनिषम रिपोटे, जि० २१ पृ० ६१

१७. एपि० इ० जि० २ पृ० २३२-२४०। अभि० पंक्ति ८।

१८. ताम्र्यामशेष दुरितोद्योगमैकहेतु निष्कर्षितं भुवनभूषण-भूतमेतत् श्री शान्ति चैत्यमिति नित्यं सुखप्रदानात् मुक्तिश्रियोवदनवीक्षणलोलुपाभ्याम्। अहार अभिलेख सं० १२३७।

१९. सं० १२०३ गोलापूर्वान्वये साहु सुपट तस्य पुत्र शान्ति तस्य पुत्र यशकर कुन्थनाथ प्रणमन्ति नित्यं” वही : सं० १२०३ अनुक्रमाङ्क ३।

२०. पं० परमानन्द शास्त्री, अनेकान्त वर्ष १२, पृ० १६२

उन्हें प्रणाम किए जाने का उल्लेख है।^{१९} बीसवें तीर्थङ्कर मुनिसुव्रतनाथ जिनके उल्लेख मउ,^{२०} और खजुराहो के अभिलेखों में मिलते हैं, राम-लक्ष्मण के समकालीन बताए गए हैं।^{२१} योगवशिष्ट में रामचन्द्रजी ने अपने विचार इस प्रकार प्रकट किए हैं, कि “न में राम हूँ, न मेरी कोई इच्छाएँ है” और न मेरा मन विषयों की ओर ही आकर्षित है। मैं तो ‘जिन’ के समान अपनी आत्मा में ही शान्ति स्थापित करना चाहता हूँ।^{२२} योगवशिष्ट के इस उल्लेख से प्रमाणित होता है कि रामचन्द्र के समय में कोई जैन मुनि थे जो आत्म-शान्ति के मार्ग में खवलीन थे। जिनकी आत्म बुद्धि से प्रभावित होकर रामचन्द्र जी के मन में भी ‘जिन’ के समान शान्ति प्राप्त करने की इच्छा प्रकट हुई। वे ‘जिन’ काल निर्धारण करने पर मुनिसुव्रतनाथ ही बताये गए हैं।^{२३} बाइसवें तीर्थङ्कर नेमिनाथ थे जिन्हें मऊ से प्राप्त सं० ११६६ के अभिलेख में जगत का स्वामी, संसार के अन्तक और तीनों लोकोंकी शरण तथा जगतका मंगलकर्ता कहा गया है।^{२४} डॉ० फ्यूरर ने नेमिनाथ को बाइसवाँ जैन तीर्थङ्कर ऐतिहासिक रूप से स्वीकार किया है।^{२५}

२१. सं० १२०६, गोलापूर्वान्वये साहु सुपट...अरहनाथं प्रणमन्ति नित्यं” अहार अभिलेख सं० १२०६, अनु-क्रमाङ्क ७।

२२. मुनिसुव्रतनाथस्य विबं त्रैलोक्य पूजितः।

कारितं सुतहवेनेदंमात्मश्रियोभिवृद्धये ॥ सं० ११६६ वैसाख सुदि २। धुवेला संग्रहालय में संग्रहीत, प्रविष्ट क्र० ४२।

२३. डॉ० मुस्ताफारोट, ट्रेक्ट सं० ६८, श्री अ० वि० जैन मिशन, अलीगंज, एटा, पृ० ७४।

२४. नाहं रामो न मे वाञ्छा भावेषु न च मे मनः। शान्ति मास्थानुमिच्छामि स्वात्मन्येव जिनो यथा। —योगवशिष्ट, अ० १५, श्लोक ८।

२५. शु० पार्श्वकीर्ति, विश्वधर्म की रूपरेखा, वही : पृ० ३१।

२६. कारितश्च जगन्नाथ (नेमि) नाथो भवान्तकः।

मे (लोक्यश) रणं देवी जगन्मंगल कारकः ॥ सं० ११६६ वैसाख सुदि २। धुवेला संग्रहालय में संग्रहीत, प्रविष्ट क्र० ७।

२७. एपि० इ० जि० १, पृ० ३८६।

डा० प्राणनाथ विद्यालंकार ने तीर्थङ्कर नेमिनाथ को कृष्ण का समकालीन बताया है।^{१८} जबकि जैन साहित्य में नेमिनाथ स्पष्ट रूप से कृष्ण के चचेरे भाई बताये गये हैं।^{१९}

तीर्थङ्कर नेमिनाथ का दूसरा नाम अरिष्टनेमि था। ऋग्वेद में—जिसमें बड़े-बड़े घोड़े जुते हुए हैं, ऐसे रथ में बैठे हुए आकाशपथगामी सूर्य के समान विद्यारथ में बैठे हुए अरिष्टनेमि नाम का आह्वानन के रूप में उल्लेख मिलता है।^{२०} यजुर्वेद में भी नेमिनाथ सम्बन्धी उल्लेख है।^{२१} महाभारत में तो नेमिनाथ को रेवत पर्वत से मुक्ति प्राप्त करने का उल्लेख आया है।^{२२} डा० गुस्टाफरोट ने नेमिनाथ के सम्बन्ध में विचार प्रगट किए हैं कि वे श्री कृष्ण के समकालीन थे और उनका निर्वाण बीर प्रभु से ८४००० वर्ष पूर्व अर्थात् ८४५०० ई० पू० में हुआ।^{२३} न्यायाचार्य पं० महेन्द्रकुमार ने नेमिनाथ को श्रीकृष्ण का गुरु बताया है।^{२४} तेवीसवे तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ थे। उदयगिरि (विदिशा) के गुप्त सं० १०६ (ई० सं० ४२६) के गुड़ा-

२८. टाइम्स ऑफ इंडिया, १९ मार्च १९३५ ई० पृ० ६।

२९. पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री, जैन धर्म : श्री. भा. दि. संघ, चोरासी, मथुरा; १९५५ ई. पृ० १५।

३०. तवा रथ वयद्याहु वेमस्तो मेरश्विना सविताय नव्य।
अरिष्टनेमि परिद्यामियान विद्यामेष वृजन जीरदानम्॥

ऋग्वेद, मंडल २, अ० ४, व २४।

३१. बाजस्यनु प्रसव आभूवेमा च विस्वा भुवनानि सर्वंत.
स नेमिराजा परियाति विद्वान् प्रजा पुष्टि वर्धयमानो
अस्मै स्वाहा।” यजुर्वेद, अध्याय ९, मंत्र २५।

३२. रेवताद्री जिनो नेमि र्गुणादिविमलचले।
ऋषीणामाश्रमादेव मुक्तिमार्गस्य कारणम्। महाभारत
पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री, जैनधर्म बही, पृ० १६।

३३. ट्रेकट सं० ६८, अ० वि० जैन मिशन अलीगंज, एटा,
बही, पृ० ७।

३४. रामधारीसिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय।
चतुर्थ संस्करण, १९६६ ई० राजेन्द्रनगर, पटना ४,
पृ० ७।

लेख में पार्श्वनाथ का उल्लेख मिला है।^{२५} डा० गुस्टा-
फरोट ने पार्श्वनाथ को १०२ वर्ष की आयु में ही बीर
प्रभु से २५० वर्ष पूर्व मुक्त होना बताया है।^{२६} डा०
रामधारीसिंह 'दिनकर' ने भी लिखा है कि तेईसवें
तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ थे, जो ऐतिहासिक पुरुष हैं और
जिनका समय महावीर और बुद्ध, दोनों से कोई २५० वर्ष
पहले पड़ता है।^{२७} कुछ अन्य विद्वानों ने भी अनुसन्धान
पूर्वक तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ को ऐतिहासिक महापुरुष तथा
महान् धर्म-प्रचारक बताया है।^{२८}

अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर थे जिनके विभिन्न नामों
में से बीर-वर्द्धमान^{२९} एवं सन्मति^{३०} नामों का उल्लेख म०
प्र० के जैन अभिलेखों में किया गया है।

अभिलेखीय उल्लेखों से—जैन साहित्य में वर्णित^{३१},
चौबीस तीर्थङ्करो की मान्यता सत्य प्रतीत होती है।
अभिलेखों से यह भी प्रमाणित हो जाता है कि वे प्रथम
अर्हन् ऋषभ ही थे, जो अवसर्पिणी काल में अवतरित
हुए थे।^{३२} अभिलेखों में जिन कतिपय तीर्थङ्करो के उल्लेख
मिले हैं, उनसे स्पष्ट है कि प्राचीन कालीन तीर्थङ्करो का

३५. राज्ये कुलस्याभिविद्धमाने पद्भिर्भूतैर्वषंशतेऽथ-
मासे सुकातिके बहुलदिनेथ पचमे गुहामुखे स्फुटविकटो
त्कटामिमा जितद्विषो जिनवरपार्श्वसज्जिकाम्।

इण्डियन एण्टीक्वेरी जि० ११, पृ० ३१०।

३६. ट्रेकट स० ६८ वही : पृ० ७।

३७. संस्कृति के चार अध्याय : पृ० १३०।

३८. (अ) डा० हेनरी, फिलासफी आफ इण्डिया पृ०
१८२-१८३।

(ब) प्रो० आयङ्कर, स्टडीज इन साउथ इण्डियन
जैनिज्म, जि० १, पृ० २।

३९. सं० १२०३.....श्री बीर-वर्द्धमानस्वामि प्रतिष्ठापिकः
.....” ग्रहार अभिलेख . सं० १२०३, अनुक्र० १।

४०. “सोऽय जिनः सन्मतिः”

एपि० इ० जिल्द २ : पृ० २३२-२४० अभि० प० ८।

४१. श्री यतिवृषभ; तिलोयपण्णत्तिः भाग २; श्री जैन
संस्कृति संरक्षक संघ शोलापुर, १९४३ ई० पृ०
१०१३।

४२. सूत्रधार मण्डन; प्रतिमाशास्त्र : बही; पृ० २०३-२०४

मान्यता का अनुशरण ही परवर्ती काल में किया गया था।

जैन तीर्थङ्करों में प्रथम अर्हन् आदिनाथ को योग विद्या का आरम्भकर्ता^{४३} एवं समस्त क्षत्रियों का पूर्वज बताया गया है^{४४}। जैनदर्शन में भी स्पष्ट कथन मिलता है कि जिस समय आदिनाथ जन्मे थे उस समय कोई वर्ण व्यवस्था न थी किन्तु जब उन्होंने प्रजा की रक्षा द्वारा अपनी आजीविका करना निश्चित कर लिया तब वे स्वयं को क्षत्रिय वर्ण का कहने लगे थे^{४५}। आजीविका के आधार पर क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, तीन भागों में मनुष्य को आप ने ही विभाजित किया था^{४६}। इस प्रकार जैन साहित्य से भी आदिनाथ समस्त क्षत्रियों के पूर्वज ज्ञात होते हैं।

इसी प्रकार उनके योगी होने के प्रमाण भी पुरातात्विक सामग्री से उपलब्ध हो जाते हैं। मोहनजोदड़ो से साढ़े पाँच हजार वर्ष पुरानी वस्तुएं खुदाई से प्राप्त हुई हैं। उनमें प्लेट संख्या २ की ३ से ५ तक की सीलों पर अंकित योगी आकृतियों का अध्ययन कर प्रो० रामप्रसाद चन्दा ने लिखा है कि ये एक योगी के आसन की मुद्राएं हैं। उन्होंने इन योगी—आकृतियों की तुलना जैन-मूर्तियों से करके, यह भी घोषित किया था कि ये आकृ-

तिया ऋषभ मूर्ति के पूर्व रूप हैं^{४७}। ये आकृतिया कायोत्सर्ग आसन में हैं तथा यह आसन खास तौर से जैनों का होने के कारण भी यह कथन उपयुक्त प्रतीत होता है।

कतिपय अन्य शिलोका अध्ययन कर स्व. बा. कामता-प्रसाद जी ने भी अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है कि इन मुद्राओं पर ऊपर की ओर जो छे नग्न योगी हैं। वे ऋषभ मन के योगी हैं जिन्होंने अहिंसा का उपदेश दिया है। जैन पुराणों में छे चारण योगी प्रसिद्ध हैं, जो यादव राजपूषि थे^{४८}।

डा० दिनकर ने भी लिखा है कि मोहनजोदड़ो की खुदाई में योग के प्रमाण मिले हैं। उनका कथन है जैन-मार्ग के आदि तीर्थङ्कर ऋषभदेव थे जिनके साथ योग और वैराग्य की परम्परा उसी प्रकार लिपटी हुई है, जैसी कालान्तर में, वह शिव के साथ समन्वित हो गयी। इस दृष्टि से कई जैन विद्वानों का यह मानना अशुक्ति युक्त नहीं दीखता कि ऋषभदेव वेदोल्लिखित होने पर भी, वेद पूर्व हैं^{४९}।

इस प्रकार न केवल पुरातात्विक सामग्री से ही आदिनाथ प्रथम योगी ज्ञात होते हैं अपितु साहित्यिक उल्लेखों से भी यही प्रकट होता है कि नाभि पुत्र ऋषभ ने योग-चर्या समादृष्टा के रूप में धारण की थी^{५०}। इस प्रकार सैन्धव-कालीन पुरातात्विक सामग्री से यह प्रमाणित हो जाता है कि आदिनाथ का अस्तित्व बहुत प्राचीन कालीन है। वे बहुतप्राचीन समय से जैनियों के आराध्य देव रहे हैं। एक प्राचीन-उदयगिरि (उड़ीसा) से प्राप्त, हाथी-

४३. “श्री आदिनाथाय नमोस्तु तस्मै, येनोपदिष्टा हृद्योग-विद्या” क्षु० पाश्चकीति वर्णी; विश्वधर्म की रूपरेखा : बीर सं० २४२५, जैन साहित्य सदन, चांदनी चौक, दिल्ली, पृ० २३। एवं देखिए :—(ब) सन्मति सन्देश, ५३५, गांधीनगर देहली-३१, जुलाई १९६६ पृ० ४-५।

४४. नाभिस्त्वजनयत्पुत्र मरुदेव्यां महाद्युतिम् ।
ऋषभ पार्थिवश्चेष्ट सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम् ॥
वायु-पुराण : अ० ३३, श्लोक ५०।

४५. ५० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री; जैनधर्म और व्यवस्था : भारतवर्षीय दि० जैन परिषद् दरीबाकला, दिल्ली, पृ० ६।

४६. उत्पादितस्त्रयो वर्णस्तदातेनादिदेवसा क्षत्रिया : वणि-जः शूद्राः क्षत्राणादिभिर्गुणै ॥१८३॥ आचार्य जिन-सेन; आदिपुराण : भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, द्वि० सं० १९६३ ई०, भाग—१; पृ० १६, पृ० ३६२।

४७. माडन-रिव्यु: प्रकाशन—अगस्त १९३२ ई०।

४८. जैनधर्म और तीर्थङ्करों की ऐतिहासिकता एवं प्राचीनता ट्रेकट संख्या ६८, वही, पृ० ११-१२।

४९. डा० रामधारीसिंह “दिनकर” संस्कृति के चार अध्याय : उदयाचल, राजेन्द्रनगर, पटना-४, चतुर्थ मस्करण १९६६ ई० पृ० ३६।

५०. नाभेरसौ ऋषभ आप्तमुदेवसूनुः ।

यो वै चचार समदृग् योगचर्याम् ॥

भागवत पुराण : स्कन्ध-द्वितीय, अध्याय ७, पृ० ३७२, श्लोक १०।

गुम्फा अभिलेख से भी यही ज्ञात होता है कि राजा खारवेल के आराध्य देव भी ऋषभ ही थे। वह जिन की प्रतिमा उसके द्वारा बृहस्पति मित्र से लायी गयी थी^{५१}। जिसे मगध का राजा नन्द, विजयचिह्न स्वरूप कलिंग जीत कर, उसके शासन के ३०० वर्ष पूर्व मगध ले गया था^{५२}।

इस उल्लेख से तथा मध्य प्रदेश के जैन अभिलेखों से यही प्रकट होता है कि जैनियों के चौबीस आराध्य-देवों की मान्यता बहुत प्राचीन कालीन है। जैन, परम्परा-नुसार उन्हें बहुत प्राचीनकाल से अपना आराध्य-देव स्वीकार करते चले आ रहे हैं।

ईसवी सन् की पहली शती में होने वाले—हुविष्क और कनिष्क के समय के जो अभिलेख मथुरा से प्राप्त हुए हैं, उनमें भी ऋषभदेव प्रथम तीर्थङ्कर का वर्णन आया है। कतिपय ऋषभदेव की मूर्तियाँ भी उपलब्ध हुई हैं^{५३}। इन शिलालेखों से स्पष्ट विदित होता है कि ईसवी सन् की पहली शती में ऋषभदेव प्रथम तीर्थङ्कर रूप में माने जाते थे। भागवत में ऋषभदेव के सम्बन्ध में यह भी कथन मिलता है कि वे न केवल दिगम्बर थे अपितु जैनधर्म के चलाने वाले भी थे^{५४}। एक महत् राजा से सम्बन्धित उल्लेखों से भी ऋषभदेव की जानकारी मिलती है^{५५}।

भागवत-पुराण के आधार पर ही अन्य विद्वान् भी यही स्वीकार करते हैं कि एक “त्रिगुणातीत पुरुष विशेष

५१. डा० बासुदेव उपाध्याय; प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन : प्रकाशक मोतीलाल बनारसीदास, बनारस, १९६१ ई० द्वि० भाग पृ० २७, अभि० प० १२।

५२. नन्दराजनीतानि अगस जिनस—नागनह रतन पडि-हारेहि अंग मागध वसव नेयाति—खारवेल शिला-लेख जैन सि० भा० भा० १६ कि० २, पृ० १३४।

५३. पं० कैलाशचन्द शास्त्री; जैनधर्म : वही, पृ० ६।

५४. प्रो० त्र्यम्बक गुरुनाथ काले; महावीर स्वामी की पूर्व परम्परा: वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ; वी० नि० २४७३, पृ० २४०।

५५. वही २४०।

५६. श्रीमद्भागवत : अध्याय ६; श्लोक १-११।

परमेश्वर ने ऋषभभावतार लिया था, जो जगत के लिए परमहंस चर्या का पथ दिखाने वाले थे, जिन्हें जैनधर्मावलम्बी भाई आदिनाथ कहकर स्मरण करते हुए जैनधर्म का आदि प्रचारक मानते हैं^{५६}।

बौद्ध साहित्य में उपलब्ध जैनधर्म की प्राचीनता विषयक उद्धरणों से एक समय था जब बेवर जैसे विद्वानों ने जैनधर्म को बौद्धधर्म की एक शाखा बताया था^{५७}। किन्तु इस भ्रान्ति को दूर करने में भी विद्वानों को देर न लगी। विद्वान् जैकोबी ने इस धारणा का खण्डन किया^{५८}। तथा यह प्रमाणित कर दिया कि जैनधर्म बौद्धधर्म से न केवल स्वतन्त्र एवं पृथक् धर्म है अपितु वह उससे बहुत प्राचीन भी है।

कतिपय विद्वानों की यह भी धारणा है कि जैनधर्म के प्रवर्तक पार्श्वनाथ अथवा महावीर थे। परन्तु यह विचारणीय प्रश्न है यदि महावीर या पार्श्वनाथ ही जैनधर्म के चलाने वाले होते तो उनकी मूर्ति भी जैनधर्म के प्रवर्तक इस उल्लेख सहित स्थापित की गयी होती। जैसी कि ईसवी सन् की प्रथम शती की ऋषभदेव की प्रतिमाएँ पूर्वोल्लेख सहित मथुरा से प्राप्त हुई हैं। जैनधर्म के प्रवर्तक के सम्बन्ध में कतिपय विद्वानों के विचार भी उल्लेखनीय हैं। डा० सतीशचन्द महोपाध्याय ने लिखा है कि “जैनधर्म तब से प्रचलित हुआ है, जब से संसार में सृष्टि का आरम्भ हुआ है। मुझे इसमें किसी प्रकार की उज्र नहीं है कि जैनधर्म वेदान्तादि दर्शनों से पूर्व का है^{५९}।” डा० संकलिया ने भी ऐसे ही विचार प्रकट किये हैं^{६०}। डा० राधाकृष्णन् ने तो स्पष्ट रूप से लिखा है कि “वर्द्धमान अपने को उन्हीं सिद्धान्तों का

५७. प्रो० माधवाचार्य एम. ए; जैन दर्शन : वर्णी अभि-नन्दन ग्रन्थ : वही पृ० ७६।

५८. Weber; Indische studien : XVI. P. 210

५९. The Dictionary of Chinese Buddhist Terms P. 184.

६०. क्षु० पार्श्वकीर्ति; विश्वधर्म की रूपरेखा : जैन साहित्य सदन, चाँदनी चौक दिल्ली; वि. सं. २४८५ पृ० ६२।

६१. वही : पृ० ६१।

इच्छा नियंत्रण

यह मानव अनादिकाल से इच्छाओं की अनंत ज्वालाओं में भुलस रहा है। इच्छाओंका अन्तर्द्वन्द्व आत्म-शक्ति का शोषक है वह उसे कमजोर बनाता जा रहा है। इच्छाओं का परिणमन प्रति समय हो रहा है। साधक इनके जाल से उन्मुक्त होना चाहता है, वह छटपटा रहा है। पर वे असीम इच्छाएँ इसे एक समय भी चैन नहीं लेने देती। ऐसा मालूम होता है मानो इच्छाओं ने उसे खरीद लिया है—अपना दास बना लिया है—इसी से उन पर विजय प्राप्त करने में वह अपनेको असमर्थ पा रहा है। इच्छाओंका अनियन्त्रण इन्द्रिय-विषयों में घकेल रहा है। साधक की इस दयनीय दशा को देख कर गुरु बोलें, बत्स ! तू इतना कायर और अधीर क्यों हो रहा है। इस दीन दशा से छुटकारा पाने का उपाय क्यों नहीं सोचता। तू अनन्त चैतन्य गुणों का भंडार है, तेरी शक्ति अपरिमित है, असीम है। अपनी ज्ञाता दृष्टा शक्ति की ओर देख, पर पदार्थों से स्नेह कम कर। उनमें अहंकार ममकार न कर। इन्द्रियों के अनियन्त्रण से मन चंचल होता है मन की चंचलता से आत्मा बहिर्मुखी हो जाती है। और बाह्य जड़ पदार्थों की ओर भुंकने लग जाती है।

पर साधक ! यदि तू इससे छुटकारा चाहता है और अपनी आत्म-निधि को पाना चाहता है। एवं दुःख विनिवृत्ति से होने वाला सुख चाहता है, तो इन्द्रिय विषयों पर नियन्त्रण कर, इन्द्रियों की विषयों से विमुखता होने पर मन की चंचलता मिटेगी, आत्मबल जागेगा। और आत्मा अपने स्वरूप की ओर अग्रसर होने लगेगा। धीरे-धीरे आत्म-शक्ति का विकास बढ़ता जायगा, आशालता मुरझाने लगेगी। आत्मा और ज्ञान के आलोक से आलोकित हो उठेगा, अभिलाषाओं का नियंत्रण आत्मा को कुमार्ग से रोकेगा, एक समय ऐसा प्राप्त होगा जब मोह के अभाव से आशा लता सूख जायगी। और आत्मानन्द में मस्त हुआ आत्म-निधि का उपभोग करने वाला चैतन्य जिन बन जायगा। वह सुदिन मुझे कब प्राप्त होगा, उसी की अन्तर्भावना मुझे भव-भव में प्राप्त हो यही कामना है।

—सध्यावक

प्रवर्तक बतलाते थे, जिन सिद्धान्तों को परम्परानुसार उनके पूर्ववर्ती २३ तीर्थङ्कर स्वीकार करते हैं।" डा० सा० के विचार से महावीर किसी नये मत के संस्थापक नहीं थे। भागवत पुराण के आधार पर उन्होंने ऋषभदेव को ही जैनधर्म का प्रवर्तक बताया है। डा० सकालिया ने भी लिखा है कि "ऋषभदेव का उस समय अस्तित्व था जब मनुष्य जंगली जानवर सा था।" तत्कालीन मनुष्यों का जीवन स्तर ऋषभदेव द्वारा ही उन्नत किया गया था। सम्भवतः इसीलिए वे प्रथम तीर्थङ्कर और उपदेष्टा कहे जाते हैं।

६२. इण्डियन फिलॉसफी : जिल्द १, पृ. २२७।

६३. "The Bhagavata Puran endorses the View that Rishabha was the founder as Jainism." वही : जिल्द १, पृ. २८७।

६४. वायस भाव ग्रंथिः; ऋषभदेव विशेषांक : १६५२ ई.

इस प्रकार विभिन्न विद्वानों के विचारों से यह धारणा भी अनुपयुक्त प्रतीत होती है कि जैनधर्म के प्रवर्तक महावीर या पार्श्वनाथ थे। पूर्वोल्लेखों से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि जैनियों के आराध्य देव बहुत प्राचीन कालीन हैं। परम्परानुसार जैन युग-युगों से उन्हें पूजते चले आ रहे हैं। प्रत्येक निष्पक्ष विद्वान् तीर्थङ्करों की प्राचीनता के सम्बन्ध में उपरोक्त प्रमाणों के आधार पर यही मत निरूपित करेगा कि तीर्थङ्करों की प्राचीनता न केवल पूर्व वैदिक कालीन है अपितु बहुत प्राचीन समय से ही उनका अस्तित्व चला आ रहा है। इन सभी प्रमाणों के आधार पर यह भी स्वीकार करना होगा कि ब्राह्मण संस्कृति की अपेक्षा श्रमण संस्कृति प्राचीनतर है।

६५. डा. भगवन्ध्र जैन; बौद्ध साहित्य में जैनधर्म : अनेकान्त—बाबू छोटेलाल स्मृति ग्रंथ : पृ. ६०।

पाण्डे लालचन्द का वरांगचरित

डॉ० भागचन्द्र भास्कर

इसी वर्ष के ग्रीष्मावकाश में जैन मन्दिर तेदूखेड़ा (होशंगाबाद) में सरक्षित हस्तलिखित ग्रंथों को देखने समय पाण्डे लालचन्द का वरांगचरित हाथ आ गया। यकायक ध्यान आया कि यह वरांगचरित सम्भवत वही वरांगचरित हो जिसका उल्लेख श्रद्धेय डा० ए० एन० उपाध्ये ने अपने वरांगचरित की प्रस्तावना (पृ. ५५) में किया है। मिलान करने पर मेरा अनुमान सही निकला। इसकी एक प्रति पंचायती मन्दिर, दिल्ली में भी होनी चाहिए।

प्रति परिचय—

तेदूखेड़ा जैन मन्दिर की इस प्रति में ५४ पत्र हैं। प्रत्येक पत्र के पृष्ठ में लगभग पन्द्रह पंक्तियाँ हैं और प्रत्येक पंक्ति में लगभग ५० अक्षर हैं। अक्षर मुपाठ्य हैं। छन्द नाम, सर्ग नाम, पद्य क्रमांक आदि लिखने में लाल म्याही का भी उपयोग किया गया है। पत्र के चारों ओर हाँसिया छूटा है। जहाँ-तहाँ उसका उपयोग लेखन काल में छूटे हुए शब्दों को लिखने में भी किया गया है। लिपि-काल का उल्लेख इस प्रति में दिखाई नहीं दिया। अतः प्रति कब की है, इस विषय में निश्चित रूप से कुछ भी कहना शक्य नहीं। असम्भव नहीं यदि यह प्रति स्वयं कवि द्वारा लिखी गई हो। ग्रंथ की प्रशस्ति से भी यह अनुमान सही होता दिखाई देता है। वहाँ लिखा है कि गोभा-चन्द के पुत्र नथमल आगरे से हीरापुर आये और ग्रन्थ उन्हीं के सहयोग से हीरापुर में समाप्त हुआ। हीरापुर का भी जैन मन्दिर देखा मैंने। वहाँ इस ग्रंथ की कोई प्रति नहीं मिल सकी। हीरापुर और तेदूखेड़ा के बीच कोई बहुत दूरी नहीं। हो सकता है, कभी किसी प्रकार यह प्रति हीरापुर से तेदूखेड़ा पहुँच गई हो। प्रशस्ति की कुछेक पक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

नन्दन, सोभाचन्द की नथमल अति गुणवान।

गोत विलालागगन मे उदयौ चन्द्र समान ॥

नगर आगरी तजि रहे हीरापुर में आय।
करत देखि इस ग्रन्थ की कीनौ अधिक सहाय ॥

ग्रन्थ की समाप्ति संवत् १८२७ में माघ शुक्ल पंचमी शनिवार को हुई, डा० ए० एन० उपाध्ये की सूचनानुसार। पर इस प्रति में शायद भूल से शनिवार के स्थान पर शशिवार लिख दिया गया है।

रचयिता—

प्रस्तुत कृति के रचयिता पाण्डे लालचन्द के विषय में अधिक जानकारी नहीं मिलती। वे हीरापुर (हिंडौन, जयपुर) के निवासी थे। बलात्कार गण की अटेर शाखा के भट्टारक विश्वभूषण (सं० १७२२-२७२४) के प्रशिष्य और अग्रवाल वंशीय ब्रह्मसागर के शिष्य थे।

सं० सु अष्टादस सत जान ऊपर सत्ताईस परवान।
माहु सुकल पावै ससिवार ग्रंथ समापति कीनौ सार ॥

देस भदावर सहर अटेर प्रमानियै।

तहाँ विश्वभूषण भट्टारक मानियै ॥

तिनके शिष्य प्रसिद्ध ब्रह्मसागर सही।

अग्रवाल वरवस विषे उत्पति लही ॥१३-८६॥

यात्रा कर गिरनार शिखर की अति सुखदायक।

पुनि आए हिंडौन जहां सब श्रावक लायक।

जिनमति कौ परभाव देखि जिन मन थिर कीनौ ॥

महावीर जिन चरन कमल कौ सरनौ लीनौ ॥

ब्रह्म उदधि कौ शिष्य पुनि पांडे लाल अयान।

छन्द शब्द व्याकरण कौ जामैं नाहीं भयान ॥१३६॥

कवि ने वरांगचरित में स्वयं के सन्दर्भ में प्रायः कुछ नहीं लिखा। वरांगचरित के अतिरिक्त षट्कर्मोपदेशरत्न-माला, विमलनाथ पुराण, शिवरविलास, सम्यक्त्व कोमुदी, अगमशतक आदि अनेक हिन्दी काव्यों के भी वे रचयिता रहे हैं।

वरांगचरित का आचार—

जीवन्धर व यशोधर जैसे नृपति वरांग भी जैन लेखकों

और कवियों के अत्यन्त प्रिय नायक रहे है। उनके चरित का आधार लेकर संस्कृत, प्राकृत व हिन्दी में पुस्कल-सृजन हुआ है। उसमें जटासिंहनन्दि का (७वीं शती) वरांग-चरित अधिक प्रसिद्ध है। यह संस्कृत भाषा में ३१ सर्गों में निबद्ध है। और माणिकचन्द ग्रंथमाला से प्रकाशित हो चुका है।

पाण्डे लालचन्द ने जिस वरांगचरित का आधार लिया है भट्टारक वर्धमान द्वारा संस्कृत में रचित वरांग-चरित है। यह ग्रन्थ मराठी अनुवाद के साथ प्रकाशित हो चुका है परन्तु प्रयत्न करने के बावजूद उसे देखने का सुअवसर नहीं मिल सका। अतः कहा नहीं जा सकता कि पाण्डे जी ने इस ग्रंथ का अविकल हिन्दी पद्यानुवाद किया है अथवा उसका आधार लेकर नये ग्रंथ का निर्माण किया है। प्रथम विकल्प अधिक सम्भावित है। उन्होंने लिखा है—

जो वरांग की कथा कही आगे गन नायक ।
अति विस्तार समेत मनोहर सुमति विधायक ॥
सोई काव्य अनूप काव्य रचना कर ठानी ।
भट्टारक श्री वर्धमान पंडित वर ज्ञानी ॥
तिनही कौ पुनि अनुसार लै मैं भाषा रचना करू ।
जिन पर हित सुविचार कै,,

कछु अभिमान निजि प्रघरूं ॥१-१२॥
कहां श्री वरांग नाम भूपति की कथा,

यह अति ही कठिन वर संस्कृत बानी हैं ।
कहां पुन निहचै मु अल्प मात्र मेरी मति,

ताकै कहिवे कौ निज मनसा में ठानी है ॥
जैसे कल्पतरू साखा फल नभ पर,

सत वामन नर तीरी चाहै मूढता सुजानी है ।
तैसे बाल ख्याल सम ग्रंथ मैं आरम्भ कीनौ,

बुधजन हासीकर कहैगो अज्ञानी हैं ॥१-३१॥

ग्रन्थ के अन्त में भी कवि ने स्पष्ट कर दिया है कि यह रचना भट्टारक वर्धमान द्वारा वरांगचरित के आधार पर प्रसूत हुई है—

मूल ग्रंथ अनुसार सब कथन आदि अवसान ।
निज कपोल कल्पित कही वरनी नाही सुजान ॥
समस्त शास्त्र अर्थ कौ वियोज मी विषै नहीं ।

तउग्रहीन के सुपुण्य हेत मैं कियो सही ॥

वरांग भूप के बड़े चरित्र को प्रबन्ध है ।

सुधीन के सुचित कूं हरै सदीव ग्रंथ है ॥१३-६७॥

भट्टारक श्री वर्धमान अत ही विसाल मति ।

कियो संस्कृत पाठ ताहि समझै न तुच्छ मति ॥

ताही के अनुसार अर्थ जो मन मैं आयौ ।

निज पर हित सुविचार लाल भाषा कर गायौ ॥

जो छन्द अर्थ अनमिल कहूं वरन्यौ सुजान कै ।

लीजो संवार बुधजन सकल यह विनती उर आनि कै ।

ग्रंथ संक्षेप—

समूचा ग्रन्थ १३ सर्गों में विभक्त है। सक्षिप्त कथा इस प्रकार है—

प्रथम सर्ग—मंगलाचरण तथा ग्रंथ के आधार आदि के विषय में लिखने के बाद कवि कथा प्रारम्भ करता है। जम्बू द्वीप में भरत क्षेत्रवर्ती सोम्या-चल पर्वत के पास रम्या नामक नदी है। उसके किनारे कोतपुर नामक नगर बसा है। जैन मन्दिर व मुनियों से शोभित उस ग्राम का अनोखा सौन्दर्य है। महिलायें भी रूप की निधान हैं। कोतपुर नगर (जटासिंहनन्दि के अनुसार उत्तमपुर) का राजा हरिवंशोत्पन्न धर्मसेन था। उसकी ३०० पत्नियाँ थीं। उनमें मृगसेना और गुणदेवि मुख्य थीं। महिषी गुणदेवि को पुत्र हुआ जिसका नाम वरांग रखा गया। वरांग की बाल्यावस्था और युवावस्था का सुन्दर वर्णन है। इस सर्ग का नाम वंशोत्पत्ति है।

द्वितीय सर्ग—युवक वरांग विवाह के योग्य हुआ। सभा में एक दिन भूपति के पास एक बणिक आया। उसने समृद्धपुर नरेश धृतसेन और महाराज्ञी अनुला की राज-कुमारी अनूपमा का उल्लेख किया। बणिक को विदाकर धर्मसेन ने मन्त्रियों से विचार-विमर्श किया फलतः ललित-पुर नरेश देवसेन, वरांग के मामा विद्धपुर नरेश महेन्द्रदत्त, सिन्धुपुर नृपति तप, अरिष्टपुर नृपति सनतकुमार, मलय देशाधिपति मकरध्वज, चक्रतुर नृपति सुरेन्द्रदत्त, गिरित्रजपुर वज्रायुध, कौसलेश सिधमित्र एवं अगदेशाधिपति विनय-वरत के पास निमन्त्रण भेजे। उक्त सभी राजा क्रमशः सुनन्दा, वपुष्मती, यशोमति, वसुन्धरा, अनन्तसेना, प्रिय-व्रता, सुकेसी और विश्वसेना नाम की अपनी-अपनी सुपुत्री

ले आये। सभी के साथ वरांग का पाणिग्रहण सम्पन्न हो गया। इस सर्ग का नाम वरांग पाणिग्रहण रखा गया है।

तृतीय सर्ग—सभागार में एक दिन धर्मसेन के पास वनपाल आया और उसने वरदत्त मुनि के आगमन का शुभ सन्देश दिया। धर्मसेन सपरिकर उनकी वन्दना करने गये। उत्तर में वरदत्त ने धर्मोपदेश दिया। वरांग पर उस धर्मोपदेश का अत्यन्त गहरा प्रभाव पड़ा। यहाँ बारह व्रतों का सुन्दर वर्णन है। इस सर्ग का नाम धर्मोपदेश है।

चतुर्थ सर्ग—मन्त्रियों द्वारा वरांग के गुणों का वर्णन। धर्मसेन ने वरांग को राज्याभिषिक्त किया। इस अवसर पर गुणदेवी को प्रसन्नता होना स्वाभाविक ही था। परन्तु वरांग की सौतेली माता मृगसेना को ईर्ष्या भाव जाश्रुत हो गया। उसने अपने पुत्र सुषेण को उकसाया। सुषेण वरांग से युद्ध करने को तैयार हो गया, परन्तु वरांग के पक्ष में जनमत होने के कारण यह उसे अनुकूल प्रतीत नहीं हुआ। अतः उसने भेदक नीति का अवलम्बन लिया और अपनी कार्य सिद्धि के लिए सुबुद्धि नामक मन्त्री को अपनी ओर करने में सफल हो गया। इधर वरांग ने कौशल देश में कुशलतापूर्वक राज्य करना प्रारम्भ कर दिया। भृगु-लीपुराधिपति ने वरांग को दो सुन्दर घोड़े भेंट किये। मन्त्री सुबुद्धि ने उन्हें शिक्षित करने का उत्तरदायित्व अपने कन्धों पर ले लिया, सुषेण को राज्यासीन कराने के उद्देश्य से। उसने एक घोड़े को अच्छी शिक्षा दी और दूसरे को बुरी। इस सर्ग का नाम 'राज्यलाभ' है।

पंचम सर्ग—दोनों घोड़ों की परीक्षा ली गई। मन्त्री सुबुद्धि ने दो सवारों को उन पर बैठाकर नृत्य वगैरह वरांग के समक्ष प्रस्तुत किया और स्वयं ने परीक्षा करने के लिए उनको प्रेरित किया। वरांग जैसे ही दूसरे (कुशिक्षित) अश्व पर बैठा, वह राजा को लेकर वन की ओर तेज दौड़ा। इसी बीच दोनों एक अन्ध कूप में जाकर गिर पड़े। अश्व तत्काल ही काल-कलबित हो गया पर वरांग पूर्व कर्म के प्रभाव से बच गया। इस घटना से उसे संसार से विरक्ति हो गई। आभूषणादि उसी कूप में फेंके और चल पड़ा आगे। वृषातुर हो मूर्छित हुआ। शीतल मन्द पवन के झकोरों से मूर्छा दूर हुई। पुनः सांसारिक

अवस्था-का चिन्तन किया। इसी समय गज द्वारा सिंह का मर्दन करते हुए उसने देखा। इस सघर्ष से बचने के लिए वरांग तरु पर चढ़ गये। उतर कर बाद में उन्होंने सरो-वर में नहाया। नहाते समय मगर ने पैर जकड़ लिया। धर्मध्यान किया। पैर छुड़ाने में यक्ष ने सहायता की। वरांग की परीक्षा लेने एक देवी आई। उसने स्त्रयं को स्वीकार करने की राजा से प्रार्थना की। परन्तु वरांग अपने एकपत्नी व्रत से डिगे नहीं।

पुनः विपत्ति आई। वरांग को भीलों ने बाँध लिया। बलि निमित्त उसे ले जाते समय भीलों को समाचार मिला कि भील राजा के पुत्र को सर्प ने काट लिया है। उसके कोई बचने का उपाय न देखकर वरांग ने णमोकार मन्त्र पढ़कर विष दूर किया। प्रसन्न होकर भीलराज ने उसे छोड़ा और अर्घ-सम्पदा देनी चाही। पर वरांग ने अपने घर जाने की कामना व्यक्त की। भीलराज ने सुरक्षा पूर्वक उसके लौटाने का प्रबन्ध किया। मार्ग में सार्थवाह मिले। उन्होने कोई विशेष व्यक्ति मानकर उसे सार्थवाह-पति सागरवृद्ध के पास ले गये। वरांग को कोई महापुरुष समझकर सागरवृद्ध ने छोड़ दिया। उसे भोजन कराया।

षष्ठ सर्ग—सागरवृद्ध सार्थवाहपति के साथ १२ हजार भीलों का युद्ध हुआ। पराजयोन्मुख सागरवृद्ध को वरांग ने विजय का हार पहनाया। सारी भील सेना मारी गई। वरांग भी घायल हुए। पर वे सागरवृद्ध की सेवा से शीघ्र ही स्वस्थ हो गये। इस उपलक्ष्य में ललितपुर में एक बहुत बड़ा उत्सव मनाया गया। सागरवृद्ध और उनकी पत्नी ने वरांग को अपना धर्म पुत्र स्वीकार किया। वहाँ उसे नगर सेठ बना दिया गया। इस सर्ग का नाम ललितपुर प्रवेश रखा है।

सप्तम सर्ग—इधर धर्मसेन से सेवकों ने समूची कहानी सुनाई कि किस प्रकार अश्व वरांग को लेकर भाग गया। यह हृदय विदारक वृत्तान्त सुनकर भूपति मूर्छित हो गया। सचेत होने पर चारों ओर सेना भेजी उसे खोजने। वरांग के आभूषण तथा अश्व के तो अस्थि-पंजर मिले पर वरांग नहीं मिल सके। संसार की यह विचित्र अवस्था देखकर भूपाल को संसार से वैराग्य होने लगा। मुनि का धर्मोपदेश पाया। तथा सुषेण को

युवराज बना दिया। इस सर्ग का नाम अग्रय रखा।

अष्टम सर्ग—मथुरापुरी में राजा इन्द्रसेन व उसका पुत्र उपेन्द्रसेन राज्य करते थे। इन्द्रसेन ने देवसेन के पास उसका हाथी लेने के लिए दूत को ललितपुर भेजा। देवसेन ने इसे अपना अपमान समझा। फलतः दोनों में युद्ध हुआ। इन्द्रसेन की ओर से अंग, वंग, कलिंग, कस-मीर, केरल आदि के राजा रण में उतरे। देवसेन के नगर को भरपूर लूटा गया। देवसेन भागना चाहता था परन्तु नहीं भाग सका। अग्नेय कोट के भीतर बैठकर इन्द्रसेन को पराजित करने के लिए मन्त्रियों से विचार-विमर्श किया। किसी एक मन्त्री ने सागरवृद्ध के धर्मपुत्र भट (बरांग) की वीरता की प्रशंसा की और उसे युद्ध में अपनी ओर से लड़ने के लिए आमन्त्रित करने की सलाह दी। बरांग देवसेन का भानजा निकला। इन्द्रसेन को विजित करने पर राजा ने उसे आधा राज्य व सुन्दरी सुता देने को कहा। इस प्रसंग में प्रस्तुत बरांगचरित में संस्कृत ग्रंथों की तरह सेना प्रयाण तथा युद्ध का सुन्दर वर्णन मिलता है। कृषक समाज ने भी इस युद्ध में भाग लिया। उपेन्द्र व विजयकुमार तथा उपेन्द्र और बरांग के युद्ध का जीवन्त वर्णन यहाँ उपस्थित किया गया है। इसी प्रसंग में जैनधर्म के अनुसार जातिवाद पर भी विचार किया गया है। उपेन्द्र द्वारा बरांग पर चक्रचालन हुआ। बरांग ने उसका खण्डन किया। उपेन्द्र का युद्ध में मरण हुआ। इन्द्रसेन को भी बरांग ने पराजित किया। यहाँ बरांग को 'कश्चिद् भट' कहा गया है। इस सर्ग को इन्द्रसेन पराजय नाम दिया गया है।

नवम सर्ग—बरांग के साथ देवसेन ने अपनी पुत्री सुनन्दा को विवाह। आधा राज्य भेंट दिया। सागरवृद्ध के घर दम्पति सुख पूर्वक रहें। नृप सुता मनोरमा बरांग पर असक्त हो गई। परम्परानुसार चित्र निर्माण, रुदन व वियोगावस्था का चित्रण किया गया। बरांग के पास दूती पहुँची। बरांग ने अपने एकपत्नी व्रत का स्मरण करा दिया। इस सर्ग को 'सुनन्दा लाल मनोरमा दुःख-विरहावस्था' नाम दिया है।

दशम सर्ग—धर्मसेन के पुत्र सुषेण को शत्रुओं ने पराजित किया। धर्मसेन ने देवसेन के पास पहुँचने की

इच्छा व्यक्त की। संयोगवश यह लेख बरांग को मिल गया। देवसेन और बरांग का गाढ़ परिचय हुआ। मनोरमा के साथ बरांग का विवाह हुआ। सभी लोग बरांग के साथ धर्मसेन के पास पहुँचे। धर्मसेन और बरांग का पिता-पुत्र के रूप में भेंट हुआ। इस सर्ग का नाम बरांग प्रत्यागम नृपसंगम नाम दिया है।

एकादश सर्ग—बरांग ने विविध भोग भोगे। देवसेन ने अपनी पुत्रियों को बरांग की माता और अपनी बहन गुणदेवी के लिए सौंपा। सुषेण व माता मृगसेना को सम्पदादिदान देकर सम्मानपूर्वक विदा किया। विजय प्राप्ति के लिए बरांग का ससैन्य गमन। इन्द्रसेन ने भयभीत होकर अपनी मनोहरा नामक पुत्री का बरांग के साथ विवाह किया। यहाँ बरांग की विजयों का उल्लेख तो नहीं किया गया पर इतना तो अवश्य लिखा गया—
“उदाधि अन्त लो अगनी सबै जीती नृप बरांग ने तबै”
राज्य भेंट करते समय यह बात कुछ अधिक स्पष्ट हो जाती है। विदर्भ का राज्य उदधिदृढ़ को, कलिंग का राज्य उदधिदृढ़ के कनिष्ठ-पुत्र को, पल्लव का राज्य अनन्त सचिव को, बनारस का राज्य चित्रसेन मन्त्री को, विसालापुरी का राज्य अजित मन्त्री को, व मालव देश का राज्य देवसेन मन्त्री को भेंट किया। बाद में सरस्वती नदी के किनारे अनन्तपुर की स्थापना व उस पर स्वयं बरांग राज्य करने लगे।

द्वादश सर्ग—बरांग एक दिन अनूपमा के घर गये। अनूपमा ने बरांग से धर्मस्वरूप पूछा। इस प्रसंग में कवि ने त्रिरत्न, बारह व्रत, जिन मन्दिर निर्माण, जिनबिम्ब प्रतिष्ठा, पंचामृताभिषेक आदि का वर्णन किया है। धर्मस्वरूप सुनकर अनूपमा ने नगर के बीच एक चन्द्रप्रभ जिन मन्दिर का निर्माण कराया। बड़े उत्साह से बिम्ब-प्रतिष्ठा हुई।

कालान्तर में बरांग का एकान्तवादियों के साथ शास्त्रार्थ हुआ। स्याद्वाद के आधार पर उन्होंने सभी को पराजित किया। कुछ समय बाद अनूपमा को पुत्र लाभ

१. प्रस्तुत प्रति में एकादश व द्वादश सर्ग के बीच कोई सीमा रेखा नहीं।

हुआ । उसका नाम सुगात्र रखा गया । विवाह भी हुआ । इस सर्ग का नाम सिद्धायतन निर्माण जिन बिम्ब-प्रतिष्ठा प्रतिपादक रखा है ।

त्रयोदश सर्ग—वरांग ने एक दिन प्रातःकाल स्नेहा-भाव से दीपक को बुझते हुए देखा । इसका असर उसके मन पर अधिक पड़ा । फलतः संसार से उद्धिग्न हो गया । धर्मसेन से जिनमुद्रा धारण करने की अनुमति माँगी पर पिता के आग्रह से वे कुछ समय और गृहस्थावस्था में रहे । बाद में सुगात्र को अभिषिक्त कर वरदत्त मुनि से मुनि दीक्षा ग्रहण की । उदधिबद्ध आदि लोग भी साथ हो लिए । वरांग मुनि सर्वार्थसिद्धि में ग्रहमिन्द्र हुए । वहाँ से च्युत होकर नर जन्म ग्रहण कर मुनिव्रत धारण कर मोक्ष जावेंगे ।'

ग्रन्थ का प्रारम्भ भाग—

कवि ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में जिनेन्द्र भगवान को प्रणाम किया है । उसका आदि भाग इस प्रकार है—

कनक वरन तन आदि जिन हरन अखिल दुख वन्द ।
नाभराय मरुदेवि श्रुत बंदी रिषभ जिनेन्द्र ॥१॥
श्री जिन कौ सुभजान मुकर अति निर्मल राजत ।
जामै जगत समस्त हस्त रेखावत भासत ॥
मोह सहित संसार विषे मन जिन चिन्तन कौ ।
पावन करहु सदीव चित्त सो जिन वर तन कौ ॥२॥
अति विशुद्ध वर सुकुल ध्यान चलकर सुखदायक ।
निर्मल केवल ज्ञान पाय तिष्ठे जग नायक ॥
वसुविधि कर्म प्रचण्ड नास करि एक क्षिणक मे ।
अजरामर सिव सुख लह्यो जिन एक समय मे ॥
अैसे जे सिद्ध अनंत गुण सहित वसत शिव लोक मे ।
तो परम सुद्ध ता हेत मुझ होऊ देत नित धोक मैं ॥३॥

इसके बाद सर्वथा इकतीसा लिखा गया है । उसका भाव व भाषा सौन्दर्य बहुत अच्छा है—

हय गज रथ राज भारी सुत धन साज,
विनाशीक चित चाह न धरत है ।

१. सर्ग की यहाँ समाप्ति होनी चाहिए पर आलोच्य प्रति में प्रशस्ति लिखने के बाद यह समाप्ति दिखाई गई है ।

अव्यय अचित ज्ञान मई महातेज धाम,
अैसे शुद्ध आतमा कौ चितन चहत है ॥

ताही के प्रभाव सेती केवल सु ज्ञान पाय,
वसुविधि कर्म नाश शिव जे लहत हैं ।
अैसे जे महान गुणथान सूर सदा हमें,
ज्ञान लाल भी नमो नमो करत है ॥४॥

श्री जिन आगम सागर विचार समेत,
पढै नित जे चित लाई ।

शिष्यन कौ पुनि आप पढावत,
प्रीत समेत क्रिया सिखलाई ॥

पंच प्रकार मिथ्यात महातम,
नासन कू उमगे मुनिराई ।

ते उवभाय सदा सुखदाय,
हरौ अघपुज नमौ सिर नाई ॥५॥

समदमधारी क्षमा सेज के अधिकारी,
निज रस लीन अपहारी कर्म रोग के ।

दोय विध तप धार तत्त्व कौ करै विचार,
तजिकै सकल आस ज्ञाता उपजोन के ॥

भो जल तरौ या राग दोस के हरैया,
सिव तिय के चहैया भोगी जिन रस भोग के ।

अैसे मुनि निरग्रंथ देहु मोहि मोक्ष,
पन्थ अविचल अगधारी तीन काल जोग के ॥६॥

मूलसंघ सरसुती गच्छ बलात्कार गण,
धारक विसालमति विदित भुवन मे ।

भट्टारक वर्धमान गण गुण कौ निधान,
वादीभइव पचानन गाढौ निजपन मे ॥

कर्ता पुरानन कौ वक्ता जिन ग्रंथन को,
अक्षण कौ जेता जाकै माया नहि मन में ।

भूपति वरांग कौ चरित्र यह कीनौ सार,
रहौ जयवन्त ससि रवि लौ गगन मे ॥७॥

देश भदावर शहर अटेर प्रमानिये ।

तहां विश्वभूषण भट्टारक मानिये ॥

तिनके सिष्य प्रसिद्ध ब्रह्म सागर सही ।

अग्रवाल वर बंस विषे उतपति लही ॥

ब्रह्म उदधि कौ शिष्य पुनि पांडे लाल अयान ।
छन्द शब्द व्याकर्ण कौ जामै नाहीं ग्यान ॥

संवत सु अष्टादस शत जान ।
ऊपर सत्ताईस परवान ॥
माहु सुकल पावै शशिवार ।
ग्रन्थ समाप्त कीनौ शार ॥

छन्द विधान—

आलोच्य बरांगचरित में दोहा, काव्य, छन्द, छप्पय, सर्वैया, इकतीसा, अडिल्ल, चौपाई, नाराच, हरिगीत, रोला, भुजंगप्रयात, सबैया, तेईसा, तोटक, कुण्डलिया, पढड़ी, सोरठा, कुसुमलता, बरवीर आदि छन्दों का उपयोग किया गया है। कुल छन्द १,२३४ है। संग-क्रम से ५५, ७८, ५४, ६५, १३२, ७३, १०१, १६५, ८४, ६४, १७२ और १०१ पद्य है। कवि को अनुष्टुप्, सर्वैया इकतीसा, चौपाई और अडिल्ल अधिक प्रिय लगते हैं। प्रायः सभी छन्द निर्दोष है। छन्दों का उपयोग भावानुसार किया गया है।

भाषा शैली—

कवि की भाषा में लय व प्रवाह है। सरलता के कारण पाठक का मन ऊबता नहीं। पद्यों में जहाँ एकता, मुदा, कश्चित् जैसे संस्कृत शब्द मिलते हैं वही धौस (३-३४), मौसौ जौली (७-८५), फंट (८-६३), कित जायगौ (८-६५), लरै (८-२७८) आदि जैसे शुद्ध बुन्देलखण्डी शब्द भी देखने को मिलते हैं। सच तो यह है कि बुन्देलखण्डी का प्रभाव ग्रंथ पर अधिक है। होनाभी चाहिए। कवि व उसकी कृति, दोनों राजस्थान में प्रभूत है।

कवि के प्रायः प्रत्येक चित्रण में स्वाभाविकता भूल-कती है। प्रकृति चित्रण की मनोहारिता देखिये—

मद जल करत कपोल लोल अलिकुल भंकारत ।

तिनकौ सबद प्रचंड दसौ दिसमें विसतारत ।
अंजन अंचल समान श्याम उन्नत तन भाषत ।
फेरत सुंड दण्ड देत दीरघ सुप्रकाशत ॥
अतिक्षुधित निरख गज उछरिकै,
तिहि सन्मुख घायौ जबै ।
निज दतनि सौ मातंग नै हरि,
कौ उर भेद्यो तबै ॥५-३७॥

युद्ध का जीवन्त चित्रण—

खैच कान परजंत वीर कौ दंड कौ ।
छोरत तीछन सायक धरत उमंग कौ ॥
भेदत है छाती अरीन की जाय कै ।
पीवत भये रुधिर तें वान अघाय कै ॥
कवच धरें तन माहि शूर या जेह जू ।
छाती तिन की भेद तिस्य सर तेह जू ॥
सुभट नरन कौ प्रथम डार निरधार जू ।
पाछै परत भये ते भूम मभार जू ॥८-१०५॥

इसी प्रकार अन्य वर्णनों में भी कवि ने विषय के अनुरूप भाव और भाषा का आधान किया—पत्नी विलाप ७, ३६-४३, नृपविलाप ७. ६५-६८, नृप सुता का वियोग-कालीन विलाप ६-४६, ससार अवस्था का चित्रण, ७, ८१-६१, १३, १-११, तप वर्णन, १३, ७४-७८, पुण्य-पाप का चित्रण ४, ६४, ५, ३२ आदि। इन वर्णनों को पढ़कर यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तुत कृति में प्रायः सभी रसों का उपयोग किया गया है।

पाण्डे लालचन्द की यह कृति 'बरांगचरित' भाव और भाषा दोनों दृष्टियों से निःसन्देह उच्चकोटि की है। उसे आद्योपान्त पढ़ने पर कर्ता को महाकवि और कृति को महाकाव्य कहे बिना जी नहीं मानता। महाकाव्य के आवश्यक लक्षण इसमें मौजूद हैं। अतः कृति प्रकाशनीय है।

धन सम्पदा से ममता हटाने का उपदेश

जासों तू कहत यह सम्पदा हमारी, सो तो, साधनि अडारी जंसे नाक सिनकी ।
जासों तू कहत हम पुण्य जोग पाई सो तो, नरक की साई बड़ाई डेढ़ दिनकी ।
घेरा माहि परयो तू बिचारै सुख आखिन को, माखन के चूटत मिठाई जंसें भिनकी ।
एते पर उदासी होय न जगवासी जीव, जग में असाता है न साता एक छिनकी ।

विश्व मैत्री का प्रतीक : पर्युषण पर्व

प्रो० भागचन्द्र 'भागेन्दु' एम. ए. शास्त्री

‘पर्व’ शब्द अनेक अर्थों का ज्ञापन है। इसे बांस आदि की गांठ (ग्रन्थि) वाचक तो कहा ही गया है^१ तिथि-भेद (अमावस्या-पूर्णिमा आदि, प्रतिपद् और पंचदशी अर्थात् अमावस्या-पूर्णिमा की सन्धि^२), उत्सव तथा ग्रन्थ के अंश (जैसे आदि पर्व, वन पर्व, शान्ति पर्व आदि) का सूचक भी निरूपित किया है।^३

साहित्य में उपर्युक्त सभी अर्थों में इसका प्रयोग प्राप्त होता है, किन्तु समाज में सामान्य रूप से ‘पर्व’ का अभि-प्राय किसी त्यौहार, उत्सव या विशिष्ट अवसर से ही समझा जाता है। इस अर्थ में प्रचलित ‘पर्व’ धर्म और समाज की सामूहिक अभिव्यक्ति है। मानव जीवन में जिस निष्ठा, लगन, मान्यता, साधना आदि को प्रतिष्ठित करने के माध्यम से उपलब्ध होती है।

ऊपर कहा जा चुका है कि ‘पर्व’ शब्द उत्सव का वाची भी है। पर्व और उत्सव—दोनों ही समाज में आस्था और नवीन चेतना का संचार करते हैं। इनके माध्यम से समाज में अछे संस्कारों का निर्माण होता है। किसी भी धर्म, समय तथा राष्ट्र की सम्यता एवं संस्कृति की अभिव्यक्ति पर्वों के द्वारा सहज ही हुआ करती है।

भारतवर्ष में समाज की स्वस्थ, संयमी, सन्तुष्ट तथा सुखी बनाने के लिए अनेक प्रकार के पर्व समय-समय पर मनाये जाते हैं। संयमप्रधान जैनधर्म में भी इसी प्रकार

१. ‘ग्रन्थि ना पर्व परुषी।’

—‘अमरकोष’ : (चौखम्बा संस्करण, १९५७ ई०), २-४-१६२।

हिन्दी में इसे पोर या पोरा नाम से जाना जाता है।

२. ‘स पर्व सन्धिः प्रतिपत्यं च दश्यो र्यदन्तरम्।’

—उपर्युक्त : १-४-७।

३. ‘तिथिभेदे क्षणे पर्वः।’

—उपर्युक्त : ३-३-१२१।

के अनेक पर्वों का प्रावधान है। वे पर्व केवल खेल-कूद, आमोद-प्रमोद, या हर्ष-विषाद तक ही सीमित न होकर मानव में परोपकार, अहिंसा, सत्य, प्रेम, उदारता, आत्म-सयम, आत्म-मन्थन, मैत्रीभाव और विश्व-बन्धुत्व आदि उच्चकोटि की भावनात्मक प्रवृत्तियों का संचार करते हैं।

जैन-पर्वों में ‘पर्युषण पर्व’ या ‘बशलक्षण पर्व’ का बहुत अधिक महत्त्व और प्रचलन है। ‘पर्युषण’ का शाब्दिक अर्थ—पूर्ण रूप से निवास करना, आत्म-रमण करना अथवा आत्म-साधना में तन्मय होना। जैन-आगमों में इस अर्थ को व्यक्त करने वाले अनेक प्रकार के शब्द प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ पञ्जुषणा, पञ्जूषणा, पञ्जो-सवणा इत्यादि। ‘पर्युषण’ उक्त प्राकृत शब्दों का संस्कृतीकरण है। इस पर्व में आत्मिक विकारों (क्रोध, मान, माया, लोभ, ईर्ष्या आदि) पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है।

दिगम्बर परम्परा में वह पर्व भाद्रपद शुक्ल पंचमी से भाद्रपद (अनन्त) चतुर्वशी तक बड़े उत्साह के साथ सम्पन्न होता है जबकि इवेताम्बर परम्परा में भाद्रपद कृष्ण १२ से भाद्रपद शुक्ल ४ तक सोत्साह मनाया जाता है। सम्पूर्ण जैन-संघ धार्मिक आराधना और आत्म-चितन में पूर्ण रूप से लीन हो जाता है। आबाल-वृद्ध सभी में विशेष उत्साह दिखाई पड़ता है।

पर्व के अन्त में ‘क्षमा वाणी महोत्सव’^४ होता है। इस अवसर पर सभी एक दूसरे से सस्नेह मिलते हैं तथा अपनी

४. इसमें श्रावक, श्राविका, मुनि तथा श्रायिका—सभी सम्मिलित हैं।

५. इसकी मूल भावना प्रभुत गाथा में देखी जा सकती है :—

खम्मामि सब्ब जीवाणं सब्बे जीवा खमंतु मे।

मिस्ती मे सब्ब भूदेसु वरं मज्झं ण केण वि।

विगत भूलों-गलतियों-अपराधों आदि के लिए क्षमा-याचना करते हैं। वस्तुतः पर्यूषण पर्व के मूल-आधार विश्व वात्सल्य और विश्व-मैत्री ही हैं। इस पर्व के दश दिनों में एक-एक धर्म का मनन किया जाता है। प्रस्तुत निबन्ध में संक्षेपतः उन्ही दश अंगों का विवेचन किया जा रहा है :

उत्तम क्षमा :—इस विश्व में क्रोधाग्नि अत्यन्त प्रबल है। वही सब कुछ नष्ट कर डालती है। इस अग्नि को शान्त करने के लिए अहिंसा, दयाभाव आदि धारण करना आवश्यक है। “क्षमावीरस्य भूषणम्” अर्थात् वीर पुरुष का अलंकरण क्षमा ही है। क्रोधादि भावों से अशुभगति का बन्ध होता है।

किन्तु क्षमाभाव से शुभ शारीरादि प्राप्त होते हैं। आत्मा का स्वभाव उत्तम क्षमा है। क्रोध इसे नष्ट कर देता है। क्षमा मोक्षमार्ग में अत्यन्त सहायक है।

उत्तम मार्दव :—अभिमान का त्याग करना उत्तम मार्दव है। मान कषाय के बशीभूत होकर ही जीव आत्मा के मार्दव गुण को दूषित करता है। संस्कृत में इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है कि “मृदोर्भावः मार्दवम्” मृदुता कोमल जगती के समुदाय है। जो जीव कोमलता युक्त है, समझिए कि वह आत्मधर्म का बीजारोपण कर रहा है। इस मार्दव धर्म के धारण करने से परिणाम विशुद्ध होते हैं। इसमें जीव पापों से बचकर पुण्य में प्रवेश करता है। “स्वभावमार्दवम् च”^६ इस सूत्र में बतलाया है कि स्वतः स्वभाव से कोमल परिणाम होने से मनुष्यायु का आलव होता है।

उत्तम आर्जव :—कपट कषाय के त्याग करने को आर्जव कहते हैं। सरल भाव से ही धर्म पालन करना चाहिए। कपट भाव से पाला गया धर्म कभी भी सफल नहीं होता। आर्जव धर्म पर चलने से अपने त्रियोग भी पवित्र होते हैं तथा दूसरे अपने व्यवहार से सुखी होते हैं। मुनिजन सदा मायाकों जीतते हैं। प्रत्येक धर्मावलम्बी को

६. धर्म के दश अंग इस प्रकार हैं—

“उत्तमक्षमा, मार्दवार्जव, सत्य, शौच, संयम, तपस्या,

गाडकिञ्चन्य, ब्रह्मचर्याणि धर्मः।”

—आचार्य उमास्वामी : ‘तत्त्वार्थ सूत्र’, ६-६।

७. आचार्य उमास्वामी : ‘तत्त्वार्थ सूत्र’, ६-१८

“पर विश्वासघात नहीं कीजिए” इस भावना का अनुकरण करना आवश्यक है। अतः मायाचार को त्याग सीधा सरल व्यवहार करने से आर्जव धर्म पलता है।

उत्तम सत्य :—जहाँ आर्जव धर्म पलेगा वहाँ सत्य भी अवश्य पाला जावेगा। क्योंकि कपट के बशीभूत होकर ही जीव असत्य बोलते हैं। सत्य के द्वारा अपना आत्मा पवित्र होता है। दूसरों को भी कष्ट-नहीं होता। आधुनिक समय में जितने धर्म प्रचलित हैं सभी में सत्य प्रमुख स्थान रखता है। हमारे राष्ट्र पिता महात्मा गांधीजी ने सत्य एवं अहिंसा का सूक्ष्म आधार लेकर ही स्वराज्य प्राप्त किया था। व्यापार में तो सत्य परमावश्यक है। सत्य आत्मस्वरूप है, उसी से प्राप्त होता है। इसलिए “उत्तम सत्य वरत पालीजे, पर विश्वासघात नहीं कीजिए।”

उत्तम शौच :—प्रिय तथा अप्रिय वस्तुओं में समानता का व्यवहार करना तथा लोभ रूपी मल को धोना ही वास्तविक शौच धर्म है। इस धर्म को धारण करने से परिणाम शुद्ध होती है ठीक ही कहा है—“लोभ पाप का बाप बखानो”^७ अतः वह हेय है। साधुजन उत्तम शौच धर्म को धारण करते हैं, परिणाम विशुद्ध तथा इन्द्रिय दमन करते हैं। उनकी पवित्रता आंतरिक होती है।

उत्तम संयम :—जीवों की रक्षा करना, तथा इन्द्रियो और मन पर विजय पाना संयम है। छह कायके प्राणियों की दया पालना प्राणी संयम है। मुनिगण दोनों को पालते हैं। वर्तमान में इन्द्रियों के आधीन होकर समस्त समाज विषयवासना का शिकार हो रहा है। मानवता तो इसी में है कि इन्द्रियों को स्वाधीन किया जाय। हर तरह से सुखी एवं निर्द्वन्द्व, जीवन यापन के लिए संयम की अत्यन्त आवश्यकता है। संयम के प्रत्यक्ष उदाहरण त्याग-मूर्ति अनेक आचार्य और मुनिगण अब भी विद्यमान हैं। इनके जीवन से प्रत्येक को शिक्षा लेना चाहिए।

उत्तम तप :—जीवन को उच्च स्तर पर पहुँचाने के लिए तथा आत्मा की स्वच्छता प्रगट करने के लिए तप

८. कविवर दानतराय : ‘दश लक्षण धर्म पूजा’, बृह-ज्जनवाणी संग्रह, पृ० ४४७

९. वही, पृ० ४४८

धर्म आवश्यक है। व्रतोपवास करना, एकासन से सामायिक करना, दुःखी पुरुष की सेवा शुश्रूषा करना, पूजा के प्रति आदरभाव, शास्त्र स्वाध्याय आदि तपस्या के कई भेद प्रभेद हैं। सिर्फ भूखे रहना, धूप में बैठना आदि तप नहीं कहे जा सकते हैं। किन्तु कषाय^{१०} को शांत करके अत्मा-शुद्धि करना ही श्रेष्ठतप है। कर्मों की अविपाक-निर्जरा^{११} तप से ही होती है। त्रिकाल सामायिक करना भी एक प्रकार का तप है। **उत्तम त्याग** :—परद्रव्य से ममत्व भाव दूर करना त्याग धर्म है त्याग धर्म में चार प्रकार का दान वर्णित है।

दान से महान पुण्यबन्ध होता है। मुनिगण हमेशा प्राणी मात्र की रक्षा से ज्ञानदान देते हैं। धन की तीन अवस्थाएँ वर्णित हैं १-भोग, २-दान, ३-क्षय। भोग तो सभी भोगते हैं किन्तु बुद्धिमान मनुष्य उपभोग करते हुए दान मार्ग में प्रवृत्त होते हैं। कुछ जन ऐसे रहते हैं कि वे न तो भोग में और न दान में ही देने हैं। ऐसों के धन की तीसरी गति क्षय ही निश्चित है।

उत्तम आकिञ्चन्य :—संसार के समस्त पदार्थों से मोह छोड़ना आकिञ्चन्य धर्म कहते हैं। अपनी आत्मा के सिवाय संसार में कोई भी पदार्थ अपना नहीं है। मित्र, पिता, पुत्र, माता, स्त्री, धन आदि जिन वस्तुओं को मोह से हमने अपनाया है, वे सब अपनी नहीं हैं। यहाँ तक कि यह शरीर भी अपना साथ नहीं देता। तीर्थकरों ने वस्तु के स्वभाव को धर्म बतलाया है, और धर्म वही है, जो आत्मानुकूल हो। यह धर्म आत्मस्वभाव का द्योतक है।

उत्तम ब्रह्मचर्य :—आत्मा में रमण करने को ब्रह्मचर्य कहते हैं। आत्मा में आत्मा का रमण तभी हो सकता है, जब उचित वृत्ति निलिप्त हो। संस्कृत में इसकी व्युत्पत्ति

१०. कषन्ति=घ्नन्ति इति कषायाः। जो आत्मा के शुद्ध भावों की हिंसा करे, उनको मिला कर दे। मूलतः वे चार हैं : क्रोध, मान, माया, लोभ। इनमें से प्रत्येक के भी चार-चार भेद होते हैं।

११. कर्मों का अपने नियत विपाक समय के पूर्व तप आदि के द्वारा व अन्य कारणों से उदय की आवृत्ति में लाकर बिना फल भोगे या फल भोगकर खिरा देना। विस्तार के लिए देखिए—

आचार्य पूज्यपाद : सर्वार्थ सिद्धि, ८-३।

इस प्रकार है :—

ब्राह्मणि-आत्मनि, चरण-रमण इति ब्रह्मचर्यम्।
ब्रह्मचर्य का लक्षण निम्न प्रकार कहा गया है है :—

कायेन, मनसा, वाचा, सर्वावस्थानु सर्वथा।

सर्वत्र मेथुनं त्यागो, ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते॥

त्रियोग से सर्वदा और सर्वत्र मेथुन त्याग को ब्रह्मचर्य कहते हैं। तथा ब्रह्मचर्य परं तीर्थं, पालनीयं प्रयत्नतः—
ब्रह्मचर्य उत्कृष्ट तप है, इसे अवश्य पालना चाहिए।

मनुष्य की काम-भोग की लालसा को पहले सीमित करने तथा क्रमशः पूर्ण परित्याग करने का वैज्ञानिक प्रावधान जैनधर्म में उपलब्ध होता है।

मेथुन का अभिप्राय केवल शारीरिक भोग से ही नहीं है, प्रत्युत उस प्रकार की चर्चाएँ करना और मन में उस प्रकार के विचारों का आना भी “मेथुन” में शामिल है।

सयम को मन से सरलतापूर्वक नियंत्रित किया जा सकता है। यही मानसिक संयम ब्रह्मचर्य की ओर अग्रसर कराता है। वस्तुतः पाँचों इन्द्रियों के विषयों से निवृत्ति का नाम ही ‘ब्रह्मचर्य’ है।

भारत वर्ष में पर्व प्रेरणा स्रोत तो होते ही हैं, चित्त-शुद्धि के भी अनुपम साधन होते हैं। क्योंकि जब तक चित्त शुद्ध न होगा, तब तक विकास और उत्कर्ष असंभव होगा।

इस सन्दर्भ में आचार्य योगीन्द्र देव के विचार बहुत महत्वपूर्ण तो हैं ही, प्रेरणा स्रोत भी हैं :

“जहि भावइ तहि जाहि, जिन जं भावइ करि न जि !
केम्बइ मोक्षु ण अस्थि पर चित्तइ सुद्धि ण ज जि ॥”

[हे प्राणिन् ! जहाँ तुम्हारी इच्छा हो जाओ और जो इच्छा हो वह कार्य करो, किन्तु चित्त-शुद्धि पर ध्यान दो। क्योंकि जब तक चित्त शुद्ध न होगा तब तक किसी भी प्रकार अपना चरम उत्कर्ष (मोक्ष) नहीं प्राप्त कर सकते हो।]

इस प्रकार संक्षेप में कह सकते हैं कि विश्व वास्तव्य और विश्व बन्धुत्व का यह महापर्व हिंसा के विरुद्ध सम्पूर्ण जैन समाज का सामूहिक अभियान है। इस प्रकार के अभियानों से विश्व-मैत्री और विश्व-शान्ति सहज ही सम्भव है।

गुणस्थान, एक परिचय

मुनि श्री सुमेरुमल जी

जैन दर्शन आध्यात्मवाद पर टिका हुआ है। वह आत्म-सत्ता को ही परम सत्य मान कर चला है। आत्म-शक्ति का विकास ही जैन साधना पद्धति का फलित है। आत्म शक्ति की विकसित तथा अल्प विकसित रूप अवस्था को ही जैन दर्शन ने गुणस्थान के रूप में बतलाया है। क्रमशः आत्म विकास की ओर बढ़ना ही गुणस्थान रोहण कहलाता है। विश्व में ऐसा कोई प्राणी नहीं जो सर्वथा अविकसित हो, कुछ न कुछ विकास की किरण हर आत्मा में विद्यमान है। फिर चाहे वह एकेन्द्रिय है या अभव्य है। इन्द्रिय सत्ता सब संसारी में है। गुणस्थान का प्रारम्भ भी वही से होता है। शरीरधारी जीवों में ऐसा कोई भी नहीं है जो गुणस्थान से बाहर हो। अव्यवहार राशि के जीव भी प्रथम गुणस्थानवर्ती हैं। अल्प नहीं अत्यल्प ही सही क्षयोपशम की मात्रा तो उनमें भी है। वह क्षयोपशम ही गुणस्थान है गुणस्थान की परिभाषा भी हमें यही बतलाती है—गुणनामस्थान—गुणस्थानम्। गुणों के स्थान को गुणस्थान कहा जाता है। निष्कर्ष की भाषा में गुणों को ही गुणस्थान कहा जाता है। आत्म-विकास की भूमिका का ही पर्यायवाची नाम गुणस्थान है।

आत्म विकास की भूमिकाएं चौदह हैं। कुछ भूमिकाएं दर्शन से सम्बन्धित हैं, कुछ चारित्र से और कुछ भूमिकाएं भी निर्जरण तथा योग निरोध सापेक्ष हैं। इस प्रकार अत्यल्प विकास की प्रगति करता हुआ प्राणी पूर्ण विकास की अवस्था को प्राप्त करता है। आत्मस्वरूप के पूर्ण विकास का नाम ही निर्वाण है। बन्धन विमुक्ति है। यह गुणस्थान से ऊपर की अवस्था है। गुणस्थानों में कुछ न कुछ बन्धन जरूर है। चाहे समाप्त प्राय भी क्यों न हो? चौदहवें गुणस्थान में अवशिष्ट चारकर्म विलीन प्रायः हैं

फिर भी चौदहवां गुणस्थान सकर्मा है। अकर्मविस्था एक मात्र निर्वाण ही है। निर्वाण को हम मंजिल का रूप हैं तो गुणस्थान को उस तक पहुँचने के लिए पगोडियाँ कह सकते हैं। जो जितनी पगोडियाँ चढ़ा वह निर्वाण (मंजिल) के उतना ही नजदीक पहुँच गया। प्रस्तुत निबन्ध में चौदह गुणस्थानों की संक्षिप्त मीमांसा की गई है।

चौदह गुणस्थानों के नाम —

१. मिथ्यात्वीगुणस्थान ।
२. सास्वादन सम्यक्दृष्टि गुणस्थान ।
३. मिश्र गुणस्थान ।
४. अविरति सम्यक् दृष्टि गुणस्थान ।
५. देशव्रती श्रावक गुणस्थान ।
६. प्रमत्त संयति गुणस्थान ।
७. अप्रमत्तसंयति गुणस्थान ।
८. निवृत्तबादर गुणस्थान ।
९. अनिवृत्त बादर गुणस्थान ।
१०. सूक्ष्म संपराय चारित्र गुणस्थान ।
११. उपशांत मोह गुणस्थान ।
१२. क्षीण मोह गुणस्थान ।
१३. सयोगी केवली गुणस्थान ।
१४. अयोगी केवली गुणस्थान ।

प्रथम गुणस्थान —

आत्मा के न्यूनतम विकास में रहने वाले प्राणी प्रथम गुण स्थानवर्ती हुआ करते हैं। यह गुणस्थान वैसे दर्शन से सम्बन्धित है, जब तक मिथ्या दर्शन के दश बोलों में से एक भी बोल यदि विपरीत समझता है, तब तक उसमें पहला गुणस्थान है।

यह तो व्यवहारकी बात हुई, निश्चयमें जब तक अनन्तानु-बन्धी क्रोध मान, माया-लोभ, मिथ्यात्व मोहनीय मिश्रमोहनीय सम्यक्त्व मोहनीय, इन सात प्रकृतियों का उपशम, क्षयोप-

शम या क्षायिक नहीं हो जाता तब तक कोई जीव पहला गुणस्थान नहीं छोड़ सकता। इन प्रकृतियों के उदय भाव में अन्य प्रकृतियों की क्षयोपशमावस्था प्रथम गुणस्थान है। काल की अपेक्षा से इसमें चार में से तीन विकल्प पाते हैं—अनादि^१ अनन्त अभव्य की अपेक्षा से अनादिघात भव्य की अपेक्षा से सादि शान्त प्रति पाति सम्यक्त्वी की अपेक्षा से सादि अनन्त यह विकल्प इसमें नहीं पाता है। पहले गुणस्थान की प्राप्ति तभी होती है, जब सम्यक्त्व से कोई गिर कर पहले गुणस्थान में आए। और सम्यक्त्व प्राप्ति जिसे होती है वह निश्चित मोक्षगामी हुआ करता है। अतः पहले गुणस्थान में आकर वह पुनः गुणस्थानारूढ होता है। इसलिए पहले गुणस्थान की जहाँ प्राप्ति हो गई वहाँ उसका अन्त अवश्यम्भावी है।

कर्म प्रकृतियों का बन्धन —

बन्धनार्हकर्म प्रकृतियों का बन्धन सिर्फ तीन प्रकृतियों को छोड़कर शेष सभी प्रकृतियों का बन्धन पहले गुणस्थान में होता है, जिन तीन प्रकृतियों का बन्धन पहले गुणस्थान में नहीं होता उसके नाम हैं? तीर्थंकर नाम कर्म, आहारक शरीर आहारक अंगोपांग नाम कर्म। उदय प्रायोग्य कर्म प्रकृतियों में पाँच को छोड़कर शेष सभी पहले गुणस्थान में उदय आती हैं। अनुदयशील पाँच प्रकृतियों के नाम हैं—(१) मिश्रमोहनीय, (२) सम्यक्त्व मोहनीय, (३) आहारक शरीर, (४) आहारक अंगोपांग नामकर्म, (५) तीर्थंकर नामकर्म इन पाँचों में से मिश्रमोहनीय का उदय सिर्फ तीसरे गुणस्थान में होता है, अन्य किसी गुणस्थान में नहीं होता। सम्यक्त्व मोहनीय का उदय क्षयोपशम सम्यक्त्व में रहता है। आहारक द्विक का उदय छठे और सातवें गुणस्थानवर्ती आहारक लब्धिवाले संयति में ही हो सकता है। अन्यत्र नहीं। तीर्थंकर नाम कर्म का उदय तीर्थंकर के जन्म काल में होता है। द्रव्य तीर्थंकरों में भी गुणस्थान कम से कम चौथा पाता है।

द्वितीया सास्वादन सम्यक् बुद्धि गुणस्थान

यह प्रतिपाती सम्यक्त्व की एक अवस्था है। अनन्ता-

नुबन्धी कषाय चतुष्क में से एक^२ का भी अनन्तानुबन्धी उदय हो गया तो प्राणी सम्यक्त्व से निश्चित गिरेगा। सम्यक्त्व के मूल गुणस्थान से तो वह गिर चुका, मिथ्यात्वतक पहुँचा नहीं, उस बीच की अवस्था का नाम है सास्वादन सम्यक्त्व^३ गुणस्थान। इसका उत्कृष्ट कालमान है छः आवलिका मात्र, उदाहरणतः जैसे—किसी ने खीर का भोजन किया और तत्काल किसी कारणवश उसे वमन हो गई, उसमें खीर तो वापिस निकल गई, किन्तु कुछ आस्वादन अवशिष्ट कुछ समय के लिए जरूर रहता है, बाद में वह भी समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार सम्यक्त्व का तो वमन हो गया है। किन्तु उज्ज्वलता अब भी शेष है, अतः द्वितीय गुणस्थानवर्ती बताया गया। प्रश्न—सास्वादन सम्यक्त्वी से आत्मा को क्या लाभ? अगर कोई लाभ नहीं है तो फिर प्रथम गुणस्थानवर्ती हो क्यों नहीं मान लिया गया? उत्तर—गुणस्थानों का क्रम आत्म अवस्था के साथ जुड़ा हुआ है। लाभ या नुकसान यह उसका गौण पक्ष है। सास्वादन सम्यक्त्व से तो कई लाभ हैं। किन्तु अगर लाभ न भी हो फिर भी यह एक सच्चाई है, इसे कैसे नकारा जा सकता है। आत्मस्वरूप मिथ्यात्व में परिणत नहीं हुआ तब तक उसे मिथ्यात्वी कैसे कह सकते हैं। उसे सम्यक्त्वी ही मानना पड़ेगा, चाहे दो क्षण के लिए भी क्यों न हो।

लाभ—

कर्म बन्धन के बारे में जब हम सोचते हैं तो इस गुणस्थान से लाभ निश्चित नजर आता है। प्रथम गुणस्थान में बन्धने वाली कर्म प्रकृतियों में से सोलह कर्म प्रकृतियों का बन्ध इस गुणस्थान में नहीं होता। वे प्रकृतियाँ हैं—(१) नर्कगति, (२) नरकायु, (३) नरकानुपूर्वी, (४) एकेन्द्रिय, (५) द्वीन्द्रिय, (६) त्रिन्द्रिय, (७) चतुरिन्द्रिय, (८) स्थावर नाम कर्म, (९) सूक्ष्मनाम कर्म, (१०) अपर्याप्ति नाम कर्म, (११) साधारण नाम कर्म, (१२) आताप नाम कर्म, (१३) अन्तिम संस्थान नाम

२. अभव्याभित मिथ्यात्वे, अनाद्यनन्ता स्थितिर्भवेत्।

३. अभव्याभितामिथ्यात्वेऽनादिघाता पुनर्मता-६ गु.५०

कमाराह।

३. एक स्मिन्नु दिते मध्याच्छान्तान्तानुबन्धिनाम् गुण०।

४. समयादावली षट्कं, यं बन्धिध्यात्वं भूतलम्।

नासादयति जीवोयं, तावत्सास्वादो भवेत्-१२गुण०

कर्म, (१४) अन्तिम संहनननामकर्म, (१५) स्त्री वेद, (१६) नर्पुसक वेद । कुछ आचार्य इससे भी ज्यादा कर्म प्रकृतियों के बन्धन का अभाव मानते हैं । क्या यह लाभ कम है ? इसके अलावा प्रथम गुणस्थान से दूसरे गुणस्थान में लयोपशम के बोल चार नये पाते हैं । कुल मिलाकर दूसरे गुणस्थान की स्थिति लाभप्रद है, किन्तु है स्वल्पकाल स्थायी ।

तीसरा मिश्रगुणस्थान—

इसे नाम से ही पहिचाना जा सकता है । जिस अवस्था में न सम्यक्त्व के भावपूर्ण हैं, और न मिथ्यात्व का पूरा अन्वकार है उस आत्म अवस्था को मिश्र गुणस्थान कहते हैं । आचार्य रत्नशेखरसूरी ने गुणस्थान क्रमारोह नामक ग्रन्थ में इस गुणस्थान के लिए बतलाया है, जैसे घोड़ी और गधे के संयोग से एक तीसरी जाति पैदा हो जाती है खच्चर की । दही और गुड़ मिलाने से एक अन्य स्वभाव वाली रसायन बन जाती है, इसी प्रकार मिथ्यात्व और सम्यक्त्व के मिल जाने से एक तीसरा ही रूप निखर आता है, इसे मिश्र गुणस्थान कहते हैं ।

बह गुणस्थान अमर है—

पूर्ण संदिग्ध अवस्था में होने के कारण यह गुणस्थान है । इस गुणस्थान में न आयुष्य का बन्धन होता है, और न आयुष्य पूर्ण । इसीलिए यह गुणस्थान अमर कहलाता है इस गुणस्थान का कालमान अन्तर मुहूर्त मात्र माना जाता है । इस अन्तरमुहूर्त में आत्मा सम्यक्त्व के काफी नजदीक पहुँच कर भी सम्यक्त्व दर्शन अवस्था को नहीं पा सकता । मिथ्यात्व के दस बोलों में से नौ को सम्यक् समझ लिया । सिर्फ एक में सन्देह है, जब तक संशय है तब तक मिश्रगुणस्थान है, आत्मा बहुत जल्दी उसका

निर्णय कर लेती है, निर्णय के साथ ही चतुर्थ गुणस्थान आ जाता है यह फिर पहले गुणस्थान में पहुँच जाता है । इस गुणस्थान में संस्थान संहनन चारों गतियों का आयुष्य अनुवर्ती आदि कई प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता है । कई आचार्य इसमें चुहत्तर कर्म प्रकृतियों का बन्ध मानते हैं । कई इससे भी कम प्रकृतियों का बन्ध होना स्वीकार करते हैं ।

चौथा अविरति सम्यक्दृष्टि गुणस्थान—

यह गुणस्थान आत्मा की सम्यक्त्वावस्था का है । जब आत्मा कर्मों से कुछ हल्की होती है, कुछ न्यून अर्ध पुद्गल परावर्तन में मोक्ष जाने की स्थिति बन जाती है । जैन दर्शन में सम्यक्त्व का बहुत बड़ा महत्व है । क्रिया की पूर्ण सफलता सम्यक् दर्शन युक्त ही मानी गई है । सम्यक् दर्शन के अभाव में की जाने वाली धार्मिक क्रिया न्यून फल देने वाली ही सिद्ध होती है । तामली तापस के प्रकरण में टीकाकारों ने कहा है—इतनी तपस्या इन परिणामों से अग्रर सम्यक्त्वी करता है तो एक नहीं सात प्राणी मोक्ष चले जाते । किन्तु तामली तापस एकाभव-तारी (एक भववाद मोक्षगामी) ही बन सके । सम्यक्त्व का महत्व इस चटना से स्वतः सिद्ध हो जाता है । अध्यात्म में सम्यक् दर्शन की उपादेयता असंदिग्ध है । क्रिया चाहे कितनी ही शुभ है शरीर के साथ अवश्य ही छूटने वाली है, किन्तु सम्यक्त्व युक्त अवस्था में भी विद्यमान है । क्रिया आत्मस्वरूप प्राप्त करने में साधन मात्र बन सकती है, किन्तु आत्म स्वरूप नहीं है । सम्यक्त्व स्वयं आत्मावस्था है ।

परिभाषा—

देव' गुरु और धर्म पर यथार्थ श्रद्धा का नाम सम्यक्त्व है । तत्त्व के प्रति यथार्थ श्रद्धा का होना सम्यक्त्व का ही फलित है । सम्यक्त्व के अभाव में यथार्थ श्रद्धा का भी अभाव रहता है । नौ तत्त्व और पद द्वय की यथार्थ

५. जात्यान्तर समुद्भूति वंङ्वाखरयोर्यथा । गुडदध्नोः समायोगे, रसभेदान्तरयथा—१४ । गुण०

६. मिश्रकर्मोदयाज्जीवे, सम्यग्मिथ्यात्वमिश्रितः । यो भावोन्त—मुहूर्तं स्यात्तन्मिश्रस्थानमुच्यते—१३ । गुण०

७. आयुर्वञ्जाति नो जीवो, मिश्रस्थोन्नियतेन वा । सदृष्टिर्वा कुदृष्टिर्वा, भूत्वार्भरणमश्नुते—१६ । गुण०

८. भगवती टीका ।

९. अरिहन्तो महादेवो, जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो ।

जिणपणत्तं तत्तं, इय सम्मत्तं मयेगहियं । अ०

१०. तत्तं सदृहाणं सम्मत्तं । पंचा० । १

अ० प्र० कोशिक

जानकारी करने वाले को व्यवहार में सम्पत्त्वी कहा जाता है, व्यवहार शब्द का प्रयोग यहाँ इसलिए किया है, कि देव गुरु और धर्म को अलग-अलग समझ लेना या जीव-अजीव आदि नौ तत्वों की जानकारी कर लेना ही सम्पत्त्व हो तो मरुदेवा जी को सम्पत्त्व प्राप्ति कैसे हुई होगी ? उन्होंने जीव-अजीव के बारे में या गुरु देव के बारे में कभी कुछ सुना ही नहीं था, इधर मिथ्यात्वा भी नौ पूर्वों का ज्ञान कर लेता है। फिर भी वह सम्पत्त्वी नहीं बनता। अतः सम्पत्त्व प्राप्ति के उपादान करण कुछ और होने चाहिए। अमुक सीमा तक जानकारी करना तो सम्पत्त्व की व्यावहारिक कसौटी ही बन सकती है।

सम्पत्त्व का नैश्चयिक रूप—

सम्पत्त्व की नैश्चयिक व्याख्या हुए शास्त्रकारों ने कहा—अनतानुबन्धी क्रोध मान, माया, लोभ मिथ्यात्व मोहनीय मिश्र मोहनीय; सम्पत्त्व मोहनीय, इन सात प्रकृतियों का उपशम, क्षयोपशम या क्षायक होने से आत्मा की जो अवस्था होती है, उस अवस्था^{११} को सम्पत्त्व अवस्था कही जाती है। उस अवस्था में अगर कुछ तात्त्विक जानकारी भी करता है तो वह सम्पत्त्व होगी, यथार्थ होगी। इन सात प्रकृतियों के उपशम, क्षयोपशम प्राक्षायक होने से पहले प्रत्येक आत्मा को ग्रंथीभेद करना पड़ता है। बिना ग्रंथी भेद किए कोई आत्मा सम्पत्त्व पा नहीं सकती। ग्रंथी भेद के साथ ही इन प्रकृतियों का उपशम आदि होता है।

ग्रंथी भेद का क्रम—

आयुष्य छोड़कर शेष सात कर्मों की स्थिति कुछ न्यून एक कोटा कोटी सागर की स्वाभाविक रूप में हो जाती है, उसे यथा प्रवृत्ति करण कहते हैं। यह स्थिति क्रिया विशेष से नहीं आती, स्वभावतः आती है, एक बार नहीं अनेकों बार इस स्थिति को व्यक्ति पा लेता है। किन्तु अपूर्व करण के अभाव में वह आगे नहीं बढ़ सकता। यथा प्रवृत्ति करण में आकर आत्मा विशेष प्रयत्न करता है तभी ग्रंथी भेदन होता है। अपूर्व करण से ग्रंथी भेद हो

११. सेय सम्मत्ते पसत्त्यसंमत्त मोहनीय कम्माणु वेयणो व समक्खय समुत्तवोपसम संवेगाइल्लिगे सुहे आयपरिणामे।

जाने के बाद ही अनिवृत्ति करण आ जाता है, जो विशुद्ध सम्पत्त्वावस्था है। ग्रंथी भेदन के साथ मिथ्यात्व मोहनीय आदि सात प्रकृतियों का यदि क्षय हो जाता है तो क्षायक सम्पत्त्व क्षयोपशम होता है तो क्षायोपशमिक सम्पत्त्व उपशम होने से औपशमिक सम्पत्त्व की प्राप्ति होती है। तीनों कारणों को समझने के लिए आचार्यों ने पीपीलिका का उदाहरण दिया है—जैसे पीपीलिका^{१२} निर्लक्ष्य घूमती किसी स्तम्भविशेष को पाती है, फिर प्रयत्न करके ऊपर चढ़ती है, और पखों से आकाश की ओर उड़ जाती है। उसी प्रकार स्तम्भविशेष पाने को यथा प्रवृत्ति करण ऊपर चढ़ने की क्रिया विशेष को अपूर्वकरण और ऊपर उड़ने की क्रिया अनिवृत्ति करण कहते हैं।

अवरति—

ग्रंथी भेदन के साथ सम्पत्त्व की प्राप्ति हो जाती है। किन्तु संवर की उपलब्धि नहीं होती। जब तक अप्रत्याख्यानी क्रोध मान, माया, लोभ का उदय रहता है, तब तक सम्पत्त्व, श्रद्धा होने पर भी संवर का लाभ नहीं मिल सकता। जिस प्रकार किसी कारणवश कारावास भुगतने वाला घनाह्य सेठ अपने घन का अपने लिए कोई उपयोग नहीं कर सकता, अपना कमाया हुआ घन अपना होते हुए भी अपने काम नहीं आता यह कारावास की करतूत है। इसी प्रकार अप्रत्याख्यानी कषाय के कटघरे में रहता हुआ सम्पत्त्व दर्शन वाला व्यक्ति भी संवर के लाभ से लाभान्वित नहीं हो सकता। अतः इस गुणस्थान को अवरति सम्पत्त्व दृष्टि गुणस्थान कहते हैं। इस गुणस्थान में सम्पत्त्व दृष्टि देवता, कुछ नारक जीवन, कुछ मनुष्य और तिर्यच भी ऐसे होते हैं जो केवल सम्पत्त्वी ही हैं।

सम्पत्त्व के भेद—

सम्पत्त्व के विकल्प दो प्रकार से किये जाते हैं, १. कर्म निर्जरा की अपेक्षा से, २. प्राप्ति के लक्षणों से। कर्म निर्जरा की अपेक्षा से सम्पत्त्व के पांच^{१३} विकल्प होते हैं, अनतानुबन्धी कषाय चतुष्क के उपशम से होने वाला

१२. गुणस्थान क्रमारोह।

१३. उपसामग सासायण, खओवसमियं चवेदयं खइयं।

सम्मत्तं पंच विहं, जह लब्भइ तं तहा वोच्छं।

सम्यक्त्व उपशम सम्यक्त्व है। इनके क्षयोपशम से होने वाला सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक है। इसका भेद और है, जिसका नाम है सास्वादन सम्यक्त्व क्षयोपशम से क्षायक सम्यक्त्व भी होता है उस स्थिति में क्षायोपशमिक सम्यक्त्व के अन्तिम^{१४} समय को वेदन सम्यक्त्व कहा जाता है। अर्थात्—वह इन प्रकृतियों के प्रदेशोदय में वेदन होने वाला अन्तिम क्षण है, उसके बाद क्षायक होना है। वेदक सम्यक्त्व की स्थिति जघन्य उत्कृष्टतः एक समय की है। इन प्रकृतियों के क्षय होने से होने वाली दर्शन सम्बन्धी उज्ज्वलता को क्षायक सम्यक्त्व कहते हैं। इस प्रकार १. उपशम सम्यक्त्व २. क्षयोपशम सम्यक्त्व ३. सास्वादन सम्यक्त्व ४. वेदक सम्यक्त्व ५. क्षायक सम्यक्त्व ये पांच प्रकार कर्म निर्जरा की अपेक्षा से हुए हैं।

सम्यक्त्व प्राप्ति के लक्षणों की अपेक्षा से रुचि की अपेक्षा से सम्यक्त्व के अनेक विकल्प है। किसी को उपदेश से सम्यक्त्व के प्राप्ति हुई किसी को नैसर्गिक सम्यक्त्व प्राप्ति हुई। किसी को सक्षेप में तत्त्व की जानकारी है, किसी को विस्तार से तत्त्वज्ञता^{१५} प्राप्त है। उत्तराध्ययन प्रज्ञापना आदि आगमों में ऐसे सम्यक्त्व के दश विकल्प बतलाये हैं। १. निसर्ग रुचि, २. उपदेश रुचि, ४. सूत्र रुचि, ५. बीज ६. अभिगम रुचि, ७. विस्तार रुचि ८ क्रिया रुचि ९ सक्षेप रुचि १० धर्म रुचि।

सम्यक्त्व से लाभ—

सम्यक्त्व से क्या लाभ है? इस सदर्भ में अगर चौथे गुणस्थान को देखे तो अनुभव होगा कि चौथा गुणस्थान ही चौदहवें गुणस्थान की भूमिका है—निर्वाण की भूमिका है। आगमों में कहा है—अन्तर^{१६} मुहुर्त मात्र भी अगर सम्यक्त्व

१४. तच्च वेदगसम्यक्त्वं सम्यक्त्वपुंजस्य बहुतरक्षपितस्य चरमपुद्गलानां वेदनकालं ग्रासं समये भवति।

अभि०

१५. निसंगुवएसहई आणारुइ सुत्त-वीयइमेव।

अहिगमवित्थारहई, किरियासखेवधम्महई।

१६ उ० २८

१६. अंतोमुहूर्तमितं, विफासिय हुज्जे हिंसमत्त।

ते सि अवड्ढ पुगल-परियट्टोचेवसंसारो ॥

१। स्थान० टी०

का स्पर्श हो जाये तो कुछ न्यून अर्ध पुद्गल परावर्तन में वह निश्चित मोक्ष जायेगा। चाहे क्रिया नहीं हो पाती सम्यक्^{१७} दर्शन है तो उसका आयुष्य विमान वासी देवों का ही बंधता है। अर्थात् चौथे गुणस्थान में आयुष्य सिर्फ बैमानिक या मनुष्य का ही बंधता है अन्य किसी का नहीं पहले का बंधा हुआ हो तो वहां तो जाना ही पड़ेगा।

सम्यक्त्व प्राप्ति के बाद ही व्यक्ति श्रावक या साधुत्व की भूमिका पा सकता है। अध्यात्म में सम्यक् दर्शन को मूल बतलाया है। यही से आत्म ज्ञान का प्रारम्भ होता चिन्तन में विशुद्धि करण आता है। सम्यक्त्व के श्रोत से निकलने वाला हर उपक्रम अध्यात्म को परिपुष्ट करने वाला सिद्ध होता है। इसीलिए आप्त पुरुषों ने कहा—“सम्मत्त दसी न करेई पाव” सम्यक् दर्शन में रहा हुआ प्राणी सब से बड़ा पाप जो मिथ्यात्व का है, उसे वह कभी नहीं करता। यह है सम्यक्त्व का फल। इसे मोक्ष का द्वार कह सकते हैं, साधना की आधार शिला मान सकते हैं।

पांचवां व्रताव्रती श्रावक गुणस्थान—

अप्रत्याख्यानी^{१८} कवायचतुष्क का क्षयोपशम होने से आत्मा सवर की ओर प्रयत्नशील होती है। प्रवृत्ति प्रधान जीवन में निवृत्ति को स्थान देती है। पुणतः चारित्रशील न होने पर भी आशिक चारित्र (व्रत) को ग्रहण कर उपासना युक्त जीवन व्यतीत करने वाला व्यक्ति श्रावक कहलाता है। कुछ व्रत और कुछ अव्रत इस मिश्रित आत्म अवस्था को व्रताव्रती गुणस्थान कहते हैं। चौथा गुणस्थान जहाँ सर्वथा अविरति था। वहां पांचवां गुणस्थान व्रताव्रती अवस्था में पहुँचा। उपासना के क्रम में इस गुणस्थान वाले व्यक्तियों को श्रावक कहा जाता है। आगमों में एक प्राणातिपात का त्याग करने वाले से लेकर एक प्राणातिपात जिसके बाकी है, उन सबको पंचम गुणस्थानवर्ती बतलाया है। श्रावक के बारह व्रत और ग्यारह प्रतिमा

१७. सम्महिट्टी जीवो गच्छइ नियमा विमाणावासीसु।

जइ न विगयसम्मत्तो अहवा न वद्धाउओ पुब्बिं।

स्थान० टी०

१८. प्रत्याख्यानोदयात्तदेश विरती यत्र जायते तत्, अद्वत्वं देशेन पूर्वं कोटिगुरुस्थितिः २४ गुणस्थान क्रमारोह

इसी गुणस्थान की उपासना पद्धति में आ जाती है। यहाँ तत्त्वनिष्ठा के साथ संयम और सम्यक्क्रिया का योग भी हो जाता है। श्रावक के बारह व्रतों में से आठ व्रत तो यावज्जीवन के लिए किया जाता है। और चार व्रत अल्पकालिक हैं। ग्यारह^{११} प्रतिमा का कालमान पांच वर्ष उः महीने का व्रत है, वैसे पहली प्रतिमा एक मास की दूसरी प्रतिमा दो मास की इसी प्रकार तीसरी, चौथी आदि सभी प्रतिमाओं में एक-एक मास की वृद्धि हो जाती है। ग्यारह प्रतिमा एक साथ तो करते ही हैं। किन्तु कोई ग्यारहवीं पड़िमा (प्रतिमा) न कर सके तो पीछे की पांचवी छठी या सातवीं तक भी कर सकता है। एक ही प्रतिमा कई बार भी कर सकता है। आगमोत्तर साहित्य में आता है कार्तिक सेठ पांचवी प्रतिमा तक सौ बार की थी। आनन्द श्रावक आदि दसों श्रावकों ने अपने जीवन के अंतिम समय में प्रतिमा ग्रहण की थी, और प्रतिमा समाप्ति के बाद अंतिम संलेखना की थी। पांचवे गुणस्थान की जघन्य स्थिति अन्तर मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति कुछ कम एक कोटि पूर्व की है। नौ साल की उम्र में श्रावक व्रत किसी ने ले लिए और करोड़ पूर्व का आयुष्य हो तब यह उत्कृष्ट स्थिति होती है।

लाभ—

आत्मा पांचवें गुणस्थान तक पहुँच कर आंशिक संयम की साधना का लाभ प्राप्त कर लेती है। प्रत्याख्यानी कषाय चतुष्क के उदय से संयमी नहीं बन सकती, फिर भी संयमा संयमी तो हो ही जाती है।

श्रद्धा विवेक और क्रिया युक्त जीवन निश्चित ही उन्नति कारक होता है। इस गुणस्थान में आने वाले मनुष्य और तिर्यच निकट भविष्य में ही मोक्षगामी होते हैं। वैसे भव तो श्रावक के काफी है, आनन्दआदि^{१२} दसों श्रावक एका भवतारी हुए थे। आवश्यकता सजकता के साथ आगे बढ़ने की है, फिर एका भवतारी होते देर नहीं लगती। सचमुच श्रावक अवस्था साधुत्व की पूर्व भूमिका है। अभ्यास और क्षयोपशम का योग पाकर श्रावक कभी न कभी साधुत्व को ग्रहण कर ही लेता है। इसके अलावा

१६. दसाश्रुतस्कंध।

२०. ज्ञपासक दसांग,

श्रावक अवस्था में (पांचवें गुणस्थान में) नर्क तिर्यच तथा मनुष्य का आयुष्य नहीं बँधता, न नपुंसक तथा स्त्री वेद का बंधन नहीं होता। एक मात्र वैमानिक देव और पुरुष वेद का बंध पड़ता है। इस प्रकार अध्यात्म व व्यवहार दोनों में श्रावक की भूमिका महत्वपूर्ण है।

प्रमत्त संयति गुणस्थान—

प्रत्याख्यानी क्रोव मान माया और लोभ का क्षयोपशम होने से आत्मा संयम की ओर विशेष प्रयत्नशील होती है। सावद्य योगों का सर्वथा त्याग करके संयमी बन जाती है। किन्तु अन्तर प्रदेशों में प्रमाद फिर भी बना रहता है। प्रमत्त युक्त संयमावस्था का नाम ही व छठा गुणस्थान है। इस गुणस्थान में आने के बाद साधक पारिवारिक परिस्थितियों के ऊपर उठ जाता है। व्यवसायिक प्रक्रिया उसके लिए त्याज्य होती है। वह जीवन भर अनुदृष्टि भिक्षा जीवी बन जाता है। शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति साधक भिक्षा वृत्ति से ही प्राप्त करता है। सब प्रकार की भौतिक चिन्ताओं से मुक्त सब प्रकार की वासनाओं से ऊपर उठकर की जाने वाली साधना का प्रारम्भ छठे गुणस्थान में ही होता है।

संयम—

पापकारी प्रवृत्तियों से उपरम (विरती) होने का नाम ही संयम है। चारित्र्य ग्रहण के संयम में सामायक पाठ के द्वारा सावद्य^{१३} योगों का त्याग किया जाता है। संयम चर्या में रहता हुआ साधक वावन^{१४} अनाचारों का वर्जन करता है। बाईस परीषहों को समता के साथ सहन करता है।

आहार आदि की एषणा (अन्वेषण) में वयांलीस दोषों का परिहार करना होता है। मंडल पांच दोषों का परित्याग कर के भोजन करता है।

आजीवन^{१५} अहिंसा आदि पांच महाव्रतों का सम्यक्पालन करना ही साधना का मौलिक रूप है। पांच समति^{१६}

२१. सर्व सावज्ज ख्जोगं पच्चक्खामि।

२२. दशवर्कालिक अ० ३

२३. उत्तराध्ययन न अ० २

२५. उत्तराध्यय अ० ७२१

२६. आवश्यक उत्तराध्ययन।

तथा तीन गुणस्थानों की सम्यक् आराधना करने वाला ही मुनि कहलाता है। ध्यान^{१०} स्वाध्याय मुनिचर्या का प्रमुख अंग है। साधना में निखार इन्हीं से आता है।

साधन—

छठे गुणस्थान की भूमिका तक आत्मा को ले जाना साधक के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। सम्यक्त्व प्राप्ति के बाद साधक की छलांग संयम की ओर हुआ करती है। संयमावस्था अध्यात्म का महत्वपूर्ण पक्ष है। यहां पहुँचने के साथ ही पिछली सारी अन्नत^{११} समाप्त हो जाती है। अर्थात्—पाँच आश्रव में से दो आश्रव बिलकुल रुक जाते हैं—मिथ्यात्व और अन्नत। छठे गुणस्थान में मृत्यु प्राप्त करने वाला मुनि जघन्यतः एक भव वाद मोक्षगामी उत्कृष्टतः^{१२} पन्द्रह भववाद मोक्षगामी होता है। अर्थात्—छठे गुणस्थान में आयुष्य पूरा करने वाले साधक के भव ज्यादा से ज्यादा पन्द्रह ही होते हैं। पन्द्रहवें भव में तो निश्चित रूप से मोक्ष चले ही जाते हैं। छठे गुणस्थान में आयुष्य पूरा करने के बाद जब तक मोक्षमें नहीं जाता तब तक देव और मनुष्य इन दो गतियों में ही जाते हैं। नरक और तिर्यच गति में वे नहीं जाते हैं।

कालमान—

छठे गुणस्थान का कालमान जघन्यतः अन्तर मुहूर्त और उत्कृष्टतः नौ वर्ष कम करोड़ पूर्व की छद्मस्थ अवस्था में संयति की सबसे अधिक लम्बी अवधि वाला यही गुणस्थान है। भिक्षु की बारह प्रतिमा व अन्यान्य अभिग्रह इसी गुणस्थान में किये जाते हैं। सामायिक पाठ से लेकर चौदह पूर्व तक का ज्ञान इसी गुणस्थान में सीखा जाता है। छठे गुणस्थान में पाँच ज्ञान में से मति श्रुत अवधि मनः पर्यय ये चार ज्ञान हो सकते हैं। छः निर्ग्रन्थों में पुलाक वकुश पड़ि सेवणा, कसाय कुशील, ये चार निर्ग्रन्थ होते हैं। गाँच चारित्र में, सामायिक, छेदोपस्थापना, पडिहार-विशुद्धि ये तीन चारित्र हो सकते हैं।

२७. सज्जायसज्जाणरयस्सताइणे, अपावभावस्स तवेरयस्स ।

विसुज्झइ जं सिमलं पुरे कडं, समीरियरुप्पमलंवजोइणे

दस का० ७

२८.

सातवाँ अप्रमत्त संयति गुणस्थान—

आत्मा की सर्वथा अप्रमत्त अवस्था इस गुणस्थान में आती है। यहाँ प्रमाद का भी निरोध हो जाता है अध्यात्म के प्रति यहाँ पूर्ण उत्साह रहता है। यहाँ नियम-मतः धर्म या शुक्ल ध्यान में से एक जरूर होता है। असंयम से जब संयम की ओर आत्मा गति करती है, तो पहले सातवें गुणस्थान में जाती है, अन्तर मुहूर्त के बाद या तो आठवे गुणस्थान में चली जाती है। या छठे गुणस्थान में आ जाती है। सातवे गुणस्थान का कालमान अन्तर मुहूर्त मात्र का ही है, छद्मस्थ साधक अनेकों बार इस गुणस्थान में आता और जाता है अगले भव का आयुष्य बन्ध इस गुणस्थान में नहीं होता, छठे गुणस्थान में आरम्भ किया हुआ आयुष्य सातवें गुणस्थान में पूर्ण अवश्य होता है। आयुष्य बन्ध का प्रारम्भ सातवे में नहीं होता। इसमें प्रमाद निरोध के साथ-साथ अशुभ योग का भी निरोध हो जाता है। लेश्या भी यहाँ तीन शुभ ही रह जाती है।

आठवें निवृत्त बादर गुणस्थान में आत्मा स्थूलकषायों से निवृत्त हो जाती है। यह अवस्था प्रमाद निरोध के बाद आती है। आठवाँ गुणस्थान साधक विशेष प्रयत्न करके ही पाता है। यहाँ क्षयोपशम सम्यक्त्व समाप्त हो जाता है। आठवें गुणस्थान में सम्यक्त्व या तो उपशम या क्षायिक हो जाता है। इसी गुणस्थान से साधक उपशम क्षपक इन दो श्रेणियों में से एक पर आरुढ़ होता है। इसका भी कालमान अन्तर मुहूर्त मात्र का है।

नौवाँ अनिवृत्त बादर गुणस्थान श्रेण्यारुढ़ आत्मा ही प्राप्त करता है। उत्तम श्रेणियों में कर्म प्रकृतियों का उपशमन होता है और क्षपक श्रेणी में प्रकृतियों का क्षय होता रहता है। नौवें गुणस्थान में दशवे गुणस्थान की अपेक्षा तो कुछ अनिवृत्ति रह जाती है, वैसे अधिकांश अशुभ प्रतिक्रियों की निवृत्ति होती जाती है। अन्तर मुहूर्त की स्थिति वाले इस गुणस्थान में संज्वलन, क्रोध, मान, माया, नपुंसक वेद, स्त्री वेद, पुरुष वेद आदि अनेक प्रवृत्तियों का उपशम क्षय हो जाता है।

दसवें सूक्ष्म संपराय गुणस्थान में चारित्र मोहनीय की सिर्फ एक प्रकृति संज्वलन लोभ ही शेष रह जाती है। दसवें गुणस्थान का कालमान आठवें, नवें गुणस्थान

से भी कम है। इसीलिए यहाँ ज्ञान का उपयोग लिया है, दर्शन का उपयोग होने से पहले ग्यारहवें में या नवें गुण-स्थान में साधक आ जाता है। यहाँ की चारित्र्यावस्था भी पिछले गुणस्थान से भिन्न है। नौवें गुणस्थान तक सामायिक तथा छेदोपस्थापनीय चारित्र्य रहता है। दशवें गुणस्थान में सूक्ष्म साम्पराय चारित्र्य है। साधक यहाँ आकर विशुद्धि के एक महत्वपूर्ण मोड़ तक पहुँच जाता है। इससे आगे की स्थिति सर्वथा मोहाभाव की है।

ग्यारहवें में उपशान्त मोह गुणस्थान में मोह की सर्वथा उपशान्त दशा रहती है। मोहनीय कर्म की किसी भी प्रकृति का विपाकोदय या प्रदेशोदय यहाँ नहीं रहता। अन्तर मुहूर्त के लिए आत्मा की वीतराग अवस्था हो जाती है। उपशम श्रेणी का यह अन्तिम स्थान है। यहाँ से वापिस मुड़ना ही पड़ता है। कई बार तो यहाँ आयुष्य पूर्ण हो जाता है। तो साधक को ग्यारहवें से सीधा चौथे में आना पड़ता है। ग्यारहवें में आयुष्य पूरा करने वाला जीव देव लोक में सर्वोच्च देवालय को पाता है। वहाँ गुणस्थान चौथा है। कई साधक अन्तर मुहूर्त के बाद पुनः मोहोदय के कारण दसवें, आठवें, सातवें गुणस्थान में उतर आते हैं। उपशम श्रेणी में ऐसा होना अनिवार्य है।

बारहवें क्षीण मोह गुणस्थान में आत्मा को मोह की सत्ता से भी छुटकारा मिल जाता है। क्षपक श्रेणीरूढ़ मुनि यहाँ आकर मोह का सर्वथा क्षय कर देता है। अनादि काल से आत्मा के साथ चला आ रहा मोह यहाँ आकर छूटता है। अन्तर मुहूर्त की स्थिति वाले इस गुणस्थान में सात कर्म शेष रहते हैं। किन्तु मोह की सत्ता छूट जाने पर शेष घातिक त्रिक भी अन्तिम स्थिति में पहुँच जाते हैं। बारहवें गुणस्थान में पहुँच कर पहली बार क्षायिक चारित्र्य को प्राप्त करता है। यह छद्मस्थ अवस्था की अन्तिम भूमिका है। इस गुणस्थान से साधक न तो वापिस गिरता है, और न आयुष्य पूरा करता है। यहाँ से तो आगे संपूर्ण विकास की ओर गति करने का अवसर प्राप्त है।

तेरहवाँ सयोगी केवली गुणस्थान—

तेरहवाँ सयोगी केवली गुणस्थान घातिक त्रिक ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय अंतराय के क्षय होने पर प्राप्त होता है। यह आत्मा की सर्वज्ञावस्था है। उपशम ग्यारहवें गुणस्थान तक है। क्षयोपशम बारहवें गुणस्थान तक

होता है। यहाँ इन दोनों का अभाव है, यहाँ कर्म प्रकृतियों का या तो उदय है, या फिर क्षायक ही होता है। चार अघातिक कर्म की उदयावस्था है, और चार घातिक की क्षयावस्था है जो आत्मा अणु से पूर्ण विकास की भावना लिए पहले गुणस्थान से ऊर्ध्वगमन प्रारम्भ करती है, वह यहाँ आकर पूर्णता की स्वानुभूति करने लग जाती है। यहाँ ज्ञान पूर्ण है, दर्शन पूर्ण है, सम्यक्त्व पूर्ण है, अंतराय मुक्ततापूर्ण है, अर्थात् चौदहवें गुणस्थान में और सिद्धावस्था में भी गुण ऐसे ही रहेंगे।

अपूर्णता—

यह गुणस्थान कुछ बातों में पूर्ण होने पर कुछ अपूर्ण भी है। तभी गुणस्थान है, बरना सिद्ध हो जाते हैं चार अघातिक कर्मों से सबधित आत्मगुण तेरहवें गुणस्थान में नहीं होते। वेदनीय कर्म के कारण अनन्त आत्मिक सुख की अनुभूति इस गुणस्थान में नहीं होती, आयुष्य कर्म के कारण सर्वथा, आत्मिक स्थैर्य का अनुभव नहीं होता। नाम कर्म के कारण अगुरु लघुत्व नहीं पा सकते। ये गुण अकर्मावस्था में ही होते हैं। इस गुणस्थान में ये चार कर्म विद्यमान हैं।

मुनि और तीर्थकर—

तेरहवें गुणस्थान में आत्म विकास दृष्टि से सब साधक समान हैं। सबको ज्ञान दर्शन, चारित्र्य, आत्मबल, आदि गुण सद्गुण हैं, किन्तु विद्यमान चार कर्मों के शुभाशुभ उदय के कारण कुछ भेद रहता है। मुख्यतः इनमें दो विकल्प हैं मुनि और तीर्थकर मुनि अवस्था साधक की सामान्य अवस्था है। तीर्थकर अवस्था नाम और गोत्र कर्म की विशिष्ट परिणति से प्राप्त होती है। किसी-किसी साधक की विशिष्ट साधना से कभी-कभी नाम कर्म की विशेष उत्तर प्रकृति तीर्थकर नाम कर्म का बंध हो जाता है। उसके साथ अन्य शुभ प्रकृतियों का भी बंध हो जाता है। उच्च गोत्र का भी प्रबल बंध पड़ जाता है। उन प्रकृतियों के उदय से व्यक्ति तीर्थकर पद प्राप्त करता है। तीर्थकर में शारीरिक विशेषताओं के साथ कुछ अतिशय और भी हुआ करता है, जिससे साधारण जनता को भी औरों से विशेष होने का पता लगता रहता है।

इर्वापयिक क्रिया—

तेरहवें गुणस्थान में अवस्थित साधक से जो कुछ भी

क्रिया होती है। वह निर्जरा प्रधान हुआ करती है। पाप का बन्ध तो पिछले गुणस्थानों में ही रुक गया, यहाँ तो पुण्य भी स्वल्प मात्रा में लगता है। केवल दो समय स्थिति वाले पुण्य ही सर्वज्ञ के चिपकते हैं। इस क्रिया का नाम इर्षापथिक क्रिया है। इससे लगे पुण्य मोक्ष प्राप्ति में बाधक नहीं बनते, दो समय मात्र की स्थिति के होने के कारण बंधने के साथ ही उदय और निर्जरण की प्रक्रिया चालू हो जाती है। इसलिए आत्मा पर इसका कोई अलग प्रभाव नहीं होता।

केवली समुद्घात—

तेरहवें गुणस्थान में समुद्घात भी होता है, इसे केवली समुद्घात कहते हैं। जब आयुष्य कर्म कम हो और नाम गोत्र आदि कर्म ज्यादा हो तब केवली समुद्घात होता है। केवली समुद्घात करने से नहीं होता, यह स्वभावतः होता है। प्रयत्न से की जाने वाली क्रिया में असह्य समय लगते हैं। केवली समुद्घात में केवल आठ समय ही लगते हैं। अतः यह कृत्न प्रक्रिया नहीं है, कर्मों की असमान अवधि को समान बनाने की स्वतः भूत प्रकृति है। केवली समुद्घात में पहले समय में दंड के रूप में आत्म प्रदेश शरीर से बाहर निकलते हैं। दूसरे समय में कपाट के रूप में आत्म प्रदेश फैलते हैं। तीसरे समय में मथान (मथानी) के रूप में आत्म प्रदेश फैल जाते हैं। चौथे समय में बीच का अन्तर आत्म प्रदेशों से भर जाता है। पांचवें समय में फैले हुए आत्म प्रदेश पुनः संकुचित होने लग जाते हैं, और मथानी के आकार में आ जाते हैं। छठे समय में कपाट के रूप में, सातवें समय में दंड के रूप में तथा आठवें समय में शरीरस्थ हो जाते हैं। इन आठ समय की स्थिति वाली समुद्घातिक क्रिया से कर्मों की अवधि समान हो जाती है। यह समुद्घात तीर्थकरों के नहीं होता। मुनियों में भी केवल ज्ञान पाए, छः महीने बीतने पर ही यह समुद्घात हो सकता है।

चौदहवां अयोग केवली गुणस्थान—

वह शरीरधारी आत्मा की अंतिम विकास अवस्था है। इस गुणस्थान का आयुष्य जब पांच ह्रस्वाक्षर उच्चारण मात्र शेष रहता है, तब प्राप्त होता है। प्राप्त होने से पहले योग निरोध की प्रक्रिया चालू होती है। योग निरोध की प्रक्रिया में साधक पहले मनोयोग का निरोध करता है,

फिर बचन योग का निरोध होता है। बाद में काययोग का निरोध किया जाता है। काययोग का निरोध होते ही तेरहवां गुणस्थान छूट कर चौदहवां अयोगी केवल गुणस्थान की अवस्था आ जाती है। इसे शैलेपी अवस्था भी कहते हैं। शैलेष अर्थात्—पर्वतों में सर्वोच्च पर्वत मेरु उस जैसी निष्प्रकप अवस्था यहाँ हो जाती है। इस गुणस्थान में अवशिष्ट चार कर्म भी क्षय हो जाते हैं। इन चारों कर्मों के क्षय के साथ कर्मण शरीर तँजस शरीर (जो आत्मा के साथ अनादि काल से लगे हुए है) छूट जाते हैं। औदारिक शरीर की क्रिया तेरहवें के अंत में छूटती है। शरीर चौदहवें में छूटता है। बस उसी क्षण आत्मा लोकाग्र भाग में जा टिकती है। फिर न जन्म है न मृत्यु है। यह अवस्था गुणस्थान से ऊपर की है।

उपहंसार—

आत्म विकास की दृष्टि से चौदह गुणस्थानों का क्रम बहुत ही युक्ति सगत है। आत्मा जैसे-जैसे ऊपर उठती है वैसे-वैसे गुणस्थान बदलता रहता है, और बिजाती तत्त्व छूटते रहते हैं। आत्मगुणों का आविर्भाव होता रहता है। चौदह गुणस्थानों में सम्यक् दर्शन युक्त बारह गुणस्थान हैं, मिथ्या दर्शन सम दर्शन वाले एक-एक है। संयमी नौ गुणस्थान हैं। असयमी चार गुणस्थान हैं, संयमा-संयमी एक गुणस्थान है। प्रमादी छः गुणस्थान हैं, अप्रमादी आठ गुणस्थान हैं। सवेदी आठ गुणस्थान हैं, अवेदी पांच गुणस्थान हैं, सवेदी अवेदी एक गुणस्थान है। सकषायी दस गुणस्थान हैं, अकषायी चार गुणस्थान हैं। छद्मस्थ बारह गुणस्थान हैं, और सर्वज्ञ दो गुणस्थान हैं। सयोगी तेरह गुणस्थान हैं, और अयोगी एक गुणस्थान है। आयुष्य कर्म के अवधक आठ गुणस्थान हैं। सबधक छः गुणस्थान हैं। अमर जिसमें आयुष्य पूरा नहीं होता, तीन गुणस्थान हैं। शेष ग्यारह में आयुष्य पूरा होता है। अन्तर मुहूर्त की स्थिति वाले नौ गुणस्थान हैं, इससे अधिक स्थिति वाले पांच गुणस्थान हैं।

व्याख्याओं में कहीं-कहीं ग्रथकारों में मतभेद भी मिलता है। किन्तु गुणस्थान की मौलिकता में किसी को मतभेद नहीं है। जिन बातों में मतभेद है तटस्थतया अध्ययन पूर्वक उसे भी मिटाया जा सकता है। जैन दर्शन समन्वय दर्शन है, इससे मतभेद मिटते हैं, मतभेद होने की बात आश्चर्यजनक लगती है।

ग्वालियर के कुछ मूर्ति यंत्र लेख

परमानन्द शास्त्री

दि० जैन मन्दिर गोकुलचन्द ग्वालियर

- १ चौबीसी पीतल—सं० १४३०.....
- २ पीतल—सं० १४८६ वैशाख सुदि ६—लेख घिस गया पढ़ने में नहीं आता ।
- ३ चौबीसी धातु—सं० १५२० वैशाख सुदि ११ ।
- ४ धातु मूर्ति—(घिसी हुई) सं० १५२४ ।
- ५ पार्श्वनाथ मूर्ति धातु—सं० १५४४ वर्षे वैशाख सुदि ...सोमे श्री मूलसंधे बलात्कारगणे सरस्वति गच्छे नन्दीसंधे श्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्री जिन-चन्द्रदेव तत्पट्टे भ० विद्यानंदि मण्डलाचार्य श्री त्रिभुवनकीर्ति उपदेशात् सहेलवालान्वये साह ऊषा भार्या उदयसिरि तस्य पुत्र राम भार्या मनसिरि ।
- ६ चौबीसी धातु—१ फुट लम्बी ६ इंच चौड़ी—सं० १५२८ वर्षे ज्येष्ठ सुदि ८ सोमे काष्ठासंधे भ० मलै- (मलय) कीर्ति भ० गुणभद्राम्नाये जैसवाल पं० पदम-सी भार्या रवीरा तत्पुत्र ५ सोनिग, दिनु, डालव, पदर्थ, मेणघल प्रणमति प्रतिष्ठित पदमसोह ।
- ७ पार्श्वनाथ मूर्ति धातु—साइज ६ इंच ऊंची ३ इंच चौड़ी सं० १३४३ वर्षे श्री शुभकीर्तिदेव, भार्या जदु पुत्र नरपति प्रणमति ।
- ८ धातु मूर्ति—२ इंच ऊंची डेढ़ इंच चौड़ी—सं० १५२५ ।
- ९ पार्श्वनाथ मूर्ति धातु—५ इंच ऊंची, ३ इंच चौड़ी—सं० १४१० माघ सुदि १२ श्री मूलसंधे श्री पद्मनन्दि देवाः श्री पौरपाटान्वये साहो गिल भार्या लखमसी तस्य पुत्र खिउपति.....नित्यं प्रणमति ।
- १० पार्श्वनाथ—२ इंच ऊंची, १ इंच चौड़ी—सं० ६२५
- ११ धातु मूर्ति—२ इंच—१ इंच—सं० १३५२ वैशाख सुदि १२ ।
- १२ धातु मूर्ति पार्श्वनाथ—३ इंच ऊंची, २ इंच चौड़ी सं० १४०३ माघसुदि ५ भ० देवसेन अग्रोतकसाह जसोजा पुत्र पाणि भा० परसाला.....
- पार्श्वनाथ—२ इंच ऊंची चौड़ाई १ इंच धातु सं० १५०८ ।
- धातु—२ इंच ऊंची १ इंच चौड़ी सं० ११०८

सुपार्श्वनाथ—२ इंच १ इंच

सं० ११२५.....

चौबीसी मूर्ति धातु—१

सं० ११२० वैशाखसुदि २ गोपालरूओ गोल्हःमीष पूना.....

काले पाषाण की पार्श्वनाथ की मूर्ति—

सं० ११२४ मिति ज्येष्ठ सुदी ५

पार्श्वनाथ काले पाषाण—

सं० १४६० फाल्गुण सुदी ५ श्री काष्ठासंधे श्री गुण-कीर्ति शिष्य यशः कीर्ति अग्रोतकान्वये.....पुत्र ववी-जा भार्या थनो.....

चन्द्रप्रभ मुख्यमूर्ति—

सं० १८२४ मिति फाल्गुण शुक्ला २ रविवासरे मूल संधे बलात्कारगणे सरस्वतिगच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये गोपा-चल दुर्गे महाराज सुरेन्द्रभूषण विद्यमाने श्रमणाचल भ० विजयकीर्ति जिक्काय परमशिष्य पं० परमसुख भगीरथ उपदेशानुसार प्रणमति नित्यम् ।

इस मन्दिर में शास्त्र भण्डार भी है । परन्तु उसकी व्यवस्था अच्छी नहीं है । कुछ ग्रंथ दीपक ने खा लिए हैं । वेठन भी अच्छे नहीं हैं और यदि वेठन है तो उन पर गत्ते नहीं है, जिससे उनका बन्धन ठीक हो सके । स्थिति से यह स्पष्ट पता चलता है कि समाज की अत्यन्त उपेक्षा है । जनता को धर्म से वह प्रेम नहीं है, जैसा पहले था । आशा है ग्वालियर समाज शास्त्र भण्डार की उचित व्यवस्था करेगी । यदि व्यवस्था नहीं हो सकती तो वहाँ का शास्त्र भण्डार के ग्रन्थ वीर सेवा मन्दिर को भिजवा दें । यहाँ उस की समुचित व्यवस्था हो जायगी ।

वासुपूज्य पंचायतीमन्दिर ग्वालियर

इस मन्दिर में तीन वेदिका हैं, जिनमें प्रथम वेदी में २८ मूर्तियां विराजमान हैं जिनमें १२ मूर्ति पाषाण की हैं, और १६ धातु की । कुल २८ मूर्तियां विद्यमान हैं । उनमें कुछ मूर्तियों के लेख निम्न प्रकार हैं :—

सं० १५३७ वैशाख सुदी १० काष्ठासंधे भ० गुण-भद्र जैसवाल सा० वीधू स्त्री बघती, पुत्री द्वी लखनसी वेणुसिरि पुत्र जी महेश बल्लसाह पुत्र सरूपा गुपाल,

गोपालसहाय स्त्री.....पुत्र हेमचन्द्र रामचन्द्र चौधरी
सहणू प्रतिष्ठा कारापिता ।

पाषाणमूर्ति—१॥ फुट ऊँचाई चौड़ाई १५ इंच ।

सं० १४७० वर्षे उद्दण्डधारा श्रीउदय राज्य देवराज्ये
चौहानवंशे श्रीमूलसंघे नंदाग्रामाये बलात्कार गणे सरस्वती
मन्त्रे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्री पद्मनन्दिदेव तत्पट्टे
.....(पढ़ा नहीं जाता)

चन्द्रप्रभु मूर्ति—१॥ फुट ऊँचाई १। फुट चौड़ाई ।

सं० १५३० माघ सुदि १० गुरो श्री गोपाचले महा-
राजाधिराजकीर्तिदेव विजयराज्य प्रवर्तमाने भ० श्री मलय
कीर्ति तत्पट्टे भ० गुणभद्र.....जिनदास
मल्लिदास उपदेशात्.....।

ग्रन्थ—

सं० १६०० फाल्गुन वदि १ मूल संघे भ० ललित
कीर्ति देवास्तत्पट्टे भ० रत्नकीर्तिदेवोपदेशात् जैसवाल-
ान्वये कणपुरिया गोत्रे हासू भा० खरगादे तत्पुत्रास्त्रयाः
आसकरण, हरिमलजाणी मथुरा ऐते नित्य प्रणयति ।

वेदी नं० २—इसमें पाषाणमूर्ति २३, चरण १ धातु
मूर्ति छोटी-बड़ी ६५ हैं, जिसमें से कुछ मुख्य मूर्तियों के
लेख नीचे दिए जाते हैं :—

शान्तिनाथ—२ फुट ऊँची १॥ फुट चौड़ाई

१ संवत् १५१४ वैशाख सुदि १० काष्ठा संघे श्री
भट्टारक मलयकीर्ति श्री भ० गुणभद्राम्नाये.....
(शेष पढ़ा नहीं जाता)

२ बाहुबली धातु—४ इंच ऊँची खड्गासन २ इंच चौड़ी
सं० १५२२ माघ सुदि १३ मूलसंघे बलात्कारगणे
सरस्वती गच्छे भ० जिनचन्द्र देवा, भ० सिंहकीर्तिदेवाः
श्री हेमचन्द्र तत्प्राण्यती.....।

३ सहजकूट चैत्यालय—६ इंच ऊँची ४ इंच चौड़ाई

सं० १५०६ चैत्रसुदि ११ शुक्रवारे मूलसंघे भ० जिन-
चन्द्राम्नाये.....।

४ पंचमेरू—१५ इंच ऊँची ३ इंच चौड़ी

सं० १७२५ मार्ग शीर्ष पंचमी शुक्ले श्री माथुर संघ
पुष्करगणे लोहाचार्यान्वये श्री कुमारसेनदेवा श्रुतकीर्ति
मेषकीर्ति भ० गुणभद्राम्नाये अग्रोतकान्वये गर्ग गोत्रे
हेममल्ल भार्या रामदेवी.....।

५ चतुर्विंशति धातु—१ फुट ऊँचाई ६ इंच विस्तार

सं० १५३० वैशाखसुदि १३

वेदी नं० ३—

इस वेदी में कुल ६८ मूर्तियाँ हैं जिसमें पाषाण मूर्ति
पद्मासन २८ धातु की ४० और १ सिद्ध परमेष्ठी खड्गासन

धातुमूर्ति संभवनाथ—६ इंच ऊँचाई ३ इंच चौड़ाई

१ सं० १५४६ [वर्षे] फागुनसुदि ११ भीमे भ०
त्रिभुवनकीर्ति सा० माधो भार्या करमा पुत्र रतन...।

धातु चौबीसी—६ इंच ऊँचाई ४ इंच चौड़ी

२ सं० १५२२ वर्षे.....सुदि १३ मूलसंघे श्री जिन-
चन्द्रदेवा तत्पट्टे सिंहकीर्तिदेवा पोरवाडान्वये सा०
ऊदा भार्या छेमा पुत्र सा० सन्तोष भा० खोम्हदे पुत्र
हल्यू.....।

चौबीसी मूर्ति धातु—६ इंच ऊँचाई १॥ चौड़ाई

३ सं० १६६० वर्षे फाल्गुणमासे.....।

चौबीसी धातु—६ इंच ऊँची, १॥ चौड़ाई

४ सं० १५२७ वर्षे माह वदि ५ शुक्ले मूलसंघे भ०
सिंहकीर्ति देवा जैसवालान्वये.....।

पार्श्वनाथ धातु—१० इंच ऊँचाई, ५ इंच चौड़ी

५ सं० १५२६ वैशाख सुदि ७ बुधवासरे मूलसंघे भ०
सिंह कीर्तिदेवा सा० जोगिन्दु भा० खाम्हदे पुत्र राम
[चन्द] भा० गुणसिर पुत्र करमू भार्या छोमा पुत्र.....
भा. पृथिवी ।

धातु पंचबालयति—६ इंच ऊँची, ६ इंच चौड़ी

६ सं० १०३२ वैशाख सुदि ३ गुरुवासरे शुभे.....।

इस मन्दिर में एक शास्त्रभंडार भी है, जिसमें डेढ़सौ
दो सौ के लगभग ग्रंथ हैं । उन्हें देखने का अवसर नहीं
मिल सका । कारण कि शास्त्र भंडार दिखाने की व्यवस्था
करने वाले मकसीजी पार्श्वनाथ के मेले में चले गए थे । ग्वा-
लियर के आस-पास के स्थानों में महत्वपूर्ण सामग्री पड़ी है,
परन्तु जैन समाज को उसके संकलित करने या विद्वानों
को दिखाने के लिए अवकाश ही नहीं मिलता । और न वे
स्वयं ही उसका उपयोग कर सकते हैं ।

समाज के हितैषियों और जैनधर्म के प्रेमियों से
निवेदन है कि वे इस और अपना लक्ष्य देकर महत्वपूर्ण
सामग्री को नष्ट होने से बचाने का यत्न करें । और
हस्तलिखित ग्रंथों को बीर-सेवा-मन्दिर में भिजवाने का
कष्ट करें, जिससे उनका संरक्षण हो सके । ★

अनेकान्त

मुनि श्री उदयचन्द जी म० सिद्धान्तशास्त्री

अनेकान्त में भी अनेकान्त :—

अनेकान्त में विविध और निषेध रूप सप्तभंगी की प्रवृत्ति होती है या नहीं ? अगर प्रवृत्ति होती है तो अनेकान्त का निषेध करने पर एकान्त की प्राप्ति होगी और एकान्त में कहे हुए समस्त दोष आजाएंगे। यदि अनेकान्त में सप्तभंगी की प्रवृत्ति नहीं होती तो आपके सिद्धान्त में बाधा आएगी।

प्रमाण और नय की अपेक्षा से अनेकान्त में भी सप्तभंगी की प्रवृत्ति होती है। एकान्त दो प्रकार का है—सम्यक् एकान्त और मिथ्या एकान्त। इसी प्रकार अनेकान्त के भी दो भेद हैं।

प्रमाण से अनेक धर्म वाली वस्तु में से एक धर्म को ग्रहण करने वाला किन्तु दूसरे धर्मों का निषेध न करने वाला सम्यक् एकान्त कहलाता है। एक धर्म को ग्रहण दूसरे धर्म का निषेध करने वाला मिथ्या-एकान्त कहलाता है।

एक वस्तु में अस्तित्व-नास्तित्व आदि अनेक धर्मों को जो स्वीकार करे और प्रत्यक्ष अनुमान आदि प्रमाणों से अविरोध, वह सम्यक्-अनेकान्त है। जो प्रत्यक्षादि प्रमाणों से विरोध अनेकान्त धर्मों को एक वस्तु में स्वीकार करता है, वह मिथ्या अनेकान्त है।

नय सम्यक् एकान्त है, नयाभास मिथ्या एकान्त है। प्रमाण अनेकान्त है और प्रमाणभास मिथ्या-अनेकान्त है।

इस प्रकार हम सम्यक्एकान्त और सम्यक्अनेकान्त को स्वीकार करते हैं, अतः इसमें भी सप्तभंगी की प्रवृत्ति होती है। यथा (१) स्यात् एकान्त, (२) स्यात्-अनेकान्त (३) स्यात्-एकान्तानेकान्त, (४) स्यात्-अवक्तव्य, (५) स्यात्-एकान्तवक्तव्य, (६) स्यात्-अनेकान्त वक्तव्य और (७) स्यात्-एकान्तानेकान्त अवक्तव्य।

अनेकान्त छल नहीं है—

शंका :—अनेकान्त वाक्य में जिस वस्तु को सत् कहा

जाता है, उसी को असत् भी कहा जाता है अतएव अनेकान्त वाद छलमात्र है।

समाधान :—नहीं, अनेकान्त में छल का लक्षण घटित नहीं होता। किसी दूसरे अभिप्राय से बोले हुए शब्द का दूसरा ही कोई अभिप्राय कल्पित करके उस कथन का खडन करना छल कहलाता है। जैसे देवदत्त के पास नया कम्बल देख कर किसी ने कहा—देवदत्त नव कम्बलवान् है। दूसरे ने “नव” शब्द का “नौ” अर्थ मान कर कहा—बेचारे दरिद्र देवदत्त के पास नौ कबल कहाँ पड़े हैं !

इस प्रकार अर्थान्तर की कल्पना करने पर छल होता है। अनेकान्तवाद में इस तरह अर्थान्तर की कल्पना नहीं की जाती, इस कारण अनेकान्त वाद छल नहीं है।

अनेकान्त संशय का कारण नहीं :

शंका—एक वस्तु में परस्पर विरोधी अस्तित्व तथा नास्तित्व आदि धर्मों का होना संभव नहीं, अतः अनेकान्तवाद संशय का कारण है। एक ही वस्तु में परस्पर विरोधी अनेक धर्मों का ज्ञान होना संशय है। एक ही घट में परस्पर विरोध धर्मों का अनेकान्तवाद ज्ञान कराता है, अतएव वह संशय का कारण है ?

समाधान :—जब सामान्य का प्रत्यक्ष हो, विशेष का प्रत्यक्ष न हो किन्तु विशेष का स्मरण हो, संशय उत्पन्न होता है। अनेकान्त वाद में तो विशेष का ज्ञान होता है, अतएव वह संशय का कारण नहीं है। वस्तु में स्वरूप से सत्ता है, पर रूप से असत्ता है। इस प्रकार के विशेष की उपलब्धि होने के कारण अनेकान्तवाद को संशय का कारण कहना उचित नहीं है।

शंका :—घटादि में अस्तित्व आदि धर्मों के साथ हेतु विद्यमान है अथवा नहीं ? अगर विद्यमान नहीं है तो उन धर्मों का प्रतिपादन नहीं करना चाहिए। यदि साधक

हेतु विद्यमान है तो परस्पर विरुद्ध धर्मों के साधक हेतु होने से संशय अवश्य उत्पन्न होगा।

समाधान :—भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं से यदि अस्तित्व और नास्तित्व की विवक्षा की जाती है तो उनमें विरोध रहता ही नहीं है। जैसे एक ही देवदत्त को पिता की अपेक्षा पुत्र और पुत्र की अपेक्षा से पिता मानने में कोई विरोध नहीं, उसी प्रकार घट में स्वरूप से अस्तित्व और पररूप से नास्तित्व मानने में भी कोई विरोध नहीं है। अथवा जैसे एक हेतु में सपक्षसत्त्व और विपक्षसत्त्व दोनों धर्म माने गए हैं, वैसे ही घटादि में भी ये दोनों धर्म रहते हैं।

अनेकान्त में आठ दोष :—

अनेकान्त में आठ दोष आते हैं। वे इस प्रकार हैं—

१. एक ही वस्तु में अस्तित्व और नास्तित्व धर्म सम्भव नहीं, क्योंकि वे परस्पर विरोधी हैं। जहाँ अस्तित्व है वहाँ नास्तित्व का विरोध है, जहाँ नास्तित्व है वहाँ अस्तित्व का “विरोध दोष” है।

२. अस्तित्व का अधिकार (आधार) अलग और नास्तित्व का अधिकरण अलग होता है, अतएव “वैयधिकरणदोष” है।

३. जिस रूप से अस्तित्व है और जिस रूप से नास्तित्व है, वे रूप भी अस्तित्व-नास्तित्व रूप हैं। उन्हें भी स्वरूप से सत् और पररूप से असत् मानना होगा। इस प्रकार स्वरूप और पररूप की कल्पना करते-करते कहीं विराम नहीं होगा, अतः “अनवस्था दोष” आता है।

४. जिस रूप से सत्ता है उस रूप से असत्ता भी मानी जाएगी। जिस रूप से असत्ता है उस रूप से सत्ता भी माननी पड़ेगी। अतः “संकर दोष” आता है।

५. जिस रूप से सत्त्व है उस रूप से असत्त्व ही होगा, सत्त्व नहीं और जिस रूप से असत्त्व है उस रूप से सत्त्व ही होगा, असत्त्व नहीं होगा। इस प्रकार “व्यतिकर दोष” की प्राप्ति होगी।

६. वस्तु को सत्त्व और असत्त्वरूप मानने से यह निश्चय नहीं हो सकता कि यह वस्तु ऐसे ही है। अतः स्याद्वाद में “संशय दोष” भी आता है।

७. संशय होने से अनिश्चय रूप “अप्रतिपत्ति दोष”

भी आता है।

८. अप्रतिपत्ति के कारण सत्त्व-असत्त्व रूप वस्तु का अभाव हो जाएगा, अतः “अभाव दोष” आता है।

इन दोषों का परिहार इस प्रकार है :—

विरोध की सिद्धि अनुपलम्भ से होती है, अर्थात् जो दो पदार्थ एक साथ न रह सकते हैं उनमें विरोध माना जाता है। यहाँ विरोध नहीं है, क्योंकि प्रत्येक पदार्थ में स्वरूप से सत्ता और पररूप से असत्ता प्रतीत होती है। प्रतीय मान वस्तु में विरोध माना जाता है।

अकेला सत्त्व ही वस्तु का स्वरूप नहीं है, ऐसा मानने पर पररूप से भी उसमें सत्त्व मानना पड़ेगा। तब प्रत्येक पदार्थ सर्वात्मक हो जाएगा। इसी प्रकार यदि एकान्त रूप से असत्त्व को पदार्थ का स्वरूप माना जाय तो सभी पदार्थ असत् हो जाएंगे। ऐसी स्थिति में सर्व शून्यता का प्रसंग होगा। अर्थात् किसी भी पदार्थ की सत्ता नहीं होगी। अतएव प्रत्येक पदार्थ को सत्-असत् स्वरूप ही मानना युक्ति संगत है।

विरोध के तीन भेद :—

विरोध तीन प्रकार का होता है—(१) बध्यघातक भाव, (२) सहानवस्थान और (३) प्रतिबद्ध-प्रतिबधक भाव।

(१) बध्यघातक भाव—विरोध सर्प और नकुले में तथा आग और पानी में होता है। एक ही काल में दोनों मौजूद हो और उनका संयोग हो तभी यह विरोध होता है। आपके मतानुसार सत्त्व और असत्त्व क्षण भर के लिए भी एक पदार्थ में नहीं रहते। फिर उनका विरोध है, यह कल्पना कैसे की जा सकती है?

(२) सहानवस्थान—विरोध भी सत्त्व और असत्त्व में नहीं कहा जा सकता। यह विरोध भिन्न-भिन्न कालों में रहने वाले पदार्थों में होता है। जैसे—आम में हरितता होती है तब पीतता नहीं होती, जब पीतता उत्पन्न होती है तो हरितता को वह नष्ट कर देती है। अस्तित्व और नास्तित्व इस प्रकार पूर्वोत्तरकाल भावी नहीं है।

(३) प्रतिबद्ध-प्रतिबधकभाव—विरोध भी सत्त्व और सत्त्व और असत्त्व में नहीं है। चन्द्रकान्तमणि की

निकटता में अग्नि दाह नहीं करती, इस कारण चन्द्र-कास्तमणि और दाह में यह विरोध माना जाता है। किन्तु अस्तित्व के समय नास्तित्व में कोई प्रतिबन्ध नहीं हाता और नास्तित्व के समय अस्तित्व में कोई रुकावट नहीं आती, अतएव उनमें प्रतिबन्ध-प्रतिबन्धक भाव विरोध भी नहीं कहा जा सकता। पदार्थों में जब स्वरूप से अस्तित्व होता है तभी पररूप से नास्तित्व भी रहता है यह बात प्रतीति से सिद्ध है।

सत्त्व और असत्त्व में वैयधिकरण्य दोष भी नहीं है, क्योंकि ये दोनों एक ही अधिकरण में रहते हैं, यह बात अनुभव सिद्ध है।

अनवस्था दोष के लिए भी गुंजाइश नहीं, क्योंकि जैन अनन्त धर्मात्मक वस्तु को प्रमाण से सिद्ध स्वीकार करते हैं। वहाँ अनवस्था दोष नहीं होता है जहाँ अप्रमाणिक पदार्थों की कल्पना करते-करते बिश्वांति न हो वहाँ होता है।

संकर और व्यतिकर दोषों को भी अनेकान्तवाद में कोई स्थान नहीं है, क्योंकि जो वस्तु प्रतीति से जैसे सिद्ध होती है, उसमें किसी भी प्रकार का दोष नहीं आ सकता।

सशय आदि का परिहार पहले किया जा चुका है। अतएव पूर्वोक्त आठ दोषों में से कोई भी दोष अनेकान्त में नहीं आता है।

कुछ शंका-समाधान :—

शंका :—पर रूप से असत्त्व का अर्थ है—पररूपा-सत्त्व। घट यदि पराभाव रूप है तो यों कहना चाहिए—घट है, पट नहीं है।

समाधान—घटादि में जो पट रूपा सत्त्व है वह असत्त्व पटादि का धर्म है अथवा घट का धर्म है? पटरूपा सत्त्व पट का धर्म तो हो नहीं सकता, अन्यथा पट में पट स्वरूप का अभाव हो जाएगा। यदि घट का धर्म है तो हमारा कथन (कथञ्चित् घट नहीं है) उचित ही है।

घट भाव-अभाव रूप सिद्ध हो गया तो हमारा अभीष्ट सिद्ध हो गया। हम घट को कथञ्चित् अभावरूप सिद्ध करना चाहते हैं। अब रही शास्त्रों के प्रयोग की बात कि कैसा बोलना चाहिए? सो यह तो परम्परा पर निर्भर है। जैसा पहले वाले शब्द प्रयोग करते आ रहे हैं, वैसा ही हम भी करते हैं इसमें प्रश्न के लिए अवकाश नहीं है।

शंका—किसी भी वस्तु में स्वरूप से जो सत्त्व है, वही पररूप से असत्त्व है। इस प्रकार एक वस्तु में सत्त्व और असत्त्व का भेद नहीं है। ऐसी स्थिति में प्रत्येक वस्तु को भाव-अभाव रूप कैसे कहा जा सकता है?

समाधान :—सत्त्व और असत्त्व दोनों एक नहीं है, क्योंकि उनके अपेक्षणीय है निमित्त अलग-अलग है। स्व द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से अभाव प्रत्यय को उत्पन्न करता है। इस प्रकार भाव और अभाव में भेद है।

जैसे एक ही वस्तु में अपनी अपेक्षा से एकत्व संख्या रहती है और दूसरी वस्तु की अपेक्षा से द्वित्व संख्या रहती है। ये दोनों संख्याएँ परस्पर भिन्न हैं, उसी प्रकार सत्त्व और असत्त्व को भी भिन्न ही समझना चाहिए।

शंका :—एक ही वस्तु में सत्त्व और असत्त्व की प्रतीति मिथ्या है।

समाधान :—नहीं, उनकी प्रतीति में कोई बाधा नहीं है। अतः उस प्रतीति को मिथ्या नहीं कह सकते। कदाचित् कहो कि विरोध बाधक है तो यह कथन पर पराश्रय दोष से दूषित है। विरोध हो तो वह प्रतीति मिथ्या सिद्ध हो और जब प्रतीति मिथ्या सिद्ध हो जाय तब विरोध की सिद्धि हो।

इसके अतिरिक्त विरोध दोष का परिहार अन्यत्र किया जा चुका है।

अनेकान्त सर्वमान्य :—

वास्तव में अनेकान्त वाद को सभी वादियों ने स्वीकार किया है, क्योंकि सभी वादी वस्तु को एक रूप और अनेक रूप मानते हैं।

साल्प—लोग सत्त्व, रज, और तम इन तीन गुणों की साम्य-अवस्था को प्रकृति मानते हैं। ये तीनों गुण भिन्न-भिन्न स्वभाव वाले हैं। ये तीन मिलकर एक प्रकृति हैं। इस प्रकार इनके मत में वस्तु एक-अनेक स्वरूप वाली सिद्ध होती है। समुदाय और समुदायि में अभेद होता है। यहाँ समुदायी तीन हैं और उनका समुदाय एक है। इस प्रकार एक ही वस्तु में एकत्व और अनेकत्व सिद्ध है।

नैयायिक—द्रव्यत्व, गुणत्व आदि को सामान्य विशेष्य अर्थात् अपर सामान्य स्वीकार करते हैं, क्योंकि वह अनु-

बारह प्रकार के संभोग पारस्परिक व्यवहार

मुनि श्री नथमल जी

संभोग बारह प्रकार का है—

१. उपधि	७. अश्रुयुत्थान
२. श्रुत	८. कृतिकर्मकरण (वन्दना)
३. भक्त-पान	९. वैयावृत्यकरण (सहयोग-दान)
४. अंजलिप्रग्रह (प्रणाम)	१०. समवसरण (सम्मिलन)
५. दान	११. सनिषद्या (आसन-विशेष)
६. निकाचन (निमंत्रण)	१२. कथा-प्रबन्ध

संभोग का अर्थ है पारस्परिक व्यवहार—

इस शब्द में श्रमण परम्परा में होने वाले अनेक परिवर्तनों का इतिहास है। भोजन, दर्शन, ज्ञान, चारित्र्य और

वृत्ति प्रत्यय और व्यावृत्ति प्रत्यय-दोनों का विषय है। इस तरह इन्होंने भी एक ही परार्थ को सामान्य विशेषात्मक स्वीकार किया है।

बौद्ध—एक मेचक ज्ञान को अनेक आकारों (नीलाकार, पीताकार, रक्ताकार आदि आकारों) वाला स्वीकार करते हैं। इस प्रकार इन्होंने भी एक ही ज्ञान को एक-अनेक रूप माना है।

चार्वाक—पृथ्वी, जल, तेज और वायु—इन चार भूतों से एक चैतन्य की उत्पत्ति होना मानते हैं। इस प्रकार चैतन्य, पृथ्वी आदि चार भूतों से अभिन्न है। यह भी एक ही वस्तु को अनेक रूप मानना है।

मीमांसक—मत के अनुसार एक ही ज्ञान के तीन आकार होते हैं—प्रमातृ-आकार, प्रमिति-आकार, और प्रमेय-आकार,। इस प्रकार इनकी मान्यता के अनुसार एक ज्ञान अनेक आकारों वाला है। ज्ञान के ये अनेक आकार ज्ञान से भिन्न हैं। अतः यह एक को अनेक रूप मानना कहलाया।

इस प्रकार अनेकान्त वाद की प्रक्रिया सभी दर्शनों को स्वीकार करनी ही पड़ती है। उसे स्वीकार किए बिना काम नहीं चल सकता।

तब—इन उत्तरगुणों के सम्बन्ध में 'संभोग' और 'विसंभोग' की व्यवस्था निष्पन्न हुई थी। निशीथ चूणिकार ने एक प्रश्न उपस्थित किया है कि 'विसंभोग' उत्तरगुण में होता है या मूल गुण में? इसके उत्तर में आचार्य ने कहा—“वह उत्तर गुण में होता है।” मूलगुण का भेद होने पर साधु ही नहीं रहता, फिर संभोगिक और विसंभोगिक का प्रश्न ही क्या?

संभोग और विसंभोग की व्यवस्था का प्रारम्भ कब से हुआ, सहज ही यह जिज्ञासा उभरती है। निशीथ के चूणिकार ने इस जिज्ञासा पर विमर्श किया है। उनके अनुसार पहले अर्थ—भरत (उत्तर भारत) में सब सविन्न साधुओं का एक ही संभोग था, फिर कालक्रम से संभोग और असंभोग की व्यवस्था हुई और उसके आधार पर साधुओं की भी दो कक्षाएं, सांभोगिक और असांभोगिक बन गईं।

चूणिकार ने फिर एक प्रश्न उपस्थित किया है कि कितने आचार्यों तक एक संभोग रहा और किस आचार्य के काल में असंभोग की व्यवस्था का प्रवर्तन हुआ?

इसके उत्तर में भाष्यकार का अभिमत प्रस्तुत करते

१. निशीथ भाष्य गाथा २०६९ (निशीथ सूत्र, द्वितीय विभाग) पृ० ४३१।

संभोगपरवणता सिरिषर-सिवपाहुडे य संभुत्ते।

दंसणणाणचरित्ते, तवहेउ' उत्तर गुणेषु ॥

२. निशीथ चूणि (निशीथ सूत्र, द्वितीय विभाग), पृ० ३६३।

विसंभोगो किं उत्तरगुणे मूलगुणे?

आयरिओ भणति—‘उत्तरगुणे।’

३. निशीथ चूणि (निशीथ सूत्र, द्वितीय भाग), पृ. ३५९:

एस य पुब्बं सव्वसं विग्गाणं अड्ढभरहे एक्क सभोगो आसी, पच्छा जाया इमे सभोइया इमे असंभोइया।

हुए उन्होंने लिखा है—“भगवान महावीर के प्रथम पट्ट-धर भुधर्मा थे। उनके उत्तरवर्ती क्रमशः जम्बू, प्रभव, शय्यभव, यशोभद्र, सभूत और स्थूलभद्र—ये आचार्य हुए हैं। इनके शासनकाल में एक ही सभोग रहा है।”

स्थूलभद्र के दो प्रधान शिष्य थे, आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ती। इनमें आर्य महागिरि ज्येष्ठ थे और आर्य सुहस्ती कनिष्ठ। आर्य महागिरि गच्छ-प्रतिबद्ध-जिन कल्प-प्रतिमा वहन कर रहे थे और आर्य सुहस्ती गण का नेतृत्व सभाल रहे थे। सम्राट् संप्रति ने कार्य सुहस्ती के लिए आहार, वस्त्र आदि श्री व्यवस्था कर दी। सम्राट् ने जनता में यह प्रस्तावित कर दिया कि आर्य सुहस्ती ने शिष्यों को आहार वस्त्र, आदि दिया जाय और जो व्यक्ति उनका मूल्य चाहे, वह राज्य से प्राप्त करे। आर्य सुहस्ती ने इस प्रकार का आहार लेते हुए अपने शिष्यों को नहीं रोका। आर्य महागिरि को जब यह विदित हुआ तब उन्होंने आर्य सुहस्ती से कहा—आर्य ! तुम इस राजपिंड का सेवन कैसे कर रहे हो ? आर्य सुहस्ती ने उसके उत्तर में कहा—यह राजपिंड नहीं है। इस चर्चा में दोनों युग-पुरुषों में कुछ तनाव उत्पन्न हो गया। आर्य महागिरि ने कहा—“आज से तुम्हारा और मेरा संभोग नहीं होगा—परस्पर भोजन आदि का सम्बन्ध नहीं रहेगा। इसलिए तुम मेरे लिए असंभोगिक हो।” इस घटना के घटित होने पर आर्य सुहस्ती ने अपने प्रमाद को स्वीकार किया,

१. निशीथ चूर्णि (निशीथ सूत्र, द्वितीय विभाग),
पृ० ३६०।

सीसो पुच्छति—कति पुरिसजुगे एकको सभोगो आसीत् ? कम्म वा पुरिसे असभोगो पयट्ठो ? केण वा कारणेण ?

ततो भणति—संपतिरणुप्पत्ती सिरिधर उज्जाणि हेट्ठ बोधवा ।

अज्जमहागिरि इत्थिप्पमिती जाणह विसंभोगो ॥

२१५४॥

वद्धमाणसामिस्स सीसो सोहम्मो । तस्स जंबुणामा । तस्स वि पभवो । तस्स सेज्जभवो । तस्स वि सीसो जस्सभदो । जस्सभदसीसो सभूतो । संभूयस्स थूल-भदो । थूलभद् जाव सर्व्वेसि एकसभोगो आसी ।

तब फिर दोनों का संभोग एक हो गया। यह संभोग और विसंभोग की व्यवस्था का पहला निमित्त है। आर्य महागिरि ने आने वाले युग का चिन्तन कर सभोग और विसंभोग की व्यवस्था को स्थायी रूप प्रदान कर दिया।

दर्शन, ज्ञान, चारित्र्य और तप—इनसे सम्बन्धित सभोग और असभोग का विकास कब हुआ, इसका उल्लेख प्राप्त नहीं है। आर्य महागिरि ने सभुक्त-सभोग की व्यवस्था के साथ ही इनकी व्यवस्था की या इनका विकास उनके उत्तरवर्ती काल में हुआ यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। नियुक्तिकाल में सभोग के ये विभाग स्थिर हो चुके थे, यह नियुक्ति की गाथा (२०६६) से स्पष्ट है।

स्थानाग सूत्र के निर्देशानुसार पाँच कारणों से सांभोगिक को विसांभोगिक किया जा सकता है^१। यदि संभोग की व्यवस्था आर्य महागिरि से मानी जाए तो यह स्वीकार करना होगा कि स्थानाग का प्रस्तुत सूत्र आर्य महागिरि के पश्चात् हुई आगम-वाचना में संदृब्ध है। इसी प्रकार समवायाग का प्रस्तुत सूत्र भी (१२-१) आर्य महागिरि के उत्तरकाल में संदृब्ध है। निशीथ भाष्यकार ने सभोग विधि के छः प्रकार बतलाए हैं—ओघ, अभिग्रह, दान-ग्रहण, अनुपालना, उपपात और सवास^२। इनमें से ओघ सभोग-विधि के बारह प्रकार बतलाए गए हैं। समवायाग के प्रस्तुत दो श्लोको में उन्हीं बारह प्रकारों का निर्देश है। निशीथ भाष्य में भी ये दो श्लोक लगभग उसी रूप में मिलते हैं—

१. निशीथ चूर्णि (निशीथ सूत्र, द्वितीय भाग),
ततो अज्जमहागिरि अज्जसुहत्थि भणति—अज्जप्प-
मिति तुम मम असंभोतिथो । एव पाहुड-कलह
इत्यर्थः । ततो अज्जसुहत्थी पञ्चाउट्ठो मिच्छाटुककड
करेति, ण पुणो गेण्हामो । एवं भणिए सभुत्तो । एत्थ
पुरिसे विसंभोगो उप्पण्णो । कारण च भणियं । ततो
अज्जमहागिरि उवउत्तो. पाएण मायाबहुलाभणुयत्ति
काउं विसंभोगं ठवेति ।

२. स्थानाग ५-४०० ।

३. निशीथ भाष्य, गाथा २०७० ।

ओह अभिग्रह दाणग्गहणे अनुपालणा य उववातो ।
सवासम्मि य छट्ठो, संभोगविधी मुण्येव्वो ॥

उवहि सुत मत्तपाणो, अंजलीपग्गहेति य ।
दावणा य णिकाएव, अब्भुट्ठाणेति यावरे । २०७१ ।
कितिकम्मस्स य करणे, वेयावच्चकरणेति य ।

समोसरण सणिसेज्जा, कथाए य पबंघणे । २०७२ ।

निशीथ भाष्य के अनुसार स्थितिकल्प, स्थापनाकल्प और उत्तरगुणकल्प—ये कल्प (आचार-मर्यादा) जिनके समान होते हैं, वे मुनि सांभोगिक कहलाते हैं और जिन मुनियों के ये कल्प समान नहीं होते वे असंभोगिक या विसंभोगिक कहलाते हैं^१ ।

उपधि-संभोग—

इस व्यवस्था के अनुसार समान कल्प वाले साधुओं के साथ उपधि-ग्रहण की मर्यादा के अनुसार उपधि का संग्रह किया जाता है । निशीथ भाष्य के अनुसार सांभोगिक साध्वी के साथ निष्कारण अवस्था में उपधि-याचना का संभोग वर्जित है^२ ।

श्रुत-संभोग—

इस व्यवस्था के अनुसार समान कल्प वाले साधुओं को याचना दी जाती है । वाचनाक्षम प्रव्रतिनी के न होने पर आचार्य साध्वी को वाचना देने है^३ ।

भक्त-पान-संभोग—

इस व्यवस्था के अनुसार समान कल्प वाले साधुओं के साथ एक मण्डली भोजन किया जाता है । समान कल्प वाली साध्वी के साथ एक मण्डली में भोजन नहीं किया जाता^४ ।

अंजलि-प्रग्रह संभोग—

इस व्यवस्था के अनुसार सांभोगिक या अन्य सांभो-

१. वही, गाथा २१४६ ।

ठितिकप्पम्मि दसविहे, ठवणाकप्पे य दुविदमण्यरे ।

उत्तरगुणकप्पम्मि य, जो सरिकप्पो स संभोगो ॥

२. निशीथ भाष्य, गाथा २०७८ ।

३. निशीथ चूर्णि (निशीथ सूत्र, द्वितीय विभाग), पृ० ३४७ ।

संजतीण जइ आयरिय मोत्तु अण्णा पवत्तिणीमाती वायत्ति णत्थि, आयरिओ वायणातीणि सव्वाणि एताणि देति न दोसः ।

४. वही, पृ० ३४८ ।

गिक साधुओं की वन्दना की जाती है । साध्वी को साधु वन्दना नहीं करते । साध्वियाँ पाक्षिक क्षमा-याचना आदि कार्य के लिए साधुओं के उपाश्रय में जाती हैं, तब साधुओं की वन्दना करती हैं । जब वे भिक्षा आदि के लिए जाती हैं तब मार्ग में साधुओं के मिलने पर उन्हें वन्दना नहीं करती है^५ ।

दान-संभोग—

इस व्यवस्था के अनुसार समान कल्प वाले साधुओं को शय्या, उपधि, आहार, शिष्य आदि दिये जाते हैं । सामान्य स्थिति में साध्वी को शय्या, उपधि, आहार आदि नहीं देते^६ ।

निकाचना-संभोग—

इस व्यवस्था के अनुसार समान कल्प वाले साधुओं को उपधि, आहार आदि के लिए निमन्त्रित किया जाता है^७ ।

अभ्युत्थान-संभोग—

इस व्यवस्था के अनुसार समान कल्प वाले साधुओं को अभ्युत्थान का सम्मान किया जाता है^८ ।

कृतिकर्मकरण-संभोग—

इस व्यवस्था के अनुसार समान कल्प वाले साधुओं का कृतिकर्म किया जाता है । इसमें खड़ा होना, हाथों से आवर्त देना, सूत्रोच्चारण करना आदि अनेक विधियों का पालन किया जाता है^९ ।

वैयावृत्यकरण-संभोग—

इस व्यवस्था के अनुसार समान कल्प वाले साधुओं को सहयोग दिया जाता है । शारीरिक और मानसिक सभी प्रकार की समस्याओं के समाधान में योग देना वैयावृत्यकरण है । जैसे आहार, वस्त्र आदि देना शारीरिक उपप्लब्ध है, वैसे ही कलह आदि के निवारण में योग देना मानसिक उपप्लब्ध है । सांभोगिक साध्वियों को यात्रा-पथ

५. वही, पृ० ३४६ ।

६. वही, पृ० ३४६ ।

७. निशीथ चूर्णि (निशीथसूत्र, द्वितीय विभाग), पृ० ३५० :

८. वही, पृ० ३५० ।

९. वही, पृ० ३५१ ।

आदि विशेष स्थिति में सहयोग दिया जाता है' ।

समवसरण-संभोग—

इस व्यवस्था के अनुसार समान कल्प वाले साधु एक साथ मिलते हैं। अवग्रह की व्यवस्था भी इसी से अनुस्यूत है। अवग्रह (अधिकृत स्थान) तीन प्रकार के होते हैं—वर्षा-अवग्रह, ऋतुबद्ध-अवग्रह और बृद्धवास-अवग्रह। अपने सांभोगिक साधुओं के अवग्रह में कोई साधु जाकर शिष्य, वस्त्र आदि का जान-बूझकर ग्रहण करता है तथा अनजान में गृहीत शिष्य, वस्त्र आदि अवग्रहस्थ साधुओं को नहीं सौंपता तो उसे असांभोगिक कर दिया जाता। पार्श्वस्थ आदि का अवग्रह शुद्ध साधुओं को मान्य नहीं होता, फिर भी उनका क्षेत्र छोटा हो और क्षुब्ध साधुओं का अन्यत्र निर्वाह होता हो तो साधु उस क्षेत्र को छोड़ देते हैं। यदि पार्श्वस्थों आदि का क्षेत्र विस्तीर्ण हो और शुद्ध साधुओं का अन्यत्र निर्वाह कठिन हो तो उस क्षेत्र में साधु जा सकते हैं और शिष्य, वस्त्र आदि का ग्रहण कर सकते हैं।

संनिवृद्धा-संभोग—

इस व्यवस्था के अनुसार दो सांभोगिक आचार्य निवृद्धा पर बैठकर श्रुत-परिवर्तना आदि करते हैं।

कथा-प्रबन्ध-संभोग—

इसके द्वारा कथा सम्बन्धी व्यवस्था दी गई है। कथा के पांच प्रकार हैं—वाद, जल्प वितण्डा, प्रकीर्णकथा और निश्चयकथा प्रकीर्णकथा के दो प्रकार हैं—उत्सर्ग कथा और

द्रव्यास्तिकनय कथा। इसी प्रकार निश्चय कथा के भी दो प्रकार हैं—अपवाद कथा और पर्यायास्तिकनय कथा। प्रथम तीन कथाएं साध्वियों के साथ नहीं की जातीं किंतु अन्य—असांभोगिक, अन्यतीथिक व गृहस्थ सभी के साथ की जा सकती हैं।

इस प्रकार इन बारह संभोगों के द्वारा समानकल्पी साधु-साध्वियों तथा असमानकल्पी साधुओं के साथ व्यवहार की मर्यादा निश्चित की गई है। इन व्यवस्थाओं का अतिक्रमण करने पर समानकल्पी साधु का सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया जाता। उदाहरण के लिए उपवि-संभोग की व्यवस्था प्रस्तुत की जा रही है—

कोई साधु उपवि की मर्यादा का अतिक्रमण कर उपवि ग्रहण करता है। उस समय दूसरे साधुओं द्वारा सावधान करने पर वह प्रायश्चित् स्वीकार करता है तो उसे विसांभोगिक नहीं किया जाता। इस प्रकार दूसरी और तीसरी बार भी सावधान करने पर वह प्रायश्चित् स्वीकार करता है तो उसे विसांभोगिक नहीं किया जाता। किन्तु चौथी बार यदि वह वैसा करता है तो उसे विसांभोगिक कर दिया जाता है। जो मुनि अन्य सांभोगिक साधुओं के साथ शुद्ध या अशुद्ध—किसी भी प्रकार से उपवि ग्रहण करता है और सावधान करने पर वह प्रायश्चित् स्वीकार नहीं करता तो उसे प्रथम बार ही विसांभोगिक किया जा सकता है और यदि वह प्रायश्चित् स्वीकार कर लेता है तो उसे विसांभोगिक नहीं किया जा सकता। चौथी बार वैसा कार्य करने पर पूर्वोक्त की भाँति उसे विसांभोगिक कर दिया जाता है। यह उपवि के आधार पर संभोगिक और विसंभोग की व्यवस्था है। ●

१. वही, पृ० ३५१; समवायांग वृत्ति, पत्र २२।

२. निशीथ चूणि (निशीथ सूत्र, द्वितीय विभाग), पृ० ३५३; समवायांग वृत्ति, पत्र २२।

३. वही, पृ० ३५४; समवायांग वृत्ति, पत्र २३।

४. वही, पृ० ३५४, ३५५।

५. वही, पृ० ३४२।

**सन् १९७१ की जनगणना के समय धर्म के
रखाना नं० १० में "जैन" लिखा कर सही आँकड़े
इकट्ठा करने में सरकार की मदद करें ॥**

हरिवंशपुराण की प्रशस्ति एवं वत्सराज

श्री रामवल्लभ सोमानी

हरिवंशपुराण को पुन्नाट गच्छ के जिनसेनाचार्य ने शक सं० ७०५ में पूर्ण किया था। इसकी बहुचर्चित प्रशस्ति में तत्कालीन भारत के राजाओं का वर्णन है। इसको लेकर विद्वानों में बड़ा मतभेद रहा है। इसका सामान्यतः यह अर्थ लेते हैं कि उस समय पूर्व में अवन्ति क्षेत्र में वत्सराज शासक था। पश्चिम में सौराष्ट्र में जयवराह शासक था। दक्षिण में श्री वल्लभ (ध्रुव निरुपम) एवं उत्तर में इन्द्रायुध। “पूर्वी श्री मदवन्ति भूमितिनृपे वत्सादिराजेष्वरा” पद का अर्थ यह भी लेते हैं कि पूर्व में अवन्ति का शासक एवं वत्सराज। प्रश्न यह है कि वत्सराज अवन्ति का शासक था अथवा नहीं! कई विद्वान गुर्जर प्रतिहारों की इस शाखा कि राजधानी अवन्ति मानते हैं किन्तु मैं समझता हूँ कि यह मत गलत है। नागभट्ट प्रथम गुर्जर प्रतिहार, शासक ने इस शाखा की स्थापना की थी। पुरातन प्रबन्ध संग्रह के एक वर्णन के अनुसार इसकी राजधानी जालोर ही थी। इसके उत्तराधिकारी कन्नौज राजधानी स्थिर होने तक यही से शासन कर रहे थे। संजान के ताम्रपत्र में यह वर्णन है कि दन्तिदुर्ग ने जब अवन्ति में हिरण्य महायज्ञ किया था तब गुर्जरेश्वर को द्वारपाल बनाया था इसी प्रकार वहाँ गुर्जरेश्वर के महलों का भी उल्लेख मिलता है। गुर्जरेश्वर को जो द्वारपाल के रूप में प्रतिष्ठापित किया वह केवल मूर्ति के रूप में रहा होगा। जयचंद ने भी इसी प्रकार पृथ्वीराज की मूर्ति द्वारपाल के रूप में बना रखी थी। अरब आक्रमणकारी जुनैद के आक्रमण के बाद वस्तुतः

नागभट्ट को राज्य विस्तार का मौका मिला था। लाट के शासक अवनि जनाश्रय ने भी जुनैद से युद्ध किया था। उस समय कुछ समय के लिए अवन्ति प्रदेश नागभट्ट प्रथम के अधिकार में रहा था जिसे राष्ट्रकूट राजा दन्तिदुर्ग ने हस्तगत कर लिया था और इसके बाद कुछ समय तक वहाँ वापस प्रतिहारों का अधिकार नहीं हो सका था।

वत्सराज के समय बड़ी राजनैतिक उथल पुथल हो रही थी। दक्षिण के राष्ट्रकूट राजा गोविन्द द्वितीय को अपदस्थ करके उसका छोटा भाई ध्रुव निरुपम राज्य का अधिकारी हो गया था। भोर म्युजियम के शक सं० ७०२ (७८० ई०) के दानपत्र में वर्णित है कि ध्रुवराज ने मालवे के उस शासक को हराया जो उसके भाई के पक्ष में था। यह वत्सराज से भिन्न था। गोविन्द तृतीय के राघनपुर^१ ७३० शकसं० (८०८ ई०) एवं मन्ने के शकसं० ७२४ (८०२ ई०) के दानपत्रों में उसके पिता ध्रुवराज के लिए लिखा है कि उसने वत्सराज को हराया नहीं किन्तु राजस्थान के रेगिस्तान की ओर बढ़ने को बाध्य कर दिया। इसके पश्चात् उसने आगे बढ़कर धर्मपाल को हराया और उसके छत्र और चक्र छीन लिये। मालवे के शासक का उल्लेख गोविन्द तृतीय के उक्त दानपत्रों में स्पष्टतः आता है जो प्रतिहार शासकों से भिन्न था। गोविन्द तृतीय के सामने उसने बिना युद्ध किये ही आत्म-समर्पण किया था। लेखों में “नय प्रिय कह कर व्यग किया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि उस समय प्रतिहारों का वहाँ अधिकार नहीं रहा था। अगर वत्सराज ने इसे कुछ समय के लिए जीत भी लिया हो तो उसकी यह विजय अस्थायी थी। वहाँ वत्सराज के अलावा कोई अन्य शासक था।

१. अबुदाद्री नाहडतटाक कारयित्वा गर्जनप्रतोल्याः कपाटमादाय तत्र प्रचिक्षिपे। तथा जाबालिपुरे राजधानिः कृता।” (पुरातनप्रबन्ध संग्रह भूमिका पृ० १५)

२. डा० दशरथ शर्मा—राजस्थान थू दी ऐजज भाग १ में प्रतिहारों का वर्णन।

३. इंडियन एंटिक्वेरी Vol. 5 एवं जैन लेख संग्रह भाग २ में प्रकाशित।

इस मत की पुष्टि के लिए कई सबल प्रमाण उपलब्ध हैं। (१) राष्ट्रकूट राजा ध्रुवनिरुपम के आक्रमण के शीघ्र बाद धर्मपाल ने वत्सराज द्वारा जीते हुए कन्नौज के आसपास के प्रदेश को हस्तगत कर इन्द्रायुध के स्थान पर चक्रायुध को वहाँ का अधिकारी बनाया। उस समय वहाँ एक बड़ा दरबार किया जिसमें कई प्रदेशों के शासक विद्यमान थे इनमें अवन्ति का शासक भी था जो वत्सराज से भिन्न था।^{1A}

(२) ग्वालियर के राजा भोज के शिलालेख में वत्सराज के पुत्र नागभट्ट द्वितीय के वर्णन में उसे आनन्त मालव आदि प्रदेशों को जीतने वाला वर्णित किया है। इससे स्पष्ट है कि अवन्ति मालव प्रदेश उस समय तक प्रतिहार साम्राज्य का भू भाग नहीं बना था।²

(३) कुवलय माला की शकसं० ६६६ (७७८ ई०) की प्रशस्ति में लिखा है कि अष्टापद जैसे ऊँचे जालोर दुर्ग में एक ऊँचे धवल मनोहर रत्नों से युक्त भगवान् ऋषभदेव का मन्दिर है वह कई ध्वजाओं से युक्त है। इस मन्दिर में चैत्रवदि ३० के दिन उक्त ग्रंथ सम्पूर्ण किया। उस समय शत्रुओं के सैनिकों का मान भंग करने वाला और स्नेही वगैरह रूपी रोहणी पति सम्पूर्ण कलावान् चन्द्रमा के सदृश वत्सराज शासक था।³ यद्यपि इस ग्रंथ प्रशस्ति से राज्य की सीमाओं का पता नहीं चलता है किन्तु पुरातन प्रबन्ध संग्रह के प्रसंग से प्रतीत होता है कि उस समय तक इन प्रतिहार राजाओं की राजधानी

जालोर ही थी।

(४) कुवलय माला में प्रारम्भ में एक प्रसंग वर्णित है। यद्यपि यह कथा प्रसंग है किन्तु इससे यह कहा जा सकता है कि उस समय अवन्ति प्रदेश के लिए संघर्ष चल रहा था। इसकी काल्पनिक कथा में राजा दृढवर्मा और उसकी रानी प्रियगुदयामा का उल्लेख है। इसके दरबार में इसके सेनापति का पुत्र सुषेण ने जो शबर जाति का था अपने मालवा विजय का प्रसंग उल्लेखित करते हुए कहा “मैं आपकी आज्ञानुसार मालवे पर आक्रमण करने गया। मेरे पास विशाल सेना विद्यमान थी। इस सेना के पराक्रम से दुश्मन की हार हुई और उसकी सेना भाग खड़ी हुई। इसके पश्चात् उसकी सेना ने नगर में प्रवेश करके उत्तम वस्तुओं को लूटा।” कथा सूत्र में वस्तुतः इस प्रसंग का कोई महत्व नहीं है। किन्तु राजनैतिक घटनाओं में कहा जा सकता है कि वत्सराज का संघर्ष मालवे के लिए चल रहा हो। इस प्रकार अवन्ति का राजा वत्सराज से भिन्न था।

इन सब प्रसंगों से स्पष्ट है कि प्रतिहारों की इस शाखा की राजधानी अवन्ति नहीं थी। कई विद्वान् इन प्रतिहार राजाओं को अवन्ति के प्रतिहार कहते हैं किन्तु इसका कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है। हरिवंश पुराण की प्रशस्ति का अतएव यही अर्थ लेना चाहिए कि “वत्सराज एवं अवन्ति का शासक”। अर्थात् वत्सराज से अवन्ति का शासक भिन्न था। ●

3A. ए लिस्ट आफ दी इन्स्क्रिप्शन्स ऑफ नोर्डन इंडिया

Page 223-224

४. आनन्तमालव किरात तुरुष्क वत्स—

मत्स्यादि राजगिरिदुर्गदृषापहारैः।

Epigraphia-India Vol. XVIII पृ. ११२

५. तुगमलधं जिण भवण-मणहर सावयाउल विसम

जाबालिउरं अट्टावय व अह अत्थि पुहईए।

तुग धवल मणहारि-रयण-पसरंत-धयवडाडोय।

उसभ-जिणदाययण करावियं वीरभइए।

सिरि वच्छराय-णामो रणहत्थी पत्थिवो जइया।।

कुवलयमाला पृ. २८२-८३

६. पुच्छिओ राइणा “मालव णरिदेणसह तुम्हाणं को वुत्ततो” त्ति। भणिय सुसेणेण” जयउ देवो। इओ देव समाएसेणं तेहिं चैय दिवसे दरिय महा-करि-तुरह-रह-णर-सय-सहसुच्छलत कलयला राव-सषट्ठ-घुट्टमाण-णहयल गुरुभर-दलत-महियल जणसय-संभाह-रुभमाण दिसावह उड ड पोडरीय-संकुल संपत्तं देवस्स सतियं बलं। जुअं च समादत्तं।.....ताव य देव अम्ह बलेणं बिवडेंत-छत्तयं णिवडंत-चिधयं पडंत-रडंत-जोहयं खलंत-आसयं फुरंत-कोत्तयं सरत-सरवरं कुजर दलंत-रह-वरं भगं रिउ बलति.....।”

(उपरोक्त पृष्ठ १० और ३०)

वायुपुराण और जैन कथाएं

डा० विद्याधर जोहरापुरकर

१. प्रास्ताविक—भगवान महावीर के पूर्व के भारत के इतिहास के कोई निश्चित साधन उपलब्ध नहीं है। उस प्राचीन युग के बारे में जैन, वैदिक और बौद्ध साहित्य में प्राप्त कथाओं से ही कुछ अनुमान किये जाते हैं। इनमें बौद्ध साहित्य में विविध प्रकीर्ण उल्लेख ही मिलते हैं—कोई सुसंगत व्यवस्थित वर्णन नहीं मिलता। जैन और वैदिक पुराणों में उस प्राचीन युग की कथाओं को व्यवस्थित करने का प्रयास देखा जाता है। इनमें वैदिक पुराणों के आधार पर इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास का वर्णन करने का प्रयत्न किया है (जिसका उत्तम उदाहरण भारतीय विद्याभवन बम्बई द्वारा प्रकाशित 'दि वेदिक एज' ग्रंथ में मिलता है)। किन्तु जैन कथाओं का ऐसा समुचित उपयोग नहीं किया है। प्रस्तुत लेखमाला में हम जैन और वैदिक कथा ग्रन्थों की कुछ समानताओं और भिन्नताओं का अध्ययन कर रहे हैं।

२ आधारभूत साहित्य—वैदिक पुराणों में मुख्य-मुख्य ग्रंथों में गुप्तकाल तक के भारतीय राजाओं का उल्लेख मिलता है अतः उनका वर्तमान स्वरूप चौथी-पाचवीं शताब्दी का है यद्यपि उनमें प्रथम पुराण-वर्णन का समय महाभारत युद्ध के बाद की पाचवीं पीढ़ी के राजा अधिसीमकृष्ण का राज्यकाल बताया है। प्रस्तुत लेख में जिस वायुपुराण का अध्ययन किया गया है उसमें भी यही वर्णन है। दूसरी ओर जैन कथाओं का प्रथम विस्तृत ग्रंथ विमलसूरी का पउमचरिय प्रथम शताब्दी का है (यद्यपि कुछ विद्वान उसे तीसरी शताब्दी का मानते हैं) तथापि उनमें भी कहा गया है कि भगवान महावीर से चली आई श्रुतपरम्परा उसका आधार है। इस लेख में पउमचरिय के प्राकृत टेक्स्ट सीरीज द्वारा प्रकाशित संस्करण का तथा वायुपुराण के श्री रामप्रताप त्रिपाठी द्वारा किये गए हिन्दी अनुवाद का उपयोग किया है (यह अनुवाद

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा प्रकाशित हुआ है। कालचक्र कल्पना—पउमचरिय (अध्याय ३ व २०) में बताया गया है कि भरत व ऐरावत क्षेत्रों में काल का चक्रवत् परिवर्तन होता है। अवसर्पिणी में प्रथम सुषमा सुषमा काल होता है, दूसरा सुषमा, तीसरा सुषमा दुषमा, चौथा दुषमा सुषमा, पाचवां दुषमा तथा छठा दुषमा दुषमा होता है। तदनन्तर उत्सर्पिणी में पहला दुषमा दुषमा, दूसरा दुषमा इस प्रकार से छह काल होते हैं। वायुपुराण में काल का परिवर्तन कुछ भिन्न प्रकार से बताया है (अध्याय ४८)। मुखपूर्ण कृतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग तथा दुःखपूर्ण कलियुग ऐसा क्रम यहाँ बताया है तथा कलियुग के बाद पुनः कृतयुग का प्रारम्भ कहा है। अर्थात् जहाँ जैन कथाओं में समय परिवर्तन क्रमिक है। वहाँ वायुपुराण में कलि के बाद आकस्मिक परिवर्तन से कृत के प्रारम्भ का वर्णन है। इनमें चारों युगों का सम्मिलित समय १२ हजार दिव्य वर्ष (एक दिव्य वर्ष मनुष्यों के ३६० वर्षों के बराबर) माना है। जैन परम्परा में उत्सर्पिणी के तथा अवसर्पिणी के समय के लिए दस कोटाकोटी सागर शब्द का प्रयोग किया है (एक योजन व्यास के एक योजन गहरे वृत्ताकार खड्ड में नवजात बकरो के सूक्ष्मातिसूक्ष्म जितने रोमखड समाते हैं उसके सौगुना वर्षों को पत्य कहा जाता है तथा दस कोटाकोटी पत्यों का एक सागर होता है)।

४ चौदह मनु—पउमचरिय (अ० ३) में तीसरे सुषमा दुषमा काल के अन्त में चौदह कुलकर हुए ऐसा वर्णन है जिन्हें अन्य जैन ग्रंथों में मनु भी कहा गया है (जैसे वरांग चरित्र स० २७ श्लो० ३६)। वायुपुराण (अ० १००) में भी चौदह मनुओं का वर्णन है। किन्तु एक मनु से दूसरे मनु तक का समय यहाँ इकहत्तर चतुर्गुण बताया है। अर्थात् दो मनुओं के बीच कृत आदि चार

चार युगों का परिवर्तन इकहत्तर बार होता है ऐसा कहा है। दोनों में चौदह मनुओं के नाम और कार्यों के बारे में कोई समानता नहीं है। वायुपुराण के अनुसार सात मनु हो चुके हैं और सात आगे होंगे जब कि जैन वर्णन के अनुसार चौदह मनु हो चुके हैं।

५. ऋषभदेव—पउमचरिय (अ० ३) में चौदहवें कुलकर नाभिराज के पुत्र प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव का वर्णन है। उन्होंने प्रजा को कृषि आदि कर्मों का उपदेश दिया तथा कर्मानुसार क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों का विभाजन किया। उनके भरत आदि सौ पुत्र हुए। भरत ने ब्राह्मण वर्ण की स्थापना की। वायुपुराण (अ० ३३) में भी नाभिपुत्र ऋषभ तथा उनके भरतादि सौ पुत्रों का वर्णन है। ब्राह्मणादि वर्णों का विभाजन इनमें ब्रह्मा द्वारा त्रेतायुग के प्रारम्भ में बताया है (अ० ८)। ऋषभ देव के पहले के समय में सब लोग सुखी थे, धर्म-अधर्म का विचार नहीं था, माता-पिता केवल एक बार आयु के अन्त में युगल पुत्र-कन्या को जन्म देते थे, ऋतुपरिवर्तन नहीं होता था यह जैन कथाओं का वर्णन वायुपुराण (अ० ८) में कृतयुग के संबंध में पाया जाता है। त्रेतायुग के प्रारम्भ में मेघवृष्टि, कृषि, कल्पवृक्षों का अभाव, धर आदि का वर्णन भी यहाँ मिलता है जो जैन कथाओं के अनुसार ऋषभदेव के समय की (चौथे दुषमासुषमा काल के प्रारम्भ की) घटनाएँ थी। वायुपुराण (अ० २३) में शिव के नवम योगावतार के रूप में भी ऋषभदेव का वर्णन है किन्तु यह नवम द्वापर युग की बात कही गई है। अन्य कोई वर्णन न होने से यह तीर्थंकर ऋषभ का वर्णन है या नहीं यह सन्दिग्ध है। वायुपुराण (अ० ३३) में ऋषभदेव प्रथम मनु स्वायंभुव के प्रपौत्र नाभि के पुत्र कहे गए हैं।

६ सगर चक्रवर्ती—पउमचरिय (अ० ५) में दूसरे चक्रवर्ती सगर तथा उनके साठ हजार पुत्रों की कथा है। वे दूसरे तीर्थंकर अजितनाथ के समकालीन बताए गए हैं। वायुपुराण (अ० ८८) में वैवस्वत मनु के बाद अड़तीसवीं पीढ़ी में सगर व उनके साठ हजार पुत्रों का वर्णन आता है। दोनों कथाओं में सगर माता-पिता के नाम व उनके पुत्रों के मृत्यु के कारण भिन्न-भिन्न हैं। सगर के उत्तरा-

धिकारी के रूप में भगीरथ का नाम दोनों में आता है यद्यपि सगर से भगीरथ का सम्बन्ध दोनों में भिन्न है।

७ प्रतिनारायण—पउमचरिय (अ० ४ व २०) में चतुर्थ दुषमासुषमा काल में हुए नौ प्रतिनारायणों का वर्णन है जिनको विनष्ट करने वाले नौ नारायण बताए गए हैं। ग्यारहवें तीर्थंकर श्रेयांस के समय में प्रथम नारायण त्रिपुष्ट ने प्रतिनारायण अश्वघ्नीव को मारा था। बारहवें तीर्थंकर वासुपूज्य के समय में द्विपुष्ट ने तारक को मारा था। तेरहवें तीर्थंकर विमल के समय में स्वयंभू ने मेरक को मारा था। चौदहवें तीर्थंकर अनन्त के समय में पुरुषोत्तम ने मधुकैटभ को मारा था। पन्द्रहवें तीर्थंकर धर्म के समय में पुरुषसिंह ने निशुभ को मारा था। अठारहवें तीर्थंकर अरनाथ के बाद पुरुषपुण्डरीक ने बलि को तथा दत्त प्रल्हाद को मारा था। बीसवें तीर्थंकर मुनि-सुव्रत के समय लक्ष्मण नारायण ने रावण को तथा बाईसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमि के समय में श्रीकृष्ण ने जरासन्ध को मारा था। वायुपुराण में इन नारायण-प्रतिनारायणों में से बहुतों के नाम आते हैं यद्यपि विस्तृत कथाएँ नहीं हैं। इसमें (अ० ४० में) अघोलोक निवासी दैत्यों के हयग्रीव (जो प्रथम प्रतिनारायण अश्वघ्नीव का पर्याय प्रतीत होता है), तारक, निशुम्भ, बलि और प्रल्हाद के नाम आते हैं। असुरराज के रूप में तारक का वर्णन भी है (अ० ७२) किन्तु यहाँ उनके विनाश का श्रेय शिवपुत्र स्कन्द को दिया है। मधु और कैटभ इन दो दैत्यों के विष्णु और जिष्णु द्वारा मारे जाने की कथा है (अ० २४)। विष्णु के अवतार वामन द्वारा बलि को पराजित कर पाताल में भेजे जाने की कथा है (अ० ६७) (जैन पुराणकथाओं में इस से मिलतीजुलती विष्णुकुमार मुनि की कथा हरिवंशपुराण में है)। जैन कथाओं में बलि के बाद प्रल्हाद का वर्णन है जबकि वायुपुराण (अ० ६८) में प्रल्हाद के पौत्र रूप में बलि का वर्णन है। किन्तु इसी के अन्य प्रसंग में (अ० ६७ में) वाराह कल्प के बारह युद्धों की गणना में बलि का उल्लेख दूसरे और प्रल्हाद का उल्लेख चौथे युद्ध में किया है। रावण का रामचन्द्र द्वारा विनाश होने की कथा है। (अ० ७०) यहाँ रावण का राज्यकाल ५ करोड़ इकसठ नियुत वर्ष

बताया है। यहां तक प्रतिनारायणों के उल्लेख बताए। पांचवे नारायण पुरुषसिंह का नामांतर यहां नरसिंह के रूप में आया है (अ० ६७) किन्तु उनके द्वारा मारे गए दैत्य का नाम हिरण्यकशिपु बताया है। सातवें नारायण दत्त का विष्णु के अवतार के रूप में वर्णन है (अ० ६८) किन्तु उनके किसी शत्रु का नाम नहीं है, दत्त (पूरा रूप दत्तात्रेय) अवतार दसवें त्रेतायुग का बताया है। आठवें नारायण लक्ष्मण को इसमें महत्त्व नहीं मिला है, उनके बन्धु रामचन्द्र चौबीसवें त्रेतायुग में हुए बताए गए हैं (अ० ६८)। यही पर अष्टादसवें द्वापर युग में हुए नवें नारायण श्रीकृष्ण का विस्तार से वर्णन है।

८. अन्य कथाएं—जैन कथाओं में शलाका पुरुषों के रूप में गिने गए कथानायकों के उल्लेख अब तक बताए। अब अन्य कुछ कथासाम्यों का निर्देश करते हैं। पउमचरिय (अ० २०) में आठवें चक्रवर्ती सुभौम के पिता कार्तवीर्य बताए हैं। कार्तवीर्य का विनाश परशुराम द्वारा तथा परशुराम का विनाश सुभौम द्वारा बताया है। वायुपुराण में (अ० ६४) राजा यदु के वंशजों की दसवीं पीढ़ी में कर्णकाश्रिय अर्जुन का वर्णन है जिसे परशुराम ने मारा था, यहाँ सुभौम को कोई चर्चा नहीं है। एक अन्य प्रसंग में (अ० ६८) परशुराम उन्नीसवें त्रेतायुग के अवतार बताए हैं। कार्तवीर्य के सहस्र बन्धुओं द्वारा समुद्र को क्षुभित करने तथा रावण को पराजय करने की कथा है (अ० ६४)। पउमचरिय (अ० १०) में इससे मिलती-जुलती कथा में राजा का नाम सहस्रकिरण बताया है। तथा उसकी जलक्रीड़ा में नर्मदा के जल के रोके जाने का वर्णन है, रुके हुए नर्मदाजल के पुनः प्रवाहित होने पर रावण की पूजा में विघ्न आने की तथा फलस्वरूप रावण और सहस्रकिरण के युद्ध होने की भी चर्चा है। किन्तु इसमें सहस्रकिरण की पराजय व तदनन्तर प्रव्रजित होने की घटना वायुपुराण से भिन्न है। दूसरा महत्त्वपूर्ण कथासाम्य राजा वसु की कथा का है। पउमचरिय (अ० ११)

में अयोध्या के राजा अजित के पुत्र वसु के बारे में कहा गया है कि यज्ञ में अज अर्पण करना चाहिए इस वाक्य में अज शब्द का अर्थ बकरा बता कर पशु बलि की प्रथा का उसने समर्थन किया था, फलस्वरूप वह अधोगति को प्राप्त हुआ था। अज शब्द का वास्तविक अर्थ तीन वर्ष से अधिक पुराने (अकुरित न होने योग्य) धान्यबीज बताया गया है। यही कथा वायुपुराण (अ० ४७) में है, यहाँ वसु के त्रेतायुग के आरम्भ के राजा उत्तानपाद का पुत्र बताया है, शेष कथा वैसी ही है, यद्यपि पशुहिंसा के स्पष्ट निषेध को यहां टाला गया है। इतना अवश्य कहा गया है कि यज्ञ की अपेक्षा तपस्या विशेष फलदायिनी है।

९. उपसंहार—ऊपर पउमचरिय वायुपुराण के मुख्य-मुख्य कथासाम्यों का विवरण दिया है। इससे स्पष्ट होगा कि इन दोनों में कौनसी परम्परा पूर्ववर्ती है यह कहना सरल नहीं है। ऋषभदेव तथा वसु की कथाएं स्पष्टतः जैन परम्परा से ली गई हैं। अन्य कथाओं में वायुपुराण में अद्भुत वर्णनों का बाहुल्य है कि जबकि पउमचरिय तथा उसके बाद के जैन पुराणों में अधिकांश वर्णन मानवीय घरातल के हैं। वायुपुराण में कथाओं के कालानुक्रम में कई स्थानों पर उलझनें प्रतीत होती हैं जबकि पउमचरिय तथा उसके अनुवर्ती साहित्य की कथाओं का क्रम अपेक्षाकृत सुलभा हुआ है।

यह स्पष्ट ही है कि इन दोनों परम्पराओं की मूलभूत भूमिका में बहुत अन्तर है—वायुपुराण ईश्वर की प्रेरणा से जगत की सृष्टि और प्रलय को आधारभूत मानता है, देवों और ऋषियों के कार्यकलापों के वर्णन में भी जैन परम्परा से वह बहुत अधिक भिन्न है। तथापि उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होगा कि उनमें समानता के स्थल भी हैं।

संभव हुआ तो वैदिक परम्परा के अन्य पुराणों की कथाओं की समानता का विवरण देने का भी हम प्रयत्न करेंगे।

सुभाषित—सुख स्वाधीन जु परिहरयो, विषयनि पर अनुरागु।

कमल सरोवर छांड़ि ज्यों, घट जल पोखे कागु।

सेये विषय अनादि ते, तृप्ति न कहूं सिराय।

ज्यों जल के सरितापति, ईधन सिलि न अघाय।

—कविबर कपचन्द

अनेकान्त का दिव्य आलोक

पन्नालाल साहित्याचार्य

पदार्थ मे अनेक अन्त—धर्म रहते है । यहाँ अनेक का अर्थ ऐसा नही है कि जैसे जीव में ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, अव्यावाचत्व, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व व अगुरुलघुत्व आदि गुण रहते है अथवा पुद्गल मे रूप, रस, गन्ध स्पर्श आदि । यहां अनेक का अर्थ विवक्षित और अविवक्षित परस्पर विरोधी दो धर्म है । जैसे—नित्य से विरोधी अनित्य, एक से विरोधी अनेक, भेद से विरोधी अभेद आदि । इन्हीं धर्मों को जो विषय करता है वह अनेकान्त कहलाता है । अनेकान्त वाच्य है और स्याद्वाद वाचक है । 'स्यात्' इस निपात का अर्थ कथंचित्—किसी प्रकार से होता है । एक पदार्थ में दो विरोधी धर्म किसी खास विवक्षा से ही रह सकते है एक विवक्षा से नही । 'देवदत्त पुत्र है' यह अपने पिता को अपेक्षा कथन है और देवदत्त पुत्र नही किन्तु पिता है यह अपने पुत्र की अपेक्षा कथन है । 'पदार्थ नित्य है' यह द्रव्य दृष्टि की अपेक्षा कथन है और 'पदार्थ अनित्य है' यह पर्याय दृष्टि की अपेक्षा कथन है । एक ही दृष्टि से पदार्थ नित्य और अनित्य नही हो सकता । वक्ता जिस समय द्रव्य दृष्टि को विवक्षित कर कथन करता है उस समय पर्याय दृष्टि अविवक्षित होने से गौण हो जाती है और जिस समय पर्याय दृष्टि को विवक्षित कर कथन करता है उस समय द्रव्य दृष्टि अविवक्षित होने से गौण हो जाती है । पदार्थ का निरूपण करते समय उपर्युक्त दो दृष्टियों में से एक को मुख्य और दूसरी को गौण तो किया जा सकता है पर सर्वथा छोड़ा नही जा सकता । मनुष्य दो पैर से चलता है परन्तु आगे तो एक पैर ही बढ़ता है कभी दाया और कभी बाया । इससे यह फलित नहीं किया जा सकता कि एक ही पैर से चला जाय अथवा दोनों पैरों को साथ मिलाकर मेढक के समान उछलते हुए चला जाय । चलना तभी बनता है जब दोनों पैरों की अपेक्षा रक्खी जावे और एक को आगे तथा दूसरे को पीछे किया जावे ।

समस्त संसार विरोधी बातों से भरा पडा है । उनके विरोध का निराकरण स्याद्वाद की पद्धति से ही हो सकता है । किसी एक पक्ष को खींचने से नहीं । अमृतचन्द्राचार्य ने अनेकान्त की महिमा का उद्घोष करते हुए पुरुषार्थ सिद्धयुपाय में लिखा है :—

‘परमागमस्य वीजं निषिद्धजात्यन्धसिन्धुरविधानम् ।

सकलनयविलसितानां विरोधमथनं नमाम्यनेकान्तम् ॥’

जो परमागम का प्राण है, जिसने जन्मान्ध मनुष्यों के हस्ति सम्बन्धी विधान को निषिद्ध कर दिया है तथा जो समस्त नय विकल्पों के विरोध को नष्ट करने वाला है उस अनेकान्त को नमस्कार करता हूँ ।

इस पुरुषार्थसिद्धयुपाय ग्रन्थ की रचना अमृतचन्द्र सूरि ने समयसारादि ग्रन्थों की आत्मख्याति टीका लिखने के बाद की है । समयसार की निश्चय प्रधान कथनी से कोई अपरिपक्व बुद्धि वाला श्रोता दिग्भ्रान्त न हो जावे इसलिए वे अनेकान्त का जयोद्धोष करते हुए कहते है कि—

‘व्यवहारनिश्चयी यः प्रबुध्य तत्त्वेन भवति मध्यस्थः ।

प्राप्नोति देशनायाः स एव फलमविकलं शिष्यः ॥’

जो पदार्थ रूप से व्यवहार और निश्चय के स्वरूप को अच्छी तरह जानकर मध्यस्थ होता है वही शिष्य जिनेन्द्र भगवान् की देशना के पूर्ण फल को प्राप्त होता है ।

संसार का प्रत्येक पदार्थ द्रव्य और पर्याय रूप है । द्रव्य के बिना पर्याय और पर्याय के बिना द्रव्य एक क्षण भी नही रह सकते । यह ठीक है कि द्रव्य एक है और पर्याय अनेक हैं, द्रव्य अविनाशी है और पर्याय विनाशी है । पर्याय एक के बाद एक आती है परन्तु द्रव्य उन समस्त पर्यायों में अनुस्यूत रहता है । द्रव्य को सामान्य और पर्याय को विशेष कहते है । यही सामान्य विशेषात्मक पदार्थ प्रमाण का विषय होता है । द्रव्य का कथन

करते समय पर्याय की ओर भी दृष्टि रखनी पड़ती है। जब मनुष्य एकान्त रूप से द्रव्य दृष्टि या पर्याय दृष्टि बन जाता है तब उसके सामने अनेक समस्याएँ खड़ी हो जाती हैं। जब यह प्राणी, मनुष्यादि पर्यायों को ही सर्वस्व समझ उनमें राग-द्वेष करने लगता है तो उसे द्रव्यदृष्टि से उपदेश दिया जाता है और जब द्रव्य को निर्विकार या शुद्ध मानकर स्वच्छन्द होता है तब उसे पर्याय दृष्टि का आलम्बन लेकर उपदेश दिया जाता है। नय परार्थश्रुतज्ञान के विकल्प है। जिससे दूसरे के अज्ञान निवृत्तिरूप प्रयोजन की सिद्धि होती है उसे परार्थश्रुत ज्ञान कहते हैं। और जिससे अपना अज्ञान दूर होता है उसे स्वार्थश्रुतज्ञान कहते हैं। श्रुत ज्ञान स्वार्थ के सिवाय चारों ज्ञान स्वार्थ रूप है परन्तु श्रुत ज्ञान स्वार्थ और परार्थ के भेद से दो प्रकार का होता है। किस समय किसके लिए किस नय से उपदेश देना चाहिए इसका उल्लेख कुन्दकुन्द स्वामी समयसार के प्रारम्भ में ही कर देते हैं। वे आगे बढ़ने के पहले ही सूचनापट्ट लगा देते हैं कि शुद्धनय से किसे और व्यवहारनय से किसे उपदेश देना चाहिए :—

मुद्धो मुद्धादेशो णायव्वो परमभाववरिणीहि ।

ववहारवेसिदा पुण जेदु अपरमेदिठदा भावे ॥

अर्थात् परमभाव—आत्मा को निर्विकार दशा का अवलोकन करने वाले महानुभावों के द्वारा—पर पदार्थ के सम्बन्ध से अनुत्पन्न वस्तु स्वभाव को कथन करने वाला निश्चय नय ज्ञातव्य है परन्तु जो अपरमभावहीन दशा में विद्यमान हैं वे व्यवहार नयके द्वारा उपदेश देने के योग्य हैं।

कुन्दकुन्द स्वामी के इस सूचना पट्ट को पढ़े बिना जो आगे बढ़ते हैं उन्हें पद-पद पर विरोध मालूम होता है। समयसार में एक जगह लिखा है कि रागादिक पुद्गल के हैं और एक जगह लिखा है कि रागादिक आत्मा के हैं। एक जगह लिखा है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता और एक जगह स्फटिक का दृष्टान्त देते हुए लिखा है कि आत्मा रागादि रूप परिणमन स्वयं नहीं करता है परन्तु अन्य कर्मों के द्वारा करता है।

इत्यादि विरोधी बातों का समन्वय नय विवक्षा को समझे बिना नहीं हो सकता। जहाँ निमित्त की मुख्यता से कथन है वहाँ रागादिक को पुद्गल के कहा है और

जहाँ उपादान की मुख्यता से कथन है वहाँ आत्मा के कहा है। जहाँ द्रव्य की स्वकीय योग्यता को प्रधानता देकर कथन है वहाँ एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्ता नहीं है, ऐसा कहा है परन्तु जहाँ निमित्त नैमित्तिक भाव की अपेक्षा कथन है वहाँ आत्मा की रागादि रूप परिणति में परद्रव्य कर्म को कारण कहा है। द्रव्यादिक नय की अपेक्षा पदार्थ नित्य, एक तथा अभेद रूप है परन्तु पर्यायाधिक नय की अपेक्षा द्रव्य अनित्य अनेक और भेद रूप है।

स्याद्वाद न केवल जैन शास्त्रों में किन्तु लोक में सर्वत्र बिखरा हुआ है। जो स्याद्वाद का विरोध करते हैं वे भी स्याद्वाद के द्वारा ही अपनी लोक यात्रा संचालित करते हैं। इन्दुमोहन के पुत्र हुआ। वह इष्टजनों को समाचार देते समय पिता को लिखता है—आपके पोता हुआ है, साले को लिखता है—आपके भानेज हुआ है, भाई को लिखता है—आपके भतीजा हुआ है। अरे ! हुआ तो एक ही बच्चा है पर वह इन सब रूप कैसे हो गया ? अनेक सम्बन्धियों की अपेक्षा ही तो अनेक रूप है।

गीता के दो प्रकरण मनन करने योग्य है—

महाभारत की तैयारी थी। श्रीकृष्ण चाहते थे कि किसी प्रकार युद्ध टल जावे। इसी उद्देश्य से वे सन्धिकारक रूप में दुर्योधन के पास गये। उन्होंने दुर्योधन को अनेक प्रकार से समझाया। देख, ससार में किसी के दिन एक से रहने वाले नहीं हैं। आज राज्य तेरे हाथ में है और युधिष्ठिरादि वनवासी हैं पर समय परिवर्तित हो हो सकता है। युधिष्ठिरादि कोई दूसरे नहीं हैं, तेरे ही हैं। इनसे द्वेष रखना तुझे लाभदायक नहीं है। श्रीकृष्ण की इस हितावह देशना को सुनकर दुर्योधन शान्त तो नहीं हुआ किन्तु उन्हें पाण्डवों का पक्षपाती समझ उनके साथ दुर्व्यवहार करने लगा। इधर देखिये—श्रीकृष्ण कह रहे थे—संसार में सबके दिन एक सद्दश नहीं बीतते, परिवर्तित होते रहते हैं।

दूसरा प्रकरण देखिये—श्रीकृष्ण अर्जुन के सारथि बनकर युद्धभूमि में पहुँच चुके हैं। अर्जुन उनसे कहते हैं—भगवन् ! सामने खड़े हुए लोगों का परिचय कराइये। श्रीकृष्ण परिचय देते हुए कहते हैं—ये सामने भीष्मपितामह हैं, ये बगल में द्रोणाचार्य हैं और ये उनके बाजू में धृमक (शेष पु० ४१ पर)

संस्कृति की सीमा

प्रो० उदयचन्द्र जैन एम. ए. वर्शनाचार्य

व्यक्ति, समाज, देश और राष्ट्र सभी की एक सीमा होती है। किसी एक पहलू उद्देश्य को लेकर होती है, किसी की जनहित के लिए। मनुष्य ने मनुष्यत्व पाने की सीमा पाई है उसमें जितने गुण-भोगुण होते हैं वे इसी से सम्बन्ध होते हैं, खीचा-तानी भी इसी के अन्दर मौजूद रहती है। रही संस्कृति, वह भी किसी के साथ जुड़ी हुई होती है। संस्कृति, संस्कार है और संस्कार संस्कृति है।

संस्कृति परम्परागत उस सुन्दर सरिता के समान है जो निरन्तर कोलाहल करती हुई प्रवाहित होती रहती है। संस्कृति को राष्ट्र की सीमा में नहीं बाधा जा सकता है। उसका सम्बन्ध इस प्रकार है, जैसा कि :—मैथ्यू आर्नल्ड ने कहा है :—“Culture is to know the best that has been said and thought in the world.” अर्थात् विश्व के सर्वोच्च कथनों और विचारों का ज्ञान ही सच्ची संस्कृति है। मनुष्य के विकास का उत्कृष्ट साधन संस्कृति है। संस्कृति सरलता और समय को प्रवाहित करने वाली है।

व्यक्ति का जन्म लेना मात्र ही या उसका विलीन होना ही नहीं, वह सब है उसकी एक नवीन जागृति ज्ञान की कुञ्जी, जिसे हम चाबी के नाम से सम्बोधन करते हैं। वास्तविकता क्या है? यह तभी ज्ञान या समझ सकते हैं जब हमें उसकी उपयोगिता का सही पता चले। यद्यपि वह किंचित् मात्र के लिए जानता और अनुभव करता है; फिर भी सही रूप से नहीं। यह गलती हमारी कहो या समाज की, राष्ट्र की या देश की। सभी अपने-अपने स्थान पर हैं। जिसने अपने आप उस लक्ष्य को विचारा तक नहीं, उसका समझना तो रहा दूर, मनन-चिन्तन कैसा; क्योंकि चिन्तन की कुछ कणिकायें होती हैं जो उसे संस्कृति के विकास की ओर बन्धन से मुक्त कराकर ले जाती हैं। एक दिन ऐसा आता है कि वह संगठित रूप से कानूनी दायरे आदि को जान-पहचान जाता है। और सहारा लेकर पथ का वास्तविक प्रदर्शन करता है। स्वयं अवलोकन का ढंग रीति-रिवाज उस ओर करके

सीमा का खिचाव अर्थात् निर्माण कर देता है।

भौतिकता का आधुनिक रूप चित्रित करके विचारों-कथनों को एक सूत्र में पिरो देता और धोड़े की लगाम की तरह कसकर बाँध देता। हाँ; पर बन्धन से यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि वह व्यक्ति को जकड़कर रखे या केन्द्रित करे। यद्यपि केन्द्र एक बिन्दु की तरह माना गया है, वह छोटी धिरी हुई होती है इसलिए कहा जा सकता है कि इसका संतुलन ठीक नहीं है, यदि इसी पर-ज्यामिति तौरतरीके से विचार-विमर्श किया जाय तो निश्चित ही सूक्ष्मता, दीर्घता की ओर बढ़ती हुई दिखलाई पड़ेगी। यही संस्कृति का हिसाब है। विषय छोटा होता हुए भी विचार की दृष्टि से इतना लम्बा है कि उसे समझना टेढ़ी खीर है, फिर उसका विचार-विमर्श तो रहा कोसों दूर। जिस प्रकार दूरी का समानुपात लगाना पड़ता है उसी प्रकार विषय का भी।

अभी व्यक्ति को चलना मात्र आया है और वह चलता जाता है, पर उसे पता नहीं कि इस चलने मात्र से क्या हम, हमारी संस्कृति, राष्ट्र-देश, समाज उस पथ को पा सकता है जब तक व्यक्ति में मनन-चिन्तन की वास्तविकता मौजूद रहती है। वही सच्ची, सही और जग की अनोखी तथा अनुभव करने के योग्य रह सकती है। एक क्रिया का लोप होता है और दूसरी क्रिया का उसी ओर फिर से प्रयोग होता है, वह तभी जब हम विषय से विषयान्तर नहीं होते हैं। जब तक सांस है तब तक क्रियाओं का मौजूद होना स्वामाबिक है, अन्यथा उसकी गति में अवरोध हो जायगा, हलन-चलन की क्रिया पूर्ण रूप से समाप्त हो जायगी; सिर्फ रह जायगा शरीर वह भी मिट्टी का ढेला है, उसकी कीमत कुछ भी नहीं है। संस्कारों की क्रिया बनी हुई है, सच्चाई स्रोत बह रहा है उसे रोकने वाला कोई नहीं है; फिर भी ऐसा कहना अपने आपको धोखे में डालना है, गलत रास्ते की ओर ले जाना है। जब ऐसा होगा तो हमारे पास कुछ नहीं रह जायगा, सिर्फ कपोल-कल्पनाओं के सिवा।

संयम की धारा कुछ ऐसी विचित्र अजीब-सी है कि

उस और छोटे-मोटे व्यक्ति का आना मुश्किल हो जाता है, उसका ध्यान तो रहा दूर। परम्पराये जिस प्रकार चलती हैं उसी प्रकार धाराये भी चलती हैं; चलन क्रिया यद्यपि दोनों में मौजूद-व्याप्त है, पर वैसे नहीं जैसी चाहिए। नदियों की धारा रुक सकती है, रोकी जा सकती है; पर समयरूपी धारा का प्रवाह चलता रहता है यदि किसी ने पकड़ लिया तो निश्चय ही संस्कृति एवं संस्कृत की अनुभूति हो सकती है वरना कूप-मण्डूक की तरह बने रहेगे। उसी प्रकार क्रियाये उत्पन्न हो जाती है वे ससार को बिन्दु की तरह मानकर चलने लगती है, पर उसकी गहराई में उतरने की कोशिश किसी ने नहीं की, उन्हें मालूम कहाँ है कि बिन्दु में भी सिन्धु है, उसकी अपार सीमा है उसे मापा जाना हँसी खेल नहीं है। जिसे मालूम भी है तो वह मापने की कोशिश नहीं करता है। जानते हुए भी उसी मार्ग पर गमन करता है जहाँ दलदल है।

सामाजिकता संस्कृति का आधार है : वह उससे अछूती नहीं है, न उससे अलग है उसका सम्बन्ध कडी की तरह जुड़ा हुआ है। इसके शिथिल होने पर संस्कार टूट-विखर एवं छूट जाते हैं। छिन्न-भिन्न की क्रिया हाने से समाज में स्थिरता, राग-द्वेष जैसी भावनाये उत्पन्न हो जाती है जिससे समाज संस्कृति से अलग हो जाता है, समाज में अगुण उत्पन्न हो जाते हैं; पर सामाजिकता उसी प्रकार ज्यों की त्यों बनी रहती है, व्यक्ति समाप्त हो जाता; व्यक्तित्व नहीं। संस्कृति का लोप याने समाज की सामाजिकता, मनुष्य की मनुष्यता एवं राष्ट्र की राष्ट्रियता का भी। दोनों का रहना ही आधार की कोटि में आ सकता है। संस्कृति की परम्परा कई शताब्दी से चली आ रही है, यह समाज की क्रियाओं पर ही।

परम्परागत कुछ अनुभव होते हैं जो व्यक्ति के व्यक्तित्व को सचेष्ट करते हैं। पथ सूना नहीं है उसे बनाया जाता है, व्यक्तित्व गलत नहीं, गलत है व्यक्ति उसका आचरण आदि। हम सूक्ष्म दृष्टि डालकर देखें तो जरूर ही इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे।

संस्कृति को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं :—

(१) भद्र संस्कृति और (२) सन्त संस्कृति।

(१) भद्र संस्कृति:—इसका रूप ऐश्वर्यता और विभूति

का प्रतीक समझा जाता है; क्योंकि दुनिया का ज्ञान-विज्ञान, पराक्रम, वैभव इसी से सम्बन्धित हैं जो स्वयं दूसरे लोगों को पथ-प्रदर्शन एवं संकेत से सही धारा को प्राप्त कराते हैं; वह मनुष्य को मनुष्यत्व सिखलाती है, न कि समूचे अधिकार को प्रदान कर स्वीकार कराती है; वह चाहती है ऊँच-नीच बीर-बीर, योगी-सन्त, साधारण-असाधारण आदि। और :—

(२) सन्त संस्कृति :—जिसे योगी संस्कृति भी कह सकते हैं। ज्ञान की उत्कृष्ट दिशा, श्रद्धा, विश्वास और समन्वय को फैलाना इसका जन्मसिद्ध अधिकार है। यह मानव को स्वार्थ-भावना, ऊँच-नीच और बाह्य आडम्बर से बिल्कुल विरक्त होने को कहती है।

संस्कृति की विभिन्न दिशाओं होने के बावजूद भी अलग-अलग दिशाओं में नहीं बहती, यह एक-दूसरे की सीमा में किसी न किसी रूप में अवश्य मौजूद रहती हैं; फिर भी इसकी सीमा इतनी विशाल एवं विस्तीर्ण है कि उसे शीघ्रता से परखना मुश्किल हो जाता है। यह सब कमी मेरी आपकी है।

एक योगी को अपनी साधना का प्रदर्शन जीवन की सही अनुभूति सुख-दुख को जानने के बाद होती है। योग-तम साधना तब तक करता रहता है जब तक यम-नियम का प्रतिक्रमण, संचरण एवं प्रवाह मौजूद रहता है। वैसे तो निरक्षर सत्-असत् का अविचारक भी उस पर विचारण करता है, आगे की ओर बढ़ता है; पर इसका बढ़ना मात्र कहा जायेगा और दूसरे का उसकी अनुभूति से कठोरतम साधना की मौजूदी द्वारा विकास की ओर जाना। रहे तो एक ही, पर दोनों में पृथक्ता है। सिर्फ यही ही नहीं है; अपितु एक जीवन को बाह्य क्रियाओं से हराकर उच्चतम विकास की ओर ले जाती है और समय-समय पर सच्चा पथ-प्रदर्शन भी करती है। और दूसरी इससे भिन्न क्रियाओं को प्रदर्शित करती है।

व्यापक अर्थ में संस्कृति को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है भौतिक और आध्यात्मिक। भौतिक संस्कृति में रहन-सहन एवं यन्त्र आदि कलायें आती हैं और आध्यात्मिक संस्कृति में आचार-विचार और विज्ञान का समावेश रहता है जो सहज और सरल नहीं है।

संस्कृति मानव के भूत, वर्तमान और भावी जीवन का निर्माण करती है जीने की कला सिखलाती है। वह कल्पना मात्र नहीं है, जीवन का प्राणभूत तत्व है। नाना-विध रूपों का समुदाय है। “सत्यं शिवं सुन्दरम्” का प्रतीक है। यह कभी रुकता नहीं है, पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़कर धर्म, दर्शन, साहित्य और कला को प्राप्त कर लेता है; क्योंकि संस्कृति में निष्ठा होने से मन की परिधि विशाल-विस्तीर्ण हो जाती है, उदारता की भावना भल-कने लगती है अतः इसकी उपयोगिता परमावश्यक है, संस्कृति एक वृक्ष है, व्यक्ति, समाज और राष्ट्र उसकी शाखायें हैं और सम्यता पल्लवित पत्ते हैं। राजनीति, अर्थ-शास्त्र और समाजशास्त्र आधार हैं।

संस्कृति समाज, देश की विकृति को हटाने का एक सर्वश्रेष्ठ साधन है; मानव-जीवन का उत्कृष्ट तत्त्व है। नानाप्रकार के धर्म साधनों में सामंजस्य, कलात्मक प्रयत्न, योगमूलक अनुभूति और परिपूर्ण कल्पना शक्ति से पवित्रता की ओर ले जाने वाली है। जो मनुष्य की विजय पताका बनकर लहराने लगती है। इसी की साधना के बल पर विकृति से संस्कृति और संस्कृति से विकास की ओर निरन्तर गतिशील रहता है। इसकी आवश्यकता मनुष्य में मनुष्यत्व लाने, राग द्वेष आदि विकृतियाँ हटाने के लिए एवं आत्म-शोधन के लिये है।

भारतीय संस्कृति विश्वास, विचार, आचार की जीती-जागती महिमा है। जो संसार में मधुरता और सरसता को फैलाने वाली है, स्नेह, सहानुभूति, सहयोग और सह-अस्तित्व को जागृत करने वाली है, अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाने वाली है, आपसी भेद-भावरूपी कीचड़ से निकालकर स्वच्छ जल से भिन्न कमल की ओर ले जाने वाली है, विवेक की ओर ले जाने वाली है। ऐसे हितकारी अहिंसा के पुजारी, सत्य के आगार, समन्वय के आधार, मधुरता, करुणा और वैराग्य के प्रतीक राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध और गांधी हैं। जीते-जागते ज्वलन्त उदाहरण हैं। जो इस सिद्धान्त की कोटि में आ सकते हैं।

संस्कृति का मूल आधार आत्मा है जिसे “दयाता-दीयता, दम्यताम्” इस एक सूत्र में बाँधकर दूसरे शब्दों में दया, दान, दमन कह सकते हैं। ये जन-जीवन के कण-

कण में समाये हुए हैं जिसे आगमों, वेदों और उपनिषदों ने ध्याया है। क्रूरता से सुख न मिलने पर दया का प्रादुर्भाव हुआ है। सघर्ष शान्ति का कारण न होने से दान। भोग में सुख प्राप्त न होने से दमन की क्रिया। ये मूल से एक होकर भी अनेक धाराओं की प्रतीक समझी जाती है। शरीर एक होते हुए भी विभिन्न जानों का अवयवों का प्रतीक समझा जाता है। इसे घरोहर की सम्पत्ति कहा जा सकता है जो स्थिर होते हुए भी चलायमान है। संस्कृति अनेक धाराओं में बहने वाली है एक स्थिर होने पर भी। वेद मार्ग वैदिक संस्कृति है, पिटक मार्ग बौद्ध-संस्कृति है और आगम मार्ग जैन संस्कृति है। ये एक होकर भी वैदिक बौद्ध और आगम के रूप से अनेक धाराओं में प्रवाहित हैं जो अपनी-अपनी विशेषता रखती हैं। वेद दान की, बौद्ध दया की और आगम दमन की।

भारत की संस्कृति का मूल तत्त्व अहिंसा और अनेकान्त, समता और समन्वय है जो हजारों वर्षों से चले आ रहे हैं, साथ ही मनुष्य को समय-समय पर जागरण कराते रहे हैं। ऋषभदेव से लेकर राम तक और राम से लेकर वर्तमान में गांधी युग तक। यह ठीक है कि बीच-बीच में रुकावटें भी आयी, परन्तु वे सही मार्ग को बदल न सकी। महावीर ने जन-चेतना के समक्ष अहिंसा और अनेकान्त को प्रस्तुत किया, समन्वयात्मक धारा को बहाया, उदारता और सहिष्णुता को दर्शाया, जो सत्य सिद्ध कहे जा सकते हैं। दूसरों के मतों को आदर से देखना और समझना अनेकान्तवादी कहा जा सकता है। उदाहरण के तौर पर सम्राट् अशोक और हर्षवर्धन; जिन्होंने समान रूप से सभी धर्मों की सेवा की। मध्य युग में सम्राट् अकबर ने और नवयुग में गांधी जी साक्षात् सिद्ध, सफल अभिनेता रहे। जो दृढ़ निश्चय विचारवादी थे, जन-जन को पावन-पवित्र बनाने वाले थे। स्नेह, सहानुभूति और सद्भाव आदि समता के सिद्धान्त इन्हीं लोगों ने चित्रित किये और परस्पर की कटुता को बाहर निकाला।

संस्कृति का सम्बन्ध सम्यता के साथ जुड़ा हुआ है। दोनों एक होते हुए भी विचार-प्रधान और आचार-प्रधान की दृष्टि से अलग हैं। संस्कृति का सही तात्पर्य मोह के आवरण को हटाना है और सम्यता का—सुसंस्कृत विचारों

को आचार रूप देना, उन्हें जीवन के व्यवहार में लाना एवं कला आदि के द्वारा अभिव्यक्त करना। एक शरीर है और दूसरा आत्मा है। एक जीवन की चेतना है और दूसरी जीवन की अभिव्यक्ति है। दोनों भिन्न होते हुए भी आत्मा और शरीरवत् एक-दूसरे से सम्बद्ध है। ससार में स्थित आत्मा शरीर के बिना नहीं रह सकता। जहाँ आत्मा का अस्तित्व होता है, चेतना का स्रोत बहता है, वहाँ शरीर अवश्य होता है। परन्तु शरीर के साथ आत्मा का सम्बन्ध नहीं है, कभी रहता है, कभी नहीं भी। शव के रूप में शरीर रहता है, आत्मा नहीं। शरीर का प्रत्येक अंग, प्रत्येक पहलू किसी न किसी रूप में अवश्य जुड़े रहते हैं।

जीवन में जितनी आवश्यकता संस्कृति की हो सकती है, उससे कहीं अधिक सम्यता की भी है। परन्तु केवल सम्य कहा जाने वाला संस्कृत होगा यह नियामक नियम नहीं है। असंस्कृत व्यक्ति भी सम्य हो सकता है। अतः संस्कृति के साथ सम्यता का होना अनिवार्य है।

सम्यता जीवन-व्यवहार को चलाने की एक कला है इसके बिना व्यक्ति का जीवन पक्ष से रहित पक्षी के अपूर्ण जीवन की तरह है; क्योंकि वह गन्तव्य मार्ग को प्राप्त नहीं हो सकता है। इसी प्रकार व्यक्ति, समाज और राष्ट्र भी।

संस्कृति जीवन की ज्योति है, प्रकाश है। इसे हम "Divine light." आत्मज्योति कहते हैं। सम्यता जीवन की गति है। इन दोनों का वास्तविक कार्य निदिष्ट पथ पर चलना, सही मार्ग का प्रदर्शन करना है। ये ललित, सुन्दर, सुहावने, सुकोमल और सुगन्धित पुष्प हैं जो जन-जन के मन-मस्तिष्क को ताजगी प्रदान करते हैं। अतः संस्कृति और सम्यता एक ही वस्तु के दो पहलू हैं जो एक सीमा के घातक हैं। वह मानव के विकास की ओर नहीं, विनाशकी ओर ले जाती है। सम्यतासे रहित संस्कृति केवल दिमागी कसरत है उसके जीवन का विकास सम्भव नहीं।

भारतीय संस्कृति की एक अन्तरात्मा है, जो विरोध विनोद विवधता में समन्वय तथा सामंजस्य। जीवन में सरसता और मधुरता को बरसाने वाली योग-साधना, उदार भावना और शान्त एवं शुद्ध हृदय। यह युद्ध जैसे दारुण अवसर पर भी वैर के बदले प्रेम, क्रूरता के बदले मृदुता और हिंसा के बदले अहिंसा। जैसा कि कहा है— "संस्कृति, शारीरिक, मानसिक, शक्तियों का प्रशिक्षण, दृढीकरण, प्रकटीकरण एवं विकास करना है।" यह एक ऐसी संस्कृति है, जिसमें अधिक से अधिक विभिन्न जातियों की मानसिक एवं आध्यात्मिक एकताका प्रतिनिधित्व है। ●

(पृ० १३७ का शेष)

तमुक् है। इस तरह परिचय पाने पर अर्जुन कहते हैं— भगवन् मेरा रथ वापिस ले चलिये मुझे राज्य नहीं चाहिए। जिन भीष्मपितामह की गोद में मैं खेला हूँ और जिन द्रोणाचार्य से धनुर्विद्या सीखी है उन्हीं के प्रति शस्त्र उठाना पड़े जिस राज्य के लिए, उस राज्य की मुझे चाह नहीं है, मैं जंगल में ही रहना पसन्द करता हूँ। अर्जुन की मनोदशा को पहचान कर श्रीकृष्ण कहते हैं—देख अर्जुन ! इन सबकी आत्मा अजर-अमर, अविनाशी है। है। आत्मा को शस्त्र नहीं छेद सकते, अग्नि नहीं जला सकती, पानी नहीं गला ककता, हवा नहीं सुखा सकती। जिस प्रकार वस्त्र बदलने से शरीर नहीं बदला जाता उसी प्रकार शरीर बदलने से आत्मा नहीं बदलती।

श्रीकृष्ण का यह सब उपदेश नित्यता को लेकर है। गीता में हम अनित्य और नित्य दोनों प्रकार का उपदेश नहीं पाते हैं। पर क्या यह परस्पर विरुद्ध उपदेश एक ही प्रकरण में ? एक ही उद्देश्य से ? नहीं, प्रकरण पृथक्

है, उद्देश्य पृथक् है। दोनों उपदेशों का समन्वय बिना अनेकान्त या स्याद्वाद का आश्रय लिए नहीं हो सकता। सांख्यदर्शन पदार्थ को सर्वथा नित्य मानता है और बौद्ध दर्शन सर्वथा अनित्य मानता है। न सर्वथा नित्य मानने में पदार्थ की व्यवस्था बनती है और न सर्वथा अनित्य मानने में। अतः अपेक्षाकुत नित्यानित्य मानना आवश्यक है। अनेकान्त ही समस्त द्वन्द्वों का शमन करने वाला है, इसी लिए उसे परमागम का प्राण तथा समस्त नय विलासों के विरोध को नष्ट करने वाला कहा गया है।

यह स्मर्तव्य है कि अनेकान्त का व्याख्यान विरोध को दूर करने वाला नहीं है किन्तु अनेकान्त का उपयोगी-करण ही विरोध को दूर करने वाला है। जब तक इस अनेकान्त सिद्धान्त को जीवन में नहीं उतारेंगे तब तक विरोध शान्त होने वाला नहीं है।

अनेकान्त का दिव्य आलोक ही शाश्वत सुखदायक है। ●

सानोली ग्राम में उपलब्ध प्राचीन मूर्तियां

महेशकुमार जैन

राजस्थान के अलवर जिले में अरावली पर्वत की शाखा सानोली पहाड़ी की घाटी में स्थित सानोली ग्राम आज जनजन के आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है। इसी ग्राम के एक निवासी श्री बहराम को पिछले दिनों अपने खेत में खुदाई करते समय अष्ट धातु की भव्य एवं मनो-हारी सात दिगंबर जैन प्रतिमाएँ, पद्मावती की दो मूर्तियाँ तथा पूजा के तीन बर्तन प्राप्त हुए थे। सभी मूर्तिया सुरक्षित हैं।

रेतीले, ऊबड़-खाबड़ रास्ते को पार कर जब मैं दिल्ली से ७३ मील दूर सानोली गांव पहुँचा, तो ग्रामीणों ने मुझे घेर लिया और पूछा आप जेनी हैं ?

मैंने 'हाँ' कहकर जब उनसे यह पूछा कि क्या इस गांव में कोई जैन रहते हैं, तो सभी ग्रामीणों ने एक स्वर से कहा, 'यह अहीरो गांव अवश्य है, पर यहाँ तो सभी जेनी ही जेनी हैं ? यहाँ के एक शिक्षित प्रौढ़ श्री प्रताप सिंह यादव ने कहा, 'इस गांव का कोई भी वृद्ध, युवक और बालक सदियों से मांस, शराब, तंबाकू और हुक्का व बीड़ी छूता तक नहीं, फिर आप बताएं हम अहीरो और जैनो में क्या फर्क रहा, हम जैन नहीं हैं तो और क्या हैं ? इन सब चीजों के खाने-पीने वाले को हमारे यहाँ समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है।

भोले-भाले ५० वर्षीय बाबा बहराम की खुशियों का आजकल पारावार ही नहीं। उनके पास अपनी २२ बीघा जमीन है तथा उनके एक पुत्र और पुत्री हैं। जो भी व्यक्ति उनके पास जाता है, वह उससे प्रेम से मिलते हैं, उसे पूरी घटना सुनाते हैं, उनकी यही कोशिश रहती है कि मूर्तियों के दर्शन के लिए गांव में आये किसी व्यक्ति को कोई तकलीफ न हो, बार-बार कहने पर भी वह बिना चाय पिलाये उठने नहीं देते।

बाबा बहराम से जब मैंने मूर्तिया मिलने की घटना के बारे में पूछा तो वह जमीन पर मेरे बराबर बैठ गये और बोले, उस दिन की घटना तो मैं जीवन में कभी न भुला सकूंगा। परमात्मा ने मेरे तो सभी कष्ट दूर कर दिये। गत २१ जूलाई की बात है, सुबह नौ बजे के लग-भग अपने खेत में खड़े जांट (शमी) के पेड़ को मैं काट

रहा था, क्योंकि मुझे अपने मकान में छप्पर के लिए लकड़ी की जरूरत थी। मैंने पेड़ काट दिया और जमीन खोदकर जड़ें निकालने लगा।

मैंने तीन चार फुट ही खोदा था कि मुझे एक बर्तन (गंबोदक पात्र) दिखाई दिया, बर्तन को देखकर मुझे कुछ दहशत सी हुई मैंने बर्तन उठाकर बाहर निकाला, तो उसके नीचे गोलाकार में मूर्तियाँ रखी दिखाई दी, जब मेरी हिम्मत जवाब दे गयी और मैंने तुरंत ही बराबर के खेतों में ऊँट चरा रहे लोगों को आवाज दी। उनके पहुँचने पर मैंने मिट्टी में दबी सभी नौ मूर्तियाँ तथा दो और बर्तन निकाले। चार दिन तक तो हमने मूर्तियों को घटना-स्थल पर ही रखे रहने दिया तथा उनकी दिन-रात चौकसी की।

कुछ लोगों ने मुझे इन मूर्तियों को सरकार को सौंपने की सलाह दी, पर मैंने इन्हे गांव वालों को ही सौंप देना ठीक समझा, खेत से हम मूर्तियों को जलूस में लाये और गांव के बीच इस देवालय में प्रतिष्ठित कर दिया।

सानोली के निवासियों ने अपने गांव में जैन मंदिर बनवाने के लिए दस बीघा जमीन देने का निश्चय किया है। बाबा बहराम ने कहा—मेरे खेत में जिस स्थान से मूर्तिया निकाली हैं, वहाँ 'चरण' स्थापित हो चुके हैं, मैंने उक्त स्थान के इर्द-गिर्द का चार बीघा का अपना खेत इस काम के लिए देने का संकल्प किया है, मंदिर के लिए गांव वालों ने एक समिति बना ली है।

गांव के एक वृद्ध बाबा बुधराम ने कहा, बाबू शाम यही ठहरिये और 'आरती' लेकर जाइए। उन्होंने कहा कि प्रातः और सायं गांव का प्रत्येक नर-नारी और बालक इस मंदिर में इकट्ठा होता है तथा आरती उतारी जाती है। यह ठीक है कि गांव में कोई धर्मशाला नहीं, संभव है आपको रात में ठहरने में कठिनाई हो, पर जहाँ तक हो सकेगा, हम आपको कोई तकलीफ न होने देंगे।

गांव वालों ने बताया कि सानोली ग्राम देश रक्षा कार्यों में भी सदैव आगे रहा है गांव के कई जवान चीनी और पाकिस्तानी दुश्मन से जुझते हुए शहीद हो गए।

गाँव के अनेक युवक आज भी फीज में सीमा पर तैनात हैं।

मेरे यह पूछने पर कि इन मूर्तियों के निकालने पर क्या गाँव में कोई विशेष बात हुई, तो वहाँ एक के बाद एक चर्चा चल पड़ी। वही बैठे ७० वर्षीय श्री शिव-नारायण यादव ने कहा, “मैं वायु के दर्द के मारे अपने जीवन से परेशान आ गया था। मैंने आरती के बाद भगवान से प्रार्थना की और एक रु. का प्रसाद बोला। मेरा वर्षों पुराना वायु का दर्द दूर हो गया।”

भूतपूर्व फौजी जुगलाल ने कहा, “मेरी भैंस का पड़ा मर गया था तथा वह दूध नहीं देती थी। मैंने प्रसाद बोला और उसी वक्त से मेरी भैंस दूध देने लगी?”

भूमन नाई ने कहा कि भगवान के प्रताप से महीनों पूर्व खोयी मेरी अँगूठी मिल गयी। एक अन्य ग्रामीण ने कहा कि पिछले वर्ष हमारे एक आदमी की, जो कि दिल्ली से यहाँ आया था, अँगूठी खो गयी थी। मूर्तियाँ निकली सुनकर एक वर्ष बाद जब वह पुनः पिछले दिनों गाँव आए, तो उन्हें वही अँगूठी रास्ते में मिट्टी पर सामने ही ऊपर रखी मिली। गाँव के इस रास्ते पर हर रोज प्रातः से साय तक सैकड़ों लोग गुजरते हैं।

आपको शायद यह जान कर आश्चर्य हो कि सानोली ग्राम के ठीक बीच में आज भी एक ऐसा नगाड़ा रखा है, जिसके बजाते ही मिनटों में गाँव का हर निवासी अपने सभी काम-काज छोड़ कर नगाड़ा स्थल पर पहुँच जाता है।

नगाड़ों का उपयोग गाँव पर संकट अथवा किसी विशेष अवसर पर किया जाता है। यह नगाड़ा जैन देवालय के निकट ही रखा है।

कुछ ग्रामीणों ने कहा—हम लोग अपने गाँव सानोली का नाम बदल कर देव भूमि रखना चाहते हैं। इस गाँव की भूमि पर देवताओं का वास है। ७० वर्ष पूर्व भी यहाँ पहाड़ी के निकट भगवान विष्णु की एक विशाल पत्थर की मूर्ति जमीन में दबी मिली थी। उक्त मूर्ति यहाँ एक मंदिर में प्रतिष्ठित है।

पिछले दिनों गाँव के पाँच वृद्धों—बाबा बहराम, बाबा किशनलाल, बाबा हरपाल, बाबा रामचन्द्र और बाबा बुधराम ने जैन आचार्य श्री विमल सागर जी के

पास पहुँच कर नियम लिए।

खुदाई में प्राप्त लगभग सभी मूर्तियाँ एक हजार वर्ष प्राचीन हैं। मूर्तियाँ भगवान पार्श्वनाथ, श्री श्रेयांस नाथ तथा पदमावती देवी की हैं। पूजा के तीन वर्तन—सागर, धूपदान, गधोदक पात्र हैं।

सानोली गाँव में खुदाई में जिस ढंग से मूर्तियाँ मिली उससे स्पष्ट है कि उक्त मूर्तियों को खंडित होने से बचाने के लिए जमीन में गाड़ दिया गया। गाँव के कुछ पढ़े-लिखे लोगों ने बताया कि जिस जगह ये मूर्तियाँ निकली हैं, वह सम्पूर्ण क्षेत्र सनोदखेड़ा कहलाता था। कुछ लोग उक्त क्षेत्र का नाम बिलासपुर तथा कांतिगढ़ भी बताते हैं।

कहते हैं जब मेवों ने हमला कर इस क्षेत्र को जीत लिया, तो लोगों ने इन मूर्तियों को खंडित न होने देने के लिए इन्हें जमीन में गाड़ दिया। कालांतर में अहीरों ने मेवों को माग भगाया और सनोदखेड़ा क्षेत्र वीरान हो गया। अहीरों ने सनोदखेड़ा के निकट ही यह सालोनी गाँव बसाया।

सानोली गाँव की आबादी लगभग एक हजार है तथा यहाँ लड़के-लड़कियों का एक स्कूल भी है। गाँव तक पहुँचने के लिए कोई पक्का रास्ता भी नहीं है। रेतीले, ऊबड़-खाबड़ मार्ग को पार कर गाँव पहुँचना होता है। इस गाँव में यात्रियों की भीड़ को देखते हुए आशा है। सरकार इस गाँव के लिए पक्की सड़क बनाने की ओर शीघ्र ध्यान देगी।

रेल और सड़क दोनों ही मार्गों से सानोली गाँव पहुँचा जा सकता है। सानोली गाँव हरियाणा के बावल रेलवे स्टेशन से १० मील दूर है। बावल से सानोली के बिए सवारी मिल जाती है। राजस्थान में अजरका रेलवे स्टेशन सानोली से आठ मील दूर स्थित है। अजरका से ऊँटों पर सानोली पहुँचा जा सकता है। सानोली से १८ मील दूर खैरतल रेलवे स्टेशन है। जहाँ से सानोली के लिए सवारियाँ मिल जाती हैं। सानोली दिल्ली से ७३ मील दूर है। तथा मोटर-कार व जीप द्वारा भी पहुँचा जा सकता है।

अब मुखरित विनाश के पथ पर नूतन अनुसन्धान है ।

कल्याणकुमार जैन 'शशि'

मानव के चरित्र का, दिन दिन होता जाता ह्रास है ।
सात्विकता की निधियों पर अब रहा नहीं विश्वास है ।
विश्व हड़प लेने की प्रतिदिन बढ़ती जाती प्यास है ।
कथनी और करनी में दिखता, घोर विरोधाभास है ।
रोम रोम में व्याप्त हो रहा अन्तर्हाहाकार है ।
भौतिकता का भूत, हमारे सिर पर आज सवार है ।

आज चन्द्रमा को प्रसने की लगी भयंकर होड़ है ।
पत्थर ही पा सके वहाँ भी, किन्तु अभी तक दौड़ है ।
अध्यात्मिकता इन्हें न छूती, भौतिकता के भक्त हैं ।
भू-पर इनको कुछ न मिल रहा, यं नभ पर आसक्त हैं ।
इनके लिए व्योम, वैभव है, मातृ भूमि निःसार है ।
भौतिकता का भूत, मनुज के सिर पर हुआ सवार है ।

कितनी धरती का स्वामी हो, पर न जरा सन्तोष है ।
छल प्रपञ्च लम्पटता पर अधिकारों का जयघोष है ।
अब मानवता के विरुद्ध ही उमड़ रहा अति-रोष है ।
अन्तरङ्ग में भरा दोखता, घोर घृणा का कोष है ।
रण-विभीषिकाओं में सारा रंगा हुआ संसार है ।
भौतिकता का भूत मनुज के सिर पर हुआ सवार है ।

अणु की उन्नति पर रीझा है, फल का रन्ध्र न ध्यान है ।
मानवता का क्षय करने में, बना हुआ पाषाण है ।
रही न मानवता की इसको आज तनिक पहचान है ,
अब मुखरित विनाश के पथ पर, नूतन अनुसंधान है ।
शान्ति नाम की बेंधी हुई, 'रण-गृह' पर बन्दनवार है ।
भौतिकता का भूत मनुज के सिर पर आज सवार है ।



अलब्धपर्याप्तक और निगोद

पं० मिलापचन्द्र रतनलाल जैन कटारिया

संसारी जीव पर्याप्तक, निवृत्य पर्याप्तक और अलब्ध-पर्याप्तक ऐसे तीन प्रकार के होते हैं। अलब्धपर्याप्तक का पर्याय नाम लब्धपर्याप्तक भी होता है^१। जिस भव में जितनी पर्याप्तियाँ होती हैं उतनी को जो पूर्ण कर लेते हैं वे जीव पर्याप्तक कहलाते हैं। अगर उनके कम से कम शरीरपर्याप्ति भी पूर्ण हो जाये तब भी वे पर्याप्तक कहला सकते हैं। और जो पर्याप्तियों को पूर्ण करने में लगे हुए हैं किन्तु अभी शरीर पर्याप्ति को भी पूरी नहीं की है आगे पूरी करने वाले हैं वे जीव निवृत्यपर्याप्तक कहलाते हैं। तथा जो जीव एक उच्छ्वास के १८वें भाग प्रमाण आयु को लेकर किसी पर्याय में जन्म लेते हैं और वहाँ की पर्याप्तियों का सिर्फ प्रारंभ ही करते हैं। अत्यल्प आयु होने के कारण किसी एक भी पर्याप्ति को पूर्ण न करके मर जाते हैं वे जीव अलब्धपर्याप्तक कहलाते हैं। ऐसे जीवों के भव क्षुद्रभव कहलाते हैं। वे जीव १ उच्छ्वास में १८ बार जन्मते हैं और १८ बार मरते हैं। इस प्रकार के क्षुद्रभवों के धारी अलब्धपर्याप्तक जीव ही होते हैं, अन्य नहीं। सभी सम्मूर्च्छन जन्म वाले जीव पर्याप्तक, निवृत्य-पर्याप्तक और अलब्धपर्याप्तक होते हैं। शेष गर्भ और उपवाद जन्म वाले जीव पर्याप्तक-निवृत्यपर्याप्तक ही होते हैं, अलब्ध पर्याप्तक नहीं होते। विशेष यह है कि—सिर्फ सम्मूर्च्छम मनुष्य अलब्धपर्याप्तक ही होते हैं। वे पर्याप्तक-निवृत्यपर्याप्तक नहीं होते हैं। सभी एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रिय जीवों का एकमात्र सम्मूर्च्छन जन्म ही होता है। संज्ञीअसंज्ञी पंचेन्द्रिय नरतिर्यक सम्मूर्च्छन जन्म वाले भी होते हैं और गर्भज भी होते हैं। भोगभूमि में सम्मूर्च्छम त्रस जीव नहीं होते हैं। अतः वहाँ अलब्धपर्याप्तक त्रस जीव भी नहीं होते हैं। दिगंबर मत में सम्मूर्च्छिम मनुष्यों को भी संज्ञी माना है। परन्तु स्वेताम्बर मत में उन्हें

असंज्ञी माना है और उनकी उत्पत्ति भोगभूमि में भी लिखी है। जो जीव अलब्ध पर्याप्तक होते हैं उनकी जघन्य और उत्कृष्ट आयु एक उच्छ्वास के १८ वें भाग मात्र होती है। अर्थात् न इससे कम होती और न इससे अधिक होती है।

दिगंबर मत में मनुष्यों के ६ भेद इस प्रकार बताये हैं—

आर्यखंड, म्लेच्छखंड, भोगभूमि और कुभोगभूमि (अन्तर्द्वीप) इन ४ क्षेत्रों की अपेक्षा गर्भज मनुष्यों के ४ भेद होते हैं। ये चारों ही पर्याप्त-निवृत्य पर्याप्त होनेसे ८ भेद होते हैं। सम्मूर्च्छन मनुष्य आर्यखंड में ही होते हैं और वे नियम से अलब्धपर्याप्तक ही होते हैं। अतः उसका एक ही भेद हुआ। इस १ को उक्त ८ में मिलाने से कुल ९ भेद मनुष्यों के होते हैं।

अलब्धपर्याप्तक जीव एकेन्द्रिय को आदि लेकर पाँचों ही इंद्रियों के धारी होते हैं। एकेन्द्रियों में पृथ्वीकायिक आदि अलब्धपर्याप्त-स्थावर जीव अपनी २ स्थावरकाय में पैदा होते हैं। इसी तरह विकलत्रय अलब्धपर्याप्तकों के उत्पत्तिस्थान भी पर्याप्त विकलत्रयों की तरह ही समझने चाहिये। तथा सम्मूर्च्छिम पर्याप्त तिर्यचों के भी जो-जो उत्पत्तिस्थान होते हैं, उन्हीं में सम्मूर्च्छिम अलब्धपर्याप्तक पंचेन्द्रिय तिर्यचों की उत्पत्ति समझ लेनी चाहिये। क्योंकि ये अलब्धपर्याप्तक जीव गर्भज तो होते नहीं, ये तो सब सम्मूर्च्छिम होते हैं। अतः जैसे अन्य पर्याप्त सम्मूर्च्छिम त्रसजीव इधर-उधर के पुद्गल परमाणुओं को अपनी कायें बनाकर उनमें उत्पन्न हो जाते हैं। उसी तरह ये अलब्ध-पर्याप्तक त्रस जीव भी उत्पन्न हो जाते हैं। किन्तु अलब्ध-पर्याप्तक मनुष्यों की उत्पत्ति स्थान के विषय में स्पष्ट आगम निर्देश इस प्रकार है। —“कर्म भूमि में चक्रवर्ति-बलभद्र-नारायण की सेनाओं में जहाँ मल मूत्रों का क्षेपण होता है उन स्थानों में, तथा वीर्य, नाक का मल, कान का मल दंतमल, कफ इत्यादि अपवित्र पदार्थों में सम्मूर्च्छिम

१. शास्त्रों में सिर्फ ‘अपर्याप्तक’ शब्द से भी इसका उल्लेख किया है।

मनुष्य उत्पन्न होते हैं। वे अलब्धपर्याप्तक होते हैं और उनका शरीर अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण होता है।

“मूलाराधना पृष्ठ ६३८”

गोम्मटसार जीवकांड की गाथा ६३ में लिखा है कि—सम्पूच्छिम मनुष्य नपुसक लिंगी होते हैं। इसी प्रसंग में इस गाथा की संस्कृत टीका में लिखा है कि—“स्त्रियो की योनि, कांख, स्तन मूल और स्तनों के अंतराल में तथा चक्रवर्ती की पटराणी बिना अन्य के मल-मूत्रादि अशुचि स्थानों में सम्पूच्छिम मनुष्य उत्पन्न होते हैं।

श्री कुंदकुंदाचार्य सूत्रपाहुड में लिखते हैं कि—
लिंगमिय इत्थीणं थणतरे णाहिकक्खदेसेसु।

भणिओ सुहुमो काओ तासं कह होइ पव्वज्जा ॥२४॥

अर्थ—स्त्रियों की योनि में, स्तनों के बीच में, नाभि में और कांख में सूक्ष्म शरीर के धारक जीव (सम्पूच्छिम-मनुष्य) कहे गये हैं। अतः उनकी महाव्रती दीक्षा कैसे हो सकती है ?

इस विषय में कवि द्यानतराय जी का निम्न पद्य देखिये—

नारि जोनि धन नाभि कांख में पाइये।

नर नारिन के मलमूत्र में गाइये ॥

मुरदे में सम्पूच्छिम सैनी जीयरा।

अलबधपरयापत्ती दयाधरि हीयरा ॥

—“धर्मविलास”

लोकप्रकाश (श्वेतांबर ग्रन्थ) के ७वें सर्ग के श्लोक ३ से २ में लिखा है कि—

“मल, मूत्र, कफ, नासिकामल, वमन, पित्त, रक्त, राध, शुक, मृतक्लेवर, दंपत्ति के मैथुनकर्म में गिरने वाला धीर्य पुरनिद्धमन (खाल-चर्म, गंदी नाली), गर्भज मनुष्य संबंधी सब अपवित्र स्थान, इतनी जगह सम्पूच्छिम मनुष्यों

२. जैनागम शब्दसंग्रह (अर्धभागधी—गुजराती कोश) में पृ० ३६८ पर इसी का पर्यायवाची “नगरनिद्धमण” (नगरनिर्धमन) का अर्थ इस प्रकार दिया है—शहर का गंदा पानी निकालने का मार्ग, खाण। यहां दोनों अर्थ उपयोगी हैं, दोनों में सम्पूच्छिम मनुष्योत्पत्ति होती है।

की उत्पत्ति होती है।

ऐसा भलकता है कि—जैनधर्म के जिन फिरकों में स्त्री मुक्ति मानी है उनके यहां स्त्रियों के नाभि, कांख, स्तन आदि अवयवों में सम्पूच्छिम मनुष्यों की उत्पत्ति का कथन नहीं किया है।

इनकी उत्पत्ति अर्द्ध द्वीप से बाहर नहीं है। क्योंकि जिन पदार्थों में इनकी उत्पत्ति होती है वे सब गर्भज मनुष्यों में संबंधित होते हैं।

लोक में भोगभूमि-कर्मभूमि के जितने भी मनुष्य होते हैं उनमें असंख्यात गुणी संख्या इन सम्पूच्छिम मनुष्यों की

३. (i) जीवसमास की मलधारी हेमचन्द्र कृत संस्कृत वृत्ति (श्वे०) में लिखा है—सम्पूच्छनं—गर्भनिरपेक्षं वात पित्तादिष्वेवमेव भवनं सम्पूच्छंस्तस्माज्जाताः सम्पूच्छजा मनुष्याः एते च मनुष्यक्षेत्र एव गर्भजमनुष्यामेवोच्चारविषूयंते नान्यत्र, यत उक्तं प्रजापनायाम्—“कहि णं भते ! सम्पूच्छिम मणुस्सा समुच्छति ? गोयमा ! अंतो मणुस्स खेत्ते पणया लीसाए जोयणसय सहस्सेसु अद्धाहज्जेसु दीवसमुद्देसु पन्नरससु कम्मभूमीसु तीसाए अकम्मभूमीसु छप्पणाए अतर दीवसु गवभवक्कतिय मणुस्साणं चैव उच्चारसु वा पासवणेसु वा खेलेसु वा सिघाणेसु वा वंतेसु वा पित्तेसु वा पूएसु वा सोणिएसु वा सुक्केसु वा सुक्क पोगलपरिसाडेसु वा थीपुरिस सजोएसु वा नगरनिद्धमणेसु वा सव्वेसु चैव अणुइएसु ठाणेसु सम्पूच्छिम मणुस्सा समुच्छति, अंगुलस्स असखेज्जइभागमित्ताए ओगाहणाए असण्णी मिच्छादिट्ठी सव्वाहि पज्जत्तीहि अपज्जत्तगा अंतोमुहत्ताउया चैव कालं करेति, सेत्त सम्पूच्छिम मणुस्सा ।”

(ii) कह भयवं उववज्जेपणिदि मणुया सम्पूच्छिमाजीवा।

गोयमा ! मणुस्सखित्ते णायव्वा इत्थ ठाणेसु ॥

उच्चारे पासवणे खेले सिघाणवंत पित्तेसु।

सुक्के सोणिय गयजीवक्कलेवरे नगर निद्धमणे ॥

महमज्जमंस मंखण थी संगे सव्व असुइठाणेसु।

उप्पज्जंति चयंति च समुच्छिमा मणुय पंचिदी ॥

ब्लेक टाइप में छपे शब्द अन्यत्र नहीं मिलते)

—विचारसार प्रकरण (प्रद्युम्न सूरि) जीवाभिगमे

रहती है। ऐसा मूलाचार पर्याप्ति अधिकार की गाथा १७५-१७८ और त्रिलोकप्रज्ञप्ति अधिकार ४ गाथा २६३४ में कहा है।

जिस प्रकार सभी सम्मूर्च्छिम मनुष्य अलब्ध पर्याप्तक होते हैं और उनकी काय एक अंगुल के असंख्यातवें भाग-प्रमाण की होती है, उस प्रकार से न तो सभी सम्मूर्च्छिम पचेन्द्रियतिर्यच अलब्धपर्याप्तक होते हैं और न उन सबकी काय एक अंगुल के असंख्यातवें भाग की ही होती है। बल्कि सम्मूर्च्छिम पचेन्द्रियतिर्यच मत्स्य की काय तो एक हजार योजन की लिखी है। जबकि गर्भज तिर्यचो में किसी भी तिर्यच की काय पाच सौ योजन से अधिक नहीं लिखी है। तथा न केवल सम्मूर्च्छिम पचेन्द्रिय तिर्यच ही किन्तु एकेन्द्रिय से चौद्विन्द्रिय तक के तिर्यच भी सब ही अलब्धपर्याप्तक नहीं होते हैं। हा जो तिर्यच अलब्धपर्याप्तक होते हैं उन सबकी काय अलवत्ता एक अंगुल के असंख्यातवे भाग की होती है। किन्तु इसमें भी तरतमता रहती है; क्योंकि असंख्यातवे भाग के भी हीनाधिक भाग होते हैं। इसलिए तो आगम में लिखा है कि—सबसे छोटा शरीर सूक्ष्म निगोदिया अलब्धपर्याप्तक का होता है। अगर सभी अलब्धपर्याप्तको के शरीरो का प्रमाण एक समान होता तो केवल सूक्ष्मनिगोदिया का ही नाम नहीं लिखा जाता। (देखो त्रि० प्रज्ञप्तिद्वि० भाग पृ० ६१८)।

अलब्धपर्याप्तक जीव सूक्ष्म और बादर दोनों तरह के होते हैं। तथा ये प्रत्येक वनस्पति और साधारण वनस्पति कायिक ही नहीं किन्तु सभी स्थावरकाय और सम्मूर्च्छिम-त्रसकाय के धारी होते हैं। तथा ये एक श्वास में १८ बार जन्म-मरण करते हैं।

कितने ही शास्त्रसभा में भाग लेने वाले जैनी भाई यह समझे हुए हैं कि—जो १ श्वास में १८ बार जन्म-मरण करते हैं वे निगोदिया जीव होते हैं। यह उनकी आंत धारणा है। एक श्वास में १८ बार जन्म-मरण करना यह निगोदिया जीव का लक्षण नहीं है। यह तो अलब्धपर्याप्तक जीव का लक्षण है^४। ऐसे अलब्धपर्याप्तक जीव तो

केवल निगोद में ही नहीं, अन्य स्थावरों और त्रसों में भी होते हैं। जहां वे एक उच्छ्वास में १८ बार जन्म-मरण करते हैं। इसलिए एक श्वास में १८ बार जन्म-मरण करता यह निगोदिया का कतई लक्षण नहीं है। किन्तु एक शरीरमें अनंत जीवों का रहना यह निगोद का निर्बाध लक्षण है। निगोद का ही दूसरा नाम साधारण वनस्पति है जिन्हें अनंतकाय भी कहते हैं। एक शरीर में रहने वाले वे अनंत जीव सब साथ-साथ ही जन्मते हैं साथ-साथ ही मरते हैं और साथ-साथ ही श्वास लेते हैं। एक श्वास में १८ बार जन्म मरण करने वाले अलब्धपर्याप्तक जीव तो न तो साथ-साथ जन्मते-मरते हैं, न साथ-साथ श्वास लेते हैं और न उन बहुतसो का कोई एक शरीर ही होता है। हां अगर ये जीव साधारण-निगोद में पैदा होते हैं तो बेशक वहां वे सब साथ-साथ ही जन्मते-मरते और श्वास लेते हैं। ये ही अलब्धपर्याप्तक जीव वहां एक श्वास में १८ बार जन्म-मरण करते हैं। इनसे अतिरिक्त अन्य जीव निगोद में एक श्वास में १८ बार जन्म-मरण नहीं करते हैं। तात्पर्य यह है कि समस्त निगोद में पर्याप्तक जीव भी होते हैं। उनमें से अलब्ध पर्याप्तक जीव ही सिर्फ एक श्वास में १८ बार जन्म-मरण करते हैं, पर्याप्तक नहीं। पर्याप्तक जीव भी वहां अनंतानंत हैं जिनकी संख्या हमेशह अलब्धपर्याप्तकों से अधिक रहती है। निगोद ही नहीं अन्यत्र त्रसा-दिकों में भी जो अलब्धपर्याप्तक जीव होते हैं वे ही एक श्वास में १८ बार जन्म-मरण करते हैं, सब नहीं। सिद्धांत-ग्रंथों में इतना स्पष्ट कथन होते हुए भी लोगों में आंत धारणा क्यों हुई? इसका कारण निम्नांकित उल्लेख ज्ञात होते हैं :—

(१) स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा की संस्कृत टीका (शुभ-चन्द्रकृत) पृ० २०५ गाथा २८४ में—निगोदेषु जीवो अनंतकालं बसति। ननु निगोदेषु एतावत्कालपर्यन्त स्थितिमान् जीवः एतावत्कालपरिमाणायुः किं वा अन्यदायुः इत्युक्ते प्राह—“आउपरिहीणो” इति आयुः परिहीनः उच्छ्वासाष्टादशकभागलक्षणान्तमुहसंः स्वल्पायुर्विशिष्टः प्राणी। इसका हिन्दी अनुवादक जी ने कोई अनुवाद नहीं किया है, इसका हिन्दी अर्थ इस प्रकार है :—निगोद में जीव अनंतकाल तक रहता है इससे क्या निगोद की इतनी

४. देखो स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा—उत्सासद्वारसमे, भागे-जो मरदि ण समाणेदि। एक्को विय पज्जत्ती, लद्धि अपुण्णो हवे सो दु ॥१३७॥

आयु होती है ? इसका उत्तर है कि—यहां आयु 'परिहीन' पाठ का अर्थ है—एक उच्छ्वास के १८वें भाग प्रमाण अन्तर्मुहूर्त की स्वल्पायु निगोद की होती है ।

(२) बनारसी विलास (वि० सं० १७००) के कर्म-प्रकृति विधान प्रकरण में—

एक निगोद शरीर में, जीव अनन्त अपार ।

घरें जन्म सब एकठें मरहि एक ही बार ॥६५

मरण अठारह बार कर, जनम अठारह बेव,

एक स्वास उच्छ्वास मे, यह निगोद की टेव ॥६६

(३) बुधजन कृत—“छहढाला” ढाल—

जिस दुख से थावर तन पायो वरण सको सो नाहि ।

बार अठारह मरा औ, जन्मा एक श्वास के माहि ॥१

(४) दौलतराम जी कृत—छहढाला —

काल अनन्त निगोद मभार, बीत्यो एकेन्द्रीतनधार ॥४

एक श्वास में अठदस बार, जन्म्यो मरघो भरघो दुखभार ॥

(५) दौलत विलास—(पृष्ठ ५५)

सादि अनादि निगोद दोय मे परघो कर्मवश जाय ।

स्वांस उसांस मभार तहा भवमरण अठारह थाय ॥

(६) चानतराय जी कृत पदसंग्रह—

ज्ञान बिना दुख पाया रे भाई ।

भौ दस आठ उसांस सांस में साधारण लपटाया रे, भाई०

काल अनन्त यहां तोहि बीते जब भई मंद कषाया रे,

तब तूं निकसि निगोद सिधु ते थावर होय न सारा रे, भाई०

(७) बुध महाचन्द्र कृत भजन संग्रह—

(क) जिन वाणी सदा सुख दानी ।

इतर नित्य निगोद मांहि जे, जीव अनन्त समानी,

एक सांस अष्टादश जामन-मरण कहे दुखदानी ॥ जिन०

(ख) सदा सुख पावे रे प्राणी ।

छे निगोद बसि एक स्वांस अष्टादस मरण कहानी ।

सात सात लख योनि भोग के, पड़ियो थावर आनी । स०

(८) स्वरूपचन्दजी त्यागीकृत—स्वरूप भजन शतक

(क) काल अनन्त निगोद बिताये, एक उश्वास लखाई ।

अष्टादश भव मरण लहे पुनि थावर देह धराई ।

हेरत क्यों नहीं रे । निज शुद्धात्म भाई ।

(ख) दुख पायोजी भारी । नित इतर वंसि युग निगोद में,

काल अनन्त बितायो । विधिवश भयो उसांस एक में,

अठदस जनमि भरायो ॥ दुख पायो जी भारी ।

इन उल्लेखों में निगोद (एकेन्द्रिय) के एक श्वास में १८ बार जन्म-मरण बताया है । इससे प्रायः सभी धिद्वानों तक ने एक श्वास में १८ बार जन्ममरण करना निगोद का लक्षण समझ लिया है जो भ्रान्त है, क्योंकि एक श्वास में १८ बार जन्ममरण अन्य पञ्चस्थावरों और त्रसों में भी जो अलब्धपर्याप्तक है पाया जाता है अतः उक्त लक्षण अति व्याप्ति दोष से दूषित है । तथा सभी निगोदों में श्वास के १८ वें भाग में मरण नहीं पाया जाता (सिर्फ अलब्ध-पर्याप्तकों में ही पाया जाता है, पर्याप्तकों में नहीं) अतः उक्त लक्षण अव्याप्ति दोष से भी दूषित है ।

एकेन्द्रियों में महान् दुःख बताने की प्रमुखता से ये कथन किए गए हैं । इन सब उल्लेखों में “लब्धपर्याप्त” विशेषण गुप्त है वह ऊपर से साथ में ग्रहण करना चाहिए “छह ढाला” ग्रंथ का बहुत प्रचार है यह विद्यार्थियों के जैनकोस में भी निर्धारित है अतः इसके अध्यापन के वक्त निगोद का निर्दोष लक्षण विशेषता के साथ विद्यार्थियों को बताना चाहिए ताकि शुरू से ही उन्हें वास्तविकता का ज्ञान हो सके और आगे वे भ्रम में नहीं पड़ें । टीकाओं में भी यथाचित सुधार होना चाहिए ।

ग्रंथकारों ने इस विषय में अभ्रान्त (निर्दोष) कथन भी किए हैं, देखो :—

(१) स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा की संस्कृत टीका पृ० ३३ (गाथा ६८)

सूक्ष्म निगोदीऽपर्याप्तकः × × × क्षुद्रभवकालं १/१८ जीवि-त्वा मृतः ।

(२) दौलतविलास (पृ० १५)—सुधि लीज्यो जी म्हारी ।

लब्धि अपर्याप्त निगोद में एक उसांस मभारी ।

जन्ममरण नव दुगुण व्यथा की कथा न जात उचारी ।

सुधि लीज्यो जी म्हारी ।

(३) मोक्षमार्गप्रकाशक (तीसरा अधिकार) पं० टोडरमल्ल जी सा०

पृ० ६२ (एकेन्द्रिय जीवों के महान् दुःख)

बहुरि आयुकर्मते इनि एकेन्द्रिय जीवनि विषे जे अपर्याप्त हैं तिनि के तो पर्याय की स्थिति उश्वास के १८ वें भाग मात्र ही है ।

पृ० ६६ (तिर्यच गति के दुख)

बहुरि तिर्यचगति विषै बहुत लब्ध्यपर्याप्त जीव है तिन की तो उश्वास के १८ वे भाग मात्र आयु है ।

पृ० ६७ (मनुष्य गति के दुख) बहुरि मनुष्य गति विषे असंख्याते जीव तो लब्धिअपर्याप्त है ते सम्मूर्च्छन ही है तिन की तो आयु उश्वास के १८ वे भागमात्र है ।

(४) नयनमुख जी कृत पद (अद्वितीय भजनमाला प्रथम भाग पृ० ६०)

सुन नैन चेत जिन बैन अरे मत जनम वृथा खोवे ।

तरस-तरस के निगोद से निकास भयो,

तहा एक स्वास मे अठारह बार मरे थो ।

सूक्ष्म से सूक्ष्म थी तहां तेरी आयुकाय,

परजाय पूरी न करे थो फिर मरे थो ॥

भाव पाहुड में कुन्द कुन्द स्वामी ने लिखा है :—

छत्तीस तिण्ण सया छावट्टिसहसबारमरणाणि ।

अंतो मुहूत्त मज्जे पत्तोसि निगोयवासम्मि ॥२८॥

विर्यालिदिए असीदी सट्ठी चालीसमेव जाणेह ।

पंचिन्दिय चउवीस खुद्भवंतोमुहूत्तस्स ॥२९॥

इन गाथाओं में निगोद वास मे ६६३३६ बार जनम-मरण एक अन्तर्मुहूर्त में बताया है । तथा विकलत्रय और पंचेन्द्रिय के क्षुद्रभवों की संख्या बताई है किन्तु एकेन्द्रिय के क्षुद्रभवों की संख्या नहीं दी है बिना उसके ६६३३६ भवों का जोड़ नहीं बैठता है गोम्मटसार जीवकांड गाथा १२२ से १२४ में यही कथन है वहाँ एकेन्द्रियों के क्षुद्र-भवों की अलग संख्या बताई है इस पर सहज प्रश्न उठता है कि क्या भाव पाहुड में यहाँ एक गाथा छूट गई है ? इसका समाधान यह है कि—अजित ब्रह्मकृत—“कल्लाणा-ल्लोयणा” (माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला के “सिद्धान्तसारादि संग्रह में प्रकाशित) ग्रन्थ में भी ये ही दो गाथाएँ ठीक इसी तरह पाई जाती हैं । श्रुतसागर ने भी सहस्र नाम (अ० ६ श्लोक ११६) की टीका में पृ० २२७ पर ये ही २ गाथाएँ उद्धृत की हैं । इससे १ गाथा छूटने का तो सवाल नहीं रहता है । अब रहा एकेन्द्रिय जीवों के क्षुद्रभवों की संख्या का सवाल सो वह परिशेष न्याय से बैठ जाता है । वह इस तरह कि—विकलत्रय और पंचेन्द्रिय के क्षुद्रभवों की कुल संख्या गाथा २६ में २०४ बताई है इसे ६६३३६ में

से बाकी निकालने पर अपने अपने आप शेष ६६१३२ एकेन्द्रिय के क्षुद्रभव हो जाते हैं । कुन्दकुन्द के पाहुड ग्रंथ सूत्र रूप है अतः यहाँ परिशेष न्याय का आश्रय लेकर १ गाथा की वचन की गई है ।

निगोद का अर्थ साधारण अनन्तकायिक वनस्पति होता है देखो :—

(i) अनगारधर्मावृत पृ० २०२ (माणिकचन्द्र-प्रथमाला)

निगोत लक्षणं यथा—(गोम्मटसार गाथा १६० से १६२, धवला प्रथम भाग पृ० २७०)

(साहारणोदयेण निगोद शरीरा हवंति सामण्णा ।

ते पुण दुविहा जीवा वादर सुहवात्ति विण्णेया) ॥१६०॥

साहारणमाहारो साहारणमाणपाणगहणं च ।

साहारणजीवाणं साहारणलक्खणं भणियं ॥१६१॥

जत्थेक्कु मरइ जीवो तत्थ दु मरण हवे अणताणं ।

वक्कमइ जत्थ एक्को वक्कमण तत्थ पंताणं ॥१६२॥

(ii) स्वामिकातिकेयानुप्रेक्षा की संस्कृत टीका शुभ-चन्द्रकृत पृ० २०४ (गाथा २८४) :—

“नि नियतां गामनन्तसख्याविच्छिन्नानां जीवानां गां क्षेत्र ददातीति निगोदं । निगोदं शरीरं येषां ते निगोदाः निकोता वा साधारण जीवाः (अनन्तकायिकाः) ॥”

ऐसी हालत में उपरोक्त भाव पाहुड गाथा २८ में जो निगोद शब्द दिया है उसका अर्थ “अनन्तकायिक एकेन्द्रिय वनस्पति नहीं बैठता है क्योंकि ६६३३६ भव जो निगोद के बताए हैं उनमें त्रस स्थावर सभी हैं । इसका समाधान बहुत से भाई यह करते हैं कि—निगोद का अर्थ लब्ध्य-पर्याप्तक करना चाहिए किन्तु यह अव्याप्ति दूषण से दूषित है क्योंकि सभी निगोद लब्ध्यपर्याप्तक नहीं होते बहुत से पर्याप्तक भी होते हैं । इसके सिवाय यह अर्थ निगोद के प्रसिद्ध अर्थ (अनन्तकायिक वनस्पति) से भी विरुद्ध जाता है । जयचन्दजी की वचनिका भी अस्पष्ट और कुछ भ्रांत है ।

अतः हमारी राय में भावपाहुड गाथा २८ के ‘निगोद’ का अर्थ “क्षुद्र” करना चाहिए गाथा २९ में निगोद का पर्याय-वाची क्षुद्र शब्द दिया भी है । इसके सिवा गोम्मटसार जीवकांड में भी जो इसा के समान गाथा है उसमें भी

निगोद की जगह क्षुद्र शब्द का प्रयोग है देखो—
तिणिसया छत्तीसा छावट्टि सहस्रगाणि मरणाणि ।

अं तो मुहुत्तकाने तावदिया चेव खुद्दभवा १२२

‘निगोद’ का ‘क्षुद्र, कुत्सित, अप्रशस्त, हीन’ अर्थ भी होता है देखो :—

(१) सूत्र प्राभृत गाथा १८ “तत्तो पुण जाई निगोद”
मे निगोद का अर्थ श्रुतसागर ने अप्रशसनीय दिया है
(निगोदं प्रशंसनीयगतिं न गच्छतीत्यर्थः)

(२) हरिवंश पुराण (जिनसेनकृत) सर्ग ४
मृदंग नाडिकाकारा निगोदा पृथ्वीत्रये ॥३४७॥
ते चतुर्थ्यां पचम्या नारकोत्पत्तिभूमयः ॥३४८॥
सर्वेन्द्रिक निगोदास्ते त्रिद्वाराश्च त्रिकोणकाः ॥३४९॥
धर्मा निगोदजाः जीवा खमुत्पत्य पतन्त्यधः ३५५

नरक मे नारकियों के जो उत्पत्ति स्थान इन्द्रक
आदि बिल है उन कुत्सित स्थानों को यहाँ ‘निगोद’ कहा
है । संस्कृत टिप्पणकारने भी यही अर्थ किया है :—“निगोदः
नारकोत्पत्ति स्थानानि” ।

धर्म विलास (धानतराय कृत) पृ० १७—(उपदेश
शतक)

वसत अनतकाल बीतन निगोद माहि । अखर अनंतभागज्ञान
अनुसरे है ।

छासठि सहस तीन सै छत्तीस बार जीव । अतर मुहूरत
मे जन्मे और मरे है ॥४८॥

दीलत विलास पृ० ८०—जब मोहरिपु दीनी घुमरिया
तसवश निगोद मे पड़िया ।

तह स्वास एक के माहि अष्टादश मरण लहाहि ॥

लाह मरण अन्तर्मूर्हत्त मे छयासठ सहस शत तीन ही ।
षट्तीस काल अनंत यों दुख सह उपमा ही नही ॥

पृ० ३७—फिर सादि औ अनादि दो निगोद मे परा,
जह अंक के असख्य भाग ज्ञान ऊबरा ।

तह भवअन्तर्मूर्हत्त के कहे गणेश्वरा ।

छयासठ सहस त्रिशत छत्तीस जन्मधर मरा ।

यों बसि अनतकाल फिर तहां ते नीसरा ॥

इन उल्लेखों में ६६३३६ क्षुद्रभव सिर्फ निगोद-एके-
न्द्रिय के ही बताए हैं यह ठीक नहीं है ।

वृन्दावन कृत चौबीस पूजा (बिमलनाथ पूजा जयमाल)
मे यह कथन ठीक दिया हुआ है वहाँ देखो ।

श्वेताबर ग्रंथों मे इस विषय में कथन इस प्रकार है :-

“जैनसिद्धांत बोलसग्रह” दूसरा भाग (सेठिया जैन
ग्रंथमाला बीकानेर) पृ० १६-२१ मे लिखा है :—

अनन्त जीवों के पिण्ड भूत एक शरीर को निगोद
कहते है । लोकाकाश के जितने प्रदेश है उतने सूक्ष्म निगोद
के गोले है एक एक गोले मे असंख्यान निगोद है एक एक
निगोद मे अनन्त जीव है । ये एक श्वास मे—कुछ अधिक
१७ जन्म मरण करते हैं, (एक मुहूर्त मे मनुष्य के ३७७३
श्वासोच्छ्वास होते हैं) एक मुहूर्त मे ६५५३६ भव
करते है, निगोद का एक भव २५६ आवलियों का होता
है । सूक्ष्म निगोद मे नरक से भी अनंतगुणा दुःख (अज्ञान
से) है ।

सत्तरस समहिया किर इगाणु पाणम्मि हुति खुद्दभवा ।

सगतीस सय तिहुत्तर पाणू पुण इग मुहुत्तम्मि ॥

पणसट्ठि सहस पणसय छत्तीसा इग मुहुत्त खुद्दभवा ।

आवलियाण दो सय छप्पन्ना एग खुद्दभवे ॥

दि० आम्नाय मे जहाँ १८ बार जन्म-मरण बताया है
वहाँ श्वेताबर आम्नाय मे कुछ अधिक १७ बार बताया
है । दि० आम्नाय मे क्षुद्रभवों की संख्या ६६३३६ बताई
है तब श्वे० आम्नाय मे ६५५३६ बताई है दि० आम्नाय
मे यह संख्या स्थावर और त्रस सभी लब्धपर्याप्तको
की बताई है किन्तु श्वे० आम्नाय मे इसके लिए सिर्फ एक
निगोद शब्द का सामान्य प्रयोग किया है । दोनों आम्नायों
मे इस प्रकार यह मान्यता भेद है (यह भेद सापेक्षिक है
दोनों की सगति संभव है)

महान् सिद्धांत ग्रन्थ धवला मे निगोद का कथन—
भाग ३ पृ० ३२७, भाग ४ पृ० ४०६, ४०८, भाग ७
पृ० ५०६, भाग ८, पृ० १६२, भाग १४ पृ० ८६ आदि
मे है । ब्रह्मचारी मूलशकर जी वेशाई ने अपनी बृहत्
पुस्तक “श्री जिनागम” पृ० १७५ से १८१ मे धवला के
कथनों की आलोचना की है और यहाँ तक लिखा है कि—
धवलाकर ने ‘निगोद’ के अर्थ को समझा ही नहीं है
किन्तु हमें देखाई श्री के कथन में कुछ भी बज्रन नहीं
मालूम पड़ता है । धवलाकार का कथन कोई आपसिबनक

नहीं है। अगर देशाई जी हमारे इस लेख की रोशनी में पुनर्विचार करे तो उन्हें भी धबला का कथन सुसगत प्रतीत होगा।

भावपाटुड की उक्त २८वीं गाथा की संस्कृतटीका श्रुतसागर ने शब्दार्थ मात्र की है। अतः उससे भी—विषय स्पष्ट नहीं होता है।

इन दिनों श्री शांतिवीर नगर^१ से अष्टपाटुड ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है जिसके हिन्दी अनुवादक श्री पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य सागर हैं। अनुवादक जी ने उक्त गाथा २८ का अर्थ करते हुए लिखा है कि—६६३३६ भव निकोत जीवों के होते हैं न कि निगोद जीवों के। निकोत शब्द का अर्थ आप ने लब्धपर्याप्तक जीव किया है। किन्तु आप ने ऐसा कोई शास्त्र प्रमाण नहीं लिखा जहाँ निकोत का अर्थ लब्धपर्याप्तक किया हो। बल्कि लाटीमहिता सर्ग ५ श्लो० ६१, ६२, ६४, ८५ में साधारण और निकोत दोनों को एकार्थवाचक लिखा है।^१

ऊपर जो ६६३३६ भव सख्या बताई है उसका मतलब यह है कि—एक अलब्धपर्याप्तक जीव जिसकी कि त्रस और स्थावर पर्यायों में अलग-अलग अधिक से अधिक भवसख्या आगम में बताई है उन सब भवों को यदि वह लगातार धारण करे तो ६६३३६ भव धारण कर सकता है। इससे अधिक नहीं, इन सबों को धारण करने में उसे ८८ श्वास कम एक मुहूर्त्तकाल लगता है जिसे “अन्त-मुहूर्त्त काल” संज्ञा शास्त्रों में दी है। इस हिसाब से—अलब्धपर्याप्तक जीव एक उच्छ्वास में १८ बार जन्मता

५. जिस तरह “श्री महावीर जी” में पोस्ट ऑफिस है उसी तरह नदी के इस पार “श्री शांतिवीर नगर”—नाम से अलग नया पोस्ट ऑफिस खुल गया है।

६. स्वामि कार्ति के यानुप्रेक्षा की संस्कृत टीका पृ० २०४ गाथा २८४ में लिखा है :—निगोदं शरीरं येषां ते निगोदाः निकोता वा साधारण जीवाः। भाव पाटुड-गाथा ११३ की श्रुतसागर कृत संस्कृत टीका में भी निगोद और निकोत एकार्थवाची ही लिखे हैं।

मूलाचार (पंचाचाराधिकार गाथा २८ की वसुन्दि कृत टीका) में पृ० १६४-१६५ पर निकोत शब्द निगोद का पर्यायवाची शब्द दिया है।

है और १८ बार मरता है। अतः १८ का भाग ६६३३६ में देने से लब्ध सख्या ३६८५-१/३ आती है। यानी ३६८५ उच्छ्वासों में वह ६६३३६ भव लेता है और एक मुहूर्त्त के ३७७३ उच्छ्वास होते हैं। फलितार्थ यह हुआ कि ६६३३६ भव लेने में उसे ८८ श्वास कम एक एक मुहूर्त्त का काल लगता है। इन ६६३३६ क्षुद्रभवों में से किस-किस पर्याय में कितने-कितने भव होते हैं उसका विवरण इस भाँति है—

एकेन्द्रियों के — ६६१३२

द्वीन्द्रिय के — ८०

त्रीन्द्रिय के — ६०

चतुरिन्द्रिय के — ४०

पचेन्द्रियों में—

असज्जी तिर्यच के — ८

सज्जी ,, — ८

मनुष्य के — ८

कुल जोड़ —————

६६३३६

देखो गोम्मटसार जीवकांड गाथा १२२—आदि तथा स्वामि कार्तिकेयानुप्रेक्षा बड़ा पृ० ७६

एकेन्द्रियों के ६६१३२ क्षुद्र भवों का विवरण निम्न प्रकार है—

चार स्थावर और साधारण वनस्पति ये पाँचों सूक्ष्म बादर होने से १० भेद हुए। प्रत्येक वनस्पति बादर ही होती है अतः उसका एक भेद १० में मिलाने में ११ हुए। इन ११ का भाग उक्त ६६१३२ में देने से लब्ध ६०१२ आते हैं। बस हर एक लब्धपर्याप्तक स्थावर जीव के ६०१२ क्षुद्रभव होते हैं। इस विषय को इस तरह समझना कि—कोई जीव किसी एक पर्याय में मरकर पुनः पुनः उसी पर्याय में लगातार जन्म-मरण करे तो कितने बार कर सकता है इसकी भी आगम नियत सख्या लिखी मिलती है। जैसे नारकी-देव-भोग भूमिया जीव मरकर लगते ही दुबारा अपनी उसी पर्याय में पैदा नहीं हो सकते हैं। कोई जीव मनुष्य योनि में जन्म लिए बाद फिर भी उसी मनुष्य योनि में लगातार जन्म ले तो वह ८ बार से अधिक नहीं ले सकता है। पृथ्वी आदि ४ सूक्ष्म पर्याप्तक स्थावर

जीव मर मर कर अपनी उसी पर्याय में लगातार अधिक से अधिक असंख्यबार जन्म ले सकते हैं। और पर्याप्तक निगोदिया जीव अनंतबार जन्म ले सकते हैं। उसी तरह अलब्धपर्याप्तक जीव के लिए लिखा है कि—वह भी यदि अलब्धपर्याप्तक के भव धारण करे तो ऊपर जिस पर्याय में जितने भव लिखे हैं वहां वह अधिक से अधिक उतने ही भव धारण कर सकता है। जैसे किसी जीव ने सूक्ष्मनिगो-दिया में अलब्धपर्याप्तक रूप से जन्म लिया। यदि वह मरकर फिर भी वहां के वहां ही बार बार निरंतर जन्म मरण करे तो अधिक से अधिक ६०१२ बार तक कर सकता है। इसके बाद उसे नियमतः पर्याप्तक का भव धारण करना पड़ेगा। भले ही वह भव निगोदिया का ही क्यों न हो। यदि वह पर्याप्तक में न जाये और फिर भी उसे अलब्धपर्याप्तक ही होना है तो वह सूक्ष्म निगोदिया में जन्म न लेकर बादर निगोदिया या अन्य स्थावर-त्रसो में अलब्धपर्याप्तक हो सकता है। वहां भी जितने वहां के क्षुद्रभव लिखे हैं उतने भव धारण किये बाद वहां से भी निकल कर या तो उसे पर्याप्तक का भव लेना हांगा या उसी तरह अन्य स्थावर त्रसों में अलब्धपर्याप्तक रूप से जन्म लेना होगा। इस प्रकार से कोई भी जीव यदि सभी स्थावर त्रसों में निरंतर अलब्धपर्याप्तक के भवों को धारण करे तो वह ६६३३६ भव ले सकता है, इससे अधिक नहीं। ऊपर अलब्धपर्याप्तक मनुष्य के अधिक से अधिक ८ लगातार क्षुद्रभव लिखे हैं जिनका काल आधे श्वास से भी कम होता है। मतलब कि वह अर्द्धश्वास कालमात्र तक ही मनुष्य भव में रहता है। इतना ही काल अलब्ध-पर्याप्तक पचेन्द्रिय संज्ञी-असंज्ञी तिर्यचों का है। तदुपरांत उन्हें या तो किसी पर्याप्तक में जन्म लेना पड़ेगा या अन्य किसी स्थावरादि में अलब्धपर्याप्तक होना पड़ेगा।

यहां प्रश्न

अनादि काल से लेकर जिन जीवों ने निगोद से निकलकर दूसरी पर्याय न पाई वे जीव नित्यनिगोदिया कहलाते हैं। नित्यनिगोदिया जीव पर्याप्तक ही नहीं, बहुत से अलब्धपर्याप्तक भी होते हैं। वहां के उन अलब्ध-पर्याप्तकों ने भी आज तक निगोदवास को छोड़ा नहीं है। ऐसी सूरत में आप यह कैसे कहते हैं कि—निगोदिया

अलब्धपर्याप्तक जीव अधिक से अधिक निरंतर अपने ६०१२ क्षुद्रभव लिए बाद उन्हें निश्चय ही उस पर्याय से निकलना पड़ता है।

उत्तर

हां वहां से उन्हें भी अवश्य निकलना पड़ता है। अलब्धपर्याप्तक पर्याय को छोड़ कर वे पर्याप्तक—निगोद में चले जाते हैं। मूल चीज निगोद को उन्होंने छोड़ी नहीं जिससे वे नित्यनिगोदिया ही कहलाते हैं। इसी तरह वे पर्याप्त से अपर्याप्त और सूक्ष्म से बादर एवं बादर से सूक्ष्म भी होते रहते हैं। होते रहते हैं निगोद के निगोद में ही जिससे उनके निगोद का नित्यत्व बना ही रहता है।

निगोदिया जीव अलब्धपर्याप्तक अवस्था में निरन्तर रहें तो अधिक से अधिक सिर्फ ४ मिनट तक ही रह सकते हैं। क्योंकि उनके लगातार क्षुद्रभव ६०१२ लिखे हैं। जो ३३४ उच्छ्वासों में पूर्ण हो जाते हैं। ३३४ उच्छ्वासों का काल ४ मिनट करीब का होता है। इस थोड़े से ४ मिनट के समय में ६०१२ जन्म और इतने ही मरण करने से सूक्ष्म निगोदिया अलब्धपर्याप्तक जीवों के इस कदर संक्लेशता बढ़ती है कि उसके कारण जब वे जीव आखिरी ६०१२ वां जन्म लेने की विग्रहगति में ३ मोड़ा लेते हैं तो प्रथम मोड़ में जानावरण का ऐसा तीव्र उदय होता है कि उस समय उनके अतिजघन्य श्रुतज्ञान होता है। जिसका नाम पर्याप्तज्ञान है। यह ज्ञान का इतना छोटा अंश है कि यदि यह भी न हो तो आत्मा जड़ बन जाए। यह कथन गोम्मटसार जीव कांड गाथा ३२१ में किया है।

निगोद के विषय में एक और भ्रान्त धारणा फंली हुई है। कुछ जैन विद्वान् ऐसा समझे हुए हैं कि—‘नरक की ७वीं पृथ्वी के नीचे जो एक राजू शून्यस्थान है, जहां कि त्रसनाडी भी नहीं है वहां निगोद जीवों का स्थान है।’^७ ऐसा समझना गलत है। जो सूक्ष्म निगोदिया जीव

७. (१)सूरत, जबलपुर आदि से प्रकाशित तत्त्वार्थसूत्र(पाठ्य पुस्तक) में तीन लोक का नक्शा दिया है उसमें ७वे नरक के नीचे एक राजू में निगोद बताया है। ऐसा ही कथन कार्तिकेयानुप्रेक्षा (रायचन्द्र शास्त्रमाला)

हैं वे तो त्रसनाड़ी और उससे बाहर सब लोक में ठसाठस भरे हुए हैं। ये ही नहीं, पृथ्वी आदि अन्य सूक्ष्म स्थावर जीव भी समस्त लोक में व्याप्त हैं। इसलिए सातवीं पृथ्वी के नीचे ही निगोद कहना ठीक नहीं है, वह तो तीन लोक में सर्वत्र है। वह सातवीं पृथ्वी से नीचे भी है और अन्यत्र भी है। तथा ७वीं पृथ्वी के नीचे केवल निगोद ही नहीं

पृ० ५६, ६२ में तथा सिद्धांतसार संग्रह (जीवराज ग्रंथमाला) पृ० १४४ में हिन्दी अनुवादकों ने किया है जब कि मूल और संस्कृत टीका में ऐसा कुछ नहीं है।

(२) जैन बाल गुटका (प्रथम भाग बाबू ज्ञानचन्द जैनी, लाहौर) पृ० ३२ त्रसनाली में नीचे निगोद :-

(३) यशोधर चरित्र (लोकानुप्रेक्षा के वर्णन में, हजारी लालजी कृत भाषा) पृ० १६१—“नर्क निगोद पाताल विषे जहाँ क्षेत्र जुराजू सात बखानी।”

(४) दानतराय जी कृत चर्चाशतक के हिन्दी वचनिकाकार हरजीमलजी ने पद्य ८, ११, १२, १३ क अपनी टीका में सातवें नरक के नीचे निगोद लिखा है (यह ग्रंथ बीर प्रेस, जयपुर से प्रकाशित हुआ है)

(५) बनारसी विलास (वि० सं० १७०० में रचित) के “कर्म प्रकृति विधान” प्रकरण में लिखा है :-

जो गोलक रूपी पचधाम, अडर खडर इत्यादि नाम।
ते सातनरकके हेट जान, पुनि सकललोक नभमेबखान
(६) बुद्धि विलास (बखतराम शाह कृत वि० सं० १८२७) ग्रंथारंभ में—

रत्न शर्करा बालुका, पंक धूमतम सोदि।
बहुरि महातम सात ये तिनतल कही निगोदि ॥११॥
प्रथम हि भूमि निगोदतल लाबी चौड़ी जानि।

सात सात राजू कही, पुनि सुनि गुणखानि ॥१६॥

(७) छह ढाला (जैन पुस्तक भवन कलकत्ता की सचित्र) पृ० ५—यद्यपि निगोद सर्वत्र पाये जाते हैं तथापि सात नरकों के नीचे खास निगोदों का स्थान है।

(८) “जैन मित्र” वंशाख सुदि ७ वि० सं० २४६४ “त्रिलोक परिचय” लेख में लेखिका ने लिखा है—
अधोलोक में नीचे सात नरक हैं इस सबसे नीचे निगोद लोक है।

है वहाँ अन्य स्थावर जीव भी रहते हैं। ऐसा बृ० द्रव्य संग्रह की ब्रह्मदेवकृत संस्कृतटीका में लोकानुप्रेक्षा का वर्णन करते हुए कहा है—

“तस्मादधोभागे रज्जुप्रमाणं क्षेत्रं भूमि रहित निगोदा-
दिपंच स्थावरभूतं च तिष्ठति।” अर्थ—उस सातवीं पृथ्वी के नीचे एक राजूप्रमाण क्षेत्र भूमि रहित है वहाँ निगोद को आदि लेकर पांच स्थावर जीव तिष्ठते हैं।

स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा की संस्कृत टीका में (पृष्ठ ५६ में) भी इसी गद्य को उद्धृत करके यही बात दर्शायी है।

प्रश्न :-“सूक्ष्मनिगोद सर्वत्र है यह ठीक है पर ७वीं पृथ्वी के नीचे जो निगोद कही जाती है वह बादर निगोद है।” उत्तर :-“ऐसा कहना भी उचित नहीं है। क्योंकि बादर जीव बिना आधार के रह नहीं सकते ऐसा सिद्धान्त है। गोमटसार जीवकांड गाथा १८३ में लिखा है कि—
“आधारे थूलाओ सव्वत्थ णिरंतरा सुहुमा।” बादर जीव आधार पर रहते हैं और सूक्ष्म जीव सर्वत्र बिना व्यवधान के भरे हैं। स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षा में भी लिखा है कि—
पुण्णा वि अपुण्णा वि य थूला जीवा हवति साहारा।
छव्विह सुहुमाजीवा लोयायासे वि सव्वत्थ ॥१२३॥

८. और यही बात नरेन्द्रसेनाचार्यकृत—सिद्धांतसार संग्रह अध्याय ६ श्लोक ६ में कही है :-ततोऽधस्ताद्वारा शून्य रज्जुमान सुदुस्तरम्। क्षेत्रमस्ति निगोतादि जीवस्थान मनेकधा ॥ इसमें निगोद के आगे आदि शब्द देकर पचस्थावरों का संसूचन किया है। पं० प्रवर गोपालदासजी वरैया ने भी “जैन सिद्धांतदर्पण” पृ० १६६ में यही लिखा है :-“सातवीं पृथ्वी के नीचे एक राजू प्रमाण आकाश निगोदायिक जीवों से भरा हुआ है।” अतः सातवीं पृथ्वी के नीचे एक राजू में सिर्फ निगोद ही बताना बिल्कुल गलत है।

९. पं० माणिकचन्द जी न्यायाचार्य ने “तीन लोक का वर्णन” लेख में (सरल जैनधर्म) पृ० १०६ में लिखा है :-अधो लोक में सबसे नीचे एक राजू तक बादर निगोद जीव भरे हुए हैं और उससे ऊपर छह राजूओं में सात पृथ्वियां हैं।

अर्थ—चाहे पर्याप्त हो या अपर्याप्त हो सबही बादर जीव आधार के सहारे से रहते हैं। तथा पृथ्वी-जल-अग्नि-वायु-नित्य निगोद और इतरनिगोद ये ६ सूक्ष्म जीव लोकाकाश में सब जगह भरे हैं।

नरक की ७वीं पृथ्वी के नीचे एक राजप्रमाण क्षेत्र में वातवलियों को छोड़कर बाकी सारा स्थान निराधार शून्यमय है। और बिना आधार के बादरजीव रहते नहीं हैं तो वहाँ बादर निगोद भी कैसे मानी जा सकती है ?^{१०} दूसरी बात यह है कि—गोम्मटसार जीवकांड गाथा १९९ में वनस्पतिकायिक-विकलत्रय पचेन्द्रिय तिर्यच और मनुष्यों के (केवल शरीर-आहार शरीर को छोड़कर) शरीरों में बादर निगोदिया का स्थान बताया है। और सातवीं पृथ्वी के नीचे वातवलियों को छोड़कर शेष स्थान में न प्रत्येक वनस्पतिकायिक हैं और न त्रस है इससे भी वहाँ बादर-निगोद का अभाव सिद्ध होता है।

इससे यह भी प्रगट होता है कि जिस प्रकार प्रत्येक वनस्पति के आश्रित बादर निगोद होने से वह सप्रतिष्ठित कहलाती है। उसी तरह त्रस जीवों के शरीरों के आश्रित भी बादर निगोद जीव रहते हैं अतः त्रसकाय भी सप्रतिष्ठित कहलाता है। गोम्मटसार की उक्त गाथा १९९ में यह भी लिखा है कि—पृथ्वी-जल-अग्नि-वायु इन चार स्थावरों के शरीर में, तथा देव शरीर, नारकी शरीर, आहारक शरीर, और केवलीका शरीर सिर्फ इन आठ शरीरों में निगोदिया जीव नहीं होते, शेष सब शरीरों में निगोद जीव होते हैं। इसलिए अमृतचंद्र स्वामी ने पुरुषार्थ-सिद्धचुपाय के निम्न श्लोक में मांस में निगोद जीव होने का कथन किया है—

१०. चर्चा समाधान (चर्चा नं० ६५) में सातवे नरक के नीचे बादर निगोद (पंचगोलक) का अभाव बताया है। सुदृष्टि तरंगिणी में भी प० टेकचन्द्र जी सा० ने लिखा है कि सातवें नरक के नीचे बादर निगोद बताने वाले भोले जीव हैं।

११. अनगार धर्माभूत पृ० ४६१ में मलपरीषद् प्रकरण में लिखा है :—उडवत्तन (उडवत्तन, मल उतारने) में बादर प्रतिष्ठित निगोद जीवों का घात होता है।

आमास्वपि पक्वास्वपि विपच्यमानासु मांसपेक्षीषु ।
सातत्येनोत्पादस्तज्जातीनां निगोतानाम् ॥ ६७ ॥

अर्थ—कच्ची, पक्की, पकती हुई मांस की डलियों में मांस जैसे वर्ण-रस-गंध वाले निगोद जीव निरंतर ही उत्पन्न होते रहते हैं।

पुरुषार्थसिद्धचुपाय के इस श्लोक में प्रयुक्त “तज्जातीनां निगोतानां” का अर्थ कोई ऐसा करते हैं कि—जिस जाति के जीव का मांस होता है उसमें उसी जाति के जीव पैदा होते हैं। जैसे बैल का मांस हो तो उसमें बैल जैसे ही सूक्ष्म त्रस जीव पैदा होते हैं।^{११} ऐसा अर्थ करने पर जब निगोद शब्द के साथ सगति बैठती नहीं, क्योंकि निगोदिया जीव त्रस होते नहीं तब वे निगोत शब्द का लब्धपर्याप्तक अर्थ करके सगति बैठाने का प्रयत्न करने लगते हैं पर निगोत का लब्धपर्याप्तक अर्थ किसी शास्त्र में देखने में आया नहीं है। यह गड़बड़ ‘तज्जातीनां’ शब्द का ठीक अर्थ न समझने की वजह से हुई है। इसलिए ‘तज्जातीनां’ का सही अर्थ यों होना चाहिए कि—“उसी मांस की जाति के (न कि उसी जीव की जाति के) अर्थात् उस मांस का जैसा वर्ण-रस-गंध है उसी तरह के उसमें निगोद-जीव पैदा होते हैं।” ऐसा अर्थ करने से कोई असंगतता नहीं रहती। जिस प्राकृत गाथा की छाया को लेकर पुरुषार्थ सिद्धचुपाय में उक्त पद्य रचा गया है उस गाथा में भी मांस में निरंतर निगोद जीवों की ही उत्पत्ति बताई है। वह गाथा यह है—

आमासु अ पक्कासु अ विपच्यमानासु मंसपेक्षीषु ।
सययं चिय उववाधो भणिमो उ निगोअजीवाणं ॥

यह गाथा स्वताम्बराचार्य हेमचंद्र ने योगशास्त्र के तीसरे प्रकाश में उद्धृत की है। स्याद्वादमंजरी के पृष्ठ १७६ पर भी यह गाथा उद्धृत हुई है। तथा पुरुषार्थ सिद्धचुपाय की पंडित टोडरमल जी साव ने वचनिका लिखी है। उसमें उक्त पद्य नं०-६७ का अर्थ इस प्रकार किया है—“आली होउ, अग्निकरि पकाइ होउ, अथवा पकती होउ, कछु एक पकी होउ, ऐसे सबही जे मांस की डली तिनविषे उसही जाति के निगोदिया अन्ते जीव तिनका समय-समय विषे निरंतर उपजना होय है। सर्व अवस्था सहित मांस की

डलिनी विषं निरंतर वैसे ही मांस सारिखे नये-नये अनंत जीव उपजें हैं ।”

यहां टोडरमल जी साब ने भी मांस में मांस जैसे ही निगोद जीव की उत्पत्ति लिखी है । न कि लब्धपर्याप्तको की । और देखिये सागारधर्मातु अध्याय २ श्लोक ७ में पं० आशाधर जी भी मांस में प्रचुर निगोद जीव बताते हुए निगोद का अर्थ साधारण-अनंतकाय लिखते हैं । लब्धपर्याप्तक नहीं लिखते । यहा यह भी समझना कि—जैसे स्थावर वनस्पतिकाय में जो बादर निगोदजीव पैदा होते हैं । वे भी तो उस वनस्पति के रूप-रस-गंध जैसे ही पैदा होते हैं । वैसे ही त्रस जीवों के कलेवरो में समझ लेना चाहिए । यह एक जुदी बात है कि—तिर्यचों के मांस में निगोदजीवों के अतिरिक्त लब्धपर्याप्तक और पर्याप्तक कृमि आदि त्रस जीव भी पैदा हो जाते हैं । यहा तक की उसमें सम्मूर्च्छिम पचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक तिर्यच तक पैदा हो सकते हैं । परन्तु इसका मायना यह नहीं है कि बैल के कलेवर में बैल जैसे पचेन्द्रिय सूक्ष्म लब्धपर्याप्तक जीव पैदा होते हैं । ऐसा कोई आर्षप्रमाण हो तो बताया जावे । मनुष्य के कलेवर में लब्धपर्याप्तक मनुष्यों का पैदा होना ऐसा तो शास्त्रों में स्पष्ट कथन मिलता है । परन्तु जिस जाति के तिर्यच का कलेवर हो उसमें उसी तिर्यच जाति के लब्धपर्याप्तक सूक्ष्म जीव पैदा होते हैं ऐसा कथन नहीं मिलता है । तथा जिस प्रकार सभी सम्मूर्च्छिम मनुष्य नियमतः लब्धपर्याप्तक ही होते हैं । उस तरह सभी सम्मूर्च्छिम तिर्यच लब्ध-

पर्याप्तक नहीं होते—वे पर्याप्तक भी होते हैं । इस तरह दोनों में विषमता होने से यह भी नहीं कह सकते कि जैसी उत्पत्ति लब्धपर्याप्तक मनुष्यों की है । वैसी ही तिर्यचों की भी है । यद्यपि आगम में पंचेन्द्रिय तिर्यचों के गर्भज और सम्मूर्च्छिम ऐसे दो भेद जरूर किये हैं । पर इसका मतलब यह नहीं है कि जो बैल, हाथी, घोड़े गर्भजन्म से पैदा होते हैं वे ही सम्मूर्च्छिम भी होते हैं । सम्मूर्च्छिम पचेन्द्रिय तिर्यच और ही होते हैं — जिस जाति के गर्भज तिर्यच होते हैं उसी जाति के सम्मूर्च्छिम तिर्यच नहीं होते ऐसा कहने में कोई बाधक प्रमाण नजर नहीं आता है ।

रत्नकरण्ड श्रावकाचार श्लोक ६६ की टीका में पं० सदासुख जी ने लिखा है :—“मनुष्य तिर्यचनि के मांस का एक कण में एते बादर निगोदिया जीव हैं जो त्रैलोक्य के एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक जितने जीव हैं उनसे अनंतगुणे हैं ताते अन्न जलादिक असख्यात वर्ष भक्षण करे तिसमें जो एकेन्द्रिय हिंसा होय ताते अनंतगुणे जीवान की हिंसा सुई की अणीमात्र मांस के भक्षण करने में है पृ० १८१ ।” पं० सदासुख जी साब ने भी मांस में जो निगोदिया जीव सतत उत्पन्न होते हैं उन्हें एकेन्द्रिय ही माना है । किन्तु “श्री जिनागम” पुस्तक के पृ० ३२३ पर देशाई जी ने इस कथन की आलोचना की है जो ठीक नहीं है । पं० सदासुख जी का कथन आगमानुसार है ।

आशा है बहुश्रुतज विद्वान और त्यागी वगं इस निबंध पर गहरे चिंतन के साथ अपने विचार प्रकट करने कि कृपा करेंगे ।

विजोलिया के जैन लेख

श्री रामवल्लभ सोमानी

बिजोलिया क्षेत्र भीलवाडा जिले का ऊपर माल क्षेत्र का भाग है । इतिहास की दृष्टि से यह बड़ा प्रसिद्ध है । आश्चर्य नहीं कि गुजरात के लेखकों ने कुमारपाल के पूर्व भव में जन्म इसी क्षेत्र में माना है । यहाँ के कई शंख और दिगम्बर जैन लेख मिले हैं । कई वर्षों पूर्व बून्दी से

मांडलगढ़ और भीलवाडा आते समय मैं यहाँ ठहरा था तब कुछ लेख देखे थे उनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है:-

(i) वि० सं० १२२६ का प्रसिद्ध चौहान लेख :-

इस लेख का प्रकाशन एपिग्राफिया इंडिका में श्री अक्षय-कीर्ति व्यास के सम्पादन में हुआ है । मूल लेख में ३०

पत्तियां हैं। एवं ६३ श्लोक और कुछ गद्य भाग है। प्रारम्भ के २८ श्लोकों में चौहानों की वंशावली दी हुई है जो अधिकांशतः अन्य शिलालेखों से मिलती है। लेख में यह भी वर्णित है कि पार्श्वनाथ मन्दिर को मोराक्षरी गांव पृथ्वीभट द्वितीय ने दिया और सोमेश्वर ने रेवाणा गांव दिया। इसके बाद लोलाक श्रेष्ठ का वर्णन है।

(ii) दुसरा बड़ा लेख उन्नत शिखर पुराण का है। इसमें कुल २६४ श्लोक खुदे हुए थे। किन्तु अब एक शिला पर ३१ श्लोक हैं और दूसरी पर २७६ से २६४ तक मिलते हैं यह लेख वहाँ के स्थानीय अधिकारियों द्वारा ज्ञात हुआ था कि प्रकाशित हो चुका है। इसलिए इसकी पूरी नकल नहीं की जा सकी। इसके शुरू के ४ श्लोकों में स्तुति है। ५ श्लोक टूटा हुआ है। इसमें किसी नगर का वर्णन है [श्री मद्राज नृ.....नाम नगरं वसुधातले। प्रसिद्धम भवत् पुण्य वीतरतीति जनावृत्त ॥६॥] यहाँ के कई देवालयों का वर्णन भी मिलता है। “पूज्यंते परया भक्त्या सर्वसिद्धिप्रदो जिनः” कह कर स्थानीय क्षेत्र में प्रचलित जैन धर्म के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति का उल्लेख भी किया है। आगे के श्लोकों में जो चित्र खींचा गया है उसमें बड़ा अलंकारिक वर्णन है। दूसरी शिला में भगवान पार्श्वनाथ के सम्बन्ध में वर्णन है। अंत में इस प्रकार लिखा है “इति सिद्धेश्वर विरचित उन्नत शिखर पुराणे पंचमः सर्गः ॥ लिखापितं श्रीघ..... पुत्र लालाकेन लिखितं। संवत् विक्रमादित्यकाले द्वादशशत षड् विशाविक गते फाल्गुणवदि दशम्यां.....” पार्श्वनाथ मन्दिर का उक्त लेख वि० स० १२२६ फाल्गुण वदि ३ का है और यह लेख उससे ७ दिन बाद का ही है। यह लेख मुझे जहाँ तक जानकारी है अभी तक छपा नहीं है।

(iii) १४८३ फाल्गुण सुदि ३ का लेख भी छप गया है। इसमें १. सर्वश्री वसंतकीर्तिदेव २. विशाल कीर्तिदेव ३. शुभकीर्तिदेव ४. धर्मचन्द्रदेव ५. रत्नकीर्तिदेव ६. प्रभाचन्द्रदेव ७. पद्मनन्दिदेव ८. शुभचन्द्रदेव और कुछ साध्वियों के नाम हैं। इसमें कुल ५ श्लोक और कुछ गद्य भाग है।

(iv) सुरह लेख—यह लेख अब तक छपा नहीं है।

इसका मूल पाठ इस प्रकार पढ़ा जाता है :—

॥ई०॥ ऊ। अर्हद्भ्यो नमः। स्वायं भूवं चिदानंद स्वभावं शाश्वतोदयम्। घामध्वस्ततमस्तोमममेयं महिम स्तुमः ॥१॥ ध्रौव्योपेत मपि व्ययोदययुतं स्वात्मस्थमध्यात्मकं लोकव्यापि परं यदेकमपि चानेकं सूक्ष्म महत्, आनंदा-मृतपूरपूर्णमपियच्छन्त्य स्वसदेवनम् ज्ञानाद्गम्यमगम्यमप्यभिमतप्राप्त्यै स्तुवे ब्रह्मतत् ॥२॥ त्वकर्म सोमो वृत(भूत)जगती तलेऽस्मिन्धनान मूर्तिः किमुविश्वरूपः। स्रष्टा विशिष्टार्थ विभेददक्षः स पार्श्वनाथस्तनुताश्रिय वः ॥३॥ स पार्श्वनाथ क्रियतां श्रियं वो जगत्रयो वदित पादपद्मः। विलोकिता येन पदार्थसार्था निजे (न) सज्जान विलोचनेन ॥४॥ सद्वृत्ताः खलु यत्र लोक महिता मुक्ता भवन्तिश्रियोःरत्नानामपि भद्रये सुकृतिनो यं सर्वदोषासतेः सद्धर्ममृतपूरपुष्ट-सुमनाः स्याद्वाद्चन्द्रोदयाः काक्षीसोऽत्र सनातनो विजयते मूलसघोदधिः ॥५॥ श्रीगौत्तमस्वामिगणेशवशे श्री कुदकुदोहिमुनिर्बभूव पदेष्व नेकेषुगतेषुतस्माच्छ्री धर्मचंदो गणिषु प्रसिद्धः ॥ भवोद्भवपरिश्रमप्रशम केलिकौतूहली मुधाकरसमः सदाजयति य द्वचः प्रक्रमः। समेमुनिमतल्लिका विकचमल्लिका जित्वर प्रसूत्वर य सोभरो भवतु रत्नकीर्तिर्मुदे (ने) ७॥

यह पूरा लेख १५ पद्यों का है जिसमें भ० धर्मचन्द्र, भ० रत्नकीर्ति, प्रभाचन्द्र, पद्म नन्दि, शुभचन्द्र और शुभचन्द्र के शिष्य हेमकीर्ति का उल्लेख है। यह लेख स० १४६५ फाल्गुनसुदि २ बुधवार का उत्कीर्ण किया हुआ है। ऊपर जितना जल्दी में पढ़ा जा सका, दिया गया है। इसका पुनः पढ़ा जाना आवश्यक है।

इस लेख में मुनि पद्मनन्दि के शिष्य भ० शुभचन्द्र का उल्लेख है, संभवतः इन्हीं शुभचन्द्र द्वारा दीक्षित शिष्या आर्या लोकसिरि विनयश्री और शिक्षिका वाई चारित्रश्री तथा चारित्रश्री की शिक्षिणी वाई आगमश्री का भी नाम दिया है। लेख महत्त्वपूर्ण है।

इस प्रकार इस क्षेत्र में और भी कई लेख मिलते हैं। इनकी शोधयात्रा बहुत ही आवश्यक है। गत वर्ष जहाज-पुर में भी दिगम्बर जैन लेख देखे थे जिन्हें बीर बाणी में मैंने प्रकाशित कराये हैं। ●

अनेकान्त पत्र का इतिहास

पं० परमानन्द जैन शास्त्री

किसी भी सम्पन्न देश या समाज को, जो अपना उत्कर्ष एवं अभ्युदय चाहता है, उसे अपनी संस्कृति, सभ्यता और आचार-विचारों की परम्परा को सुदृढ़ बनाने, एवं उनका प्रचार प्रसार करने एवं ठोस साहित्य को प्रकट करने के लिए साहित्यिक तथा ऐतिहासिक तथ्यों को गवेषणा के साथ लोक में प्रकट करने वाले पत्रों की आवश्यकता होती है। जिस देश और समाज के अच्छे उच्च-स्तर के पत्र होंगे, वही देश अपनी संस्कृति का द्रुतगति से प्रचार करने में समर्थ हो सकते हैं। ठोस पत्रकारिता तथा साहित्य प्रकाशन और प्राचीन शिलालेख, सिक्के, ताम्रपत्र, प्रशस्तिर्पत्र एवं पुरातात्विक अवशेष और पुरातन कलात्मक वस्तुओं का प्रदर्शन आदि उसकी प्राचीनता एवं महत्ता के द्योतक हैं। इनसे ही देश-विदेशों में उसकी संस्कृति का प्रचार प्रसार एवं महत्व व्यापित हो सकता है। इन साधनों के अतिरिक्त अन्य कौन ऐसे सुलभ साधन हैं जो संस्कृति को ऊँचा उठा सकें। उसके अभ्युदय को लोक में प्रतिष्ठित कर सकें। आचार विचारों को ऊँचा उठाये बिना कोई भी देश या समाज अपनी उन्नति करने में समर्थ नहीं हो सकता।

जैन समाज को संगठित करने, एक सूत्र में बाँधने, और श्रमण संस्कृति की महत्ता को लोक में प्रकट करने के लिए बहुत दिनों से एक अच्छे साहित्यिक मासिक पत्र को निकालने की आवश्यकता प्रतीत हो रही थी। यद्यपि श्रद्धेय पं० नाथूरामजी प्रेमी बम्बई ने जैन हितैषी नामक मासिक पत्र निकाला था, उसमें साहित्यिक ऐतिहासिक, समीक्षात्मक लेख प्रकट होने लगे थे। किन्तु कुछ वर्षों के बाद वह बन्द हो गया। उसके बन्द हो जाने पर समाज में साहित्यिक और ऐतिहासिक पत्र की बड़ी आवश्यकता महसूस होने लगी, साथ में अनेक सैद्धान्तिक गुरिथियों को प्रामाणिकता के साथ सुलझाने की समस्या भी अपना उग्र-रूप धारण कर रही थी। इन्हीं दोनों समस्याओं को ध्यान

में रखते हुए समाज के प्रसिद्ध ऐतिहासिक वयोवृद्ध विद्वान स्व० पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार ने चैत्र शुक्ला त्रयोदशी सं० १९८६ ता० २१ अप्रैल सन् १९२९ को करौलबाग, दिल्ली में 'समन्तभद्राश्रम' नामक संस्था की स्थापना की। और इसी संस्था से उक्त सवत् के मार्गशिर महीने में 'अनेकान्त' नाम के मासिक पत्र का प्रथम अंक प्रकाशित किया। अनेकान्त पत्र का यह अंक सचित्र, सुन्दर और महत्वपूर्ण शोध-खोज के लेखों की साज-सज्जा से विभूषित है। इसे बतलाने की आवश्यकता नहीं। प्रथम वर्ष के सभी अंक भावा-भाव, महत्वपूर्ण लेख, कहानी और सुभाषितों आदि की दृष्टि से उच्चकोटि के हैं। मुख्तार सा० के सम्पादकीय लेख बड़े ही महत्वपूर्ण और खोजपूर्ण हैं। इससे उनकी लेखनी का सहज ही आभास मिल जाता है। प्रथम वर्ष की यह फाइल अप्राप्य है और जन साधारण के लिए अत्यन्त उपयोगी है, पाठकों को उसका मनन करना चाहिए।

खेद है कि अनेकान्त के प्रथम वर्ष की अन्तिम किरण प्रकाशित होने के साथ ही स्थान की कमी और अर्थ सकोच के कारण पत्र को बन्द करना पड़ा। और आफिस को सरसावा ले जाना पड़ा। सरसावा में स्व० मुख्तार सा० ने जमीन खरीद कर उस पर वीर सेवामन्दिर नाम का भवन बनवाया। सन् १९३६ में उसका उद्घाटन ब्रह्मचारी शीतल प्रसादजी के द्वारा हुआ और उसी में उक्त संस्था का कार्यालय स्थापित किया गया। शोध-खोज का कार्य भी वहीं सम्पन्न होने लगा। पुरातन जैन वाक्य-सूची और लक्षणावली के लिए लक्ष्य शब्द एवं उनके लक्षणों के संग्रह का कार्य भी होने लगा। इस तरह सरसावा साहित्यिक क्षेत्र बनने लगा।

सन् १९३९ में वीर शासन जयन्ती के अवसर पर ला० तनमुखराय जी—संचालक तिलक बीमा कम्पनी

दिल्ली अध्यक्ष होकर सरसावा आये, साथ में अयोध्या-प्रसाद जी गोयलीय भी थे। अनेकान्त के प्रकाशन की चर्चा होने पर उन्होंने उसके घाटे की स्वीकृति प्रदान की और अयोध्याप्रसाद जी गोयलीय उसके प्रकाशक रहे।

दूसरे और तीसरे वर्ष के दोनों प्रथमांक विशेषांक के रूप में प्रकाशित हुए। जिनमें अनेक लेख पठनीय और संग्रहणीय प्रकाशित हुए हैं। इन दोनों वर्षों की फाइले व फुटकर अंक सभी अप्राप्य हैं। पर जिन्होंने उनको पढ़ा है वे उसकी महत्ता से कभी इकार नहीं कर सकते। विशेषांकों में जो पठनीय सामग्री संकलित की गई है वह स्थायी और महत्व की है। जिन पाठकों ने उनका रसा-स्वादन किया है, वे उनकी गरिमा से परिचित हैं।

सन् १९४१ में अनेकान्त का प्रकाशन वीर सेवामन्दिर सरसावा से ही निश्चित हुआ। सम्पादक मुख्तार साहब और प्रकाशक मुझे बनाया गया। इस वर्ष का प्रथमांक विशेषांक के रूप में प्रकाशित हुआ, जिसके मुख पृष्ठ पर चित्रमय जैनी नीति को प्रकट किया गया। इस अंक में 'तत्त्वार्थसूत्र के बीजों की खोज' नाम का मेरा लेख भी प्रकाशित हुआ है जो बड़े परिश्रम से मैने डेढ़ महीने में तैयार किया था। और जिसे विद्वानों ने खूब पसन्द किया था। गोमटसार की जीवतत्त्वप्रदीपिका टीका और 'तमिल भाषा का जैन साहित्य' नामक लेख भी इसी अंक में दिये गये हैं, जो महत्वपूर्ण हैं। इस वर्ष के अंकों में राजमल्लका पिगल और राजाभारमल लेख प्रकाशित हुआ। अनेकान्त पत्र को आर्थिक संकट के कारण प्रकाशन में बड़ी अड़चने आईं, कागज का मिलना भी दुर्लभ हो गया, किन्तु जैसे-तैसे उसका प्रकाशन होता ही रहा।

उक्त वर्षों की भांति ५, ६, ७ और आठवें वर्ष के अनेकान्त के अंकों में पठनीय और संग्रहणीय सामग्री का प्रकाशन हुआ है। पउमचरिय का अन्तः परीक्षण, सर्वार्थ-सिद्धि पर समन्तभद्र का प्रभाव, पंडित प्रवर टोडरमल जी और उनकी रचनाएँ, क्या निर्युक्तिकार भद्रबाहु और स्वामी समन्वयभद्र एक हैं? नाग सन्न्यता की भारत की देन, जयपुर में एक महीना, शिवभूति, शिवार्य और शिवकुमार, श्रीचन्द नामके तीन विद्वान। शिस्तन्ना वासल केवलज्ञानकी विषय मर्यादा, तत्त्वार्थसूत्र का मंगला-

चरण महा कवि सिंह और प्रद्युम्नचरित, धर्मरत्नाकर और जयसेन नाम के आचार्य, अमृतचन्द्र सूरि का समय जैन सरस्वती। हरिवेणकृत अपभ्रंश धर्मपरीक्षा आदि महत्वपूर्ण लेखों का संकलन किया गया है। सातवें वर्ष के प्रकाशन में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा कागज की अप्राप्ति में न्यूजप्रिन्ट लगाना पड़ा। और उससे प्रकाशन में भी विलम्ब हुआ, और पेजों में भी कटौती करनी पड़ी। इन सबके होने पर भी पत्र को बराबर जीवित रखने का उपक्रम मुख्तार सा० ने किया है। आर्थिक संकोच तो अनेकान्त पत्र के जीवन में प्रारम्भ से ही रहा है। और प्रयत्न करने पर समाज से उसके घाटे की कुछ पूर्ति भी हुई है।

९वें वर्ष में अनेकान्त का प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ काशी की ओर से हुआ। और उसके सम्पादक मण्डल में मुख्तार साहब के अतिरिक्त मुनि कान्तिसागर जी, पं० दरबारीलाल जी कोठिया और अयोध्याप्रसाद जी गोयलीय का नाम शामिल किया गया। अन्य वर्षों की भांति इस वर्ष में भी अनेक लेख महत्व के प्रकाशित हुए। इस वर्ष के अन्तिम अंक में जो 'सिद्धसेनांक' नाम से प्रकाशित हुआ है, उसमें स्व० मुख्तार श्री जुगलकिशोर जी ने 'सम्मतिसूत्र और सिद्धसेन' के बारे में जो खोजपूर्ण अनेक महत्व के तथ्य प्रकाशित किये हैं, वे अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। और ऐतिहासिक विद्वानों के द्वारा विचारणीय हैं। उनका उत्तर आज तक भी विद्वानों के द्वारा नहीं हुआ है। उसी अंक में 'ब्रह्म श्रुतसागर का समय' शीर्षक लेख भी छपा है जिसमें ब्रह्मश्रुतसागर का समय निश्चित किया गया है। इसी वर्ष की दूसरी किरण में 'चतुर्थ वाग्भट और उनकी कृतियाँ' नाम का एक खोजपूर्ण लेख छपा है। और भी अनेक लेख महत्व की ज्ञातव्य सामग्री को प्रदान करते हैं।

१०वें वर्ष में अनेकान्त का प्रकाशन वीर सेवामन्दिर से ही हुआ। स्व० मुख्तार सा० के साथ पं० दरबारीलाल जी सहायक सम्पादक का कार्य करते थे। इस वर्ष में भी अनेक महत्व के लेख प्रकाशित हुए। इसी वर्ष के अंकों में हिन्दी भाषा के कवियों का परिचय भी दिया जाने लगा। पं० दीनतराम और उनकी रचनाएँ, शीर्षक लेख में जयपुर

के विद्वान् दौलतराम काशलीवाल का परिचय दिया गया है। महाकवि रङ्गू वाला लेख भी १०वीं किरण में दिया गया है।

११वें वर्ष में स्व० मुस्तार श्री जुगलकिशोर जी ही उसके सम्पादक रहे। इस वर्ष की सर्वप्रथम किरण 'सर्वोदय तीर्थाङ्क' के नाम से प्रकाशित हुई, जिसमें भगवान् महावीर के शासन सर्वोदय तीर्थ पर अनेक लेख लिखे गये जो महत्त्वपूर्ण हैं इसके मुख पृष्ठ पर सर्वोदय तीर्थका काल्पनिक सुन्दर चित्र दिया है। इसी में उदयगिरि खण्डगिरी का ऐतिहासिक परिचय वाला बाबू छोटेलाल जी कलकत्ता का सचित्र लेख भी प्रकाशित किया गया। इस वर्ष की ३री किरण में छहठाला के कर्ता कवि दौलतराम जी का परिचय दिया गया है। और चौथी-पाचवी किरण में आगरा के कवि दानतराय और भगवतीदास का भी परिचय दिया गया है। बुन्देलखण्ड के कवि देवीदास, हेमराजगोदी का और प्रबचन सार का पद्यानुवाद, फतेहपुर के मूर्तिलेख, मोहन-जोदड़ो की कला और जैन संस्कृति, महाराज खारवेल एक महान् निमति आदि अनेक खोजपूर्ण लेख प्रकाशित हुए हैं।

१२वें वर्ष में अनेकान्त के सम्पादक स्व० मुस्तार सा० ही रहे। इस वर्ष में भी अनेकान्त में महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रकाशित की गई है। हिन्दी कवियों में कविवर भूधरदास और उनकी विचारधारा पर ही लिखा गया, दशलक्षण धर्म पर अच्छे महत्त्व के लेख लिखे गये हैं। मूलाचार के सम्बन्ध में भी विचार किया गया है।

१३वें और १४वें वर्ष में अनेकान्त का प्रकाशन मासिक रूप में ही हुआ है। किन्तु सम्पादक मण्डल में स्व० मुस्तार सा० के अतिरिक्त तीन नाम और शामिल किये गये। बाबू छोटेलाल जी कलकत्ता, बा० जयभगवान् एड-वोकेट पानीपत और परमानन्द शास्त्री। इन दोनों वर्षों में अनेक महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित हुए। 'मद्रास और मयिला-पुर का जैन पुरातत्त्व' शीर्षक लेख बा० छोटेलाल जी का सचित्र प्रकाशित हुआ। दीवान् अमरचन्द, रामचन्द छाबड़ा, नागकुमारचरित और पं० धर्मधर, पं० जयचन्द और उनकी साहित्य सेवा। पं० दीपचन्द जी शाह और उनकी रचनाएँ, धारा और धारा के जैन विद्वान्, महापुराण

कलिका और कवि ठाकुर, भगवतीदास, रूपक काश्यप परम्परा, अपभ्रंश भाषा का जंबूस्वामीचरित और कवि वीर, कविवर ठकुरसी और उनकी कृतियाँ, पं० भागचन्द जी, जैन कथा के प्रतीक और प्रतीकवाद, समन्तभद्र के समय पर विचार आदि अनेक शोधपूर्ण लेख प्रकाशित हुए हैं। वर्ष ४ से १४वें वर्ष तक मैं अनेकान्त का प्रकाशक रहा और अन्तिम दो वर्षों में सम्पादक भी। इन वर्षों में अनेकान्त का सब कार्य मुझे ही करना पड़ता था। मुझसे जितनी भी सेवा बन पड़ी, उसे लगन के साथ की।

१४वें वर्ष के बाद आर्थिक सकोच के कारण अनेकान्त को ५ वर्ष के लिए बन्द करना पड़ा। इन वर्षों में साहित्य की शोध-खोज में शैथिल्य आ जाना स्वाभाविक ही था। बाबू छोटेलाल जी को उनके अनेक मित्रों ने बार-बार अनेकान्त के प्रकाशित करने के लिए प्रेरित किया। तब उन्होंने खूब सोच-विचार कर अनेकान्त के कुछ सहायक बना कर सन् १९६२ में अनेकान्त को द्वै मासिक रूप में प्रकाशित किया। सम्पादक मण्डल और प्रकाशक भी वही रूप में नियुक्त किये गये। डा० ए० एन० उपाध्ये, श्री रतनलाल कटारिया, डा० प्रेमसागर और यशपाल जैन। और प्रकाशक बाबू प्रेमचन्द जी बी० ए० कश्मीर वाले हैं। १७वें वर्ष में तीन ही सम्पादक रहे। १६वें वर्ष का छोटेलाल स्मृति अंक यशपाल जी और मैंने सम्पादित किया। इन सभी वर्षों के अनेकान्त का कार्य मुझे अकेले ही उठाना पड़ता है। २१वें वर्ष के जून के अंक से मेरा नाम भी सम्पादक मण्डल में जुड़ गया। २२वें वर्ष के दो अंक प्रकाशित हो चुके हैं। तीसरा-चौथा अंक छप रहा है इन सब वर्षों में अनेक ऐतिहासिक, साहित्यिक, दार्शनिक, विचारात्मक, समीक्षात्मक और पुरातत्त्व सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित हुए हैं। जिन सब का परिचय पाठकों को लेखसूची पर से ज्ञात होगा।

इस सब विवेचन पर से विज्ञ पाठक भली भाँति जान सकेंगे कि अनेकान्त पत्र जैन संस्कृति के लिए कितना ठोस और उपयोगी कार्य कर रहा है। उसकी सेवाएँ किसी तरह भी ओझल नहीं की जा सकती।

समाज के गण्यमान व्यक्तियों, विद्वानों, विज्ञ पाठकों,

रिसर्च स्कॉलरों, विश्व विद्यालयों, कालेजों, हायरसेकण्डरी स्कूलों और लायब्रेरियों में इसे मंगाकर अवश्य पढ़ना चाहिये। और श्रमण सस्कृति के अनुयायियों को आर्थिक सहयोग प्रदान कर अर्थ संकट से बचाना चाहिए।

आभार प्रदर्शन

अनेकान्त में अब तक जैन जैनेतर विद्वानों द्वारा लिखे गये शोधपूर्ण महत्व के लेख प्रकाशित किये गए हैं। जिनकी संख्या डेढ़ हजार से अधिक है और कविता, कहानी भी रचिपूर्ण दी गई है। हम उन सब विद्वानों के विशेष आभारी हैं। जिन्होंने लेख भेजकर हमारी सहायता की वीर सेवामन्दिर के विद्वानों द्वारा अधिकांश लेख लिखे गए हैं। अनेकान्त के लेखक विद्वानों में से कितने ही विद्वान दिवंगत हो चुके हैं। उनमें स्व० प० जुगल-किशोर जी मुख्तार, स्व० बा० सूरजभान जी वकील, स्व० डा० महेन्द्रकुमार जी न्यायाचार्य, स्व० पं० नाथूराम जी प्रेमी बम्बई, स्व. बा. जयभगवानजी एडवोकेट पानीपत, स्व. बा० छोटेलालजी कलकत्ता के नाम उल्लेखनीय हैं तथा न्या० पं० दरबारीलाल जी कोठिया, पं० ताराचन्द जी न्यायतीर्थ, परमानन्द शास्त्री, पं० हीरालाल सि० शास्त्री, पं० दीपचन्द जी पाण्ड्या और बालचन्द्र जी सिद्धान्त शास्त्री।

वीर सेवामन्दिर के इन विद्वानों के अतिरिक्त निम्न विद्वानों के नाम साभार उल्लेखित किये जाते हैं। डा० ए० एन० उपाध्ये कोल्हापुर, डा० हीरालाल जबलपुर, मुनि कान्तिसागर जी, अयोध्याप्रसाद जी गोयलीय, पं० मिलापचन्द जी कटारिया, पं० रतनलाल जी कटारिया, वंशोधर जी व्याकरणाचार्य बीना, पन्नालाल जी साहित्याचार्य, डा० प्रेमसागर जी, डा० दशरथ शर्मा एम० ए० डी० लिट्, प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी, एस० वी० गुप्ता, डा० वी० एन० शर्मा, कालिकाप्रसाद जी एम० ए० व्याकरणाचार्य, श्री काका कालेलकर जी, पं० बनारसीदास जी चतु-

र्वेदी, डा० विद्याधर जोहरापुरकर, डा० श्यामाचरण जी दीक्षित, पं० बेचरदास जी, पं० सुखलाल जी संघवी, स्व० डा० जायमवाल, स्व० डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, प्रो० पुष्कर शर्मा एम० ए०, स्व० बा० कामता प्रसाद जी, श्रीगोपाल वाकलीवाल एम० ए०, तेजसिंह जी गोड़ एम० ए० बी० एड, श्री रामवल्लभ सोमानी, प्रो० दुर्गाप्रसाद जी दीक्षित एम० ए०, डा० टी० एन० रामचन्द्रन. डा० प्रभाकर शास्त्री, डा० गंगाराम जी गर्ग, डा० सत्यरंजन वनर्जी, डा० ज्योतिप्रसादजी, डा० कमलचन्द जी सोगानी, मुनि श्री विद्यानन्द जी, पं० सुमेरचन्द जी दिवाकर, स्व० भगवत जैन, प्रो० उदयचन्दजी, क्षुल्लक सिद्धसागरजी, पं० कैलाशचन्द जी सि० शास्त्री, फूलचन्द जी सि० शास्त्री, डा० गोकुलचन्द जी, डा० नरेन्द्र भानावत, पं० के० भुज-बली शास्त्री, डा० नेमिचन्द शास्त्री, श्री नीरज जैन, डा० देवेन्द्रकुमार जी, बा० सलेकचन्द जी, डा० भागचन्द जी साहित्याचार्य, डा० कस्तूरचन्द जी कासलीवाल, स्व० पं० चैनसुखदास जी, डा० राजाराम जी, बाबू बालचन्द जी एम० ए०, अग्रचन्द जी नाहटा, भवरलाल जी नाहटा, पं० माणिकचन्द जी न्यायाचार्य, जबूरप्रसाद जी जैन, आनन्द प्रकाश जैन, डा० कैलाशचन्द जी, पं० अनूपचन्द जी न्यायतीर्थ, मुनि श्री नथमल जी, मुनि श्री नगराज जी, मुनि श्री महेन्द्रकुमार जी, द्वितीय, पं० गोपीलाल जी अमर एम० ए०, प्रो० भागचन्द जी, प्रो० प्रेम सुमन जी, डा० प्रद्युम्नकुमार जी, बा० माणिकचन्द जी, पं० कुन्दनलाल जी, डा० रवीन्द्रकुमार जैन, साध्वी श्री मंजुला, साध्वी श्री संघमित्रा, पं० नेमचन्द धन्नुसा जैन तथा कल्याणकुमार जी 'शशि' आदि।

इन लेखक विद्वानों की कृतियों से हम अनेकान्त को प्रकाशित कर सके हैं। इसके लिए हम उनके पुनः पुनः आभारी हैं। और आशा करते हैं कि इन सब विद्वानों का हमें पूर्ववत् सदा सहयोग मिलता रहेगा। ●

सुभाषित—नहि पराग नहि मधुर मधु, नहि विकास का काल।

अली-कली में बंधि रह्यो, आगे कौन बाल ॥

निपट अद्भुत समुझत नहीं, बुधजन वचन रसाल ॥

कबहुँ भेक नहि जानता, अमल-कमल वस वास ॥

अनेकान्त और श्री पं० परमानन्द जी शास्त्री

श्रीमती पुष्पलता जैन

अनेकान्त जैन शोध पत्रों में शायद प्राचीनतम पत्र है जिसने जैनधर्म, संस्कृति और साहित्य की अनुपलब्ध व अप्रकाशित विधाओं को उपलब्ध कर प्रकाशित करने का बीड़ा उठाया। इसका प्रकाशन स्व० पं० जुगल किशोरजी मुक्तार व स्व० बाबू छोटे लाल जी कलकत्ता के अमित सहयोग से सन् १९२९ में वीर सेवक सघ एवं समन्तभद्राश्रम की स्थापना हुई तथा अनेकान्त का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ महावीर जयन्ती (वीर ति० सं० २४५६) के शुभावसर पर।

जैनसमाज ने अनेकान्त जैसे निर्भीक शोध पत्र की आवश्यकता का अनुभव बहुत पहले से किया था परन्तु उसका समुचित पालन-पोषण नहीं किया जा सका। जैसा प्रायः देखा गया है, शोध पत्र का सम्पर्क सामान्य जन समाज से अधिक नहीं हो पाता और फलतः उसे अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इनमें मुख्य समस्या अर्थ व्यवस्था की है। अनेकान्त को अपने शिगुकाल से ही इस अर्थक्षीणता का शिकार होना पड़ा। प्रथम वर्ष में ही उसे लगभग १२५२ रुपये की हानि रही। इस हानि को देखकर 'प्रकाशन व्यय कम होगा' इस उद्देश्य से वीर सेवा सघ ने समन्तभद्राश्रम तथा अनेकान्त को सरसावा भेजने का निर्णय किया और ये दोनों संस्थाएँ मुक्तार सा० के साथ नवम्बर १९३० में सरसावा पहुँच गईं। परन्तु दुर्भाग्य से वहाँ भी अनेकान्त का प्रकाशन अवरुद्ध हो गया।

इस बीच मुक्तार सा० वीर-सेवा-मंदिर के भवन निर्माण में अपना पूरा समय देने लगे। फलतः द्वितीय वर्ष की प्रथम किरण के बाद अनेकान्त बन्द पड़ गया। स्व० बाबू छोटे लाल जी ने पूर्ण आर्थिक सहयोग देने का अवसान दिया फिर भी अनेकान्त का प्रकाशन नहीं किया जा सका। लाला तनसुखराय जी तथा अन्य महानुभावों ने भी आर्थिक सहायता दी। अर्थ व्यवस्था हो जाने पर एक

नवम्बर १९३८ से अनेकान्त का प्रकाशन पुनः प्रारम्भ हुआ। श्री पं० परमानन्द जी का सम्बन्ध भी अनेकान्त से इसी समय हुआ।

लगभग इसी वर्ष तक अनेकान्त किसी तरह अपनी गाड़ी खींचता रहा पर सन् १९४७ में फिर उसकी कमर टूटी। सन् १९४८ में भारतीय ज्ञान पीठ, काशी ने उसे अपने हाथ में लिया और घाटे के साथ एक वर्ष तक चलाता रहा। ज्ञानपीठ इस घाटे को बहत करने के लिए तैयार नहीं हुआ और अनेकान्त पुनः समन्त भद्राश्रम (वीर सेवा मंदिर) के पास वापिस आ गया। जुलाई १९४९ में देहली से उसका प्रकाशन हुआ और सात मास तक किसी तरह उसका प्रकाशन चलता ही रहा। यहाँ भी घाटे की पूर्ति नहीं की जा सकी। पत्र के दसवें वर्ष के अन्त में मुक्तार सा० को विवश होकर पुनः पत्र को बन्द कर देना पड़ा। लगभग ढाई हजार का घाटा था।

अक्टूबर १९५१ में फिर अनेकान्त का भाग्योदय हुआ। मुक्तार सा० कलकत्ता पहुँचे। वहाँ छोटे लाल जी वा० नन्दलाल जी सरावगी के सहयोग से अनेकान्त में स्थायित्व लाने की योजना बनाई गई। संरक्षक व सहायक सदस्य बनाये गए। एतदर्थ प्राप्त आर्थिक सहायता से सर्वोदय तीर्थांक के साथ अनेकान्त के ग्यारहवें वर्ष की प्रथम किरण मार्च, १९५२ में डेढ़ वर्ष बाद पुनः प्रकाशित हुई। इसी में मुक्तार सा० ने वीरसेवामंदिर ट्रस्ट, की स्थापना की। इसके उद्देश्य निम्नलिखित निर्धारित किए गए—

(क)—जैन संस्कृति और उसके साहित्य तथा इतिहास से सम्बन्ध रखने वाले विभिन्न ग्रंथों शिलालेखों, प्रशस्तियों, उल्लेख वाक्यों, सिक्कों, मूर्तियों, स्थापत्य, और चित्रकला के नमूनों आदि सामग्री का लायब्रेरी व म्यूजियम आदि के रूप में अच्छा संग्रह करना और दूसरे ग्रंथों की

भी ऐसी लायब्रेरी प्रस्तुत करना जो धर्मादि विषयक खोज के कामों में अच्छी मदद दे सके।

(ख) — उक्त सामग्री पर से अनुसन्धान कार्य चलाना और लुप्तप्राय प्राचीन जैन-साहित्य, इतिहास व तत्वज्ञान का उसके द्वारा पता लगाना और जैन-संस्कृति को उसके असली तथा मूल रूप में खोज निकालना।

(ग) — अनुसन्धान व खोज के आधार पर नये मौलिक साहित्य का और लोकहित की दृष्टि से उसे प्रकाशित कराना; जैसे जैन-संस्कृति का इतिहास, जैनधर्म का इतिहास, जैन साहित्य का इतिहास, भगवान महावीर का इतिहास, प्रधान-प्रधान जेनाचार्यों का इतिहास जातिगोत्रों का इतिहास, ऐतिहासिक जैन व्यक्ति कोष जैन-लक्षणावली जैन-पारिभाषिक शब्द-कोष जैन ग्रन्थों की सूची, जैन-मंदिर भूतियों की सूची और किसी तत्व का नई शैली से विवेचन या रहस्यादि तैयार कराकर प्रकाशित कराना।

(घ) उपयोगी प्राचीन जैन-ग्रन्थों तथा महत्व के नवीन ग्रन्थों एवं लेखों का भी विभिन्न देशी-विदेशी भाषाओं में नई-शैली से अनुवाद तथा सम्पादन कराकर अथवा मूल रूप में ही प्रकाशित कराना। प्रशस्तियों और शिलालेखों आदि के संग्रह भी पृथक् रूप से सानुवाद तथा बिना अनुवाद के ही प्रकाशित करना।

(ङ) जैन संस्कृति के प्रचार और पब्लिक के आचार-विचार को ऊँचा उठाने के लिए योग्य-व्यवस्था करना, वर्तमान में प्रकाशित अनेकान्त पत्र को चालू रखकर उसे और उन्नत लोकप्रिय बनाना। साथ ही, सार्वजनिक उपयोगी पेम्पलेट व ट्रैवट (लघु पत्र पुस्तिकाये) प्रकाशित करना और प्रचारक घुमाना।

(च) जैन-साहित्य इतिहास और संस्कृति की सेवा तथा तत्वसम्बन्धी अनुसन्धान व नई पद्धति से ग्रन्थ-निर्माण के कार्यों में दिलचस्पी पैदा करना और आवश्यकता शिक्षण (ट्रेनिंग) दिलाने के लिए योग्य विद्वानों को स्कालरशिप (वृत्तियाँ, बजीफे) देना।

(छ) योग्य विद्वानों को उनकी साहित्यिक सेवाओं तथा इतिहास आदि विषयक विशिष्ट खोजों के लिए पुरस्कार या उपहार देना। और जो सज्जन निःस्वार्थ

भाव से अपने को जैन-धर्म तथा समाज की सेवा के लिए अर्पण कर दें, उनके भोजनादि खर्च में सहायता पहुँचाना।

(ज) कर्मयोगी जैन-मण्डल अथवा वीर समन्तभद्र गुरुकुल की स्थापना करके उसे चलाना।

इस ट्रस्ट और वीरसेवामन्दिर के ये उद्देश्य और ध्येय ट्रस्टनामा में लिखित उद्देश्यों और ध्येयों का शब्दशः उल्लेखन है। ये उद्देश्य सभी जैनधर्म तथा तदाम्यनाय की उन्नति एवं पुष्टि के द्वारा लोक की यथार्थ सेवा के निमित्त निर्धारित किए गए हैं। इस ट्रस्ट में स्वर्गीय मुस्तार सा० की लगभग सभी सम्पत्ति का ट्रस्टनामा कर दिया गया है। इसका मुख्य उद्देश्य वीर-सेवा-मन्दिर का संरक्षक व सम्बर्द्धन करना रहा है।

ट्रस्ट बन जानेके वावजूद अनेकान्त घाटेकी अर्थ व्यवस्था से नहीं बच सका। कलकत्ता से प्राप्त ६५६६ रुपये की सहायता से तीन वर्ष (दस से बारहवें तक) का घाटा पूरा किया जा सका फिर भी ८७१ रुपये का घाटा बना रहा। धीव्य फण्ड समाप्त हो जाने के कारण अनेकान्त को और भी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। तेरहवें वर्ष में १४६२ रुपये तथा चौदहवें वर्ष में ५५०० रुपये का घाटा रहा। अतः मुस्तार सा० ने एक बार पुनः अनेकान्त में स्थायित्व लाने का प्रयत्न किया। तदर्थ उन्होंने वीर सेवा मन्दिर, दिल्ली की पैसा फण्ड गोलक योजना बनाई। यह योजना अनेकान्त वर्ष १४ किरण ६ जनवरी, १९५७ में प्रकाशित हुई। परन्तु यह योजना भी सफल नहीं हो सकी। फलतः जुलाई, १९५७ से अनेकान्त को पुनः बन्द कर देना पड़ा। इस प्रकार अनेकान्त ने अपने चौदह वर्ष का कार्यकाल अट्ठाईस वर्ष में पूर्ण किया। इन वर्षों में श्री पं० परमानन्द जी प्रकाशक व सम्पादक के रूप में अपनी सेवाएँ देते रहे हैं।

इसके बाद अनेकान्त का पन्द्रहवाँ वर्ष अप्रैल, १९६२ से प्रारम्भ हुआ। इसी समय से पत्र को मासिक न रखकर द्विमासिक बना दिया गया। अभी तक सम्पादक मण्डल में श्री डा० आ० ने० उपाध्ये, श्री रतन लाल कटारिया, डा० प्रेम सागर व श्री यशपाल को रखा गया। कुछ समय बाद श्री रतनलाल कटारिया सम्पादक मण्डल से पृथक् हो गए। १९६५ में सम्पादक मण्डल में श्री पं०

परमानन्द जी को भी सम्मिलित कर लिया गया। वस्तुतः प्रारम्भ से ही परमानन्द जी प्रकाशन व सम्पादन का समूचा भार वहन करते रहे हैं। आज भी उन्हें इस कार्य में और कोई दूसरा विद्वान सहयोग नहीं देता। यथार्थ में वे अनेकान्त के लिए प्राण हैं। उनके बिना अनेकान्त में प्राण प्रतिष्ठा बनी रहने की न सम्भावना पहले थी और न आज भी है। इस वृद्धावस्था में भी वे कुशल शिल्पी की भांति साहित्य सृजन करते हुए भी अनेकान्त के सम्पादन व प्रकाशन में जुटे हुए हैं।

विद्वज्जगत परमानन्द जी की सूक्ष्मेक्षिका से भली-भांति परिचित है। उन्होंने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिन्दी के अनेक आचार्यों का काल निर्धारण किया एवं उनके कृतित्व व व्यक्तित्व पर असाधारण रूप में शोध-खोजकर प्रथमतः प्रकाश डाला। इतिहास, संस्कृति और भाषा पर उनका अधिकार है। अनेक शिलालेखों का सम्पादन कर उन क्षेत्रों की ऐतिहासिकता आदि पर पूर्ण विचार किया है। महाकवि रङ्गू व कवि वीर के कृतित्व व व्यक्तित्व पर सर्वप्रथम शास्त्री जी ने ही लेखनी चलायी। उसके बाद तो इन विषयों पर विद्वानों ने प्रबन्ध लिखकर PH. D. आदि उपाधियां भी लीं। जैन रासा साहित्य, अग्रवालों का जैन संस्कृति में योगदान, आदि लेख भी महत्वपूर्ण हैं। वस्तुतः परमानन्द जी का प्रत्येक लेख नई दृष्टि और नई सूझबूझ को लिए हुए रहता है। तन, मन, धन वे से साहित्य सृजन करने में जुटे हुए हैं। अनेक ग्रन्थागारों को देखकर उन्हें व्यवस्थित करना तथा नये ग्रन्थों और ग्रन्थकारों पर निबन्ध लिखना उनका लक्ष्य बन चुका है।

अनेकान्त में अभी तक, अनेक ग्रन्थों के लेखन, सम्पादन समालोचन व अनुवादन के अतिरिक्त, उनके द्वारा लिखित कुछ खास निबन्धों की एक तालिका दी जाती है। जो निबन्ध प्रकाशित हुए हैं।

कुछ प्रमुख लेखों की सूची

धारा और धाराके जैन विद्वान वर्ष १३, ११-१२ पृ. २८
हूमड या हुंभड वंश और उसके महत्वपूर्ण कार्य १३-५-१२३
कविवर ठकुरसी और उनकी रचनाएं १४-१ पृ. १०
कसाय पाहुड और गुणधराचार्य वर्ष १४-१ पृ. ८
रूपक काव्य परम्परा वर्ष १४ कि. ६ पृ. २५६

अपभ्रंश भाषाका जंबूस्वामीचरित और कविबीर १३-
द्रव्यसंग्रहके कर्ता और टीकाकारके संबंध में विचार १६
मध्यभारत का जैन पुरातत्त्व १६-१-२-५४

क्या द्रव्यसंग्रहके कर्ता व टीकाकार समकालीन नहीं हैं ?
श्रमण संस्कृति के उद्भावक ऋषभदेव १६, १-२, २७३
अग्रवालोंका जैन संस्कृतिमें योगदान वर्ष २०, ३, ६८, २०,
४, १७७, २०, ५, २३३, २१, वर्ष २१ १, ४६, २,
६१, ४, पृ. १८५

ग्वालियर के तोमर राजवंश में जैनधर्म २, १-३३

भ० विनयचन्द के समय पर विचार २०, १, ३०

ब्रह्म जीवंधर और उनकी रचनाएं १७, ३, पृ. २४

कवि वल्ह या वूचिराज वर्ष १६ कि. ६, २५३

ब्रह्म नेमिदत्त और उनकी रचनाएं १८, २, ८२

भगवान् पार्वनाथ वर्ष १८ कि. ६ पृ. २६६

हेमराज नाम के दो विद्वान वर्ष १८ कि. पृ. १३५

चित्तौड़ का दिगम्बर जैन कीर्तिस्तम्भ २१, ४, १७६

छोहल २१-३-१२६

सीया चरित एक अध्ययन २१, ३, १३७

जैन समाज की कुछ उपजातियाँ २२-२-५०

ग्वालियर के काष्ठासंघी भट्टारक २२-२-६४

रासासाहित्य एक अध्ययन

शुभकीर्ति और शान्तिनाथ चरित्र २१, २, ६०

अयोध्या एक प्राचीन ऐतिहासिक नगर १७, २, ७८

कविवर दानतराय ११, ४-५

अमरचन्द्र दीवान १३, ८, पृ. १६८

अतिशयक्षेत्र चन्द्रवाड़ वर्ष ८-६, ३४५

कविवर भूधरदास और उनकी विचारधारा

श्वेताम्बर कर्म साहित्य और दि० पंच संग्रह ३-६-३७८

राजा हरसुखराय १५-१ पृ. ११

पउमचरिय का अन्तः परीक्षण ५-१-३८

अर्थप्रकाशिका और प० सदासुख जी ३, ८-६-५१४

सिद्धसेनके सामने सर्वार्थसिद्धि और राजवातिक ३-११-६२६

तत्त्वार्थसूत्र के बीजों की खोज वर्ष ४ कि. १ पृ. ६२३

जयपुर में एक महीना ६, १०-११, ३७२

शिवमूर्ति, शिवार्य और शिवकुमार ७, १, १७

सुलोचना चरित और देवसेन ७, ११-१२, पृ. १५६

श्रीचन्द नाम के तीन विद्वान ७, ६-१०, पृ. १०७
 रामचन्द्र छावड़ा वर्ष १३-१०-२५६
 भगवती आराधना और शिवकोटि २-६-३७१
 अपराजित सूरि और विजयोदया वर्ष २ कि. ६ पृ. ३७१
 अपभ्रंश भाषा का जैनकथा साहित्य ८, ६/७, २७३
 दिल्ली और दिल्ली की राजावली ८, २, ७१
 धर्मरत्नाकर और जयसेन नाम के आचार्य ८-२००
 महाकवि सिंह और प्रद्युम्न चरित ८, १०/११ पृ. ३८६
 श्रीधर और त्रिबुध श्रीधर नाम के विद्वान ८, १२, ४६२
 चतुर्थ वाग्भट और उनकी कृतियाँ वर्ष ६, कि. २, पृ. ७७
 ब्रह्म श्रुतसागर का समय और साहित्य ६, ११/१२, ४७४
 अपभ्रंश भाषा के दो महाकाव्य और नयनन्दी १०-३१३
 ग्वालियर किले का इतिहास और जैन पुरातत्व १०, ३, १०१
 पं० दीलतराम और उनकी रचनाएँ १०-१-६
 आचार्य कल्प पं० टोडरमल जी ६, १, २५
 पांडेरूपचन्द और उनका साहित्य १०, २, ७५
 महाकवि रङ्गू १०, १०, ३७७, ११, ७/८, २६५
 कविवर पं० दीलतरामजी ११, ३, २५२
 भगवान महावीर और उनका सर्वोदयतीर्थ ११, १, ५५
 आदिनाथ मन्दिर और कुव्वतुल इस्लाम मस्जिद, नवभारत
 विजोलिया के शिलालेख ११, ११-३५६
 नागकुमार चरित और कवि धर्मधर १३-६-२२७
 पं० दीपचन्द शाह और उनकी रचनाएँ १३, कि. ४, १३
 पं० जयचन्द और उनकी साहित्य-सेवा १३-१६६
 अहिंसातत्व वर्ष १३, कि. ३, पृ. ६०
 कविवर भगवतीदास वर्ष १४, ८, २२७

इस प्रकार अनेकान्त ने जैन साहित्य और सस्कृत की अभूतपूर्व सेवा की है। जुलाई, १९५४ के अंत में वीर-सेवामन्दिर की सेवाओं का उल्लेख किया गया है, जो इस प्रकार है—

१. वीर शासन जयन्ती जैसे पावन-पर्व का उद्धार और प्रचार।

२. स्वामी समन्तभद्र के एक अश्रुत-पूर्व अपूर्व-परिचय-पद्य की नवीन खोज।

३. लुप्तप्राय जैन साहित्य की खोज में सस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश और हिन्दी के लगभग दो सौ ग्रन्थों का अनुसन्धान तथा परिचय प्रदान। दूसरे भी कितने ही ग्रन्थों तथा ग्रन्थ-कारों का परिचय लेखन।

४. श्रीपात्र केसरी और विद्यानन्द को एक समझने की भारी भूल का सप्रमाण निरसन।

५. गोम्मटसार की त्रुटि पूर्ति, रत्नकरण्ड का कर्तृत्व और तिलोपपण्णत्ती की प्राचीनता विषयक विवादों का प्रबल युक्तियों द्वारा शान्तिकरण।

६. दिल्ली के तोमरवंशी तृतीय अनंगपाल की खोज, जिससे इतिहास की कितनी ही भूल-भ्रान्तियाँ दूर हो जाती हैं।

७. गहरे अनुसन्धान द्वारा यह प्रमाणित किया जाना कि सन्मत्तिसूत्र के कर्ता आचार्य सिद्धसेन दिगंबर थे तथा सन्मत्ति सूत्र न्यायावतार और द्वात्रिंशिकाओं के कर्ता एक ही सिद्धसेन नहीं, तीन या तीन से अधिक हैं। साथ ही उपलब्ध २१ द्वात्रिंशिकाओं के कर्ता भी एक ही सिद्धसेन नहीं हैं।

८. इतिहास की दूसरी सैकड़ों बातों का उद्घाटन और समयादि विषयक अनेक उलझी हुई गुत्थियों का सुलझाया जाना।

९. लाकोपयोगी महत्व के नवसाहित्य का सृजन और प्रकाशन जिसमें सोलह ग्रंथों की खोजपूर्ण प्रस्तावनाएँ, २० ग्रंथों का हिन्दी अनुवाद और लगभग तीन सौ लेखों का लिखा जाना भी शामिल है।

१०. अनेकान्त मासिक द्वारा जनतामें विवेकको जाग्रत करके उसके आचार-विचारको ऊँचा उठाने का सत्प्रयत्न।

११. धवल, जयधवल, और महाधवल (महाबन्ध) जैसे प्राचीन सिद्धान्त-ग्रंथों की ताड़पत्रीय प्रतियों का—जो मूडवद्री के जैन-मन्दिर में सात तालों के भीतर बन्द रहती थी—फोटो लिया जाना और जीर्णोद्धार के लिए, उनके दिल्ली बुलाने का आयोजन करके सबके लिए दर्शनादि का मार्ग सुलभ करना।

१२. जैन लक्षणावली (लक्षणात्मक जैन पारिभाषिक शब्दकोष), जैन-ग्रंथों की वृहत् सूची और समन्तभद्र भारती कीषादि के निर्माण का समारंभ। साथ ही पुरातन जैन वाक्य सूची आदि २१ ग्रंथों का प्रकाशन।

१९५४ के बाद अब तक अनेकान्त और वीर सेवा मन्दिर द्वारा उक्त उद्देश्यों की पूर्ति में और भी विशिष्टता आई है। इसमें श्री पं० परमानन्द जी शास्त्री का सहयोग प्रशंसनीय और साधुवादार्ह रहा है। ●

“अनेकान्त” एक आदर्श पत्र

पं० मिलापचन्द्र रतनलाल जैन कटारिया

वीर-सेवा-मन्दिर—समन्तभद्राश्रम का मुखपत्र—
“अनेकान्त” इतिहासादि विषयक अनुसंधानात्मक ख्याति प्राप्त एक आदर्श पत्र है। इसमें समाज के अनेक विद्वानों और त्यागियों के विविध विषयक खोज पूर्ण लेख हैं जैनतर विद्वानों के भी विशिष्ट उपयोगी लेख हैं जो अब तक १॥ हजार से ऊपर पहुँच गये हैं।

इस पत्र के सस्थापक—प्रवर्तक स्व० पंडितवर्य जुगल किशोर जी मुस्तार सरसावा निवासी थे वे ही इसके प्रमुख सम्पादक थे उनके सैकड़ों खोजपूर्ण लेखों ने और उनकी प्रतिभापूर्ण गहन सम्पादन कला ने इसको उच्च-कोटि का पत्र बना दिया था। मुस्तार सा० पुत्र विहीन थे किन्तु यह उनका वास्तविक आत्मज-पुत्र था एक पुत्र की तरह ही उन्होंने इसका लालन-पालन किया था। पत्र के नाम [अनेकान्त] के अनुरूप निम्नांकित श्लोक M TTO में से कोई भी प्रत्येक अंक के प्रारम्भ में दिए जाते आ रहे हैं।

१—परमागमस्य बीज निपिद्वजात्यधसिधुरविधान ।
सकलनयविलसिताना विरांचमथत नमाम्यनेकात्म ॥
—पुरुषार्थ मिदधुपाय (अमृतचन्द्रसूरि)

२—नीतिविरोधध्वसी, लोकव्यवहारवर्तकः सम्यक् ।
परमागमस्य बीजं, भुवनेकगुरुजत्यनेकात्मः ॥

३—एकेनांकर्षन्ती, श्लथयन्ती वस्तुत्वमितरेण ।

अन्तेन जयति जैनी, नीतिर्मथाननेत्रमिव गोपी ॥

—पुरुषार्थ सिदधुपाय

४—विधेय वार्य चानुभयमुभय मिश्रमपि तद्,
विशेषैःप्रत्येक नियम विषयश्चापरिमितः ।
सदान्योन्यापेक्षैः सकलभुवनज्येष्ठ गुरुणा,
त्वया गीत तत्त्व बहुनयविवक्षेतरवशात् ॥

—(स्वयम्भू स्तोत्र)

५—सर्वान्त-वत्तद्गुणमुख्यकल्प,
सर्वन्ति शून्यं च मिथोऽनपेक्ष ।

सर्वपिदामन्तकरं निरन्त सर्वोदयं तीर्थमिदं तवेव ॥

(युक्त्यनुशासन)

(इनमें से तीसरे चौथे श्लोक मुख पृष्ठ पर के “जैनीनीति” कल्पनात्मक चित्र के लिए तथा पाचवा श्लोक मुख पृष्ठ पर के “सर्वोदय तीर्थ” कल्पनात्मक चित्र के लिए प्रयुक्त किए जाते रहे हैं)

“अनेकान्त” विक्रम सम्बत् १९८६ के मगसर मास में दिल्ली से प्रकट हुआ था इस वक्त विक्रम सं० २०२६ में उसे ४० वर्ष हों गये हैं किन्तु इस समय उसका २२ वां वर्ष चल रहा है इस हिमाव से यह १८ वर्ष बीच-बीच में बन्द रहा है नीचे २२ वर्षों का विवरण प्रस्तुत किया जाता है :—

वर्ष	अंक	प्रारम्भ काल	मूल्य	कुलपृष्ठ	सम्पादक	विशेष
१	१२ मासिक	वि० सं० १९८६ मगशिर	४)	६७२	प० जुगलकिशोरजी मुस्तार	मुखपृष्ठ पर ३० आरोंका अनेकान्तात्मक चक्र-चित्र
२	”	वि० सं० १९८५ २॥)	”	६८८	”	संचालक—तनसुखरायजी, दिल्ली
३	”	” १९८६ ३)	”	७६४	”	प्रथम अंक वीरशासनार्क
४	”	फागुण १९८७	”	६३२	”	मुखपृष्ठ पर “जैनी नीति” चित्र
५	”	” १९८८	”	४२६	”	”
६	”	भाद्र पद २०००	४)	३८६	”	किरण ५-६ मुस्तार सम्मान अंक
७	”	ताष २००१	”	२२८	”	”
८	”	पौष २००२	”	४७२	”	”

वर्ष	अंक	प्रारम्भ काल	मूल्य	कुल पृ.	सम्पादक	विशेष
६	१२ मासिक	ज्येष्ठ २००४	५)	४६०	मुख्तार सा०, मुनि कांतिसागर जी दरवारीलालजी, अयोध्या प्रसाद जी	संचालक भारतीय ज्ञानपीठ काशी कि० ११-१२ सन्मति सिद्धसेनांक
१०	"	फागुण २००६	"	४६०	सिर्फ जुगलकिशोर जी मुख्तार	वीर सेवामन्दिर, दिल्ली से
११	"	ज्येष्ठ २००८	"	४२४	"	कि० १ सर्वोदयतीर्थांक कि० ७ से अहिंसा मन्दिर, दिल्ली
१२	"	श्रावण २०१०	"	३८६	" किरण १० से बाबू छोटेलाल जी, जयभगवान जी, डी. एस. जैतली, परमानन्दजी	किरण १० से मूल्य ६)
१३	"	" २०११	६)	३२२	जैतली सा. को छोड़कर पूर्वोक्त ४	मुखपृष्ठ सादे
१४	"	चैत्र २०१३	"	३६२	"	"
१५	द्वै मासिक ६ अंक	" २०१६	"	३६०	ए. एन. उपाध्ये, रतनलाल कटारिया, डा. प्रेमसागर, यशपाल जैन	समन्तभद्राश्रम (वीरसेवामन्दिर) मुखपृष्ठ पर "हाथी और ६ जन्मांध" चित्र
१६	"	" २०२०	"	३६०	जून अंक से रतनलाल को छोड़कर बाकी ३ उपरोक्त	प्रत्येक अंक पर अलग-अलग प्राचीन मूर्ति-चित्र
१७	"	" २०२१	"	३६०	"	"
१८	"	" २०२२	"	३६०	"	"
१९	"	" २०२३	"	३८२	"	प्रथम अंक बाबू छोटेलाल जैन स्मृति अंक
२०	"	" २०२४	"	३६०	"	"
२१	"	" २०२५	"	३६०	" जून अंक से परमानन्द जी शास्त्री भी इस तरह कुल ४	अंतिम अंक—युगवीर स्मृति अंक
२२	"	" २०२६	"	४६०	"	"

इस तरह २२ वर्षों के सब अंकों की कुल पृष्ठ संख्या ६ हजार से ऊपर है इनमें ज्ञान की अतुल निधि संग्रहीत है जिसे एक तरह से "जैन विश्व कोष" कहना चाहिए। कुछ अंकों में मन्दिर मूर्ति सम्बन्धी प्राचीन महत्वपूर्ण चित्र भी संकलित किए गए हैं।

चैत्र २०१६ से चैत्र २०२० तक हम भी इसके संपादक मण्डल में रहे हैं। अनेकान्त में अब तक हमारे भी निम्नांकित ११ लेख प्रकाशित हुए हैं :—

वर्ष	अंक	समय	लेख का शीर्षक
१२	६	नवंबर १९६६	वसुनदि श्रावकाचार का सशोधन
१५	१	अप्रैल ६२	रात्रिभोजनत्यागः छठा अणुव्रत
१५	१	"	जयसेन प्रतिष्ठापाठ की प्रति-ठा विधि का अशुद्ध प्रचार
१५	२	जून ६२	'दर्शन' का अर्थ मिलना

वर्ष	अंक	समय	लेख का शीर्षक
१५	३	अगस्त ६२	मंगलोत्तम शरण पाठ
१८	२	जून ६५	क्षपणासार के कर्ता माधव-चन्द्र
१९	१	अप्रैल ६६	ज्ञानतपस्वी गुणिजनानु रागी बाबू सा.
१९	१	"	चातुर्मास योग
२०	२	जून ६७	राजाश्रेणिक या बिम्बसार
२१	१	अप्रैल ६८	प्रतिष्ठा तिलक के कर्ता नेमिचन्द्र का समय
२१	६	फरवरी ६८	सरस्वती पुत्र मुख्तार सा०

‘अनेकान्त’ पत्र से अनेकों ने अपने ज्ञान का संवर्द्धन और परिमार्जन किया है बहुतों ने लेख लिखना और सहा-दन करना तक सीखा है ।

यह समाज का ठोस और निर्भीक पत्र है फिर भी इसकी ग्राहक संख्या कम है इससे इसकी महत्ता कम नहीं समझनी चाहिए, क्योंकि रत्नों के खरीददार और पारखी अत्यल्प होते हैं ।

इसमें भरती के लेख नहीं दिए जाते किन्तु शुद्ध इति-हास और शुद्ध सिद्धान्त आदि विषयक लेख ही दिए जाते हैं व्यर्थ के विवाद और विसवादी से यथाशक्य दूर रहकर समाज को उचित मार्ग दर्शन किया जाता है ।

रूढ़िवादिता और चाटुकारता से दूर रहकर पत्र ने सदा अपनी नीति निर्भीक और उदार रखी है । मुख्तार सा० और बाबू छोटेलाल जी सा० के स्वर्गवास हो जाने के बाद भी पं० परमानन्द जी शास्त्री ने पत्र स्तर को नहीं गिरने दिया है बल्कि पर्याप्त परिश्रम के साथ इसके गौरव को अक्षुण्ण रखा है और बराबर पत्र को निकाल रहे हैं । प्रत्येक अंक में शास्त्री जी का कम से कम एक लेख अवश्य रहता है यह बड़ी खुशी की बात है । अगर पत्र के अन्य

कंचन निजगुण नहीं तर्ज, बान हीन के होत ।

घट घट अंतर आतमा सहज स्वभाव उद्योत ॥१७

पन्ना पीट पकाइये, शुद्ध कनक ज्यों होय ।

त्यों प्रगट परमात्मा, पुण्य-पाप-मल खोय ॥

—बनारसीदास

तीन सम्पादक विद्वान् भी इसी तरह प्रत्येक अंक में अपना कम से कम एक लेख अवश्य देते रहें तो लेख जुटाने में विशेष परिश्रम नहीं उठाना पड़े और अंक भी बिल्कुल ठीक समय पर निकल जाये । हम तो उस मुद्दिन की प्रतीक्षा में हैं । जब कि पत्र द्वैमसिक से पुनः मासिक हो जाय ।

‘अनेकान्त’ की फाइलें बहुत ही महत्वपूर्ण हैं । अनु-संधान-प्रेमी विद्वान् इन फाइलों का उपयोग करते रहते हैं और अपने निबंधों एवं ग्रंथों में यत्र तत्र प्रमाण रूप में इनका उल्लेख भी करते रहते हैं इससे इनकी उपयोगिता प्रामाणिकता और लोकप्रियता का संकेत मिलता है ।

हर संस्कृत विद्वान को ये फाइलें रखना बहुत ही आवश्यक हैं जो भी फाइले उपलब्ध हो उन्हें अवश्य मंगा लेना चाहिए अन्यथा शुरू के कुछ वर्षों की तरह आगे की भी फाइले मिलना मुश्किल हो जायेगा ।

प्रत्येक विद्वान्, स्कालर, ग्रेजुएट, सरस्वती भवन, मन्दिर आदि को पत्र का ग्राहक हो जाना चाहिए इससे पत्र को सहयोग मिलकर वह समुन्नत बनेगा तथा पाठकों की और भी सेवा कर सकेगा इस तरह परस्पर लाभ ही होगा ।

इसमें संस्कृतादि भाषाओं के संकड़ों, प्राचीन, विविध, सुन्दर स्तोत्र भी प्रकाशित होते रहे हैं अगर कोई महानु-भाव “अनेकान्त” की फाइलों से उन्हें सकलित कर अलग पुस्तक रूप में छपाये तो एक नवीन स्तोत्र संग्रह उपयोग में आ सकता है ।

अनेकान्त में विद्वद्भोग्य खोजपूर्ण सामग्री के अलावा जनसाधारण के लिए भी अनेक पौराणिक कथाएँ, उद्बोधक कहानियाँ और सरस कविताएँ आदि भी प्रकाशित होती रहती हैं अतः सभी को इसका अवश्य ग्राहक होना चाहिए ।

हम पत्र की समुन्नत की शुभकामना करते हैं । ★

वीर-सेवामन्दिर का साहित्यिक शोध-कार्य

पं० परमानन्द जा जैन शास्त्री

वीर सेवा मन्दिर एक प्रसिद्ध शोध संस्थान है, जिसके संस्थापक वयोवृद्ध ऐतिहासिक विद्वान स्वर्गीय पं० जुगल-किशोर जी मुख्तार हैं। जिसका उद्देश्य जैन साहित्य, इतिहास और तत्त्वज्ञान-विषयक अनुसन्धान कार्यों का प्रसाधन, जैन-जैनेतर पुरातात्विक सामग्री का अच्छा संग्रह संकलन और प्रकाशन, तथा लोक-हितानुरूप नव-साहित्य का सृजन, प्रकटीकरण एवं प्रचार है। महत्व के प्राचीन ग्रंथों का उद्धार, जैन सस्कृति, साहित्य, कला और इतिहास के अध्ययन में सहायक विभिन्न ग्रन्थों, शिलालेखों, प्रशस्तियों, मूर्तिलेखों, ताम्रपत्रों, सिक्कों यंत्रों, स्थापत्य और चित्रकला के नमूनों आदि का विशाल संग्रह करना है। अनेकान्त पत्र द्वारा जनता के आचार को ऊँचा उठाना, एवं शोध-खोज कार्यों को प्रकाश में लाना है।

वीर-सेवा-मन्दिर अपने इस उद्देश्य के अनुसार जैन साहित्य, इतिहास और पुरातत्व के सम्बन्ध में अनेक शोध-खोज के कार्य में सलग्न रहता है, वह वर्तमान विज्ञापन-वाजी से दूर है किन्तु उद्देश्यानुसार अपने कार्य सम्पन्न करने में कभी नहीं हिचकता। आज दिन जैन साहित्य और इतिहास के सम्बन्ध में जो कुछ प्रगति आप देख रहे हैं उस सबका श्रेय इस संस्था को ही है।

शोध-खोज का कार्य संचालन करने के लिए वीर सेवामन्दिर में एक लायब्रेरी भी है जिसमें साढ़े चार हजार के लगभग ग्रंथों का संग्रह है, वीर सेवामन्दिर के विद्वान इसी छोटी सी लायब्रेरी के सहारे अपने अनुसन्धान का कार्य करते हैं। अनुसन्धान का कार्य करते हुए जो कुछ विशेष ज्ञातव्य सामग्री प्राप्त हो जाती है, उससे साहित्यिक और ऐतिहासिक गुत्थियों को सुलझाने का प्रयत्न करते हैं। वीर सेवामन्दिर के मुख पत्र 'अनेकान्त' में शोधात्मक इतिहास, और पुरातत्व सम्बन्धी तथा समीक्षात्मक लेख प्रकाशित होते हैं वह सब इसी शोध-खोज का परिणाम

है। मुख्तार साहब ने अब तक जो कार्य इस सम्बन्ध में किया व उनके सहायक विद्वानों ने किया, उनका आधार भी वही पुस्तकालय है। और मैं जो कुछ कार्य कर रहा हूँ वह भी उसके सहयोग से ही कर रहा हूँ। मेरे प्रायः सभी अधिकांश लेख अनेकान्त पत्र में ही प्रकाशित हुए हैं और हो रहे हैं। विज्ञ पाठक उन पर से संस्था के कार्यों की रूप-रेखा का अनुमान कर सकते हैं। इसी खोज का परिणाम जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह के वे दोनों भाग हैं, जिनमें अनेक ग्रन्थों, ग्रंथकारों, उनकी कृतियों के परिचय के साथ ग्रंथ निर्माण में प्रेरक श्रावक-श्राविकाओं, राजाओं, राज्य-मंत्रियों, कोषाध्यक्षों, भट्टारकों, आचार्यों, विद्वानों, लेखकों, श्रवणों, गोत्रों, स्थानों, और अग्रवाल खडेलवाल आदि उपजातियों के ऐतिहासिक परिचय का अवलोकन करते हैं। जिनमें विद्वानों के शोध कार्य में योगदान, मिलता है। इससे पाठक वीरसेवामन्दिर के साहित्यिक और ऐतिहासिक कार्यों की उस रूप-रेखा का, जो इतिहास के निर्माण में अत्यन्त आवश्यक है आशिक पूर्ति कर रहा है। यद्यपि वीर-सेवामन्दिर के इस पुनीत एवं महत्वपूर्ण कार्य में जैनसमाज का सहयोग नगण्य-सा भी नहीं है परन्तु फिर भी वीरसेवामन्दिर के संचालक और कार्य करता गण अपने अथक परिश्रम से उक्त कार्य में सलग्न देखे जाते हैं। विगत वर्षों में वीर सेवामन्दिर से जो शोध-खोज कार्य सम्पन्न हुआ उससे केवल कुछ जैन आचार्य, और उनके समयादि पर ही प्रकाश नहीं डाला गया प्रत्युत अनेक अलभ्य और अप्रकाशित प्राकृत सस्कृत अपभ्रंश भाषा और हिन्दी की रचनाओं का भी सम्मूलेख किया गया है। ये सब कार्य अत्यन्त रूक्ष और श्रम साध्य हैं।

प्रशस्ति-संग्रह प्रथमभाग में १७१ सस्कृत-प्राकृत के अप्रकाशित ग्रंथों का आदि-अन्तभाग दिया गया है। उनके कर्ता १०४ विद्वानों का उसकी प्रस्तावना में परिचय के साथ उनकी अन्य रचनाओं का भी उल्लेख किया गया है।

प्रशस्ति संग्रह के द्वितीय भाग में अपभ्रंश भाषा के १२२ दिगम्बर ग्रंथों की आदि-अन्त प्रशस्तियां दी गई हैं। और ५५ श्रंखकारों का शोधपूर्ण परिचय भी लिखा गया अपभ्रंश भाषा के अनुपलब्ध ग्रंथों का नामोल्लेख भी दिया है। परिचय में जो ऐतिहासिक सामग्री दी गई है वह महत्वपूर्ण है। अनेक परिशिष्टों द्वारा उन ऐतिहासिक ग्रंथों को उद्धाटित करने का प्रयत्न किया है। प्रस्तुत संग्रह में ९ वीं शताब्दी से १७ वीं शताब्दी तक की सामाजिक, धार्मिक और नैतिक परिस्थितियों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है।

प्रशस्ति संग्रह के तृतीय भाग का संकलन कार्य भी सामने है। उसका कुछ भाग संकलित हो चुका है, पर अधिकांश कार्य शेष है, उसके लिए बाहर के कुछ ग्रंथ-भंडारों का अवलोकन करना और अप्रकाशित ग्रंथों के आदि अन्तभाग का संकलन करना आवश्यक है, समय मिलने पर उसे पूरा करने का विचार है।

प्रकाशन-कार्य—

वीर सेवा मन्दिर में केवल अनुसन्धान कार्य ही संपन्न नहीं हुआ, किन्तु अनेक ग्रंथों का सानुवाद प्रकाशन भी हुआ है। पुरातन जैनवाक्य-सूची स्वयम्भूस्तोत्र, युक्त्यनुशासन, स्तुति विद्या, समीचीन धर्मशास्त्र, आप्तपरीक्षा, न्यायदीपिका, श्रीपुरपाश्वनाथ स्तोत्र, शासनचतुष्ट्रिका, प्रभाचन्द्र का तत्त्वार्थसूत्र, समाधितत्र और इष्टोपदेश, अध्यात्मकमलमार्तण्ड, अनित्यभावना, सत्साधुस्मरण मंगलपाठ बनारसी नाममाला अध्यात्म रहस्य आदि ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं। पुरातन जैन वाक्य-सूची, जिसमें ६२ दिगम्बर ग्रंथों के पद्यों का आदि भाग दिया गया है और प्रस्तावना में मुख्तार सा० ने उनके सम्बन्ध में अच्छा विचार किया है, जो मनन करने योग्य है, इन सब ग्रंथों की प्रस्तावनायें अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं, जो ऐतिहासिक अनुसन्धाताओं के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं।

जैन लक्षणावली (जैन पारिभाषिक शब्द कोष) का संकलन दिगंबर-श्वेतांबर ग्रंथों पर से किया गया है। यह कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि लक्ष्य शब्दों का संग्रह दो सौ दिगंबर और इत्नेही श्वेताम्बर ग्रंथों परसे हुआ है। और

उन्हें जहां तक भी बन सका ऐतिहासिक क्रमानुसार देने का प्रयत्न का किया है। इस समय लक्षणावली के संपादन और प्रकाशन का कार्य चल रहा है, लक्षणों का हिन्दी अनुवाद भी दिया है जिससे विद्वान, विद्यार्थी और स्वाध्यायी जन सभी लाभ उठा सकते हैं। लक्षणावली का संपादन कार्य पं० बालचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री कर रहे हैं। उसके अब तक तीस फार्म छप चुके हैं। आगे कार्य चालू है।

अनेकान्त पत्र का प्रकाशन पहले १४ वर्ष तक मासिक रूप में हुआ और अब उसका प्रकाशन द्वैमासिक रूप में हो रहा है, जिसमें अनेक ऐतिहासिक, साहित्यिक, दार्शनिक, तात्विक और समीक्षात्मक लेख, कहानी, कविता आदि प्रकाशित होते हैं।

वीरसेवामन्दिर का यह सेवा-कार्य किसी तरह भी भुलाया नहीं जा सकता। इन सब ग्रंथों की तैयारी में अन्य सस्थाओं की अपेक्षा वीर सेवामन्दिर में अल्प खर्च में महान कार्य संपन्न हुए हैं। जब कि उनमें अर्थ व्यय अधिक होता है। यह तथ्यसमाज से छुपा हुआ नहीं है। मुझे आशा है कि समाज ऐसी महत्वपूर्ण सेवा भावी सस्था को अपनाएगी और उसे आर्थिक सहयोग प्रदान कर उसके सेवा कार्य में अपना हाथ बटाएगी।

वीर सेवामन्दिर द्वारा अब तक जिन ग्रंथों, ग्रंथकारों आदि के सम्बन्ध में अन्वेषण कार्य हुआ है उसकी सक्षिप्त तालिका निम्न प्रकार है :—

अनुसंधान कार्य के कुछ संकेत—

दिल्ली के तोमर वंशी अन्नंगपाल तृतीय (स० ११८६) की खोज से दिल्ली के इतिहास पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। स० ११०६ से १२४६ तक के लिए जो आनन्द सवत की कल्पना की गई थी, जिसका निरसन प्रसिद्ध विद्वान हीराचन्द्र जी श्रोभा ने किया था। इससे भी उसकी निरर्थकता पर प्रकाश पड़ता है। और इतिहास की कितनी ही भूल-भ्रांतियां दूर हो जाती हैं।

विजोलिया के शिलालेख से चौहान वंश की वंशावली का सम्बन्ध भी ठीक घटित हो जाता है।

सिद्धसेन के सामने सर्वार्थसिद्धि और 'राजवातिक' नामक लेख से पं० सुखलाल जी संघवी की उस मान्यता का निरसन हो जाता है कि सिद्धसेन गणी को दूर देश-

वर्ती होने से उक्त दोनों टीकाएँ उन्हें देखने को नहीं मिली, अतएव वे वैसी टीका नहीं बना सके। किन्तु उस लेख से निश्चित है कि सिद्धसेन गणी की इस टीका में सर्वार्थ सिद्धि और राजवार्तिक की पंक्तियोंकी पंक्तियाँ उद्धृत है। तब दूर देश होनेके कारण वे टीकाएँ देखनेको नहीं मिली, मान्यता अप्रामाणिक ठहरती है, उन टीकाओं के रहते हुए भी सर्वार्थसिद्धि और तत्त्वार्थवार्तिक जैसी टीका नहीं बनने में योग्यता भेद ही कारण है।

अनंगपाल तृतीय के राज्यकाल में ग्रामात्य अग्रवाल साहू नटल द्वारा आदिनाथ के मन्दिर का निर्माण और प्रतिष्ठा तथा पार्श्वनाथचरित्र का निर्माण, ये खोज महत्वपूर्ण है।

गहरे अनुसन्धान द्वारा यह प्रमाणित किया गया कि सन्मति सिद्धसेन के कर्ता दिगंबर थे। तथा सन्मति सूत्र, न्यायावतार और द्वात्रिंशिकाओं के कर्ता एक सिद्धसेन नहीं किन्तु तीन या तीन से अधिक है।

कल्याणमन्दिर स्तोत्र के कर्ता सिद्धसेन दिवाकर नहीं, और न वह श्वेतांबरकृति है।

रत्नकरण्डश्रावकाचार देवागमादि ग्रंथों के कर्ता स्वामी समन्तभद्र की कृति है, ऐसा अनुसन्धान पुष्ट प्रमाणों के आधार पर किया गया है।

‘अलोप पार्श्वनाथ प्रसाद’ नामक लेख द्वारा शिला-लेखीय प्रमाणों के आधार पर मुनिकान्तिसागर जी ने उसे नागदा का पार्श्वनाथ दिगंबर जैन मन्दिर बतलाया है। यह लेख मुनि जी ने मेरी प्रेरणा पर तटस्थ भाव से लिखा है।

चित्तौड़ का जैन कीर्तिस्तम्भ—जिसे श्वेतावर सम्प्रदाय के विद्वान साम्प्रदायिक व्यामोहवश श्वेतावर बतलाते थे, वह दिगंबर जैन कीर्तिस्तम्भ वधेरवालवशी शाह जीजा द्वारा बनवाया गया है, और उसकी प्रतिष्ठा उनके सुपुत्र शाह पूरनसिंह द्वारा सम्पन्न हुई है। उसके सम्बन्ध में दो शिलालेख भी उदयपुर राज्य के प्रकाशित किए हैं।

सिरपुर पार्श्वनाथ का इतिहास और पार्श्वनाथ की मूर्ति के प्रतिष्ठापक राजा श्रीपाल ईल, का प्रामाणिक परिचय भी नेमचन्द धनूसा जैन द्वारा अनेकान्त में प्रकाशित हुआ है।

गवालियर के गोलापूर्व ग्राम्नाय के शाह धनराज द्वारा सं. १६६४ से पूर्व का ‘भक्तामरस्तोत्र’ हिन्दी का पद्यानुवाद अनेकान्त में प्रकाशित हुआ है, उसकी सचित्र जीर्णप्रति मुनि कान्तिसागर जी के पास विद्यमान है।

प्रचलित गोम्मटसार-कर्मकाण्ड का प्रकृति समुत्कीर्तन अधिकार त्रुटिपूर्ण है। उसमें प्राकृत के कुछ गद्यसूत्र छूटे हुए हैं। जो कि मूडबिंदी की ताडपत्रीय प्रति में पाये जाते हैं। उन सूत्रों को मिलाकर उसके त्रुटित अंश को पूरा किया गया है।

भविष्यदत्त कथा के शोध प्रबन्ध पर, जिसपर पी. एच. डी. की उपाधि मिली है, उसके निर्माण काल पर विचार-लेख द्वारा उसके निर्माण काल पर विचार किया गया है। सं० १३६३ को रचनाकाल बतलाया गया था वह उसका प्रतिलिपि काल है, निर्माण काल नहीं।

तात्त्विक अनुसन्धान द्वारा तत्त्व विषयक सैकड़ों बातों पर नया प्रकाश डाला गया है। इसमें दर्शन, ज्ञान और चरित्र सम्बन्धि बातों का समावेश है।

अनुसन्धान द्वारा अनेक आचार्यों, विद्वानों, और भट्टारकों आदि के समय पर नया प्रकाश डाला गया है। और उनके समयादि के सम्बन्ध में प्रामाणिक विचार किया है।

अनेक अप्रकाशित अलभ्य ग्रन्थों की शोध खोज की और दूसरों को प्रेरित करके कराने का उपक्रम किया है। अनेक अप्रकाशित ग्रंथों को ग्रंथ भण्डारों में से लाकर उनका परिचय अनेकान्तादि पत्रों में दिया है।

वीरसेवामन्दिर द्वारा अन्वेषित ग्रन्थ और ग्रन्थकार

अक्षयनिघ्नव्रत कथा, भ० सकलकीर्ति

अक्षयनिघ्नव्रत कथा, ब्र० श्रुतसागर

अर्घकाण्ड. दुर्गदेव

अजितपुराण, अरुणमणि

अध्यात्म तरंगिणी टीका, गणधर कीर्ति

अनंत जिन पूजा, भ० गुणचन्द्र (१६३३)

अनन्त व्रत कथा, पद्मनन्दि

अनन्त व्रत कथा, ब्र० श्रुतसागर

अम्बिकाकल्प, भ० शुभचन्द्र

अशोक रोहिणी कथा, ब्र० श्रुतसागर

आकाशपद्मी कथा, ब्रह्म श्रुतसागर

आकाशपंचमी कथा, चन्द्रभूषण शिष्य अन्नदेव
 आत्मानुशासन टीका, प्रभाचन्द्राचार्य
 आदिनाथ पुराण, भ० सकलकीर्ति
 आदिनाथ पुराण टीका, भ० ललितकीर्ति
 आयज्ञान तिलक, भट्टवोसरि
 आय सद्भाव, मल्लिषेणाचार्य
 आराधना सार टीका, पं० आशाधर
 एकावली कथा, भ० सकलकीर्ति
 कथाकोष, चन्द्रकीर्ति
 कनकावली कथा, सकलकीर्ति
 कर्मप्रकृति, अभयचन्द्र
 करकडु चरित, भ. शुभचन्द्र
 करकडुचरित, भ० जिनेन्द्रभूषण
 कर्म स्वरूप वर्णन, कवि जगन्नाथ
 कामचाण्डाली कल्प, मल्लिषेण सूरि
 ज्ञानार्णव गद्य टीका, ब्र० श्रुतसागर
 चतुर्विंशति सवान, कवि जगन्नाथ
 चन्द्रप्रभचरित्र, भ. शुभचन्द्र
 चन्द्रप्रभचरित कवि दामोदर (१७२७)
 चन्द्रप्रभपुराण, पं० शिवाभिराम
 चन्दनषष्ठीव्रत कथा, ब्र० श्रुतसागर
 चन्दनषष्ठी कथा, छत्रसेन
 छन्दोनुशासन वृत्ति, कवि वाग्भट
 छपणासार गद्य, माधवचन्द्र त्रैविद्य (शक स. ११२५)
 जिन पुरंदर विधि, भ. सकलकीर्ति
 जिन सुखावलोकन कथा, भ. सकलकीर्ति
 जम्बू स्वामी चरित्र, भ. सकलकीर्ति
 जम्बू स्वामी चरित्र, ब्र० जिनदास
 ज्येष्ठ जिनवर कथा, ब्रह्म श्रुतसागर
 ज्वालामालिनी कल्प, इन्द्रनन्दि योगीन्द्र
 तत्त्वसार टीका, भ. कमलकीर्ति
 तत्त्वार्थ टिप्पण, (रत्न प्रभाकर) भ. प्रभाचन्द्र (१४८६)
 तपोलक्षण पंक्ति कथा, ब्रह्म श्रुतसागर
 त्रिकाल चउवीसी कथा, चन्द्रभूषण शिष्य अन्नदेव
 त्रिपंचाशत क्रियोद्यापन, देवेन्द्रकीर्ति (१६४४)
 त्रिभंगीसार टीका, सोमदेव सूरि
 त्रिलोकसार टीका, सहस्रकीर्ति

त्रैलोक्य दीपक, इन्द्र वामदेव
 दशलाक्षणिक कथा, ब्रह्म श्रुतसागर
 द्विकावली कथा, भ. सकलकीर्ति
 देवताकल्प, गुणसेन शिष्य अरिष्टनेमि
 द्रव्य संग्रह वृत्ति, पं० प्रभाचन्द्र
 द्रोपदि प्रबन्ध, जिनसेन
 धन्यकुमार चरित्र, भ. गुणभद्र
 धन्यकुमार चरित्र, भ. यशःकीर्ति
 धन्यकुमार चरित, ब्र० नेमिदत्त
 धर्मचक्र पूजा, बुधवीर
 धर्मपरीक्षा, मुनि रामचन्द्र
 धर्म प्रश्नोत्तर श्रावकाचार, भ. सकलकीर्ति
 धर्म रत्नाकर, जयसेन (१०५५)
 धर्मोपदेश पीयूष वर्ष श्रावकाचार, ब्र० नेमिदत्त
 ध्यान स्तवन, भास्करनन्दि
 नक्षत्रमाला विधान, भ. सकलकीर्ति
 नन्दीश्वर पंक्ति विधान कथा, भ. सकलकीर्ति
 नागकुमार चरित, मल्लिषेणाचार्य
 नागकुमार पंचमी कथा, धरसेन
 निर्दुख सत्तमी कथा, ब्र० श्रुतसागर
 नीतिसार पुराण, सिद्धसेन
 नेमिनरेन्द्र स्तोत्र, कवि जगन्नाथ
 पंचकल्याणकोद्यापनविधि, ब्र० गोपाल
 पंच नमस्कार मंत्र, सिंहनन्दी (१६६७)
 पचास्तिकाय प्रदीप, प्रभाचन्द्राचार्य
 पद्यचरित टिप्पण, मुनि श्रीचन्द्र
 पद्यपुराण, ब्र० जिनदास
 पद्यपुराण, भ. धर्मकीर्ति (१६६६)
 पदार्थदीपिका (कलश टीका), देवेन्द्रकीर्ति १७८८
 परमागमसार, श्रुतमुनि [शक सं० १२६३]
 परमात्मराज स्तोत्र, भ. सकलकीर्ति
 परमार्थोपदेश, भ. ज्ञानभूषण
 पल्ल विधान कथा, ब्र. श्रुतसागर [१४५२]
 पाण्डव पुराण, भ. श्रीभूषण
 पार्श्वपुराण, चन्द्रकीर्ति [१६५४]
 पार्श्वपुराण, भ. सकलकीर्ति

पुरंदर विधान कथा, ब्र. श्रुतसागर
 पुष्पांजलि व्रत कथा, ब्र. श्रुतसागर
 पुराणसार, भ. सकलकीर्ति
 प्रद्युम्नचरित्र, सोमकीर्ति
 प्राकृत पंचसंग्रहकर्ता, (अज्ञात)
 प्राकृत पंचसंग्रह की प्रा० टीका
 प्राकृत पंचसंग्रह की संस्कृत टीका, भ. सुमतिकीर्ति
 प्रायश्चित्त समुच्चय सचलिक वृत्ति, श्रीनन्दिगुरु
 प्रीतिकर महामुनि चरित, ब्र. नेमिदत्त
 बृहत्सिद्धचक्र पूजा, कवि वीर
 भविष्यदत्तकथा, कवि श्रीधर
 भावना पंचविंशति व्रत कथा, भ. सकलकीर्ति
 भावसंग्रह, श्रुतमुनि
 भूपाल चतुर्विंशति टीका, पं. आशाधर
 भैरव पद्मावती कल्प, मल्लिषेण सूरि
 मदन, पराजय, ठक्कुर जिनदेव
 मल्लिनाथ चरित्र, भ. सकलकीर्ति
 महापुराण, मल्लिषेण सूरि
 महीपाल चरित्र, चारित्रभूषण
 मुकुट सप्तमी कथा, भ. सकलकीर्ति
 ” ब्र. श्रुतसागर
 मुक्तावली कथा, भ. सकलकीर्ति
 मुक्तावली कथा बृहद्, भ. सकलकीर्ति
 मुक्तावली व्रतकथा, ब्र. श्रुतसागर
 मुनि मुव्रत पुराण, ब्र. कृष्णदास
 मूलाचार प्रदीप भ. सकलकीर्ति [१४८१]
 मेघमाला व्रतकथा, ब्र. श्रुतसागर
 मेरूपत्ति कथा ”
 मेरूपत्ति विधि, भ. सकलकीर्ति
 मौनव्रत कथा, गुणचन्द्र सूरि
 यशोधर चरित्र, भ. सकलकीर्ति
 यशोधर चरित्र, ब्र. श्रुतसागर
 यशोधर चरित्र, भ. ज्ञानकीर्ति
 यशोधर चरित्र, पद्मनाभ कायस्थ
 यशोधर चरित्र, वासवसेन सूरि
 यशोधर चरित्र, सोमकीर्ति

यशोधर चरित्र पंजिका, श्री देव
 योग सार संग्रह, श्रीनन्दि गुरु
 योगसार टीका, इन्द्रनन्दि
 रत्नत्रय विधान कथा, पं. आशाधर
 रत्नत्रयकथा, ब्र. श्रुतसागर
 रत्नावली कथा, भ. सकलकीर्ति
 रात्रि भोजन त्याग कथा, ब्र. नेमिदत्त
 रिष्ट समुच्चय शास्त्र, दुर्गदेव
 रविव्रत कथा, ब्र. श्रुतसागर
 रुक्मणी विधान कथा, छत्रसेन
 लब्धि विधान कथा, ब्र. श्रुतसागर
 लब्धि विधान कथा, चन्द्रभूषण शिष्य अभ्रदेव
 वर्धमान चरित, भ. सकलकीर्ति
 वाग्भट्टालकारावचूरि, कवि चन्द्रिका
 पोमराज सुत वादिराज
 विमानपंक्तिविधि, भ. सकलकीर्ति
 विमानपंक्तिकथा, ब्रह्म श्रुतसागर
 विषापहार—टीका, नागचन्द्र सूरि
 वैद्यकशास्त्र, (प्राकृत) हरिपाल
 वृषभदेव पुराण, चन्द्रकीर्ति
 शांतिकविधि, पं. धर्मदेव
 शांतिनाथ पुराण, भ. श्रीभूषण
 शील कल्याणकविधि, भ. सकलकीर्ति
 श्वेताम्बर पराजय, कवि जगन्नाथ (१७०३)
 श्रवण द्वादशी कथा, पं. चन्द्रभूषण शिष्य अभ्रदेव
 श्रवण द्वादशी कथा, ब्र. श्रुतसागर
 श्रावकाचार, पद्मनन्दि
 श्रुतज्ञान कथा, भ. सकलकीर्ति
 श्रुतस्कंधविधान, भ. सकलकीर्ति
 श्री देवताकल्प, अरिष्टनेमि
 श्रीपाल चरित्र, भ. सकलकीर्ति
 श्रीपालचरित्र, विद्यानन्दि
 श्रीपाल चरित, ब्र. नेमिदत्त
 श्रीपाल चरित, धरसेन
 शृगार मंजरी, अजितसेन
 शृगार समुद्रकाव्य, कवि जगन्नाथ [अनुपलब्ध]

षट् चतुर्थं वर्तमान जिनाचन पं. शिवाभिराम
षड्दर्शन प्रमाण प्रमेय संग्रह, शुभचन्द्र
वर्णवति क्षेत्रपाल पूजा, मुनि विश्वसेन
षोडशकारणकथा, चन्द्रभूषण शिष्य प. अन्नदेव
षोडशकारण कथा, ब्र. श्रुतसागर
सद्भाषितावली, भ. सकलकीर्ति
सप्तपरमस्थानव्रत कथा, ब्रह्म श्रुतसागर
सप्तव्यसन कथा, सोमकीर्ति
समवसरणपाठ, प. रूपचन्द्र
सम्यक्त्व कौमदी, प० खेत
सम्मद शिखर माहात्म्य, दीक्षित देवदत्त
सरस्वती कल्प, मल्लिषेण सूरि
सार चतुर्विंशतिका, भ. सकलकीर्ति
सर्वतो भद्रतप कथा, भ. सकलकीर्ति
सिद्धान्तसार नरेन्द्रसेन
सिद्धान्तसार दीपक, भ. सकलकीर्ति
सुकमाल चरित्र, भ. सकलकीर्ति
सुख सपत्ति व्रत फल कथा भ. सकलकीर्ति
सुगन्ध दशमी कथा, ब्र. श्रुतसागर
सुदर्शन चरित्र, भ. सकलकीर्ति
सुदर्शन चरित्र, विद्यानन्दि
सुभग मुलोचना चरित्र, वादिचन्द्र
सुभौमचक्रिचरित, भ. रत्नचन्द्र (१६८३)
मुषेण चरित्र, कवि जगन्नाथ
स्वर्णाचल माहात्म्य, दीक्षित देवदत्त
हरिवंश पुराण, धर्मकीर्ति (१६७१)
हरिवंशपुराण ब्र. जिनदास
होर्लिरेणुका चरित, जिनदास (१६०८)

अपभ्रंश भाषा के ग्रन्थ

अजित पुराण, विजसिंह [१५०५]
अणथमीकहा, रङ्गू
अणथमी कहा, हरिश्चन्द्र अणवाल
अणुवययण पईव, पं. लक्ष्मण
अणुवेक्खा रास, कवि जल्हण
अणुवेक्खा (दोहा), लक्ष्मीचन्द्र
अणुवेक्खा, अल्लू कवि

अणुवेक्खा, ब्रह्म साधारण
अनतवयकहा, भ. गुणभद्र
अमरसेन चरित, माणिक्यराज [सं. १५७५]
आत्म-सबोध-काव्य, रङ्गू [सं. १४४८ से १५३०]
आदित्यवार (रविवार) कथा, भ. यशःकीर्ति
आदिपुराण, रङ्गू [अनुपलब्ध]
आयासपंचमी कहा, भ. गुणभद्र
आराहणासार, वीरकवि
करकण्डु चरित, रङ्गू [अप्राप्त]
कहाकोसु, श्रीचन्द्र
कुमुमांजलिकहा, ब्रह्म साधारण
कोइल पचमीकहा, ,,
चंदण छट्टी कहा, लाखू
चदण छट्टी कहा, भ. गुणभद्र
चंदायणवयकहा, ,,
चंद्रप्रभचरित, यशःकीर्ति
चदप्पह चरित, कवि दामोदर [नागौर मंडार]
चंदप्पह चरित, कवि श्रीधर [अनुपलब्ध]
चूनडी, भ. विनय चन्द्र
छक्कम्मोवएस, (षट्कर्मोपदेश) अमरकीर्ति [१२४७]
जबू स्वामी चरित, वीर कवि [१०७६]
जसहर चरित, कविवर रङ्गू
जिनदत्तचरित, कवि लाखू
जिनरात्रि कथा भ. यशःकीर्ति
जीवंधर चरित, कविवर रङ्गू
तियाल चउवीसी कहा, ब्र. साधारण [१५०८]
दहलक्खण कहा गुणभद्र
दुद्धारसि कथा, विनयचन्द्र
दुद्धारसिकहा, ब्र. साधारण
दुद्धारसिकहा, भ. गुणभद्र
धन्यकुमार चरित, कविवर रङ्गू
धर्मपरीक्षा, श्रुतकीर्ति
नरक उतारी दुद्धारसिकहा, मुनि बालचन्द्र
णिन्दुह सत्तमीकहा, मुनि बालचन्द्र
,, ,, भ. गुणभद्र
,, ,, ब्र. साधारण
नागकुमार चरित, माणिक्यराज [सं. १५७६]

नेमिनाथ चरित, कवि लक्ष्मण
 नेमिनाथ जिनचरित (हरिवंश पुराण), कविवर रङ्गू
 नेमिनाथ पुराण, भ. अमरकीर्ति [सं. १२४४]
 नेमिनाह चरित, कवि दामोदर [१२८७]
 निर्भर पंचमी कथा, ब्र. साधारण
 निर्भर पंचमी कथा, विनयचन्द्र
 निव्वाणभक्ति जयमाला, उदयकीर्ति
 पंचमी चरित, स्वयंभू [अप्राप्य]
 पक्षवद्ध कथा, भ. गुणभद्र
 पउमचरित, स्वयंभूदेव
 पउमचरित, कविवर रङ्गू
 परमेष्ठो पयाससार, भ. श्रुतकीर्ति
 पाण्डवपुराण, भ. यशःकीर्ति
 पासणाह चरित, कवि असवाल [१४८६]
 पासणाह चरित, कवि देवचन्द्र
 पास पुराण, विवृष श्रीधर [११६६]
 पास पुराण, पयकीर्ति [६६६]
 पासपुराण, कविवर रङ्गू
 पासपुराण, कवि तेजपाल
 पुष्पासवकहा कोसु, कविवर रङ्गू
 पुष्पजलिकहा, भ. गुणभद्र
 पुरंदर विधानकथा, भ. अमरकीर्ति
 पचकलाणक, विनयचन्द्र
 पञ्जुणचरित, कवि सिद्ध और सिंह
 बारह अणुवेक्खा रासो, योगदेव
 बाहुवली चरित, घनपाल [१४५४]
 भविसयत्तकहा, कवि श्रीधर
 मउउ सत्तमीकहा, ब्र. साधारण
 " " भ. गुणभद्र
 मउड सत्तमीकहा, भगवती दास
 मयण पराजय, हरिदेव
 मयंक लेहाचरित, भगवतीदास
 मल्लिणाह चरित, हरिचन्द्र
 मुक्तावली कहा, [अज्ञात]
 मेघमाला वयकहा, कवि ठकुरसी [१५७८]
 मेघसर चरित, कविवर रङ्गू

रयणकरण्ड सावयायार श्रीचन्द्र
 रविवयकहा भ० यशःकीर्ति
 रयणत्तयकहा, भ. गुणभद्र
 रविवयकहा, ब्र. साधारण [सं. १५०८]
 रविवयकहा, नेमचन्द्र
 रोहणी विहाणकहा, देवनंदि
 लब्धि विहाणकहा, भ. गुणभद्र
 वड्डमाण कहा, कवि नरसेन
 वड्डमाणचरित, हरिचंद [जयमिहल]
 वड्डमाणचरित (पुगण) विबुध श्रीधर
 वरांग चरित, कवि तेजपाल
 वित्तसार, कविवर रङ्गू
 सयल विहीविहाणकहा, नयनन्दी [११००]
 सवणवारसि कहा, भ० गुणभद्र
 सम्मत्त कउमदी (सावयायार), कविवर रङ्गू
 सम्मत्त गुण निघान कविवर रङ्गू [१४६२]
 संतिणाह चरित भ० शुभकीर्ति
 सतिणाह चरित कवि ठाकुर (६१५२)
 संभवणाह चरित कवि तेजपाल [१५००]
 सम्मद् जिणचरित महाकवि रङ्गू
 सिद्धंतत्थसार (सिद्धान्तार्यसार) रङ्गू
 सिरिपाल चरित कविवर रङ्गू
 सुकमाल चरित मुनि पूर्णभद्र
 सुकोसल चरित कवि रङ्गू [१४६६]
 सुयन्धदसमी कहा उदयचन्द्र
 सुयंघ दसमी महा विमलकीर्ति
 सुयंघदसमीकहा भगवतीदास
 सुदंसण चरित कविवर नयनन्दी [११००]
 सुदंसण चरित कवि रङ्गू (अप्राप्त)
 सुलोयणा चरित गणिदेवसेन
 सोलह कारणवय कहा भ० गुणभद्र
 सोरववई विहाण कहा विमलकीर्ति
 हरिवस पुराण स्वयंभू, त्रिभुव न स्वयंभू
 हरिवंस पुराण भ० यशःकीर्ति (१५००)
 हरिवंस पुराण श्रुतकीर्ति [१५५२]
 हरिवेणचरित अज्ञात कवि

दि० जैन रासा साहित्य सूची

अचल कीर्ति—अठाईरास, रत्नत्रयरास, दशलक्षणव्रत-
रास, धर्मरास, (१७२३) आदित्यव्रत कथा (१७५७)
ऊदू कवि—जिनवररास, चैत्यरास, सनत्कुमाररास (१६६७)
कपूरचन्द ब्रह्मा—(मुनिगुणचन्द शिष्य)-पाश्वर्नाथ रासो
१६६ प० (स० १६९७)
कलसी ब्रह्मा—ध्यानामृतरास
कल्याणकीर्ति—(भ० देवकीर्तिशिष्य)—श्रेणिकरास,
होलीरास, चारुदत्तरास, (स० १६६२) प्रबन्धरास (स०
१६६२)
कामतीचन्द पाण्ड्या-रेवतीरासो
किशन सिंह—णमोकाररास (स० १७६०)
कुमुदचन्द्र—(काष्ठासधी) नेमिनाथरास बाहुबलीछन्द
(स० १४६७)
कृष्णदास—दानशीलतप भावनारास (रच० स० १६६६)
गगादास—रविव्रतरास
गुणकीर्ति—(ब्रह्मा जिनदास शिष्य)-रामसीतारास
गुणकीर्ति—(द्वितीय) शीलरास (१७१३)
गुणचन्द्र—दयाव्रतरास (१६६३) राजमतीरास
गुणराज—सकलकीर्तिरास, समकितरास प्रद्युम्नरास (स०
१६०६)
गोपालदास—यदुरासो
चन्द्रकीर्ति—(भ० श्री भूषण शिष्य) जयकुमार सुलो-
चनारास (इन्होंने पाश्वर्नाथचरित १६५४ मे बनाया)
चन्द्रसागर ब्रह्मा—धर्मपरीक्षा रास (रचना स० १६२५)
जयकीर्ति—अनतव्रतरास (इन्होंने सीता शील पताका
गुण वेलि स० १६८४ मे गलिया कोट मे बनाई थी। वक-
चूल रास स० १६८५)
जिनदास ब्रह्मा—रामायणरास (१५०८) धर्मपरीक्षा
रास (१५२०) हरिवंशरास, (१५२०) जीवधर
रास, कर्मविपाक रास, हनुव्रत रास चारुदत्तश्रेष्ठ
रास, यशोधररास, पुरंदर विधान रास, मडूकनो
रास, गुणस्थान-रास, नागपंचमी रास, सुकमालस्वामी
रास, लब्धिविधान रास, रोहणीव्रत रास, सुदर्शन-
श्रेष्ठिनो रास, आदिपुराण रास, श्रीपाल रास, निर्दोष-
सप्तमी रास, होलीरास, जयकुरार रास, अठाईव्रत रास,
मुकुट सप्तमी रास, आकाश पंचमी रास, परमहंस-

रास, सोलहकारण रास, भद्रबाहु रास, श्रुतस्कंध रास,
सम्यक्त्व रास, रात्रिभोजन वर्जन रास, मालिकथा
रास, करकंडमुनि रास, जिनेन्द्रभक्ति रास, पुष्पांजलि
रास, जावदयारास, जोगीरास, चन्दन षष्ठी रास,
मौनव्रत रास, वारिषेण रास, पंचपरमेष्ठी रास, सुगंध-
दशमी रास, ज्येष्ठजिनवर रास, अम्बिकादेवी रास,
घनपाल रास, अजितनाथ रास, अनंतव्रत रास, विष्णु-
कुमारकथा रास, दानकथा रास, गुणपालश्रेष्ठिरास ।
जिनदास पांडे—जोगीरास, मालीरास,
जिनसागर—अनतव्रतकथा रास (मराठी भाषा मे)
जिनसेन—(भ० यशः कीर्तिशिष्य) नेमिनाथ रास (रच०
स० १५५८)
तुलसी कवि वनवासी—रोहिणीव्रतरास (स० १६४८,
१६४ पद्य, पानीपत में बनाया)
जिनसेवक—श्रावकाचार रास (१६०३)
जीवंधर ब्रह्मा—(१५६०) खटोलारास, मुक्तावली रास
(इनकी १५-१६ रचनायें उपलब्ध है)
ज्ञानभूषण—(द्वितीय) पोषह रास, षट्कर्मनों रास
ज्ञानसागर ब्रह्मा—रत्नत्रयरास, लब्धिविधान रास, हनु-
मंत रास (१६६०)
(ब्रह्मा) दीप (चन्द)—मनकरहा रास
देवदत्त—अवादेवी चर्चरी रास (१०५० के लगभग)
देवदास (ब्रह्मा)—हनुमत रास (१६८१)
देवेन्द्र कवि—यशोधर रास (१५६ पद्य)
देवेन्द्र कीर्ति—प्रद्युम्न प्रबन्ध रास (१७२६)
दौलतराम पाटनी—व्रतविधान रास (स० १७६७)
धर्मपाल—श्रावकाचार रास
धर्मभूषण—अंजना रास
धर्मरुचि ब्रह्माचारी—(भ० अभयचन्द्र शिष्य) सुकमाल
स्वामिनो रास (स० १६१६) (दूसरी रचना नेमी-
श्वरभवांतर)
नरेन्द्रकीर्ति—(सकलभूषण शिष्य) अंजनारास (स०
१६५०) खडेल० म० उदयपुर
नरेन्द्र कीर्ति—सगरचक्रवर्तीनु रास (स० १६०५) द्राप-
दिशीलगुणरास (१६०५)
नरेन्द्रकीर्ति—(प्रतापकीर्ति शिष्य)—श्रावकाचाररास
(स० १५१४ मगशिर सुदि १०)

नरेन्द्रकीर्ति—(बागडसंघीय प्रतापकीर्तिशिष्य)-श्रावक-
रास (सं० १५१४) अंबडनगर
नेमचन्द्र—(जगत्कीर्ति शिष्य)-नेमीश्वर रास (१७६६)
(ब्रह्म) नेमिदत्त—आदित्यव्रत रास, दूसरी रचना
माझरोहण अनेक संस्कृत रचनाएँ ।
कवि पद्म—हुंवडजातीय श्रावक मेघकुमार रास, महावीर-
चक्रि रास (१६०६) ध्यानरास, त्रेपन क्रियारास
पूनी—मेघकुमाररास
पथ्वीमल्ल—श्रुतपंचमीरास (१६६२)
प्रतापचन्द्र मुनि—स्वप्नावलीरास (सं० १५०० पूर्ववर्ती)
भगवतीदास अग्रवाल—(भट्टारक महेन्द्रसेन शिष्य)
इनकी संवत् १६५१ से १७०० तक की रचनाएँ उप-
लब्ध हैं
टंडणारास, जोगीरास, खिचड़ीरास, चतुरवणिजारा
रास, आदित्यव्रतरास, पखवाडारास, दशलक्षणरास,
साधुसमाधिरास, मनकरहारास, सीतासतुरास, (सं०
१६८४) मुक्तिरमणचूनेडीरास (१६८०)
भाऊकवि अग्रवाल—नेमीश्वर रास
भ० भुवन कीर्ति—(सकलकीर्तिपट्टधर) सकलकीर्ति रास
भुवनकीर्ति (द्वितीय)—रात्रि भोजनवर्जनरास, जंवू-
स्वामीरास (लिपि संवत् १६२५) जीवधररास (१६०६)
भोजराज पानीपत—श्रुतपंचमीरास (१६६२)
कवि मनरंग—कर्मविपाकरास (संवत् १७२८)
महीचंद—रविचक्ररास
मेघराज—चन्द्रप्रभरास
यशःकीर्ति—आदिपुराणरास, जीवधररास
अठाईरास—हनुमतरास, नेमिनाथ राजुलनो रास
यशः कीर्ति—आदिपुराणरास (संवत् १८५७) पाण्डव-
पुराणरास (१८५५)
(ब्रह्म) यशोधर—बलदेवरास (संवत् १५८५)
(भ०) रत्नचन्द्र—शान्तिनाथ रास (१७८३)
रत्नकीर्ति मुनि—नेमीश्वररास
रत्नभूषण भट्टारक—(भ० सुमतिकीर्तिशिष्य) (रुक्म-
णिरास) लिपि संवत् १७१०
रत्नवती—(आयिका) समकितरास
(ब्रह्म) रायमल—नेमीश्वररास (१६१५) प्रद्युम्नरास
(१६१६) श्रीसालरास

भ० विश्वभूषण—(भट्टारक विशालकीर्तिशिष्य)-काल-
लब्धि विधानरास, सोलहकारणरास, आकाश पंचमी-
रास, (१६४०) मोन इगारसीरास (१६४६)
(१६३०) सुदर्शनरास (१६२६) हनुमंतरास (१६-
१६) भविष्यदत्तरास (सं० १६३३)
रूपचन्द्र पांडे—नेमिनाथरास, वणिजोरास
वर्धमान कवि—वर्धमानरास (१६६५)
(ब्रह्म) वस्तुपाल—पार्वनाथरास, पीतकररास, रवि-
व्रतरास (१६६७)
विद्याभूषण—भविष्यदत्त रास (१६००) नेमिनाथरास
भ० विनयचन्द्र—चूनेडीरास, निर्भरपंचमीकथा रास,
कल्याणकरास
विनयसागर (ब्रह्म) रामायणरास
विशालकीर्ति—रोहिणीव्रतरास (१६०६)
मुनि वीरचन्द्र—सप्तव्यसनरास (१६०२) नेमिकुमार-
रास (लिपि संवत् १६४८) बाहुबली वेलिरास
शान्तिदास—मोन एकादशीरास
भ० शुभचन्द्र—अठाईरास, पत्यविधानरास, महावीर-
रास, देवेन्द्ररास (१६३६)
(ब्रह्म) श्रीपति—(इन्द्रभूषणशिष्य)-रत्नपालनोरास (सं
१७३२)
भ० श्रीभूषण—(१६४६) देवेन्द्रकुमार रास, प्रद्युम्नरास
(भ०) सकलकीर्ति—(१४४३-१४६६)-कर्मविपाकरास,
रत्नत्रयरास, सारशिखामणरास, सोलहकारणरास
भ० सकलभूषण—गजसुकमालरास
सांगा—सुकोशलरास (लिपि सं० १६१६) से पूर्ववर्ती
सांसु—सुकोशलराम (लिपि सं० १६६४) जैनमंदिर नेनवा
सुमतिकीर्ति—(भ० लक्ष्मीचन्द्र शिष्य) धर्मपरीक्षारास,
(१६२५) लोकामतरास
सुमतिसागर—त्रैलोक्यरास (१६२७)
सुरचन्द्र—रत्नपाल रासो (१७३२)
सुरेन्द्रकीर्ति—नरसिंहपुरा जातिरास (१६६७)
सोमकीर्ति—(भ० भीमसेन शिष्य) (१५२६-१५३६)
यशोधररास
(ब्रह्म) हरषसागर—सम्यक्त्वग्रन्थग्रन्थरास
हुकमसिंह—किशनदास वधेरवालरास (१७४६)

एक ऐतिहासिक एवं समीक्षात्मक अध्ययन :

स्वामी समन्तभद्र की जैनदर्शन को देन

डा० दरबारीलाल कोटिया एम. ए. पी-एच. डी.

स्वामी समन्तभद्र जैन दर्शन के उन इने-गिने आचार्यों में हैं जिन्होंने जैन वाङ्मय की असाधारण प्रभावना की और जैनदर्शन को लोगों के अधिक निकट पहुँचाया है। आ० कुन्दकुन्द और गृद्धपिच्छ के पठनात् इन्होंने जैन दर्शन को सर्वाधिक प्रभावित किया एवं आसन-प्रभावक के रूप में असामान्य यश प्राप्त किया। शिलालेखों तथा मूर्धन्य ग्रन्थ-कारों के ग्रन्थों में इनका पर्याप्त यशोगान किया गया है। सुप्रसिद्धताकिं भट्ट अकलंक देवने इन्हें स्याद्वाद-तीर्थका प्रभावक और स्याद्वाद मार्ग का परिपालक, समस्त दर्शनों के अन्तः प्रवेशी तीक्ष्णवृद्धि विद्यानन्द ने स्याद्वाद मार्गाग्रणी वादिराजने सर्वज्ञ का प्रदर्शक, मत्तयागिरि ने आद्यस्तुतिकार तथा शिलालेखों में वीरधामन की सहस्रगुणी वृद्धि करने वाला, श्रुत केवल सन्तानोन्नायक, समस्त विद्यानिधि एवं कलिकाल गणधर कहकर उल्लेखित किया है। सम्भवतः इसी से शिलालेखों और साहित्य में इन्हें विशिष्ट सम्मान के प्रदर्शक “स्वामी” पद से विभूषित प्रकट किया गया है। अथवा “स्वामी” उनका उपनाम या नाम-विशेषण रहा हो। समन्तभद्र को इतना महत्त्व एवं गौरव मिलने का कारण यह प्रतीत होता है कि जब भारतीय दर्शनों में तत्त्व-निर्णय ऐकान्तिक होने लगा और उसे उतना ही माना जाने लगा तथा अर्हत परम्परा ऋषभादि तीर्थंकरों द्वारा प्रतिपादित तत्त्व व्यवस्थापक “स्याद्वाद” को भूलने लगी, तो इन्होंने उसे प्रकाशित एवं प्रभावित किया।

इन का विस्तृत परिचय, इतिहास और समयादिका निर्णय जैन साहित्य और इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् स्व. पं. जुगलकिशोर मुख्तार “युगवीर” ने अपने “स्वामी समन्तभद्र” नामक इतिहास ग्रन्थ में किया है। अतः प्रस्तुत में समन्तभद्र के परिचयादि सम्बन्ध में विचार न कर केवल उनकी कतिपय उपलब्धियों पर चिन्तन किया जायेगा।

समन्तभद्र से पूर्व का युग

जैन अनुश्रुति के अनुसार जैन धर्म के प्रवर्तक क्रमशः काल के अन्तराल को लिए चौबीस तीर्थंकर हुए हैं। इनमें तीर्थंकर ऋषभ देव, बाईसवे अरिष्ट नेमि, तेईसवें पार्ष्वनाथ और चौबीसवे वर्द्धमान-महावीरजी तो ऐतिहासिक और लोक प्रसिद्ध भी हैं। इन तीर्थंकरों के द्वारा जो उपदेश दिया गया वह जैन परम्परा में “द्वादशाङ्ग” के रूप में प्रसिद्ध है। जैसे बुद्ध का उपदेश “त्रिपिटक” के रूप में निश्चित है। वह “द्वादशाङ्ग” श्रुत दो वर्गों में विभक्त है—१ अङ्ग प्रविष्ट और २ अङ्ग बाह्य। ये दो भेद प्रवक्ता विशेष के कारण हैं। जो श्रुत तीर्थंकरों तथा उनके प्रधान एवं साक्षात् शिष्यों (गणधरों) द्वारा निबद्ध है वह अङ्ग प्रविष्ट है तथा जो इसके आधार से उत्तरवर्ती प्रवक्ताओं द्वारा रचा गया वह अङ्गबाह्य श्रुत है। अङ्ग-प्रविष्ट और अङ्गबाह्य के भी क्रमशः बारह और चौदह भेद हैं। अङ्ग प्रविष्ट के बारह भेदों में एक दृष्टिवाद है जो बारहवाँ श्रुत है। इस बारहवें श्रुत में विभिन्न-वादियों की एकान्त दृष्टियों (मान्यताओं) के निरूपण तथा उनकी समीक्षा के साथ उनका स्याद्वादन्याय से समन्वय किया गया है। इस तथ्य को आचार्य समन्तभद्र ने “स्याद्वादिनो नाथ तत्रैव युक्तम्” (स्वयम्भू १४) जैसे पद प्रयोगों द्वारा व्यक्त किया है और सभी तीर्थंकरों को ‘स्याद्वादी’ (स्याद्वाद प्रतिपादक) कहा है अकलङ्क देव^१

१. ...एषां दृष्टिगतानां त्रयाणा षष्ठ्युत्तराणां प्ररूपणं निग्रहश्च क्रियते।—वीरसेन, ध्वला पु. १, पृ. १०८

२. (क) धर्मतीर्थंकरेभ्योऽस्तु स्याद्वादिभ्यो नमोनमः।
ऋषभादि महावीरान्तेभ्यः स्वात्मोपलब्धये ॥
—लाघीय० १-१।

(ख) श्री मत्परममन्त्रीस्याद्वादामोषलांछनम्।
जोयात् त्रैलोक्यनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥
—प्रमाण सं० १-१।

ने भी उन्हें स्याद्वाद का प्रवक्ता तथा उनके उपदेश को 'स्याद्वाद के अमोघ चिन्ह से चिन्हित', बतलाया है।

षट्खण्डागम आदि आगमों में यद्यपि स्याद्वाद की स्वतंत्र चर्चा नहीं मिलती, फिर भी उनमें सिद्धान्त-प्रतिपादन 'स्यात्' (सिया अथवा सिय) शब्द को लेकर अवश्य प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ षट्खण्डागम में मनुष्यों को पर्याप्तिक और अपर्याप्तिक दोनों बतलाते हुए कहा गया है कि 'मणुस्सा...सिया पज्जत्ता, सिया अपज्जत्ता' अर्थात् मनुष्य स्यात् पर्याप्तिक है, स्यात् अपर्याप्तिक। इसी प्रकार आगम के कुछ दूसरे विषयों का भी प्रतिपादन उपलब्ध होता है। इस तरह आगम ग्रन्थों में 'स्यात्' शब्द को लिए हुए विधि और निषेध इन दो वचन-प्रकारों से कथन मिलता है। आ० कुन्दकुन्द ने उक्त दो 'विधि और निषेध' वचन प्रकारों में पाँच वचन प्रकार और मिलाकर सात वचन प्रकारों से वस्तु 'द्रव्य' निरूपण का स्पष्ट उल्लेख किया है। यथा—

सिय अत्थि णत्थि उह्यं अबत्तव्वं पुणोय तत्तिदयं ।
दव्वं खु सत्तभंगं आदेसवसेण संभवदि ॥

—पंचास्ति० गा० १४ ।

यहाँ 'स्यादस्ति द्रव्यं स्यान्नास्तिद्रव्यं स्यादुभयं स्यादवक्तव्यं स्यादस्त्यवक्तव्यं स्यान्नास्त्यवक्तव्यं स्यादस्तिनास्त्यवक्तव्यम्' इन सात भंगों का निर्देश करके उनके आश्रय से द्रव्य (वस्तु) के कथन का उल्लेख किया गया है। ध्यातव्य है कि कुन्दकुन्द ने यहाँ द्रव्य को सप्तभङ्गात्मक आदेशवशात् 'नयविवक्षानुसार' प्रतिपादित किया है। उन्होंने यह भी बताया है^१ कि यदि सद् रूप ही द्रव्य हो तो उसका विनाश नहीं हो सकता और यदि असद् रूप ही हो तो उसका उत्पाद सम्भव नहीं है और चूँकि यह देखा जाता है कि जीव द्रव्य मनुष्य पर्याय से नष्ट, देव पर्याय से उत्पन्न और जीव सामान्य से ध्रुव रहने से वह उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्वरूप है।

कुन्दकुन्द के इस प्रतिपादन से प्रतीत होता है कि उनके समय में जैन वाङ्मय में दर्शन का रूप तो आने लगा था, पर उसका अभी विकास नहीं हो सका था और

न उसमें तर्क का ही विशेष समावेश हो पाया था।

आचार्य शुद्धपिच्छ के तत्त्वार्थसूत्र में कुन्दकुन्द द्वारा प्रदर्शित दर्शन के रूप में कुछ वृद्धि मिलती है। एक तो उन्होंने प्राकृत में सिद्धान्त प्रतिपादन की पुरातन पद्धति को युग के प्रकाश में संस्कृत गद्य सूत्रों में बदल दिया दूसरे, उपपत्ति पूर्वक सिद्धान्तों का निरूपण आरम्भ किया। तीसरे, आगम प्रतिपादित ज्ञानमार्गणा गत मत्यादिज्ञानों को प्रमाण संज्ञा देकर उसके प्रत्यक्ष और परोक्ष दो भेदों का कथन किया। चौथे दर्शनान्तरो में पृथक् प्रमाण रूप में स्वीकृत स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, अनुमान इन्हें मतिज्ञान और शब्द को श्रुतज्ञान कहकर उनका 'आद्येपरोक्षम्' (त०सू० १-...) सूत्र द्वारा परोक्ष प्रमाण में समावेश किया। पाँचवे, प्रमाण की तरह नय की भी अर्थाधिगम का साधन "प्रमाणनयैरधिगमः"-१-६) निरूपित करके उसके नैगमादि सात भेदों का भी सर्व प्रथम निर्देश किया। इस तरह तत्त्वार्थसूत्रकार ने कितना ही नया चिन्तन प्रस्तुत किया। इसके अतिरिक्त तर्क (युक्ति-अनुमान) से सिद्धान्तों के पोषण की दिशा भी प्रदर्शित की अवयवत्रय से मुक्त जीव के ऊर्ध्वगमन-सिद्धान्त का साधन^२ उनकी ही देन है। इतना होने पर भी दर्शन में उन एकान्तवादों, सघर्षों और विवादों का स्पष्ट तार्किक समाधान नहीं आया, जो उनके कुछ समय बाद की चर्चा के विषय हुए।

समन्तभद्र के समय की संघर्षशील स्थिति

विक्रम की दूसरी से पाँचवी शताब्दी का समय दार्शनिक क्रान्ति का समय रहा है। इस काल में विभिन्न दर्शनों में अनेक प्रभावशाली एवं क्रान्तिकारी विद्वान हुए हैं। वैदिक और श्रमण दोनों परम्पराओं में कणाद, गौतम, जैमिनी, अश्वघोष, नागार्जुन जैसे प्रतिद्वन्दी प्रभावक मनीषियों का आविर्भाव हुआ और ये सभी अपने अपने मंडन तथा विरोधी के खण्डन में लग गए। शास्त्रार्थों की घूम मच गयी। मुख्यतया सद्वाद-असद्वाद, शाश्वतवाद-अशाश्वतवाद, अद्वैतवाद-द्वैतवाद और अवक्तव्यवाद-वक्तव्यवाद इन विरोधी युगलों को लेकर तत्त्व की चर्चा

१. षट्खण्डागम १-१-८६।

२. पंचास्तिकायगा० १५, १७।

३. त. सू. १०-५, ६, ७।

की जाने लगी और चार कोटियों से' उसका विचार होने लगा तथा वादियों का उक्त युगलों में से किसी एक-एक कोटि (पक्ष) को ही मानने का आग्रह रहता था। इसका संकेत आचार्य समन्तभद्र ने स्वयम्भूस्तोत्र (श्लो० १०१) की निम्नकारिका से मिलता है—

सदेक-नित्य-वक्तव्यास्तद्विपक्षाश्च ये नयाः ।

सर्वथेति प्रदुष्यन्ति पुष्यन्ति स्यादितिहते ॥१०१॥

लगता है कि इस खीचतान के कारण अनिश्चयवादी सजय के अनुयायी तत्त्व को अनिश्चित ही प्रतिपादन करने थे, जिसकी एक भूलक विद्यानन्द की अष्टसहस्री (पृ० १२६) में प्राप्त होती है। उपर्युक्त युगलों में लगने वाली वादियों की वे चार कोटियाँ इस प्रकार होती थी—

१ सदसद्वाद्

१ तत्त्व सत् है।

२ तत्त्व असत् है।

३ तत्त्व उभय [सद्-असद् दोनों] है।

४ तत्त्व अनुभय [दोनों नहीं] है।

२ शाश्वत-अशाश्वतवाद

१ तत्त्व शाश्वत [नित्य] है।

२ तत्त्व अशाश्वत [क्षणिक] है।

३ तत्त्व उभय [शाश्वत-अशाश्वत दोनों] है।

४ तत्त्व अनुभय [दोनों नहीं] है।

३ अद्वैत-द्वैतवाद

१ तत्त्व अद्वैत है।

२ तत्त्व द्वैत (अनेक) है।

३ तत्त्व उभय (अद्वैत और द्वैत दोनों) है।

४ तत्त्व अनुभय (दोनों नहीं) है।

४ अवक्तव्य-वक्तव्यवाद

१ तत्त्व अवक्तव्य है।

१. चतुष्कोटैविकल्पस्य सर्वान्तेषूक्त्ययोगतः ।

तत्त्वान्यत्वमवाच्यं चेतयोः सन्तानतद्वतोः ॥ आ० ४५

२. तद्व्यंस्तीति न भणामि, नास्तीति च न भणामि, यदपि च भणामि तदपि न भणामीति दर्शनमस्त्विति कञ्चित्, सोपि पापीयान् ।'

अष्टस० पृ० १२६, का० १४ ।

२ तत्त्व वक्तव्य है।

३ तत्त्व उभय (अवक्तव्य और वक्तव्य दोनों) है।

४ तत्त्व अनुभय (दोनों नहीं) है।

समन्तभद्रकी देन

यद्यपि कुन्दकुन्द स्पष्ट निर्देश कर चुके थे कि तत्त्व निरूपण चार कोटियों से नहीं, अपितु सात वचन प्रकारों से होता है। पर उनका यह निर्देश तर्क का रूप न पा सकने से अधिक विश्रुत न हो सका। आचार्य समन्तभद्र ने उसे तर्क का भी रूप दिया और उस पर विस्तृत चिन्तन, विवादोंका शमन, शमनकी पद्धति और स्याद्वाद द्वारा समन्वय का मार्ग भी प्रशस्त किया और इसके लिए उन्होंने अनेक प्रबन्ध लिखे। इन प्रबन्धों द्वारा उन्होंने प्रतिपादन किया कि तत्त्व का पूर्ण कथन उपर्युक्त चार कोटियों से नहीं होता, किन्तु सात कोटियों द्वारा होता है। यथार्थ में तत्त्व 'वस्तु' अनेकान्त रूप है—एकान्त रूप नहीं और अनेकान्त विरोधी दो धर्मों (सत्-असत्, शाश्वत-अशाश्वत, एक-अनेक आदि) के युगल के आश्रय से प्रकाश में आने वाले वस्तुगत सात धर्मों का समुच्चय है और ऐसे-ऐसे अनन्त धर्म समुच्चय [अनेकान्त] विराट् अनेकान्तात्मक तत्त्व-सागर में अनन्त लहरों की तरह लहरा रहे हैं। और प्रत्येक धर्म समुच्चय सप्तक एक-एक सप्तभंगीनय से नेय-ज्ञातव्य अथवा वक्तव्य है। और इस तरह वस्तु में एक दो नहीं, अपितु अनन्त सप्त कोटियाँ [सप्तभङ्गियाँ] निहित है। ध्यातव्य है कि आचार्य समन्तभद्र ने "कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा" की भाँति अनेकान्त स्वीकार नहीं किया, किन्तु प्रतिपक्षी दो धर्मों और उन दो धर्मों को लेकर व्यक्त होने वाले सात धर्मों के समुच्चय को ही अनेकान्त प्रतिपादन किया है और इस तरह वस्तु में अनन्त अनेकान्त समाहित हैं। यही जैन दर्शन के अनेकान्त और इतर दर्शनों के अनेकान्त में मौलिक अन्तर है। और इसी से उत्तर काल में जैन दर्शन के अनेकान्त में विरोध वैयधिकरण्य आदि दोषों की समापत्ति की गई है।

समन्तभद्र ने बतलाया कि वक्ता या ज्ञाता तत्त्व को

१. सप्तभङ्गनयापेक्षो...। आप्तमी० १०४

२. तत्त्वं त्वेकान्तमशेषरूपम्...। युक्त्य० ४६

३. स्वयम्भू० १०१

पत्रिकायें कैसे चलें?

डा० गोकुलचन्द्र जैन, आचार्य, एम. ए., पी-एच. डी.

स्वर्गीय पं० चैनसुखदास जी न्यायतीर्थ के आग्रह पर जैन पत्रिकाओं के विषय में मैंने एक मक्षिप्त टिप्पणी लिखी थी जो जैन पत्रिकाओं के 'स्तर का प्रश्न' शीर्षक से वीरवाणी के १८ अक्टूबर १९६८ के अंक में प्रकाशित हुई थी। पं० चैनसुखदास जी ने इसी पर अपना सम्पादकीय वक्तव्य भी लिखा था। अनेकान्त ने इस विषय पर एक पूरा विशेषांक ही निकालने की बात सोची है, उन बातों को ताजा सन्दर्भ के लिए यहाँ प्रस्तुत करना आवश्यक लगता है—

पचासी जैन पत्र-पत्रिकाओं की जानकारी मुझे है। हो सकता है कुछ और भी हों, जिनकी सूचना मुझे नहीं है। ये पत्र-पत्रिकाएं साप्ताहिक से लेकर वार्षिक तक हैं। कुछेक इस समय बन्द भी हो गई हैं।

जैन पत्र-पत्रिकाओं के विषय में मुख्य रूप से दो प्रश्न उठाए जाते रहते हैं—(१) स्तरीय सामग्री का अभाव, (२) पत्रिकाओं की आर्थिक स्थिति। ये दोनों ही बातें तथ्यपूर्ण हैं। दो-चार पत्रिकाओं के अतिरिक्त प्रायः सभी की सामग्री स्तरीय नहीं होती। इसी प्रकार शायद ही एकाध पत्र हो जो अपने ग्राहक संख्या तथा विज्ञापन आदि के आधार पर आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो। इन दोनों बातों से प्रायः सभी सहमत होंगे। घटिया मुद्रण, प्रकाशन की अनियमितता आदि भी अधिकांश पत्रों के साथ सम्बद्ध हैं। ये सर्वविदित तथ्य हैं, इसलिए इनके विषय में और अधिक कहना या कटु शब्दों में आलोचना करना उचित नहीं है। न उससे स्थिति सुधर सकती है। इन पर विधायक ढंग से सोचा जाना चाहिए।

स्तरीय सामग्री के प्रश्न के साथ कई बातें जुड़ी हैं। अधिकांश पत्रों के सम्पादक सम्पादन कला के विशेषज्ञ नहीं हैं। सामग्री सकलन के लिए भी पर्याप्त प्रयत्न नहीं किये जाते। शायद ही कोई पत्र यह रूपरेखा बनाता हो

कि इस अंक में यह सामग्री देना है और उसके बाद उस रूपरेखा के अनुसार सामग्री प्रयत्न पूर्वक जुटाता हो। विशेषांक के लिए कुछ पत्रिकाएं रूपरेखा बनाती हैं। इसलिए उनमें सामग्री जुट जाती है। जो विशेषांकों के लिए भी रूपरेखा नहीं बनाते उनमें नहीं जुट पाती।

एक बड़ी बान यह है कि एक दो को छोड़कर शायद ही कोई जैन पत्र लेखक को पारिश्रमिक देता हो। पारिश्रमिक की बान को भी छोड़ दिया जाए तो कम-से-कम लेखक इतनी अपेक्षा तो कर ही सकता है कि उसकी रचना के कुछ अनुमोदन उसे प्राप्त हो। कोई भी जैन पत्र अनुमोदन नहीं देता। बाध्य करने पर पत्रिका के पन्ने इधर एक-दो पत्रों ने भेजे हैं। होता यहाँ तक भी है कि पत्र-पत्रिकाएं साल भर में एक बार भी नहीं आती तो भी अपेक्षा यह की जाती है कि उनके लिए महत्वपूर्ण लेख प्राप्त हो। मेरे पास लेखादि के लिए पत्र आते हैं तो मैं प्रयत्न करके भरमक लेख भेज देता हूँ। मुझे आश्चर्य होता है कि जिन पत्र-पत्रिकाओं का वार्षिक शुल्क पाँच-छह रुपये है वे भी नियमित पत्रिका तो नहीं भेजते पर पत्र लिखते हैं कि उन्हें महत्वपूर्ण अप्रकाशित लेख भेज दिया जाए।

मेरी समझ से इस मनःस्थिति को संस्था बदलना होगा। प्रत्येक पत्र यह नियम कर ले कि वह हर अंक में कम-से-कम एक विशिष्ट लेख अवश्य देगा; और प्रयत्न करके उसे प्राप्त करे। यदि उसके लिए पारिश्रमिक देना पड़ता है तो अवश्य दे। पत्रिका के जो अन्य व्यय हैं, उन्हीं में इसे भी शामिल करना चाहिए। कम-से-कम १५ अनुमोदन देने का भी नियम बना लेना चाहिए। इसका आसान तरीका यह है कि जितने अनुमोदन निकालने हैं उतने फार्म एक और छाप लिए जाएं। यह साधारण विवेक की बात है कि जिस लेखक से हम लेखादि प्राप्त

करते है या प्राप्त करना चाहते है उसे नियमित पत्रिका भेजते रहे। मेरी सम्झ मे यदि वर्ष मे एक भी लेख उसने दे दिया तो उस पत्रिका का वार्षिक शुल्क पूरा हो गया सम्झना चाहिए। इन बातों का ध्यान रखा गया तो कोई कारण नहीं है कि पत्रिकाओं को स्तरीय सामग्री न मिले। शुद्ध और सुन्दर मुद्रण का दायित्व पत्रिका के सम्पादक और मुद्रकों का एक अनिवार्य कर्तव्य है।

शोध पत्रिकाएं और उनकी कठिनाइयाँ

ऊपर मैंने सामान्यतः सभी पत्रिकाओं के सम्बन्ध में कहा है। शोध पत्रिकाओं के विषय में कुछ बातें और भी ध्यान देने की हैं। जो पत्रिकाएं शोध के नाम पर निकल रही हैं उनमें खोजपूर्ण सामग्री कितनी रहती है, यह भी विचारणीय है। उनका मुद्रण स्तर, सम्पादन पद्धति तथा भाषा के आधार पर उनके क्षेत्र की व्यापकता बनती है। अभी जितनी भी जैन पत्र-पत्रिकाएं इस प्रकार की प्रकाशित होती हैं उनमें सम्भवतया इनमें से वास्तविक अनुसन्धान से सम्बन्धित सामग्री कितनी है और पहले का अनुसन्धित सामग्री का पुनराकलन कितना है यह देखना बहुत आवश्यक है। जो लेखक के साथ-साथ सम्पादक का भी दायित्व है किन्तु सचाई यह है कि ये सारी पत्रिकाएं सामग्री के लिए भी अतिशय दृष्टि रहती हैं इसलिए उन्हें जो जैसी सामग्री मिल जाती है उसे उसी रूप में छाप देते हैं। सामग्री प्राप्त होने के कारण लगभग वही है जो पहले बताये गये हैं। पत्रिकाओं पर बड़े-बड़े नामधारी लोगों के नाम सम्पादक मण्डल या सम्पादकों में जाते हैं किन्तु वे अपना कितना योगदान उस पत्रिका को देते हैं इसके लिए वे स्वयं प्रमाण हैं।

हिन्दी में कुछ पत्रिकाएं केवल सम्पादकीय लेखों के लिए पढी जाती रही हैं। क्या इह स्थिति शोध पत्रिकाओं की नहीं हो सकती।

पत्रिकाओं के क्षेत्र की व्यापकता का प्रश्न बहुत ही महत्वपूर्ण है इसी पर अन्य कई बातें निर्भर करती हैं। कोई भी लेखक जो यह जानता है कि अमुक पत्रिका में उसका लेख प्रकाशित होने पर कुछ सीमित लोगों के

पाम ही पहुँचेगा और न तो उसे पारिश्रमिक ही मिलेगा और न ही अनुमुद्रण, तो ऐसी स्थिति में भला कौन व्यक्ति होगा जो अपनी बहुत महत्व की सामग्री उस पत्रिका के लिए भेजना चाहे। होता यह भी है कि उन लेखों का सही-सही मुद्रण भी नहीं हो पाता।

बातें और भी बहुत सी हो सकती हैं किन्तु उन सबकी चर्चा करने से अधिक महत्व की बात यह है कि उनके समाधान के विषय में विचार किया जाए। अनेकान्त की संचालन संस्था को मैंने कुछ सुझाव दिये थे जिसमें एक यह भी था कि इसमें हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में लिखी गई सामग्री को प्रकाशित किया जाए, इससे निश्चय ही इसका क्षेत्र विस्तृत हो जाएगा और सामग्री भी स्तरीय तथा पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होने लगेगी। यह अवश्य है कि ऐसा करने पर सम्पादकीय तथा व्यवस्थापकीय दायित्व निश्चित रूप से कुछ अधिक बढ़ जाएगा। मेरा स्पष्ट अभिमत है कि शोध पत्रिकाओं के न चल पाने का सबसे बड़ा कारण उसके प्रसार के क्षेत्र की गकीर्णता ही है। भारत तथा विदेशों में जितने विश्वविद्यालय और शोध संस्थाएं इस समय चल रही हैं उनमें से दशांश से भी किसी भी जैन पत्रिकाओं ने संपर्क साधा हो। यदि उन सबसे सम्पर्क किया जाए तो मुझे विश्वास है कि ग्राहक संख्या भी इतनी हो सकती है कि पत्रिका का संचालन सम्भव हो सके। यह होने पर जब लेखकों को यह प्रतीति होगी कि अमुक पत्रिका में प्रकाशित होने पर उनके शोध कार्य का पर्याप्त प्रसार मिलेगा तो लेखक भी प्रयत्न पूर्वक उस पत्रिका के लिए अपनी सर्वाधिक महत्व की सामग्री भेजना चाहेंगे। वास्तविक अनुसन्धान के लिए यह बात सर्वाधिक महत्वपूर्ण है कि उसकी शोध उपलब्धियाँ कम-से-कम उन लोगों तक पहुँच जाए जो उस विषय के विद्वान हैं या उस विषय में रुचि रखते हैं। सम्पादन, मुद्रण तथा व्यवस्था सम्बन्धी दायित्व पत्रिका के संचालकों का है। यदि इन बातों की ओर ध्यान दिया जाए तो निश्चय ही यह सोचने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी कि पत्रिका चलाई जाए या बन्द कर दी जाए। ★

अनेकान्त पत्र का गौरव

पं० जयन्तीप्रसाद शास्त्री

भारत के शोध-खोज पूर्ण पत्रों में 'अनेकान्त' का स्थान सर्वोच्च रहा है। इस पत्र ने जैन साहित्य और संस्कृति की अभूत पूर्व सेवा की है; परन्तु इस बात में विद्वत्समाज इन्कार नहीं कर सकता कि इस पत्र ने अनेक जैन-जैनतर विद्वानों का मार्ग दर्शन किया है उनकी भ्रान्तियों को दूर किया है उन्हें सन्मार्ग दिखाकर जैन साहित्य के गौरव पूर्ण ग्रंथ और ग्रन्थकारों की ओर उनका ध्यान आकृष्ट किया है। उन्हें इस सत्यता के लिए विवश किया है कि जैन साहित्य के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। उन्हें इस बात के लिए ललकारा है कि यदि तुमने जैन साहित्य के योगदान को भुलाकर लिखा तो एक दिन जागरूक साहित्य जगत् तुम्हें क्षमा नहीं करेगा। तुम्हारे द्वेष और मनोमालिन्य अथवा ज्ञान का अधूरा मानकर तुम्हें धिक्कारेगा। मुझे मालूम है कि कई जैनतर विद्वान जैन साहित्य की जानकारी के लिए इस पत्र के सम्पादकों के पास आये हैं और उन्होंने अपनी-अपनी शोध-खोज पूर्ण रचनाओं में इसका यथास्थान उल्लेख किया है और कई विद्वान् ऐसे भी देखे हैं और उनकी रचनाओं को पढ़ा है जिन्होंने इसके लेखों के आधार से अपनी उपाधिया प्राप्त की है। परन्तु इसके नामोल्लेख न करने की भयकर भूल की है। फिर भी इस पत्र का और इसके सम्पादकों का दृष्टिकोण सदा उदार ही रहा है।

ऐसे मार्ग दर्शक, निर्भीक पत्र को आज चालीस वर्ष हो चुके हैं परन्तु बीच-बीच में अर्थाभाव के कारण कई बार इसका प्रकाशन बन्द करना पड़ा। इसका अर्थ यह नहीं लगाया जा सकता कि इसकी लोकप्रियता कम है। बल्कि यह मानना पड़ेगा कि इसमें शुद्ध इतिहास, सिद्धान्त आदि लेख ही प्रकाशित होते हैं जिसके कारण इसके पाठक और पारखी अत्यल्प हैं। समय-समय पर इसकी आवश्यकता को ध्यान में रखकर ही स्व. मुस्तार सा. ने

इसको पुनः पुनः प्रकाशित करने में समाज के धनी-मानी और विद्वत् समाज का योगदान चाहा और चालू किया।

इस पत्र के अब तक लगभग १६०० मोलह सौ उच्च-कोटि के शोध-खोज पूर्ण लेखों का प्रकाशन किया है। संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश और हिन्दी के २०० दो सौ ग्रंथों का अनुसन्धान कर उनका परिचय प्रदान किया और अनेक ग्रंथभण्डारों की अहर्निश लगन के साथ देखभाल कर तुल्यप्राय सामग्री को जीवन प्रदान किया है। ऐतिहासिक अनेक बातों का उद्घाटन कर उलझी गुत्थियों को मुलभाया है।

धवल, जयधवल और महाधवल जैसे प्राचीन ग्रंथों की नाट्यप्रतीय प्रतियों के फाटों आदि लेकर जनसाधारण के लिए उनके दर्शन को मुलभ बनाया है।

कई विवादस्थ ग्रंथ और ग्रन्थकारों की भ्रान्तियों को दूर किया और सोलह ग्रंथों की खोजपूर्ण प्रस्तावनाओं को लिखा तथा कई ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद भी किया।

इत्यादि अनेक महत्वपूर्ण कार्य अपने ध्येय के अनुरूप ही बड़ी निष्ठा के साथ सम्पन्न किये और कर रहा है।

स्व. पूज्य जुगलकिशोरजी मुस्तार का यह कीर्तिस्तम्भ अथवा मानस्तम्भ आज भी श्री पंडितरत्न परमानन्द जी शास्त्री आदि विद्वानों की पेंनी सूक्ष्म लेखनी से समाज और विद्वानों का मार्गदर्शन कर रहा है। यह बड़े ही गौरव का विषय है। समय समय पर अनेक विद्वानों के लेखों का सहयोग यह सिद्ध करता है कि श्री स्व. मुस्तार सा. आज भी जीवित हैं और इसके लेखक विद्वान् श्रद्धा सहित इस कीर्तिस्तम्भ को सदा ही दीदीप्यमान बनाने पर दृढ़ प्रतिज्ञा से मालूम होते हैं अथवा वे श्री मुस्तार सा. के प्रति अपनी कृतज्ञता भरी श्रद्धा इन लेखों के मध्यम से प्रकट करते रहते हैं।

[शेष पृष्ठ १८६ पर]

अनेकान्त और उसकी सेवाएँ

डा० दरबारीलाल कोठिया

आज से चालीस वर्ष पूर्व सन् १९२६ की २१ अप्रैल की बात है। स्वर्गीय पण्डित जुगलकिशोर जी मुख्तार 'युगवीर' ने इसी दिन महावीर-जयन्ती पर समाज और साहित्य के उत्थान एवं लोकहित की साधना के लिए दिल्ली में एक 'वीर सेवक सघ' स्थापित किया था। तीन तीन महीने के बाद इस संघ ने अपनी प्रवृत्तियों को चरितार्थ करने के लिए २१ जुलाई १९२६ को "समन्तभद्राश्रम" की स्थापना करके समाज और साहित्य सेवा का सकल्प किया था। आश्रम की स्थापना का उद्देश्य और उसके द्वारा किए जाने वाले कार्यों का निर्देश 'अनेकान्त' वर्ष १, किरण १, पृष्ठ ५३ पर किया गया है। इन कार्यों में "अनेकान्त" मासिक का प्रकाशन भी सम्मिलित है, जिसके द्वारा समाज में नवजागरण एवं नवचैतना पैदा करने के अतिरिक्त लुप्त प्राय जैन ग्रंथों की खोज, जैन-आचार्यों और जैन तीर्थंकरों का परिचय एवं इतिहास, जैन पुरातत्त्व और जैन कला का दिग्दर्शन, जैनधर्म तथा जैन दर्शन के स्याद्वाद, अनेकान्त, अहिंसा आदि सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार जैसे महत्त्व के कार्यों के करने की परिकल्पना की गयी थी। इस परिकल्पना का समाज के नेताओं और विद्वानों ने तो स्वागत किया ही था। देश के अनेक नेताओं ने भी उसकी सराहना की थी। राष्ट्र-नेता और काशी हिन्दू विश्व विद्यालय के संस्थापक महामना प० मदनमोहन मालवीय का हम यहाँ वह सदेश-पत्र 'अनेकान्त से' उद्धृत कर रहे हैं जिसमें उन्होंने आश्रम और मासिक पत्र निकालने के प्रति अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रकट की है :—

"आपके आश्रम के उद्देश्य ऊँचे हैं और उनके साथ मेरी सहानुभूति है। आपका एक मासिक पत्र निकालने का विचार भी सराहनीय है। मैं हृदय से चाहता हूँ कि

उस पत्र के द्वारा आप अपने आश्रम के उद्देश्यों को पूरा कर सकें और ऐसे सच्चे सेवक उत्पन्न करें जो वीर के उपासक, वीर गुणविशिष्ट और लोक सेवार्थ दीक्षित हों तथा महावीर स्वामी और जैन आचार्यों के सत् उपदेशों का ज्ञान प्राप्त कर धर्म में दृढ़, सदाचारवान्, देशभक्त हों।"

उपर्युक्त परिकल्पना को श्रेष्ठ मुख्तार साहब ने 'अनेकान्त' पत्र के द्वारा बहुत कुछ साकार मूर्तरूप दिया। यह हमें उनके सम्पादन-काल की 'अनेकान्त' की फाइलों से स्पष्ट ज्ञात होता है। उस अधरे युग में, जब समाज में न अपने धर्म के बारे में जानकारी थी, न तीर्थंकरों और आचार्यों के विषय में विषय में और न साहित्य के सबन्ध में, 'अनेकान्त' ने इन सबकी जानकारी दी। और तो क्या जैन दर्शन का प्रसिद्ध और व्यापक सिद्धान्त 'अनेकान्त' भी भूल चुके थे। 'अनेकान्त' का प्रकाशन आरम्भ करते हुए मुख्तार साहब ने। सम्पादकीय में इसका कुछ चित्र खींचते हुए लिखा है कि 'खेद है, जैनियों ने अपने इस आराध्य देवता 'अनेकान्त' को बिल्कुल भुला दिया है और वे आज एकान्त के अनन्य उपासक बने हुए हैं, उसी का परिणाम है उनका सर्वतोमुखी पतन, जिसने उसकी सारी विशेषताओं पर पानी फेर कर उन्हें ससार की दृष्टि में नगण्य बना दिया है। अस्तु, जैनियों को फिर से अनेकान्त की प्राण प्रतिष्ठा कराने और ससार को अनेकान्त की उपयोगिता बतलाने के लिए ही यह पत्र 'अनेकान्त' नाम से निकाला जा रहा है।"

वस्तुतः 'अनेकान्त' ने द्वादशांग श्रुत क्या है? उसके कर्ता कौन हैं? महावीर स्वामी कब हुए और उन्होंने क्या उपदेश दिया था? उनके बाद कितने केवली और श्रुतकेवली हुए और वे कौन से हैं! गुणधर, घरसेन, कुन्दकुन्द, समन्तभद्र, पूज्यपाद, अकलक पात्रकेशरी, विद्या-

नन्द, नेमिचन्द्र आदि आचार्यों का समय क्या है और उन्होंने कौन-कौन से ग्रंथ बनाए ? इन सभी बातों का सप्रमाण प्रकाशन किया। जिन ग्रंथों का दूसरे आचार्यों के ग्रंथों में उल्लेख है पर उपलब्ध नहीं है उनकी खोज का प्रयास भी अनेकान्त ने किया है। जैन धर्म की अहिंसा का स्वरूप क्या है ? अनेकान्त स्याद्वाद और सप्तभगों में पारस्परिक क्या सम्बन्ध है और वे क्या है ? जैसे सैद्धान्तिक विषयों पर भी अनेकान्त, मे प्रकाश डाला गया है। कहने का तात्पर्य यह कि 'जैन हितैषी' ने जिस शोधखोज का श्रोगणेश किया था, अनेकान्त ने उसे पूर्णरूप दिया नये-नये लेखकों और विचारकों को जन्म दिया।

यद्यपि जिस 'अनेकान्त' मासिक का चालीस वर्ष पहले उदय हुआ उसे उत्थान और पतन की अनेक अवस्थाओं में से गुजरना पड़ा है फिर भी वह आज जीवित है और बौद्धिक सामग्री दे रहा है। यदि वह लगातार चालू रहता तो उसकी चालीस वर्षों की चालीस फाइलें होती। किन्तु उसकी बाइस ही फाइलें हो सकी है। तात्पर्य यह कि वह आज बाईसवें वर्ष में चल रहा है। इस बीच में उसे आर्थिक कठिनाइयों आदि के कारण बन्द होना पड़ा। यहाँ तक कि वह अब द्वैमासिक के रूप में कई वर्ष से निकल रहा है। संतोष यही है कि वह बाधाओं से जूझता हुआ भी अपना अस्तित्व ही बनाए हुए नहीं है अपितु महत्त्वपूर्ण सामग्री भी प्रस्तुत कर रहा है।

२४ अप्रैल १९४२ से ५ मार्च १९५० तक वीर सेवा मन्दिर और अनेकान्त से मेरा खास सम्बन्ध रहा है। मैं

जानता हूँ कि श्रद्धेय मुख्तार साहब, मुझे और ५० परमानन्दजी शास्त्री को अनेकान्त की सामग्री को जुटाने में कितनी शक्ति और समय लगाना पड़ता था। किसी-किसी अड़्ड की तैयारी में तो हम तीनों का पूरा ही समय लग जाता था, मन्दिर के अन्य कार्य गौण हो जाते थे। लेकिन यह सत्य है कि सारी सामग्री शोध और खोजपूर्ण होती थी। जनवरी १९४८ से फरवरी ५० तक लगभग दो वर्ष 'अनेकान्त' का सहसम्पादन हमने भी किया था। अतः इस अनुभव के आधार से यह कह सकते हैं कि 'अनेकान्त' विद्वत्प्रिय और विद्वद्भोग्य पत्र रहा है। यह प्रसन्नता की बात है कि वह आज भी अपनी मर्यादा को बनाए हुए है।

अन्त में अनेकान्त के वर्तमान संचालकों में हमारा अनुरोध है कि जिन कार्यों को 'अनेकान्त' ने अपने जन्म-काल के समय करने का सकल्प किया था उनमें से निम्न-कार्य अवश्य किए जाना चाहिए :—

१. लुप्त-प्राय जैनग्रंथोंकी खोज, २. पूर्ण जैन ग्रंथावली का सकलन, ३. जैन मूर्तियों के लेख संग्रह क्षेत्रों और भारतवर्ष के समस्त जैन मन्दिरों की मूर्तियों के सम्पूर्ण जैन लेखों का संग्रह), ४. जैन ताम्रपत्र, चित्र और सिक्कों का संग्रह, ५. जैन मन्दिरावली (मूर्ति स-स्थादि-सहित—अर्थात् सब जगह के जैन मन्दिरों की पूरी सूची, ६. त्रिपिटिक आदि प्राचीन बौद्ध ग्रंथों पर से जैन इतिवृत्त जैन सम्बन्धी अनुकूल या प्रतिकूल सभी वृत्तान्त) का संग्रह, ७. प्राचीन हिन्दू ग्रन्थों पर से जैन इतिवृत्त का संग्रह आदि वे सब कार्य, जो अनेकान्त वर्ष १, किरण ६, ७, पृ० ४१५-४१६ पर दिए गए हैं। ●

[पृष्ठ १८४ का शेषांश]

वीर-सेवा-मन्दिर एक प्रसिद्ध शोध संस्था है। जिसने जैन संस्कृत के लिए बड़ा योगदान दिया है। उसके द्वारा प्रकाशित साहित्य महत्वपूर्ण और ठोस है।

वीर सेवा मन्दिर द्वारा किये गये कार्यों की कुछ झलक इस इतिहास साहित्य अंक से लग जावेगी। मैं संस्था के इस प्रतिष्ठित पत्र की हृदय से शुभ कामना करता हूँ कि यह पत्र सदा विद्वानों का समार्ग दर्शक बना रहे, क्योंकि विद्वानों की सूक्ष्म दृष्टि पूर्ण लेखनी ही समाज

और देश की प्रगति की प्रतीक होती है।

'दिगम्बर समाज का सौभाग्य है कि उसमें ऐसा खोजपूर्ण पत्र प्रकाशित होता है, समाज को और विद्वानों को इसे अपनाना चाहिये तथा उसको ग्राहक संस्था में वृद्धि होना चाहिए। समाजके धनीमानी व्यक्तियों को ऐसे महत्वपूर्ण पत्रको आर्थिक सहयोग प्रदान करना जैन संस्कृति की सेवा करना है। आशा है समाज इसे अवश्य सहयोग प्रदान करेगी, जिससे वह मासिक रूपमें प्रकाशित हो सके।

जैनविद्या का अध्ययन-अनुशीलन : प्रगति के पथ पर

प्रो० प्रेम सुमन जैन एम. ए., शास्त्री

जैन विद्या का अध्ययन-अनुशीलन पिछले पचास वर्षों में काफी आगे बढ़ा है। प्राचीन परम्परा के जैन विद्वानों ने एक ओर जहाँ जैन विद्या के ग्रन्थों को प्रकाश में लाने, उनका मूल रूप में अध्ययन करने-कराने तथा अन्य अनेक प्राचीन सस्कारों को सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया है, वहाँ उन्होंने जाने-अनजाने एक ऐसी पीढ़ी का भी निर्माण किया है, जिसने जैन विद्या के अध्ययन एवं पठन-पाठन को अनुसन्धानिक रूप प्रदान किया है। यह मन्त्रोप का विषय है कि अब जैन विद्या का अध्ययन परम्परागत एवं अधुनातन दोनों पद्धतियों से गतिशील हो रहा है।

संगोष्ठी-सेमिनार-शिविर

जैनविद्या के अध्ययन अनुसन्धान के क्षेत्र में इधर कुछ समय से न केवल जैन अपितु जैनेतर विद्वान भी अध्ययन-रत हुए हैं। उनके इस रुझान एवं लगन से स्पष्ट है कि भारतीय प्राचीन वाङ्मय एवं सांस्कृतिक उपादानों के सम्पूर्ण अध्ययन के लिए जैन वाङ्मय एवं सस्कृतिक के अध्ययन की अनिवार्यता स्वीकार कर ली गई है। की जा रही है। इस सम्बन्ध में व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों प्रकार के अध्ययन प्रस्तुत किये गये हैं। यथा—

मई १९६८ में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा शिवाजी विश्वविद्यालय कोल्हापुर में एक त्रिदिवसीय 'प्राकृत-सेमिनार' का आयोजन हुआ। इसमें जैन विद्या के लगभग ४० अध्येता सम्मिलित हुए, जिन्होंने प्राकृत भाषा एवं साहित्य के अध्ययन-अनुसन्धान एवं प्रचार-प्रसार के कई महत्वपूर्ण निर्णय लिए।

अक्टूबर १९६८ में अ० भा० प्राच्य विद्या सम्मेलन के अवसर पर भारतीय ज्ञानपीठ के तत्वावधान में वराणसी में 'जैन-साहित्य संगोष्ठी' का आयोजन किया गया। लगभग ५० विद्वान इसमें सम्मिलित हुए। जिन्होंने जैन विद्या के अध्ययन-अनुशीलन आदि से सम्बन्धित विविध

पक्षों पर सामूहिक रूप से विचार-विमर्श किया। अध्ययन में जुट जाने की शक्ति का सम्बर्द्धन किया।

संगोष्ठी के उपरान्त सागर में वर्षी स्नातक परिषद् के तत्वावधान में १ जून तक 'स्नातक शिविर' का आयोजन किया गया। इसमें विभिन्न विश्वविद्यालयों तथा शिक्षा संस्थाओं से सम्बद्ध स्नातक शामिल हुए, जिनमें जैन-साहित्य, दर्शन, इतिहास, प्राचीन भारतीय सस्कृति, पुरातत्व, कला, भाषाविज्ञान एवं गणित के विशेषज्ञ तथा अनुसन्धित्सु थे। शिविर काल में शोध-कार्य में सलग्न स्नातकों ने अपने कार्य को आगे बढ़ाया एवं अग्रिम अध्ययन की योजना बनाई। उन्होंने भारत तथा विदेशों में मानविकी और विज्ञान से सम्बन्धित जैन विद्याओं के अध्ययन-अनुसन्धान में सक्रिय रूप से इन विद्वानों, शोधार्थियों एवं गस्त्रियों में परस्परिक सम्पर्क, सहयोग एवं शोध प्रवृत्तियों को गति देने के उद्देश्य से 'जैनालाजीकल रिसर्च सोसाइटी' की स्थापना का भी निर्णय लिया।

शिविर के तुरन्त बाद २३ जून से २७ जून ६९ तक पूना विश्वविद्यालय के सस्कृत प्रगति अध्ययन केन्द्र में 'प्राकृत-सेमिनार' का आयोजन हुआ। इसमें लगभग ४० विद्वान सम्मिलित हुए। प्राकृत भाषा और साहित्य विषयक ३० निबन्ध पाठ तथा दो विशिष्ट भाषण हुए। यह सेमिनार कोल्हापुर में आयोजित प्राकृत सेमिनार का अगला चरण था।

इस प्रकार इन सेमिनार, संगोष्ठी और शिविर के आयोजनों ने जैनविद्याओं के अध्येताओं को एक ऐसा अवसर दिया कि वे एक साथ मिल-बैठकर जैनविद्या के अध्ययन-अनुशीलन की प्रगति के सम्बन्ध में सक्रिय हो सकें। उनकी पारस्परिक प्रदेशगत, भाषागत आदि अनेक दूरियाँ इन सम्मेलनों से दूर हो गयीं। यह एकरूपता निश्चित ही जैन विद्या के प्रचार-प्रसार के लिए शुभ संकेत है।

ज्ञानपीठ-पत्रिका

जैनविद्या के अध्ययन-अनुशीलन की प्रगति में अनेकान्त, श्रमण आदि जैन पत्र-पत्रिकाओं का सहयोग भी काफी रहा है। इधर ज्ञानपीठ-पत्रिका के दो विशेषांकों ने इस क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया है। ज्ञानपीठ-पत्रिका का प्रथम विशेषांक अ० भा० प्राच्य विद्या सम्मेलन वाराणसी अधिवेशन के अवसर पर गत वर्ष 'जैन-साहित्य संगोष्ठी स्मारिका' के रूप में प्रस्तुत किया गया था। इसमें जैन विद्याओं के अध्ययन-अनुसन्धान आदि से सम्बन्धित महत्वपूर्ण एवं दुर्लभ सामग्री दी गई है। द्वितीय विशेषांक उक्त सम्मेलन के कलकत्ता अधिवेशन के अवसर पर इस वर्ष प्रकाशित किया गया है। इसमें भारतीय विद्या की उपेक्षित शाखाओं—विशेषकर जैन वाङ्मय और संस्कृति से सम्बन्धित शोध-कार्य की आधारभूत सामग्री प्रस्तुत की गई है। जैन वाङ्मय के अध्ययन-अध्यापन से लेकर प्राचीन साहित्य के आधुनिक प्रस्तुतिकरण तक की चर्चा इसके निबन्धों में है। भारतीय विश्व विद्याचर्चों में जैनविद्या के अध्यापन की व्यवस्था के अब तक के स्वरूप को यह विशेषांक उजागर करता है। इस प्रकार की बहुमूल्य सामग्री के संकलन एवं प्रकाशन के लिए भारतीय ज्ञानपीठ के संचालक, श्री लक्ष्मीचन्द जैन डा० गोकुलचन्द जैन के प्रयत्न सराहनीय हैं। जैन विद्या के अध्ययन-अनुशीलन की प्रगति के लिए ज्ञानपीठ-पत्रिका का प्रति वर्ष एक विशेषांक प्रस्तुत होता रहेगा, ऐसी आशा है।

प्राकृत एवं जैनजन्म विभाग :

जैन वाङ्मय और संस्कृति के अध्ययन-अनुसन्धान को गति देने में अ० भा० प्राच्य विद्या सम्मेलन पूना ने भी महत्वपूर्ण योगदान किया है। प्रारम्भ में इस सम्मेलन में जैन विद्या का कोई विभाग नहीं था। श्री डा० आ० ने० उपाध्ये अकेले जैन विद्वान थे, जो इस सम्मेलन के अधिवेशनों में सम्मिलित होते थे। उनके निरन्तर प्रयत्नों के फलस्वरूप—में इस सम्मेलन में 'प्राकृत एवं जैनजन्म' नामक विभाग को सम्मिलित किया गया। स्वतन्त्र विभाग बन जाने पर भी दो-चार विद्वान ही इसमें सम्मिलित हो पाते थे। किन्तु कुछ समय पहले जब जैन

विद्या के अध्ययन-अनुसन्धान में जैनैतर विद्वान उत्साहपूर्वक कार्य करने लगे तो जैन विद्वानों का ध्यान भी इस ओर गया। वे भी अनुसन्धान कार्य में रुचि लेने लगे। विगत चार-पाच वर्षों से 'प्राकृत एवं जैनजन्म' विभाग में सम्मिलित होने वाले विद्वानों की संख्या बढ़ गयी। सम्मेलन के अलीगढ़ अधिवेशन में इस विभाग में लगभग २० विद्वान सम्मिलित हुए। बनारस अधिवेशन में ३० निबन्ध पढ़े गए। और इस वर्ष यादवपुर विश्व विद्यालाल कलकत्ता में आयोजित अधिवेशन में इस विभाग के निमित्त लगभग पचास विद्वान् उपस्थित हुए। जैनविद्या के अध्ययन-अनुसन्धान के क्षेत्र में इस प्रकार का उत्साह निश्चित ही हर्ष का विषय है।

सम्मिलित विद्वान :-

अ० भा० प्राच्य विद्या सम्मेलन कलकत्ता में आयोजित अधिवेशन में सम्मिलित विद्वानों में कतिपय इस प्रकार है :-

डा० आ० ने० उपाध्ये, कोल्हापुर, डा० एच० सी० भयाणी, अहमदाबाद, डा० उमाकान्त शाह, बडौदा, पं० के० भुजबली शास्त्री, धारवाड़, पं० दलमुख मालवणिया, अहमदाबाद, डा० नमिचन्द्र शास्त्री, आरा, डा० पी० एस० उपाध्ये, बम्बई, डा० गुलाबचन्द्र चौधरी, नालन्दा, डा० कृष्णचन्द्र आचार्य, भुवनेश्वर, श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन, कलकत्ता, डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल, जयपुर, डा० हरीन्द्र भूषण जैन, उज्जैन, प्रो० वी० के० खडबडी, धारवाड़, डा० रत्ना श्रीषन्, बंगलोर, प्रो० एम० एस० रणदिवे, सतारा, श्रमती रणदिवे, सतारा, डा० राजाराम जैन, आरा, डा० नरेन्द्र भानावत, जयपुर, श्रीमती शान्ता भानावत, डा० गोकुलचन्द्र जैन, बनारस, डा० देवेन्द्रकुमार जैन, इन्दौर, डा० के० आर० चन्द्रा, अहमदाबाद, डा० भागचन्द्र जैन, नागपुर, श्रीमती पुष्पा जैन, नागपुर, प्रो० प्रेमसुमन जैन, बीकानेर, प्रो० रामप्रकाश पोद्दार, वैशाली, डा० परममित्र शास्त्री, राची, प्रो० वी० मोहरिल, नागपुर, श्री चन्द्रभाल द्विवेदी, बनारस, डा० अजित सुखदेव बनारस, डा० दरवारी लाल कोठिया, बनारस, श्री ए० जे० शर्मा, श्रीकार्तिकचन्द्र शाह, श्री लालचन्द्र जैन, वाराणसी, श्री सन्मत्कुमार जैन, वाराणसी, कु० एन० एन० हल्दीकर, बम्बई, कु० पी० एस० पोटनिस, बम्बई,

श्री प्रकाशचन्द्र सिधई, सागर, डा० पी० वी० वापट ।

अन्य विद्वान् जो स्वीकृति के बाद भी अन्यान्य कारणों से अधिवेशन में उपस्थित न हो सके—

डा० नथमल टाटिया, वैशाली, डा० मोहनलाल मेहता, वाराणसी, डा०, हीरालाल जैन, जबलपुर, डा० विमल प्रकाश जैन, जबलपुर, डा० देवेन्द्रकुमार शास्त्री, रायपुर, डा० वीरेन्द्रकुमार जैन, गुना, प्रो० भागचन्द्र भागेन्दु, सीहोर, प्रो० लक्ष्मीचन्द्र जैन, सीहोर, प्रो० सुमतिकुमार जैन, अलीगढ़, प्रो० पूर्णचन्द्र, सागर, प० गोपीलाल श्रमर, सागर आदि ।

अधिवेशन में पठित निबन्ध !

इस अधिवेशन में जैन विद्या से सम्बन्धित लगभग ४० निबन्ध 'प्राकृत एवं जैनजन्म विभाग' तथा अन्य विभागों के अन्तर्गत पढ़े गये । उनके विषय इस प्रकार हैं—

साहित्य :

- १ द समराडच्चकहा एण्ड विलासवईकहा ✓
- २ अपभ्रंश साहित्य की एक अप्रकाशित महत्वपूर्ण कृति-पुष्पासवकहा ✓
- ३ ब्रह्म जयसागर का सीताहरण
- ४ कुवलयमालाकहा में वर्णित शास्त्र और शास्त्रकार
- ५ द प्रमेयकण्ठिका : एन अनपब्लिशड संस्कृत वकं आन जैन लाजिक
- ६ द टाइटिल आफ उत्तराध्ययनमूत्र
- ७ नायिकाञ्ज इन गाहासत्तसइ
- ८ प्रजापता और पट्खण्डागम
- ९ साहित्य-मीमांसा : प्राकृत टेक्स्ट रिस्टोरड ✓

१० अपभ्रंश का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ : सिरिपालचरिड ✓

भाषा-विज्ञान :

- ११ द अपभ्रंश पेसेज फ्राम अभिनवगुप्ताञ्ज तन्त्रसार एण्ड प्रातिश्रिकावृत्ति ✓
- १२ प्राकृत फेमिनाइन फार्मस् एन्डिंग इन या
- १३ ओनोमेटो पोइटिक वर्डस् इन प्राकृत
- १४ प्राकृतजन्म इन वेदाञ्ज ✓
- १५ मृच्छकटिक और चारुदत्त में प्राकृत का प्रयोग

धर्म-दर्शन :

- १६ द रोल आफ मारेलेटी प्लेज एण्ड स्टोरीज फार द प्रोपेगेशन आफ रिलीजन
- १७ द कन्सेप्ट आफ 'जीव' इन जैनजन्म

१८ अ निगलेक्टेड फील्ड आफ इण्डियन साइकालाजी : जैन योग

१९ धर्मपद और जैनधर्म : एक तुलनामूलक अध्ययन

२० जैन रहस्यवाद

२१ जैनधर्म में आत्मा का स्वरूप : एक विवेचन

२२ जैन तर्कशास्त्र को समस्तभद्र की देन

२३ द बुद्धिष्ट एंड जैन आईडिया आफ ए वतारमल कन्सेप्शन आफ लिविंग बीइंग

२४ श्रीमद् रायचन्द्र के दार्शनिक विचार

संस्कृति :

२५ आबजवेशन आन सम सोसैज आफ द पुण्याश्रवकथा कोश

२६ द एस्पेक्ट आफ लव एज रिभील्ड इन द अपभ्रंश वर्सेज कोटेड इन द प्राकृत ग्रामर आफ हेमचन्द्र

२७ तीर्थङ्करत्व व बुद्धत्वप्राप्ति के निमित्तों का तुलनात्मक अध्ययन

२८ जैन टेम्पल्स इन कर्नाटक

२९ कुवलयमालाकहा में वर्णित ७२ कलाएँ

३० जैनधर्म में मूर्तिपूजा का विकास

३१ कुवलयमालाकहा में वर्णित चित्रकला : एक अध्ययन इतिहास :

३२ उद्योतन एण्ड हरिभद्रसूरि

३३ आनन्दपुर इन जैन केनानीकल लिटरेचर

३४ जैन साहित्य में वर्णित मगध

३५ जैन साहित्य एवं संस्कृति का केन्द्र : राजस्थान

जैनालॉजीकल रिसर्च सोसायटी :

अ० भा० प्राच्य विद्या सम्मेलन के इस कलकत्ता अधिवेशन में दिनांक ३० अक्टूबर ६६ को सायकाल

✓ "जैनालॉजीकल रिसर्च सोसायटी" का श्रीमान् प० दल-मुख मालवणिया के सारगर्भित अभिभाषण द्वारा उद्घाटन सम्पन्न हुआ । डा० आ० ने० उपाध्ये, डा० गोकुलचन्द्र जैन एवं प्रो० एम० वाई० वैद्या ने अपने भाषणों द्वारा इस सोसायटी के उद्देश्य एवं कार्यों पर प्रकाश डाला । जैनविद्या के अध्ययन अनुशीलन को एक सुनिश्चित गति प्रदान करने के लिए स्थापित इस "जैनालॉजीकल रिसर्च सोसायटी" का सक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

उद्देश्य—

(क) भारत तथा विदेशों में मानविकी तथा विज्ञान से

सम्बन्धित जैन विद्याओं के अध्ययन-अनुसन्धान में सक्रिय रूप से रत और रुचि रखने वाले विद्वानों, शोधार्थियों और सस्थाओं में पारस्परिक सम्पर्क सह-योग एवं शोध प्रवृत्तियों को गति देना ।

(ख) जैनविद्या से सम्बन्धित विभिन्न शोध-परियोजनाओं को सम्पन्न करने-कराने का प्रयत्न करना ।

(ग) जैनविद्या से सम्बन्धित शोध-निबन्धों एवं स्वतन्त्र कृतियों के प्रकाशन आदि की समुचित व्यवस्था करना ।

सदस्यता :

मानविकी तथा विज्ञान से सम्बन्धित जैन विद्याओं के अध्ययन-अनुसन्धान में सक्रिय रूप से रत या रुचि रखने वाले विद्वान, शोधार्थी, सस्थाएँ एवं अन्य व्यक्ति इस सोसायटी के सदस्य हो सकेंगे ।

रिसर्च जनरल :

‘जैनालाजिकल रिसर्च सोसायटी’ विद्वानों के बीच सम्पर्क-सहयोग स्थापित रखने के साथ-साथ हिन्दी-अंग्रेजी में एक शोध-पत्रिका भी प्रकाशित करेगी, जिसके प्रारम्भिक विशेषांक में इस प्रकार की सामग्री संकलित होगी :

- (१) देश-विदेश में जैन विद्या सम्बन्धी अध्ययन-अनुसन्धान के कार्यों का विवरण ।
- (२) जैन विद्या के अध्ययन-अनुसन्धान के लिए देश-विदेश में उपलब्ध सुविधा-साधनों का विवरण ।
- (३) जैन विद्या के अनुसन्धान एवं प्रकाशन में सलग्न संस्थाओं का परिचय ।
- (४) पी० एच० डी० एवं डी. लिट् उपाधि के निमित्त स्वीकृत शोध-प्रबन्धों के सक्षिप्त-सार ।
- (५) जैनविद्या की किसी भी भाषा में प्रकाशित पुस्तकों एवं निबन्धों की समीक्षा ।
- (६) जैन विद्या के अध्ययन-अनुसन्धान के सम्बन्ध में अनेक दुर्लभ महत्वपूर्ण सूचनाएँ ।
- (७) जैन विद्या के अनुसन्धान कार्य के लिए कुछ चुने हुए महत्वपूर्ण विषय ।

‘जैनालाजिकल रिसर्च सोसायटी’ का अगला अधिवेशन अ. भा. प्राच्य विद्या सम्मेलन के २६वें अधिवेशन के अवसर पर उज्जैन में होगा । सोसायटी अधिवेशन में

सम्मिलित होने वाले विद्वानों से पहले सम्पर्क स्थापित करेगी ताकि प्राकृत एवं जैनज्म विभाग में जाने वाले निबन्धों के स्तर में सुधार एवं संख्या में वृद्धि हो सके ।

सम्पर्क-सूत्र :

‘जैनालाजिकल रिसर्च सोसायटी’ (J. R. S.) के कार्य-संचालन के लिए एक सहयोगी-समिति का भी गठन किया है, जो डा० गोकुलचन्द्र जैन, वाराणसी एवं प्रो० लक्ष्मीचन्द्र जैन सीहोर को सहयोग प्रदान करेगी । सोसा-के सम्बन्ध में सभी प्रकार की सूचनाएँ प्राप्त करने हेतु इस पते पर पत्र-व्यवहार किया जा सकता है ।

डॉ० गोकुलचन्द्र जैन,
जनरल सेक्रेटरी जे. आर. एस.
कृष्णा निवास, गुरुवाग,
वाराणसी-१ (भारत)

प्राच्य विद्या सम्मेलन का अग्रिम अधिवेशन :

अ० भा० प्राच्य विद्या सम्मेलन का अग्रिम अधिवेशन १९७१ अक्टूबर में विक्रमविश्वविद्यालय के तत्वावधान में उज्जैन में सम्पन्न होगा । इस अधिवेशन में प्राकृत एवं जैनज्म विभाग के अध्यक्ष डा० नमिचन्द्र शास्त्री, आरा चुने गये हैं । ऐसी आशा है, इस अधिवेशन में जैन-विद्या के अध्ययन-अनुशीलन में रत अनेक विद्वान सम्मिलित होंगे । शोध-निबन्धों की संख्या भी गत अधिवेशनों से काफी बढ़ेगी । उनका स्तर भी सुधरेगा ।

प्रशिक्षण की आवश्यकता :

विगत ५-६ वर्षों से अ० भा० प्राच्य विद्या सम्मेलन के अधिवेशनों में सम्मिलित होने रहने से एक बात यह स्पष्ट हुई है कि यद्यपि प्राकृत एवं जैनज्म विभाग में निबन्धों की संख्या में वृद्धि हुई है, किन्तु उनके स्तर में कोई वृद्धि दृष्टिगोचर नहीं हुई । अन्य विषयों के विद्वान तो समय-समय पर अन्य छोटे सम्मेलनों, सेमिनारों आदि में सम्मिलित होते रहते हैं । निबन्ध पढ़ते रहते हैं । अतः उनका स्तर भी सुधर जाता है । किन्तु जैनविद्या के अध्ययताओं को ऐसे कम ही अवसर प्राप्त होते हैं । प्राचीन परम्परा के विद्वानों को तो और भी कम । अतः यह बहुत आवश्यक है कि निबन्ध लेखन में आलोचनात्मक व काल-विभाजन की दृष्टि को ध्यान में रखा जाय

‘जैनालाजिकल रिसर्च सोसायटी’ ने इस प्रकार के निर्देशन के कार्य को करने की घोषणा की है। व्यवहार में आने पर यह एक शुभकार्य होगा।

दूसरे, जैनविद्या से सम्बन्धित कोई न कोई अ० भा० स्तर पर एक सेमिनार प्रतिवर्ष आयोजित होना चाहिए। उससे भी पर्याप्त जानकारी प्राप्त करने का अवसर मिलता है। इधर कुछ समय पूर्व तेरापन्थी महासभा ने ‘दर्शन एवं संस्कृति परिषद’ के आयोजन द्वारा एक ऐसा क्रम प्रारम्भ किया था। किन्तु वह भी अवरुद्ध सा हो गया है। उसे पुनः चालू होना चाहिए। समाज के अन्य वर्गों से भी ऐसे प्रयत्न होना चाहिए। अब ऐसा समय आ गया है कि विद्वानों के निर्माण एवं संरक्षण से समाज उदासीन नहीं रह सकता। अतः समाज का भी उत्तरदायित्व जैनविद्या के प्रचार-प्रसार के कार्यों में बढ गया है।

समाज का दायित्वबोध :

महानगरी कलकत्ता में आयोजित इस अधिवेशन में सम्मिलित विद्वानों एवं पठित निबन्धों का उक्त विवरण एक ओर जहाँ जैनविद्या के अध्येताओं के उत्साहवर्द्धन में सहायक होगा, वहाँ जैन समाज के जागरूक नागरिकों के दायित्वबोध का उत्प्रेरक भी। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण अधिवेशन में सम्मिलित विद्वानों ने कलकत्ता जैन समाज द्वारा आयोजित विभिन्न स्वागत-सम्मान समारोहों में देखा। श्री जैन सभा ने अधिवेशन के पूर्ण से ही विद्वानों से सम्पर्क स्थापित किए। उन्हें हर तरह की सुविधा प्रदान करने के लिए आमन्त्रित किया। इसी का परिणाम था कि विश्वविद्यालय में निवास-भोजनादि की व्यवस्था होते हुए भी अनेक विद्वानों ने जैन समाज के स्नेहपूर्ण आतिथ्य को ही स्वीकार किया। यह एक ऐसा प्रसंग था जिसने जैनविद्या के अध्येताओं एवं समाज के नागरिकों को पारस्परिक सहयोग के लिए अवसर प्रदान किया।

२६ अक्टूबर ६६ को श्री जैन सभा ने जैन भवन के भव्य प्रांगण में समस्त जैन विद्या के अध्येताओं के स्वागतार्थ आयोजन किया। विद्वानों के परिचय के बाद उन्हें माल्यार्पण एवं पुस्तकें आदि भेंट देकर समाज ने अपना आदर व्यक्त किया। इस अवसर पर विद्वानों

की ओर से भाषण करते हुए डा० आ० ने० उपाध्ये ने कहा—“आपके इस स्वागत-सम्मान से हमारी जिम्मेदारी और बढ गयी है। अब हमारा लेखन, मनन और चिंतन न केवल अनुसन्धान से ही सम्बन्धित रहेगा अपितु हमें समाज की समस्याओं के प्रति भी सचेत एवं सक्रिय होना पड़ेगा। आपके इस स्नेह से हम आश्चर्यचकित हुए हैं कि हमारा अध्ययन-अनुसन्धान साधनों के अभाव में अब रुकेगा नहीं।”

जैन सभा के अतिरिक्त दि० जैन महिला परिषद् स्थानकवासी समाज, जैनश्वेताम्बर पंचायती मंदिर एवं जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी महासभा की ओर से भी समागत विद्वानों का स्वागत-सम्मान किया गया। १ नवम्बर को प्रातः महासभा के स्वागत समारोह में सम्मेलन के अनेक मनीषी विद्वान् भी सम्मिलित हुए। सम्मान का आभार मानते हुए। इस सम्मेलन के अध्यक्ष डा० पी० एल० वैद्य ने कहा—“मुझे हर्ष है कि जैन धर्म के श्रावक अपनी समाज के विद्वानों को पुनः वह सम्मान और सहयोग प्रदान करने के लिए तत्पर हुए हैं, जिसके आधार पर सम्पूर्ण जैन वाङ्मय समृद्ध हुआ है। हम लोगो ने जैन वाङ्मय का अध्ययन इसलिए नहीं किया या कर रहे हैं कि इसके पीछे कोई आर्थिक लाभ है, अपितु हम यह महसूस करते हैं कि बिना जैन विद्या के अध्ययन के भारतीय वाङ्मय और संस्कृति का अध्ययन पूर्ण नहीं होता।”

इसीदिन शाम को जैनभवन में विद्वानों एवं प्रबुद्ध नागरिकों की उपस्थिति में एक विचार गोष्ठी का भी आयोजन हुआ, जिसमें जैन विद्या के प्रचार-प्रसार से सम्बन्धित अनेक वक्ताओं के भाषण हुए। इन सब आयोजनों के मंचालन एवं व्यवस्था में श्री मिश्रीनाल जैन, श्री कमलकुमार जैन, श्री प० वशीधर शास्त्री, श्री जुग-मन्दिरदास जैन, एवं श्री श्रीचन्द्रामपुरिया, भवरलाल नाहटा आदि समाज के प्रमुख व्यक्तियों का सम्पूर्ण सहयोग रहा।

आशा है, आगामी अधिवेशन में भी विद्वानों एवं समाज के व्यक्तियों का इसी प्रकार का सहयोग प्राप्त होता रहेगा, जिससे जैनविद्या का अध्ययन-अनुशीलन निरन्तर प्रगति के पथ पर बढ़ता रहेगा। ●

भगवान महावीर का २५सौवां निर्वाण दिवस

पं० परमानन्द शास्त्री

ससार के प्रसिद्ध महापुरुषों में भगवान महावीर का स्थान सर्वोपरि है। उन्होंने जन कल्याण का जो महत्वपूर्ण कार्य किया वह उनकी महत्ता का स्पष्ट द्योतक है। महावीर ने देश में फैले हुए सकुचित वातावरण को समुन्नत बनाया, और विचारों में ओदार्य लाने के लिए अनेकान्त जैसे सिद्धान्त का प्रचार व प्रसार किया, ऊँच-नीच की भावना का निरसन किया, और जगत को अध्यात्म का वह सन्देश दिया जिससे जनता अपनी भूल को जानने में समर्थ हो सकी। और आत्म-साधना का जो मार्ग कुठित सा हो गया था उसमें नवजीवन का संचार किया। देश काल की उस विषम परिस्थिति में जबकि जनता अधर्म को धर्म का रूप मान रही थी, यज्ञादि क्रियाकाण्डों में जीव हिंसा का प्रचार हो रहा था, पशुओं के आर्तनाद से भूमण्डल हिल रहा था। स्त्रियों और शूद्रों को धर्मसेवन का कोई अधिकार न था। विलविलाट करता हुआ पशुकुल 'हो कोई अवतार नया' की रट लग रहा था। ऐसी विषम परिस्थिति में महावीर ने भर जवानी में राजकीय वैभव का परित्याग किया। और द्वादश वर्ष की कठोर तपश्चर्या द्वारा आत्म-साधना की। और केवलज्ञान (पूर्णज्ञान) प्राप्त कर ३० वर्ष तक विविध देशों और नगरों में विहार कर धर्मोपदेश द्वारा लोक का कल्याण किया। जनता ने धर्म-अधर्म के मूल्य को पहचाना और यज्ञादि हिंसा काण्ड का परित्याग किया। महावीर ने जन शापण और सामाजिक अन्याय अत्याचारके विरुद्ध आवाज बुलन्द की। समता, दया और अपरिग्रह के सिद्धान्त पर अधिक जोर दिया। उन्होंने बताया कि पर पीड़ा से भय और दंर की अभिवृद्धि होती है और मानसिक सन्तुलन बिगड़ता है। विद्वेष की परम्परा सुदृढ़ होती है। ससार में सभी को सुखपूर्वक जीने का अधिकार है, सभी को अपने प्राण प्यारे

हैं, कोई भी मरना नहीं चाहता, सभी जीव अभ्युदय के पात्र हैं, सबको अपने आत्मीय कुटुम्ब की तरह मानना, उनसे प्रेम और समानता का व्यवहार करना सच्ची मानवता है।

ऐसे महान उपकारी परमसन्त की निर्वाण शताब्दी मनाना अत्यन्त आवश्यक है। जन साधारण में उनकी अहिंसा और उनके सदुपदेशों का प्रचार करना, उन्हें जीवन में उतारना प्रत्येक मानव का कर्तव्य है।

जैन समाज का कर्तव्य है कि भगवान महावीर की २५ सौवी निर्वाण शताब्दी को सगठितरूप में प्रेम से मनाने के लिए दृढ प्रतिज्ञा रहे। श्रीमती इंदिरा गान्धी प्रधानमंत्री भारत सरकार की अध्यक्षता में जो रूप-रेखा १३ दिसम्बर को अहिंसा भवन शंकर रोड में बनाई गई है उसे पल्लवित कर देश और विदेश के विद्वानों और महापुरुषों को सम्मिलित कर उसे विशाल अन्तर्राष्ट्रीय रूप देना चाहिए। उसमें सभी का सहयोग वाञ्छनीय है, साम्प्रदायिक व्यामोह से दूर रहकर जनता में महावीर के सिद्धान्तों को प्रचार करने का उपक्रम करना चाहिए। मुनि श्री सुशील कुमार जी इस पुनीत कार्य में सलग्न हैं। महावीर का असाम्प्रदायिक जीवन परिचय और उनके सिद्धान्तों का संक्षिप्त मौलिक रूप को विविध भाषाओं में प्रकाशित कर जनसाधारण में प्रसारित करना चाहिए। जिससे जनसाधारण महावीर के वास्तविक स्वरूप से परिचित हो सके। दिगम्बर समाज का खास कर्तव्य है कि वह निर्वाण शताब्दी की योजना में भाग ले और उसे सफल बनाने का प्रयत्न करे। साथ ही ऐसी कोई ठोस योजना संयोजित करे, जिससे महावीर के सिद्धान्तों का प्रचार हो सके। आशा है विद्वत् परिषद् इस सम्बन्ध में अपनी कोई ठोस योजना निर्धारित कर कार्य करेगी।

ग्रोम् ग्रहम्

अनेकान्त

परमागमस्य बीजं निषिद्धजात्यन्धसिन्धुरविधानम् ।

सकलनयविलसितानां विरोधमथनं नमाम्यनेकान्तम् ॥

वर्ष २२ }
किरण ५ }

वीर-सेवा-मन्दिर, २१ दरियागंज, दिल्ली-६
वीर निर्वाण सवत् २४६६, वि० सं० २०२६

{ दिसम्बर
१९६९ }

श्री आदिनाथ स्तुति

(सवेया मात्रा ३२)

ज्ञान जिहाज बंठि गनधर से, गुनपयोधि जिस नाहि तरे हैं ।
अमर समूह आनि अवनिसौं, घसि घसि सोस प्रनाम करे हैं ।
किधौ भाल-कुकरम की रेखा, दूर करन की बुद्धि धरे हैं ।
ऐसे आदिनाथ के अहनिस, हाथ जोरि हम पांय परे हैं ॥१॥

काउसग मुद्रा धरि वनमें, ठाड़े रिषभ रिद्धि तजि बीनी ।
निहचल अंग मेरु है मानौं, वोउ भुजा छोर जिन बीनी ।
फंसे अनंत जंतु जग चहले, दुखी देखि करना चित लीनी ।
काढ़न काज तिन्हें समरथ प्रभु, किधौ बांह ये दीरघ कीनी ॥२॥

करनों न कछु करन तें कारज, तातें पानि प्रलंब करे हैं ।
रह्यो न कछु पांयन तें पंखो, ताहीतें पद नाहि टरे हैं ।
निरख चुके नैनन सब यातें, नैन नासिका अनो धरे हैं ।
कहा सुन कानन यों कानन, जोगलीन जिनराज खरे हैं ॥३॥

—कविबर भूधरदास

“अनेकान्त” में प्रकाशित रचनाएँ

- 1 ये रचनाएँ इस पत्र की अब तक की २१२ किरणों में प्रकाशित हैं, जिन्हें १० वर्गों में अकारादि क्रम से रखा गया है।
- २ रचना और उनके लेखक के बाद लिखे गये अंकों में प्रथम अंक वर्ष का और द्वितीय अंक पृष्ठ का सूचक है।
- ३ धारावाहिक रचनाओं की प्रायः एक ही बार लिख कर उनके वर्ष और पृष्ठ के अंक अलग-अलग दिये गये हैं।
- ४ इन रचनाओं के आधार पर निकाले गये कुछ आंकड़े और नतीजे, इसी अंक में प्रकाशित मेरे लेख “अनेकान्त” द्वैमासिक : एक दृष्टि में देखे जा सकते हैं।
- ५ इस सूची और (लेखक-सूची) को तैयार करने में मेरे प्रिय शिष्य सर्व श्री सत्यनारायण तिवारी, अरुण सराफ, अरुण भट्ट तथा अरविन्द जैन आदि ने बहुत श्रम किया है, जिसके लिए उन्हें हृदय से आशीर्वाद देता हूँ।]

१. सैद्धांतिक (धर्म, दर्शन, न्याय, व्याकरण)

गोपीलाल ‘अमर’

अ

अज्ञान निवृत्ति, पं० माणिकचंद न्यायाचार्य ६।२३३
 अतिचार-रहस्य, पं० हीरालाल सि० शा० १४।२२१
 अतिथि संविभाग और दान, पं० हीरालाल सि० शा० १४।५६
 अदृष्टवाद और होनहार, श्री दौलतराम ‘मित्र’ ८।१६२
 अदृष्ट शक्तियाँ और पुरुषार्थ, बा० सूरजभानजी २।३११
 अधर्म क्या है ?, श्री जैनेन्द्रकुमार जी २।१६३
 अनेकान्त, महात्मा भगवानदीन ६।१४३
 अनेकान्त और अनाग्रह की मर्यादा, मुनि श्री गुलाबचन्द १७।१२७
 अनेकान्त और अहिंसा, पं० सुखलाल जैन ४।५४१
 अनेकान्त और पं० अबादास शास्त्री, श्री क्षु० गणेशप्रसाद वर्षी १०।१२२
 अनेकान्त और स्याद्वाद, पं० बशीधरजी व्याकरणाचार्य २।२७

अनेकान्त का नया वर्ष सम्पादकीय ११।७०
 अनेकान्त की मर्यादा, पं० चैनमुखदास १।२६
 अनेकान्त के इतिहास पर एक दृष्टि, बाबू कामताप्रसाद १।२५
 अनेकान्त दृष्टि, पं० देवकीनन्दन सि० शा० १।५६१
 अनेकान्त पर लोकमत १।१२४, १।१८७, १।२५६, १.३१५, १।४२२, १।५४६, १।६६६
 अनेकान्त पर लोकमत २।१७७, २।२२५, २।२७४, २।३२५
 अनेकान्त के सर्वोदय तीर्थों पर लोकमत ११।१६७
 अनेकान्त माहात्म्य १।६५
 अनेकान्तवाद, मुनि श्री चौधमल २।२१
 अनेकान्तवाद, सापेक्षवाद और ऊर्जागुणमिकी बा० दुलीचन्द जैन M.S.C. ११।१४३
 अनेकान्त रसलहरी, जुगलकिशोर मुस्तार १०।३
 अनेकान्त की सहायता का सदुपयोग ११।२४२
 अन्तरद्वीपज मनुष्य—सम्पादक २।३२६

अप्रावृत्त और प्रतिसंलीनता, मुनि श्री नथमल १८।१६०
अमूल्य तत्त्वविचार, श्रीमद्राजचंद्र १।१४०
अवतारवाद और महावीर बा० पद्मराज जैन १।३०४
अविरत सम्प्रदृष्टि जिनेश्वर का लघुनन्दन है,—

श्री क्षु० गणेशप्रसाद जी वर्णी १४।३३०

अर्थ का अनर्थ, श्री पं० कैलाशचंद्र सि० शा० १०।१२६
अर्थप्रकाशिका: प्रमेयरत्नमाला की द्वितीय टीका,
पं० गोपीलाल अमर १८।६८

अश्रमण प्रायोग्य-परिग्रह, क्षु० सिद्धसागर ११।२०७
असजी जीवों की परम्परा, डा० हीरालाल जैन १३।१७५
अहिम परम्परा, विश्वम्भरनाथ पाडे ११।३१
अहिंसा, बसंतकुमार एम. एम. सी ३।३६०
अहिंसा और अनेकान्त, प. वेचरदास १।४३
अहिंसा और अपरिग्रह, श्री भरतमिह उपाध्याय १४।१४०
अहिंसा और जैन संस्कृति का प्रसार, पं. अनंतप्रसाद
B. Sc Eng. १२।२३३

अहिंसा और मासाहार, प्रिम्प. ए. चक्रवर्ती ८।१४८
अहिंसा और सत्याग्रह, बा. अनन्तप्रसाद जैन १०
अहिंसा और हिंसा, क्षु० सिद्धसागर ९।२३७
अहिंसा और अतिवाद, दरवारीलाल गन्धर्व ३।४३०
अहिंसा का वैज्ञानिक प्रस्थान, काका कालेलकर १८।३६
अहिंसा की कुछ पहलियाँ, किशोरीलाल मशरुवाला ३।१६२
अहिंसा की समझ, श्री किशोरीलाल मशरुवाला ३।५०४
अहिंसा की युगवाणी, डा. वामुदेवशरण अग्रवाल १२।२८६
अहिंसा के कुछ पहलू, श्री काका कालेलकर ३।४६१
अहिंसा तत्त्व, क्षु० गणेशप्रसाद वर्णी ६।२१६
अहिंसा तत्त्व, ब्र. शीतलप्रसाद ४।६३
अहिंसा तत्त्व, प. परमानन्द शास्त्री ३।३१६
अहिंसा तत्त्व, पं. परमानन्द शास्त्री १३।६०
अहिंसा धर्म और निर्दयता, चन्द्रशेखर शास्त्री ३।८६
अहिंसा सम्बन्धी एक महत्वपूर्ण प्रश्नावली—
विजयसिंह नाहर ३।६०५

अहो रात्रिकाचार, क्षु० सिद्धसागर १३।८६

आ

आकिंचन्य धर्म, पं. परमानन्द शास्त्री १२।१४०
आचार और विचार, डा. प्रद्युम्नकुमार जैन ज्ञानपुर
१८।१०३

आचार्य भावसेन के प्रमाण विषयक विशिष्ट मत, डा.
विद्याधर जोहरापुरकर १७।२३

आज का मेस्मेरेजिम और जैनधर्म का रत्नत्रय, बा.
केशवप्रसाद ६।५७

आठ शकाग्रो का समाधान, क्षु० सिद्धसागर १२।२७२

आत्म-दमन, मुनि श्री नथमल १८।४२

आत्मविद्या की अदूटधारा, बाबू जयभगवान एडवोकेट
११।२३५

आत्महित की बातें, क्षु० सिद्धसागर १३।१६५

आत्मशक्ति का माहात्म्य, श्री चन्दगीराम त्रिपाठी ६।२४६

आत्मा—श्री १०५ पूज्य क्षु० गणेशप्रसाद जी वर्णी १२।३३

आत्मा और पुद्गलका अनादिसम्बन्ध, श्री लोकपाल १०।५५

आत्मा, कर्म, सृष्टि और मुक्ति, श्री लोकपाल १०।८७

आत्म की श्रद्धा का फल, क्षु० गणेशप्रसादजी वर्णी १०।३५

आत्मा के त्याज्य और ग्राह्य के दो रूप, जैन ग्रीवा से
१४।२२०

आत्मा चेतना या जीवन, बा. अनन्तप्रसाद जी B. Sc.

Eng. १२।८०, १२।१४३

आत्मिक क्रान्ति, बा. ज्योतिप्रसाद जैन एम. ए. ३।२८१

आमेर भण्डार का प्रशस्तिसंग्रह, परमानन्द शा. ११।१६३

आधुनिक विज्ञान और जैन दर्शन, पदमचन्द जैन १६।१७३

आर्जव, प. अजितकुमार जैन शास्त्री १२।१३०

आर्य और म्लेच्छ, संपादक ३।१८१

आलोचन युगवीर, ३।११६

इ

इलायची—ला. जुगलकिशोर कागर्ज ११।३५६

उ

उच्चगोत्र का व्यवहार कहाँ?—सम्पादक ३।१३१

उत्तम क्षमा—पं. परमानन्द जैन शास्त्री १२।११६

उत्तम मार्ग—क्षु० गणेशप्रसाद वर्णी १२।१२३

उत्तम तप—परमानन्द शास्त्री १२।१३१

उमास्वामी का तत्त्वार्थसूत्र—प. सुखलाल १।४४१

उत्तमपिणी और अवसपिणी—स्वामी कर्मानन्द ३।६५

ऊ

ऊँच नीच गोत्र विषयक चर्चा—बालमुकुन्द पाटीदी २।१६५,

२।७०७

ए

एकान्त और अनेकान्त (कविता)—पं. पन्नालाल जैन ४७५

क

कथित सोपज्ञ भाष्य—बा. ज्योतिप्रसाद एम. ए. ६१२११

कर्म और उसका कार्य—पं. फूलचन्द सिद्धातशास्त्री ६१२५२

कर्म बन्ध और मोक्ष—प. परमानन्द जैन शास्त्री ४११४१

कर्मों का रासायनिक सम्मिश्रण—बा. अनन्तप्रसाद जैन

B. Sc.-Eng. १२११२, १२१५८

केवलज्ञान की विषय मर्यादा—प. माणिकचन्द ६१३१७,

६१३६५

क्या असंजी जीवोंके मनका सद्भाव मानना आवश्यक है ?

—पं. बशीधर व्याकरणाचार्य १३१२१७

क्या जैन मतानुसार अहिंसा की साधना अव्यवहार्य है ?—

श्री दीनतराम 'मित्र' १११२००

क्या तत्त्वार्थ सूत्र-जैनागम-समन्वय में त. सू. के बीज हैं—

चन्द्रशेखर शास्त्री ४१२४६

क्या तीर्थंकर प्रकृति चौथे भव मे तीर्थंकर बनाती है ?

—ब० रतनचन्द मुख्तार ८११६६

क्या यही विश्व धर्म है ?—बा. अनन्तप्रसाद जैन बी. एस.

सी. १११११०

क्या वर्तमान का वह अर्थ गलत है ?—पं. दरबारीलाल

७१२१४

क्या व्यवहार धर्म निश्चय का साधक है ?—

जिनेन्द्र कुमार जैन १३१२२१

क्या सम्यग्दृष्टि अपर्याप्तकाल मे स्त्रीवेदी हो सकता है ?—

बाबू रतनचन्द मुख्तार ६१७३

क्या सेवा साधना में बाधक है ?—रिषभदास रांका १११२०२

क्या सिद्धान्त ग्रन्थों के अनुसार सब ही मनुष्य उच्चगोत्री

है ?—कैलाशचन्द सि. शास्त्री ३११५६

क्या सुख दुख का अनुभव शरीर करता है—भु. सिद्धसागर

१३११६७

ग

गांधीजी का अनासक्तियोग—प्रो. देवेन्द्रकुमार जैन एम. ए.

११११८३

गांधीजी की जैनधर्म को देन—पं. सुखलाल सघवी ६१३६६

गरीब का धर्म—बा. अनन्तप्रसाद बी. एस. सी. ११११३६

गीता का धर्म—प्रो. देवेन्द्रकुमार जैन १११२७१

गोत्र कर्म पर शास्त्रोंजी का उत्तर लेख—सम्पादक ३१७७

गोत्र कर्म सम्बन्धी विचार—ब्र. शीतलप्रसाद ३१२५६

गोत्र कर्माश्रित ऊँचनीचता—बा. सूरजभान ६१३३

गोत्र विचार—जैन हितैषी से उद्धृत ३११८६

गोत्र विचार—फूलचन्द सि. शा. ६११८६, ६१३०६

गोत्र विचार परिशिष्ट—प. फूलचन्द ६१३२८

गोत्र लक्षणों की सदोषता—पं. ताराचन्द जैन दर्शनशास्त्री

३१६८०

च

चतुर्मास योग—मिलापचंद कटारिया १६१११७

चारित्र्य का आधार—श्री काका कालेलकर ८१२६३

ज

जगत का संक्षिप्त परिचय—प. अजितकुमार शास्त्री

१४१२३०

जगत रचना—श्री कर्मानन्द ७१६६

जगत्पुरु अनेकान्त—संपादकीय ६१२२२

जन्म-जाति-गर्वापहार—युगवीर १२१३०४

जयस्याद्वाद—प्रो. गो. खुशालचन्द जैन एम. ए. ६११५४

जातिमद सम्यक्त्व का बाधक है—बा. सूरजभान २११८७

जातिया किस प्रकार जीवित रहती है—

ला. हरदयाल एम. ए. ३१६०

जिनकल्पी अथवा दिग्म्बर साधु का ग्रीष्म-परीषद्-जय

४१२४१

जिन प्रतिमा वन्दन—सम्पादकीय ४११२६

जिन शासन (प्रवचन)—श्री कानजी स्वामी १२१२११

जिनेन्द्र मुख और हृदय शुद्धि—सम्पादक ४१३०१

जीव का अस्तित्व: जिज्ञासा और समाधान

मुनि श्री नथमल १८११३२

जीव का स्वभाव—श्री जुगलकिशोर कागजी ६१२५१

जीवद्वारा सत्प्ररूपणा के सूत्र ६३ में मूडविद्रीकी ताड़ पत्रीय

प्रतियों में सजद पाठ है—प्रो. होरालाल ७११५०

जीवन और धर्म—जमना लाल जैन विशारद ६१२७३

जीवन और विश्व के परिवर्तनों का रहस्य—श्री अनन्तप्रसाद

जैन B.Sc. Eng. १०११६७

जीवन में अनेकान्त—बा. अजितप्रसाद एडवोकेट ४१२४३

जैन अध्यात्म-पं. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य ६।३३५
जैन और बौद्ध धर्म एक नहीं—प्रो. जगदीशचन्द्र एम. ए.
३।२६१
जैन तर्क में हेतुनुमान—डा. प्रद्युम्नकुमार २०।१३०
जैन दर्शन और उसकी पृष्ठभूमि—प. कैलाशचन्द्र जैन
शास्त्री १७।१०७
जैन दर्शन और निःशस्त्रीकरण—साध्वी मजुला १६।२४०
जैन दर्शन और पातञ्जल योगदर्शन—साध्वी सधमित्राजी
१७।११४
जैन दर्शन और विश्व शान्ति—प्रो. महेन्द्र कुमार न्याया-
चार्य १४।१०७
जैन दर्शन और वेदान्त—मुनि श्री नथमल १६।१६७
जैन दर्शन का नयवाद—प. दरबारी लाल कोठिया ४।३१३
जैन दर्शन में अर्थाधिगम चिन्तन—प. दरबारी लाल कोठिया
१८।६१
जैन दर्शन में मुक्ति-साधना—अगरचंद नाहटा ३।६४०
जैनदर्शनमें सप्तभगीवाद—उपा. मुनि श्रीअमरचंद १७।२५३
जैन दर्शन में सप्त भगीवाद—मुनि श्री अमरचंद १८।२०
जैन दर्शन में सर्वज्ञता की संभावनाएँ—प. दरबारीलाल १८।२
जैन दृष्टि का स्थान तथा उसका आधार—महेन्द्रकुमार शा.
३।३३
जैन धर्म और अनेकान्त—प. दरबारी लाल सत्यभक्त
३।३६३०
जैनधर्म और अहिंसा—बा. अजितप्रसाद एडवोकेट ४।६५
जैनधर्म और जैन दर्शन—श्री अम्बुजाक्ष सरकार एम. ए.
बी. एल. १२।३२२
जैनधर्म और समाजवाद—प्रो. महेन्द्रकुमार जैन न्यायाचार्य
११।२१
जैनधर्म का अहिंसा तत्व—श्री मुनि विजय १।३५३
जैनधर्म की उदारता और जैनियों की सकीर्णता—
प. दरबारी लाल सत्यभक्त १।३६५
जैनधर्म की चार विशेषताएँ—पन्नालाल साहित्याचार्य ६।२२
जैनधर्म की विशेषता—आ. सूरजभान वकील २।२०१
जैन सध के छह अंग—डा. विद्याधर जोहरा पुरकर १७।२३१
जैनधर्म तर्क सम्मत और वैज्ञानिक—मुनि श्री नगराज
१७।८२

जैनधर्म परिचय गीता जैसा हो—श्री दौलतराम मित्र
३।६५७
जैन पूजाविधि के सम्बन्ध में जिज्ञासा—बा. माईदयाल जैन
बी. ए. बी. टी. ११।३६६
जैनधर्म में अहिंसा—प. दरबारी लाल १।२७७
जैनधर्म में वर्ण व्यवस्था कर्म से ही है जन्म से नहीं
जैन बौद्ध दर्शन—प्रो. उदयचंद जैन, १६।१५८
जैन भूगोलवाद—प्रो. घासीराम १।३०२
जैन मन्त्रशास्त्र और ज्वालिनिमत्—जुगल किशोर १।४२७,
४५५
जैन वाङ्मय का प्रथमानुयोग—ज्योतिप्रसाद जैन एम. ए.
२।१६६
जैन संस्कृति का सप्ततत्त्व और पट्टव्यवस्था पर प्रकाश
प. वशीधर जैन व्याकरणाचार्य ८।१८०
जैन संस्कृति का हृदय—प. मुखलाल सधवी ५।३६०
जैन साधुओं के निष्क्रिय एकाकी साधना की छेड़छाड़—
दौलतराम मित्र ११। १५७
जैनागमों में समय गणना—अगरचन्द नाहटा ३।६४
जैनेन्द्र व्याकरण के विषय में २ भूले—युधिष्ठिर
मीमामक १०।६२
जैनो की अहिंसा—प. देवकीनन्दन १।२०५
जैनो की प्रमाण मीमांसा पद्धति का विकास—प. मुखलाल
१।२६३
जोगिचर्या—पं० परमानंद जैन शास्त्री ८।३६८
जीवन और विश्व के परिवर्तनों का रहस्य—श्री अनंतप्रसाद
प्रसाद जैन B.Sc-Eng. १०।१६७
उ
डा. अम्बेदेकर और उनके दार्शनिक विचार—
प. दरबारी लाल जैन कोठिया १०।१६५
डा. भायाणी एम. की भारी भूल—जुगलकिशोर १३।४
ए
णवकार मन्त्र माहात्म्य—प. हीरालाल सिद्धांत शास्त्री
१४।१५६
त
न्याय का वास्तविक रूप—क्षुल्लक गणेशप्रसाद जी वर्णी
६।२५०, ६।१२३

तत्त्वार्थ सूत्र का महत्त्व—पं. वशीधर व्याकरणाचार्य

१२१/३५

तीर्थ और तीर्थकर—पं. हीरालाल सिद्धांत शास्त्री १३१४८

तत्त्वार्थ सूत्र का अतः परीक्षण—पं. फूलचंद शास्त्री ४१५८३

तत्त्वार्थ सूत्र का अतः परीक्षण—पं. फूलचंद शास्त्री ५१५१

तत्त्वार्थ सूत्र के बीजों की खोज—पं. परमानन्द शास्त्री ४११७

तीर्थकर क्षत्रिय ही क्यों ?—कर्मनन्द ६१२६६

तीर्थङ्करो के चिन्हों का रहस्य—बा. भोलानाथ मु. ११११६

६३वें सूत्र में सजद पद का विरोध क्यों ?—

न्या. पं. दरबारीलाल जैन कोठिया ८१२४७

द

दर्शन और ज्ञान के परिपेक्ष्य में स्याद्वाद और सापेक्षवाद—

मुनि श्री नगराज २११६८

दर्शनका अर्थ “मिलना”—श्री प. रतनलाल कटारिया १५१५०

दर्शनोपयोग व ज्ञानोपयोग एक तुलनात्मक अध्ययन—

प. बालचन्द सि. शास्त्री २११११६

दर्शनो की आस्तिकता और नास्तिकता का आधार—प.

प. ताराचन्द जैन दर्शन शास्त्री ३१३५२

दर्शनो की स्थूल रूप रेखा—प. ताराचन्द जैन ३११६१

दशधर्म और उनका मानव जीवन में संबंध—प. वशीधर

व्याकरणाचार्य १११११५

दश लाक्षणिक धर्म स्वरूप—कविवर रङ्गू १२११०८

दान विचार—क्षुल्लक श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी ६१२६७

दिगम्बर जैन आगम—मा. बलदेव प्रसाद उपाध्याय M. A.

८१३५६

दिगम्बर श्वेताम्बर परम्परा में महाव्रत अणुव्रत समिति

और भावना—मुनि श्री रूपचन्द १८११११

दिगम्बर श्वेताम्बर मान्यता भेद—श्री अग्रचन्द नाहटा

३१५४३

दिव्यध्वनि—(बा. नानकचन्द जी एडवोकेट) २१५६२

दुख का स्वरूप—प. पुरुषोत्तमदास साहित्यरत्न ६१५६

देव और पुरुषार्थ—प. पुरुषोत्तमदास ६१५६

दोहाणुप्रेक्षा—लक्ष्मीचन्द (अपभ्रंश रचना) १२१३०२

द्वितीय जम्बूद्वीप—प. गोपीलाल अमर शास्त्री एम. ए.

२०१२२ १२/२०

द्रव्य मन—प. इन्द्रचन्द शास्त्री ३१५०

ध

धर्म और नारी—बा. ज्योतिप्रसाद जैन एम. ए. ८१२६५

धर्म और वर्तमान परिस्थितियाँ—नेमिचन्दशास्त्री ६१४६७

धर्म और विज्ञान का संबंध—पं. गोपीलाल अमर १६११२

धर्म का रहस्य—पं. फूलचन्द सिद्धांत शास्त्री ६१३०३

धर्म क्या ?—श्री जैनेन्द्रकुमार २१४७

धर्म क्या है ?—प. बंशीधर व्याकरणाचार्य ६१६

धर्म का रहस्य—प. फूलचन्द सिद्धांत शास्त्री ६१३

ध्यानारूढ़ आदि जिनेन्द्र—सपादक ७१५१

न

नयो का विश्लेषण—प. बंशीधर व्या. ६१८३, ६१२८, ६,

६१२४७ ६१२६६

नव पदार्थ निश्चय (वादीभसिह)—श्री पं. दरबारीलाल

कोठिया १०१४७

नियतिवाद—प्रो. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य एम. ए. १४८५

निरतिवादी समता—सत्यभक्त १३१७४

निश्चय और व्यवहार—ब्र. छोटेलाल जैन ४१३६२

निश्चय नय और व्यवहारनय का यथार्थ निर्देश—

निश्चय और व्यवहार के कणोपल पर पद प्राभूतः

एक अध्ययन—मुनि श्री रूपचन्द १२१६२

प

पतित पावन जैनधर्म—क्षुल्लक गणेशप्रसाद जी वर्णी

१०१३४३

परीक्षामुख के मुक्तो और परिच्छेदो का विभाजन एक

समस्या—प. गोपीलाल अमर १८१५६

पाप का बाप—पं. जुगलकिशोर ११५०५

पारस्परिक विभेद में अभेद की रेखाएँ—साध्वी कनककुमारी

२११५३

पिण्ड शुद्धि के अन्तर्गत अदृष्टि आहार पर विचार—

प. बालचन्द सि. शा. २११५५

पुण्य पाप व्यवस्था—सम्पादक ४१३७७

पुरातन जैन साधुओं का आदर्श—पं. हीरालाल सि. शा.

१३११०

पूजा स्तोत्र जप ध्यान और लय—पं. हीरालाल सिद्धांत

शास्त्री १४११६३

पृथ्वी गोल नहीं चपटी है एक अमेरिकन विद्वान १३१७६

पेड पीधों के संबंध में जैन मान्यताओं की वैज्ञानिकता—

प. चैनमुखदास ६।१३६

ब

बुद्धघोष और स्याद्धाद—डा. भागचन्द जैन १६।२६२

बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों में दीक्षा—प्रो. जगदीश चन्द एल. ए.

३।१४३

बौद्ध तथा जैन धर्म पर एक सरसरी नजर—बी. एल. सरफि

२।३०३

ब्रह्मचर्य—महात्मा गांधी ३।५०३

ब्रह्म जिनदास—परमानन्द शा. १।१३३३

ब्रह्म जिनदास का एक अज्ञात रूपक काव्य—श्री अग्रचन्द

नाहटा १।१३१३

भ

भक्ति योग रहस्य—सम्पादक ४।५५

भगवान महावीर और उनका लोक कल्याणकारी सन्देश—

डा. हीरालाल एम. ए. १०।२५६

भगवान महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ—

परमानन्द शास्त्री १।१५५

भगवत् शरण में कारण—सम्पादक ८।६७

भगवान महावीर और उनका अहिंसा सिद्धांत—

न्या. प. दरबारीलाल कोठिया ५।५६

भगवान महावीर के शासन में गोत्र कर्म—कामताप्रसाद

३।२८

भगवान महावीर और उनके दिव्य उपदेश—प. हीरालाल

सिद्धांत शास्त्री १४।२५३

भगवान महावीर और बुद्ध परिनिर्वाण—मुनि श्री नगराज

२०।१८७, २०।२१६

भगवान महावीर प्ररूपित अनेकान्त वास्तविक स्वरूप—

श्री कान जी स्वामी ७।१६८

भगवान महावीर की भांकी—बा. जयभगवान ५।१११

भगवान महावीर की शिक्षा—डा. कुतलकुमारी १।४५३

भाग्य और पुरुषार्थ—आ. सूरजभान ३।३५६, ३।४०८

भारतीय दर्शन की तीन धाराएँ—भगवानदास एम. ए.

१७।१६४

भारतीय दर्शन में जैन दर्शनका स्थान—हरिसत्य भट्टाचार्य

३।४६७

भारतीय दर्शन शास्त्र—प. माधवाचार्य १।१६६

भारतीय दर्शनों में प्रमाण भेद की महत्वपूर्ण चर्चा—

डा. दरबारीलाल कोठिया

म

मनुष्यनी के सजद पद के संबंध में विचारणीय शेष प्रश्न—

डा. हीरालाल जैन एम. ए. ८।१६३

मनुष्योमें ऊचता नीचता कयो ?—प. बशीधर व्या. २।६००,

३।६७१

मनुष्यो में ऊचता नीचता कयो ?—बशीधर व्याकरणाचार्य

३।५१६

महात्मा गांधी के २७ प्रश्नों का समाधान—श्री मद्राजचन्द्र

३।५२६, ३।५४१

मुक्ति और उसका उपाय—बा. भागीरथ जी वर्णी २।५३६

मुनियों और श्रावकों का शुद्धोपयोग—प. हीरालाल जैन

सि. शा. १३।४४

मूल में भूल—वा. अनन्त प्रमाद जैन BSC. १०।४२१

मूलाचार की कुन्दकुन्द के अन्य ग्रन्थों के साथ समता—

प. हीरालाल सि. शा. १२।३३७

मूलाचार की मौलिकता और उनके रचयिता—पं. हीरालाल

सि. शा. १२।३३७

मूलाचार सग्रह ग्रन्थ न होकर आचारांग के रूप में मौलिक

ग्रन्थ है—प. परमानन्द शा. १२।३५५

मेडक के विषय में एक शंका—दोलतराम मित्र ३।७१८

मेडक के विषय में शंका समाधान—दोलतराम मित्र ५।३२३

मेडक के विषय में शंका समाधान—सिधई नेमिचन्द्र ४।२६२

मोक्ष तथा मोक्ष मार्ग—पं. बालचन्द काव्यतीर्थ ७।१४४

मोक्षमार्ग की दृष्टि से सम्यक्ज्ञान का निरूपण—

पं. सग्नाराम जैन बडौत १७।१८२

मोक्ष मुख—श्री मद्राजचन्द्र ३।४०७

य

युक्त्यनुशासन की प्रस्तावना—पं. जुगलकिशोर मुस्तार

११।२६७

योग मार्ग—बा. हेमचन्द मोदी १।५३६

व

वसुनंदि श्रावकाचार का संशोधन—पं. दीपचन्द पाण्ड्या
और रतनलाल जी कटारिया केकड़ी १२१२०१

वास्तविक महत्ता—श्रीमद्राजचन्द्र ३१२३६

विनय से तत्त्व की सिद्धि है—श्री मद्राजचन्द्र ३१११८

विविध प्रश्न—श्रीमद्राजचन्द्र ३१३२, ३१७६३, ८१, ३१८६

विवेक का अर्थ—श्रीमद्राजचन्द्र ३११२०

विरोध और सामंजस्य—डा. हीरालाल जैन १११२७३

विश्व एकता और शान्ति—अनन्तप्रसाद १११२८४

विश्व की अहिंसा संदेश—बा. प्रभुलाल जैन ६११११

वीतराग की पूजा क्यों ?—सम्पादक ४११३६

वीर का जीवन मार्ग—जयभगवान जैन वकील ३११४१

वीर तीर्थावतार—सम्पादक (युगवीर १११४

वीर के दिव्यउपदेश की एक भूलक—

जयभगवान जैन वकील ३१६५

वीर प्रभु के धर्म में जातिभेद को स्थान नहीं है—

बा. सूरजमान २१४६३

वीर भगवान का वैज्ञानिक धर्म—बा. सूरजमान ३१६२३,
२१६४१

वीरवाणी की विशेषताएँ और ससारको उनकी अलौकिक
देन—डा. दशरथलाल जैन कौशल ८१२२

वीर शासन की विशेषता—अगरचंद नाहटा ३१४१

वीर शासन में स्त्रियों का स्थान—इन्दुकुमारी 'हिन्दी रत्न'
३१४५

वीरों की अहिंसा का प्रयोग—महात्मा गांधी ३१६०७

वैज्ञानिकयुग और अहिंसा—श्री रतन जैन पहाड़ी ८३१२६

वैद्यता और उपादेयता—डा. प्रद्युम्न कुमार जैन २०१२५५

व्याप्ति अथवा अविनाभाव के मूलस्थान की खोज—

पं. दरबारी लाल कोठिया २११५०

र

रत्नत्रय धर्म—पन्नालाल साहित्याचार्य ४१२७८, ४१३२६

राग श्रीमद्राजचन्द्र ३११४६

रात्रि भोजन त्याग छोटा अणुव्रत—प. रतनलाल कटारिया
१५१२१

ल

लघुद्रव्य सग्रह—संपादक १२११४६

लोक का अद्वितीय गुरु अनेकान्त—

प. दरबारीलाल न्यायाचार्य ११-७७

श

शका समाधान—पं. दरबारीलाल न्यायाचार्य कोठिया
६१३४, ६१११३, ६११४८

शास्त्रमर्यादा—पं. सुखलाल ११६३६

शुभचंद्र का प्राकृत लक्षण एक विश्लेषण—

डा. नेमिचंद्र शास्त्री २१११६४

शुभचंद्र का प्राकृत व्याकरण—डा. ए. एन. उपाध्ये

शौच धर्म—प. दरबारीलाल कोठिया न्यायाचार्य १२१२६

श्वे. तत्त्वार्थसूत्र और उसके भाष्य की जाँच—संपादक
२११०७, ५११६३

श्वे. सम्मत सात निह्व—प. शोभाचंद्र भारिल्ल ११६१३

श्रावकोका आचार-विचार—धु. सिद्धसागर १३११८६

श्री वीरका सर्वोदय तीर्थ, युगवीर (सम्पादक) १११७

श्रीश्रमण भगवान महावीर उनके सिद्धान्त—

मुनि आत्माराम ७११४१

श्रुतज्ञान का आधार—इन्द्रचन्द्र शास्त्री २१३८७, २१४६६

ष

षडावश्यक विचार—स. जुगलकिशोर मुख्तार ६१२१४

षट्खण्डागम और शेष १८ अनुयोग द्वार—बालचंद सि.

शा. १६१२७५

षट्खण्डागम-परिचय—बालचंद सि. शा. १६१२२०

षट्दर्शनियों के १०२ भेद-अगरचंद नाहटा १६११६६

स

सकाम धर्म साधन—जुगलकिशोर मुख्तार १३१५७

सकाम धर्म साधना—संपादक २१२५६

सत्य अनेकान्तात्मक है—जयभगवान वकील ३११७

सत्य धर्म—श्री १०५ पूज्य क्षु. गणेशप्रसादजी वर्णी

१२११२६

सभी ज्ञान प्रत्यक्ष हैं—श्री इन्द्रचन्द्र शास्त्री २११०७

समझ का फेर—पं. फूलचंद सि. शा. १०१२५६

समन्तभद्र की अर्हद्भक्ति का रूप—संपादक ४१३५७

समन्तभद्र भारती देवागम—युगवीर १३, ३३, १३१६५,

१३१६८, १३१४७, १३१६७, १३१६९, १३१२५

- समन्तभद्र प्रतिपादित कर्मयोग—जुगलकिशोर मु० ११११७५
समन्तभद्र भारतीस्तोत्र—कवि नागराज ११११६७
समन्तभद्र वचनामृत—युगवीर ११, ५, ११११०३, ११११३७,
११११७१, १११२२६, १११२६०, १११३०६,
१११३३६, १११३६७
समन्वय और भद्रभूत मार्ग अनेकान्त—श्री अग्रचंद
नाहटा १४।१६२
समय और साधना—साध्वी श्री राजमती १६।२७०
समयसार की पन्द्रहवीं गाथा और श्री कानजी स्वामी—
सपादक १२।१७७, १२।१६५
समयसार की पन्द्रहवीं गाथा और श्री कानजी स्वामी—
जुगलकिशोर मुस्तार १३।५
समयसार की महानता—श्री कानजी स्वामी ६।३३
समवसरणमें शूद्रों का प्रवेश—जुगलकिशोर मुस्तार
६।१६६
सम्यग्दर्शन—साध्वी श्री सधमित्रा १८।१६६
सम्यग्दृष्टि और उसका व्यवहार—शु. सिद्धसागर १३।११७
सर राधाकृष्णन के विचार—८।२३४
सर्वार्थसिद्धि और तत्त्वार्थवातिक पर पट्टखण्डागम का
प्रभाव—बालचंद सि. शा. १६।३०
सर्वोदय कैसे ही?—बा. अनन्तप्रसाद B. Sc. ११।२५
सर्वोदयतीर्थ—प. कैलाशचंद शा० ११।१७
सर्वोदयतीर्थ के नाम पर—श्री जमनालाल ११।३८
सर्वोदयतीर्थ और उसके प्रति कर्तव्य—बा. उग्रसेन जैन
M.A.L.B. ११।४४
सर्वोदय या निजोदय—प्रो० देवेन्द्रकुमार जैन M. A.
११।१६
सर्वोदय या सामाजिकता—श्री ऋषभदास राका ११।२३
सल्लेखनामरण—श्री पूज्य १०५ क्षु. गणेशप्रसाद वर्णी
१२।४६
सागर धर्माभूत पर इतर श्रावकाचारों का प्रभाव—
पं. बाल चंद सि. शा. २६।१५१
साधु कौन? एक प्रवचन—श्री १०५ पूज्य क्षु. गणेश-
प्रसाद वर्णी १२।१७३
साधुत्व में नग्नता का स्थान—पं. बंशीधर व्याकरणाचार्य
१३।२४१
सासादन सम्यक्त्व के सम्बन्धमें शासनभेद—
डा. हीरालाल ६।६६, २।६७
सिद्ध हेमचंद्र शब्दानुशासन—श्री कालिकाप्रसाद शुक्ल
एम. ए., व्याकरणाचार्य १५।१४६, १५।२०६
सुख और दुख—श्री जमनालाल जैन विशारद ७।१३५
सुख और समता—बा. उग्रसेन वकील ७।७४
संजद पद का बहिष्कार—डा. हीरालाल जैन १०।३४६,
१०।३६०
संजद पदके सम्बन्धमें अकलंक देव का महत्वपूर्ण अभिमत
—न्या. प. दरबारीलाल जैन ८।८३
संजद शब्द का निष्कासन—प. परमानन्द शास्त्री १०।३५०
“संजद” शब्द पर इतनी आपत्ति क्यों?—नेमचंद बाल-
चंद गांधी वकील ६।३१४
संजय वेलट्टिपुत्र और स्याद्वाद—पं. दरबारीलाल न्या.
६।५०
संयम धर्म—ला. राजकृष्ण जैन १२।१३६
सयमी का दिन और रात—श्री “विद्यार्थी” ४।१८२
सवेग—मुनि श्री नथमल जी १७।१५७
स्थायी सुख और शांति का उपाय—ठाकुरदास जैन
१६।१३६
स्याद्वादका व्यवहारिक जीवन में उपयोग—प. चैनसुखदास
न्यायतीर्थ १६।१६५
स्व-पर-वैरी कौन?—सपादक ७।६

अनेकान्त के ग्राहक बनें

‘अनेकान्त’ पुराना व्याप्तिप्राप्त शोध-पत्र है। अनेक विद्वानों और समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों का अभिमत है कि वह निरन्तर प्रकाशित होता रहे। ऐसा तभी हो सकता है जब उसमें घाटा न हो और इस लिए ग्राहक संख्या का बढ़ाना अनिवार्य है। हम विद्वानों, प्रोफेसरों, विद्यार्थियों, सेठियों, शिक्षा-संस्थाओं, संस्कृत विद्यालयों कालेजों, विश्वविद्यालयों और जैन धर्म की प्रभावना में अछा रखने वालों से निवेदन करते हैं कि वे ‘अनेकान्त’ के ग्राहक स्वयं बनें और दूसरों को बनावें। और इस तरह जैन संस्कृति के प्रचार एवं प्रसार में सहयोग प्रदान करें।

व्यवस्थापक ‘अनेकान्त’

२. साहित्य

अ

अकलक देव का चित्रकाव्य अथवा चतुर्विंशति जिनस्तोत्र
—संपादक ७।३६३

अकलक देव के चित्रकाव्य का रहस्य और हारावली
चित्रस्तव—संपादक १।५२०

अकलक देव के चित्रकाव्य का रहस्य और हारावली
चित्रस्तव—संपादक ७।५८०

अछूता समृद्ध जैन साहित्य—रिषभदास रांका २।१।७४

अजीमगढ भडार का रजताक्षरी कल्पसूत्र—

भंवरलाल नाहटा १७।१७८

अज्ञान हिन्दी कवि टेकचन्द्र व उनकी रचनाएँ—

श्री अग्रचंद्र नाहटा १।५।६८

अतिप्राचीन प्राकृत पंचसंग्रह—परमानन्द शास्त्री ३।२५६

अतरिक्ष पार्श्वनाथ विनंति—नेमचंद्र धन्वसा जैन ६२।६१

अध्यात्म तरंगिणी टीका—पं. परमानन्द जैन शास्त्री १०।३०

अध्यात्म दोहावली—श्री रामसिंह, पं. हीरालाल शास्त्री
१४।२५२

अध्यात्म बत्तीसी—अग्रचंद्र नाहटा २१।१७२

अनेकान्त का छोटेलाल जैन विशेषांक—१८।२७५

अनेकान्त के अद्वितीय विशेषांक की योजना—६२५

अनेकान्त के पन्द्रहवें वर्ष की सूची—१६।४२

अनेकान्त जैन समाज का गौरव है—विशेष अंक ६।१८

अनेकान्त प्रकाशन—श्री वंशीधर शास्त्री एम.ए. १।५।४७

अनेकान्त बहिलापिका—पं. धरणीधर शास्त्री ५।२०६

अन्यत्र अप्राप्त अजित प्रभु चरित्र—श्री अग्रचंद्र नाहटा
१०।३३१

अपभ्रंश कवि पुष्पदन्त—प्रो. देवेन्द्रकुमार एम.ए. १।४।२६२

अपभ्रंश चरित काव्य—डा. देवेन्द्रकुमार १६।८४

अपभ्रंश का एक प्रमुख कथा काव्य—

डा. देवेन्द्रकुमार शास्त्री १७।२६३

अपभ्रंश का एक प्रेमाख्यान का काव्य विलासवईकहा—

डा. देवेन्द्रकुमार शास्त्री १७।१६६

अपभ्रंश का एक शृंगार वीर काव्य—

रामसिंह तोमर एम. ए. ६।३६४

अपभ्रंश भाषा का जम्बूस्वामी चरित और महाकवि वीर

—परमानन्द शास्त्री १३।१४६

अपभ्रंश भाषा का जैन कथा साहित्य—

पं. परमानन्द जैन शास्त्री ८।२७३

अपभ्रंश भाषा का नेमिनाथ चरित—परमानन्द शास्त्री

११।४१४

अपभ्रंश भाषा का पार्श्वनाथ चरित्र—परमानन्द जैन

१३।५

अपभ्रंश भाषा का पास चरित और कविवर देवचन्द—

परमानन्द शास्त्री ११।२२१

अपभ्रंश भाषा का शातिनाथ चरित्र—

परमानन्द शास्त्री ५।२५३

अपभ्रंश भाषा की दो लघुरासो रचनाएँ—

डा. देवेन्द्रकुमार शास्त्री १८।१८४

अपभ्रंश भाषा के अप्राकाशित कुछ ग्रन्थ—

पं. परमानन्द जैन शास्त्री १२।२६३

अपभ्रंश भाषा के दो ग्रंथ—पं. दीपचन्द्र पांड्या ४।५१६

अपभ्रंशभाषा के प्रसिद्ध कवि पं. रङ्गू—

पं. परमानन्द शास्त्री ५।४०१

अपभ्रंशभाषा के दो महाकाव्य और कवि नयनन्दी—

पं. परमानन्द शास्त्री १०।३१३

अपराजितसूरि और विजयोदया—पं. परमानन्द जी २।४३७

अपराधक्षमास्तोत्र (रत्नाकर)—संपादक १०।४१

अभयचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्तीकृत संस्कृत कर्मप्रकृति—

डा. गोकुलचन्द्र जैन १६।३३५

अमृतचन्द्र सूरि का समय—पं. परमानन्द जैन शास्त्री

८।१७३

अर्थप्रकाशिका और पं. सदासुखदास जी—

परमानन्द शास्त्री ३।५१४

अहंनुतिमाला (माघनन्दी) —संपादक १०१३५३
अलम्य ग्रन्थोंकी खोज—डा. कस्तूरचंद्र १६१२२, १६११६८,
१६१२२५

अष्टसहस्री की एक प्रशस्ति—संपादक १०१७३

आ

आचार्य अनंतवीर्य और उनकी सिद्धिविनिश्चय टीका—
न्यायाचार्य पं. दरबारी लाल ८१२

आचार्य जिनसेन और उनका हरिवंश—

पं. नाथूराम प्रेमी ४१५८६

आचार्य जिनसेन का काव्य सिद्धान्त—डॉ. नेमिचंद शास्त्री
१६१३

आचार्य माणिक्यनदी के समय पर अभिनव प्रकाश—
न्या. पं. दरबारीलाल ८१३४६, ८१३७४

आचार्य सकलकीर्ति और उनकी हिन्दी सेवा—

पं. कुन्दनलाल जैन १६११२४

आचार्य सोमकीर्ति—कस्तूरचंद्र कासलीवाल १६१६२

आचार्य हेमचन्द्र—श्री रत्ननाथ सघवी न्यायतार्थ २१२४४,
२१२६५, २१३३५

आचार्य हेमचन्द्रके योगशास्त्रपर एक प्राचीन दिग्म्बर टीका
—श्री जुगलकिशोर मुख्तार २०११०७

आत्म संबोधक अध्यात्म पद—कविवर दौलतराम १२१३६१

आत्मानुशासन का एक सदिग्ध पद्य—श्री लक्ष्मीनारायण
जैन ८१२४

आदिकालीन चर्चरी रचनाओं की परम्परा का उद्भव
और विकास—डॉ. हरीश १५११४३, १५११८०

आधुनिक भाषाओं की व्युत्पत्ति के लिए जैन साहित्य का
महत्व—बा. ज्योतिप्रसाद एम. ए. ८१२२५

आप्तपरीक्षा का प्राक्कथन—पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री १०१२१३

आप्तमीमासा और रत्नकरण्ड का भिन्न कर्तृत्व—

डा० हीरानाथ एम. ए. ६१६

इ

इज्जत बड़ी या रूपया—अयोध्याप्रसाद गोयलीय ६१७२

उ

उत्तरपुराण में पूर्वपरि विरोध—प्रो. बनारसीदास ११३६०

उपाध्याय पद्मसुन्दर और उनके ग्रन्थ—

अगरचन्द्र नाहटा ४१४७०

उपाध्याय मेघविजय के मेघ महोदय में उल्लिखित कतिपय
अप्राप्त रचनाएँ—अगरचन्द्र नाहटा २११३६

ए

एक अटूटी जिन स्तुति—संपादक ४१८५

ऐ

ऐ० पन्नालाल दि० जैन सरस्वती भवन बम्बई के कुछ
हस्तलिखित ग्रंथों की सूची—संपादक ५१६७

क

कतिपय प्रकाशित ग्रंथों की अप्रकाशित प्रशस्तियाँ—

श्री अगरचन्द्र नाहटा १०१३३१

कथा कहानी—अयोध्याप्रसाद गोयलीय २१२४२, २१३०१,
२१३५७, २१४२२, २१४४३, २१४६१, २१५७३

कथा कहानी—माईदयाल जैन बी. ए. बी. टी. २१६६

कवि छीहल—परमानन्द शास्त्री २११२२६

कवि टेकचन्द रचित श्रेणिकचरित और पुण्याश्रव कथा—

कोप—अगरचन्द्र नाहटा २११३४

कवि ठकुरसी और उनकी रचनाएँ—परमानन्द शास्त्री
१४११०

कवि पद्मसुन्दर और दि. श्रावक राममल्ल—

श्री अगरचन्द्र नाहटा १०१६६

कवि बनारसीदास—कुमार वीरेन्द्रप्रसाद १०१६६

कवि बल्ह या बृचिराज—परमानन्द जैन शास्त्री १६१२५३

कविवर ठकुरसी कृत पञ्चेन्द्रिय वेलि—डा० नरेन्द्र भानावत
१६१२०३

कविवर देवीदास का परमानन्द विलास—डा. भागचन्द्र जैन

एम. ए. पी. एच. डी. २०१२८२

कविवर दौलतरामजी—परमानन्द शा० ११११५२

कविवर दानतराय—परमानन्द शा० ११११७३

कविवर बुधजन और उनकी रचनाएँ—परमानन्द शा० १११२४३

कविवर पं. श्रीपाल का व्यक्तित्व एवं कृतित्व—

डा. कस्तूरचन्द्र कासलीवाल २०१४६

कविवर बनारसीदास और उनके ग्रंथों की हस्तलिखित

प्रतियाँ—मुनि कान्तिसागर ८१४०२

कविवर भगवतीदास—परमानन्द शास्त्री १४१२२७

कविवर भगवतीदास और उनकी रचनाएँ—

पं. परमानन्द शास्त्री १११३

कविवर भगवतीदास (अग्रवाल) और उनकी रचनाएँ—

परमानन्द शास्त्री ११।२०५

कविवर भाऊ की काव्य साधना—डा. कस्तूरचंद्र

कासलीवाल १७।१७२

कविवर भूषणदास और उनकी विचारधारा—पं. परमानंद शास्त्री १२।३०५

कविवर लक्ष्मण और जिनदत्त चरित्र—पं. परमानन्द जैन शास्त्री ८।४००

कविवर रङ्गू द्वारा स्मृत विद्वान्—परमानन्द जैन ११।२१७

कविवर रङ्गू रचित सावय चरित्र—श्री अग्रचन्द्र नाहटा १७।१०

कविराजमल्ल का पिंगल और भारमल्ल—संपादक ४।१३३, ४।२४५, ४।३०३

कर्णाटक जैन कवि—श्री नाथूराम प्रेमी १।८१, १।१६१, १।३३३, १।४५६

कर्णाटक साहित्य और जैन कवि—प. के. भुजबली शास्त्री १।४७१

कला का उद्देश्य—प्रो. गोकुलप्रसाद जैन एम. ए. १४।२७१

कल्पसिद्धांत की सचित्र स्वर्णाक्षरी प्रशस्ति—कुन्दनलाल

जैन एम. ए. १८।१७५

कल्पसूत्र की एक प्राचीन लेखक प्रशस्ति—डा. वासुदेवधारण

अग्रवाल १०।२२

कसाय पाहुड और गुणधराचार्य—परमानन्द शास्त्री १४।८

कार्तिकेयानुप्रेक्षा एक अध्ययन—डा. ए. एन., उपाध्ये एम.

ए. डी. लिट् १५।२४४

कुछ अज्ञात जैन ग्रंथ—हीरालाल सि. शा. ११।३५१

कुछ नई खोजें—परमानन्द शास्त्री ११।३७०

कुछ अप्रकाशित कथा ग्रंथ—कुन्दनलाल जैन एम. ए. एल.

टी. १५।३२

कुमुदचन्द्र भट्टारक—पं. के. भुजबली शास्त्री १५।१७८

कुरल काव्य और जैन कर्तृत्व—विद्याभूषण पं. गोविन्दराय

शास्त्री १२।१६८, १२।१००

कुलपाक के भाषिक स्वामी—डा. विद्याचर ज्योत्सुपुरकर

२१।३३

कुलपाक के भाषिक स्वामी —पं. के. भुजबली शास्त्री

२१।३१

क्षत्रचूडामणि और उसकी सूक्तियाँ—पं. सुमेरचन्द्र दिवाकर

बी. ए., एल. एल. बी. ५।१४४

क्या द्रव्य सग्रह के कर्ता व टीकाकार समकालीन नहीं हैं ?

—परमानन्द शास्त्री १६।२६६

क्या निर्युक्तिकार भद्रबाहु और स्वामी समतभद्र एक है ?

—न्या. पं. दरबारीलाल ६।३३

क्या व्याख्याप्रज्ञप्ति षट् खडागम का टीका ग्रंथ था ?—

श्री प. कैलाशचन्द्र जैन १५।६

क्या रत्न. कर्ता स्वामी समंतभद्र ही है ?—

पं. नाथूराम प्रेमी ७।२६

क्या रत्नकरण्ड श्रावकाचार स्वामी समन्तभद्र की कृति

नहीं है ?—न्या. प. दरबारीलाल ६।३७६

क्या रत्नकरण्ड श्रा. स्वामी समन्तभद्र की कृति नहीं है ?—

प. दरबारीलाल ७।१०५, ७।१८६

ग

गदर से पूर्व की लिखी हुई ५३ वर्ष की जन्तरी खास—

संपादक ८।१०

गोम्मटसार एक संग्रह ग्रंथ है—पं. परमानन्द शास्त्री

३।२६७

गोम्मटसार और नेमिचन्द्र—संपादक ८।३०१

गो० कर्मकाण्ड की त्रुटि पूर्ति—पं. परमानन्द शा. ३।५३७

गो० कर्मकाण्ड की त्रुटिपूर्ति के विचार पर पर प्रकाश

—प. परमानन्द शास्त्री ३।७५७

गो० कर्मकाण्ड की त्रुटिपूर्ति पर विचार—प्रो. हीरालाल

जैन ३।६३५

गो० कर्मकाण्ड की त्रुटिपूर्ति लेख पर विद्वानों के विचार

और विशेष सूचना—संपादक ३।६२७

गोम्मटसार जीवकाण्ड का हिन्दी पद्यानुवाद—

पं. परमानन्द शास्त्री १२।२५४

गंधहस्ती—पं. सुखलाल १।२१६

ग्रन्थ और ग्रन्थकार (मूलाचार और कार्तिकेयानुप्रेक्षा)—

संपादक ८।२२७

ग्रंथ प्रशस्ति संग्रह और दि० जैन समाज—

श्री अग्रचन्द्र नाहटा ५।४६

ग्रंथों की खोज के लिये ६०० के छह पुरस्कार—

जुगलकिशोर मुस्तार ११।५५

ख

चतुर्थ वाम्बट्ट और उनकी कृतियाँ—पं. परमानन्द शास्त्री
१९७६

चतुर्विंशति तीर्थंकर जयमाला (स्तुति)—

श्री ब्रह्मजीवंधर १५।१४७

चर्चरी का प्राचीनतम उल्लेख—डा. दशरथ शर्मा एम. ए.

डी. लिट् १५।२८८

चारुकीर्ति गीत—डा. विद्याधर जोहरापुरकर २०।२८

चित्रदर्शन, चित्र परिचय, १।६३, १।६७०

चूतडी ग्रंथ—पं. दीपचन्द्र पांड्या ५।२५७

१४वीं शताब्दी की एक हिन्दी रचना—

प. कस्तूरचन्द कासलीवाल एम. ए. १२।२३

छ

छंद कोष और शील सरक्षणोपाय छप चुके—

श्री अग्रचन्द नाहटा १४।२०६

ज

जगत्सुन्दरी प्रयोगमाला (सम्पादकीय नोट सहित)—

दीपचन्द्र पांड्या २।६११

जगत्सुन्दरी प्रयोगमाला की पूर्णता—संपादक २।६८५

जयपुर की संस्कृतसाहित्यको देन—श्रीपुण्डरीक बिठ्ठल
ब्राह्मण, डा. श्री प्रभाकर शास्त्री १८।८७

जसहर चरित की एक कलात्मक सचित्र पाण्डुलिपी—

डा. कस्तूरचन्द्र कासलीवाल १६।५१

जोरापल्ली बाबर्चनाय स्तोत्र—सं. जुगलकिशोर मुख्तार
१।२४६

जैन अष्टभ्रंश का मध्यकालीन हिन्दी के भक्तिकाव्य पर
प्रभाव—डा. प्रेमसागर जैन १५।५७, १५।१२३

जैन कथा साहित्य की विशेषताएँ—डा. नरेन्द्र भानावत
१६।१३१

जैन काव्य में विरहानुभूति—गंगाराम गर्ग २२।३६

जैनग्रन्थप्रवृत्ति संग्रह—१४।३३, १४।६५, १४।११५,
१४।१४७, १४।२११, १४।२४३, १४।२७५,
१४।३०७, १४।३५५

जैन ग्रन्थ प्रवृत्ति संग्रह वर सेरा अभिमत—

प. दरबारीलाल कोठिया ७।३३

जैन चम्पू काव्यों का अध्ययन—अग्रचन्द नाहटा १६।३६७

जैन तंत्र साहित्य—डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल १८।३३

जैन मन्दिर सेठ के कूँचा देहली की ग्रंथसूची ४।४७२

जैन मुनियों के नामान्त पद—अग्रचन्द नाहटा ४।१४५

जैन लक्षणावली—संपादक ३।१२६

जैन शास्त्र भण्डार सोनीपत में मेरे पांच दिन—

माईदयाल जैन बी. ए. बी. टी. ५।१६८

जैन साहित्य का अनुशीलन—डा. इन्द्रचन्द्र एम. ए. १५।३१

जैन साहित्य का दोष पूर्ण विहगावलोकन—

प. परमानन्द जैन शास्त्री १२।२५६

जैन साहित्य के प्रचार की आवश्यकता—सुरेन्द्र ४।५३

जैन साहित्य में आर्य शब्द का व्यवहार—साधवी श्री मजुला
१४।७४

जैन साहित्य में प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री—

श्री वासुदेवशरण अग्रवाल क्यूरेटर ५।३६३

जैनसिद्धांत भवन मूढबिंदी की ग्रंथसूची— ४।५६८

जैन संत भ. बीरचन्द्र की साहित्य सेवा—डा. कस्तूरचन्द

कासलीवाल एम. ए. पी. एच. डी. १५।८

जिन स्तुति पंचविंशतिका—महाचन्द्र १४।३१५

जैनियों का अष्टभ्रंश साहित्य—मुनि कातिसागर ४।५८१

जैसलमेर के भण्डारों के प्राचीन ग्रंथों के फोटू—

मुनि हिमाशुविजय १।६०५

जैसलमेरके भण्डारों में प्राप्त कुछ नवीन ताडपत्रीय प्रतिमाँ

—श्री अग्रचन्द नाहटा ८।४४

ज्ञानार्णव योगशास्त्र एक तुलनात्मक अध्ययन—

बालचन्द्र सि. शा. २०।१७

ज्ञानसागर की स्फुट रचनाएँ—डा. विद्याधर जोहरापुरकर

२१।१७०

ड

डा. जेकोबी और वासीचन्दन कल्प—मुनि श्री महेन्द्रकुमार

द्वितीय १८।२४७

त

तत्त्वार्थसूत्र का बंगलाचरण—म्या. पं. दरबारीलाल कोठिया

५।२२१, ५।३६३

तत्त्वार्थसूत्र के प्रणेता उमास्वामी—पं. सुखलाल १।३८५

तत्त्वार्थ सूत्र के व्याख्याकार और व्याख्याएँ—

पं. सुखलाल १।५७६

तत्त्वार्थाधिगम भाष्य और अकलंक—प्रो. जगदीशचन्द्र
३।३०४, ३।६२३

तत्त्वार्थाधिगम भाष्य और अकलंक पर विचारणा—
संपादकीय ३।३०७

तत्त्वार्थाधिगम सूत्र की एक सटिप्पण प्रति—संपादक ३।१२१
तत्त्वोपदेश छहठाला : एक समालोचना—

श्री पं. दीपचन्द्र पाण्ड्या १५।६२

तमिल भाषा का जैन साहित्य—प्रो. ए. चक्रवर्ती ३।४८७,
३.५६७, ३।७२१

तमिल भाषा का जैन साहित्य—प्रो. ए. चक्रवर्ती ४।१०५,
४।२२०, ४।३३६, ४।३६५ ४।५५७, ४।६१३

तमिल भाषा का जैन साहित्य—प्रो. ए. चक्रवर्ती ५।५६
तिरुक्कुरल (तमिलवेद) : एक जैन रचना—मुनि श्री नगराज
१६।२४६

तीन चित्र—जमनालाल 'साहित्यरत्न' ६।३४१

तेरह काठिया—बा. ज्योतिप्रसाद जैन एम. ए. ८।३६५

तेरह काठिया सबधी श्वे. साहित्य—श्री अग्रचन्द नाहटा
८।४५७

तेरहवी चौदहवी शताब्दी के जैन संस्कृत महाकाव्य—
डा. हयामशकर दीक्षित १७।१०८

त्र

त्रिभुवनगिरि व उसके विनाश सम्बन्धोंमें विशेष प्रकाश—
अग्रचन्द नाहटा ८।४५६

त्रिलोकप्रज्ञप्ति में उपलब्ध ऋषभदेवचरित्र—
प. परमानन्द शास्त्री ४।३०७

त्रिलोक्य प्रकाश का रचना समय—अग्रचन्द नाहटा ७।६०

थ

थेरावली विषयक विशेष नोट—संपादक १।३०३

द

दलपतराय और उनकी रचनाएँ—डा. प्रभाकर शास्त्री
१७।१३५

दशवर्कालिक के चार शोध टिप्पण—मुनि श्री नथमल
१७।२२२

दिगम्बर कवियों के रचित फागुकाव्य—श्री अग्रचन्द
नाहटा १६।१८८

दिगम्बर कवियों के रचित वेल्ससाहित्य—श्री अग्रचन्द
नाहटा १७।३१

दिगम्बर जैन ग्रन्थ सूची—अग्रचन्द नाहटा ४।३३६
दिगम्बरपरम्परा में आचार्य सिद्धसेन—प. कैलाशचन्द्र
सि. शास्त्री २१।८६

देवागम स्तोत्र और उसका हिन्दी अनुवाद—

प. बालचन्द्र सि. शास्त्री २१।७५

दौलतराम कृत जीवधर चरित्र एक परिचय—

श्री अनूपचन्द्र न्यायतीर्थ १५।४१

द्रासप्तति तीर्थकर जयमाल (ब्र. महेश)—पं. दरबारीलाल
कोठिया १०।१६४

द्रव्यसंग्रह के कर्त्ता और टीकाकार के समय पर विचार—
परमानन्द शास्त्री १६।१४५

ध

धनपाल की भविष्यदत्त कथा के रचना काल पर विचार—
परमानन्द शास्त्री २२।२

धनपाल नाम के चार विद्वान—परमानन्द शास्त्री ७।८२

धनपाल विरचित भविसयत्तकहा और उसकी रचना तिथि
—डा. देवेन्द्र कुमार जैन २०।३३

धवलादि श्रुत परिचय—संपादक ३।३, ३।२०७

धवलादि सिद्धांत ग्रंथों का उद्धार—संपादक विवेकाम्युदय
१२।३८३

धर्म पंचविशतिका (ब्रह्मजिनदास) विरचित—जुगलकिशोर
मुस्तार १३।२५६

धर्मरत्नाकर और जयसेन नाम के आचार्य—

प. परमानन्द शास्त्री ८।२००

धर्मस्थानों में व्याप्त सोरठ की एक कहानी—

महेन्द्र भनावत एम. ए. १५।२६४

धार्मिक साहित्य में अश्लीलता—किशोरीलाल धनश्यामदास
मशरूवाला ४।४८२

न

नया मन्दिर देहलीके कुछ हस्त लिखित ग्रंथों की ग्रंथसूची—
संपादक ४।३४५

नया मन्दिर देहलीके हस्त लिखित हिन्दी ग्रंथों की सूची
—संपादक ४।४२१

नागार्जुन और समंतभद्र—प. दरबारीलाल ७।१०

नागकुमार चरित और कवि धर्मधर—परमानन्द १३।२२७

नागौर जयपुर, और आमेर के कुछ हस्तलिखित ग्रंथों की
सूची—संपादक ५।३६६

नागौर के भट्टारकीय भंडार का अवलोकन—

अगरचन्द्र नाहटा ११।१२८

नालदा का वाच्यार्थ—मुमेरचन्द्र दिवाकर एम. ए. एल. एल.

बी. १४।३३१

नेमिनाह चरित—श्री अगरचन्द्र नाहटा १७।२२६

प

पउमचरिय और पद्य चरित्र—श्री नाथूराम प्रेमी ५।३८

पउमचरिय का अन्तःपरीक्षण—पं. परमानंद शास्त्री ५।३३७

परमात्मराजस्तोत्र—स. जुगलकिशोर मुस्तार ६।१६८

परीक्षामुख सूत्र और उनका उदगम—

न्या. प. दरबारीलाल कोठिया ५।११६

पाडे रूपचंद्र और उनका साहित्य—प. परमानन्द शास्त्री

१०।७५

पुराणे साहित्य की खोज—श्री जुगलकिशोर मुस्तार

१४।२५, १४।६३, १४।१७३, १४।२०३

प. जयचन्द्र और उनकी साहित्य सेवा—परमानंद शास्त्री

१३।१६६

पचाध्यायी के निर्माण में प्रेरक—प. जुगलकिशोर मुस्तार

१४।११३

पचायती मन्दिर देहली की ग्रन्थ सूची—४।४६४, ४।५६१

पचायतीमन्दिर सोनीपत के कुछ हस्तलिखित ग्रंथों की सूची

—सपादक ५।२१५

पण्डितप्रवर आशाधर—प. नाथूराम प्रेमी ३।६६६, ३।६६७

पण्डितप्रवर टोडरमल जी और उनकी रचनाएँ—

परमानंद जैन ६।२६३

पं. दीपचन्द्र शाह और उनकी रचनाएँ—

परमानंद शास्त्री १३।११३

पं. दीपचन्द्र शाह और उनकी रचनाएँ परिशिष्ट

परमानन्द शास्त्री—१३।१८३

पं. दीनतरामजी और उनकी रचनाएँ—

प. परमानंद शास्त्री १०।६

प. पद्मसुन्दर के दो ग्रन्थ—प. नाथूराम प्रेमी ७।४६

पं. भगवतीदास का ज्योतिषसार—

डॉ. विद्याधर जोहरापुरकर २१।६५

पं. भगवतीदास कृत वैद्य विनोद—

डॉ. विद्याधर जोहरापुरकर २०।६०

प. भागचन्द्र जी—परमानंद शास्त्री—१४।१४

पं. शिरोमणिदास विरचित धर्मसार—डा. भागचन्द्र जैन

२२।१६

प. सदामुखदास जी—प. परमानंद शास्त्री १०।२६७

प्रतिष्ठातिलक के कर्ता नेमिचंद्र का समय—

प. मिलापचंद्र कटारिया २१।२३

प्रतिष्ठासार का रचनास्थल—के. भुजबली शास्त्री ८।३६३

प्रद्युम्नचरित्र का रचनाकाल व रचयिता—

श्री अगरचन्द्र नाहटा १४।१७०

प्रभाचंद्र का तत्त्वार्थमूत्र—मपादक ३।३६३, ३।४३३

प्रमाणनयतत्त्वालोकालकार की आधारभूमि—

परमानन्द शास्त्री २।५८४

प्रमेयग्रन्थमाला का पुरातन टिप्पण—१०।४२६

प्राकृतपंचसग्रहका रचनाकाल—प्रो. हीरालाल जैन ३।४०६

प्राक्कथन (समीचीन धर्मशास्त्र)—डा. वामुदेवशरण

अग्रवाल १३।२५०

ब

बनारसीदास के काव्य में भक्ति रस—

डा. प्रेमसागर जैन १६।१०४

बनारसी नाममाला पर विद्वानों की सम्मति ४।५६६

बारडोली के जैन सत कुमुदचंद्र—

डा. कस्तूरचंद कासलीवाल १५।२१०

बुदेलखण्ड के कविवर देवीदास—परमानंद शास्त्री ११।२७५

बिहारी सतसई पर एक दृष्टि—बा. माणिकचंद्र ६।१३८

ब्रह्म जीवधर और उनकी रचनाएँ—परमानन्द शास्त्री

१७।१४०

ब्रह्म ज्ञानसागर और उनकी रचनाएँ—

प. कुन्दनलाल जैन एम. ए. १६।८६

ब्रह्म नेमिदत्त और उनकी रचनाएँ—परमानन्द शास्त्री

१८।८२

भ

भक्तामरस्तोत्र—पं. अजितकुमार शास्त्री २।६६

भगवती आराधना और उसकी टीकाएँ—प. नाथूराम प्रेमी

१।१४५, १।२०६

भगवती आराधना और शिवकोटि—परमानन्द जैन शास्त्री

२।३७१

२०८, वर्ष २२ कि० ५

अनेकास्त

भगवती घाराघना की दूसरी प्राचीन टीका टिप्पणिर्वा—

सम्पादक २।५७

भगवतीदास नाम के चार विद्वान-पं. परमानन्द शास्त्री
७।५४

भट्टारक श्रुतकीर्ति और उनकी रचनाएँ—परमानन्द शास्त्री
१३।२७६

भद्रबाहु निमित्तशास्त्र—वेद्य जवाहर लाल १०।२३५,

१०।२६१, १०।३३५, १०।४१३

भ. विश्वभूषण की कतिपय अज्ञात रचनाएँ—

श्री अग्रचन्द्र नाहटा १८।१५८

भव्यमार्गोपदेश उपासकाध्ययन—क्षु. सिद्धसागर १३।१७६

भव्यानन्द पंचासिका भवतामर स्तोत्र का अनुवाद—

मुनि श्री कांतिसागर १७।८३

भ. शुभकीर्ति और शान्तिनाथ चरित—परमानन्द शास्त्री
२१।९०

भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा १९६६ का पुरस्कार घोषित—

लक्ष्मीचन्द्र जैन २०।६१

भाषा साहित्य का भाषा विज्ञान की दृष्टि से अध्ययन—

श्री माईदयाल जैन बीए. बी. टी. १३।२१०

भूधरदास का पादर्वपुराण : एक महाकाव्य—

श्री सलेकचन्द्र जैन एम. ए. १८।११६

भूपाल चौबीसी की एक महत्वपूर्ण सचित्र प्रति—

अग्रचन्द्र नाहटा १८।५६

भ

मध्यकालीन जैन हिन्दी काव्य में शांताभक्ति—

डा. प्रेमसागर जैन १८।१६४

मध्यकालीन हिन्दी जैन काव्य में प्रेमभाव—

डा. प्रेमसागर जैन १५।२५१

मन्दास-स्तोत्र (शुभचन्द्र)—सम्पादक १०।३८५

मराठी जैन साहित्य—डा. विद्याधर जोहरापुरकर

१५।२५३

मरुदेवी स्वप्नावली—अनु. पं. पन्नालाल साहित्याचार्य ५।१७

महाकवि पुष्पादन्त—पं. नाथूराम प्रेमी ४।४०५, ४।४५५

महाकवि रङ्गू—पं. परमानन्द शास्त्री १०।३७७,

११।२६५, ११।३१७

महाकवि रङ्गू कृत साव्य चरित—डा. राजाराम जैन
१६।१०१

महाकवि रङ्गू द्वारा उत्सखित खेल्हा ब्रह्मचारी—

प्रो. राजाराम जैन १५।१६

महाकवि रत्न—पं. शातिराज शास्त्री १।४४

महाकवि श्री हरिचंद्र का राजनीति वर्णन—

प. कैलाशचन्द्र शास्त्री १।२३५

महाकवि समयसुन्दर और उनका दानशील तप भावना

संवाद—सत्यनारायण स्वामी एम. ए. २०।१४०

महाकवि सिंह और प्रद्युम्न चरित्र—

प. परमानन्द जैन शास्त्री ८।३८६

महाकवि स्वयम्भू और त्रिभुवन स्वयम्भू—प. नाथूराम प्रेमी

५।२६७

महाकवि हरीचंद का समय—पं. कैलाशचन्द्र जैन शास्त्री

८।३७६

महाकवि स्वयम्भू और उसका तुलसीदासजी की रामायण

पर प्रभाव—परमानन्द शास्त्री १४।१०६

महाधवल अथवा महाधध पर प्रकाश—

प. सुमेरचंद दिवाकर B. A. शास्त्री ५।४०५

महान् सन्त भ. विजयकीर्ति—डा. कस्तूरचंद कासलीवाल

२०।१३७

महापुराण कालिका और कवि ठाकुर—परमानन्द शास्त्री

१३।१८६

महापुराण कलिका की अंतिम प्रशस्ति—परमानन्द

१३।२०२

महावीर का गृहत्याग—डा. कस्तूरचंद कासलीवाल १७।१९

मानवता के पुजारी हिन्दी कवि—कन्हैयालाल प्रभाकर

६।११५

माणिकचन्द्र : एक भक्त कवि—गंगाराम गर्ग एम. ए.

१७।२७८

मुद्रित श्लोक वार्तिक की त्रुटि पूर्ति—प. परमानन्द ६।३४३

मुनिसुवत काव्य के कुछ मनोहर पद्य—

प. सुमेरचंद दिवाकर ४।१७०

मूलाचार के कर्तृत्व पर नया प्रकाश—

प. हीरालाल मि. शा. १३।१८

मूलाचार संग्रह ग्रंथ है—परमानन्द शास्त्री २।३१६

मृगपक्षी-शास्त्र—उद्धृत ४।५४३

मृषु महोत्सव—जमनाजाल जैन ६।१४०

मेरी भावना (कविता) प्रतिरिक्त पृष्ठपूर्व ६।१५३

मेरी भावना का संस्कृत पद्यानुवाद—

प. धरणीधर शास्त्री ४।२३४

मोक्षमार्गस्यनेत्तार—न्या. प. महेन्द्रकुमार ५।२८१

मोह-विवेक-युद्ध-परीक्षण—डा. रवीन्द्र जैन तिरुपति

१८।१०७

मोजमाबाद के जैन शास्त्र भण्डार में उल्लेखनीय ग्रंथ—

परमानन्द शास्त्री १३।८०

मंगलाचरण पर मेरा अभिमत—पं. सुमेरचन्द्र दिवाकर

५।२६४

य

योग सम्बन्धी जैन साहित्य—श्री अग्रचन्द नाहुटा १६।२३७

यशस्तिलक का संशोधन—पं. दीपचन्द पाण्ड्या ५।७७

यशोधरचरित्र के कर्ता पद्मनाथ कायस्थ—

प. परमानन्द शास्त्री १०।१५१

यशोधरचरित्र सम्बन्धी जैन साहित्य—अग्रचन्द नाहुटा

१।१०८

यापनीय साहित्य की खोज—पं. नाथूराम प्रेमी ३।५६

युक्तयनुशासन : एक अध्ययन—दरबारीलाल जैन कोठिया

२२।७३

योगीन्द्रदेव का एक और अपभ्रंश ग्रंथ—ए. एन. उपाध्ये

१।५४४

योनिप्राभृत और जगत्सुन्दरी प्रयोगमाला—सम्पादक

२।४८५

योनिप्राभृत और प्रयोगमाला—पं. नाथूराम प्रेमी २।६६६

व

वरदत्त की निर्वाण भूमि और वराग के निर्वाण पर विचार—

पं. दीपचन्द जैन पाण्ड्या ५।६६

वरागचरित्र दिगम्बर है या श्वेताम्बर ?—पं. परमानन्द शास्त्री

४।६२३

वसुनन्दि के नाम से प्राकृत का एक संग्रह ग्रंथ : तत्त्वविचार—

प्रो. प्रेमसुमन जैन एम. ए. शास्त्री २२।३६

वाग्भट्ट के मंगलाचरण का रचयिता—

श्री क्षुल्लक सिद्धसागर १७।२४८

वादिराज सूरि—पं. नाथूराम प्रेमी ५।१३६

वादिचन्द्र रचित अम्बिका कथासार—श्री अग्रचन्द नाहुटा

१३।१०७

वादीभसिंह सूरि की एक अधूरी अपूर्व कृति—

पं. दरबारीलाल कोठिया ६।२६१

विदर्भ के दो हिन्दी काव्य—डा. विद्याधर जोहरापुरकर

१६।६७

विदर्भ में गुजराती जैन लेखक—प्रो. विद्याधर जोहरापुरकर

१४।२०६

विद्यानन्द का समय—पं. दरबारीलाल कोठिया ७।६७

विद्यानन्द कृत सत्यशासन परीक्षा—पं. महेन्द्रकुमार शा०

३।६६०

विश्ववाणी का जैन संस्कृति ग्रंथ—सम्पादक ५।४८

विश्व शुद्धि पर्व पर्यवण—बाबू बालचन्द कोछल ११।२३३

वीतगगस्तवन के रचयिता—अग्रचन्द नाहुटा १२।११३

वीर की लोकसेवा—माणिकचन्द बी. ए. ७।३

वीर के वैज्ञानिक विचार—पं. धर्मकुमार जैन एम. ए.

७।१३६

वीरनन्दी और उनका चन्द्रप्रभचरित्र—अमृतलाल शास्त्री

१।४८

वीर शासन के कुछ मूल सूत्र—युगवीर ११।५६

वीरशासनाक पर सम्मतियाँ ३।२३५, ३।२६२, ३।२६६

वीरसेनाचार्य—अयोध्याप्रसाद गोयलीय २।३३५

व्यक्तित्व—अयोध्याप्रसाद गोयलीय ६।३५५, ६।३०६

र

रङ्ग कृत "सावय चरित्र" समतकउमई ही है—

प्रो. राजाराम जैन एम. ए. १७।२५०

रतनचन्द और उनका काव्य—गंगाराम गर्ग एम. ए.

१७।१८०

रत्नकरण्ड और आप्तमीमांसा का एक कर्तृत्व अभी तक

सिद्ध नहीं—प्रो. हीरालाल जैन एम. ए. ८।२६,

८।८६, ८।१२५

रत्नकरण्ड और आप्तमीमांसा का एक कर्तृत्व प्रमाण सिद्ध

है—न्या. पं. दरबारीलाल जैन ८।१५४, ८।२८२,

८।३२८, ८।४१५

रत्नकरण्ड के कर्तृत्व विषय में मेरा विचार और निर्णय—
जुगलकिशोर मुस्तार ११५, ११५६, १११००, १११२७
रत्नकरण्ड के टीकाकार प्रभाचंद का समय—

न्या. पं. दरबारीलाल जैन ८१४६६

रत्नकर आ. और आप्त मीमांसाका कर्तृत्व—प्रो. हीरालाल
जैन ७१५२, ७१६२

रत्नाकरवर्णी और उनका रत्नकराधीश्वर शतक—

पं. के. भुजबली शास्त्री १२५१

रही में प्राप्त हस्तलिखित जैन अजैन ग्रंथ—सम्पादक
८१४४६

राजस्थान के जैन साहित्य भंडारों से उपलब्ध महत्वपूर्ण
साहित्य—कस्तूरचंद एम. ए. १३१४६

राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों से हिन्दी के नये साहित्य
की खोज—कस्तूरचंद काशलीवाल एम. ए.
१४१२८६, १४३३३

राजस्थानी जैन वेलि साहित्य : एक परिचय—

प्रो. नरेन्द्र भानावत एम. ए. १५१८६

राजस्थानी भाषा का अध्यात्म-गीत—

१७१४६

राजमाता विजया का वैराग्य—सुमेरचन्द्र दिवाकर शास्त्री
१४१६३

रामचरित्र का तुलनात्मक अध्ययन—मुनि श्री विद्यानंद जी
१६३१५

रूपक काव्य परम्परा—परमानंद शास्त्री १४१२५६

रत्नकर

लोक विभाग का रचना स्थान—बा. कामता प्रसाद ११२२१

श.

शब्द-साम्य और उक्ति-साम्य—मुनि श्री नगराज १७११००

शब्द चिन्तन : शोध दिशाएँ—मुनि श्री नथमल १८१८

शासन चतुस्त्रिशिका (मुनि मदन कीर्ति कृत)—

पं. दरबारीलाल कोठिया ११४१०

शान्तिनाथ फागु कुन्दललाल जैन एम. ए. १६१२८२

शान्ति जिन-स्तवन (मुनि पद्मनन्दी)—संपादक १०१२४७

शंभू : स्तोत्र मुनिरत्नकीर्ति—सम्पादक १०३११

शिवभूति शिवाय और शिवकुमार—परमानन्द शा. ७११७

श्वेतांबर कर्म साहित्य और दिगम्बर पंचसंग्रह—

परमानन्द शा. ३१३७८

श्वेतांबर न्याय साहित्यपर एक दृष्टि—पं. रत्नलाल ३११७७

श्री अकलंक और विद्यानन्द की राजवार्त्तिकादि कृतियों

पर पं. सुखलालजी के श्रेष्ठपाणपूर्ण विचार—संपादक

५१२७५

श्रवण वेल्गोल और इन्दौर के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची—
संपादक ५१२६६

श्रावक प्रज्ञप्ति का रचयिता कौन ?—श्री बालचन्द सि.

शास्त्री १८११०

श्री अग्रचन्द नाहटा के लेख पर नोट—

पं. परमानन्द शास्त्री १०३५१

श्री अमरचन्दमणि कृत एक अपूर्व ग्रंथ—

डा. ए. एन. उपाध्ये २०१ टाइल २

श्री कन्दकन्द और यतिवृषभ में पूर्ववर्ती कौन ?—

संपादक २१३३

श्री कन्दकन्द और समन्तभद्र का पूर्ववर्ती तुलनात्मक

अध्ययन—बाल ब्र० विद्युल्लता बी. ए. १३११६१

श्रीचन्द और प्रभाचन्द—पं. नाथूराम प्रेमी ४१८२

श्रीचन्द नाम के तीन विद्वान—परमानन्द शास्त्री ७११०३

श्री चारुकीर्ति भट्टा. भडार—मूडबिंदी के कुछ हस्तलिखित
ग्रन्थों की सूची—संपादक ५१२०६

श्री छोटेलाल जैन अभिनन्दन ग्रन्थ—कस्तूरचन्द काशलीवाल
१८३३७, १८३७८

श्री जिज्ञासा पर मेरा विचार—शु. सिद्धसागर १२
टाइल ३

श्री धवल का रचनाकाल—श्री प्रफुल्लकुमार मोदी ८३७

श्री धवला का समय—बा. ज्योतिप्रसाद ७१२०७

श्रीधर या विबुध श्रीधर नाम के विद्वान—

पं. परमानन्द जैन शास्त्री ८१४६२

श्रीपालचरित्र साहित्य—अग्रचन्द नाहटा २१५५५

श्रीपालचरित्र साहित्य के संबंध में शेष ज्ञातव्य—

अग्रचन्द नाहटा ३१४२७

श्री पाश्वनाथ स्तुति और महर्षि स्तुति—संपादक १११२२७

श्री पाश्वनाथाष्टक (राजसेन)—संपादक १०१८२

श्री पूज्यपाद स्वामी और उनकी रचनाएँ—२१३६६

श्री वद्धमान स्तवन स्तोत्र अज्ञात कर्तृक ११३७५

श्री वीर स्तवन (अमरकीर्ति)—संपादक १०११

श्री वीर का सर्वोदय तीर्थ—संपादक ११७

श्री शिरपुर पार्श्वनाथ स्वामी विनति—

नेमिचन्द बन्तूसा जैन ११३०१

श्रीशुभचन्द्राचार्य का समय और ज्ञानार्णव की एक प्राचीन प्रति—प. नाथूराम प्रेमी ३१२७०

श्री संतराम बी. ए. की सुसागधा—मुनीन्द्र कुमार जैन २४१७

श्री सत्यभक्त जी के खास सन्देश ११३०१

स

सन्मति सूत्र और सिद्धसेन—जुगलकिशोर मुख्तार १४१७

समस्तभद्र और दिग्नाग मे पूर्ववर्ती कौन—

न्या. प. दरबारीलाल कोठिया ५३८३

समंतभद्र का एक और परिचय पद्य—संपादक ७१२६

समंत भद्र की अर्हद्वक्ति—न्या. प. दरबारीलाल ६१२

समन्तभद्रभाष्य—प. दरबारीलाल कोठिया १३३

समयसार के टीकाकार विद्वद्वर रूपचन्द जी—

अगरचन्द नाहुटा १२१२२७

समय सार नाटक—डा. प्रेमसागर १७१०२

समीचीन धर्मशास्त्र—चम्पालाल सिधई पुरदर एम. ए.

२११२५१

समीचीन धर्मशास्त्र और हिन्दी भाष्य—संपादक ७१६१, ७१५३

सर्वार्थसिद्धि पर समंतभद्र का प्रभाव—संपादक ५३४५

सरस्वती भवनों के लिए व्यावहारिक योजना—

एन. सी. वाकलीवाल ११३७४

सरस्वती स्तवनम् स्तोत्र—संपादक ११३३७

सरस्वती स्तवनम् (स्तोत्र)—मलयकीर्ति ११३६६

सामयिक पाठ—साहित्याचार्य पं. पन्नालाल ५१३४

साहित्य की महत्ता—पं. मूलचन्द वत्सल ६५४

साहित्य पुरस्कार और सरकार—सत्य भक्त १२३७५

स्तर के नीचे (कहानी)—मनु जानार्थी साहित्यरत्न १२१२७३

साहित्य संगोष्ठी विवरण २११४४

सिद्ध प्रामृत—पं. हीरालाल शास्त्री २१५४८

सिद्धसेन का सिद्धिश्चय समुदय स्तोत्र—संपादक १४६६

सिद्धसेन के सामने सर्वार्थसिद्धि और राजवातिक—

परमानन्द शास्त्री ३६२६

सिद्धसेन दिवाकर—पं. रतनलाल संघवी २४६२

सिद्धिसेन-दृष्टि प्रबोध-द्वात्रिंशिका—श्रीसिद्धसेनाचार्य

कृत १०१२००

सिंहभद्र को ग्रीरोपदेश—बाबू कामताप्रसाद ६३७

सीया चरित्त एक ग्रन्थयन—परमानन्द शा. २११३७

सुजानमल की काव्य साधना—गंगाराम गर्ग १६१२०

सुप्रभात स्तोत्र—नेमिचन्द्र यति १४१५५

सुलोचना चरित्र और देवसेन—परमानन्द शास्त्री ७१५६

सूरदास और हिन्दी का जैन पद काव्य (एक तुलनात्मक विश्लेषण)—डा. प्रेमसागर १६१२३६

सोलहवीं शताब्दी के दो अपभ्रंश काव्य—

प. परमानन्द शास्त्री १०१६०

सगीत और मन्त्र द्वारा भाग्य परिवर्तन—डा. व्ही. गोरे डी.

एस. सी. अनु. प्रो. दुलीचन्द जैन एम. एस. सी.

१६१६४

संगीत का प्रभाव—श्री गोपाल वाकलीवाल एम. ए.

१६१६७

संगीत विचार-संग्रह—पं. दीनाराम 'मित्र' ४३३२

मशोधन (महाकवि पुष्पदन्त) ४४४७

मस्त्र्कानि कर्म प्रकृति—संपादक ८४४१

मस्कृत साहित्य क विकास में जैन विद्वानों का सहयोग—

डा. मंगलदेव शास्त्री एम. ए. पी. एच. डी. १२१२६७

मस्कृत से अरुचि क्यों?—पं. गोपीलाल अमर एम. ए.

२१७१

स्वामी पात्र केशरी और विद्यानन्द—जुगल किशोर

मुख्तार १६७

स्वामी पात्र केशरी और विद्यानन्द—संपादक २४३७

स्वामी समतभद्र धर्मशास्त्री, तार्किक, योगी—संपादक ७४२

ह

हरिभद्र सूरि—पं. रतनलाल संघवी ४१२०५, ४१२५७

हरिवेणकृत अपभ्रंश 'धर्मपरीक्षा'—प्रो. ए. एन. उपाध्ये

८४८, ८६०

हर्षकीर्ति सूरि और उनके ग्रंथ—श्री अगरचन्द नाहुटा

१०४०७

हारावली चित्रस्तव (सानुवाद)—सम्पादक १५२२

हिन्दी का प्रथम आत्मचरित—पं. बनारसीदास ६।१६
हिन्दी के प्रसन्न ग्रंथों की खोज—डा. कस्तूरचन्द
कासलीवाल १६।२२५
हिन्दी के जैन कवि—श्री जमनालाल जैन विशारद ६।३२
हिन्दी के दो नवीन काव्य—मुनि कान्तिसागर ६।३४३
हिन्दी जैन कवि और काव्य—डा. प्रेमसागर जैन
१६।३४७
हिन्दी जैन साहित्य और हमारा कर्तव्य—अगरचन्द नाहटा
२।२५०
हिन्दी जैनसाहित्यकी विशेषता—श्री कुमारी किरणवाला
जैन १३।१५६
हिन्दी जैन साहित्य के कुछ प्रजात कवि—
बा. ज्योतिप्रसाद एम. ए. १०।३७३

हिन्दी जैन साहित्य में ग्रंथि—कुमारी किरणवाला जैन
१२।२५६
हिन्दी जैनसाहित्य में तत्त्वज्ञान—कुमारी किरणवाला
१२।१६५, १२।२२३
हिन्दी भाषा के कुछ ग्रंथोंकी नई खोज—परमानन्द जैन
१३।१०१
हिन्दी साहित्य सम्मेलन और जैन दर्शन—
प. सुमेरचन्द जैन न्या. ३।२८४
हेमराज गोदी का और प्रवचन सार का पद्यानुवाद—
परमानन्द शा. ११।३८८
हेमराज नाम के दो विद्वान—परमानन्द शास्त्री
१८।१३५

३. पुरातत्त्व (इतिहास, संस्कृति, स्थापत्य, कला)

अ

अग्रवालों का जैन संस्कृति में योगदान—परमानन्द जैन
शास्त्री १६।२७६, १६।३२६
अग्रवालों का जैन संस्कृति में योगदान—पं. परमानन्द
शास्त्री २०।६८, २०।१७७, २०।२३३
अग्रवालों का जैन संस्कृति में योगदान—परमानन्द शास्त्री
२१।४६, २१।६१, २१।१८५
अचलपुर के राजा श्रीपाल ईल—नेमचन्द धनूसा जैन
१६।१०५
अतिशय क्षेत्र अहार—श्री नीरज जैन १८।१७७
अतिशय क्षेत्र—इलोरा की गुफाएँ—
बा. कामताप्रसाद जैन ४।६
अतिशय क्षेत्र कोनी—सि. हुकमचन्द सांथेलीय १६।४२
अतिशय क्षेत्र खजुराहो—परमानन्द शास्त्री १३।१६०
अतिशय क्षेत्र चन्द्रबाड—परमानन्द शास्त्री ८।३४५
अतिशय क्षेत्र श्री कुण्डलपुर—श्री रूपचन्द बजाज ६।३२१
अतीत के पृष्ठों से (कविता)—मगवतस्वरूप २।२३७
अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ श्रीपुर तथा श्रीपुर पार्श्वनाथ स्तोत्र—
नेमचन्द धनूसा जैन १८।६६

अयोध्या एक प्राचीन ऐतिहासिक नगर—परमानन्द शास्त्री
१७।७८
अनार्य देशों में तीर्थकरो और मुनियों का विहार—
मुनि श्रीनथमल १७।१२२
अर्हन्मज्ञानन्द तीर्थ—पं. परमानन्द जैन शास्त्री ४।४२५
अलोप पार्श्वनाथ प्रसाद—मुनि श्री कान्ति सागर २०।५१
अहार का शान्तिनाथ संग्रहालय—श्री नीरज जैन १८।२२१
अहार क्षेत्र के प्राचीन मूर्तिलेख—
पं. गोविन्ददास जी कोठिया ६।३८३
अहार क्षेत्र के प्राचीन मूर्ति लेख—पं. गोविन्ददास न्यातीर्थ
१०।२४, १०।६६, १०।६७, १०।१५३
अहार लड़वारी—श्री यशपाल जैन बी. ए. ४।२२६

आ

आ. कुन्दकुन्द पूर्ववित् और श्रुत के आद्य प्रतिष्ठापक हैं—
पं. हीरालाल सि. शा. १४।३१७
आगम और त्रिपटकों के सन्दर्भ में अजातसमु कृषिक—
मुनि श्रीनगराज २१।२५, २१।५६
आगमों के पाठभेद और उनका मुख्य हेतु—
मुनि श्री नथमल १७।११८

आचार्यकल्प पं. टोडरमल जी—प. परमानन्द शास्त्री
१९२५

आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती की बिम्ब योजना—

डा. नेमिचन्द्र जैन एम. ए. पी. एच. डी. १५।१९६

आचार्य विद्यानन्द का समय और स्वामी वीरसेन—

वा. ज्योतिप्रसाद जैन एम. ए. १०।२७४

आत्मविद्या क्षत्रियों की देन—मूनि श्री नथमल २०।१६२

आनन्द सेठ—प. हीरालाल सि. शा. १४।२६६

आमेर के प्राचीन जैन मन्दिर : उनके लेख—

पं. अनूपचन्द्र न्यायतीर्थ १६।२०६

आचार्य विद्यानन्द के समय पर नवीन प्रकाश—

न्या. प. दरबारीलाल 'कोठिया' १०।११

आचार्य श्री समन्तभद्र का पाटलिपुत्र—

डा. दशरथ शर्मा एम. ए. डी. लिट ११।४२

आर्य और द्रविड—संस्कृति के सम्मेलन का उपक्रम—

वा. जयभगवान जैन एडवोकेट १२।३३५

आर्यों से पहले की संस्कृति—श्री गुलाबचन्द्र चौधरी एम. ए.
१०।४०३

आश्रम पट्टन ही केशोराय है—डा. दशरथ शर्मा ११।३०

इ

इटावा जिले का सक्षिप्त इतिहास—श्री गिरीशचन्द्र त्रिपाठी

१०।२६५

इतिहास—प. नाथूराम प्रेमी ११।५६६

उ

उच्चकुल और उच्चजाति महात्मा बुद्ध के उद्गार—

बी. एल. जैन ३।७७

उज्जैन के निकट प्राचीन दि. जैन मूर्तियाँ—

ब्रा. छोटेलाल जैन १२।३२७

उत्तर कन्नड का मेरा प्रवास—पं. के. भुजबली जैन शा.

१२।७६

उपनिषदों पर ध्वमण संस्कृति का प्रभाव—मूनि श्री नथमल

१६।२६२

उस विश्वबन्ध विभूति का घुंघला चित्रण—देवेन्द्र जैन ३।७७

ऊ

ऊन पावागिरि के निर्माता राजा बल्लाल—

पं. नेमिचन्द्र घन्नुसा जैन २२।२७

ऊर्जयन्तगिरि के प्राचीन पूज्य स्थान—जुगलकिशोर मु०
१४।२१६

ऋ

ऋषभदेव और महादेव—हीरालाल सि. शा. १४।११२

ऋषभदेव और शिवजी—बा. कामताप्रसाद जैन १२।१८५

ए

एक ऐतिहासिक अन्त : साम्प्रदायिक निर्णय—

लाला ज्योतिप्रसाद जैन ८।१६६

एक खोजपूर्ण विचारणा—श्री अमरचन्द्र नाहटा १६।७६

एक जैन सम्राट् चन्द्रगुप्त—प. ईश्वरलाल जैन ४।१००

एक प्रतीकांकित द्वार—प. गोपीलाल अमर एम. ए. २२।६०

एक प्राचीन ताम्र-शासन—सम्पादक ८।२८५

एरिचपुर के राजा ईल और राजा अरिकेशरी—

प. नेमचन्द्र घन्नुसा जैन १६।२१६

एलिचपुर के राजा श्रीपाल उर्फ ईल—

पं. नेमचन्द्र घन्नुसा जैन २०।३५२

ऐ

ऐतिहासिक अध्ययन—वा. माईदयाल जैन २।५६६

ऐतिहासिक घटनाओं का एक संग्रह—सम्पादक ८।३६६

ऐतिहासिक भारत की आद्य मूर्तियाँ—

श्री बालचन्द्र जैन एम. ए. १०।११४

ऐतिहासिक सामग्री पर विशेष प्रकाश—

अमरचन्द्र नाहटा ६।६५

ऐलक-पद कल्पना (११वीं प्रतिमा का इतिहास—)

श्री जुगलकिशोर मुस्तार १०।३८७

ऐहोल का शिलालेख—प. के. भुजबली शास्त्री १५।८७

क

कविवर बनारसीदास की सांस्कृतिक देन—

डा. रवीन्द्रकुमार जैन १५।१६३

कवि लक्ष्मण रचित णेमिणाह चरित का गोणंद नगर और

उसमें रचित व्याकरणग्रन्थ—डा. दशरथ शर्मा १६।२२८

कावड़ : एक चलता-फिरता मन्दिर—महेन्द्र भानावत १७।७

कारी तलाई की जैन मूर्तियाँ—पं. गोपीलाल अमर एम. ए.

२०।२४२

कारजा के भट्टारक लक्ष्मीसेन—डा. विद्याधर जोहरापुरकर

१८।२२३

कालक कुमार—श्री हरजीवनलाल मुशील १।४८६
 कालिकाचार्य—श्री मुनि विद्याविजय १।५१०
 काष्ठासंघ की माथुरान्वयी परम्परा के नये उल्लेख—
 देवेन्द्रकुमार एम. ए. १६।१११
 काष्ठासंघ लाट बागड़ गणकी गुर्वावली—
 पं. परमानन्द जैन शास्त्री १५।१३४
 काष्ठासंघ स्थित माथुरसंघ—गुर्वावली—
 पं. परमानन्द जैन शास्त्री १५।७६
 कुछ नई चीजें—पं० परमानन्द जैन शास्त्री, १२।२८
 कूर्चकों का सम्प्रदाय—पं. नाथूराम प्रेमी ७।७
 केशी गीतम सम्वाद—पं. बालचन्द्र सि. शा. २०।२८८
 कोपल के शिलालेख—पं. बलभद्र जैन १४।२०
 कोल्हापुर के पार्श्वनाथ मन्दिर का शिलालेख—
 परमानन्द जैन १३।२४०
 कोन-सा कुण्डलगिरि सिद्ध क्षेत्र है ?—
 न्या. पं. दरबारीलाल जैन ८।११५, ८।१६८
 क्षपणासार के कर्ता माधवचन्द्र—श्री पं. मिलापचन्द्र कटारिया
 १८।६७
 क्या कुन्दकुन्द ही मूलाचार के कर्ता है ?—
 परमानन्द जैन शा. २।२२१
 क्या कुन्दकुन्दाचार्य भद्रबाहु श्रुतकेवली के शिष्य नहीं है ?
 पं. हीरालाल सि. शा. १४।२६८
 क्या ग्रंथसूचियों आदि पर से जैन साहित्य के इतिहास
 निर्माण सम्भव है ?—परमानन्द शास्त्री १३।२८७
 क्या भट्टारक वर्धमान जैन धर्म के प्रवर्तक थे ?—
 परमानन्द शास्त्री १४।२२४
 क्या मथुरा जम्बूस्वामी का निर्वाण स्थान है ?—
 पं. परमानन्द शास्त्री ८।८५
 ख
 खण्डगिरि उदयगिरि परिचय—बाबू छोटेलाल जैन ११।८१
 खुजराहो का आदिनाथ जिनालय—श्री नीरज जैन १७।३७५
 खुजराहो का घण्टा मन्दिर—गोपीलाल अमर १६।२२६
 खुजराहो का जैन संग्रहालय—श्री नीरज जैन १८।१८
 खुजराहो का पार्श्वनाथ जिनालय—नीरज जैन १६।१५०
 ग
 गजपन्थ क्षेत्र का अति प्राचीन उल्लेख—पं. दरबारीलाल
 ७।१४८

गजपन्थ क्षेत्र के पुराने उल्लेख—पं. नाथूराम प्रेमी ७।६४
 गांधीजी का पुण्यस्तम्भ—डा. वासुदेवशरण अग्रवाल ६।६१
 गिरिनगर की चंद्रगुफा—प्रो. हीरालाल जैन ५।६५
 गुणचंद मुनि कौन हैं ?—पं. दरबारीलाल १०।२५६
 गुर्वावली नन्दितट गच्छ—पं. परमानन्द जैन शास्त्री
 १५।२३५
 गोपाचल दुर्ग के एक मूर्ति लेख का अध्ययन—
 डा. राजाराम जैन २२।२५
 गोम्मत—प्रो. ए. एन. उपाध्याय ४।२२६, ४।२६३
 गोम्मटेश्वर का दर्शन और श्र. के सम्मरण
 पं. सुमेरचंद दिवाकर B. A. L. L. B. ५।२४१
 गोम्मतसार की जी प्र. टीका उसका कर्तृत्व और समय—
 प्रो. ए. एन. उपाध्याय ४।११३
 गौतमस्वामी रचित सूत्र की प्राचीनता—शुल्लक सिद्धसागर
 ११।८४
 गज-बासीदा के जैन मूर्ति व ग्रंथ लेख—
 कुन्दनलाल जैन एम. ए. १८।२६१
 गंधावल और जैन मूर्तियां—एम. पी. गुप्ता और
 बी. एन. शर्मा १६।१२६
 ग्वालियर किले का इतिहास और जैन पुरातत्व—
 पं. परमानन्द शास्त्री १०-१०१
 ग्वालियर के किले की जैन मूर्तियां—श्री कृष्णनन्द ४।४३४
 ग्वालियर के कुछ काष्ठा संधी भट्टारक—
 परमानन्द शास्त्री २२।६४
 ग्वालियर के तोमर वंश का एक नया उल्लेख—
 प्रो. विद्याधर जोहरापुरकर १४।२६६
 ग्वालियर के तोमर : राजवंश के समय जैन धर्म—
 पं. परमानन्द शास्त्री २०।२
 ग्वालियर के पुरातत्व संग्रहालय की जैन मूर्तियां—
 श्री नीरज जैन १६।२१४
 ग्वालियर में जैन शासन—प्रभुलाल प्रेमी ६।१७
 ग्रन्थ एवं ग्रन्थकारों की भूमि राजस्थान—
 डा. कस्तूरचंद कासलीवाल १५।७७
 च
 चक्रवर्ती खारवेल और हिमवन्त थेरावली—
 काशीप्रसाद जायसवाल १।३५२

चन्देल युग का एक नवीन प्रतिमा लेख—

ज्योतिप्रसाद जैन एम. ए. १३।६८

चन्द्रगुप्त मौर्य और विशाखाचार्य—परमानन्द १३।२७६

चपानगर—श्यामलकिशोर भा ६।४८१

चपावती नगरी—नेमचंद घनूसा जैन १६।३३४

चाणक्य और उनका धर्म—मुनि श्री न्यायविजय २।१०५

चामुण्डराय और उनके समकालीन आचार्य—

प. नाथूराम प्रेमी ५।२६२

चित्तौड़ का कीर्तिस्तम्भ—प. नेमचंद घनूसा जैन २१।८३

चित्तौड़ का दि० जैन कीर्तिस्तम्भ—परमानन्द शास्त्री २१।१७६

चित्तौड़ के जैनकीर्तिस्तम्भ का निर्माणकाल—

श्री नीरज जैन २१।१४६

चित्तौड़ के जैनकीर्तिस्तम्भ का निर्माणकाल एवं निर्माता—

श्री अग्रचन्द्र नाहटा ८।१३६

चित्रमय जैनीनीति—सम्पादक ४।२

ज

जगतराय की भक्ति—गगाराम गंग एम. ए. १७।१३३

जयसेन प्रतिष्ठापाठ की प्रतिष्ठा विधि का अशुद्ध प्रचार—

श्री पं. मिलापचंद कटारिया १५।३८

जातिभेद पर अमृतगति आचार्य—जुगलकिशोर गुस्तरा

१।११५

जैन अनुश्रुति का ऐतिहासिक महत्व—बा ज्योतिप्रसाद

७।१७६

जैन आगमों के कुछ विचारणीय शब्द—

मुनि श्री नयमल २०।४०

जैन और वैदिक अनुश्रुतियों में ऋषभ तथा भरत की

भवावलि—डा. नरेन्द्र विद्यार्थी १६।३०६

जैनकला और उसका महत्व—बा० जयभगवान ५।३

जैनकला के प्रतीक और प्रतीकवाद—

डा. ए. के. भट्टाचार्य, डिप्टी कीपर राष्ट्रीय संग्रहा-
लय दिल्ली, अनु. जयभगवान एडवोकेट १४।१८६

जैन कीर्तिस्तम्भ चित्तौड़ के अप्रकाशित शिलालेख—

श्री रामवल्लभ सोमानी जयपुर २२।३६

जैन गुहा मन्दिर—श्री बालचन्द्र जैन एम. ए. १०।१२६

जैन ग्रंथ संग्रहालयों का महत्व—

डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल १०।१६६

जैन ग्रंथों में राष्ट्रकूटों का इतिहास —

रामवल्लभ सोमानी २१।११४

जैन जानियों के प्राचीन इतिहास की समस्या—

श्री अग्रचन्द्र नाहटा ५।३२१

जैन दृष्टिसे प्राचीन सिन्ध—मुनि श्रीविद्याविजय २।५०७

जैनधर्म और जातिवाद—श्री कमलेश सक्सेना M.A. मेरठ

१८।६३

जैनधर्म की देन—ग्रा. क्षितिमोहन सेन ४।५५१

जैनधर्म में सम्प्रदायों का आविर्भाव—

प. कैलाशचन्द शा० १४।३१६

जैनधर्म में मूर्ति पूजा—डा. विद्याधर जोहरापुरकर

१७।१५५

जैन धातु मूर्तियों की प्राचीनता—श्री अग्रचन्द्र नाहटा

१०।२७१

जैन परम्परा का आदिकाल—डा. इन्द्रधर शास्त्री M.A.

१४।१६६

जैन परिवारों के वैष्णव बनने संबंधी वृत्तान्त—

श्री अग्रचन्द्र नाहटा १५।२८२

जैन पुरातत्त्व में गंगा-यमुना—श्री नीरज जैन १६-४०

जैन पुरातन अवशेष (विहगावलोकन)—मुनि कातिसागर

६।२२५, ६।२६१

जैनप्रतिमा लक्षण—बालचन्द्र जैन एम. ए. १६।२०४

जैनमूर्तिकला का प्रारम्भिक स्वरूप—रमेशचंद शर्मा

१६।१४२

जैन सरस्वती—बा. ज्योतिप्रसाद जैन ८।६१

जंसलमेर के भण्डार की छानबीन—सम्पादक १०।४२५

जैन साधुओं की प्रतिमाएँ—श्री बालचन्द्र जैन एम. ए.

१६।२३६

जैन साहित्य में खालियर—मुनि कातिसागर ३।५३६

जैन साहित्य में मथुरा - डा. ज्योतिप्रसाद जैन १५।६५

जैन संस्कृति के प्राण जैनपर्व—प. बलभद्र जैन ७।१५

जैन स्थापत्य की कुछ अद्वितीय विशेषताएँ—

बा. ज्योतिप्रसाद जैन M.A. ८।३४३

जैनदर्श (जैन गुण दर्पण संस्कृत—'युगबीर' ८।३५४

जैनियों की दृष्टि में विहार—पं. के. भुजबली शा. ३।५२१

जैनियों पर घोर अत्याचार—प्रो. हेमुल्ट ग्लाजेंनव ८ ८०

जोधपुर के इतिहास का एक आवरित पृष्ठ—
 अग्रचन्द नाहटा ११।२४८
 जौन पुर में लिखित भगवतीसूत्र प्रशस्ति—
 श्री अग्रचन्द भंवरलाल नाहटा १८।२३८
 जातवंश—श्री प. बेचरदासजी दोशी १५।२८६
 जातवंश का रूपांतर जाटवंश—मुनि कवीन्द्रसागर ३।२६७
 झ
 झालरापाटन का एक प्राचीन वैभव—
 डा. कैलाशचंद जैन M.A., पी. एच. डी. १५।२७६
 ट
 टूड़े ग्राम का अज्ञात जैन पुरातत्व—
 प्रो. भागचन्द 'भागेंदु' २१।६७
 त
 तलधर में प्राप्त १६० प्रतिमाएँ—श्री अग्रचन्द नाहटा १९।८१
 तिरुपट्टि कुरुरम् (जिनकाञ्ची)—श्री टी. एन. रामचन्द्रन १५।१०१
 तीन विलक्षण जिनबिम्ब—श्री नीरज जैन १५-१२१
 तीर्थंकर सुपार्ष्वनाथ की प्रस्तर प्रतिमा—
 ब्रजेन्द्रनाथ शर्मा M. A. १८।१५७
 तोलबदेशीय प्राचीन जैन मन्दिर—
 पं. लोकनाथ शास्त्री १।१०४, १२२
 थ
 दक्षिण के तीर्थस्थान—पं. नाथूराम प्रेमी २।३५१, २।३८१
 दक्षिण भारत के राजवंशों में जैनधर्म का प्रभाव—
 बा. ज्योतिप्रसाद जैन M. A. ८।३५६
 दक्षिण भारत में राज्याश्रय और उसका अभ्युदय—
 डा. टी. एन. रामचन्द्रन एम. ए. ११।३७८
 दण्डनायक गंगराज—श्री प. के. भुजबली शास्त्री १५।२२५
 दस्ता बीसा भेद का प्राचीनत्व—अग्रचंद नाहटा ४।३३६
 दिल्ली और उसके पांच नाम—पं. परमानन्द शास्त्री १३।१९
 दिल्ली और दिल्ली की राजावली—
 प. परमानन्द शास्त्री ८।७१
 दिल्ली और योगिनीपुर नामों की प्राचीनता—
 अग्रचंद नाहटा १३।७२
 दिल्ली पट्ट के मूलसंधी भट्टारकों का प्रभाव—
 डा. ज्योतिप्रसाद जैन १७।५४, १७।१५६

दिल्ली शासकों के समय पर नया प्रकाश—
 हीरालाल सि. शा. १९।२५६
 दीवान अमरचन्द—परमानन्द जैन १३।१९८
 दीवान रामचन्द छावडा—परमानन्द शास्त्री १३।२५६
 देवगढ़—श्री नाथूराम सिधई १।९८
 देवगढ़ का ऐतिहासिक अनुशालन—प्रो. भागचन्द जैन
 'भागेंदु' एम. ए. १६।२३२
 देवगढ़ का शान्तिनाथ जिनालय—
 प्रो. भागचन्द जैन एम. ए. २०।६२
 देवगढ़ की जैन प्रतिमाएँ—प्रो. कृष्णदत्त बाजपेयी, सागर-
 वि. विश्वविद्यालय १५।२७
 देवताओं का गढ़, देवगढ़—श्री नीरज जी सतना
 १७।१६७
 देहली के जैन मन्दिर और जैन संस्थाएँ—
 बा. पन्नालाल जैन अग्रवाल ८।२१७
 देहली धर्मपुरे का दि. जैन मन्दिर—
 बा. पन्नालाल जैन अग्रवाल ८।३२
 दो ताडपत्रीय प्रतियों की ऐतिहासिक प्रशस्तियाँ—
 श्री भवरलाल नाहटा १८।८५
 द्रोणगिरि—डा. विद्याधर जोहरापुरकर १७।१२३
 ध
 धवला प्रशस्ति के राष्ट्रकूट नरेश—बा. ज्योतिप्रसाद
 जैन M. A. ८।९७
 धर्कट वन्श—अग्रचन्द नाहटा ४।६१०
 धर्मचक्र सम्बन्धी जैन परम्परा—डा. ज्योतिप्रसाद जैन
 १९।१३६
 धारा और धारा के जैन विद्वान्—परमानन्द शास्त्री
 १३।२८१
 धारा और धारा के जैन विद्वान्—परमानन्द शास्त्री
 १४।९८
 धुबेला संग्रहालय के जैन मूर्तिलेख—बालचन्द जैन एम. ए.
 १९।२४४
 न
 नगर खेट-कर्वट-मटम्ब और पत्तन आदि की परिभाषा—
 डा. दशरथ शर्मा १५।११९
 नदि संघ बलात्कारण पट्टावली—परमानन्द जैन शास्त्री
 १७।३५

नंदिसंघ बलात्कारगण की शाखा-प्रशाखाएँ—

पं. पन्नालाल सोनी १४।३४३

नया मन्दिर धर्मपुरा के जैन मूर्तिलेख—

सक. परमानन्द शास्त्री १५।१००, १५।२३७

नया मन्दिर के जैन मूर्तिलेख—परमानन्द शास्त्री

१६।५०, १६।६८, १६।१४५, १६।१६४, १६।२४२

नया मन्दिर धर्मपुरा दिल्ली के जैन मूर्ति लेख—

परमानन्द जैन शास्त्री १७।२

नवागढ (एक महत्त्वपूर्ण मध्यकालीन जैनतीर्थ)—

श्री नीरज जैन १५।३३७

नाग सभ्यता का भारत को देन—बा. ज्योतिप्रसाद जैन

६।२४६, ६।२६८

निर्वाणकाण्ड के पूर्वाधार तथा उसके रूपान्तर—

डा. विद्याधर जोहगपुरकर २२।७

निसीहिया नसियाँ—हीरालाल सि. शा. १३।४३

नूपतुग का मत विचार—एम. गोविंद पं ३।५७८, ३।६४५

प

पतियानदाई : एक गुप्तकालीन जैन मन्दिर—

गोपीलाल अमर १६।३४०

पतियानदाई (एक भूला-विसरा जैन मन्दिर)—

श्री नीरज जैन १५।१७७

पतियानदाई मन्दिर की मूर्तियाँ और चौबीस जिन

शासन मूर्तियाँ—श्री नीरज जैन १६।१००

परवार जाति के इतिहास पर कुछ प्रकाश—

प. नाथूराम प्रेमी ३।४४१

पराक्रमी जैन—गोयलीय ६।१४५

पारग्रह-परिमाण-व्रत के दासीदास गुलाम थे—

प. नाथूराम प्रेमी ३।५२६

पल्लूग्राम की प्रतिमा व अन्य जैन सरस्वती प्रतिमाएँ—

श्री धीरेन्द्र जैन १७।५७

पुरातन जैन शिल्पकला का संक्षिप्त परिचय—

श्री बालचन्द्र जैन M. A. १०।३१६

पुरानी बातों की खोज—पं. जुगलकिशोर १।१३०, १।१६५,

१।२६६, १।३२४

पोसहरास और भट्टारक ज्ञानभूषण—परमानन्द जैन

१३।११६

पंजाब में उपलब्ध कुछ जैन लेख—डा. बनारसीदास ५।७१

प्रतिमालेख संग्रह और उसका महत्व—मुनि कातिमागर

४।४२७, ४।५०१

प्रतिहार साम्राज्य में जैनधर्म—डा. दशरथ शर्मा एम. ए.

डी. लिट्. १८।१७

प्रभाचन्द्र का समय—प. महेन्द्रकुमार न्या. ४।१२४

प्रभाचन्द्र के समय की सामग्री—महेन्द्रकुमार जैन एम. ए.

२।६१, २।२१५

प्राकृत वैयाकरणों की पाश्चात्य शाखा का सिंहावलोकन—

डा. सत्यरंजन बनर्जी १६।१७५

प्राग्वाट जाति का विकास—अगरचन्द नाहटा ४।३८६

प्राचीन जैन मन्दिरों के ध्वंस से निमित्त मस्जिदें—

बा. ज्योतिप्रसाद जैन ८।२७६

प्राचीन जैन साहित्य और कला का प्राथमिक परिचय—

एन. सी. बाकलीवाल १२।८५

प्राचीन पट अभिलेख—श्री गोपीलाल अमर एम. ए.

१५।२३१

प्राचीन मथुरा के जैनो की सघ व्यवस्था—

डा. ज्योतिप्रसाद जैन १७।२१७

फ

फनेहपुर (शेखावाटी) के जैन मूर्तिलेख—परमानन्द जैन

शास्त्री ११।४०३

ब

बजरगढ का विशद जिनालय—श्री नीरज जैन १८।६५

बानपुर का चतुर्मुख सहस्रकूट जिनालय—श्री नीरज जैन

१६।५१

बंकापुर—प. के भुजबली शास्त्री १३।३५३

बागड प्रान्त के दो दिगम्बर जैनमन्दिर—परमानन्द

१३।११२

बादामी चालुक्य नरेश और जैनधर्म—दुर्गाप्रसाद दीक्षित

एम. ए. २०।१२६

बादामी चालुक्य अभिलेखों में वर्णित जैन सम्प्रदाय तथा

आचार्य—प्रो. दुर्गाप्रसाद एम. ए. २०।२४७

बुन्देलखंड का प्राचीन वैभव, देवगढ़—श्री कृष्णानन्द गुप्त

४।५१४

बूढ़ी चन्देरी और हमारा कर्तव्य—दीपचन्द्र वर्मा १।३१८

बोध प्राभृत के सन्दर्भ में आचार्य कुन्दकुन्द—

साध्वी श्री मंजुला १८।१२८

बौद्ध साहित्य में जैनधर्म—प्रो. डॉ. भागचन्द्र जैन एम. ए.

पी. एच. डी. १९।२९२

बौद्धाचार्य बुद्धघोष और महावीर कालीन जैन—

बा. ज्योतिप्रसाद जैन एम. ए. ८।१०६

बंगाल के कुछ प्राचीन जैन स्थल—बा. ज्योतिप्रसाद एम. ए.

८।२६१

भ

भगवान ऋषभदेव—परमानन्द शास्त्री २२।७८

भगवान ऋषभदेव के अमर स्मारक—

पं. हीरालाल सि. शा. १३।६७

भगवान कश्यप ऋषभदेव—श्री बाबू जयभगवान

एडवोकेट पानीपत १५।१७६

भगवान पार्श्वनाथ—परमानन्द शास्त्री १८।२६६

भगवान पार्श्वनाथ का किला—प. कैलाशचन्द्र शास्त्री

११।२७६

भगवान महावीर—प. परमानन्द जैन शास्त्री ८।११७

भगवान महावीर—परमानन्द शास्त्री १३।२३१

भगवान महावीर—श्री विजयलाल जैन ५।३५३

भगवान महावीर—सुमेरचन्द्र दिवाकर ७।१६०

भगवान महावीर और उनका जीवन दर्शन—

डा. ए. एन. उपाध्ये, अनु० कुन्दनलाल एम. ए.

१५।१०४

भगवान महावीर और उनका मिशन—वाडीलाल मोतीलाल

शाह २।१२३

भगवान महावीर और उनका लोक कल्याणकारी सदेश—

डा. हीरालाल M. A. १३।२५६

भगवान महावीर और उनका समय १।२

भगवान महावीर और उनका सन्देश—श्री कस्तूर साब जी

जैन बी. ए. बी. टी. ८।१७, ८।२३७

भगवान महावीर और नागवश—मुनि श्री नथमल जी

१६।१६१

भगवान महावीर और बुद्ध की समसामयिकता—

मुनि श्री नगराज १६।११, १६।५४, १६।११३,

१६।१६५

भगवान महावीर का जीवन चरित्र—ज्योतिप्रसाद जैन

२।६४७

भगवान महावीर का जीवन चरित्र (महत्त्वपूर्ण पत्र)—

प. बनारसीदास चतुर्वेदी १५।२८

भगवान महावीर के जीवन प्रसंग—मुनि श्री महेन्द्रकुमार

प्रथम १७।१७

भगवान महावीर के विषय में बौद्ध मनोवृत्ति—

प. कैलाशचन्द्र शास्त्री ६।२८४

भ. बुद्ध और मासाहार—हीरालाल सि. शा. १४।२३८

भट्टारकीय मनोवृत्ति का एक नमूना—सम्पादक ८।२८७

भट्टारक विजयकीर्ति—डा. कस्तूरचन्द्र कासलीवाल १७।३०

भ. महावीर और महात्मा बुद्ध—फतेहचन्द वेलानी ७।१६३

भगवान महावीर के निर्वाण सम्बन्ध की समालोचना—

पं. ए. शातिराज शास्त्री ४।५५६

विनयचन्द्र के समय पर विचार—परमानन्द शास्त्री

२०।३०

भारत के अजायबघरों और कला भवनो की सूची—

बा. पन्नालाल अग्रवाल १२।६८

भारत के अहिंसक महात्मा सन्त श्री पूज्य गणेशप्रसाद जी

वर्णी की वर्ष गाठ—परमानन्द जैन ११।२३४

भारत की अहिंसा सस्कृति—बा. जयभगवान एडवोकेट

११।१८५

भारतीय इतिहास का जैन युग—७।७७, ७।१२१

भारतीय इतिहास में अहिंसा—देवेन्द्रकुमार ६।३७५

भारतीय इतिहास में महावीर का स्थान—बा. जयभगवान

७।२६७

भारतीय वास्तु शास्त्र में जैन प्रतिमा सम्बन्धी ज्ञातव्य—

अगर चन्द नाहटा २०।२०७

भारतीय सस्कृति में जैन सस्कृति का स्थान—

बा. जयभगवान वकील ४।५७५

भारतीय सस्कृति में बुद्ध और महावीर—मुनि श्री नथमल

१७।१६५

भेलसा का प्राचीन इतिहास—राजमल मडवैया १२।२७७

म

मथुरा के सेठ लक्ष्मीचन्द सम्बन्धी विशेष जानकारी—

अगरचन्द नाहटा २१।२१०

मद्रास और मलियापुर का जैन पुरातत्त्व—छोटेलाल जैन
०३।३५

मगध और जन संस्कृति—डा. गुलाबचन्द एम. ए.
१७।२१२

मथुरा संग्रहालय की तीर्थंकर मूर्ति—प्रो. कृष्णदत्त वाजपेयी
१०।२६१

मगध सम्राट् राजा विम्बसार का जैनधर्म परिग्रहण—
परमानन्द शास्त्री २०।८१

मथुरा के जैन स्तूपों की यात्रा के महत्वपूर्ण उल्लेख—
अगरचन्द नाहटा १२।२८८

मथुरा संग्रहालय की महत्वपूर्ण जैन पुरातत्त्व सामग्री—
बालचन्द एम. ए. ६।३४५

मध्यप्रदेश और बरग का जैन पुरातत्त्व—कातिसागर
५।१६०

मध्य प्रदेश का जैन पुरातत्त्व—परमानन्द शास्त्री १६।५४

मनुष्य जाति के महान उद्धारक—बी. एल. सर्गेफ ३।३२५

मन्दसौर में जैनधर्म—गोपीलाल अमर एम. ए. २०।४६

मन्दिरों का नगर मठई—श्री नीरज जैन मन्ना १७।११७

महर्षि वाल्मीकि और श्रमणसंस्कृति—मुनि विद्यानन्द
१७।४३

महत्वपूर्ण दो लेख—नेमचन्द घन्टमा जैन १८।१४४

महाकौशल का जैन पुरातत्त्व—बालचन्द जैन एम. ए.
१७।१३१

महामुनि सुकमाल—ला. जिनेश्वरदास ६।१५८

महावीर उपदेशावतार—प. अजितकुमार शास्त्री ८।४१

महावीर और बुद्ध के पारिपासिक भिक्षु-भिक्षुणियों—
मुनि श्री नगराज २०।७५

महावीर और बुद्ध की सम्प्रामयिकता विषयक कुछ
युक्तियों पर विचार—डा. दशरथ शर्मा १६।२५२

महावीर के विवाह के सम्बन्ध में श्वे. की दो मान्यताएँ—
परमानन्द शास्त्री १४।१०६

महाराज खारवेल—बाबू छोटेलाल कलकत्ता १।२६४

महाराज खारवेल एक महान निर्माता—बा. छोटेलाल जैन
११।१५७

महाराज खारवेल सिरि के शिलालेख की १४वीं पंक्ति—
मुनि श्री पुण्यविजय १।१४२

महारानी शान्ता—पं. के भुजबली शास्त्री २।५७६

मानव जातियों का दंवीकरण—साध्वी सचमित्रा २१।१४

मानव संहिता के इतिहास में महावीर की देन—

पं. रतनलाल १०।२५

मारोठ का इतिहास और जकडी—परमानन्द शास्त्री
१६।८६

मुस्लिम युगीन मालवा का जैन पुरातत्त्व—तेजसिंह गौड़
एम. ए. रिसर्च स्कालर २२।१४

मूर्ति कला—श्री लोकपाल ६।३३३

मृलाचार के कत्ता—क्षु. सिद्धिसागर ११।३७२

मेवाड़ोद्धारक भामाशाह—अयोध्या प्रसाद गोयलीय १।२४७

मेरी रणथंभोर यात्रा—श्री भवरलाल नाहटा ८।४४४

मोहनजोदड़ो की कला और जैन संस्कृति—

श्री बा. जयभगवान एडवोकेट १०।४३३

मोहन जोदड़ो कालीन और आधुनिक जैन संस्कृति—

बा. जयभगवान एडवोकेट ११।४७, ११३

मौर्य साम्राज्य का संक्षिप्त इतिहास—श्री बालचन्द जैन

एम. ए. १०।३६१

मंगलमय महावीर—श्री साधु टी. एल. वास्वानी १।३३७

मेवाड़ के पुराणों की एक प्रशस्ति—रामवल्लभ सोमानी
१०।३०३

य

यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन—डा. गोकुलचन्द
एम. ए. २१।२

यज्ञ और अहिंसक परम्परायें—आचार्य श्री तुलसी
१७।२६६

यति समाज—अगरचन्द नाहटा ३।४६८

यशस्तिलक कालीन आर्थिक जीवन—डा. गोकुलचन्द जैन
१८।५०

यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन—डा. गोकुलचन्द जैन
आचार्य एम. ए. पी. एच. डी. २०।२७६

यशस्तिलक में चर्चित-आश्रम व्यवस्था सन्यस्त व्यक्ति—
डा. गोकुलचन्द जैन १८।१४६

यशस्तिलक में वर्णित वर्ण व्यवस्था और समाज गठन—
डा. गोकुलचन्द जैन १८।२१३

र

रक्षाबन्धन का प्रारम्भ—पं. बालचन्द बी. ए. ८।४०८

रसिक अनन्यमाल में एक सरावगी जैनी का विवरण—

श्री अग्रचन्द नाहटा १५।२२६

राजगृह की यात्रा—न्या. पं. दरबारीलाल जैन ८।१७५

राजघाट की जैन प्रतिमायें—नीरज जैन १६।४६

राजनापुर खिनखिनी की धातु प्रतिमाये—श्री बालचन्द जैन एम. ए. १५।८५

राजपूत कालिक मालवा का जैन पुरातत्त्व—

तेजसिंह गोड़ एम. ए. बी. एड. २१।३५

राजस्थान का जैन पुरातत्त्व—डा. कैलाशचन्द जैन १६।३१५

राजस्थान में दासी प्रथा—परमानन्द जैन १३।६६

राजा खारवेल और हिमवन्त थेरावली—कामता प्रसाद ५।६२१

राजा एल—डा. विद्याधर जोहरापुरकर एम. ए. १६।२२६

राजा खारवेल और उनका वंश—कामता प्रसाद १।२६७

राजा खारवेल और उनका वंश—मुनि कल्लाण विजय

१।२२६

राजा खारवेल और हिमवन्त थेरावली—मुनिकल्याण विजय

१।३४२

राजा श्रीपाल उर्फ ईल—पं. नेमिचन्द्र धनूसा जैन

१७।१२०

राजा श्रेणिक या बिम्बसार का आयुष्यकाल—प. मिलाप-चन्द्र कटारिया २०।८४

राजा हरमुखराय अयोध्याप्रसाद गोयलीय २।३३२

राष्ट्रकूट काल में जैनधर्म—डा. अ. स. अल्लेकर १२।२८३

राष्ट्रकूट गोविन्द तृतीय का शासनकाल—श्री एम. गोविन्द पं. १०।२२२

रावण पार्श्वनाथ की अवस्थिति—अग्रचन्द नाहटा ६।२२२

राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष की जैन दीक्षा—प्रो. हीरालाल एम. ए. ५।१२३

रोपड़ की खुदाई में महत्वपूर्ण ऐतिहासिक वस्तुओं की उपलब्धि—१३।१५६

व

वधेरवाल जाति—डा. विद्याधर जोहरापुरकर १७।६३

चडली स्तंभ खण्ड लेख—श्री बालचन्द्र जैन एम. ए.

१०।१५०

वाचक वंश—मुनि दर्शन विजय १।५७६

वानर महाद्वीप (संपादकीय नोट सहित)—

प्रो. ज्वालाप्रसाद सिंहल ८।५४

वामनावतार और जैन मुनि विष्णुकुमार—

श्री अग्रचन्द नाहटा १२।२४७

विक्रमी सवत की समस्या—प्रो. पुष्पमित्र जैन १४।२८७

विजोलिया के शिलालेख—परमानन्द शा. ११।३५८

विदर्भ में जैनधर्म की परम्परा—डा. विद्याधर जोहरापुरकर १८।१४६

वीरशासन और उसका महत्त्व—न्या. पं. दरबारीलाल कोठिया ५।१८८

वीरशासनकी उत्पत्ति का समय और स्थान—संपादक ६।७६

वीरशासन जयती का इतिहास—जुगलकिशोर मुस्तार १४।३३८

वीरसेन स्वामी के स्वर्गारोहण समय पर एक दृष्टि—

प. दरबारीलाल जैन कोठिया ८।१४४

वीर निर्वाण सवत् की समालोचना पर विचार—संपादक ४।५२६

वृषभदेव तथा शिव सम्बन्धी प्राचीन मान्यताएँ—

डा. राजकुमार जैन १८।२३०, १८।२७६

वृषभदेव तथा शिव सम्बन्धी प्राचीन मान्यतायें—

डा. राजकुमार जैन १६।७४

वैदिक ब्राह्म्य और महावीर—कमनिन्द ६।२३५

वैशाली (एक समस्या)—मुनि कान्तिसागर ६।२६७

वैशाली की महत्ता—श्री आर. आर. दिवाकर राज्यपाल विहार ११।४१६

श

शहडोल जिले में जैन संस्कृति का एक अज्ञात केन्द्र—

प्रो. भागचन्द जैन भागेन्दु २२।७१

शांति और सौम्यता का तीर्थ कुण्डलपुर—श्री नीरज जैन १७।७३

शिलालेखों में जैनधर्मकी उदारता—वा. कामताप्रसाद २।८३

शोधकण—(१ तीन विलक्षण जिन बिम्ब, २ पतियान दाई,

३ भगवान महावीर ज्ञातपुत्रथे या नागपुत्र?) श्री बाबू

छांटेलाल जैन १५।२२४

शोधकण—बाबू छोटेलाल जैन १६।४३
 शोधकण—परमानन्द शास्त्री १८।६०
 शोध टिप्पण—नेमचन्द धन्नुसा जैन १७।१२०
 शोध टिप्पण—मुनि श्री नथमल १७।११८, १७।१२२
 शोध टिप्पण— प्रो. डा. विद्याधर जोहरापुरकर १६।१७५,
 १६।२५६
 शोध टिप्पण—परमानन्द शास्त्री १६।१३८
 श्रमणगिरि चले—जीबबन्धु टी. एस. अनुवादक
 पी. बी. वास्नव दत्ता जैन न्यायतीर्थ एम.ए. १४।१२५
 श्रमण परम्परा और चाण्डाल—डा. ज्योतिप्रसाद जैन एम.ए.
 १४।२८५
 श्रमण बलिदान—श्री अखिल १२।३६६
 श्रमण संस्कृति और भाषा—न्या. प. महेंद्रकुमार ५।१६३
 श्रमण संस्कृति का प्राचीनत्व—मुनि श्री विद्यानन्द
 २०।१२७
 श्रमण संस्कृति के उद्धारक—ऋषभदेव—परमानन्द शास्त्री
 १६।२७३
 श्रमण संस्कृति में नारी—परमानन्द जैन १३।८४
 श्रावकव्रतविधान का अनुष्ठाना आनन्द श्रमणोपासक—
 बालचन्द सि. शा. १६।४७६
 श्रावणकृष्ण प्रतिपदा की स्मरणीय तिथि—परमानन्द शा.
 २।४७३
 श्री अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ पोली मन्दिर शिरपुर—
 नेमचन्द धन्नुसा जैन २०।११
 श्री अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ वस्ती मन्दिर तथा मूल नायक
 मूर्ति शिरपुर—नेमचन्द धन्नुसा जैन २०।१६६
 श्री क्षेत्र बड़वानी—प्रो. विद्याधर जोहरापुरकर १५।८७
 श्री खारवेल प्रशस्ति और जैनधर्म की प्राचीनता—
 काशीप्रसाद जायसवाल १।२४१
 श्रीधर स्वामी की निर्वाण भूमि कुण्डलपुर—
 जगमोहनलाल शास्त्री २०।१६१
 श्रीपुर क्षेत्र के निर्माता राजा श्रीपाल ईल—
 नेमचन्द धन्नुसा जैन २१।१६२
 श्रीपुर निर्वाण भक्ति और कुन्दकुन्द—
 डा. विद्याधर जोहरापुरकर १८।१४

श्रीपुर पार्श्वनाथ मन्दिर के मूर्ति-यत्र लेख संग्रह—
 पं. नेमचन्द धन्नुसा जैन १८।२५, १८।८०
 श्रीपुर में राजा ईल से पूर्व का जैन मन्दिर—
 नेमचन्द धन्नुसा जैन १७।१४५
 श्री बाहुबली की आश्चर्यमयी प्रतिमा—आ० श्री विजयेन्द्र
 सूरि १२।३११
 श्री भद्रबाहु स्वामी—मुनि श्री चतुर्विजय (अनुवादक
 परमानन्द) १३।६७८
 श्रीमोहनलालजी ज्ञानभंडार सूरत की ताडपत्रीय प्रतियां—
 श्री भवरलाल नाहटा १८।१७६
 श्री राहुल का सिंह सेनापति—श्री माणिकचंद ६।२५३
 श्रुतकीर्ति और उनकी धर्मपरीक्षा—डा० हीरालाल जैन
 एम. ए. ११।१०५
 शृंगेरी की पार्श्वनाथ वस्ती का शिलालेख—
 बाबू कामता प्रसाद जैन ६।२२४
स
 सप्तक्षेत्र रासका वर्षाविषय—श्रीअगरचन्द नाहटा १५।१६०
 समन्तभद्र का मुनि जीवन और आपत्काल—
 सम्पादक ४।४१, ८।१५३
 समन्तभद्र का समय निर्णय—जुगलकिशोर मुन्नार १४।३
 समन्तभद्रका समय—डा. ज्योतिप्रसाद जैन एम. ए.
 एल. बी. १४।३२४
 सम्राट् अशोक के शिलालेखों की अमरवाणी—
 श्री निर्वन्द १०।३०८
 साहित्य में अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ श्रीपुर—
 प. नेमचन्द धन्नुसा जैन १८।२२४, १८।२६५
 सित्तन्वासल—गुलाबचन्द अभयचन्द ६।३६३
 सिरि खारवेलके शिला की १४वीं पंक्ति—बा. कामनाप्रसाद
 १।२३०
 सीरा पहाड के प्राचीन जैन गुफा मन्दिर—
 श्री नीरज जैन १५।२२२
 सूत्रधार मंडन विरचित रूपमंडन में जैन मूर्ति लक्षण—
 अगरचन्द नाहटा १६।२६४
 सेनगण की भट्टारक परम्परा—श्री प. नेमचन्द धन्नुसा
 १८।१५३
 मोनागिरि की वर्तमान भट्टारक गद्दी का इतिहास—
 श्री बालचन्द जैन एम. ए. १०।३६१

सोनागिर सिद्ध क्षेत्र और तत्सम्बन्धी साहित्य—

डा. नेमिचन्द शास्त्री २१।१८

सोलहवीं शताब्दीकी दो प्रशस्तियाँ—परमानन्द शा. १८।१६

संगीत का जीवन में स्थान—बा. छोटेलाल जैन ११।१२५

संगीतपुर के सालुवेन्द्र नरेश और जैनधर्म—

बा. कामताप्रसाद ६।१८७

संत श्री गुणचन्द—परमानन्द शास्त्री १७।१८६

संस्कृत के जैन प्रबन्ध काव्यों में प्रतिपादित शिक्षा पद्धति—

नेमिचन्द शास्त्री १६।१०६

ह

हड़प्पा और जैनधर्म—टी. एन. रामचन्द्रन-अनुवादक

बा. जयभगवान जी एडवोकेट १४।१५७

हमारा प्राचीन विस्मृत वैभव—

पं. दरबारी लालजी न्यायाचार्य १४।३०

हमारी तीर्थयात्रा के सस्मरण—प. परमानन्द शास्त्री

१२।२४, १२।३६, १२।८६, १२।१६३, १२।१८८,

१२।२३५, १२।२७६, १२।३१६

हरिभद्र द्वारा उल्लिखित नगर—डा. नेमिचन्द जैन १५।५१

हस्तिनापुर का बड़ा जैन मन्दिर—परमानन्द जैन १३।२०४

हूबड या हूमड वंश तथा उसके महत्वपूर्ण कार्य—

परमानन्द जैन शास्त्री १३।१२३

होयसल नरेश विष्णुवर्धन और जैनधर्म—

पं. के. भुजबली १७।२४२

४. समीक्षा

स

साहित्य परिचय और समालोचन—सम्पादक ३।६८

३।२००, ३।३७४, कि. ६ टा,३

साहित्य परिचय और समालोचन—पं. परमानन्द शास्त्री

४।३७, ४।३००, ४।३३४, ४।५२६, ४।६२८

साहित्य परिचय और समालोचन—परमानन्द शा. ७।२८,

७।१६६

साहित्य परिचय और समालोचन—दरबारीलाल कोठिया

८।१०४

साहित्य परिचय और समालोचन—परमानन्द ८।२१३

साहित्य परिचय और समालोचन—बा. ज्योतिप्रसाद

८।२६५, ८।४२६, ८।४५८

साहित्य परिचय और समालोचन—प. परमानन्द शास्त्री

६।१६५, ६।३६०

साहित्य परिचय और समालोचन—

पं. दरबारी लाल कोठिया ६।४३, ६।६०, ६।१२४

साहित्य परिचय और समालोचन—परमानन्द शा.

१०।३८, १०।८०, १०।१२०

साहित्य परिचय और समालोचन—बालचन्द एम. ए.

१०।१६३

साहित्य परिचय और समालोचन—दरबारीलाल जैन

६।३५८, १०।२३२, १०।३१०

साहित्य परिचय और समालोचन—परमानन्द शा०

११।७४, ११।३३४, ११।२२४

साहित्य परिचय और समालोचन—प. परमानन्द जैन

शास्त्री १२।४०, १२।१७१, १२।२३८, १२।२७०,

१२।३८५

साहित्य परिचय और समालोचन—परमानन्द जैन

१३।६४, १३।६६, १३।१३२, १३।२६६

साहित्य परिचय और समालोचन—परमानन्द जैन

१४।कि. ६ टा. १४, २१०

साहित्य समीक्षा—डा. प्रेमसागर जैन १५।७६, १५।६६,

१५।१४४, १५।१६२, १५।२३६, १५।२८८

साहित्य समीक्षा—डा. प्रेमसागर जैन १६।४४, १६।८७,

१६।१६०, १६।२४०, १६।२८६

साहित्य समीक्षा—डा. प्रेमसागर १७।४८, १७।६६,

१७।१६२

साहित्य समीक्षा—परमानन्द शास्त्री १७।६६, १७।१४४,

१७।२८५

साहित्य समीक्षा—डा. प्रेमसागर १८१२३६
 साहित्य समीक्षा—परमानंद शास्त्री १८१४५, १८१६५,
 १८१६२ १८१२६३
 साहित्य समीक्षा—परमानंद शास्त्री १६१२०१, १६१२८६,
 १६१३३७
 साहित्य समीक्षा—डा. प्रेमसागर १६१२८३
 साहित्य समीक्षा—परमानंद शास्त्री २०१६३, २०११४३,
 २०१२३६

साहित्य समीक्षा—डा. प्रेमसागर २०१३३६
 साहित्य समीक्षा—परमानंद शास्त्री २११४७, २११६५
 साहित्य समीक्षा—परमानंद शास्त्री २१११६०
 और बालचंद शास्त्री १११६०
 साहित्य समीक्षा—परमानंद शास्त्री २२१४७
 साहित्य समीक्षा—परमानंद शास्त्री २२१६३
 बालचंद शास्त्री २२१६३

५. कहानियां

अ

अछूत की प्रतिज्ञा—श्री भगवत जैन ८१२६
 अपराध—श्री भगवत जैन ८१३५६
 अयोध्या का राजा—श्री भगवत जैन ४१२६५
 अहिंसा परमोधर्म—श्री भगवत जैन २१५११

आ

आत्म बोध—श्री भगवत जैन ४१५७
 आत्मा का बोध—यशपाल बी. ए. २११३
 आत्मसमर्पण—श्री भगवत जैन ८१३३

उ

उपासना—भगवतस्वरूप भगवत् १११६
 उस दिन—श्री भगवत जैन ३१२१७

ए

एक पत्नीव्रत—श्री भगवत जैन ४१६०५

क

करनी का फल (कथा कहानी)—अयोध्याप्रसाद गोयलीय
 ६१७२
 कार्तिकेय—श्री सत्याश्रयभारती १५११६७, १५१२१६
 कुत्ते (कथा कहानी)—अयोध्या प्रसाद गोयलीय ६११८२

ग

गरीब का दिल—श्री भगवत जैन ४१३६४
 गुरुदक्षिणा—बालचंद जैन विशारद ६१३३६

गेही पे गृह मे न रचे ज्यों—पं. कुन्दनलाल जैन एम. ए.
 १७११२४

च

चरवाहा—श्री भगवत जैन ६१२५
 चादनी के चार दिन—श्री भगवत जैन ६१३५४

ज

जल्लाद—श्री भगवत जैन ४१५४७
 जबकट—श्री भगवत जैन ४१३४२
 जीवन नैया—श्री आर. के. आनन्द प्रसाद ४१४०१
 जीवन है सग्राम—श्री भगवत जैन ८१२८८
 जान करण—श्री भगवत जैन २१३६२

त

तपोभूमि—श्री भगवत जैन ४१४४६
 तुकारी—पं. जयन्ती प्रसाद शास्त्री १४११०३

न

नया मुसाफिर—श्री भगवत जैन ६१२७८
 नर्स—बालचंद जैन एम. ए. ६१३६१
 नागित्व—भगवतस्वरूप जैन भगवत २१३४५

प

परख—स्व. श्री भगवत जैन ८१४३६
 परिवर्तन—श्री भगवतस्वरूप जैन २१६६
 पवित्र पतितात्मा—श्री सत्याश्रय भारती १५१११५
 पश्चात्ताप—पं. जयन्तीप्रसाद शास्त्री १४१६१

फ

फल-बा. राजकुमार जैन ८३।३२३

भ

भाई का प्रेम-नरेन्द्र प्रसाद जैन बी. ए. २।५५८

भ्रातृत्व-श्री भगवत जैन ४।२२१

म

मातृत्व-श्री भगवत जैन ३।७२

माधव मोहन-आचार्य प. जगदीशचन्द्र ६।६१

मै तो बिक चुका-श्रीमती जयन्ती देवी २।६३३

य

युवराज-श्री भगवतजैन ४।३२१

र

रानी मृगावती-श्री सत्याश्रय भारती १५।७१

रत्नराशि-श्री मनु ज्ञानार्थी "साहित्यरत्न" १३।२४

रानी-श्री भगवत जैन ४।४६२

श

शिकारी-श्री यशपाल २।२४८

शिकारी-श्री भगवत जैन ३।२६६

शिक्षा-श्री यशपाल २।४४२

स

संदेह-श्री जयन्तीप्रसाद शास्त्री १४।३०२

सिद्धर वाला-रवीन्द्रनाथ १।६६८

सेवाधर्म-डा. भैयालाल जैन पी. एच. डी. २।११८

स्वाधीनता की दिव्य ज्योति-श्री भगवत जैन ६।४६

६. कविताएँ

अ

अच्छेदन-श्री भगवत जैन ४।५२८

अजसम्बोधन (सचित्र कविता)-'युगवीर' १।१६४

अज संबोधन-श्री युगवीर ३।६०

अज्ञातवास-श्री 'यात्री' ४।३७२

अतीत गीत-श्री भगवन्त गणपति गोयलीय १।६५

अतीत स्मृति-भगवतस्वरूप भगवत् २।३३७

अन्तर-मुनि अमृतचन्द 'सुधा' ६।८

अतर्ध्वनि-श्री कर्मानन्द जैन २।२४६

अतर्ध्वनि-भगवत स्वरूप भगवत् २।५६१

अद्भुत बघन-प अनूपचन्द न्यायतीर्थ ६।७१

अधिकार-भगवतस्वरूप जैन भगवत् २।२६५

अधूरा हार-श्री जगन्नाथ मिश्र गौड़ 'कमल' १।१६८

अध्यात्म गीत-युगवीर १।४।६२

अनित्यता-शोभाचन्द्र भारित्तल न्यायतीर्थ २।४८

अनुरोध-श्री भगवन्त गणपति गोयलीय १।६६

अनुरोध-माहिर कि० ३, टाइल ४

अनेकान्त-श्री कल्याणकुमार श.श १।२७

अपना घर-श्री भगवत् जैन ४।३३८

अपना वैभव-श्री भगवत् जैन ४।६०६

अपनी आलोचना और भावना-युगवीर १।२।टाइटिल

अपनी दशा-भगवत स्वरूप जैन २।२७६

अभ्यर्थना-काशीराम शर्मा ६।५३८

अमर प्यार-श्री भगवत स्वरूप भगवत् २।४४२

अहिंसा-प. विजयकुमार जी १।१।४२

अहिंसा की विजय-कल्याणकुमार शशि ७।१८६

आ

आग्रह-प्रेमसागर पचरत्न ३।६४४

आत्मगीत-श्री भगवत जैन ४।३४१

आत्मदर्शन-पं. काशीराम शर्मा ४।२१६

आशा-रघुवीरशरण एम. ए. ३।६५६

आशा गीत-भगवत जैन ५।३६१

आमू से-पं. बालचन्द जैन ६।२६२

इ

इतिहास-देशदूत से २।४२१

उ

उद्बोधन-कल्याणकुमार शशि १।३६७

उद्धोघन—श्री चन्द्रभात कमलेश ११४६

ए

एक बार—भगवत् स्वरूप जैन भगवत् ५, कि. ७, टा. ३
एक मुनिभक्त—श्री भगवत् जैन ५०२

क

कविताकुज—युगवीर १११३३
कामना—युगवीर ११३२७
किमकी जीत—नेमिचन्द्र जैन 'विनम्र' १३।१०६
क्यों तर्गत है ?—बाबू जयभगवान एडवोकेट १४।७६

ख

खजुगहो के मन्दिरों से—श्री इकबाल बहादुर ८।६६

ग

गद्यगीत—'शशि' ६।२३६
गाधी अभिनदन—रविचन्द्र जैन ४।८५
गाधीगीत—कमलकिशोर बियांगी ६।२३८
गाधी की याद—फजलुन रहमान जमाली ६।८२
गुलामी (खंडकाव्य)—स्व० भगवत् जैन ७।१३१

छ

छद्मवेषी खहरधारियो से—काशीराम शर्मा ७।७३
छलना—श्री भगवन्त गणपति गोयलीय १।३४१

च

चंचल मन—प. काशीराम शर्मा ४।३०६
चतुर्विंशति जिन स्तोत्र—परमानन्द शास्त्री ११।१६५
चहक—श्री भगवत् जैन २।४०
चितामणि पार्श्वनाथ स्तवन—सोमसेन १२।३२६

ज

जग चिडिया रैन बसेरा है—हरीन्द्र भूषण ४।६७
जयकुमार (सं. कविता)—के. भुजबली शास्त्री १।६७
जय जय जुगलकिशोर—बुद्धिलाल श्रावक ६।१६१
जयवीर—श्री भगवत् जैन २।५०५
जागो जागो हे युगप्रधान—पन्नालाल साहित्याचार्य ६।१०२
जाग्रति गीत—कल्याणकुमार जैन २।२६५
जाग्रति गीत—राजेन्द्रकुमार जैन 'कुमरेश' २।४६२
जिन दर्शन स्तोत्र—प. हीरालाल पांडे ४।४४८
जिन्दगी और मौत—श्री मानमल जो १६।१७१
जिन धुन महिमा—प. भागचन्द ११।४१६

जिनेन्द्र मुद्रा का आदर्श—पं. दीचन्द्र ४।४७८

जीवन इसका नाम नहीं है—श्री भगवत् जैन ८।२०३

जीवन नैया—श्री कुसुम जैन ४।३१२

जीवन यात्रा—ज्ञक्ष्मीचन्द्र जैन 'सरोज' १४।३२६

जीवन है सग्राम—श्री भगवत् जैन ८।२२८

जीवन साध—प. भवानी शर्मा ३।२८५

जैन गुण दर्पण—जुगलकिशोर मुस्तार ८।३७५

जैन तपस्वी—कवि भूषणदास ६।१२५

जैनी कीन ?—युगवीर ११।४६

जैनी नीति—श्री प. पन्नालाल साहित्याचार्य ४।१२२

जानी का विचार—कविवर शानतराय १२।१०७

जैन संबोधन—युगवीर १।५५४

त

तब—केदारनाथ मिश्र प्रभाव बी. ए. विशालंकार १।१५२

तरुण गीत—राजेन्द्रकुमार जैन २।३७०

तरुण गीत—राजेन्द्रकुमार जैन कि० ६, टाइल ३

तुम टाल रहे जीवन क्षण-क्षण—श्रीमप्रकाश शर्मा ६।१६१

तेराकण—भगवन्त गणपति गोयलीय

तृष्णा—काशीराम जैन ६।३५१

द

दर्शन और बंधन—कल्याणकुमार जैन 'शशि' २।२५५

दीपक के प्रति—रामकुमार स्नातक ३।५७२

दीपावली का एक दीप—भानदूत २।२६

घ

धर्म स्थिति निवेदन—श्री नाथूराम प्रेमी १।४२६

धार्मिक संबोधन—युगवीर १।२८

न

नाथ अब तो शरण गढ़ें—मनु जानार्थी 'साहित्य रत्न'
१३।६

नीच और अछूत—भगवन्त गणपति गोयलीय १।२४

नीतिवाद—श्री भगवत् जैन २।५६६

नरककाल—श्री भगवत् जैन ३।४७

प

पंछी (गद्यगीत)—भगवत्स्वरूप जैन २।४५२

पंछी नीड किधर है तेरा ?—विजयकुमार चौधरी १०।२६०

पथिक—नरेन्द्रप्रसाद बी. ए. २।३७७

२२६, वर्ष २२ कि० ५

अनेकान्त

पथिक—श्री ददूलाल जैन ५।२६७
पथिक से—ज्ञानचन्द भारिल्ल ७।१२०
प्यारी बांतुन—युगवीर १।३०७
परम उपास्य—युगवीर १।१६३ कि. १ टाइटिन ३
परमाणु—पं. चैनसुखदास ३।४४०
पर्येषण पर्व के प्रति—पं. राजकुमार जैन ४।३७१
पराधीनता जीवन ऐसा—श्री भगवत जैन ५।३७
परोपकार—गिरधर शर्मा २।३३४
पार्श्व जिन जयमाला निंदा स्तुति—

स्व. पं. ऋषभदास चिल्लकाना निवासी १।३।२८२

पुण्य पाप—श्री भगवत जैन ४।१४
पूजा राग समाज तातें जैनिय योग किम—

स्व. पं. ऋषभदास १।३।१८५

पंथी से—श्री कुसुम जैन ५।५८
प्रकाश रेखा—स्व. भगवत जैन ७।१८०
प्रणाम—पं. चैनसुखदास ६।१३५
प्रतीक्षा—कल्याणकुमार 'शशि' २।१६५
प्रश्न—श्री रत्नेश विशारद ३।४५०
प्रार्थना—नाथूराम प्रेमी १।३२१
प्रार्थना—चौधरी वसन्तलाल १।५६६

फ

फूल से—बासीराम जैन कि. ८-६ टाइल १०

ब

बंदी—पं. काशीराम शर्मा 'प्रफुलित' ५।२५
बासी फूल—श्री भगवत जैन ५।१३८
बुभुता दीपक—कल्याणकुमार 'शशि' ४।५४
बुढापा—कवि भूधरदास ६।२१३
बुरी भावना—गिरधर शर्मा (नवरत्न) १।१०६

भ

भक्तिभाव भर दे—प. मुन्नालाल मणि १।५६५
भगवान महावीर—भानन्द जैन दर्शनशास्त्री २।३४२
भगवान महावीर—वसन्तकुमार जैन १।७।१७२
भगवान महावीर से—पं. नाथूराम डोगरीय ७।६०
भगवान महावीर से धर्मस्थिति निवेदन—प. नाथूराम प्रेमी
१।१।१२
भविष्यवाणी—श्री काशीराम शर्मा ८।१०८

भाग्यगीत—श्री भगवत जैन ८।१००

भामा शाह—श्री भगवत जैन ८।७४

भावना—युगवीर २।६०

भीतर और बाहर—भूधरदास १।७।१६४

म

मंगलगीत—श्री भगवतस्वरूप भगवत् २।४२

मंगलशासन में (संस्कृत)—पन्नालाल जैन ६।१६८

मदीया द्रव्य पूजा—युगवीर ६।३६५

मन को उज्ज्वल बल बना—बा. जयभगवान एडवोकेट
१।४।६१

मनो वेदना—श्री भगवत जैन २।२७२

महापुरुष—प. दरबारीलाल न्यायतीर्थ १।१६३

महावीर गीत—शान्तिस्वरूप कुसुम ३।३८६

महावीर सन्देश—युगवीर १।१८

महावीर स्तवन—प. नाथूराम प्रेमी १।१।१०२

महावीर स्वामी से भक्त की प्रार्थना—प. नाथूराम प्रेमी
१।१।३८

महावीर है—प. मुन्नालाल विशारद १।५४८

महा शक्ति—“शशि” ८।१७२

मानवधर्म—युगवीर ३।३०३

मानव समान—पं. नाथूराम डोगरीय २।३६६

मीठे बोल—श्री कुसुम जैन ४।३७०

मीन सवाद—युगवीर ३।४०, १।१।१०८

मुक्तिगान—श्री मनु ज्ञानार्थी “साहित्यरत्न” १।३।१२०

मुझे न कही सहारा—राजेन्द्रकुमार ६।१८

मेरा शीशव भी ऐसा था—श्रीविजयकुमार “चौधरी”
१।०।३५२

मेरी अभिलाषा—रघुवीरशरण अग्रवाल वर्ष २ कि. ७ टा. ३

मेरी द्रव्य पूजा—जुगलकिशोर मुस्तार ६।३३८

मेरी भावना अपने इतिहास और अनुवादों के साथ—
युगवीर १।१।३४

य

यदि तुम्हारा प्यार होता—भगवत जैन ६।२५६

यह सब ही खोना है—भगवत जैन ४।२४७

युग के चरण अलख चिर बंचल—तन्मय बुहारिया
६।२४३

युगगीत—काशीराम शर्मा ८।१६२
 युग परिवर्तन—मनु ज्ञानार्थी साहित्यरत्न १२।३४२
 युगान्तर हमारा लक्ष्य—भगवत जैन २।६३८
 युवकों से—कल्याणकुमार शशि १।३०३
 र
 रामगिरि पार्श्वनाथ स्तोत्र—जुगलकिशोर १।१७३
 व
 वर्णों बापू—सो० चमेली देवी १०।११६
 वासनाग्रो के प्रति—श्री भगवत जैन ५।२६२
 विधि का विधान—युगवीर किरण ६ का टा० पृ. १
 विनय स्वीकारो—प. सूरजचन्द ७।१५८
 वीर निर्वाण—कल्याणकुमार शशि २।२
 वीर वन्दना—युगवीर १०।१२१
 वीर वन्दना—युगवीर ११।१
 वीरवाणी—युगवीर ११।२
 वीर वाणी—भगवन्त गणपति गोयलीय १।६६
 वीर वाणी—कल्याणकुमार 'शशि' २।२२६
 वीर प्रभु की वाणी—युगवीर वर्ष ३ कि० १ टा० ३
 वीर शासन—प. हरिप्रसाद शर्मा २।१५४
 वीर शासन जयन्ती—श्री ओमप्रकाश शर्मा ४।३६४
 वीरशासनपर्व का स्वागत गान—वैद्य ओमप्रकाश ७।२०६
 वे आर्य—प. रतन चन्द्र २।६५७

श

शरद सुहाई है—प. मुन्नालाल 'मणि' १।६५४
 शान्ति—श्री नूतन १।५०४
 शिक्षा—डॉ. प्रेमसागर 'पचरत्न' ३।६५६
 श्रद्धांजलि—अनूपचन्द जैन न्यायतीर्थ
 श्रद्धांजलि—श्री वज्रलाल जैन ६।२३२
 श्री जंबू जिनाष्टक—पं. दरबारीलाल कोठिया ८।६
 श्री जिनाष्टक पदी—पं. धरणीधर शास्त्री ४।३०२
 श्री वीर की अमली जयन्ती—पं. अर्जुनलाल सेठी १।३६४
 श्री वीर जिन पूजाष्टक—जुगलकिशोर मुख्तार १३।१२२
 श्री वीर पंचक—पं. हरनाथ द्विवेदी ५।७४

स

संकट का समय—श्री भगवत जैन ५।१३३
 संत विचार—पं. भागचन्द जी १४।२०

सखि पर्वराज पर्येषण आये—'मनु' ज्ञानार्थी १३।६१
 सच्चा कर्म योगी—श्री माधव शुक्ल ८।४७
 सच्ची खोज—प. दरबारीलाल कोठिया १।७७
 सत्कर्म सन्देश—पं. नाथूराम प्रेमी १।२६२
 सत्संग अज्ञात—२।३३४
 सत्ता का अहंकार—चैनसुखदास ६।११
 सत्य वचन माहात्म्य—मुन्नालाल मणि १३।७२
 सन्देश—पुष्पेन्द्र ७।१३
 सन्देश-सन्देश—भगवन्त गणपति गोयलीय १।१६४
 सफल जन्म—भगवत जैन ३।४८
 समन्तभद्र स्तोत्र—युगवीर १४।२
 समय रहते सावधान—कवि भूधरदास ६।१८६
 समर्पण—बाबू जयभगवान १७।४७
 समस्या पूर्ति—पं. दरबारीलाल १।२५२
 समाज सम्बोधन—युगवीर १।४४६
 सम्यग्दृष्टि—कवि बनारसीदास ६।१६७
 सलाह—श्री शरदकुमार मिश्र ६।२४८
 समार की सपत्ति कैसी—बनारसीदास २।३१०
 संसार वैचित्र्य—श्री ऋषिकुमार ४।३६६
 साधु-विवेक—प. दलीपसिंह कागजी वर्ष ६ कि० ५
 टाइल १

साधु विवेक—दलीपसिंह कागजी १।४२६
 सिकन्दर आजम का अन्त समय—४।३१६
 सुख का उपाय—युगवीर टाइल कि० ६, ६।१
 सुख का सच्चा उपाय—युगवीर १।१२६
 स्वपर-गुण पहिचान रे—कविधर बेबीदास १।१३०२
 स्वभाव तेरा धर्म है—असंतकुमार जैन १६।२५८
 स्वार्थ—श्री चित्र १।२१५
 स्वागत गान—ताराचन्द्र प्रेमी १३।१८
 स्वागत गान—कल्याणकुमार 'शशि' २।२

ह

हम आजादी के द्वार खड़े हैं—पं. काशीराम शर्मा ८।१५३
 हम तुमको विमुक्त कब पाएंगे—श्री हीरक ६।२४५
 हमारा जैनधर्म—प. सूरजचन्द जी डांगी २।३६८
 हल्दी धारी—श्री भगवत जैन ४।१६४

हार जीत—श्री भगवत जैन ६।२७२
 हिन्दी गौरव—पं. हरिप्रसाद शर्मा 'अविकसित' ६।६३
 हिसक और हिसक—मुन्नालाल 'मणि'
 है मोती सा नीर अरे मेरे जीवन का—मुनि श्री मानमल
 वीदासर १६।२८५
 होली—श्री युगवीर ३।३५६

होली होली है—युगवीर ३।३५१
 होली होली है—युगवीर ६।८६
 हृदय की तान—प. दरबारीलाल १।६२०
 हृदयोद्गार—प. दरबारीलाल १।६२०
 हृदय है बना हुआ फुटयाल—युगवीर ८।६८
 हृदयोद्बोधन—पं. दरबारीलाल १।५१६

७. व्यक्तिगत (परिचय, अभिनन्दन आदि)

अ

अनासक्त कर्मयोगी—पं. कैलाशचन्द १६।१०
 अनुसंधान के आलोक स्तंभ—प्रो. प्रेममुन जैन २१।२११
 अनेकान्त और बीरसेवामन्दिर के प्रेमी बा. छोटेलाल—
 जुगलकिशोर मुख्तार १६।१८१
 अन्तिम तीव्र इच्छाएं—डा. प्रेमसागर १६।२३
 अभिनन्दन पत्र १६।१६५, १६।१६६
 अमरकृतियों के स्रष्टा ६।१७६
 अमरमानव—संत राम बी. ए. ३।५३३
 अमर साहित्य सेवी—पं. कैलाशचन्द्र सि. शा. २१।२०६
 अहिंसा के पुजारी अलबर्ट स्वाइजर—प. बनारसीदास
 चतुर्तेदी एम. पी. १५।४४

आ

आचार्य जुगलकिशोर जी मुख्तार—डा. कस्तूरचन्द जी
 कासलीवाल २१।२७३
 आचार्य श्री मुख्तार जी—पं. मोहन शर्मा ६।१७६
 आदर्श अनुसन्धाता—डा. ए. एन. उपाध्ये ६।१७६
 आदर्श पुरुष—पं. अजितकुमार शास्त्री ६।१८०
 आधुनिक जैन युग के 'बीर'—श्री मती विमला जैन २१।२५६

इ

इतिहास का एक युग समाप्त हो गया—डा. गोकुलचन्द्र
 जैन एम. ए. २१।२७०
 इतिहास के एक अध्याय का लोप—डा. भागचन्द्र जैन
 भागेन्दु २१।२७५

ई

ईसरी के संत—जुगलकिशोर ४, चित्र

ऐ

ऐसे उपकारी व्यक्ति को श्रद्धा सहित प्रणाम (कविता)—
 कल्याणकुमार 'शशि' १६।३६
 ऐसे थे हमारे बाबू जी—विजयकुमार चौधरी एम. ए.
 २१।२४६

उ

उदारमना स्व. बाबू छोटेलाल जी—प. बंशीधर शास्त्री
 १६।२
 उनकी अपूर्व सेवाएं—पन्नालाल अग्रवाल १६।४८
 उनके मानवीय गुण—अक्षयकुमार जैन १६।१८
 उस मृत्युञ्जय का महाप्रयाण—डा. ज्योतिप्रसाद जैन
 एम. ए. पी. एच. डी. २१।२२३

ए

एक अकेला आदमी—मुनि कन्तिसागर १६।३४
 एक अपूरणीय क्षति—पन्नालाल साहित्याचार्य २१।२५४
 एक अविस्मरणीय व्यक्तित्व—भंवरलाल नाह १६।२७
 एक भांकी—पं. रविचन्द्र ६।१८३
 एक निष्ठावान् साधक—जैनेन्द्रकुमार जैन १। ८७
 एक महान् साहित्यसेवी का वियोग—सम्पादन १२६५
 एक सरस कवि—पं. मूलचन्द्र वत्सल ६।२५७
 एक संस्मरण—डा. ज्योतिप्रसाद जैन १६।१६०

क

कठोर साधक—पं. लालबहादुर शास्त्री ६।१८३
 कतिपय श्रद्धांजलियां—विविध विद्वानों और प्रतिष्ठित
 व्यक्तियों द्वारा २१।१६४-२०७

कल्याण मित्र—डा. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये १९।८
किशोरीलाल घनश्याम मशरूवाला—बा. माईदयाल जैन

बी. ए. बी. टी. ११।३००

कृपण, स्वार्थी, हठग्राही—श्री कौशलप्रसाद जैन ६।२१५

ज

जीवन के अनुभव—अयोध्या प्रसाद गोयलीय

जीवन चरित्र—बा. माईदयाल ६।१३३

जीवन सगिनी की समाधि पर सकल्प के सुमन—

स्व. बाबू जी को डायरी का एक पृष्ठ १९।३६

जैन जागरण के अग्रदूत—बा. सूरजभान वकील का पत्र
६।१८४

जैन जागरण के दादा भाई—ब. सूरजभान कन्हैयालाल
मिश्र प्रभाकर ६।८८

जैन जाति का सूर्य अस्त—जुगलकिशोर मुस्तार ७।२२५

जैनसमाज के भीष्म पितामह—डा. दवेन्द्रकुमार २१।२१३

जैन साहित्यकार का महाप्रयाण—पं. सरमनलाल जैन
दिवाकर २१।२६२

जैन साहित्य के अनन्य अनुरागी—डा. वासुदेव शरण
अग्रवाल, डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल १९।२५२

जो कार्य उन्होंने अकेले किया वह बहुतों द्वारा सम्भव
नहीं—डा. दरबारीलाल कोठिया २१।२६३

ज्ञान तपस्वी गुणी जनानुरागी—रतनलाल कटारिया १९।२१

त

तपस्वी, श्री जमनादास व्यास बी. ए. ६।१८१

तीन दिन का आतिथ्य—डा. नेमिचन्द्र शास्त्री १९।४५

द

दिगम्बर परम्परा के महान् सेवक—पं. राजेन्द्र कुमार
न्यायतीर्थ ६।१८५

देश और समाज के गौरव—डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल
१९।४२

दो श्रद्धांजलियाँ—प्रेमचन्द्र जैन २१।२८३

दो संस्मरण—स्वतंत्र जैन १९।१९६

घ

घन्य जीवन—श्री जुगलकिशोर मामराज हर्षित ६।१६०

धर्म और संस्कृति के अन्तर्गत प्रेमी—पं. के भुजबली शास्त्री

धर्मप्रेमी बाबू छोटेलाल जी—विशनचन्द्र जैन १९।१९७

न

नाम बडे दर्शन सुखकारी—अमरचंद जैन १९।१७

निर्वाण काण्ड की निम्न गाथा पर विचार—पं. दीपचन्द
पाण्ड्या १९।२६१

प

पं. चैनमुखदास जी न्यायतीर्थ का स्वर्गवास—डा. कस्तूर-
चन्द कासलीवाल २१।२८४

पुरानी यादे—डा. गोकुलचन्द जैन, १९।३२

पुराने साहित्यिक—प्रो. शिवपूजन सहाय ६।१८०

पं. गोपालदास जी बरैया—अयोध्याप्रसाद गोयलीय
६।१०५

पं. जवाहरलाल नेहरू क्या थे ? —१७।५०

पंडित जी से मेरा परिचय—एम. गोविन्दपै ६।२१२

पंडिता चन्दाबाई—पं. कन्हैयालाल प्रभाकर ६।१४६

पं. शिवचन्द्र देहलीवाले—बा. पन्नालाल अग्रवाल
६।३०२

प्रो. जगदीशचन्द्र और उनकी समीक्षा—सम्पादक
३।६६६, ३।७२६

ब

बडे अच्छे है पंडित जी—कुमारी शारदा ६।२२२

बाबा भगीरथजी वर्णा का स्वर्गवास—पं. परमानंद शास्त्री
५।३१

बाबू छोटेलाल जी जैन रईस कलकत्ताके विष्णु हृदयोद्गार
—सम्पादक

बाहर कड़वे भीतर मधुर—बा. पन्नालाल ६।२२८

बी. एल. सराफ एडवोकेट की श्रद्धांजलि—२।६२२

ब्र. शीतल प्रसाद जी का वियोग—बा. जयमगवान ५।२४

भ

भविष्य के निर्माता—प्राचार्य ब्रह्मपति ६।१८०

भावभीनी सुमनाजलि—बा. कपूरचन्द बरैया एम. ए.
२१।२७७

भावी पीढी के पथ-प्रदर्शक—बा. कामताप्रसाद ६।१७८

म

महान साहित्य सेवी श्री मोतीलाल जैन—विजय एम. ए.,
बी. एड. २१।२५६

मुस्तार जी की विचारधारा—पुरुषोत्तमदास ६।१८७

मुस्तार महोदय और उनका सर्वस्व दान ६।१६३
 मुस्तार सा० के परिचय मे—बा. ज्योतिप्रसाद ६।२२१
 मुस्तार सा० का जीवन चरित्र— ६।१६७
 मुस्तार साहब का व्यक्तित्व और कृतित्व—परमानन्द
 शास्त्री २।१२१५
 मुस्तार साहब की बहुमुखी प्रतिभा—पं. बालचन्द्र सि. शा.
 २।१२२७

मुस्तार श्री जुगलकिशोर जी का दृष्टनामा १।१६५
 मूक जन सेवक बाबू जी—प्रभुदयाल 'प्रेमी' १।१३१
 मूक सेवक—प्रो. भागचन्द्र जैन १।११६
 मेरा अभिनंदन—न्या. पं. माणिकचन्द्र ६।१६६
 मेरा अभिनंदन—पं. धर्मन्द्रनाथ शास्त्री ६।१८६
 मेरे जैनधर्म प्रेम की कथा—बी. एस्. सराफ एडवोकेट
 मेहमान के रूप में—ला. ऋषभसेन जैन ६।२२२

य

युगपरिवर्तक पीढी की अंतिम कड़ी थे युगवीर—
 श्री नीरज जैन २।१२६७
 युगपुरुष की भागशालिता—काका साहिब कालेलकर
 १७।५१

युग-युग तक युग गायेगा युगवीर कहानी (कविता)
 पं. जयन्तीप्रसाद शास्त्री २।१२७३
 युगवीर का राष्ट्रीय दृष्टिकोण—
 जीवनलाल जैन बी. ए. बी. एड. २।१२३३

युगवीर के जीवन का भव्य अंत—
 डा. श्रीचन्द्र जैन 'सगल' २।१२४३
 युग संस्थापक—प्रो. हीरालाल एम. ए. ६।१८०

र

राजा हरसुखराय—पं. परमानन्द जैन शास्त्री १।५।११
 रायचंद जैन के कुछ संस्मरण—महात्मा गांधी २।४५३

ल

लाला जिनेश्वरदास संघवी—संपादक ५।२४०

ब

बयाना जैन समाज को बाबूजी का योगदान—
 कपूरचंद नरपत्येला १।६।३७
 वर्गी जी का आत्म-आलोचन और समाधि-संकल्प—
 श्री नीरज जैन १।८।१२५

वह देवता नहीं, मनुष्य था ?—दोलतराम 'मित्र' ५।१८२
 वह मनुष्य नहीं देवता था—अजितकुमार ५।१६८
 वह युगस्रष्टा संत—मनु जानार्थी २।१२३३
 वाह रे मनुष्य—बा. महावीर प्रसाद बी. ए. ६।१९
 विचारवान सहृदय व्यक्ति (एक संस्मरण)—

पन्नालाल साहित्याचार्य १।१।८८

विनम्र श्रद्धांजलि—कपूरचंद बरैया १।१।६४
 विपत्ति का बरदान—बा. महावीरप्रसाद २।२२०
 विमलभाई—अयोध्या प्रसाद गोयलोय ६।६१
 विरोध मे भी निर्विरोध—श्री रवीन्द्रनाथ-जैन ६।२१२
 वे एक प्रकाशक के रूप में—काशीराम शर्मा ६।२०६
 वे क्या नहीं थे—नीरज जैन १।१।२२
 वे महान थे—प्रकाश हितैषी १।१।२००
 व्यक्तित्व के घनी—यशपाल जैन १।१।२६

श्र

श्रद्धांजलि—वर्ष १६। कि० १ टाइल ३
 श्रद्धांजलि—१७। कि० २ टाइल १
 श्रद्धांजलि (परिशिष्ट)—दोलतराम मित्र २।१२७८
 श्रद्धांजलि (परिशिष्ट)—डा. दरबारीलाल कोठिया
 २।१२७७
 श्रद्धांजलि—नेमचंद जैन १।१।६८
 श्री गुरुवर्य गोपालदास बरैया—पं. माणिकचन्द्र न्यायाचार्य
 २०।४२

श्री जुगलकिशोर जी 'युगवीर' (कविता)—
 रामकुमार एम. ए. २।१२६६

श्री दादी जी—जुगलकिशोर मुस्तार ५।२३७
 श्री नाथूराम प्रेमी—जैनेन्द्र कुमार २।३५३
 श्री बाबू छोटेलाल जैन का संक्षिप्त परिचय—

डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल १।८।७७

श्री बाबा लालमनदास जी और उनकी तपश्चर्या का
 माहात्म्य—परमानंद जैन १।४।४७

श्री मुस्तार साहब अजमेर में—फतहचन्द सेठी २।१२८२
 श्री लालबहादुर शास्त्री—यशपाल जैन १।८।२३७

स

सच्चा जैन—डॉ. दत्तरथ शर्मा १।१।२०
 सच्चे अर्थों में दानवीर—जुगलकिशोर मुस्तार ५।३०

सत्त्वान्वेषी श्री युगवीर—कस्तूरचंद एम. ए. बी. एड.

२१।२३७

समाज के दो गण्यमान सज्जनों का वियोग—५।१६७

समाज के प्रमुख पुरुषों की शुभ कामनाएं—६।२०१

सरस्वती पुत्र मुस्तार सा.—

पं. मिलापचन्द रतनलाल कटारिया २१।२३६

सरसावा का संत—श्री मंगलदेव ६।२१३

सहयोगी सत्य प्रकाश की विचित्र सूझ—

सम्पादक ६।१४५

सात विशेषताएं—दौलतराम 'मित्र' ६।१७७

साहित्य गगन का एक नक्षत्र अस्त—पं. बलभद्र जैन

२१।२६८

साहित्य जगत के कीर्तिमान नक्षत्र तुम्हें शतशः प्रणाम

(कविता)—अनूपचंद न्यायतीर्थ २१।२४८

साहित्य तपस्वी—कल्याण कुमार जैन ६।१६०

साहित्य तपस्वी की बंदन—पं. परमेष्ठीदास ६।१८१

साहित्य तपस्वी स्व. मुस्तार सा.—अगरचंद नाहटा

२१।२३५

साहित्य देवता—पं. माणिकचंद ६।१८२

साहित्य प्रेमी श्री अगरचंद जी नाहटा—

श्री हजारीमल बाँठिया ८।३६

सेठ सुगनचंद—अयोध्याप्रसाद गोयलीय २।४१८

सस्मरण (परिशिष्ट) १३—दौलतराम मित्र २१।२७०

सस्मरण—पं. हीरालाल सि. शास्त्री १६।१६२

स्व. छोटेलाल जी का वंश वृक्ष—श्री नीरज जैन १६३५

स्व. दीनानाथ जी सरावगी कलकत्ता—

सम्पादक (जुगलकिशोर मु) ११।२५५

स्व. नरेन्द्रसिंह सिधी का सक्षिप्त परिचय—२०।२३७

स्व. मोहनलाल दलीचंद देसाई—भवरलाल नाहटा ६।२१

स्व. बाबू सूरजभान जी वकील—श्री दौलतराम मित्र

८।२५

स्वयं अपने प्रति—एक अनन्य भक्त ६।२०१

स्वर्गीय पं. जुगलकिशोर जी—

डा. आ. एन. उपाध्ये एम. ए. डी. लिट् २१।२५८

ह

हमारे गर्व—श्री हुलारेलाल भागंव ६।१८६

हमारे पत्रकारों की शुभ कामनाएं ६।२०४

हमारे माननीय अतिथि—६।१७३

हमारे विद्वानों की शुभ कामनाएं—६।२०३

हमारे सभापति एक अध्ययन—२. कन्हैयालाल ६।१६१

हमारे सहयोगी—६।१८१

हवि रश्मि नाम—डा. व

८. सामयिक

अ

अत्यावश्यक वर्णों सन्देश—शिल्लरचन्द जैन १२।३८१

अनुकरणीय—व्यवस्थापक, किरण २ वर्ष ४, कि० ५ वर्ष ४

अनुपम क्षमा—श्री मद्राजचन्द्र ३।१७६

अनेकान्त का द्वितीय वार्षिक हिसाब—१२।३८७

अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और शांति किस प्रकार प्राप्त हो

सकती है ?—शांतिलाल बनमाली सेठ २२।८५

अपने ही लोगों द्वारा क्ली किये गए महापुरुष—६।१५७

अपमान के बाव में आशीर्वाद—श्री स्वतंत्र ६।२२०

अपमान या अत्याचार—संपादक ७।६५

अपराध और बुद्धि का पारस्परिक सम्बन्ध—

साध्वी श्री मजुला १८।१६२

अपहरण की आग में भुलसी नारियाँ—अयोध्याप्रसाद

गोयलीय ६।३१६

अभिनंदन और प्रोत्साहन—१।५८

अभिनंदन—काशीराम शर्मा ६।१८६

अभिनंदन पत्र ६।१७२

अभिनंदन पत्र—वीर सेवक संघ देहली ५।२३६

अभिनंदनादि के उत्तर में पं. जुगलकिशोर मुस्तार का

भाषण ६।६५

२३२, वर्ष २२ कि० ५

अनेकान्त

अस्पृश्यता विधेयक और जैन समाज—श्री कोमलचन्द जैन
एडवोकेट १३।२।१२

अड़तीसवे (३८वे) ईसाई तथा सातवे बौद्ध विश्वसम्मेलन
की श्री जैन संघ को प्रेरणा—कनकविजय १७।२८।१
१८।७०, १८।१४०

आ

आकस्मिक वियोग—१७।४५

आखिर यह सब भगड़ा क्यों ? बाबू अनन्तप्रसाद जैन

B. Sc. Eng. १०।१४१

आचार्यद्वय का सन्यास और उनका स्मारक—पं. हीरालाल
सि. शा. १४।७७

आचार्य मानतुंग—डा. नेमिचन्द शास्त्री एम. ए. १८।२४२
आत्मविश्वास ही सफलता का मूल है—श्री अखिलानन्द
रूपराम शास्त्री ८।१३८

आदमी, जानवर, या बेकार ?—श्री भगवत जैन ५।२४८

आबू आदोलन—बा. जयभगवान वकील ५।२०१

आवश्यक निवेदन—श्री दौलतराम 'मित्र' ६।२६२

आश्रम का स्थान परिवर्तन (समन्तभद्राश्रम) १।६५३

ई

ईसाई मत के प्रचार से शिक्षा—पं. ताराचन्द जैन ४।६८१

उ

उन्मत्त ससार के काले कारनामे—पं. नाथूराम डोगरीय
२।३४८

उपासना का अभिनय—प. जैनमुखदास न्यायतीर्थ ३।४२६

ए

एक आक्षेप—संपादक १।४१६

एक आदर्श महिला का वियोग—संपादक ४।११

एक विद्वान के हृदयोद्गार—संपादक १।२६७

एक बिलक्षण आरोप—संपादक १।६५५

एक साहित्यसेवी पर घोर संकट—जुगलकिशोर मुस्तार
५।१६६

क

कर्त्तव्य पालन का प्रश्न—श्री राजेन्द्रकुमार ३।२१०

कलकत्ता के जैनोपवन में वृक्षारोपण-समारोह—

तुलसीराम जैन १०.४२८

कलकत्ता में महावीर जयंती—संपादक १७।६२

कलकत्ता में वीरशासन का सफल महोत्सव—संपादक ७।३०

कला प्रदर्शनी की उपयोगिता—श्री अग्रचन्द नाहटा ६।३०६

कल्पसूत्र : एक सुभाव—कुमार चन्दसिंह दुधौरिया १७।२१०

कायरता घोर पाप है—श्री अयोध्याप्रसाद ८।२५५

कार्यकर्त्ताओं और संस्थाओं के उद्गार ६।२०७

किसके विषय में मैं क्या जानता हूँ ?—ला. जुगलकिशोर
कागजी १०।२०

केकड़ी जैन समाज का स्तुत्यकार्य—१४।६६

कैवल्य दिवस एक सुभाव—मुनि श्री भगराज २०।७४

क्या गृहस्थ के लिए यज्ञोपवीत आवश्यक है ?

प. रवीन्द्रनाथ ६।६०

क्या पर्दा प्रथा सनातन है ?—ललिताकुमारी ४।३८७

क्या मास मनुष्य का स्वाभाविक आहार है ?—

प. हीरालाल सि. शा. १४।२३५

ख

खानपानादि का प्रभाव—हीरालाल सि. शा. १४।१६८

ग

गरीबी क्यों ?—स्वामी सत्यभक्त १२।३१४

गलती और गलत फहमी—संपादक ६।३६६

गोशवारा हिसाब आमद खर्च—वीरसेवकसंघ समन्त-
भद्राश्रम १।४१७

च

चारसौ पच्चीस (४२५) रु० के दो नये पुरस्कार—

जुगलकिशोर मुस्तार १२।४७

चिट्ठा हिसाब अनेकान्त के १३वे वर्ष का—१३।३१७

चिट्ठा हिसाब अनेकान्त 'दशम वर्ष' १०।४३१

चिट्ठा हिसाब अनेकान्त १४वें वर्ष का १४।३५३

चौदहवीं (१४वीं) शताब्दी की एक हिन्दी रचना—

पं. कस्तूरचन्द कासलीवाल एम. ए. १२।२३

छ

छोटे राज्यों की युद्ध नीति—श्री काका कालेलकर ३।४६५

ज

जातिर्या किस प्रकार जीवित रहती हैं—श्री लाला हर-
दयाल एम. ए. ३।९६०

जीवन की बिशा—विद्यानन्द छपरोली ६।१८८

जैन कला प्रदर्शनी और सेमिनार—हीरालाल शास्त्री
१४।१४५

जैन कालोनी और मेरा विचार—जुगलकिशोर मुख्तार

६।१३

जैनधर्म आजादी का प्रतीक है—डा. प्रेमसागर १६।२

जैनधर्म का प्रसार कैसे होगा ?—श्री नाथूराम प्रेमी

१।११०

जैनधर्म की झलक—प. सुमेरचन्द दिवाकर ६।६२,

६।१०४

जैनधर्म पर अजैन विद्वान— ६।११७

जैनधर्म पर अजैन विद्वान—शिवव्रतलाल वर्मन ६।१३२

जैनधर्म बनाम समाजवाद—पं. नेमिचन्द ज्योतिषाचार्य

६।१८६

जैन समाज किधर को—बा. माईदयाल २।५६८

जैन सत्य प्रकाश की विरोधी भावना—संपादक ६।३२१

जैन समाज की कुछ उपजातियाँ—परमानन्द शास्त्री २२।५०

जैन समाज की सामाजिक परिस्थिति—डा. क्रोफे पी. एच.

डी. (जर्मन महिला सुभद्रा देवी) १।४६३

जैन समाज के अनुकरणीय आदर्श—अगरचन्द नाहटा

३।२६३

जैन समाज के समक्ष ज्वलंत प्रश्न—कुमार चन्द्रसिंह

दुधौरिया १७।१८६

जैन समाज के सामने एक प्रस्ताव—दौलतराम 'मित्र'

१३।२८४

जैन समाज क्यों मिट रहा है ?—अयोध्याप्रसाद गोयलीय

२।७३, २।१६६, २।२११

जैन साहित्य के विद्वानों की दृष्टि में ६।२०६

जैन संस्कृति संशोधन मंडल पर अभिप्राय—पं. दग्ग्वारी-

लाल जैन ८।७६

जैनागम और यज्ञोपवीत—पं. सुमेरचन्द ६।३०२

जैनियों का अत्याचार—जुगलकिशोर १।४३३

जैनी कौन हो सकता है ?—जुगलकिशोर १।२८८

त

तमिल प्रदेशों में जैन धर्मावलम्बी—श्री प्रो. एम. एस.

रामस्वामी आर्यंगर एम. ए. १२।२१६

तृतीय विश्व धर्म सम्मेलन—डा. बलचन्द जैन १७।२३६

तृष्णा की विचित्रता—श्रीमद्राजचन्द्र २।६३७

इ

दही बड़ो की डाँट—श्री दौलतराम मित्र' ५।१६१

दीवाजी और कवि—पं. काशीरामशर्मा 'प्रफुल्लित' ५।२६

दुनिया की नजरो में वीर सेवा मन्दिर के कुछ प्रकाशन—

सम्पादकीय ११।२१७

दु सत आत् वियोग—जुगलकिशोर मुख्तार १२ टा० पे० २

दूसरे जीवों के साथ अच्छा व्यवहार कीजिए—

शिवनारायण सक्सेना एम. ए. १७।६६

देहली में वीरशासनजयती का अपूर्व समारोह—

प परमानन्द शास्त्री वर्ष १०। कि० १ टा० पृ० ३

देहली में वीरसेवामन्दिर ट्रस्ट की मीटिंग ११।३०४

ध

धवलादि ग्रन्थों के फोटो और हमारा कर्तव्य—

राजकृष्ण जैन १२।३६६

धर्म और वर्तमान परिस्थितियाँ—पं. नेमिचन्द जैन

ज्योतिषाचार्य ६।४६७

धर्म और राजनीति का समन्वय—पं. कैलाशचन्द १।६००

धर्म और राष्ट्रीयकरण (एक प्रवचन)—आचार्य तुलसी

१२।३४८

धर्म का मूल दुख में छिपा है—बा. जयभगवान वकील

३।४८२

धर्म बहुत दुर्लभ है—बा. जयभगवान वकील ३।५४५

धर्म ही मंगलमय है—अशोककुमार जैन १।१०७

धर्माचरण में सुधार—बा. सूरजभान वकील ३।३८५

धार्मिक वार्तालाप—सूरजभान वकील २।२६६

न

नवयुवकों को स्वामी विवेकानन्द के उपदेश—

डा. बी. एल. जैन ३।५६६

नियमावली वीर संघ और समन्तभद्राश्रम की १।४१३

नूतन भवन के शिलान्यास का महोत्सव—परमानन्द जैन

१३।२७

न्या. पं. माणिकचन्द जी का पत्र १।१६०

प

पत्र का एक अंश (अध्यापक अभिविषयक) १।३६३

पत्रकार के कर्तव्य की आलोचना—संपादक ७।१४६

परिषद के लखनऊ अधिवेशन का निरीक्षण —

कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर ६।३।१४

पंडित गुण—संपादक ५।३६२

पंडित जी के दो पत्र—६।१।१७

पंडित बेचरदास जी का अनोखा पत्र—संपादक ६।३२१

पाच सो ६० के पाच पुरस्कार—जुगलकिशोर मुख्तार १।१२।१३

पर्युषण पर्व और हमारा कर्तव्य—बा. माणिकचन्द ६।३०

पापभार बहन की मर्यादा—संपादक ८।१८५

पीड़ितों का पथ—मुमंगलाप्रसाद शास्त्री १।३७८

पूज्य वर्णी जी का पत्र—पं. परमानन्द १०।३४८

पूज्य वर्णी गणेशप्रसाद जी के हृदयोद्गार—

ब

बच्चों की दर्दनाक दशा और प्राकृतिक चिकित्सा—

प. श्रेयासकुमार जैन शास्त्री ८।१३५

बगीय विद्वानों की जैन साहित्य में प्रगति—

अगरचन्द नाहटा ३।१४६

बलात्कार के समय क्या करें—महात्मा गांधी ५।७५

बहनों के प्रति—चन्दगीराम बिद्यार्थी ६।२४८

बुद्धिवाद विषयक कुछ विचार—दीनताराम मिश्र ५।२६८

बेजोड विवाह—श्री ललिताकुमारी पाटनी ४।२१

ब्रह्मचर्य (प्रवचन)—क्षु. गणेशप्रसाद वर्णी १०।२२०

ब्रह्मचर्य ही जीवन है—चन्दगीराम बिद्यार्थी ६।१४३

ब्रह्म श्रुतसागर का समय और साहित्य—परमानन्द जैन ६।४७४

भ

भगवान महावीर की २५००वीं निर्वाण जयंती—

मुनि श्री नगराज १६।१४६

भगवान महावीर जैनधर्म और भारत—धीलोकपाल १०।२६

भारत की राजधानी में जयधवल महाधवल ग्रथराजों का

अपूर्व स्वागत—परमानन्द जैन १३।१५८

भारत देश योगियों का देश है—बा. जयभगवान जैन

एडवोकेट १२।६६, १२।६३

भारत में देहात और उनके सुधार की आवश्यकता—

बा. माईदयाल जैन बी. ए. १।५६७

भारतीय जनतंत्र का विशाल विधान—विश्वम्भर सहाय
प्रेमी १०।३०३

भारतीय जनतंत्र की स्थापना—श्री विजकुमार चौधरी

१०।२८६

भाषण श्रीमती रमारानी ६।३।१२

म

मकखनवाले का विज्ञापन ४।२३५

मजदूरो से राजनीतिज्ञ—बा. माईदयाल जैन ३।८०

महात्मा गांधी के धर्म सम्बन्धी विचार—डा. भैयालाल
४।१।१२

महात्मा गांधी के निधन पर शोक प्रस्ताव—६।८१

महात्मा जी और जैनत्व—प. दरबारीलाल १।३७६

महावीर कल्याणकेन्द्र—चिमनलाल चिकुभाई शाह २१।१८३

महावीर जयंती और डा० राधाकृष्णदास १६।३६

माता के आंसुओं की नदी १।६१०

मारवाड का एक विचित्र मत और दीक्षित जी का स्पष्टी-

करण—संपादक १।४३६

मिथ्याधारणा—संपादक १।६०८

मुख्तार श्री जुगलकिशोर जी का ६०वाँ जन्म जयंती उत्सव

—परमानन्द शास्त्री २०।३३३

मुख्तार सा० की वसीयत और वीर सेवामन्दिर ट्रस्ट की

योजना—परमानन्द जैन ५।२७

मुजफ्फरनगर परिषद् अधिवेशन—बा. माईदयाल जैन

बी. ए. ६।२०४

मुनि जिनविजय जी का पत्र १।३५१

मुरार में वीरशासन जयंती का महत्वपूर्ण उत्सव—

पं. दरबारीलाल कोठिया ६।२०५

मेरे मन का उद्गार—बाबा भगीरथ जी वर्णी १।६७०

मेरे मनुष्य जन्मका फल—ला. जुगलकिशोर कागजी १०।६४

मैं क्या हूँ ?—प. दरबारीलाल 'सत्यभक्त' १०।४५

मैं आखिरी फोडकर चलो या आप बोलत न रहें—

श्री कन्हैयालाल प्रभाकर ११।४१८

मैं और वीरसेवामन्दिर—बा. जयभगवान वकील ५।२३

मौजमावाद के जैन समाज के ध्यान देने योग्य—

परमानन्द शास्त्री १३।२१४

मन्दिरों के उद्देश्य की हानि—पं. कमलकुमार जैन

य

यदि यूरोप में ऐसा पत्र प्रकाशित होता—१।६५१

यांत्रिक चारित्र—पं. नाथूराम प्रेमी १५२६

र

राजगिरि में वीरशासन जयन्ती महोत्सव—जुगलकिशोर
मुख्तार ६, कि० १०-११

राजधानी में वीरशामन जयन्ती और वीरसेवामन्दिर—
नूतन-भवन के शिलान्यास का महोत्सव १३।२७

राजस्थान विधानसभा में दि० जैन धर्मविरोधी विधेयक—
वा. छोटेला जैन १३।६४

राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री का महावीर जयन्ती के अवसर
पर भाषण १३।२६३

राष्ट्रीय सुरक्षा कोष में जैनसमाज का योगदान १५।२३४
राष्ट्रोत्थान में ग्रामों का महत्व—प्रभुलाल प्रेमी ६।२६८

व

वनस्पति—महात्मा गाँधी ८।२४६

वर्तमान संकट का कारण—बाबू उग्रसेन बी. ए. ६।११०
वर्णी जी और उनकी जयन्ती—पं. दरबारीलाल कोठिया
१०।११७

विवाह और हमारा समाज—श्री. ललिताकुमारी ४।६८

विवाह कब किया जाये—श्री. ललिताकुमारी ४।१६५

विवाह का उद्देश्य—श्री एस. के. ओसवाल ४।७६

विवाह संस्कृति का प्रतीक तोरण—

महेन्द्र भानावत एम. ए. उदयपुर १६।८३

विश्व की अशान्ति को दूर करने के उपाय—

परमानन्द जैन १३।७६

विविध विषय—महावीर जयन्ती आदि १२।३६०

विश्वमंत्री—इन्द्रचन्द्र जी जैन १७।१०३

विश्व शांति का सुगम उपाय आत्मीयता का विस्तार—

श्री अग्रचन्द नाहटा १४।२३२

विश्व शांति के अमोघ उपाय—श्री अग्रचन्द नाहटा
१४।१६६

विश्व शांति के उपायों के कुछ संकेत—

पं. चैनमुखदास जी जयपुर १४।१३२

विश्व शांति के साधन—पं. राजकुमार जैन माहिल्याचार्य
१४।१४२

विश्व संस्कृति में जैनधर्म का स्थान—डा. कालीदास नाग
४।४३१

वीतराग प्रतिमाओं की अजीब प्रतिष्ठा विधि—

(बा.) सूरजभान वकील ३।१०५

वीर जयन्ती पर मुनि कृष्णचन्द्र का अभिमत—६।३७५

वीर जयन्ती पर भाषण—वैजनाथ बाजोगिया २।४२७

वीर जयन्ती पर भाषण—लोकनायक २।४२३

वीर जयन्ती पर भाषण—सेठ गोविन्ददास २।४२५

वीर पूज्य का आदर्श—श्री महेन्द्र जी ६।१७६

वीर शासन अभिनन्दन—सम्पादक ७।१

वीर शासन की पुण्यत्रेला—सुमेरचन्द्र जी दिवाकर ३।४८

वीर शासन जयन्ती—जुगलकिशोर मुख्तार २।४७६

वीर शामन जयन्ती—ला. जिनेश्वरप्रसाद जैन १०।३४

वीर शामन जयन्ती उत्सव—अधिष्ठाता ४।३४४

वीर शासन जयन्ती उत्सव—परमानन्द शास्त्री
वर्ष ३ कि. ८-६

वीरशासन जयन्ती अर्थात् श्रावक कृष्ण-प्रतिपदा की पुण्य-
तिथि—जुगलकिशोर ६, कि० ६, टा० २

वीर शासन जयन्ती और हमारा कर्तव्य—

मंत्री वीरसेवा मंदिर १४।३४०

वीर शासन जयन्ती और हमारा कर्तव्य—सम्पादक ४।२४८

वीर शासन जयन्ती का पावन पर्व—पं. दरबारीलाल
६।२२३

वीर शासन जयन्ती का इतिहास—जुगलकिशोर मुख्तार
१४।३२८

वीर शासन दिवस और हमारा साहित्य—दशरथ लाल जैन
३।६१

वीर शामनाभिनन्दन—सम्पादक ३।२

वीर शामनाभिनन्दन—समन्तभद्रादि ११।३

वीरसेवामन्दिर का अर्घद्वय सहस्राब्दि महोत्सव—अधिष्ठाता
वीरसेवामन्दिर ६ कि० ४, टा० २

वीर सेवामंदिर का प्रचार कार्य—१४।२७३

वीर सेवामंदिर के अब तक के कार्यों का परिचय—
वि. अंक ६।१४

वीर सेवामंदिर का संक्षिप्त परिचय—जुगलकिशोर मुख्तार
११।३६१

वीर सेवामंदिर के नैमित्तिक अधिवेशन के सभापति—
श्री मिश्रीलाल जी काला का भाषण ११।४१२

वीर सेवामंदिर की सहायता ४।२३८

वीर सेवामंदिर की प्राप्त सहायता—१३।५६

वीर सेवामंदिर की प्राप्त सहायता—११।३३२

वीर सेवामंदिर की स्वीकृत सहायता—१३।६३

२३६, वर्ष २२ कि० ५

अनेकान्त

वीर सेवामंदिर ट्रस्ट की दो मीटिंग-१३।२५४
वीर सेवामंदिर में कानजी स्वामी—१४।किरण ६
टाइटिल पेज २
वीरसेवामन्दिर में वीरशासन-जयन्ती का उत्सव—
दरबारीलाल कोठिया ७।२२३
वीरसेवामन्दिर में वीरशासनजयन्ती का उत्सव—
पं. दरबारीलाल जैन कोठिया ८।४२८
वीरसेवामन्दिर की सहायता (अधिष्ठाता)
ब० ४ कि० ६ कि. ६ ब. ४ कि. १२ ब. २
वीरसेवामन्दिर उसका काम और भविष्य—बा. माईदयाल
२।५८७
वीरसेवामन्दिर के प्रति मेरी श्रद्धांजलि—अजित प्रसाद
जैन एडवोकेट २।५६०
वीरसेवामन्दिर के विशेष सहायक—जुगलकिशोर
वर्ष ४, पृ. ५०६
वीरसेवामन्दिर ग्रंथमाला को सहायता—अधिष्ठाता
कि. १ टा. ३
वीरसेवामन्दिर में वीरशासनजयन्ती—प. दरबारीलाल
कोठिया ५।२६६
वीरसेवामन्दिर में वीरशासनजयन्ती उत्सव—
पं. परमानन्द जैन शास्त्री ४।३६१
वीरसेवामन्दिर दिल्ली की पैसाफण्ड गोलक—
जुगलकिशोर मुख्तार १४।१७७
वीरसेवामन्दिर में श्री जुगलकिशोर मु. सा. के निधन
पर शोक सभा—२१।२८०
वीरसेवामन्दिर विज्ञप्ति—अधिष्ठाता वीरसेवामन्दिर
३।७५५
वीरसेवामन्दिर सोसाइटी की मीटिंग—१३।३१४
वीरसेवा संघ के वार्षिक अधिवेशन का विवरण—
बा. भोलानाथ मुख्तार १।४०६
वीरसेवा सदेश की उपेक्षा—प्रभुदयाल जैन प्रेमी ८।१६३
वैवाहिक कठिनाइयाँ—श्री ललिता कुमारी ४।२७३
ल
लङ्कर में मेरे पाँच दिन—परमानन्द शास्त्री २२।६१
लाला महावीरप्रसाद जी ठेकेकार का स्वर्गवास—१४।३४२
लेखकों को आह्वान—व्यवस्थापक अनेकान्त १।६१

श

शाह हीरानन्द तीर्थ यात्रा विवरण और सम्मेलनशिलर चैत्य-
परिपाटी—श्री अग्रचन्द ना. १४।३००
शान्ति की खोज—प्रो. महेन्द्र कुमार न्यायाचार्य १४।२६८
शिक्षा का उद्देश्य—आचार्य तुलसी १६।३०७
शिक्षा का महत्व—पं. परमानन्द शास्त्री २।३४०
शिक्षित महिलाओं का अपव्यय—ललिता कुमारी ३।६८५
शिमला का पर्युषण पर्व—प. दरबारीलाल कोठिया ६।३२४
शिरपुर जैनमन्दिर दिगम्बरजैनियों का ही है—२०।२२७
शुभ सन्देश—प. मदन मोहन मालवीय १।४२
शुभ सन्देश—महात्मा भगवानदीन १।२५
शैतान की गुफा में साधु—अनु० डा० भैयालाल जैन
४।१७८
शौच धर्म (प्रवचन)—श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी १०।८३
श्रद्धांजली—पं. प्रभुदयाल प्रेमी ६।१६०
श्रद्धांजलि बा. माईदयाल जैन बी. ए. ६।२००
श्रमण का उत्तर लेख न छापना—१२।३२८
श्री दादीजी का वियोग—जुगलकिशोर मुख्तार ७।१०१
श्री धवल ग्रन्थराजों के दर्शनो का अपूर्व आयोजन—
परमानन्द जैन १३।१३५
श्री नेमिनाथाष्टक स्तोत्र—१३।४१
श्री पं. मुख्तार ला. से नम्र निवेदन—श्री हीराचन्द बोहरा
बी. ए. १३।१४३
श्री बाहुबली जैन पूजा का अभिनन्दन—१२ टा० पेज ३
श्री महावीरजी में वीरशासनजयन्ती—राजकृष्ण जैन
१२।७४
श्री सम्मेलन शिलर तीर्थरक्षा—प्रेमचन्द जैन १८।४८

स

सच्ची भावना का फल (प्रवचन)—श्री क्षु. गणेशप्रसाद
वर्णी १०।२५४
सत साहित्य के प्रचारार्थ सुन्दर उपहारों की योजना—
मंनेजर वीरसेवामन्दिर १२।२
सफलता की कुजी—बा. उग्रसेन जैन एम. ए. ६।३५
सभापति का अभिभाषण—श्री राजेन्द्रकुमार ६।१६३
समन्त भद्राश्रम विज्ञप्ति नं० ४ बृहत् पारितोषक योजना—
१।२५३

समय और हम—श्री जैनेन्द्र १५।१५५
 समय का मूल्य—मुनि श्री विद्यानन्द १६।३५६
 समाज सुधार का मूल स्रोत—पं. श्रेयाशकुमार ४।६६
 सरकार द्वारा मांस भक्षण का प्रचार—पं. हीरालाल सि.
 शा. १४।२२५
 सरल योगाभ्यास—हेमचन्द मोदी ३।३४३
 सर्वोदय का अर्थ—आचार्य विनोबा भावे १७।३२
 सागर धर्माभूत और सावयपन्नती—पं. बालचन्द शा.
 सोलापुर १६।१५५
 सामायिक विचार—श्रीमद्राजचन्द्र व. ३ ५८, कि. ४ टा. ३
 सार्वजनिक भावना और सार्वजनिक सेवा—
 बा. माईदयाल जैन बी. ए. ४।२६३
 साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओं में जैनदर्शन—
 रतनलाल सघवी ३।५६, ३।४११
 साम्प्रदायिक दंगे और अहिंसा—बा. राजकुमार जैन
 ८।२३५
 सिद्धांत शा. पं. देवकीनन्दन जी का पत्र—१।१६६
 सीतल सेवा मन्दिर देहली के लिए अपील—५।१६४
 सूतक पातक विचार—बा. रतनचन्द जैन मुहानार
 ११।३७६
 सेठ भागचन्द जी सोनी के भाषण के कुछ अंश ५।२०७
 सेवाधर्म दिग्दर्शन—सम्पादक २।२३८
 सी. सी के तीन पुरस्कार कि. ६ टा. पे. ३
 संयम (प्रवचन) क्षु. गणेशप्रसाद वर्णी—१०।१५७
 संसार में सुख की वृद्धि कैसे हो—दोलतराम मित्र ३।२६२
 संस्कारों का प्रभाव—पं. हीरालाल सि. शा. १४।२०८,
 १४।२७४

सग्रह की वृत्ति और त्यागधर्म—चैनसुखदास न्यायतीर्थ
 १२।१२३
 सम्मान समारोह का विवरण एक पत्रकार—६।१६४
 स्त्री शिक्षा—हेमलता जैन २।४६
 स्त्री शिक्षा पद्धति—भवानीदत्त शर्मा २।६२०
 स्मृति रखने योग्य महाकाव्य—श्रीमद्राजचन्द्र ३।२७
 स्वतन्त्रता देवी का सदेश—(नीति विज्ञानसे) २।४६२
 स्वागत भाषण—लाला प्रद्युम्नकुमार ६।१६६
 स्वावलम्बन और स्वतन्त्रता—जमनालाल जैन ७।११७
 स्वास्थ्य रक्षाके मूलमन्त्र—राजबंश शीतलप्रसाद
 १।५१.७६

ह

हम और हमारा ससार—बा. सूरजभान वकील ३।५५६
 हमारी यह दुर्दशा क्यों?—सम्पादक ८।१
 हमारी शिक्षा—बा. माईदयाल बी. ए. १।८७
 हमारी शिक्षा समस्या—प्रभुदयाल जैन प्रेमी ७।२१६
 हरिजन मन्दिर प्रवेश के सम्बन्ध में मेरा स्पष्टीकरण—
 क्षु. गणेशप्रसाद वर्णी १०।३५५
 हरी साग सञ्जी का त्याग—बा. सूरजभान २।५३०,
 ५७५
 हिन्दु कोड बिल—बा. माईदयाल जैन बी. ए. १०।२६४
 हिमाव का सशोधन (टाइटिल) —१३।३
 हृदय की कठोरता—मुनि कन्हैयालाल २।२।८०
 हृदय द्रावक दो चित्र—बा. महावीर प्रसाद जैन ५।२५४
 हेम चन्द्राचार्य और ज्ञान मन्दिर—सम्पादक २।४३२
 होली का त्योहार—सम्पादक ३।३५०

६. विविध

अ
 अतीत स्मृति (एकाके च)—पं. कन्हैयालाल ६।४७
 अनुसंधान का स्वरूप—प्रो. गोकुलप्रसाद जैन एम. ए.
 १४।४६
 अनेकान्त का वार्षिक हिसाब और घाटा (अविष्ठाता
 समन्तभद्राश्रम) १।६६८

अनेकान्त के मुख पृष्ठ पर चित्र—संपादक ८।३३३
 अनेकान्त के प्रेमी पाठकों से—वर्ष १४।कि० ६ टा० २
 अनेकान्त के प्रेमियों से निवेदन—संपादक ४।३६
 अनेकान्त के सहायक—[वर्ष ४ कि० ४ टा० ३
 अनेकान्त पर अभिमत—१५।१४६

अनेकान्त पर लोक मत— ४।१३८, ४।२३७, ८।२८६,
५।३५६

अनेकान्त रस लहरी—संपादक ६।३, ६।४३, ६।१२३

अपनत्व—मुनि कन्हैयालाल २१।१०६

अपनी दशा—भगवत स्वरूप जैन भगवत २।२७६

आ

आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री का मन्देश— ४।३६६

आचार्य जिनविजय का भाषण—हजारीमल ४।२५२

आत्म-निरीक्षण—परमानन्द शास्त्री २०।३३२

ई

ईश विनय — १।५५३

उ

उठनी है उर में एक लहर—पं. काशीराम शर्मा ४।६८

ए

एक प्रश्न—श्री भगवत जैन ४।३६०

औ

और आँसु ठुलक पड़े—डा. नरेन्द्र मानावत १७।१७५

क

काक पिक परीक्षा—पं. हीराबाल सि. शा. १३।७८

क्रोध पर क्रोध—परमानन्द जैन १६।१००

ख

खंड विचार—१।४६५

ग

गुनामी (खंड-काव्य)—स्व. भगवत जैन ७।१३१

च

चेकोस्लाविया—बा. माईदयाल जैन वी. ए. १०।३०२

ज

जग किमकी मुद्रा से अंकित है—संपादक ४।२४२

जीवनधारा— ४।३८६

जीवन की पहेली—बा. जयभगवान वकील ४।१८७,

४।३७३

जीवन में ज्योति जगाना है—पं. पन्नालाल जैन ४।२७२

जैनधर्म भूषण ब्र. शीतलप्रसाद जी के पत्र—गोयलीय

६।३५२, ६।४०६

जैन मित्र की भूल— १५।१७६

जो देता है वही पाता है—आचार्य तुलसी १७।५३

ज्ञान पर लीबनिज—बा. नारायण प्रसाद जैन २।४२६
ज्वर की ज्वाला में जलते हुए भी—प्रेमलता ६।२२०

ड

डा० कालीदास नाग का देहली में भाषण—

आदीश्वरलाल जैन एम. ए. १०।२२४

त

तुम.....—श्री राधेश्याम वरनवाल १४।६७

तुम मानव महान हो—तन्मय बुखारिया ७।६

तृष्णा की विचित्रता—श्री मद्राजचन्द्र २०।१५०

द

दलित कलिका—पं. मूलचन्द वत्सल १।५७५

दिग्विजय—आनन्द प्रसाद जैन १७।२५

दिग्विजय—आनन्दप्रसाद जैन जबूप्रसाद जैन १५।२६७

दिग्विजय—आनन्दप्रसाद जैन जबूप्रसाद जैन १६।२७,

१६।६६, १६।१२३, १६।१७७, १६।२१७, १६।२६६

दुनिया का मेला—पं. काशीराम शर्मा ४।१४४

दीनो के भगवान—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर २।१।४

न

नर नरके प्राणोंका प्यासा—प. काशीराम शर्मा ४।५२८

नित्य की आत्म-प्रार्थना—संपादक ४।५२७

प

पथ चिन्ह—प. कन्हैयालाल प्रभाकर ६।१४२

पराधीन का जीवन कैसा—प. काशीराम शर्मा ४।०४

पाकिस्तानी पत्र—गोयलीय ६।२०७, ६।२८६

पिजरे की चिडिया—जान गॉल्स वर्दी इगलैण्ड ४।३

पीड़ित पशुओं की सभा—श्रीमती जयन्ती देवी १।२०७

प्रकृति का संदेश (नीति विज्ञान से) २।३६१

प्रणाम—अखिलेश ध्रुव ६।१८६

प्रवृत्ति पथ—अज्ञेय २।४७५

प्रश्नोत्तरी—बा. जयभगवान वकील ५।२०४

प्रो. जगदीशचन्द्र के उत्तरलेख पर सयुक्तिक सति—

पं. रामप्रसाद शास्त्री ४।८६

ब

बाबली घास—हरिशंकर शर्मा ३।५१०

बाबा मन की आँखें खोल—श्री भगवत जैन ४।१

बारह वर्ष बाद— ६।२१६

बुद्धि हत्या का कारखाना—गृहस्थ से उद्धृत ३।१६४

म

मनुष्य कर्तव्य—प. मुन्नालाल विशारद १।१५३

महत्व की प्रश्नोत्तरी—संपादक ५।२६

महावीर का मार्ग—मोहनी सिंघवी २।१८५

य

यह सितमगर कब !—कु० पुष्पलता २।६५१

यशपाल जैन का अर्धशतकीय भाषण २०।२२२

र

रिक्सा गाड़ी—हरिप्रसाद शर्मा 'अविकसित' ५।३०

ल

लहरो मे लहराता जीवन—श्री 'कुसुम' जैन ८।२७७

लोकमंगल कामना—संपादक ४।४७८

श

शाश्वत क्षणों मे—अजित मुनि निर्मल १६।२४३

शुद्धि प्रयोग की पृष्ठ भूमि—मुनि श्री नेमचन्द १६।४६

शांति भावना—प. काशीराम शर्मा प्रफुल्लित ५।१८१

श्री वीर जिन स्मरण—संपादक ७।८६

शान्ति का —संपादक १।४४४

श्रद्धार्थ—बा. छोटेलाल जैन ६।१८६

श्रद्धा के फूल—श्री भगवत जैन ६।१६०

श्री भद्रबाहु जी का अभिमत १३।२४६

स

सतसाधु बंदन—संपादक ४।१

संतुलन अपना व्यवहार—मुनि श्री कन्हैयालाल १६।५०

सम्बोधन और सूचना—प. सुखलाल वेचरदास १।२२०

सन्मति विद्या विनोद—जुगलकिशोर १।४।३२७

सम्पादक की ओर से—६।२२३

सम्पादकीय—१६।८२

सम्पादकीय संपादक १०।४०, १०।२२४, १०।४५७

सम्पादकीय—१।४।४१

सम्पादकीय—१।४।३५४

सम्पादकीय—गोयलीय ६।८३, ६।११६, ६।१६४, ६।२०८, ६।२४१, ६।२८०

सम्पादकीय—१३।२६ १३।६८

सम्पादकीय (नव वर्षारम्भ)—जुगलकिशोर मुख्तार १२।२६

सम्पादकीय—८।३१५, ८।४६६

सम्पादकीय—१।५८, १।३२२

सम्पादकीय—७।२०, ७।१६४

सम्पादकीय—६।१४५, ६।३२१

सम्पादकीय—(प. महेंद्रकुमार जी का लेख) ५।३२६

सम्पादकीय (अनेकान्त) की वर्ष समाप्ति ५।४२३

सम्पादकीय (अगले वर्ष की योजना) ५।४२४

सम्पादकीय (शाह जवाहरलाल जी और जैन ज्योतिषी)

५।२५५

सम्पादकीय टिप्पणियाँ—३।७६५

सम्पादकीय नोट—परमानन्द जैन १।४।२०

सम्पादकीय नोट—जुगलकिशोर मुख्तार

सम्पादकीय नोट—परमानन्द जैन १३।२२६

सम्पादकीय वक्तव्य (भारत की स्वतंत्रता उसकी भडा और कर्तव्य) ८।३६३

सम्पादकीय विचारणा—६।३०४

समर्थन—प. परमानन्द जैन शारत्री ५।३४४

संयुक्तिक सम्मति पर लिखे गये उत्तर लेख की निःसारता

प. रामप्रसाद शास्त्री ४।३६४, ४।४३०, ४।५६७,

४।६१७

सिद्ध स्मरण—संपादक ७।२१

सिद्ध स्वान-ममीक्षा—प. हीरालाल सि. शा १३।५१

सुख का स्थान—परमानन्द शास्त्री २।१

सुख दुख—श्री लज्जावती जैन २।३६६

सुख शान्ति चाहता है मानव—श्री भगवत जैन ४।५१२

स्वरूप भावना—सम्पादक ६।१२६

स्वागत—प्रो. गयाप्रसाद शुक्ल ६।१८१



१०. संकलन

अ

- अकलंक स्मरण=सम्पादक ३।१४१
अधिकार= 'कल्याण से' २।१२०
अमृतचन्द्र स्मरण=सम्पादक ७।६१
अरहंत स्तवनम्=(घबला से) १८।६७
अर्हद् भक्ति (स्तवन) १५।६६
अर्हत्परमेष्ठी स्तवन=मुनि पद्मनन्दि १७।६७
अर्हत्परमेष्ठी स्तवन=मुनि श्री पद्मनन्दि २२।४६
अर्हत् स्तवन=मुनि पद्मनन्दि १८।२४१

आ

- आचार्य परमेष्ठी (घबला से) १८।१६३
आत्म-संबोधन=परमानन्द शास्त्री २२।७३
आदिनाथ स्तवन=पद्मनंदाचार्य १६।६७
आध्यात्मिक पद=कविवर छानतराय ८।१३२

उ

- उमा स्वामी स्मरण=३।३६७

ऋ

- ऋषभ जिन स्तोत्रम्=मुनि श्री पद्मनन्दि २०।४६
ऋषभ स्तोत्रम्=मुनि पद्मनन्दि १६।२४३

क

- कवित्त=श्री रूपचन्द्र १५।११८
क्या कभी किसी का गर्व स्थिर रहा है ?-२१।१३

ग

- गुणों की इज्जत=२१।२२६

च

- चतुर्विंशति तीर्थंकर स्तुति=१४।४३
चिदात्म वन्दना=मुनि पद्मनन्दि २१।४६

ज

- जन्म जाति गर्वापहार="युगवीर" १२।३०४
जिनवति स्तवन=श्री शुभचन्द्र योगी १४।७५
जिनवरस्तवनम्=पद्मनंदाचार्य १८।४६
जिनवर स्तवनम्=मुनि पद्मनन्दि १६।२०३

जिनसेन स्मरण=३।६७७

त

- तिरुवल्लुवर सूक्तियाँ-तिरुवल्लुवर २।२५२
तीर्थंकर त्रय स्तवनम्=प्रा. यतिदूषभ २२।१

द

- देविनन्दि पूज्यपाद स्मरण=सम्पादक ३।५५७

न

- नमिजिनस्तवन=स्वामी समन्तभद्र १६।१
निष्ठुर कवि और विधाता की भूल (कविता)=कवि
भूषरदास ६।२४५

प

- पद=कवि जगताराम १५।८४
पद=जगजीवन १५।१२३
पद्मप्रभजिनस्तुति=समन्तभद्राचार्य २०।१६३
परमात्म वन्दन=सम्पादक ८।१
परमात्मस्तवन=पद्मनंदाचार्य १६।२४१
प्रभाचन्द्र स्मरण=सम्पादक ३।३७७
पात्र केसरी स्मरण=सम्पादक ३।४८१

भ

- भगवान् आदीश्वर की ध्यानमुद्रा (कविता) कविवर
दोलतराम १३।२६७
भावना पद्धति=(भ० प्रभाचन्द्र शिष्य पद्मनन्दि ११।२५६

म

- महाविकल संसारी (कविता)=बनारसीदास १३।२३६
महावीर वाणी=कवि दोलतराम २१।१३६

व

- विचार कण=१४।३२३
विचार पुष्पोद्यान=४।५२, ४।६७, ४।१०५, ४।१६३,
४।१७७, ४।२८८, ४।५३५

- विद्यानन्द स्मरण=सम्पादक ३।२६६

- वीर जिन स्तवन-पं. जुगलकिशोर मुस्तार २१।१६३
वीतराग स्तोत्र (कल्याणकीतिकृत) सम्पादक ८।२३३

वीतराग स्तोत्र (पद्मनन्दिकृत) =सम्पादक ८।२३३
वीरसेन स्मरण=सम्पादक ३।६२१
वैराग्य कामना, राग और वैराग्य का अन्तर=स्व. कवि
मृधरदास ७।१५२

र

रावण पार्श्वनाथ स्तोत्र-संपादक ८।४३७
रूपक पद (कविता)-कवि घासीराम २०।२७

श

शान्तिनाथजिनस्तवन-पद्मनन्दाचार्य १६।४६
शान्तिनाथ स्तुति-श्रुतसागर सूरि १२।२५१
शान्तिनाथ स्तोत्रम्-पद्मनन्दाचार्य १७।१
श्री अरजिन स्तवन- १५।२४३
श्री कुन्दकुन्द स्मरण-संपादक ३।४२५
श्री नेमिजिन स्तुति-पं. शालि १४।१८७
श्री पद्मप्रभ जिनस्तवन-समन्तभद्राचार्य १७।६३
श्री सुपार्श्वजिनस्तवन-समन्तभद्राचार्य १७।२४१
श्री पार्श्वनाथ स्तोत्र-धर्मघोष सूरि १४।१२४
श्री पार्श्वनाथ स्तोत्रम्-श्रुतसागर सूरि १२।२३६
श्री महावीर जिन स्तवन-अज्ञात कर्तृक १४।२८३
श्री वर्धमानजिन स्तुति- १४।१
श्री वीतराग स्तवनम्-अमर कवि १२।७५
श्री वर्धमान जिन स्तोत्र-१४।१२३
श्री वीर जिनशासन स्तवन-१५।१७५
श्री वीर जिनस्तवन-युगवीर १४।२५१
श्री शम्भव जिन स्तुति-समन्तभद्राचार्य १७।१४५
श्री शान्तिनाथ स्तवन-वादीभसिंह २०।१
श्री शारदा स्तवनम्-भ. पद्मनन्दि शिष्य भ० शुभचन्द्र
१२।३०३

श्री सिद्धस्तवनम्-(घबला से) १८।१४५
श्रुत देवता स्तुति-मुनि श्री पद्मनन्दि १६।१४४
श्रेयो जिन स्तुति-समन्तभद्राचार्य २०।२४१

स

समन्तभद्र अभिनन्दन-संपादक २।२७५
समन्तभद्र भारती-संपादक २।४८२
समन्तभद्र कीर्तन-संपादक २।२३७
समन्तभद्र जयघोष-संपादक २।६३६

समन्तभद्र प्रवचन-संपादक २।३५७
समन्तभद्र प्रणयन-संपादक २।३७६
समन्तभद्र भारती के कुछ नमूने-संपादक ५।१, ५।१०५,
५।१६४, ५।२१७, ५।३२६, ५।३८१
समन्तभद्र भारती के कुछ नमूने-६।६, ६।४१, ६।८१,
६।१२१, ६।२२६, ६।२६१, ६।२६३, ६।३२५
समन्तभद्र भारती के कुछ नमूने (युक्त्यनुशासन)-संपादक
८।१४५, ८।२२१, ८।२६७, ८।३३५, ८।४३३,
समन्तभद्र भारती के कुछ नमूने (युक्त्यनुशासन)-जुगल-
किशोर मुख्तार ६।१, ६।४५, ६।६०, ६।२१५,
६।२४७, ६।२८७, ६।३२६, ६।३६६
समन्तभद्र माहात्म्य-संपादक २।५६१
समन्तभद्र वचनामृत-'युगवीर' १२।३, १२।१५१
समन्तभद्र वन्दन-संपादक २।१७६
समन्तभद्र वाणी-संपादक २।४३५
समन्तभद्र विचारमाला (१, २, ३)-संपादक ४।५
समन्तभद्र विनिवेदन-संपादक २।६६३
सम आराम विहारी (कविता)-पं. आगचन्द १२।४१
समन्तभद्र शासन-संपादक २।५३५
समन्तभद्र स्तवन-संपादक २।१२६
समन्तभद्र स्मरण-संपादक २।१
समन्तभद्र हृदिस्थापन-संपादक २।६४०
सम्यग्दृष्टि का विवेक-१७।५६
सम्यक् दृष्टि का स्तवन-बनारसीदास १६।१
सरस्वती स्तवनम्-मुनि श्री पद्मनन्दि १६।३३६
साधु महिमा-स्व० कवि दानतराय १०।८१
साधु स्तुति (कविता)-कविवर बनारसीदास १२।२८५
सिद्धसेन स्मरण-सम्पादक ३।२०५
सिद्धसेन स्मरण-६।४०६
सिद्धसेन स्वयम्भू स्तुति-६।४१५
सिद्ध स्तुति-मुनि पद्मनन्दि १६।२६१
सुधारसंस्मरण-संपादक ३।२१६
सुपार्श्व जिन स्तुति-समन्तभद्राचार्य २०।६७
सुपार्श्वनाथ जिन स्तुति-समन्तभद्राचार्य १६।४६
सुपार्श्वनाथ जिन स्तुति-समन्तभद्राचार्य १८।१४५
सुभाषित-३।७६, कि० १, टा० ४, कि० ४ टा० ४

सुभाषित कविताएँ—संपादक २।३००, २।३५४, २।४४२,
२।४५२, २।४७२
सुभाषित गद्य—२।२५२, २।३८६, २।५५७, २।५६१,
२।५६३, २।६५४, २।६२५
सुभाषित मणियाँ—२।१२१
सुभाषित मणियाँ—सम्पादक १।४६, १।१०७, १।१५७,
१।२३२, १।३१२, १।३३०, १।४६६, १।५६६

सुमति जिन स्तवन—समन्तभद्र १८।१
सूक्त मुक्तावली (कविता)—बनारसीदास २।३१०
स्वयम्भू स्तुति—पद्मनन्दि १६।१६६
स्वयम्भू स्तुति—पद्मनन्दाचार्य २।११६७, २।११४५
स्व स्वरूप में रम—१६।२३३

‘अनेकान्त’ के लेखक

गोपीलाल ‘अमर’

१. इन लेखकों की रचनाएँ मूल, अनूदित या उद्धृत रूप में, इस पत्र की अब तक की ३१२ किरणों में प्रकाशित हुई हैं।
२. लेखक के बाद लिखे गये अंकों में प्रथम अंक वर्ष का और द्वितीय अंक पृष्ठ का सूचक है।
३. कुछ लेखकों का नाम या नामांश भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकाशित हुआ है, उदाहरण के लिए श्री जुगलकिशोर को कभी सिर्फ ‘युगवीर’ लिखा गया है ऐसी स्थिति में यथासंभव समीकरण करके एक ही नाम को सूचीबद्ध किया गया है।
४. अकारादि क्रम में मूलनाम को मुख्य माना गया है। नामों के आदि में लगे ‘श्री’, ‘पं.’, ‘डा०’, ‘प्रो.’ आदि को इसीलिए कोष्ठक में रखा गया है।
५. अंग्रेजी वर्णों को हिन्दी उच्चारण के आधार पर ही अकारादि क्रम में रखा गया है, उदाहरण के लिए ‘बी. एल. सराफ’ को ‘ब’ के अन्तर्गत रखा गया है, न कि उनके पूरे नाम ‘भैयालाल सराफ’ के अनुसार ‘भ’ के अन्तर्गत।

अ

अक्षयकुमार जैन— १६।१८

(श्री) अखिल— १२।३६६

अखिलानन्द रूपराम शास्त्री— ८।१३८

अखिलेश ध्रुव— ६।१८६

अगरबन्द नाहटा—२१।१७२, २१।३६, २१।१३४, २१।११०

२१।१६८, २१।२३५, २०।२०७, १६।३६७, १६।८१,
१६।२६४, १८।२३८, १८।१५८, १८।५६, १७।१०,
१७।६१, १७।२२६, १६।७६, १६।१३६, १६।१८८,
१६।२३७, १६।२८१, १५।६८, १५।२८२, १५।२२६,
१५।१६०, १४।२०६, १४।१७०, १४।२३२,
१४।१६६, १४।३००, १४।१६२, १३।७२, १३।१०७

१२।२८८, १२।२४७, १२।११३, १२।२२७,
११।१२८, ११।२४८, १०।३३१, १०।३२७,
१०।१६, १०।२७१, १०।४०७, ६।१०८, ६।२२२,
८।१३६, ८।४४, ८।४५७, ८।४५६, ७।६०, ६।६५,
६।३०६, ५।४६, ५।३२१, ४।४७०, ४।१४५, ४।
५४५, ४।३३६, ४।६१०, ४।३८६, ३।६४०, ३।४६४,
३।२६३, ३।४६८, ३।१४६, २।५४३, २।१५५
२।२५०

(पं.) अजितकुमार शास्त्री—१४।२३०, १२।१३०, ८।४१,

६।१८०, ५।१६८, २।६६

अजितप्रसाद जैन एडवोकेट—४।२४३, ४।६५, २।५६०

अनूपचन्द्र न्यायतीर्थ—२१२४८, १६१४४, १७६७, १६१
२०६, १५१४१, ६१७१

(बाबू) अनन्तप्रसाद B Sc Eng.—१२१२३३, १२१८०,
१२१४३, १२११२, १२१५८, १०११४१, १०११६७,
१०१४२१

(मुनि श्री) अमरचन्द्र—१८१२०, १७२५३, ६१८, २१२१०
अमरचन्द्र जैन—१६११७,

अमृतलाल चंचल—३१५७३

अमृतलाल शास्त्री—१६११४८

(श्री) अम्बुजाक्ष सरकार एम. ए. बी. एल. १२१३२२

अयोध्याप्रसाद गोयलीय—६१३१६, ६११४१, ६१७२, ६१
१८२, ६१३५२, ६१४०६, ६११४५, ६११०५, ६१२०७
६१२८६, ६१११५, ६१६१, ६१३५५, ६१३०६, ६१८३
६१११६, ६११६४, ६१२०८, ६१२४१, ६१२८०,
६११६१, ६१२५७, २१२४२, २१३०१, २१३५७,
२१४२२, २१४४३, २१४६१, २१५७३, २१२७३,
२१४७८, २१५१८, २१७३, २११६६, २१२११, २१३३२
२१२३५, २१४१८, ११२४७

(पं.) अर्जुनलाल सेठी—११३६४

अशोककुमार जैन—१७११०७

आ

(मुनि) आत्माराम—७११४१

आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये—२१२५८, २०१४ टा. २,
१६१८, १५१२४४, १५१२०४, ८१४८, ८१६० ६११७६
४१२२६, ४१२६३, ४१११३, ११५४४

आदीश्वरलाल जैन एम. ए.—१०१२२४

आनन्द जैन दर्शन शास्त्री—२१३४२

आनन्द प्रकाश जैन—१६१२७, १६१६६, १६१२३, १६१
१७७, १६१२१७, १६१२६६, १५१२६७, १७१२५

आर. के. आनन्द प्रसाद जैन ‘विकल’—४१४०१

आर. आर. दिवाकर राज्यपाल विहार—१११४१६

इ

इकबाल बहादुर श्रीवास्तव—८१६६

इन्दु जैन—१११४५

इन्दुकुमारी जैन ‘हिन्दिरल’—३१४५

(डॉ.) इन्द्रचन्द्र जैन—१७११०३, १५१३१, १५११६६

(पं.) इन्द्रचन्द्र शास्त्री—६११०७, ३१२५०, २१३८७,
२१४६६

इन्द्रजीत जैन ‘वैद्य’—८१२०५

ई

ईश्वरलाल जैन न्यायतीर्थ—४११०१

उ

(बा.) उग्रसेन जैन वकील—७१७४, ६१११०, ६१३५

(प्रो.) उदयचन्द्र जैन—१६११५८

ऋ

(स्व. पं.) ऋषभदास—१३११६५, १३११८२

ऋषभसेन—६१२२२

ऋषिकुमार—४१२६८

ए

ए. के. भट्टाचार्य डिप्टीकीपर—१४१८६

(प्रि.) ए. चक्रवर्ती एम. ए.—८११४८, ५१५६, ४११०६,
४१२२०, ४१३३६, ४१३६५, ४१५५७, ४१६१३,
३१४८७, ३१५६७, ३१७२१

एन. सी. वाकलीवाल—११३७४, १२१८५

एम. एस. रामस्वामी प्रायगर एम. ए.—१२१२१६

(श्री) एम. गोविन्दर्व—१०१२२२, ३१५७८, ३१६५५

(पं.) ए. शांतिराज शास्त्री—४१५५६

एस. के. ओसवाल—४१७६

एस. पी. गुप्ता और बी. एन. शर्मा—१६११२६

वस. सी. वीरन—६१३५२

ओ

(वैद्य) ओमप्रकाश—७१२०६, ६१२४८, ६११६१, ५१२६१

क

(साध्वी) कानकुमारी—२११५३

कनकविजय जी—१८१७०, १८१४०, १७२८१

(मुनि) कन्हैयालाल—२११०६, २०१२४६, १६१५०,
७१४३

कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर—६१८८, ६११४६, ६११४३,

६१३१४, ६१११५, ६११६१

कपूरचन्द्र जैन इन्दु—६१६८, ६११६२

कपूरचन्द्र नरपत्येला—१६१३७

(बा.) कपूरचन्द्र बरैया एम. ए.—२११-२७७, १६११६४

(पं.) कमलकुमार जैन शास्त्री—२१६५६

कमलकिशोर वियोगी—३१३३८

(डा.) कमलचन्द सोगाणी—१७१३

कमलेश सक्सेना एम. ए.—१८१६३

(मुनि) कवीन्द्र सागर—३१२३७

कर्मानन्द—७६६६, ६१२६६, ६१२३५, २१२४६, २१६५

कल्याणकुमार 'शशि'—१६१३६, ७११८६, ६११६०, ४१५४

२१२६५, २१२५५, २११६५, २१२, २१२, ११२७,

११३६७, ११३०३, ११२२६, ८-१७२, ६१२२६

(मुनि) कल्याण विजय—११२२६, ११३४२

कस्तूरचन्द्र एम. ए. बी. एड.—२११२३७,

(डा.) कस्तूरचन्द्र जी कासलीवाल—२११२७३, २११२८४

२०१४६, २०११६६, २०१३७, १६१५१, १६१२५२,

१६१४२, १८१३३, १८१३७, १८१७८, १८१७७, १७१

१७२, १७१२३३, १७१६०, १७११६, १६१६२, १६१

२२, १६१६१, १६१२२५, १५१७७, १५१८, १५१२१०

१४१२८६, १४१३३३, १३१४६

कस्तूर सावजी बी. ए. बी. टी.—८११७, ८१२३७

(श्री) काकाकालेलकर—१८१३६, १७१५१, ८१२६३,

३१४६१, ३१४६५

(श्री) कानजी स्वामी—१४१२६८, १२१२११, ६१३३,

७११६८

(मुनि) क्रान्तिसागर—२०१५१, १६१३४, १७१८३, ६१२२५,

६१२६१, ६१३११, ६१२६६, ६१२८४, ६१३२५,

६१३६३, ६१३४३, ८११२१, ८१४०२, ५११६०,

४१५३६, ४१५८१, ४१४२७, ४१५०१

(वा.) कामताप्रसाद जैन—१२११८५, ६१२२४, ६११८७,

६११-८, ६१३७, ४१६३, ३१२८, २१८३, ११२५,

११२६७, ११६२१, ११२२१

(श्री) कालिकाप्रसाद जी शुक्ल एम. ए.—१५११४६,

१५१२०६

(डा.) कालीदास नाग—४१४३२

काशीप्रसाद जायसवाल—११३५२, ११२४१

काशीराम शर्मा प्रफुल्लित—८१८५, ८११०८, ८१३६२,

८११५३, ७१७३, ६११८६, ६१३५८, ६१३६, ६१२०६,

६१२६५, ५१२५, ५११८१, ४१३३६, ४१२१६, ११६८,

४१२४४, ४१३०६, ४११४४, ४१५२८, ४१६०४,

४१३६४

किरणवाला जैन—१२१२५६, १२११६५, १२१२२३,

१२११६५,

किशोरीलाल घनश्यामदास मशरूवाला—४१४८२, ३११६२,

२१५०४

(डा.) कुन्तलकुमारी—११४५३

(पं.) कुन्दनलाल जैन एम. ए.—१६११२४, १६१२८२,

१८१७५, १८१२६१, १७११२४, १६१८६, १५१२४४,

१५१३२, १५११०४

कुसुम जैन—५१५८, ४१३१२, ४१३७०, ४१२७७

(प्रो.) कृष्णदत्त वाजपेयी—१५१२७, १०१२६१

कृष्णानन्द गुप्त—४१४३४, ४१५१४

केदारनाथ मिश्र प्रभात बी. ए. विद्यालंकार—१११५२

(पं.) के. भुजबली शास्त्री—२१११३१, १६१४८, १७१२४२,

१५१८७, १५१२२५, १२१३५३, १२१७६, ८१३६३,

५१२५१, ३१५२१, २१५७६, ११४७१, १११६७

(डा.) कैलाशचन्द्र जैन—१६११५३, १५१२७६

(पं.) कैलाशचन्द्र सि. शास्त्री—२११२०६, २११८६,

१६११०, १८११४७, १५१६, १४१३१६, १०११२६,

१०१२१३, ८१३७६, ६१२८४, २११६५, ११६००,

११२३५

(बा.) कौशलप्रसाद—६१५७, ६१२१५,

क्षितिमोहन सेन—४१५५१

(डा.) क्रीमे पी एच. डी. (जर्मन महिला सुभद्रा देवी)—

११४६३

ख

(प्रो.) खुशालचन्द्र जैन एम. ए.—८११५४

ग

(श्री क्षु.) गणेशप्रसाद जी वर्णी—१४१३३०, १३१८५,

१२१३३, १२११२३, १२११२६, १२१४६, १२१७३,

१०११२२, १०१३५, १०१३४३, १०१२२०, १०१८३,

१०१२५४, १०११५७, १०१३५५, ६१२१६, ६१२६६,

६११८३, ६१२७७

गयाप्रसाद शुक्ल—६११८६

गिरधर शर्मा (नवरत्न)—२१३३४, १११०६

(श्री) गिरीशचन्द्र त्रिपाठी—१०१२६५

(मुनि श्री) गुलाबचन्द्र—१७११२७

गुलाबचन्द्र अभयचन्द्र जैन मिलसा—६१३६३

(डा.) गुलाबचन्द्र एम. ए.—१७१२१२, १०१४०३

(डा. गोकुलचन्द्र जैन आचार्य एम. ए. पी-एच. डी.—
२११२७०, २११२, २०१२७३, १६१३२, १६१३३५,
१८१५०

(प्रो.) गोकुलप्रसाद जैन एम. ए.—१४१४६, १४१२७१

(श्री) गोपाल बाकलीवाल एम. ए.—१६११६७

(डा.) गोपीचन्द्र भार्गव—१०१३४७

(पं.) गोपीलाल अमर—२११७१, २०१२४२, २०११४६,
१६१२२६, १६११२२, १६१३४०, १८१५६, १८१६८,
१५१२३१

(सेठ) गोविन्ददास—२१४२५

(पं.) गोविन्ददास न्यायतीर्थ—१०१२४, १०१६६, १०१६७,
१०११५३, ६१३८३

गगाराम गर्ग एम. ए.—१६११२०, १७११३३, १७१२७८,
१७११८०

घ

(कवि) घासीराम—२०१२७, ६१३५१ कि. द-६, टा. १

(प्रो.) घासीराम एम. एस. सी.—११३०८

च

(मुनि श्री) चतुर्विजय—२१६७८

(कुमार) चन्दसिंह दुधौरिया—१७१२३०, १७११८६

(विद्यार्थी) चन्दगीराम—६१२४६, ६१३४८, ६१३४९,
४११८२

चन्द्रप्रभात जेठ कमलेश—१११४६

चन्द्रशेखर शास्त्री आत्मार्य—४११४६, २१८६

चम्पालाल सिंह पुरन्दर एम. ए.—२११२५१

(सी.) चमेली देवी—१०१२९६

(श्री) चित्र—११२१५

चिमनलाल चक्रवर्ती शर्मा—२१११८३

(पं.) चैनसुखदास जैन—१६११६५, १४११३८, १५११३३,
६११३६, ६११३५, ६१११, ३४४२६, ३४४४०

(मुनि श्री) चौधमल—२१२१

छ

(बाबू) छोटेलाल जैन—१६१२३४, १६१४३, १५१२२४,
१३१३५, १२१३२७, १२११६, १२१४३, १२१६६,
१११८१, ११११५७, ११११२५, ६१६४, ६११८६,
११२८४

(ब्र.) छोटेलाल जैन—४१३६२

ज

(प्रो.) जगदीशचन्द्र एम. ए.—६१६१, ३१२६१, ३१३०४,
३१६२३, ३१४३३, २१५२६, २१५५१

जगन्नाथ मिश्र गौड़ ‘कमल’—१११६८, १११६८

(पं.) जगन्मोहनलाल शास्त्री—२०११६४

जमनादास व्यास बी. ए.—६११८१

जमनालाल साहित्यग्ल—६१३४१, ७१३३५

जयन्तीप्रसाद जैन विशारद—४१३६२

(पं.) जयन्तीप्रसाद शास्त्री—२११२७६, १४१४०३, १४१६१,
१४१३०२

(स्व. बाबू) जयभगवान—१७१४७, १५१७६, १५१७६,
१४११८६, १४१६१, १४१५७, १२१३३५, १२१६३,
१२१६६, ११११८५, १११४७, १११११३, १०१४३३,
७१६७, ५१२०१, ५१३, ५१२०४, ५१२४ ५११११,
५१२३, ४११८७, ४१३७३, ४१५७५, ३१४८२,
३१४४५, ३१४१४, ३१६५, ३१७७

(श्रीमती) जयवन्ती देवी—१४१२०६, २१६३३

(बैद्य) जवाहरलाल—१०१२३५, १०१२६१, १०१३३५,
१०१४१३

जॉन गॉल्सवर्दी हंगलंड—४१७३

(मुनि श्री) जिन विजय—११३५३

जिनेन्द्रकुमार जैन—१३१२२१

(ला.) जिनेश्वरप्रसाद जैन—१०१३४, ६११५८

जीवबन्धु टी. एस. श्रीपाल—१४१२२५

जीवन्तलाल जैन श्री. ए. बी. एच.—२११२३३

(स्नाता) जुगजकिशोर जैन—१०१२०, १०१३२३,
१०१६४, ६१२५१, ११३५६

जुगजकिशोर मुस्तार—११११६३, २०११०७, १६११८१,
१४१२१६, १४१११३, १४१५५, १४१६५, १४१६३,
१४१७३, १४१२०३, १४१३३३, १४१७७, १४१३,

[illegible]

३।३६३, ३।३४५, ३।४३३, ३।४८१, ३।५५७,
 ३।३६३, ३।४३३, ३।४८१, ३।५५७, ३।६२१, ३।
 ६२७, ३।६६६, ३।६७७, ३।७२८, ३।७५५, ३।६०,
 ३।११६, ३।१२१ व. व. १ टा. ३, ३।३०३. ३।४०
 ३।१४७, ३।३५६ ३।३५१, २।१, २।३, २।२२६,
 २।३६६, २।२७५, २।३७, २।६३६, २।३७६, २।३२७
 २।४८३, २।४६१, २।१७६, २।४३५, २।६६३,
 २।५३५, २।१२६, २।६४०, २।६१७, २।१८१,
 २।१३१, २।२७७, २।४८५, २।४८३, २।५३७,
 २।५६१, २।२४८, २।४४२, २।६०, २।४७६, १।३७३
 १।५२०, १।६५, १।२६७, १।६५५, १।४२६,
 १।४३३, १।२८६, १।३०३, १।४१३, १।१३०,
 १।१६५, १।४३६, १।६०८, १।६३२, १।६५२, १।
 ५४३, १।२५३, १।५३, १।३२२, १।४६६ १। २६,
 १।५२२, १।६७, १।४६, १।१०७, १।१५७,
 १।२३२, १।३१२, १।३३०, १।४६६, १।५६६,
 १।११५, १।४२७, १।५५५, १।५५४, १।४३३,
 १।२८, १।५०५, १।१३०, १।१६५ १।२६६,
 १।३२४, १।३०७, १।२, १।४२६, १।१२६, १।६७

जैनेन्द्रकुमार जैन—१६।१८७, २।१६३, २।४७, १।३७,
१।१७८, १।२०२,

जंबूप्रसाद जैन—१७।२५, १६।२७, १६।६६, १६।१२३,
१६।१७७, १६।२१७, १६।२६६, १५।२६७

ज्ञानचन्द्र भारिल्ल—७।१२७

ज्ञानचन्द्र स्वतंत्र जैन—१६।१६६

(भा.) ज्योतिप्रसाद एम. ए. पी-एच. डी.—२१।२२३,
१६।१६०, १६।१३६, १७।५४, १७।१५६, १७।२१७,
१५।६५, १४।२८५, १४।३२४, १०।२७४, १०।३७२
६।२११, ६।२०६, ८।२२५, ८।१६६, ८।३४३,
८।३६५, ८।३५६, ८।२६५, ८।२६१, ८।१०६,
८।१६६, ८।६१, ८।६७, ७।१७६, ७।७७, ७।१२१,
७।२०७, ६।२४६, ६।२२१, ३।२८१, २।६४७,
१।३।६८

ज्वालाप्रसाद सिंहल—८।५४

ਦ

टी. एन. रामचन्द्रन—१४।१५७, १५।१०१, ११।३७८

ठ

ठाकुरदास जैन—१६।१३६

ड

डी. ए. के दीक्षित बड़ौत १५।१०१

त

तन्मय बुखारिया ६।२४४, ७।६

ताराचन्द्र जैन दर्शन शास्त्री ४।६२१, ३।३५२, ३।८२, २।६८०

तिरुवल्लूर—२।२५२,

(आचार्य) तुलसी—१।७।५३, १।७।२५६, १।७।३४८

तेजसिंह गौड़ एम. ए. बी. एड. २।१।३५

द

ददरूलाल जैन—५।२६७

(पं.) दरबारीलाल न्यायतीर्थ—१।३६५, १।१६३, १।२७७ १।३७६, १।१७७, १।२५२, १।२६१

(पं.) दरबारीलाल कोठिया—२।१।५०, २।१।२६३ २।१।२७७ १।८।६१, १।८।२, १।७।३३, १।४।३०, १।२।१२६, १।०।६१, १।०।२५६, १।०।१६५, १।०।१६४, १।०।१४७, १।०।११७, ६।१७, ६।२७५, ६।२६१, ६।२२३, ६।३४, ६।११३, ६।१४८, ६।३२४, ६।३३, ६।५०, ६।४३, ६।६०, ६।३५८, ८।२, ८।३४६, ८।३७४, ८।१।१५, ८।१।६२, ८।२।४७, ८।१।५४, ८।२।८२, ८।३।२८, ८।४।१५, ८।४।६६, ८।१।७५, ८।१।४४, ८।४।२८, ८।८।३, ७।१।०५, ७।१।८१, ७।२।१४, ७।१।४८, ७।१।०, ७।६८, ७।२।२३, ६।३३० ६।३७६, ६।१२, ५।२।२१, ५।३६३, ५।१।१६, ५।५६ ५।१।८८, ५।२।६१, ५।३।८३, ४।३।१३

दरबारीलाल सत्यभक्त—१।०।४५, ३।४३०, २।३६७,

(मुनि श्री) दर्शन विजय—१।५७६

दलीपसिंह कागजी—कि. ६ टा. १, १।४२६

दशरथ कौशल—८।१२२

दशरथलाल जैन—३।६१

(डा.) दशरथ शर्मा—१।६।७०, १।६।२०, १।८।१७, १।६। २।५२, १।६।२२८, १।५।२२८, १।५।११६, १।१।४२

(प्रो.) देवेन्द्रकुमार एम. ए.—१।६।१११, १।४।२६२, ६।३७५

(पं.) दीपचन्द्र पाण्ड्या—१।६।२६१, १।५।६२, १।२।२०१, ५।६६, ५।२।५७, ५।७७, ४।५२०, ४।४७८, २।६११

(पं.) दीपचन्द्र वर्णी—१।३।१८

दुलारेलाल भागव ६।१८६

(प्रो. दुलीचन्द जैन एम. ए. एस. सी.—१।६।१६४

देवकीनन्दन सिद्धांत शास्त्री १।५६१, १।२०५

(डा.) देवेन्द्र कुमार जैन शास्त्री—२।१।२१३, २।०।३३, १।६।८४, १।८।१८४, १।७।२६३, १।७।१६६

देवेन्द्र जैन—३।७७

(कवि) दीलतराम—२।१।१३६, १।३।२६७

(पं.) दीलतराम ‘मित्र’—२।१।२७८, २।१।२७६, १।२।१२२ ८।१।६२, ८।२।५, ६।२।६२, ६।१।७७, ५।१।६१, ५।३।२० ५।२।६८, ५।३।२३, ५।१।८२, ४।५।१३ ४।८।१, ४।३।३२, ३।६।५७, ३।६।६०, ३।७।१८, ३।३।६२

(स्व. कवि) दानतराय—८।१।३२

घ

(पं.) घन्यकुमार जैन एम. ए.—७।१।३६

घर्मघोष सूरि—१।४।१२४

(पं.) घर्मनन्दाय शास्त्री ६।१।८६

घरणीधर शास्त्री ५।२०६, ४।२।३४, ४।३।०२

(श्री घीरेन्द्र जैन—१।७।५७

न

(मुनि श्री नगराज—२।१।२५, २।१।५६, २।१।६६, २।०।७४ २।०।८७, २।०।२१६, २।०।७५, १।६।२४६, १।७।८२, १।७।१००, १।६।११, १।६।५४, १।६।११३, १।६।१६५, १।६।१४६

नजीर—१।६६

(मुनि श्री) नथमल—२।०।१६२, २।०।४०, १।६।२६२, १।६।१६७, १।८।१६०, १।७।१६०, १।८।४२, १।८।१३२ १।८।८, १।७।२२१, १।७।१६५, १।७।११८, १।७।१२२, १।७।१५७, १।६।१६१

नरेन्द्र प्रसाद जैन बी. ए.—२।३।७७, २।५।५८

(डा.) नरेन्द्र भानावत १।६।१३१, १।७।१७५, १।६।२०३, १।५।१८६

(डा.) बरेन्द्र-विद्यापी—१६३०६

(पं.) नाथूराम डोंगरीय—२१३४८, ७१६०, ७१२८१
२१३४८, २१३६६

(पं.) नाथूराम प्रेमी—१११११२, १११३४, ११११०२,
७७, ७२६, ७६४, ७७६, ५१२६२, ५१३८,
५१३६७, ४५८६, ४४०५, ४४५५, ४८२,
३५२६, ३४४१, ३६६६, ३६६७, ३५६, ३२७०
२१३५१, २१३८१, २१६६६, ११३२६, १५६६,
१८१, ११६१, ११३२६, ११३३३, १४५६, ११११०
१४२५, १११२१, १११४५, ११२०६, १५२६,
१२६२

नाथूराम सिधई—१६८

(बाबू) नानकलाल एडमोकेट २५६६६

(बाबू) नारायणप्रसाद—२४२६

(श्री) निहल १०३०८

(श्री प्रणित मुनि) निर्मल—१६६३

(श्री) नीरज जैन—२११४६, २११२६७, १६४६,
१६१२, १६१५, १८१७७, १८१२२१, १८१८,
१८१२५, १७१७५, १६१५०, १६१२४, १६१४०
१६१७६, १६१००, १६१५१, १५१२२१, १५१२७७
१५१७७, १५१२२१

(श्री) नूतन—१५०४

(मुनि श्री) नेमचन्द्र—१६४६

(पं.) नेमचन्द्र घन्नुसा जैन—२११८३, २११६२, २०१
३५२, २०१६६, २०१११, १६१०५, १६१२१६,
१६१३३४, १६१३०१, १८१६६, १८१४४, १८१२५,
१८१८०, १८१२४, १८१२६५, १८१५३, १७१२२०
१७१२४५

(सिधई) नेमिचन्द्र—४१२२२

नेमिचन्द्र जैन 'जिनस'—१३१०६

नेमिचन्द्र बालचन्द्र गांधी, वकील—६३१४

नेमिचन्द्र प्रति—४११५५

(डा.) नेमिचन्द्र शास्त्री—२११८, १६१४५, १६१०६,
२११६४, १८१४२, १६१३, १५१६६, १५१५१,
६१५६, ६१४६७

(मुनि श्री) न्यायविजय—२१०५

प

पदमचन्द्र जैन—१६१७३

(मुनि) पद्मनन्दि—२११४६, २०१४६, १६१२०३,
१६१२४३, १६१३३६, १८१६६, १८१४४६, १७१६७
१६१६७, १६१४५, १०१६३

पद्मनन्दाचार्य—२११६७, २११४५, १७१४६, १७११,
१६१२४१, १६१४६

पन्नालाल अग्रवाल—१६१४८, ६१३०२, ८१२१७, ८१३३३

पन्नालाल साहित्याचार्य—२११२५४, १६१८८, ६१०६,
६१६८, ५१३३४, ४१२७८, ४१२७९, ४१२२२,
४१७५, ४१३५८, ४१४६६, ४१५०७, ४१२७८,
४१३२६

(पं.) पन्नालाल सोनी—१४१३४३

(पं.) परमानन्द शास्त्री—२११४३, २११२६, २११६१,
२११८५, २११७६, २११६०, २११२५, २११३७,
२११६५, २११६०, २११३७, २०१६८, २०१७७,
२०१३३, २०१८६, २०१२, २०१३०, २०१६३,
२०१४३, २०१३६, २०१३२, १६१२७६, १६१३२६
१६१२६६, १६१००, १६१४५, १६१४४, १६१३३३
१६१२७३, १६१२०१, १६१२८६, १६१३३७, १८१८२
१८१२६६, १८१६०, १८१४५, १८१६५, १८१६२,
१८१२४०, १८१२६, १८१३५, १७१७८, १७१२,
१७१३५, १७१४०, १७१६६, १७१६८, १७१६६,
१७१४४, १७१२८५, १६१२५४, १६१४०, १६१६८,
१६१४५, १६१६४, १६१२४२, १६१८६, १६१६२,
१६१३३८, १५१७६, १५१३३, १५१२३५, १५१२३७
१५१११, १४११०, १४१२२७, १४१८, १४१०६, १४१२३४
१४१७२, १४१६८, १४१४४, १४१४२, १४१४६,
१४१०६, १४१२५६, १४१६६, १०६८. पे. १, १४१४७
१४१२०, १४१६६, ६८. ३, १३१२६६, १३१२५७,
१३१४६, १३१२४४, १३१६०, १३१६३, १३१२४०,
१३१२०५, १३१६८, १३१२५६, १३१६८, १३१३३७
१३१३६६, १३१२०२, १३१३३२, १३१३३३,
१३१३३५, १३१२७६, १३१६०, १३१५५, १३१२१५
१३१४०, १३१२४४, १३१४७, १३१६६, १३१७६,

१३।८४, १३।८१, १३।१३५, १३ कि. ११-१२ टा. २,
१३।२२७, १३।२६४, १३।२६६, १३।२२१, १३।१३२
१३।२६६, १३।२०५, १३।१६८, १३।२०२, १२।३०
१२।२६३, १२।१४०, १२।११६, १२।१३१, १२।३०५
१२।२८, १२।२५४, १२।२५६, १२।३५५, १२।४०,
१२।३१६ १२।१७१, १२।२३८, १२।२७६,
१२।३८५, १२।३६, १२।२३६, १२।३०, १२।८६,
१२।१६३, १२।१८८, १२।२३५, १२।२७६,
१२।३७७, १२।२५६, १२।२३८, १२।२७०, १२।३१६
१२।३०५, ११।२११, ११।४१४, ११।५२,
११।१६३, ११।२३३, ११।२०५, ११।३७०,
११।२७३, ११।३६८, ११।४०२, ११।३५६, ११।
३५६, ११।७४, ११।२२४, ११।३३४, ११।२६५,
११।३१६, ११।२३४, ११।२५१, ११।१६२
११।१६३, ११।३४८, ११।३३३, ११।३३४, ११।
३३६, १०।३१३, १०।६, १०।३८, १०।कि. १ टा.
३, १०।२८६, १०।७५, १०।८०, १०।१०१, १०।१२०
१०।३४८, १०।३७७, १०।१५१, १०।३५१, १०।१६०
१०।३५०, ९।२५, ९।७७, ९।४७४, ९।१६५,
९।३६०, ८।३४५, ८।२७३, ८।१७३, ८।४००,
८।६५, ८।३६८, ८।७१, ८।२००, ८।११७, ८।३८६
८।४६२, ७।८२, ७।५४, ७।१७, ७।१०३, ७।२८,
७।१६६, ७।१५६, ६।२६३, ६।३४३, ६।३७२,
६।३७६, ५।२५३, ५।४०१, ५।१३, ५।३३७, ५।३१,
५।२७, ५।३४४, ५।६५, ५।११०, ५।२६६, ५।४१७
४।४२५, ४।१४१, ४।१७, ४।३०७, ४।४८३,
४।६२३, ४।३६१, ४।३००, ४।३३४, ४।६२८,
४।५२६, ३।२५६, ३।५१४, ३।३१६, ३।२६७,
३।५३७, ३।७५७, ३।कि. ८-६ टा. पे. ३, ३।३७८,
३।६२६, ३।६७८, २।४३७, २।२२१, २।५८४,
२।३७१, २।३१६, २।३४०, २।४७३

(पं.) परमेष्ठीदास—६।१८१

पी. बी. वासवदाता जैन न्यायतीर्थ—१४।१२५

(मुनि श्री) पुण्यविजय—१।१४२

पुरुषोत्तमदास साहित्यरत्न—६।५६, ५।५६, ६।१८७

पुष्पदन्त—४।४४७

(कु.) पुष्पलता—२।६५१

पुष्पेन्दु—७।१३

पुष्पमित्र जैन—१४।२८७

प्रकाशहितैषी शास्त्री—१६।२००

(डा.) प्रद्युम्नकुमार जैन—२०।१३०, २०।२५५, १८।३१
६।१६६

प्रफुल्ल मोदी—८।३७

(डा.) प्रभाकर शास्त्री एम. ए.—१८।८७, १७।१३५

प्रभुलाल प्रेमी—१६।३१, ८।१६३, ७।२१६, ६।१७,
६।२६८, ६।१११, ६।१६०

प्रेमचन्द्र जैन—२१।२८३, १६।१६८, १८।४८

प्रेमलता—६।२२०

(डा.) प्रेमसागर—२०।२३६, १६।२३, १६।३८३,
१६।३४७, १८।१६४, १८।२३६, १७।२०२,
१७।१६१, १६।२, १६।१०४, १६।४४,
१६।१६०, १६।२४०, १५।५७, १५।१२३,
१५।२५६, १५।६६, १५।१४४, १५।१६२, १५।२३६
१५।२८८

(डा.) प्रेमसागर पंचरत्न—३।६४४, ३।६५६, ३।३८३

(प्रो.) प्रेमसुमन जैन—२१।२११

फ

फज्जलुलरहमान जमाली—६।२२

फतेहचन्द्र वेलानी—७।१६३

फतेहचन्द्र सेठी २१।२८२

(पं.) फूलचन्द्र सि. शास्त्री—१०।४०, १०।२२८, ९।२५२
९।३०३, ६।२८६, ६।३०६, ६।३२८, ६।५१, ४।५८३

ब

बनारसीदास—१६।१, १५।४४, १५।२८, ९।१६७, ६।१६,
६।७१, २।३१०, २।३१०, २।३१०, १।३६०

(भाचार्य) बलदेव—८।४५३

(पं.) बलभद्र जैन—२१।२६८, १४।२०, ७।१५,

वसन्तकुमार जैन—१६।२५८

बालचन्द्र काव्यतीर्थ—७।१४४, ६।२६२, ६।३३६

बालचन्द्र जैन एम. ए.—१६।२०६, १६।२४४, १७।१३१,

१६।२३६, १५।८५, १०।११४, १०।१२६, १०।३१६

१०।३६१, १०।१५०, १०।३६१, ९।३६१, ९।३४५,

८।४०८

बालचन्द कोछल—११२३३

(पं.) बालचन्द्र सि. शास्त्री—२१११६, २११७५, २११५५, २१२२७, २११६०, २०१२८८, २०११७, २०१२५१, १६१७७६, १६१२२०, १६१२७५, १६१३२०, १६११०, १६११५५

बालमुकुन्द पाटोदी—३१६५, ३१७०७

बी. एल. जैन—कि. १० टा. ३, ३१५६६

बी. एल. सराफ—३१३२५, २१३०३, २१४८०

बुडिलाल भावक—६११६१

(डा.) बूलचन्द्र जैन—१७१२३६

(पं.) बेचरदास जी दोशी—१५१२८६, १५३

बैजनाथ बाजोरिया—२१४२७

(पं.) बंशीधर शास्त्री—१६१२

(श्र) ब्रह्मजीवधर—१५११७७

भ

(स्व.) भगवत जैन—८१४३६, ७१३३१, ७१५६, ७१८०, ६१४६, ६१३५४, ६१३२५, ६१२६८, ६१२४६, ६११६०, ६१४६, ६१२७२, ५११२६, ५१३५६, ५१३३, ५१२४८, ५१३६१, ५१२०२, ५१२०३, ५१२८८, ५१३७, ५१३८, ५१२६२, ५१३३३, ५१५२८, ५१३३८, ५१६०६, ५१२६५, ५१३४१, ५१५७, ५१६०५, ५१३६०, ५१३७८, ५१५०६, ५१३६४, ५१५४७, ५१३४२, ५१४४६, ५१४, ५१५१, ५१११०, ५१७४, ५१२११, ५११८६, ५१२७७, ५१३२१, ५१४६२, ५१५१८, ५१६६४, ५१२१७, ५१४७, ३१७२, ३१२७७, ३१४८, २१६५८, २१५११, २१४०, २१५०५, २१३६२, २१५५६, २१३३७, २१६५, २१५६१, २१२७६, २१४४२, २१६६२, २, कि. ७ टा. ३, २११७३, २१३४३, २१२६१, २१४५२, २१५६६, ११२७६, २१२४१, २१६३८, २, कि. ३ टा. २

(श्री) भगवन्त गणपति गोयलीय—११६५, ११६६, ११३४१, ११३११, ११२४, ११६६, १११६४

भगवानदास विज एम. म.—१७११६४

(महात्मा) भगवानदीन—६११४३, ११२५

भगनूत—२१३२, २१२६

भंबानीदत्त शर्मा—३१२८५, २१६२०

(श्री) भरतसिंह उपाध्याय—१४१४०

(पं.) भागचन्द्र जैन—१४१२०, १२१४१, ७११५२

(डा.) भागचन्द्र जैन एम. ए. पी-एच. डी.—२०१२८२, १६१२६२, १६१६०

(प्रो.) भागचन्द्र जैन 'भागेल्लु'—२११२७५, २११६७, २०१६२, १६११६, १६१२३२

(बाबा) भागीरथ जी वर्णी—२१३३६, ११६७०

(श्री) भीमजी हरजीवन मुशील—११४८६

(पं. के.) भुजबली शास्त्री—१३११७८, १२१७६, १२१३५३

(स्व.) भूधरदास—१७११६४, ६११२५, ६१२४५, ६१२१३, ६११८६

(डा.) भैयालाल जैन—६१२६३, ४१११२, ४११७८

(बाबू) भोलानाथ मुस्तार—१११२१, ११४०६

भंवरलाल नाहटा—१६१२७, १८१२३८, १८१८५, १८१७६, १७११७८, ६१२१, ८१४४, ८१४४४

म

मदनमोहन मालवीय—११४२

महाचन्द्र—१४१३१५

महावीरप्रसाद—६१३०१, ६११६, ५१५४, २१२२०

(श्री) महेन्द्र जी—६११७६

(मुनि श्री) महेन्द्रकुमार (प्रथम)—१७११७

(मुनिश्री) महेन्द्रकुमार (द्वितीय)—१८१२४७

(प्रो.) महेन्द्रकुमार—न्यायाचार्य एम. ए.—१४११०७, १४१८५, १४१२६८, ६१३३५, ५१२८१, ५११६३, ४१२००, ३१३३, ३१६६०, २१३१, २१२१५

महेन्द्र भानावत एम. ए.—१७१०, १७१२६४, १६१८३, १५१२६४

(बाबू) माईदयाल जैन बी. ए.—१०१३७२, १०१२६३, ६१२०४, ६१३३३, ६१२००, ५११६८, ४१२६३, ३१८०, २१५६६, २१६६६, २१५६८, २१५८७, ११५६७, ११२४३, ११८७

(श्री) माणिकचन्द पान्ढ्या—६१२५३,

(बाबू) माणिकचन्द बी. ए.—७१३, ६१३०, ६१३३८, ६११८२

(पं०) माणिकचन्द्र जी न्यायाचार्य—२०१४२, ६१२३३, ६१३१७, ६१३६५, ६११६६,

माधव शुक्ल—८१४७

- (पं.) माधवाचार्य—११६६
मामराज हर्षित—६८६, २१६०
माहिर भकबरावादी—कि. ३, टा. पे. ४
मनुजानार्थी साहित्यरत्न—१३१६
(पं.) मिलापचन्द्र कटारिया—२११२३, २११२३६, २०१
८४, १६११७, १८१६७, १५१३४
(मुनि श्री) मानमल जी—१६१७१, १६१८५
मुनीन्द्रकुमार जैन—१४१७
मुन्नालाल विशारद—११५३, ११५४
(पं.) मुन्नालाल ‘मणि’—११५६५, ११५५४
(पं.) मूलचन्द्र वत्सल—६१२५७, ६१५४, ३३३६,
११५७५
मैथिलीशरण गुप्त—३१२०६
मोतीलाल शाह—२११२३
मोहनदास करमचन्द गांधी—८१४६, ६१७५, ३६०७,
२१५०३, २१४५३,
मोहनलाल शर्मा—६१७६
मोहिनी सिधवी—२११८५
(साध्वी) मन्जुला—१६१२४०, १८१६२, १८१२८,
१७१७४
य
यशपाल जैन—१६१२६, १८१२३७, ४१२२६, २११३
(श्री) यात्री—४३७२, ४३८६
र
रघुवीरशरण एम. ए.—३१६६५, ३१४०८, २, कि. ७ टा. ३
(पं.) रतनचन्द्र जैन—२१६५७
(बाबू) रतनचन्द्र मुख्तार—१६१७३, ८१६६
रतन जैन ‘पहाड़ी’—८३२६
(पं.) रतमलाल कटारिया—१६१२१, १५१५०, १५१३१
१५१२१, ७३५
रतनलाल संघवी—४१२०५, ४१२५७, ३१५६, ३१४११,
२१४४४, २३३५, २१४६३
रत्नेश ‘विशारद’—३१४५०
रमेशचन्द्र शर्मा—१६१४२
(पं.) रविचन्द्र जैन—६१६३, ४८५
(डा.) रवीन्द्रकुमार जैन तिरुपति—१८१०७, १५१६३
(पं.) रवीन्द्रनाथ—६१६०, ६११२२, २११६४
रवीन्द्रनाथ मैत्र—१३६८
(डा.) राजकुमार जैन—१६१७४, १८१२३०, १८१२७६,
१४१४२
(बा.) राजकुमार जैन—८३२३, ८३३५, ४३७१
(श्रीमद्) राजचन्द्र २०१५०, ६१४०, ३१७६, ३१४०७,
३१४६, ३१२३६, ३११८, ३३२२, ३१८१, ३१७६,
३१८६, ३१२०, ३ कि. ४ टा. ३, ३१७७, ३१६३७,
३१५२६
राजमल मङ्गैया—११२७७
(साध्वी श्री) राजमती—१६१२७०
(डा.) राजाराम जैन—१६११०१, १७१२५०, १५११६
राजकृष्ण जैन—१२३६६, १२१७४, १२१३६
राजेन्द्रकुमार—६१११०, ६११८५, ६११८, ६११६३,
६११००, ४, कि. ६ टा. ३
राजेन्द्र कुमार जैन ‘कुमरेश’—२१४६२
(डा.) राधाकृष्णन्—१६३६
राधेदयाम बरनवाल—१४६७
(मा.) रामकुमार एम. ए.—२११२६६
रामकुमार स्नातक—३१५७२
रामप्रसाद शास्त्री—४८६, ४३६४, ४४३७, ४४६७,
४६१
रामवल्लभ सोमाणी—२१११४, १६३०३, २१११४,
२२३६
रामसिंह तोमर एम. ए.—६३६४
(एम) गोविन्द पै—६१२१२
रिषभदास रांका—२११७४
(मुनि श्री) रूपचन्द—१८१११, १८१८८
ल
लक्ष्मीचन्द्र जैन—२०१६१, १४३२६
लक्ष्मीनारायण जैन—८१२४
लज्जावती जैन—२३६६
ललिताकुमारी—४३८७, ४१२०१, ४६८, ४१६५,
४१२७३, ३१५६६, ३६८५
(पं.) लालबहादुर शास्त्री—६१६३
लोकनाथ शास्त्री—११०४, ११२२

लोकनायक अण्णे एम. एल. ए.—२।४२३

(श्री) लोकपाल—१०।५५, १०।८७, १०।२६, ६।३६८,
६।३३३

लोकमणी जैन—८।१०२

व

वसन्तकुमार जैन—१७।७२, ३।३६०

(चौ.) वसन्तलाल—१।५६६

वसन्तीलाल न्यायतीर्थ—वर्ष ३, कि. ६ टा. १

वादीभसिंह—२०।१

(डा.) वासुदेव शरण अग्रवाल—१६।२५२, १३।२५०,
१०।२२, १०।८, ६।६१, ६।१७८, ६।३६३

विजय सिंह नाहर—३।६०५

(डा.) विद्याधर जोहूरापुरकर २१।३३, २१।३३, २१।
१७०, २१।६५, २०।२८, २०।६०, १६।३३१,
१६।२५६, १६।२२६, १५।२५३, १५।८७, १४।२६६
१४।२०१

(कु.) विद्या देवी—२।४८२

(मुनि) विद्यानन्द—२०।१२७, १६।३१५, १६।३५६,
१८।४३

विद्यानन्द छछरोली—६।१८८

(मुनि श्री) विद्याविजय १।५१०

(आचार्य) विनोबा भावे—१७।३२

(श्रीमती) विमला जैन—२१।२५६

विशनचन्द्र जैन—१६।१६७

विश्वम्भर सहाय प्रेमी—१०।३०३

वी. एन. शर्मा—१६।१२६

(कुमार) वीरेन्द्रप्रसाद—१०।६६

(आचार्य) बृहस्पति—६।१८०

(पं.) वंशीधर व्याकरणाचार्य—१३।२४१, १२।१३५,
१२।११५, ८।१८०, ६।६, ६।८३, ६।१२८, ६।२३७
६।२६६, ३।५१, २।२७, २।६००, २।६७१

(श्री) वंशीधर शास्त्री एम. ए.—१५।४७

(डा.) वी. गोरे डी. एस. सी. १६।१६४

ख

(श्री) खरबकुमार मिश्र—६।२४८

(पं.) शांतिराज शास्त्री—१।४४

शांतिस्वरूप 'कुसुम'—३।३८६

(कु.) शारदा—६।२२२

(प.) शाली—१४।१८७

शिवनारायण सक्सेना एम. ए.—१७।६६

शिवपूजन सहाय—६।१८०

शिवव्रतलाल वर्मन—६।१३२

(ब्र.) शीतलप्रसाद—४।६३, २।२५६

(राजवंश) शीतलप्रसाद—१।५१, १।७६

शुभचन्द्र योगी—१४।७५

शोभाचन्द्र भारिल्ल—२।४८, १।६१३

श्यामलकिशोर भा—६।४८१

(डा.) श्यामशंकर दीक्षित एम. ए.—१७।१०८

(श्री डा.) श्रीचन्द्र जैन सगल २१।२४३

श्रेयांसकुमार जैन शास्त्री ८।१३५, ४।६६

स

सत्यनारायण स्वामी एम. ए.—२०।१४०

(डा.) सत्यरंजन वनर्जी—१६।१७५

(श्री) सत्याश्रय भारती—१५।१६७, १५।२१६, १५।११५
१५।७१

संतराम बी. ए.—३।५३३, ३।३३५

समन्तभद्राचार्य—२०।२४१, २०।६७, १८।४६, १८।१,
१७।१४५, १७।१६३, १७।२४१, १६।१

(पं.) सरनाराम जैन बड़ौत—१७।१८२, १७।१३८

(पं.) सरमनलाल जैन दिवाकर—२१।२६२

सलेकचन्द्र जैन एम. ए.—१८।११६

(श्री) साधु टी. एल. वास्वानी—१।३३७

(श्री) सिद्धसेनाचार्य—१०।२००

(श्री क्षु.) सिद्धसागर—१७।२४८, १४।२३७, १३।१६५,
१३।८६, १३।१६७, १३।१२८, १३।१७६, १३।१८६
१३।११७

सुखलाल बेचरदास—१।२००

(पं.) सुखलाल संघवी—६।३६६, ६।३१०, ४।५४१,

१।२६, १।१४१, १।२१६, १।२६३, १।३८५, १।५७६

१।६३६

सुमेरचन्द्र दिवाकर—१४१३३१, १४१६३, ७११६०,
६१६२, ६११०४, ६१३०२, ५१२४१, ५१४०५, ५१२६४
४११७०, ३१४८
सुमंगला प्रसाद शास्त्री—११३७८
सुरेन्द्र—४१५३
(प.) सूरजचन्द्र—७११५८, २१३६८
(बाबू) सूरजभान वकील—३१२२१, ३१३८५, ३१३६६,
३११०५, ३१५५६, २१३११, २१३३, २११८७, २१२६६
२११३७, २१३५६, २१४०८, २१४६३, २१६२३,
२१६४१, २१५२०, २१५७५
(साध्वी) सधमित्रा—२१११४, १८११६६, १७१११४
(श्री) स्वतंत्र—६१२२०
ह
हजारीमल बाँठिया—८१३६
हरदयाल एम. ए.—३१३६०
हरिप्रसाद शर्मा ‘अविकसित’—६१६३, ५१३०, २११४५
हरिशंकर शर्मा—३१५१०
हरिसत्य भट्टाचार्य—३१४६७
हरीन्द्र भूषण—४१६७
(डा.) हरीश—१५११४३, १५११८०

(मुनि श्री हिमान्शु विजय—११६०५
(श्री) हीरक—६१२४५
हीराचन्द बोहरा बी. ए.—१३११४२
(डा.) हीरालाल जैन एम. ए.—१३११७५, १३१२५६,
११११०५, १०१३४६, १०१३६०, ६१६, ८१६३,
८१२६, ८१८६, ८१२५, ७११५०, ७१३०, ७१५२,
७१६२, ६११८०, ६१६५, १५११८३, ३१६३५,
३१४०६
हीरालाल पाडे—४१४४८
(पं.) हीरालाल शास्त्री—१६१२५६, १६११६२, १४१२२१,
१४१५६, १४१२५२, १४१७७, १४१३१७, १४१२६६,
१४१११२, १४१२३५, १४११६८, १४११४५, १४१
१५६, १४११६३, १४१२३८, १४१२५३, १४१२०८,
१४१२७४, १४१२२५, १३१७८, १३१४०, १३१४३
१३११०, १३१६७, १३१२०४, १३११८, १३१५१,
१२१३६२, १२१३३०, १११३५१, ६१६६, ६१६७,
४१२५२, २१५४८
हेमचन्द्र मोदी—३१२४३, ११५३६
हेमलता जैन—२१२३८
(प्रो.) हेमुल्ट ग्लाजेनाय—८१८०

‘अनेकान्त’ द्वै मासिक : एक दृष्टि में

गोपीलाल ‘अमर’

अनेकान्त का रहस्य—

भारतीय संस्कृति का अमर संदेश देने वाली पत्रिकाओं में ‘अनेकान्त’ का स्थान उल्लेखनीय है। आज जब संस्कृति के क्षेत्र में युगान्तरकारी परिवर्तन हो रहे हैं तब भारतीयता के शाश्वत मूल्यों की सुरक्षा और संपोषण एक चुनौती बन गया है। इस चुनौती का मुकाबला ‘अनेकान्त’ जैसी पत्रिकाएं बखूबी करती आयी हैं। खास बात ये है कि इस पत्रिका ने हमारी सांस्कृतिक धरोहर की सुरक्षा और संपोषण के साथ उसका परिष्कार भी किया है; परिस्थितियों के बदौलत आधुनिक अवैज्ञानिक और अभ्याव-

हारिक तत्वों को हमारी संस्कृति से रखसत करने में ‘अनेकान्त’ ने सख्ती से काम लिया है; तर्कसंगत और प्रत्यक्षसिद्ध बातों को, किसी भी परम्परा के विरुद्ध पढ़ने पर भी साहस के साथ मजूर किया है। फलस्वरूप, ‘अनेकान्त’ को जितनी प्रसिद्धि संस्कृति के संरक्षक और व्याख्याकार के रूप में मिली उससे भी अधिक प्रसिद्धि संशोधक और समालोचना के रूप में मिली। और यही ‘अनेकान्त’ की अनेकान्तता का रहस्य है।

‘अनेकान्त’ की आपबीती—

मैगजिन साइज की ४४ पृष्ठीय मासिकी और ४८

पुष्ठीय द्वैमासिकी 'अनेकान्त' का ४० वर्ष का जीवन, दरभंगसल जैन समाज के पुनर्निर्माण की एक घटनापूर्ण कहानी है जिसका लिखा जाना आज भी बहुत बाकी है। पुनर्निर्माण के दौरान प्रतिक्रियावादी और उदासीनतावादी तत्वों ने जिन चीजों पर कुठाराघात किया उनमें एक 'अनेकान्त' भी है। यही कारण है कि ४० वर्षों के जीवन में यह पत्रिका २१ वर्ष चार माह ही सक्रिय रह सकी। २४५६ बी० सं० (१९२६ ई०) में समन्तभद्राश्रम (वीर-सेवा मन्दिर), दिल्ली से स्व. जुगलकिशोर मुस्तार के नेतृत्व में प्रथम बार प्रकाशित 'अनेकान्त' एक वर्ष तक प्रतिमाह भावा और आर्थिक संकट में उलझकर, सरसावा (उ० प्र०) में स्थानान्तर के बावजूद आठ वर्ष तक निष्क्रिय पड़ा रहा। स्व० बाबू छोटे लालजी स्व० लाला तनसुखराय जैन आदि के आर्थिक संपोषण से १-११-१९३८ को फिर चल पड़े, 'अनेकान्त' को सात वर्ष बाद फिर लड़खड़ाता देख भारतीय ज्ञानपीठ, काशी ने एक वर्ष संचालित किया। पाँच माह में कुछ शक्ति संचय करके वह जुलाई ४९ से चला ही था कि पुनः दिल्ली लाये जाने के बावजूद उसे आर्थिक संकट ने लगभग दो वर्ष को रोक दिया। और, इसी तरह रुकता-चलता 'अनेकान्त' जुलाई, ५७ तक, जीवन के २८ वर्ष में सिर्फ १४ वर्ष सक्रिय रहकर लगभग पाँच वर्ष को निष्क्रिय हो गया। अप्रैल ६२ से, समन्तभद्राश्रम (वीरसेवा मन्दिर), दिल्ली से ही यह पत्रिका द्वैमासिकी के रूप में पुनः प्रकाशित होती आ रही है।

कुछ आँकड़े, कुछ नतीजे—

प्रस्तुत अंक 'अनेकान्त' का विशेष रूप से संग्रहणीय अंक होगा। कुछ दिन पहले, 'अनेकान्त' के प्राणाधार पं० परमानन्द शास्त्री को मैंने सुझाव दिया था कि वे पत्रिका में अब तक प्रकाशित रचनाओं की और उनके लेखकों की वर्गीकृत सूचियाँ प्रकाशित करें, जिसे अपनी समिति से मंजूर कराकर उन्होंने उसका उत्तरदायित्व मुझे ही सौंप दिया। दोनों सूचियों के आधार पर कुछ आँकड़े और नतीजे प्रस्तुत हैं।

(१) लगभग ४० वर्ष के जीवन में 'अनेकान्त' २१ वर्ष चार माह सक्रिय रहा।

(२) उसके २१२ अंक (किरणें) प्रकाशित हुए, १६८ मासिक और ४४ द्वैमासिक।

(३) इनमें महात्मा गांधी, श्रीमद् रायचन्द्र, स्वनामधन्य गणेशप्रसाद वर्णी, सर्वश्री काका कालेलकर, जैनेन्द्रजी आदि २७ लेखकों ने २१५ रचनाएँ प्रस्तुत कीं।

(४) विषयक्रम से रचनाओं की संख्या है :

(१) सिद्धान्त (धर्म, दर्शन, न्याय, व्याकरण): ३६२

(२) साहित्य : ५०३

(३) पुरातत्व (इतिहास, संस्कृति, स्थापत्य, कला) : ४६१,

(४) समीक्षा : ७६,

(५) कहानी : ५०,

(६) कविता : १२७,

(७) व्यक्तिगत (परिचय, अभिनन्दन, अर्द्धांजलि आदि) : १६१,

(८) सामयिक : ३०४,

(९) विविध : १३५,

(१०) संकलन : १६३,

(५) वर्षक्रम से रचनाओं की संख्या है : १ : १५१; २ : १७६; ३ : १५३; ४ : १६५; ५ : १०३; ६ : १७१; ७ : ६६; ८ : १०६; ९ : १०६; १० : ६५; ११ : १२६; १२ : ६४; १३ : १०८; १४ : १०६; १५ : ७३; १६ : ५७; १७ : ६५; १८ : ७३; १९ : ११०; २० : ५४; २१ : ८५; २२ : (दो अंक) : २८ (६) कुछ लेखकों की रचना संख्या उल्लेखनीय है :

पं० परमानन्द शास्त्री : २२५, आ० जुगलकिशोर मुस्तार : १०४, श्री भगवत् स्वरूप भगवत् : ७७, श्री भगरचन्द्र नाहटा : ६७, डॉ० दरबारीलाल कोठिया : ६१, श्री अयोध्या प्रसाद गोयलीय : ३९, डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन : ३४, पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री : ३३, पं० नाथूराम प्रेमी : ३२।

(७) कुल २२६० में से सिद्धांत, साहित्य और पुरातत्व पर १३०० रचनाएँ हैं। शेष ९६० में सभी रचनाएँ लघुकाम हैं। इससे सिद्ध होना है कि 'अनेकान्त' में दो तिहाई से अधिक सामग्री सिद्धान्त, साहित्य और पुरातत्व पर प्रकाशित होती है।

(८) एक निष्कर्ष यह भी है कि ‘अनेकान्त’ के जीवन में परमानन्द शास्त्री का योगदान अत्यन्त व्यापक और अनियादी है। २२५ खोजपूर्ण तथा बृहदाकार लेखों के साधारण उपहारकर्ता श्री शास्त्री कभी व्यवस्थापक, कभी प्रकाशक और कभी सम्पादक के रूप में ‘अनेकान्त’ को आगे बढ़ाते हैं। उन्हें ‘अनेकान्त’ का ‘दूसरा मुस्तार’ कहना उपयुक्त होगा।

(९) इधर के कुछ अंक देखने से पता लगता है कि ‘अनेकान्त’ की हालत पहले की अपेक्षा आज अधिक

नाजुक है। पहले उसे पैसे का ही टोटा रहता था, अब रचनाओं का भी टोटा रहने लगा है। इसके कई कारण हैं जिनपर रोशनी डालना यहां शायद बेमौक़ होगा।

भाषा है, इस लेख तथा इसी अंक में प्रकाशित दोनों सूचियों से विद्वज्जगत् लाभान्वित होगा और ‘अनेकान्त’ का महत्व स्पष्टतर होगा। विद्वानों को अनेकान्त के लिए अपनी बहुमूल्य रचनाएं भेजनी चाहिए। और समाज को उसके अधिक से अधिक सदस्य बनकर अनेकान्त की प्रगति में सहयोग देना आवश्यक है। ★

आत्मा का देह-प्रमाणत्व

डा० प्रद्युम्नकुमार जैन

जैन दर्शन भारतीय दर्शन के इतिहास में अपनी दार्शनिक मान्यताओं की विलक्षणता के लिए विख्यात है। जैन दर्शन का प्रत्येक मुद्दा अनेकानेक ऐतिहासिक एवं तार्किक-गुत्थियों का समुच्चय है, जिसे तनिक भी जल्दबाजी में समझने की कोशिश अनेक गलतफहमियाँ पैदा करने का कारण हो सकती है। आत्मा एक ऐसा ही मुद्दा है जिसके सम्बन्ध में जैनदर्शन का वैलक्षण्य सर्वविदित है। इस वैलक्षण्य पर जब जल्दबाजी में एकांगी दूरष्टि-कोण से विचारने का प्रयास किया जाता है, तभी तत्सम्बन्धी भ्रांतियों का जन्म होता है। जैनों की आत्म-सम्बन्धी संबोधना वस्तुतः ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में तार्किक समीचीनता की उद्भावना है। अनेकान्तवादी जैन दूरष्टि तत्कालीन समी दूरष्टियों की एक ऊहात्मक समष्टि है। आत्मा की संबोधना उसी ऊहात्मक समष्टि का एक प्रमुख घटक है, जो अपनी समष्टि की ही प्रकृत्यानुरूप स्वयं भी सांबन्धोमिक एवं बहुमुखी है। अतः जैन दर्शन की आत्म-संबन्धी व्याख्या ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में ही समझी जा सकती है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में ही उसकी ऊहा की बहुमुखी प्रकृति आंकी भी जा सकती है।

प्रस्तुत निबन्ध में स्थानाभाव के कारण आत्म-तत्त्व

की विशद व्याख्या तो करना सम्भव नहीं है, किन्तु तत्सम्बन्ध में जिस बिन्दु पर बाल चित्तकों को सर्वाधिक विसंगति का आभास होता है उसी का विशदीकरण यहां अभिप्रेत है। आत्मा के स्वरूप को सूत्रबद्ध करते हुए जैन दार्शनिकों ने उसे निम्न प्रकार प्रकट किया है :—

(१) जीवो उपयोगमग्नो अमुक्ति कत्ता सवेह परिमाणो ।
भोत्ता ससारत्थो सिद्धो सो विस्ससोद्धगई ॥^१

अर्थात्—(आत्मा अथवा) जीव उपयोगमयी, अमूर्त, (कर्मों का) कर्ता, देहप्रमाण रहने वाला । (कर्मफल का) भोक्ता तथा सिद्ध है तथा स्वभाव से ऊर्ध्वगति वाला है ।

(२) अणुगुरु देहप्रमाणो उपसहारप्यसप्पदो चेदा ।
असमुहदो ववहारा णिच्चयणयदो असंस देसो वा ॥^२

अर्थात् व्यवहारनय से चिदात्मा संकोच विस्तार गुण के कारण, समुद्रघात के सिवाय अन्य सब अवस्थाओं में प्राप्त हुए छोटे या बड़े शरीर के प्रमाण ही रहता है। और निश्चयनय से (लोक के बराबर) असंख्य प्रदेशी है।

१. द्रव्य संग्रह, २

२. वही, १०

(३) विज्जदि केवलभाणं केवलसोख्यं च केवलं विरियं ।
केवल दिट्ठि अमुत्तं अत्थितं सप्पदेशत्तं ॥^३

अर्थात्—(निर्वाणवस्था में) आत्मा केवल ज्ञान, केवल सुख, केवल वीर्य, केवल दर्शन में विद्यमान होता है । तथा वह अमूर्त, अस्तित्ववान एवं संप्रदेशी होता है ।

उपर्युक्त वर्णित आत्मा सम्बन्धी अनेक धर्मों में सब से अधिक विवादास्पद एवं विलक्षण धर्म आत्मा का संप्रदेशी अथवा देह-प्रमाण होना है । सामान्यतः यह सभी मानते हैं । कि आत्मा भौतिक पदार्थों से भिन्न अमूर्त और चैतन्य स्वरूप है, किन्तु भौतिक शरीर के तुल्य आकार वान कैसे हो सकती है, जनसामान्य को समझाने में कठिनाई होती है । परिणाम स्वरूप कोई-कोई जन जैन सम्मत आत्मा को चार्वाक सम्मत भौतिक पदार्थ के समान ही मान लेते हैं । यद्यपि यह जैनों का आत्मा सम्बन्धी आकारवाद कोई उन्हीं की मनः प्रसूत कल्पना नहीं है, बल्कि महावीर कालीन अन्य मतों में भी उसकी विभावना है । कौषीतकी उपनिषद् में कहा है कि जैसे तलवार अपनी म्यान में और अग्नि अपने कुंड में व्याप्त है, उसी प्रकार आत्मा अपने शरीर में नख से लेकर शिखा तक व्याप्त है^४ । तैत्तिरीय उपनिषद् में अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय, सभी आत्माओं को शरीर में प्रमाण बताया गया है ।^५ 'बृहदारण्यक' में आत्मा जो या चावल के दाने के परिमाण की है ।^६ 'कठोपनिषद्' में आत्मा को अंगुष्ठ मात्र घोषित किया गया है ।^७ 'छांदोग्य' में उसे बालिस्त प्रमाण माना गया है ।^८ फिर जब इन सभी विभावनाओं में ऋषियों को कुछ असंगति दूरष्टि-गोचर हुई तो फिर विभिन्न उपनिषदों में आत्मा को अणु से भी अणु और महान् से भी महान् मानकर संतोष किया गया ।^९ बौद्धों ने भी पुद्गल को देह-प्रमाण स्वीकार

किया है । चार्वाक तो स्पष्ट ही चैतन्य को देह-प्रमाण मानते हैं । इन सारे उद्धरणों के प्रकाश में यह समझना तो अब आसान है कि जैनों द्वारा मान्य आत्मा का आकारवाद कोई उनकी ही विभावना नहीं है । जैनों ने सिर्फ तत्कालीन प्रचलित मान्यताओं को एक तार्किक संहति में निविष्ट करने का प्रयत्न किया है ।

आत्मा के आकार को स्वीकारने के पीछे से पहली तार्किक पृष्ठ-भूमि द्रव्य की परिभाषा है । द्रव्य के लक्षण में सत् का नामोल्लेख किया गया ।^{१०} इस परिभाषा से यह फलित हुआ, कि 'जो द्रव्य है वह सत् है ।' फिर सत् की तार्किक और व्यावहारिक स्थिति क्या है ? यह भी स्वतः फलित होता है कि सत् वह है जो ज्ञान का साक्षात् विषय हो सके । यथार्थ ज्ञान का विषय तभी हो सकता है जब कि वह देश और काल में अवस्थित हो, क्योंकि बिना देश और काल में अवस्थित हुए कोई विषय चिंतनीय नहीं हो सकता । देश-काल में अवस्थित का तात्पर्य है कि विषय का कोई न कोई आकार होना । साकारता दार्शनिक याथार्थ्य की अनिवार्य अनुमिति है ।

अब समस्या यह है, कि जब द्रव्य के लिए सत्, सत् के लिए देश-काल सापेक्षता और देश-काल सापेक्षता के लिए साकारता अनिवार्य है, तो आत्मा के सम्बन्ध में दो ही विकल्प संभव हैं । या तो आत्मा को स्वतन्त्र द्रव्य माना जाये या न माना जाये । यदि माना जाता है तो उसकी अनिवार्य अनुमिति अथवा उसका साकार होना मानना आवश्यक है । जब उसे साकार माना जाता है तो उसे आकाश की अपेक्षा कितना प्रदेशो माना जाए । यह प्रश्न सहज ही उठता है, जिसे उत्तरित करने के लिए कभी आत्मा को शरीर प्रमाण, कभी अंगुष्ठमात्र, कभी बालिस्त प्रमाण और कभी अणु प्रमाण माना गया । जैनों का कहना है कि जब आत्मा का आकार मानना आवश्यक ही है, तो उसे शरीराकार तुल्य एक क्षेत्रावगाही मानना न्याय संगत है, क्योंकि यदि हमने आत्मा को शरीराकार के प्रदेशों से अधिक मान्य किया तो उसके उन अतिरिक्त प्रदेशों में उनका शारीरिक आधार क्या माना जाएगा ?

१०. तत्त्वार्थ सूत्र, ५-२६

३. नियमसार, १-१

४. कौषीतकी०, ४-२०

५. तैत्तिरीय०, १-३ ब्रह्मणन्दन बल्ली ५ अनु० पर्यन्त ।

६. बृहदा०, ५-६-१

७. कठो०, २-१-१२

८. देखिये दलसुख मालवणिया कत आत्म मीमांसा पृ. ४५

९. कठो० १-२-२०, छान्दो० ३-१४-३, इवेता,

३-२०, मैत्री० ६-३८

यदि कहा जाए, कि इन अतिरिक्त प्रदेशों में उसे शारीरिक आधार की आवश्यकता ही नहीं, तो प्रश्न है कि उसे शरीर के आधार की कुछ प्रदेशों में ही आवश्यकता क्यों ? जब आत्मा को शरीर की उपाधि के साथ ही संलग्न रखना है तो उससे अधिक प्रदेशों में फैलने की कल्पना करना ही उसके लिए क्यों आवश्यक है ? दूसरे, आत्मा शरीर प्रदेशों से अतिरिक्त प्रदेशों में फैले होने का कोई नैयामिक आधार भी नहीं है। यदि उसे शरीर प्रमाण से कम यथा अंगुष्ठ या बालिस्त या अणु प्रमाण माना जाता है, तो प्रश्न उठता है, कि ऐसा निर्णय किस आधार पर किया गया ? क्या किसी सांवेदनिक अनुभूति के आधार पर ? परन्तु संवेदना शारीरिक इंद्रियों की क्रिया है। तो क्या जो विषय इंद्रिय-प्रदेशों से अभिन्न नहीं है, उसकी संवेदना की जा सकती है ? निश्चित ही इंद्रिय-संवेदना के अभाव में वह सम्भव नहीं। यदि यह माना जाए, कि आत्मा अपना परिमाण इंद्रिय-निरपेक्ष होकर स्वतः प्रमाण से निर्णीत करती है, तो फिर इंद्रिय-निरपेक्षता में उसे अंगुष्ठ, बालिस्त आदि इंद्रियों की ही सापेक्षता में प्रकट करना क्या स्वतो-व्याघाती बचन नहीं है ? और फिर उसे शरीर से कम आकार का स्वीकारन में तार्किक उपलब्धि क्या है ? यदि आत्मा शरीर प्रदेशों के साथ एकक्षेत्रावगाही नहीं है, तो वह शारीरिक क्रियाओं का संचालन किस प्रकार करती है ? आत्मा फिर शारीरिक आचरण की उत्तरदायी भी किस प्रकार है ? इसी लिए जैन आत्म-चैतन्य को शरीराकार से निबद्ध मानते हैं। एकक्षेत्रावगाही होकर शरीर और चैतन्य एक नई सृष्टि को जन्म देते हैं जिसे ही आधुनिक पदावली में प्रोटोप्लाज्म और बौद्धों और चार्वाकों की केवल यही विसंगति है कि वे इस निबद्ध चैतन्य को शरीर की ही उपज मान लेते हैं जब कि चैतन्य की तात्त्विक सत्ता शरीर से संबंधा भिन्न है। जिस प्रकार दूध और पानी मिलकर एकक्षेत्रावगाही हो जाते हैं और उनका आकार एक दूसरे के तुल्य हो जाता है, फिर भी दूध और पानी दोनों की तात्त्विक सत्ता संबंधा प्रथक ही रहती है। ठीक वही हाल चैतन्य और शरीर का है। दोनोंके स्वरूपमें भेद केवल इतना है कि चैतन्य अमूर्त होता है और शरीर मूर्त।

यहां अमूर्त का तात्पर्य आकार रहित होना नहीं है बल्कि पुद्गल की स्थूलरूप की शून्यता है। तात्पर्य यह कि शरीर स्थूलाकार होता है और आत्मा शून्याकार। आकार दोनों का ही विशेष्य है जो समान प्रदेशी होकर ही न्याय संगत बनता है।

यह तो स्थिति हुई उन मतों की, जो शरीर और चैतन्य को तत्त्वतः पृथक् मानते हैं। द्वैत वेदान्त आदि शरीर और चैतन्य की तत्त्वतः दो सत्ताएं नहीं मानते। देहात्म उनकी निगाह में उपहित चैतन्य है। खैर, अद्वैत वेदान्त की कुछ भी दार्शनिक स्थिति हो, लेकिन उनकी ऊहा के द्वारा ही व्यवहार दृष्टि में जो शरीर नामांकित किया जाता है और उसके माध्यम से जिस चैतन्य का सकेत होता है वे दोनों वस्तुतः एक ही सत्य के दो पहलू बनते हैं और दोनों पहलू वस्तुतः एक ही आकार में निबद्ध कहे जा सकते हैं। इस प्रकार चाहे प्रकारान्तर से ही सही, चैतन्य को देह—प्रमाण मानना वेदान्त को भी अभिप्रेत है। अब मुक्तावस्था में इस चैतन्य के देह-का क्या होता है, यह आगे चर्चित करेंगे, परन्तु संसारी अवस्था में चैतन्य को देह-प्रमाण के अतिरिक्त किसी रूप में मानना तर्कसंगत नहीं होता।

चार्वाक आदि जो मत आत्मा को स्वतन्त्र द्रव्य नहीं मानते, उनके उक्त मत में चाहे अन्य कठिनाइयाँ भले ही हो, किन्तु चैतन्य का देह-प्रमाण मानना उनके लिए भी सुकर है। क्योंकि चैतन्य को जब शरीर की उपज माना जाता है, तो वह उपज या तो शरीर के किसी एक भाग की होगी या सम्पूर्ण शरीर की ? चैतन्य की उपज हो जाने से ही शरीर के अवयव जीवंत कहे जाते हैं। तो यदि वह उपज शरीर के किसी एक भाग की कही जाएगी, तो निश्चित ही शरीर के अन्य अंग जीवंत नहीं हो सकते जो कि प्रत्यक्ष-विरुद्ध है। यदि चैतन्य की उपज सम्पूर्ण शरीर से मानी जाए और वह सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त हो, तो स्पष्ट ही चैतन्याकार शरीराकार के तुल्य हुआ। यदि उसे सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त नहीं माना जायगा, सम्पूर्ण शरीर उसके अभाव में मृत हो जायगा। यदि यहां पर यह कहा जाए कि सम्पूर्ण अथवा कुछ शरीर से उत्पन्न हो कर चैतन्य शरीर में किसी एक बिंदु पर अपने को

केन्द्रीयभूत कर लेता है और वहीं से सम्पूर्ण शरीर का संचालन करता है, तो फिर प्रश्न उठता है, कि उत्पन्न हो कर चैतन्य क्या अपने मूल शारीरिक अवयव से सर्वथा पृथक् हो जाता है? यदि यह प्रयत्न हो जाता है और अपना स्वतन्त्र अस्तित्व धारण कर लेता है, तो क्या स्वतन्त्र अस्तित्व द्रव्य के अतिरिक्त भी किसी का हो सकता है? निश्चित ही नहीं, गुण, जैसा कि आत्मा की चार्वाक जैसे विचारक मानते हैं अपने द्रव्य से पृथक् अस्तित्व नहीं रख सकता। अतः न्यायतः आत्मा अपने उत्पन्नकर्त्ता अंग से पृथक् हो कर कहीं का अन्यत्र केन्द्र भूत नहीं हो सकता। उसे अपने जनक अंगों के साथ पूर्ण प्रदेशी रूप में व्याप्त रहना आवश्यक है। इस प्रकार चार्वाकों के अपने न्याय के अनुसार ही आत्मा स्वदेह प्रमाण है। देहेतर प्रमाण न्याय सगत नहीं।

सीधी सी बात है, कि जब आत्मा आकार उसके सद्स्वरूप होने की दूरदृष्ट्या मानना आवश्यक है, साथ ही उसके शरीर के साथ पारस्परिकता भी अभिप्रेत है, तो उसके आकार-प्रदेशों और शरीर के आकार-प्रदेशों को एक ही मानने में भिन्नक क्यों? दोनों ही वस्तु-सत्य एक-क्षेत्रावगाही होकर एक आकार का सृजन करते हैं, जिसके आत्मगत स्तर पर अपूर्त या शून्याकार और शरीर गत स्तर पर भूर्त या स्थूलकार की संज्ञा प्रमाणित होती है। व्यवहार दृष्टि में उक्त आत्म-दैहिक आकार एक ही है, जबकि तत्त्व-दृष्टि में वे दो हैं। कर्म-ग्रन्थियों का प्रणयन इन्हीं दोनों आकारों की पारस्परिकता का परिणाम है। आत्म-प्रदेश अनादि काल से शरीर-प्रदेशों से ही अनुस्यूत या परिमाणित होते आये हैं। इसका यह तात्पर्य नहीं, कि आत्म-प्रदेश पौद्गलिक शरीर प्रदेशों से तत्त्वतः पैदा होते आए हैं। पैदा तो तत्त्वतः कोई किसी से पैदा नहीं होता लेकिन प्रदेश की परिभाषा पुद्गलाणु की अपेक्षा से ही की जाती है। यानी एक प्रदेश आकाश का वह घेरा है जोकि एक पुद्गल परमाणु से आच्छादित हो जाता है। इस प्रकार प्रदेश की सम्बोधनों का पुद्गल-सापेक्ष होने के कारण आत्मा के आकार का निर्धारण शरीरकार की अपेक्षा से किया जाता है। इसी अपेक्षा-भेद से आत्मा

को शरीर का रूप कहा जाता है, जबकि अन्य विवक्षा से यदि कोई बनाई जाए, शरीर को आत्माकार रूप भी कहा जा सकता है। इस प्रकार शरीर और आत्मा के आकार एक दूसरे से पैदा नहीं होते, अपितु विवक्षित होते हैं। पैदा तो वे अनादिकालीन पारस्परिकता से स्वयं होते हैं और स्वतः ही अनेकाकार रूप परिणमित होते जाते हैं।

अब प्रश्न आता है निर्वाणवस्था में आत्मा के आकार का। इस प्रश्न का सुलभाव तभी ठीक प्रकार हो सकता है जबकि हम अब तक की कुछ तार्किक प्रस्थापनाओं को कस कर पकड़े रहें, अन्यथा अर्थांतर हो जाने की पूरी सम्भावना है। अतः आइये उन स्थापनाओं को एक बार पुनः स्पष्ट कर लें और स्वीकार कर लें।

स्थापना सं० १—द्रव्य सत् है, सत् द्रव्य है।

२—जो सत् है वह असत् नहीं हो सकता और ऐसा ही विलोम। अथवा सत् तत्त्वतः विनष्ट नहीं होता।

३—सत् देश-काल सापेक्ष है, अतः—

(क) वह साकार है,

(ख) वह चिन्तनीय है, विधेय है।

४—द्रव्य की तात्त्विक सत्ता है, अतः द्रव्य तत्त्व रूप से स्वागत है और पर निरपेक्ष भी।

अब इन स्थापनाओं के दार्शनिक औचित्य की ऊहापोह में तो यहां नहीं जाना है, अपितु यह मान कर चलना है कि जैन दर्शन इनके औचित्य को स्वीकार करके चलता है। इनके दार्शनिक औचित्य की ऊहापोह का एक अलग विषय ही है। इन स्थापनाओं की दृष्ट्या आत्मा की निर्वाणवस्था के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न उठते हैं। उसमें शरीर का अत्यन्त क्षय हो जाता है, फिर आत्मा के आकार की क्या स्थिति रहती है? जैनों के लिए इसका अन्तर कोई अधिक पेचीदा नहीं। पहले ही कहा जा चुका है, कि संसारी अवस्था में दो आकारों की एकाकारिता होती है। आत्मा का शून्याकार एक ओर तो शरीर का स्थूलकार दूसरी ओर। निर्वाण में जब शरीर का स्थूलकार क्षय हुआ, तो आत्म-द्रव्य का शून्याकार शेष रह गया। द्रव्य होने के कारण उसका तो विघटन नहीं माना जा सकता। अतः सिद्ध केवल शून्याकार रूप होता है। अब प्रश्न उठता है

कि उक्त शून्याकार कितने प्रदेश प्रमाण माना जाए ? स्थूलकार तो अब निःशेष हो चुकता है, जिसकी अपेक्षा लेकर अब तक शून्याकार के प्रदेश निर्दिष्ट किए जाते रहे, तो फिर क्या उक्त विवक्षा के अभावमें आत्माकार को अप्रदेशी प्रथवा सम्पूर्ण लोकाकाश प्रदेशी कह दिया जाए ? अप्रदेशी कहने में कठिनाई यह है, कि अभी तक उसकी सप्रदेशता सत् कही गई थी और वह सप्रदेशता सत् के लिए आवश्यक भी मानी गयी थी (स्थापना सं. ३), फिर उक्त सत् की सप्रदेशता सहसा असत् कह देने से क्या स्थापना सं० १ व २ बाद नहीं हो जाता ? और फिर जैसाकि पूर्व में स्पष्ट भी किया, आत्माकार की सप्रदेशता शरीर की उपज नहीं है। वह तो केवल शरीराकार द्वारा विवक्षित मात्र थी। सप्रदेशता तो “सद्द्रव्य लक्षणम्” की अनुमति है। शरीर की तो नहीं। उसी प्रकार जैसे कि अखंड आकाश को अंगुल, बालिस्त आदि की विवक्षा से आंका और कहा जाता है, पैदा तो नहीं किया जाता, उसी प्रकार आत्माकार को शरीरकार से आंका और कहा जाता है। वस्तुतः आत्माकार शरीराकार के अनुसार ढलता नहीं, अपितु अपने भाव-कर्मादय के निमित्त से वह स्वयं आकार परिवर्तन करता हुआ पुद्गल-परमाणुओं को तदनुसार संगठित होने का निमित्त देता है। इस प्रकार उभयाकार एकाकार हो जाते हैं। इससे न्यायतः यह तय होता है कि निर्वाणवस्था में सिद्धात्मा अप्रदेशी नहीं हो जाती।

चूँकि आत्मा का अप्रदेशी होना न्याय-विरुद्ध है, तो इसके अप्रदेशीपन का परिणाम कितना माना जाए ? कुछ के अनुसार उसका शून्याकार विश्व रूप मान लेना उचित है। कुन्दकुन्द आदि अनेक जैनाचार्यों ने भी निश्चय नय से उसे लोकाकाश के प्रदेश-संख्या के तुल्य व्यापक माना है। परन्तु यह विकल्प एकान्त रूप से सब के गले नहीं उतरता। इसका न्याय यह है कि अब तक आत्म-द्रव्य के आकार का अन्तरण उससे सम्बद्ध नाम और आयु कर्म के निमित्त से होता था। चूँकि निर्वाण प्राप्ति के प्रथम क्षण पर उक्त कर्मों का अत्यन्त विनाश हो गया। तो उस क्षण आत्मा का जो आकार-धारण था उससे अन्य आकार में अन्तरण का हेतु क्या कहा जाए ? वस्तुतः

हेतु का तो अत्यन्त अभाव हो गया, फिर बिना हेतु के आकारान्तरण कैसा ? स्थापना सं० दो के आधार पर उसके आकार का अत्यन्त विनाश स्वीकारा नहीं जा सकता। बिना हेतु के आकारान्तरण मानना न्याय युक्त नहीं, अतः फिर यही विकल्प शेष रहता है कि सिद्धावस्था में वही आकार नित्य हो जाता है जो संसारावस्था के अन्तिम क्षण पर विद्यमान था। सिद्धाकार के प्रदेश निर्धारण में इस प्रकार एक और पूर्व शरीर की विवक्षा ली जाती है और दूसरी ओर लोकाकाश की प्रदेश संख्या की विवक्षा सिद्धात्मा को विश्व-व्यापक कहने में यह विवक्षा काम करती है कि चूँकि ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय हो जाने से अखिल वस्तु-सत्य समवेत रूप से आत्म-ज्ञान का विषय हो जाता है और उस प्रकार उसका ज्ञान विश्व-व्यापक हो जाता है। इस विवक्षा से ज्ञान-रूप में आत्माकार विश्व रूप से मान्य होता है, जबकि आकाश प्रदेशों की गणना की अपेक्षा से वह पूर्व शरीराकार रूप ही होता है। आत्मा के इस सप्रदेशी विशेष को तत्त्वार्थसूत्रमें क्षेत्र, काल, गति, लिङ्ग, तीर्थ, चारित्र, प्रत्येक बुद्ध-बोधित, ज्ञान, अवगाहना, अन्तर, संख्या और अल्प-बहुत्व^{१२} इन बारह अनुयोगों की विवक्षा से समझने की प्रेरणा की है। इस आत्म-स्वरूप को समझने के लिए अनेकानेक विवक्षाओं की मर्यादा बराबर ध्यान में रखने की आवश्यकता है, जिसमें तनिक सी भी चूक हो जाने पर गहन से गहन भ्रांति हो जाने की सम्भावना रहती है।

आत्मा की इस सप्रदेशता में एक बात और आड़े आती है जो जन सामान्य को भ्रमित करती है, कि एक ही आकाश-प्रदेश में अनेक आत्माओं और शरीरों का अवगाहन किस प्रकार हो जाता है ? जबकि हम साफ देखते हैं कि एक जगह जहाँ एक मनुष्य खड़ा है दूसरा खड़ा नहीं हो सकता, फिर भली सारी आत्माएँ सिद्ध-लोक में एक साथ कैसे रह लेती हैं और किस प्रकार अपनी वैयक्तिकता बनाए रखती हैं ? जहाँ तक एक ही प्रदेश में अनेक आत्माएँ रहने का प्रश्न है, वह कोई असम्भव बात नहीं। जब भौतिक विज्ञानवादी जैसा स्थूल

सिद्धान्त ईश्वर, गुरुत्वाकर्षण, परमाणु, प्रकाश आदि सारे पदार्थों को एक ही आकाश-प्रदेश में अवस्थित मान कर किसी प्रकार के विरोधाभास की भासका नहीं करता, तो फिर अरूपी आत्माओं का ही एक क्षेत्र में रहना शक्य किस प्रकार हो सकता है ? इसके साथ ही साथ एक-क्षेत्राव-गाहन प्रदेश-विवक्षा से ही कहा जाता है, तत्व-विवक्षा से नहीं। तत्व-विवक्षा से उनकी वैयक्तिकता की अक्षुण्णता भी अशक्य है (स्थापना संख्या ४ के द्वारा)। बहुत से दीपकों का प्रकाश एक ही कमरे में व्याप्त होकर प्रदेश-दूरष्टि से एक ही प्रकाशाकार की सजा से अभिहित होता है, किन्तु दीपकों की तत्व-दूरष्टि से प्रत्येक दीपक के प्रकाश की वैयक्तिकता अक्षुण्ण है, जो कभी दीपक बुझा या हटा कर अलग की जा सकती है। अतः अरूपी आत्मा के क्षेत्र में अन्य द्रव्यों का अवगाहन न तो न्याय-विरुद्ध है और न प्रत्यक्ष-विरुद्ध।

अब एक शंका अगुरु-लघुत्व गुण के बारे में उठाई जाती है, जिस गुण के आधार पर आत्मा के प्रदेशाकार में संकोच-विस्तार की क्रिया सम्पन्न होती है। यह संकोच-विस्तार क्यों और कैसे होता है ?—जैन इसे तथ्य रूप में स्वीकार करते हैं। तथ्य तत्व-रूप है, जिसके स्वीकार में

‘क्या’ का कोई स्थान नहीं है। उपनिषदों में भी आत्मा को—

अणोरणीयान् महतो महीयानात्मा
गुहायाम् निहितोऽस्य जन्तोः ।”

(अर्थात्—यह अणु से भी अणु और महान से भी महान आत्मा इस जीव के अन्तःकरण में स्थित है) के रूप में अनंत संकोच-विस्तार गुण युक्त कल्पित किया ही है। अब कोई पूछे, कि आत्मा ऐसा सूक्ष्म और महान क्यों है, तो यह प्रश्न ही गलत है। आत्मा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और महान से भी महान आकार वाली होती है—यह एक तथ्यात्मक वचन है, जिसे जैसा का तैसा स्वीकारना ही न्याय-संगत है। जैनों ने इसलिए संकोच-विस्तार लक्षण वाला अगुरुलघुत्व गुण नित्य आत्म-द्रव्य के साथ ही सन्निविष्ट कर दिया, जिसमें वस्तुतः शका करने की कोई गुंजायश नहीं रहती। ऐसा करना वैदिक मान्यता के भी अति निकट पड़ता है।

इस प्रकार आत्मा सम्बन्धी जैन दूरष्टि पूर्णतः वस्तु-परक है। उसे अनेक विवक्षाओं से समझकर एक ऊहात्मक समष्टि में गूथना जैन दर्शन को समझने का सम्यक् प्रयास कहा जा सकता है।

१३. श्वेता० ३-२०, कठो० १-२-२०

ज्ञानपीठ साहित्य-पुरस्कार इस वर्ष वरिष्ठ कवि :

श्री सुमित्रानन्दन पंत को समर्पित

विज्ञान भवन, नई दिल्ली के सभागार में आज संध्या समय साढ़े पांच बजे भारत का सर्वोच्च साहित्य पुरस्कार राष्ट्रपति श्रीवैकटगिरि बराहगिरि द्वारा हिन्दी के वरिष्ठ कवि श्री सुमित्रानन्दन पंत को भेंट किया गया। भारतीय भाषाओं की सर्वश्रेष्ठ कृति के लिए प्रति वर्ष उपलब्ध, भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रवर्तित यह पुरस्कार इस वर्ष कवि श्री पंत को उनके काव्य संग्रह “चिदम्बरा” पर समर्पित किया गया।

यह चौथा पुरस्कार समर्पण समारोह था। पिछले

तीन वर्षों में तीन पुरस्कार समर्पण समारोह सम्पन्न हो चुके हैं। पहला पुरस्कार १९६६ में श्री गोविन्द शंकर कुरूप को उनके मलयालम काव्यसंग्रह “श्रीडक्कुषल”, पर भेंट किया गया, दूसरा १९६७ में श्री ताराशंकर बन्धोपाध्याय को उनके बांग्ला उपन्यास “गणदेवता” पर, और तीसरा पिछले वर्ष डा० कु. वे. पुट्टप्पा और डा. उमा शंकर जोशी को उनकी कृतियों, कन्नड़ महाकाव्य “श्री रामायण-दर्शनम्” और गुजराती काव्य-संग्रह “निशीथ” पर सह-समर्पित किया गया।

महामहिम राष्ट्रपतिजी ने कवि श्रीपंत की साहित्यिक उपलब्धियों की सराहना करते हुए कहा : आज की-सी नैतिकताके सकट की स्थितिमें केवल लेखक और साहित्यकार ही निरपेक्ष दृष्टि से समस्याओं और स्थितियों को परख सकते हैं और अभीष्ट मार्ग दिखा सकते हैं जैसा कवि श्रीपंत ने किया है। हम आज चरित्र के सकटका—आस्थाके संकट का सामना कर रहे हैं। यह सरस्वती पुत्रों का कर्तव्य है कि वे नये मूल्यों और सिद्धांतों की स्थापना करें। हम भौतिक सम्पन्नता की प्राप्ति के महान् प्रयास में लगे हुए हैं, साथ-साथ हमारे लिए यह भी आवश्यक है कि हम अपने पारस्परिक व्यवहार के मानदंडों को भी ऊंचा रखें। लेखकों का यह कर्तव्य है कि साहित्य की साधना के द्वारा वे जीवन को ऊंचा उठावें। मुझे पूरा विश्वास है कि हमारे लेखक इस आवश्यकता की पूर्ति में कोई कसर नहीं रखेंगे और उस चुनौती का डटकर सामना करेंगे।

श्री गिरि ने भारतीय ज्ञानपीठ को इस पुरस्कार का प्रचलन करने के लिए वधाई दी जो भारत की एकता का प्रतीक बन गया है। सभी भारतीय भाषाओं में से एक उत्कृष्ट पुस्तक का चयन करना कोई आसान कार्य नहीं है, परन्तु ज्ञानपीठ ने पिछले चार वर्षों से इस कार्य को बड़ी सफलता के साथ सम्पन्न किया है। राष्ट्रपति जी ने कहा : साहित्यकार ही राष्ट्रीय चेतना के आधार हैं। वर्तमान परिस्थिति में जबकि चारों ओर साम्प्रदायिक वैमनस्य की भावना और अनुशासन हीनता का बोल बाला है, यह आवश्यक है कि साहित्यिक कृतियों के प्रणेता राष्ट्रीय एकता के ध्येय को अपने समक्ष रखें और अनुशासन, समर्पण और सत्य की अनवरत खोज का वातावरण पैदा करें। उन्हें प्रजातन्त्र की शक्तियों को बल देना है और एक ऐसे बाहुमंडल की सृष्टि करनी है जो राष्ट्रीय विकास में सहायक हो।

पुरस्कार-विजेता कवि श्रीसुमित्रानन्दन पंत ने एक कवि की सत्यनिष्ठा और द्रष्टाकी दूरगामी भावदृष्टिसे अनुप्राणित स्वरों में मानवता के समक्ष उपस्थित दिक्भ्रान्ति की ओर संकेत करते हुए कहा : हम पिछले नाम-रूपों में परिणत जिस सत्य से परिचित हैं वह कितना ही महान् हो, भविष्य के नाम का सत्य नहीं हो सकता, भले ही उसके

पीछे एक सार्वभौम व्यक्तित्वका प्रकाशमण्डल चिपका दिया गया हो। अपने नये विकासक्रम में मानव-चेतना पिछले देश कालगत आदर्शों के सम्मोहन से मुक्त होकर एक नवीन मानवीय विश्व व्यक्तित्व के सौष्ठव से मण्डित होने जा रही है और विगत युगों के धर्म-नीति, स्वर्ग-नरक, पाप-पुण्य, इहलोक-परलोक की धारणाओं को अतिक्रम कर, जीवन-मूल्यों को नई दिशा देकर, अपने सम्पूर्ण रचनात्मक ऐश्वर्य में अवतरित हो रही है। श्री पंत के अनुसार कवि का सत्य-दर्शन तभी माना है जब वह समकालीन जीवन तथ्यों पर आधारित हो। उन्होंने कहा समस्त सत्य घरा-केन्द्रिक अथवा मानव केन्द्रिक है। इसलिए हमें विज्ञान और अध्यात्म दोनों ही घरातलों के दृष्टि वैभव को नवीन मानव के निर्माण तथा विकास के लिए प्रयुक्त करना चाहिए कि वह भविष्य में इन देशों-राष्ट्रों की सीमाओं से उभरी हुई धरती पर एक नवीन सांस्कृतिक एकता का अनुभव अपने भीतर कर सकें—सांस्कृतिक एकता जो उसकी ईश्वरीय अथवा आध्यात्मिक एकता की भी प्रतिनिधि बन सके। कला में रूप और चेतना का संयोजन—दर्शन में गुण और राशि का संयोजन रचना-कर्म में विज्ञान और अध्यात्म का संयोजन—ये तीनों आज के युग की व्यापक आवश्यकता के प्रमुख तत्व हैं। कवि-कर्म के लिए सृजनात्मक तथा कलात्मक ही न रहकर नई चेतना की दिशा में चिन्तनात्मक तथा निर्माणात्मक भी रहा। कवि-दृष्टि मानव जीवन को सौन्दर्य तथा रस की सम्पद् से संजोनें एवं सम्पन्न करने के लिए प्रकाश तथा अन्धकार दोनों ही शक्तियों के सत्यों का महत्व समझती है।

ज्ञानपीठ प्रवर परिषद के अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश के राज्यपाल डा० बे० गोपाल रेड्डी तथा प्रवर परिषद के सदस्य दिल्ली के उपराज्यपाल डा० आ० ना० झा ने भी भारतीय साहित्य को श्री-समृद्ध करने के लिए कवि पंत का अभिनन्दन किया। डा० रेड्डी के शब्दों में : विभिन्न भावनाओं, अनुभूतियों, उद्गारों, आदेशों और अपेक्षाओं की मोहक संजूषा 'चिदम्बरा' में मानवतावाद का स्वर सर्वत्र मुखर होता है। मानव-मगल उसका दृष्ट है और भाव-दर्शन उसका प्रसाधन बदलने के लिए सदैव तत्पर

है, किन्तु इष्ट में परिवर्तन उसे मान्य नहीं। कवि के काव्य के विषय में जो सत्य है, जो तथ्य है, वर्ण्य है, उल्लेख है वह सब प्रचुर मात्रा में 'चिदम्बरा' में सर्वत्र बिखरा हुआ है। भाव और कर्म में साम्य स्थापित करने का कवि-प्रयास इसमें पूर्णतः परिलक्षित होता है।

भारतीय ज्ञानपीठ की अध्यक्षता, श्रीमती रमा जैन ने मान्य अतिथियों का स्वागत करते हुए ज्ञानपीठ द्वारा 'चिदम्बरा' के 'अंग्रेजी, कन्नड, गुजराती, तेलुगु, बंगला, मलयाली और मराठी अनुवादों के प्रकाशन की घोषणा की। भारतीय साहित्य के मंगल में ऐसे प्रयासों की उपादेयता की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा : भारतीय साहित्य हमारी सामूहिक पूंजी है। वह बाटने से ही अधिक बढ़ती है। उसका आदान-प्रदान हमारे व्यक्तिव को परिपूर्ण, हमारी सामाजिक चेतना को उदार और राष्ट्रीय भावना को सुदृढ़ करता है।

भारतीय ज्ञानपीठ के संस्थापक-न्यासधारी श्री शान्ति-प्रसाद जैन ने सभी अभ्यागतों के प्रति आभार व्यक्त किया।

पुरस्कार-समर्पण-समारोह के कार्यक्रम का एक विशेष आकर्षण-अंग था। 'चिदम्बरा' की रचनाओं पर आधारित एक नृत्य-प्रतिबिम्ब जिसे उदयशंकर इंडिया कल्चर सेण्टर के कलाकारों ने श्रीमती अमला शंकर के निर्देशन में प्रस्तुत किया। 'चिदम्बरा' की रचनाओं के विचार-

भावनागत तथ्य के आधार पर शैली एवं भाव मुद्राओं के वैविध्य से सम्पन्न नृत्य प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करना श्रीमती अमला शंकर की सूक्ष्म कला-काव्य-दृष्टि का परिचायक है।

मंच पर डा० कर्णसिंह, डा० नीहार रंजन रे, श्री गो० शंकर कुरुप आदि प्रवर-परिषद् के सदस्य और भारतीय ज्ञानपीठ ट्रस्ट तथा संचालक समिति के सदस्यगण भी उपस्थित थे।

पुरस्कार समर्पण समारोह का एक रोचक अंग थी विज्ञान भवन की दीर्घा में आयोजित पुस्तक-प्रदर्शनी, जिसमें भारतीय ज्ञानपीठ के लगभग चार सौ प्रकाशन प्रदर्शित थे। इनमें प्राच्यविद्या विषयक विभिन्न शोध-ग्रन्थ भी थे और विभिन्न साहित्यिक विधाओं के साहित्यिक प्रकाशन भी। इस प्रकार भारतीय ज्ञानपीठ की सभी ग्रंथमालाओं—मूर्तिदेवी ग्रंथमाला, माणिकचन्द्र ग्रंथमाला, कन्नड ग्रंथमाला और लोकोदय ग्रंथमाला जिसके अंतर्गत राष्ट्रभारती ग्रंथमाला भी आती है—की एक मरी-पूरी छवि वहाँ प्रस्तुत थी।

पिछले तीन पुरस्कार समर्पण समारोहों का चित्र-दर्शन वहाँ का एक अतिरिक्त आकर्षण था। श्री सुमित्रा-नन्द पंथ की पुरस्कृत काव्यकृति 'चिदम्बरा' के अंग्रेजी, बांग्ला, कन्नड, गुजराती, मराठी, मलयाली और तेलुगु भाषाओं में काव्यानुवाद भी वहाँ विशेष रूप से प्रदर्शित किये गये थे। ●

साहित्य-समोच्चा

(१) आगम और त्रिपिटक—एक अनुशीलन खण्ड १ इतिहास और परम्परा लेखक—मुनि श्री नागराज जी डी० लिट्। प्रकाशक जैन इवेताम्बर तेरापन्थी महासभा, ३ पोर्चुगीज, चर्चस्ट्रीट कलकत्ता-१, पृष्ठ संख्या ७६८ मूल्य २५) रुपया।

प्रस्तुत ग्रंथ एक ऐतिहासिक अनुसन्धान परम्परा का सूचक है। ग्रंथ में मुनि जी ने बौद्ध पिटकों और जैन आगम-ग्रन्थों की जो तुलनात्मक रूप प्रस्तुत किया है,

उससे कितने ही नवीन तथ्य प्रकाश में आये हैं। उनसे भलीभाँति निश्चित हो जाता है कि महावीर का जीवन परिचय लिखते समय बौद्ध ग्रंथों का अध्ययन होना आवश्यक है। यद्यपि बौद्ध-ग्रंथों में महावीर के जीवन संबंधी कोई मौलिक घटना का उल्लेख नहीं है, जो कुछ लिखा गया है वह सब महावीर के महत्त्व पर पर्दा डालने या उसे हीन बतलाने का उपक्रम किया गया है। महावीर क्या थे और उन्होंने जीवन में क्या आदर्श उपस्थित किये,

यह सब अनुसन्धान का विषय है। फिर भी विरोधी और बाद में प्रविष्ट उन घटना-क्रमों का तालमेल बैठाने का सहयोग मिल सकता है।

महावीर और बुद्ध के परिनिर्वाण काल पर अच्छा विचार किया है और महावीर का निर्वाण काल ५२७ ईस्वी पूर्व और बुद्ध का निर्वाण समय ५०२ ईस्वी पूर्व निर्धारित किया है। जो संगत जान पड़ता है। अब से बहुत वर्ष पहले मुस्तार श्री जुगलकिशोर जी ने भी सन् १६२६ में अनेकान्त के प्रथम वर्ष की प्रथम किरण में महावीर और उनका समय-सम्बन्धी लेख में यही समय अनेक प्रमाणों के आधार पर निश्चित किया था। इससे प्रचलित वीर निर्वाण संवत् सही जान पड़ता है।

ग्रन्थ में दोनों तीर्थकर्ताओं के अतिरिक्त तात्कालिक अन्य तीर्थकरों के सम्बन्ध में भी प्रकाश डाला है और तत्कालीन राजाओं का भी परिचय दिया है, इस तरह मुनि जी ने यह ग्रन्थ गवेषणा पूर्वक लिखा है। मुनि जी अच्छे लेखक, विद्वान और वक्ता हैं। ग्रन्थ के परिशिष्ट में पालि ग्रन्थों के वे मूल अवतरण भी दिये हैं उनसे ग्रन्थ की प्रामाणिकता बढ़ गई है। आशा है, मुनि जी अन्य दो भागों को भी पूरा करने का प्रयत्न करेंगे। आचार्य तुलसी गणी और उनके शिष्यों की गतिविधियाँ तथा कार्य करने की क्षमता प्रशंसनीय है। इसके लिए मुनि श्री नगराज जी घन्य वादार्ह हैं। ग्रन्थ समयानुकूल उपयोगी है। इसके अन्वेषक विद्वानों और लायब्ररियों को मंगा कर अवश्य पढ़ना चाहिए।

(२) पट्टावली प्रबन्ध संग्रह—संकलयिता व संशोधक आचार्य श्री हस्तिमल, सम्पादक डॉ० नरेन्द्रभानावत, प्रकाशक जैन इतिहास निर्माणसमिति, जयपुर। मूल्य १०) रुपया।

प्रस्तुत ग्रन्थ में लोकागच्छ परम्परा और स्थानक-वासी परम्परा, इन दोनों परम्पराओं की १७ पट्टावलियों का संकलन किया गया है। पट्टावलियाँ यदि प्रामाणिक हों तो उन पर से महावीर से अब तक की परम्परा का इतिवृत्त संकलित किया जा सकता है। इनमें दिगम्बर सम्प्रदाय की उत्पत्ति का जो कथन दिया हुआ है वह संगत नहीं जान पड़ता, कारण कि महावीर दिगम्बर थे,

उससे जो विभक्त हुआ उसे ही अर्वाचीन कहा जा सकता है। दूसरे महावीर के बहुत समय बाद सम्प्रदाय बनें। क्योंकि महावीरके बाद तीन केवली और पांच श्रुत केवली हुए, अन्तिम श्रुत केवली के समय दुर्भिक्ष पड़ने के बाद मतभेद होने के बाद सम्प्रदाय बने होंगे। ऐसी स्थिति में उक्त कथन की प्रामाणिकता नहीं रहती। ये पट्टावलियाँ कब बनीं इसका कोई प्रामाणिक उल्लेख देखने में नहीं आता। जो सामग्री उपलब्ध नहीं उसके सम्बन्ध में केवल अनुमान किया जा सकता है। प्राचीन प्रमाणों के अनुसन्धान करने में पट्टावलियाँ भी उपयोगी हो सकती हैं। ऐतिहासिक क्षेत्र में उनकी महत्ता है ही। इस तरह सब सामग्री के संकलित हो जाने से जैन इतिहास के निर्माण में सरलता हो सकती है। इस प्रयास के लिए सम्पादक प्रकाशक घन्यवाद के पात्र हैं।

(३) आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान अंजार ग्रन्थ-सूची —(भाग १) सम्पादक डॉ० नरेन्द्र भानावत, प्रकाशक, श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, लाल भवन चौड़ा रास्ता, जयपुर-३ मूल्य सजिल्द प्रति का २५) रुपया।

इस ग्रन्थ में स्थानकवासी सम्प्रदाय के ३७०० के लगभग ग्रंथों की सूची प्रस्तुत की गई है। शेष ग्रंथों की सूची बाद में प्रकाशित होगी। सूची के अवलोकन करने से स्थानकवासी सम्प्रदाय की ज्ञान सामग्री का यथेष्ट अनुभव हो जाता है। स्थानकवासी सम्प्रदाय के पास अनेक शास्त्र भण्डार हैं, हो सकता है उनमें कोई महत्व का प्राचीन ग्रन्थ मिल जाय। पर यह सब ग्रन्थ सूची के व्यवस्थित होने पर ही हो सकता है। डा० नरेन्द्र भानावत जी ने इसके सम्पादन में पर्याप्त श्रम किया है। आशा है समाज इसे अपनाएगी और ग्रन्थ भण्डारों को व्यवस्थित करने की इससे अधिक प्रेरणा मिलेगी। ऐसे सुन्दर संस्करण के लिए डा० साहब घन्यवाद के पात्र हैं।

(४) युक्त्यनुशासनम् (उत्तरार्ध) हिन्दी विवेचन सहित—सम्पादक क्षुल्लक शीतलप्रसाद जी, विवेचक पं० मूलचन्द्र जी शास्त्री, प्रकाशक दि० जैन पुस्तकालय, सांगानेर (जयपुर), पृष्ठ संख्या २१४, मूल्य पोष्टेज सहित १) रुपया।

प्रस्तुत ग्रन्थकर्ता आचार्य समन्तभद्र की अनुपम कृति

युक्त्यनुशासन है। जो दार्शनिक विषय का एक मौलिक स्तवन है। उनकी सभी कृतियाँ मौलिक और महत्वपूर्ण हैं। दार्शनिक क्षेत्र में उनकी महत्ता का स्पष्ट निदर्शन है। प्रस्तावना लेखक प्रो० डा० दरबारीलाल जी कोठिया न्यायाचार्य एम० ए० पी० एच० डी० हैं। डा० साहब ने प्रस्तावना में युक्त्यनुशासन पर अच्छा विचार किया है। उसकी कितनी ही कारिकाओं के हार्द्र को भी स्पष्ट किया है और समन्तभन्द से पूर्ववर्ती युग में अनेकान्त की सप्तभंगी का भी उल्लेख करते हुए सद्व्याख्या, शाश्वत-अशाश्वत आदि बातों का भी विचार किया है। उनकी सभी कृतियों का संक्षिप्त परिचय भी दिया है।

विवेचक पं० मूलचन्द जी ने आचार्य विद्यानन्द की टीका का आश्रय लेकर हिन्दी में उसका अच्छा विवेचन किया है। जिससे स्वाध्यायी जनों को उसके अध्ययन में सरलता हो गई है। ग्रन्थ के दोनों भाग मंगाकर पढ़ना चाहिए। कुल्लक की का प्रयास स्तुत्य है।

—परमानन्द शास्त्री

(५) समयसार (प्रवचन सहित)—प्रवचनकार आध्यात्मिक सन्त गणेशप्रसाद जी वर्णी, सम्पादक पं० पन्नालाल जी साहित्याचार्य, प्रकाशक ग० वर्णी जैन ग्रंथमाला वाराणसी, बड़ा आकार, पृष्ठ ४६ × ४०६, मूल्य १२ रुपया।

आचार्य कुन्दकुन्द विरचित समय प्राभूत (समयसार) एक सुप्रसिद्ध अध्यात्म ग्रंथ है। इसमें निश्चयनय की प्रधानता से नौ अधिकारों के द्वारा जीव-अजीव, कर्तृ-कर्मता, पुण्य-पाप, आस्रव, सवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष और सर्वविशुद्ध ज्ञान का विवेचन किया गया है। यहाँ कहा गया है कि आत्मा न प्रमत्त है और न अप्रमत्त है, वह तो एक मात्र ज्ञाता है। उसके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य है, यह भी व्यवहाराश्रित कथन है। यह वस्तुस्थिति ही है : फिर भी जो अधिकांश प्राणी व्यवहार मार्ग का अनुसरण करते हुए देखे जाते हैं वे इस व्यवहार का अनुसरण करते हुए भी उक्त वस्तुस्थिति को लक्ष्य में रखें, उसे भूलें न; इस प्रकार के विवेक को उत्पन्न करना, यह प्रस्तुत ग्रंथ का प्रयोजन रहा है।

लगभग इसी प्रकार के अभिप्राय को प्रगट करते हुए आत्मानुशासन (२३६-४०) में यह कहा गया है कि शुभ-अशुभ, पुण्य-पाप और सुख-दुख; इन छह में से आदि के तीन—शुभ, पुण्य और सुख—हितकर होने से अनुष्ठेय हैं तथा शेष तीन—अशुभ, पाप और दुख—अहितकर होने से परित्यज्य हैं। उनमें भी वस्तुतः प्रथम (अशुभ) ही परित्याज्य है—उसका परित्याग हो जाने पर शेष दो (पाप और दुख) स्वयमेव विलीन हो जाने वाले हैं, क्योंकि उनका जनक वह अशुभ ही है। अन्त में शुद्ध स्वरूप के प्राप्त हो जाने पर शुभ को भी छोड़कर परम पद की प्राप्ति होने वाली है।

प्रस्तुत ग्रंथ पर यद्यपि आचार्य अमृतचन्द्र की आत्म-ख्याति और जयसेनाचार्य की तात्पर्य वृत्ति ये दो संस्कृत टीकाएं तथा पं० जयचन्द्र जी और राजमल जी पांडे की हिन्दी टीकाएं भी उपलब्ध हैं, फिर भी सर्वसाधारण जो उक्त टीकाओं से ग्रंथ के मर्म को हृदयंगम नहीं कर सकते हैं ऐसे आत्म-हितैषीजनों को लक्ष्य में रखकर पूज्य पं० गणेशप्रसाद जी वर्णी ने प्रकृत प्रवचन को लिखा है। समयसार यह वर्णी जी का अतिशय रुचिकर ग्रंथ रहा है व उसका उन्होंने खूब मनन किया है। इस प्रवचन में उन्होंने दोनों संस्कृत टीकाओं का परिशीलन कर उनके आधार से तथा अपने अनुभव के बल पर भी विषय का सरल भाषा में अच्छा स्पष्टीकरण किया है।

ग्रन्थ का सम्पादन अनेक ग्रन्थों के सम्पादक व अनुवादक श्री पं० पन्नालाल जी साहित्याचार्य के द्वारा हुआ है। उन्होंने अपनी प्रस्तावना में ग्रंथ के अन्तर्गत विषय का अधिकार क्रम से परिचय भी करा दिया है। इससे ग्रंथ में और भी विशेषता आ गई है।

वर्णी ग्रंथमाला ने ऐसे उत्तम ग्रन्थ को प्रकाशित कर स्तुत्य कार्य किया है। इस ग्रंथमाला के सुयोग्य मन्त्री डॉ० दरबारीलाल जी कोठिया उसकी आर्थिक कठिनाई को हल करने के लिए पर्याप्त परिश्रम कर रहे हैं। इसका ही यह परिणाम है जो उसके द्वारा अभी हाल में २-३ महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित किये जा चुके हैं। ग्रंथ का मुद्रण आदि भी अच्छा हुआ है।

—बालचन्द्र सि० शास्त्री

बाबू यशपाल जी की माता का स्वर्गवास

बाबू यशपाल जी एक साहित्यिक व्यक्ति है, वे साहित्य मनीषी होकर निरंतर साहित्य सृष्टि में तन्मय रहते भी सामाजिक और धार्मिक कार्यों में बराबर रस लेते रहते हैं। अनेकान्त के सम्पादक मण्डल में भी हैं और सेवामन्दिर की कार्य समिति के माननीय सदस्य हैं। आपकी माता जी बड़ी धार्मिक थी। वे सन् १९५३ में सेवामन्दिर की तीर्थ यात्रा बस में श्रवणवेलगोल के मस्तकाभिषेक के समय यात्रा को गई थीं, और उन्होंने दक्षिण के सभी तीर्थ क्षेत्रों की सानन्द वन्दना की थी। जहाँ वे धर्मनिष्ठा थी वहाँ वे विवेकशीला भी थी। उनके स्वर्गवास से बाबू यशपाल जी और उनके परिवार को जो कष्ट पहुँचा है, उसके लिए हम सम्बेदना प्रकट करते हैं और दिवंगत आत्मा को परलोक में सुख-शान्ति की कामना करते हैं।

वीर-सेवा-मन्दिर और “अनेकान्त” के सहायक

१०००) श्री मिश्रीलाल जी धर्मचन्द जी जैन, कलकत्ता	१५०) श्री चम्पालाल जी सरावगी, कलकत्ता
१०००) श्री देवेन्द्रकुमार जैन, ट्रस्ट,	१५०) श्री जगमोहन जी सरावगी, कलकत्ता
श्री साहू शीतलप्रसाद जी, कलकत्ता	१५०) ,, कस्तूरचन्द जी आनन्दीलाल जी कलकत्ता
५००) श्री रामजीवन सरावगी एण्ड संस, कलकत्ता	१५०) ,, कन्हैयालाल जी सीताराम, कलकत्ता
५००) श्री गजराज जी सरावगी, कलकत्ता	१५०) ,, पं० बाबूलाल जी जैन, कलकत्ता
५००) श्री नथमल जी सेठी, कलकत्ता	१५०) ,, मालीराम जी सरावगी, कलकत्ता
५०) श्री वंजनाथ जी धर्मचन्द जी, कलकत्ता	१५०) ,, प्रतापमल जी मदनलाल पांड्या, कलकत्ता
५१) श्री शिखरचन्द जी भांभरी, कलकत्ता	१५०) ,, भागचन्द जी पाटनी, कलकत्ता
२५१) श्री रा० बा० हरखचन्द जी जैन, रांची	१५०) ,, शिखरचन्द जी सरावगी, कलकत्ता
२५१) श्री अमरचन्द जी जैन (पहाड्या), कलकत्ता	१५०) ,, सुरेन्द्रनाथ जी नरेन्द्रनाथ जी कलकत्ता
२५१) श्री स० सि० धन्यकुमार जी जैन, कटनी	१०१) ,, मारवाड़ी दि० जैन समाज, ध्यावर
२५१) श्री सेठ सोहनलाल जी जैन,	१०१) ,, दिगम्बर जैन समाज, केकड़ी
मंसस मुन्नालाल द्वारकादास, कलकत्ता	१०१) ,, सेठ चन्दूलाल कस्तूरचन्दजी, बम्बई नं० २
२५१) श्री लाला जयप्रकाश जी जैन	१०१) ,, लाला शान्तिलाल कागजी, दरियागंज दिल्ली
स्वस्तिक मेटल वर्क्स, जगाधरी	१०१) ,, सेठ भंवरीलाल जी बाकलीवाल, इम्फाल
२५०) श्री मोतीलाल हीराचन्द गांधी, उस्मानाबाद	१०१) ,, शान्तिप्रसाद जी जैन, जैन बुक एजेन्सी,
२५०) श्री बन्शीधर जी जुगलकिशोर जी, कलकत्ता	१०१) ,, सेठ जगन्नाथजी पाण्ड्या भूमरीतलंया
२५०) श्री जुगमन्दिरदास जी जैन, कलकत्ता	१०१) ,, सेठ भगवानदास शोभाराम जी सागर
२५०) श्री सिधई कुन्दनलाल जी, कटनी	१०१) ,, बाबू नृपेन्द्रकुमार जी जैन, कलकत्ता
२५०) श्री महावीरप्रसाद जी अग्रवाल, कलकत्ता	१०१) ,, सेठ दानमल हीरालाल जी, निवाई (राज०)
२५०) श्री बी० आर० सी० जैन, कलकत्ता	१००) ,, बट्टीप्रसाद जी आत्माराम जी, पटना
५०) श्री रामस्वरूप जी नेमिचन्द्र जी, कलकत्ता	१००) ,, रूपचन्द जी जैन, कलकत्ता
५०) श्री वजरंगलाल जी चन्द्रकुमार जी, कलकत्ता	१००) ,, जैन रत्न सेठ गुलाबचन्द जी टोंगा इन्दौर

- (१) पुरातन-जैनवाक्य-सूची—प्राकृत के प्राचीन ४६ मूल-ग्रन्थों की पद्यानुक्रमणी, जिसके साथ ४८ टीकादिग्रन्थों के उद्धृत दूसरे पद्यों की भी अनुक्रमणी लगी हुई है। सब मिलाकर २५३५३ पद्य-वाक्यों की सूची। संपादक मुस्तार श्री जुगलकिशोर जी की गवेषणापूर्ण महत्व की ७० पृष्ठ की प्रस्तावना से अलंकृत, डा० कालीदास नाग, एम. ए. डी. लिट् के प्राक्कथन (Foreword) और डा० ए. एन. उपाध्ये एम. ए. डी. लिट् की भूमिका (Introduction) से भूषित है, शोध-खोज के विद्वानों के लिए अतीव उपयोगी, बड़ा साइज, सजिल्द १५-१०
- (२) प्राप्त परीक्षा—श्री विद्यानन्दाचार्य की स्वोपज्ञ सटीक अपूर्व कृति, आप्तों की परीक्षा द्वारा ईश्वर-विषयक सुन्दर, विवेचन को लिए हुए, न्यायाचार्य पं. दरबारीलालजी के हिन्दी अनुवाद से युक्त, सजिल्द। ८-००
- (३) स्वयम्भूस्तोत्र—समन्तभद्रभारती का अपूर्व ग्रन्थ, मुस्तार श्री जुगलकिशोरजी के हिन्दी अनुवाद, तथा मट्ठव की गवेषणापूर्ण प्रस्तावना से सुशोभित। ... २-००
- (४) स्तुतिविद्या—स्वामी समन्तभद्र की अनोखी कृति, पापों के जीतने की कला, सटीक, सानुवाद और श्री जुगल किशोर मुस्तार की महत्व की प्रस्तावनादि से अलंकृत सुन्दर जिल्द-सहित। १-५०
- (५) अध्यात्मकमलमार्तण्ड—पद्याध्यायीकार कवि राजमल की सुन्दर आध्यात्मिकरचना, हिन्दी-अनुवाद-सहित १-५०
- (६) युक्त्यनुशासन—तत्त्वज्ञान से परिपूर्ण समन्तभद्र की असाधारण कृति, जिसका अभी तक हिन्दी अनुवाद नहीं हुआ था। मुस्तार श्री के हिन्दी अनुवाद और प्रस्तावनादि से अलंकृत, सजिल्द। ... १-२५
- (७) श्रीपुरपादार्चनास्तोत्र—आचार्य विद्यानन्द रचित, महत्व की स्तुति, हिन्दी अनुवादादि सहित। ७५
- (८) शासनचतुस्त्रिंशिका—(तीर्थपरिचय) मुनि मदनकीर्ति की १३वीं शताब्दी की रचना, हिन्दी-अनुवाद सहित ७५
- (९) समीचीन धर्मशास्त्र—स्वामी समन्तभद्र का गृहस्थाचार-विषयक अत्युत्तम प्राचीन ग्रन्थ, मुस्तार श्रीजुगलकिशोर जी के विवेचनात्मक हिन्दी भाष्य और गवेषणात्मक प्रस्तावना से युक्त, सजिल्द। ... ३-०२
- (१०) जैनग्रन्थ-प्रशस्ति संग्रह भा० १ सस्कृत और प्राकृत के १७१ अप्रकाशित ग्रन्थों की प्रशस्तियों का मंगलाचरण सहित अपूर्व संग्रह उपयोगी ११ परिशिष्टों और पं० परमानन्द शास्त्री की इतिहास-विषयक साहित्य परिचयात्मक प्रस्तावना से अलंकृत, सजिल्द। ... ४-००
- (११) समाधितन्त्र और इष्टोपदेश—अध्यात्मकृति परमानन्द शास्त्री की हिन्दी टीका सहित ४-००
- (१२) अनित्यभावना—आ० पद्मनन्दीकी महत्वकी रचना, मुस्तार श्री के हिन्दी पद्यानुवाद और भावार्थ सहित २५
- (१३) तत्त्वार्थसूत्र—(प्रभाचन्द्राय)—मुस्तार श्री के हिन्दी अनुवाद तथा व्याख्या से युक्त। ... २५
- (१४) श्रवणबेलगोल और दक्षिण के अन्य जैनतीर्थ। १-००
- (१५) महावीर का सर्वोदय तीर्थ १९ पैसे, १६ समन्तभद्र विचार-दीपिका १९ पैसे, (१७) महावीर पूजा १६
- (१८) अध्यात्म रहस्य—पं० आशाधर की सुन्दर कृति मुस्तार जी के हिन्दी अनुवाद सहित। १-००
- (१९) जैनग्रन्थ-प्रशस्ति संग्रह भा० २ अपभ्रंश के १२२ अप्रकाशित ग्रन्थों की प्रशस्तियों का महत्वपूर्ण संग्रह। पचपन ग्रन्थकारों के ऐतिहासिक ग्रन्थ-परिचय और परिशिष्टों सहित। स. पं० परमानन्द शास्त्री। सजिल्द १२-००
- (२०) न्याय-दीपिका—आ. अभिनव धर्मभूषण की कृति का प्रो० दरबारीलालजी न्यायाचार्य द्वारा स० अनु० ७-००
- (२१) जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश, पृष्ठ सख्या ७४० सजिल्द (वीर-शासन-सध प्रकाशन ५-००)
- (२२) कसायपाहुड सुत्त—मूलग्रन्थ की रचना आज से दो हजार वर्ष पूर्व श्री गुणधराचार्य ने की, जिस पर श्री यतिवृषभाचार्य ने पन्द्रह सौ वर्ष पूर्व छह हजार श्लोक प्रमाण चूर्णिसूत्र लिखे। सम्पादक पं० हीरालालजी सिद्धान्त शास्त्री, उपयोगी परिशिष्टों और हिन्दी अनुवाद के साथ बड़े साइज के १००० से भी अधिक पृष्ठों में। पुष्ट कागज और कपड़े की पक्की जिल्द। ... २०-००
- (२३) Reality आ० पूज्यपाद की सर्वार्थसिद्धि का अंग्रेजी में अनुवाद बड़े आकार के ३०० पृ. पक्की जिल्द ६-००

अनेकान्त



जन तीर्थंकर की महत्त्वपूर्ण प्राचीन मृण्मूर्ति
(लेखक के सौजन्य से)

समन्तभद्राश्रम (वीर-सेवा-मन्दिर) का मुख पत्र

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१ सिद्ध स्तुति—पद्मनन्दाचार्य	२६५
२ भारत में वर्णनात्मक कथा साहित्य— डा० ए० एन० उपाध्ये	२६६
३ भगवान् महावीर और छोटा नागपुर— श्री सुबोधकुमार जैन	२७७
४ जैन तीर्थंकर की कुछ महत्वपूर्ण मृण्मूर्तियाँ— श्री संकटाप्रसाद शुक्ल एम० ए०	२७६
५ आधुनिकता—आधुनिक और पुरानी— डा० प्रद्युम्नकुमार जैन	२८०
६ राजस्थान के जैन सन्त मुनि पद्मनन्दी— परमानन्द शास्त्री	२८३
७ नरेन्द्रसेन—प० के० भुजबली शास्त्री	२८७
८ रामपुरा के मंत्री पाथूशाह— डा० विद्याधर जोहरापुरकर	२८८
९ अमरकीर्ति नाम के आठ विद्वान— परमानन्द शास्त्री	२८९
१० संस्कृत सुभाषितों में सज्जन-दुर्जन— लक्ष्मीचन्द सरोज	२९०
११ अनेक स्थान नामगर्भित भ० पार्श्वनाथ के स्तवन्— भवरलाल नाहटा	२९४
१२ पद्मावती—सिधई प्रकाशचन्द्र एम० ए० बी० टी०	२९७
१३ काचन का निवेदन—मुनि कन्हैयालाल	३०१
१४ शीलव्रती सुदर्शन (कहानी)—परमानन्द शास्त्री	३०२
१५ भाग्यशाली लकड़हारा—परमानन्द शास्त्री	३०६
१६ चेतन यह घर नहीं तेरी (गीत)—मनराम	३०७
१७ भगवान् महावीर का सन्देश— डा० भागचन्द जैन भागेन्द्र एम० ए० पी० एच० डी.	३०८
१८ अनेकान्त की वार्षिक-विषय-सूची	३११



सम्पादक-मण्डल

डा० आ० ने० उपाध्ये

डा० प्रेमसागर जैन

श्री यशपाल जैन

परमानन्द शास्त्री

अनेकान्त में प्रकाशित विचारों के लिए सम्पादक मल्लिक उत्तरदायी नहीं हैं। —व्यवस्थापक अनेकान्त

सूचना

अनेकान्त के जिन ग्राहकों ने वर्ष समाप्ति तक अपना वार्षिक चन्दा नहीं भेजा है, उनसे सानुरोध निवेदन है कि वे अपना पिछला वार्षिक मूल्य ६) रुपया मनीग्रार्डर से भिजवा कर अनुगृहीत करें।

व्यवस्थापक 'अनेकान्त'

बीर सेवामन्दिर २१, दरियागंज
दिल्ली।



निवेदन

जैन समाज के प्रतिष्ठित श्रीमानों, विद्वानों और जिनवाणी के प्रेमियों से निवेदन है कि वे बीर सेवा मंदिर लायब्रेरी को अपने-अपने प्रकाशित ग्रंथ भेंट कर धर्म और यश का लाभ लें। तथा विवाह-शादियों, पूजा-प्रतिष्ठा के उत्सवों और माननीय त्योहारों पर निकाले हुए दान में से अनेकान्त के लिए भी आर्थिक सहयोग प्रदान करें। क्योंकि अनेकान्त जैन समाज का प्रतिष्ठित एवं ख्याति-प्राप्त पत्र है। उसको आर्थिक सहयोग करना जैन संस्कृति की महती सेवा है।

व्यवस्थापक

बीरसेवामन्दिर २१ दरियागंज
दिल्ली



ग्राहकों से

अनेकान्त की इस किरण के साथ २२ वें वर्ष के ग्राहकों का वार्षिक मूल्य समाप्त हो जाता है। अगला अंक २३ वें वर्ष का प्रथमांक होगा। अतः ग्राहक महानुभावों से निवेदन है कि वे २३ वें वर्ष का वार्षिक शुल्क मनीग्रार्डर से भिजवा कर अनुगृहीत करें।

व्यवस्थापक 'अनेकान्त'

बीर सेवा मन्दिर, २१ दरियागंज



दिल्ली।

अनेकान्त का वार्षिक मूल्य ६) रुपया
एक किरण का मूल्य १ रुपया २५ पैसे।

प्रोम् ग्रहम्

अनेकान्त

परमागमस्य बीजं निषिद्धजात्यन्धसिन्धुरविषाणम् ।

सकलनयविलसितानां विरोधमथनं नमाम्यनेकान्तम् ॥

वर्ष २२

किरण ६

}

वीर-सेवा-मन्दिर, २१ दरियागंज, दिल्ली-६

वीर निर्वाण संवत् २४६६, वि० सं० २०२६

{

कर्बारी

१९७०

सिद्ध स्तुति

सूक्ष्मत्वादखुर्वाशिनोऽवधिदृशः पश्यन्ति नो यान् परे

यत्संविन्महिमस्थितं त्रिभुवनं स्वस्थं भमेकं यथा ।

सिद्धानामहमप्रमेय महसां तेषां लघुर्मानुषो

मूढात्मा किमु वच्मि तत्र यदि वा भक्त्या महत्या वशः ॥१॥

निःशेषामरशेखराश्रितमणि श्रेण्यचिताङ्घ्रिद्वया ।

देवास्तेऽपि जिना यदुन्नतपदप्राप्त्यै यतन्ते तराम् ।

सर्वेषामुपरि प्रबृद्ध परमज्ञानादिभिः क्षायिकैः ।

युक्ता न व्यभिचारिभिः प्रतिदिनं सिद्धान् नमामो वयम् ॥२॥

—पद्मनन्दाचार्य

अर्थ—सूक्ष्म होने से जिन सिद्धों को परमाणुदर्शी अवधिज्ञानी भी नहीं देख पाते हैं तथा जिनके ज्ञान में स्थित तीनों लोक आकाश में स्थित एक नक्षत्र के समान स्पष्ट प्रतिभाषित होते हैं उन अपरिमित तेज के धारक सिद्धों का वर्णन क्या मुक्त जैसा मूर्ख व हीन मनुष्य कर सकता है ?—नहीं कर सकता । फिर भी जो मैं उनका वर्णन कर रहा हूँ वह अतिशय भक्ति वश होकर ही कर रहा हूँ ॥१॥

जिनके दोनों चरण समस्त देवों के मुकुटों में लगे हुए मणियों की पंक्तियों से पूजित हैं—जिनके चरणों में समस्त देव भी नमस्कार करते हैं, ऐसे वे तीर्थंकर जिनदेव भी जिन सिद्धों के उन्नत पद को प्राप्त करने के लिए अधिक प्रयत्न करते हैं; जो सबों के ऊपर वृद्धिगत होकर अन्य किसी में न पाये जाने वाले ऐसे अतिशय वृद्धिगत केवलज्ञानादि स्वरूप क्षायिक भावों से संयुक्त हैं; उन सिद्धों को हम प्रतिदिन नमस्कार करते हैं ॥२॥

भारत में वर्णनात्मक कथा-साहित्य

ए एन. उपाध्ये

[प्रस्तुत लेख प्राकृत-संस्कृत भाषा के ग्रन्थों के विशिष्ट सम्पादक डा० ए. एन. उपाध्ये एम. ए. डी. लिट प्रो० राजाराम कालेज कोल्हापुर द्वारा सन् १९४३ में हरिषेणाचार्य के बृहत्कथाकोश की विस्तृत लिखी गई महत्वपूर्ण प्रस्तावना के निम्न स्थलों (1) Narrative Tale in India, (2) Compilations of Katnankas : A survey, (3) Orientalists on the Jain Narrative Literature. का हिन्दी अनुवाद है। यह अनुवाद श्री कस्तूरचन्द जी वांढिया कलकत्ता ने सन् १९५८ में किया था, तब से यह प्रकाशन की वाट जोह रहा था। श्री अग्रचन्द जी नाहटा की प्रेरणा से हमें प्राप्त हुआ है और वह अनेकान्त में क्रमशः सधन्यवाद दिया जा रहा है। सम्पादक के निम्न स्थलों का :—

— संपादक]

१. वैदिक और सम्बद्ध साहित्य :

भारत का बौद्धिक जीवन, जैसा कि वह प्राचीन एवम् मध्यकालिक साहित्य में चित्रित है, धार्मिक विचारों से एकदम सराबोर है। भारत धर्म का भूलना है, यह न तो थोड़े अभिमान की ही बात है और न व्यंग ही। यह एक ऐसा तथ्य है कि जो साहित्यिक कृतियों में प्राप्त होने वाली प्रभूत साक्षियों से भली प्रकार प्रमाणित किया जा सकता है। आर्यों का प्राचीनतम शास्त्र, विशेषतः ऋग्वेद, जो कि भारतीय भूमि में सुरक्षित है और जो ब्राह्मण परम्परा में वारमे के रूप में चले आते रहे हैं, प्रकृति के मूर्ति-मान विग्रह के भक्ति-गीतों से भरा हुआ है। कालान्तर में ये गीत ही ऐसे जटिल आचारों के विषय बन गये कि जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से प्रतीकात्मक या स्पष्ट रूप से सम्बन्धित माने जाते थे। धर्म की पवित्रता या उसके अधिकार उस देवत्व द्वारा ही प्राप्त होते हैं कि जो धर्म देव, शास्त्र और गुरु को स्वयं प्रदान किये थे। और ये ही समय पाकर धार्मिक सिद्धान्तों का महान् उत्कर्ष और संस्कार करने में सहायता करते हैं। प्रत्येक विकसित धर्म को इन तीनों की अधीनता किसी न किसी रूप में मान्य है। अनुष्ठान और पूजा ही नहीं, भक्ति एवं ध्यान, एवं सभी मूलतः देव से सम्बद्ध हैं और शनैः शनैः वे सब शास्त्रांगीभूत हो गये हैं। सिद्धान्त, शिक्षा और उपदेश विशेष ही तो शास्त्र हैं और ये देव को दिव्य, और

गुरु को महिमान्वित करते हैं। देव का प्रतिनिधित्व गुरु करता है या उससे प्रेरणा प्राप्त करता है। शास्त्र का ज्ञान उसे या तो उत्तराधिकार में या निजी प्रयत्न से प्राप्त होता है। धार्मिक-क्रियानुष्ठानों का सफल पालक होने के कारण उसकी चर्या दूसरों के लिए आदर्श होती है। ये तीनों अन्योन्याश्रयी हैं और मिलकर शनैः शनैः धर्म और धार्मिक साहित्य का सविशेष विकास सम्पन्न करते हैं। भारतीय साहित्य की वृद्धि इस सामान्य प्रणाली का भली प्रकार समर्थन करती है।

सैद्धान्तिक और निगूढ तत्वों के बावजूद, धर्म ने, जहां तक कि इस भारत भूमि में उसकी वृद्धि हुई है, समाज के अंग के रूप में मानव सदाचार के सुनिश्चित नैतिक माध्यों के विकास और प्रचार करने का प्रयत्न सदा ही किया है। इस प्रकार धर्म ने सदाचार के आदर्श का काम भी किया है कि जिसके निर्देश के लिए कुछ यथार्थ मानदण्ड आवश्यक थे। ये मानदण्ड विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किए गये हैं : जैसे कि सदा सर्वदा से चले आते देवों के वे आदेश ही हो; प्राचीन शास्त्रों द्वारा वे अज्ञापित हों; और प्राचीन गुरुओं के उपदेश और क्रियादर्श हों। इस अन्तिम प्रवृत्ति ही में हमें भारत के महाकाव्यों, वीर-गाथाओं और औपदेशिक कहानियों-कथाओं के उद्गम का पता भी लग जाता है कि जो सामान्य रूप में प्रारम्भ होकर कालान्तर में बृहत्काय हो गये हैं।

ऋग्वेद के गान किसी दृष्टि से लोक-काव्य नहीं कहे जा सकते हैं। उनका उद्भव, अधिकांशतः, ब्राह्मण वर्ग में ही हुआ था। आह्वानित देवताओं के कृपापात्र एवं जटिल यज्ञ-याज्ञो परम्परा के रक्षक के रूप में ये ब्राह्मण सदा ही, जन साधारण में रहते हुए भी, उनसे ऊपर उठने का प्रयत्न करते रहे हैं। इसलिए न तो वे लोक परम्पराओं के प्रभाव से ही बिल्कुल अछूते रहे हैं और न जन साधारण के आश्रय-विहीन ही। वैदिक काव्य में वर्णन योग्य अनेक मनोरंजक कथाएँ सुरक्षित हैं। उदाहरणार्थ हमें जहाँ यह बताया गया है कि युद्धप्रिय इन्द्र वृत्र समान राक्षसों का संहार और अंधकार एवं अवर्षा का निवारण कैसे करता है। फिर देवों की सहायता करने वाले अश्विनी कुमारों की अनेक पौराणिक आख्यायिकाएँ भी वहाँ गई हैं। जिसे यज्ञानुष्ठान का विशुद्ध ज्ञान है ऐसे आचार्यों के वशीभूत ये सब देव होते हैं इस प्रकार ये ब्राह्मण जन-साधारण की समृद्धि की पुरस्कर्ता अनेक दिव्यात्माओं की श्लाघा-प्रशंसा करते हुए, न केवल अपनी ही शक्ति बढ़ाते हैं अपितु यज्ञ-धर्म को भी फैलाते हैं। तथाकथित आख्यान-ऋचाएँ ऐसे प्राचीन पौराणिक गीत ही हैं कि जिनमें वर्णनात्मक और नाटकीय तत्व भी हैं। इन्हीं में हमें पुरुरवस और उर्वशी का संवाद, यम और यमी का तीव्र वाद-विवाद मिलता है। पहला प्रसंग तो उत्तरकालीन भारतीय साहित्य में अनेक जटिल रचनाओं द्वारा अमर ही कर दिया गया है। इसकी दान स्तुतियों में ब्राह्मणों को उदार चित्त से दान देने वाले दाताओं की अतिशय प्रशंसाएँ सुरक्षित हैं। और यह बहुत ही सम्भव है कि यज्ञों के इन संरक्षकों में से कुछ ऐतिहासिक व्यक्ति भी हों। परन्तु यह दुर्भाग्य की बात ही है कि नाम के अतिरिक्त उनके विषय में हमें और कुछ भी ज्ञात नहीं है।

जब हम ब्राह्मणों को, जिनमें कि ईश्वरवाद और यज्ञवाद के सम्बन्ध में ब्राह्मणों में होने वाले वृथा वाद-विवाद का शुष्क वर्णन ही है, देखते हैं तो मानव उप-उपयोग की प्रधान बात उनमें यही हमें मिलती है कि उनमें अनेक पुरावृत्त और सिद्ध-पुरुषों की जीवनियाँ दी हुई हैं। उनमें धर्म और अनुष्ठान की भी अनेक बातें कही हुई हैं कि जिनमें नैतिकता या सदाचार से कुछ भी

सम्बन्ध नहीं है। उनमें यज्ञ ने एक चमत्कारी यंत्र का रूप ले लिया है कि जिसके द्वारा देवगण यज्ञकर्ता की सांसारिक आकांक्षाएँ पूर्ण करते हैं, और इसीलिए उसके रिपुओं को दुःख और कष्ट भोगना पड़ता है। किसी यज्ञविधि को और उसकी प्रभावकता को स्पष्ट करने, देवों की महानता और उनकी वदान्यता का यशोदान करने, प्राचीन वीरों के कीर्तिगान करने और ब्राह्मणों का महत्व लोक मानस पर जमाने के लिए प्राचीन आख्यान, पुरावृत्त, और सिद्ध पुरुषों की जीवनियाँ यहाँ वहाँ उनमें वर्णित हैं। ब्राह्मणों के स्वार्थ और यज्ञधर्म से स्पष्ट सम्बन्धित होते हुए भी इन कहानियों में से कुछ में लोक-परक तत्व भी हैं। पुरुरवस और उर्वशी का पुरावृत्त हरिश्चन्द्र और यज्ञ के शिकार शुन्शेप की कहानी, प्रजापति की जीवनी वर्णनात्मक दृष्टि से निःसन्देह मनोरंजक है। आधारभूत कथा का केन्द्र-बिन्दु किसी यज्ञानुष्ठान की प्रशंसा और औचित्य आदि की स्थापना के लिए वर्णित विवरण-प्रचुर कथा में से खोज निकालना निःसन्देह कठिन है। अनेक दृष्टियों वाले महाकाव्यों की आदि का वस्तुतः, ब्राह्मणों के इस वर्णनात्मक स्तर से भी पूर्व की है।

जब हम उपनिषद् काल में प्रवेश करते हैं तो वहाँ हमें एक भिन्न संसार ही का परिलक्षण होता है। उपनिषदों की बौद्धिकता के काल में, ब्राह्मण आचार्य पीछे पड़ता जाता है और क्षितिज एक दम नया दिखाई पड़ता है। धर्मशास्त्र में ऐक्य की ध्वनि, जड़ यज्ञों की निरर्थकता और ब्राह्मण-आचार्यों का सर्वज्ञान एकाधिकार, प्रचलित सामाजिक अयोग्यताओं को निवारण कर उच्चतम ज्ञान-प्राप्ति की जनआकुलता, देवों के कोप या प्रसाद से नहीं अपितु स्व-कर्म और जन्मानुसार सांसारिक विषमता के व्याख्याकरण का प्रयत्न, उच्चतर ज्ञान एवं वैराग्य-साधनानुसरण द्वारा शनैः शनैः यज्ञ एवं दान का उच्छेद, समाज के एक सदस्य रूप मानवाचरण के लिए बारम्बार नैतिक-धार्मिक उपदेशों का प्रयोग, ये ही उपनिषदों की प्रमुख धाराओं में से कुछ धाराएँ हैं जो उपनिषदों को ब्राह्मणों से पृथक् कर देती हैं। विचारधारा में इस नवीनता की आदि की व्याख्या करते हुए, विण्टरनिट्ज कहते

हैं। जब कि ब्राह्मण लोग अपने ऊसर यज्ञीय विज्ञान का अनुसरण कर रहे थे, अन्य वर्ग उन उत्कृष्टतम प्रश्नों के निराकरण में पहले से ही लग गये थे कि जिनका अवशेष में ही उपदिष्टों में इतना शुष्क विचार किया गया है। इन वर्गों में से कि जिनका ब्राह्मणों से मूलतः कोई भी सम्बन्ध नहीं था, ऐसे वनवासी और भ्रमणशील तपस्वियों का उद्भव हुआ कि जिनने न केवल समार और उसकी आसक्ति का ही त्याग कर दिया था, अपितु ब्राह्मणों द्वारा किये जानेवाले यज्ञों और अनुष्ठानों से भी वे एकदम पृथक् रहते थे। ब्राह्मणवाद के विरोधी अनेक सम्प्रदाय इन्हीं वर्गों में से बन गये थे और इन्हीं सम्प्रदायों में का एक बौद्ध-सम्प्रदाय इतनी बड़ी ख्याति को पहुँच गया था^१। उपनिषद् स्तर के साहित्य, विशेषतया प्राचीनतम, में हमें कुछ बड़े ही मनोरंजक वर्णन जैसे कि मार्गी और याज्ञवल्क्य का वाद-विवाद, सत्यकाम जाबाल की कथा और प्रवाहण एवम् अश्वपति जैसे क्षत्रियों की घटना, मिलते हैं। इनमें से कुछ तो प्राचीन भारत के बौद्धिक काल के रूप में स्मरण रखने योग्य हैं।

वेदोत्तर कालीन भारतीय साहित्य के वर्णकों की तीन महान सरिताओं ने सूक्ष्मदर्शी विद्वानों का ध्यान अच्छी तरह से आकर्षित कर लिया है। वे सरिताएँ हैं :— बृहत्कथा, महाभारत और रामायण। इनमें से पहली पेशाची प्राकृत में है और पीछे की दोनों संस्कृत में। गुणादय की बृहत्कथा आज मूल रूप में न तो प्राप्य है और न उसके कभी मिलने की ही कोई आशा है। संस्कृत भाषा में भी उसके संक्षेप तीन ही मिले हैं। पक्षान्तर में महाभारत और रामायण के मूल बीज का जो कि उनके लेखकों ने मूलतः प्रस्तुत किया था, पता लगाना भी लगभग असम्भव है, हालांकि सूक्ष्मदर्शी विद्वानों द्वारा ऐसे प्रयत्न निरन्तर किए जा रहे हैं, क्योंकि इनके प्राप्य पाठ, भारत के विभिन्न भागों में सदियों से लगातार अपने-अपने दृष्टिकोण से कार्यरत चतुर मतविस्तारक-सम्पादकों द्वारा किए गए प्रक्षेपों से, बहुत ही विस्तार पा गए हैं। इन्हें महाकाव्य तो न जाने कब से कहा जाने लगा है। और बृहत्कथा को भी, उसमें

रोमानी और काल्पनिक तत्त्वों के होते हुए भी, बहुत सम्भव है कि, महाकाव्य का गौरव और विशालता ही प्राप्त हो गई होगी। दोनों महाकाव्यों की यह वृद्धि अपने में ही एक समस्या है और इनके सूक्ष्मदर्शी शोधक बड़े अच्छे परिणामों पर पहुँच चुके हैं।

कुरु शाखा के सिद्धों की वीर कथा ही महाभारत का मूल बीज है और इसमें कौरव महायुद्ध का विशेष रूप से वर्णन किया गया है। परन्तु इस सांसारिक घटना पर विश्वकोशीय साहित्य की ऐसी महान् उपरि-संरचना चढ़ा दी गई है कि जिसमें विभिन्न आदर्शों और युगों के स्पष्ट दर्शन दीख पड़ते हैं। इस अपार सामग्री में ईश-ब्रह्माण्ड विषयक धार्मिक कथाएँ हैं, तो स्वतंत्र कहानियाँ भी, जैसाकि कर्ण की जन्म कथा, ब्राह्मणों को दान देकर युधिष्ठिर-पाप-मोचन की कथा, और यादव-वश-नाश की कथा। इसमें धार्मिक-दार्शनिक और नैतिक विभाग भी है जिसमें राजतंत्र और सामाजिक व्यवहार के अनेक सारसत्य हैं। इसमें रूपकथाएँ, दृष्टान्तकथाएँ और औप-देशिक वर्णक भी हैं। अवशेष इसमें वैरागी कविता भी बहुत कुछ है। सारा का सारा ग्रंथ, क्या अंशों में और क्या समस्त रूप में ही, अब तक अनेक सम्पादकों के हाथ से निकला हुआ है; और इसलिए, विसंगत एवम् परस्पर विरोधी होने के उपरान्त भी, उसके मूल पाठ में सभी प्रकार के विषय प्रविष्ट हैं। महाभारत का पाठ, जैसा कि आज मिलता है, समर्थ विद्वानों के मतानुसार, अत्यन्त सुदृढ़ और असंदिग्ध भागव प्रभाव में वर्तमान रूप पाया हुआ है।^२ इसके पहले और पीछे भी इसके पाठ पर इसी प्रकार के अनेक साम्प्रदायिक प्रयत्न होते रहे होंगे। मूल कथानक से विशेष सम्बन्ध नहीं होते हुए भी इसमें अनेक छोटे और बड़े आख्यान बस जोड़ दिए गए हैं। जो भी हो, महाभारत सभी प्रकार के वर्णकों का एक महान संग्रह है और इसने उत्तरकालीन लेखकों को अपने विषय-निर्वाचन में बहुत ही प्रभ वित किया है।

पक्षान्तर में महाभारत जितने विविध विषय रामायण

२. वी. एस. सुखठकर दी भुगुज एण्ड दी भारत, अनाल्स आफ दी बिहार उडीसा रिसर्च सोसाइटी पत्रिका भा. १८ खण्ड १ पृ. १-७६।

में नहीं है हालांकि इसका पाठ भी उन व्यवसायी कथकों के हाथों कि जो लोकरुची की मांग की पूर्ति करना चाहते थे, वृद्धि को अवश्य ही प्राप्त हुआ है। राम की कथा को महाभारत में भी स्थान मिल गया है और दशरथ जातक के कथानक से उसका निकट सादृश्य है। रामायण का पहला और अन्तिम काण्ड जिन्हें सूक्ष्मदर्शियों ने पीछे से जोड़ा हुआ घोषित किया है, उस विष्णु की महिमान्वित करने को, कि जिसने कि राम-रूप में अवतार लिया था, सम्पादकीय प्रयत्न का स्पष्ट ही उद्घोष है। इस प्रकार विशुद्ध लोक-कथा पर भी साम्प्रदायिकता ने अपना हाथ साफ किया है। रामायण में विकसित कुछ पात्र अवश्य ही मनोरंजक हैं। भारतीय स्त्री के आदरणीय आदर्श रूप में सीता का वहाँ चित्रण है, और भारतीय गावों के लोकप्रिय देवता के रूप में श्री हनुमान का। सीता-जन्म की काल्पनिक कथा हमें उस ऋग्वेदीय लाङ्गल-पद्धति का स्मरण करा देती है कि जिसका वहाँ व्यक्तिकरण कर देवी रूप से आह्वान किया गया है। रामायण निरा महाकाव्य ही नहीं है, अपितु उसका बहु-ताश ऐसी अलंकार-बहुल काव्य प्रवृत्ति भी प्रदर्शित करता है कि जहाँ कथा की शैली, उसके विषय जितनी ही महत्वपूर्ण है। उसके सातवें काण्ड में विशेष रूप से, हमें अनेक पौराणिक कथाएँ और जीवनियाँ प्राप्त होती हैं जैसा कि ययाति एवं नहुष की जीवनी, वशिष्ठ और अगस्त्य की जन्म-कथा आदि-आदि कि जो पीछे से उसमें प्रविष्ट कर दी गई है।

अब पुराणों का विचार करें। जगदुत्पत्तिक और उनमें देवों, सन्तों, वीरों, अवतारों और राजवंशों का वर्णन किया गया है। उनकी औपदेशिक ध्वनि और साम्प्रदायिक उद्देश्य सर्वत्र बिलकुल स्पष्ट है। महाभारत और रामायण के उत्तरकालीन क्षेत्रों से उनका सन्निकट सम्बन्ध परिपूर्ण परिलक्षित होता है।

रामायण में अलंकार-बहुल शैली का प्रदर्शन कहीं-कहीं ही होता है। परन्तु जब हम सस्कृत-साहित्य के काव्य-स्तर की ओर देखते हैं तो महाकाव्य-स्तर से उसकी विशेषता स्पष्ट परिलक्षित हो जाती है। महाकाव्यकार का मुख्य लक्ष्य अपना प्रतिपाद्य विषय और उसका सजीव

वर्णन ही रहा था। परन्तु अन्य काव्यों में, प्रतिपाद्य विषय कवि को अपनी व्याकरण-ज्ञान पटुता, भाव-व्यंजन सुकरता, शैली-चातुर्य, वर्णन और भाव दोनों से सम्बन्धित काव्यालंकारिता का सुदक्ष प्रयोग, और काव्यशास्त्र के जटिल और रवाजी सिद्धान्तों के पूर्ण ज्ञान के प्रदर्शन का, एक निर्बल आधार है। जो कभी गुण थे वे ही दोष हो गए, क्योंकि उत्तरकालीन कवियों ने अपने ज्ञान के पांडित्यपूर्ण प्रदर्शन की चिन्ता में विभिन्न मूल्यों को बल देने के अनुपात और सन्तुलन का सब ज्ञान ही भुला दिया है। जैसा कि मेकडोन्येल ने कहा है, प्रतिपाद्य विषय जटिल अभिमान के प्रदर्शन का साधन अधिकतम मान लिया गया है यहाँ तक कि अन्त में सिवा शाब्दिक कलाबाजी और दीर्घ पद-विन्यास के और कुछ बह रहा नहीं गया है। कालीदास से प्रारम्भ होकर और सस्कृत के जीवटपूर्ण काल की समाप्ति तक, महाभारत और रामायण ही अनेक लेखकों के लिए सदा-प्रवाही विषय-स्रोत रहे थे और जिसे उनमें गीतिक, शृंगारिक और औपदेशिक रसों द्वारा खूब अच्छी प्रकार सजाने में कोई कसर ही नहीं रखी है। काव्यों में रघुवंश, भट्टिकाव्य, रावणवहो, जानकीहरण आदि का विषय राम कथा ही है और किराताजुनीय, शिशुपालवध, नैषधीय आदि का विषय निर्वाचन महाभारत का आभारी है। नाटकों में से अधिकांश का प्रसंग दोनों महाकाव्यों और बृहत्कथा से लिया गया है। मुद्राराक्षस और मालतीमाधव जैसे नाटक इन्हीं-ही हैं कि जिनमें महाकाव्य बाह्य पात्रों को अपने नाटक का विषय बनाया है। बाद के कवियों ने, चाहे गद्य हो या पद्य, कथा-वर्णक का ध्यान इतना नहीं रखा है जितना कि अपने पांडित्य-प्रदर्शन का। दशकुमारचरित, वासवदत्ता, कादम्बरी आदि गद्य रमण्यासों के लिए तो यह बिलकुल ही सत्य है। इनके लेखक दोनों महाकाव्यों से गहन परिचित प्रतीत होते हैं, परन्तु उनके कथानक का विषय न तो उनसे लिखा ही गया है और न वह उनका है ही। उनकी शैली भी ऐसी है कि उन्हें परम-बुद्धि-अभिमानी भी कोई-कोई ही पढ़ सकता है। उपमाओं की छटा, अनुप्रासों का बाहुल्य, समास भरी जटिल शैली ही इन गद्यों के सामान्य

लक्षण हैं। इनके साहित्यिक शोषटव के रसास्वादन और काव्य-विचारणा के ग्रहण करने के लिए व्याकरण और अलंकार शास्त्र के कठोर अध्ययन की दीर्घकालीन शिक्षा-कृता अत्यन्त ही आवश्यक है। इन लेखकों की इच्छा न होते हुए भी, उनकी पृष्ठभूमि धार्मिक है और सारे ही ग्रन्थ में धार्मिक औपदेशिक अनुरोध बिखरे पड़े हैं। भर्तृहरि जैसे लेखकों की रचनाओं में औपदेशिक तत्व प्रधान हो जाते हैं। अमरू जैसे कवियों की कृतियों में विशुद्ध शृङ्गार परिलक्षित होता है, परन्तु जयदेव जैसे कवि द्वारा ये ही भाव धार्मिक पृष्ठभूमि में पच्चीकरण कर दिये गए हैं और आध्यात्मिक सुतान द्वारा उनकी अभिव्यंजना हुई है। इन अलंकार-बहुल रचनाओं में वर्णनात्मक कहानी का कोई अवकाश या क्षेत्र रह नहीं गया है।

जब हम पंचतन्त्र और उस जैसे ही ग्रन्थों की औपदेशिक नीति-कथाओं का, भाव-व्यंजक कथाओं का जिनका नभूना बृहत्कथा में होना प्रतीत होता है और जिनकी वेतालपंचविशतिका आदि कथाएँ आज प्रतीक हैं और धार्मिक एवं नैतिक कथाओं का कि जिनके नमूने महाकाव्यों में मिलते हैं और जिनका विभिन्न धर्म के अनुयायी अपने-अपने ढंग से परिपोषण करते हैं, व्यापकता का विचार करते हैं तो ऐसा मालूम होता है कि मनोरंजन का लक्ष्य उपेक्षित न करते हुए भी, पाठक को उपदेश देने की इच्छा ही लेखक के मन में सर्वोपरि है। मनुष्य भूल करने वाला एक पशु है जो अन्तर और बाह्य दोनों ही शक्तियों के प्रभाव से प्रभावित होकर अनेक रूप में काम करता है। इसलिए उसे सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र्याने आचरण की शिक्षा देना परम आवश्यक है। बहुतांश में यह ऐसे दृष्टान्तों द्वारा सम्पन्न किया जा सकता है कि जिनमें पशु-पक्षी पात्र रूप से प्रस्तुत किये जाते हों, जिनमें काल्पनिक व्यक्ति भी भाग लेते बताए जाते हैं या जिनमें देव और अर्ध-ऐतिहासिक व्यक्ति तक अभिनेता हों।

२. धम्मण भावना : वैरागी काव्य

भारत की वर्णनात्मक कथा के स्थूल रूपरेखा का सर्वेक्षण अब तक जिस साहित्य से किया गया था, वह सब उन लोगों का था जो कि वेदों को सर्वोत्तम धार्मिक साहित्य मानते हैं और जो वैदिक धर्म या उसके प्रत्यक्ष-

अप्रत्यक्ष उत्तराधिकारी धर्मों के ही अनुयायी हैं। वेद काल से लेकर महाकाव्य एवं स्मृति काल तक के भारतीय साहित्य के सूक्ष्म ऐतिहासिक अध्ययन ने भारतीय विद्या-विदों को साहित्य की इस व्यापकता में निहित धार्मिक विचारधारा के दार्शनिक विकास में एक दरार का पता लगा लेने में सहायता मिली है। उपनिषद्-युग तक पहुँचने के पश्चात्, हमें ऐसे विचित्र विचारों से वास्ता पड़ता है जिसे कि पुनर्जन्म सिद्धान्त, वैराग्य और दुःखवाद की ओर जीवन का झुकाव और यज्ञ धर्म से आत्मविद्या की महानता। अब ज्ञान का एकाधिकारी ब्राह्मण ही नहीं माना जाता है। प्रमुख क्षत्रियगण उपर्युक्त सिद्धान्तों में से कुछ की व्याख्या और विवेचना करते देखे जाते हैं कि जिनका यथार्थवादी समीक्षक को वेद या ब्राह्मण में कोई भी आधार नहीं मिलता है। आर्यों के भारत में पदार्पण के पूर्व, हमारा यह सोचना उचित ही है कि, गंगा-यमुना के के उर्वर तटों के सहारे-सहारे वसी अत्यन्त सुसंस्कृत समाज पहले से ही विद्यमान थी और उसके अपने धार्मिक आचार्य व उपदेष्टा भी थे। वैदिक शास्त्र सदा से ही मगध देश को जहाँ कि जैन एवं बौद्ध धर्म पूर्ण तेज के साथ चमक रहा था, कुछ-कुछ घृणा से देखते रहे हैं, क्योंकि ये धर्म वेदों का आधिपत्य स्वीकार ही नहीं करते थे। ब्राह्मण काल की समाप्ति पर दार्शनिक विचारधारा में दीखने वाली इस दरार ने एक ऐसी स्वदेशी धार्मिक विचारधारा के अस्तित्व का स्वीकरण आवश्यक कर दिया है। कि जो आर्य विचारधारा को प्रभावित करते हुए स्वयम् भी उससे पूर्ण प्रभावित हुई होगी। भिन्न-भिन्न पण्डितों ने पूर्वी भारत के इस स्वदेशी धर्म का भिन्न-भिन्न रीति से वर्णन किया है। याकोबी ने उसे लोक-धर्म कहा; तो लायमेन ने यह कि उसके तोता परिव्राजक थे। गारबे ने उनका सम्बन्ध क्षत्रियों से बताया तो हिस डेविड्स ने उसे सुसंगठित शक्तिशाली यायावरो का प्रभाव माना। विण्टरनिट्ज ने सहज रूप से इन विचारों को 'वैरागी काव्य' का नाम दिया और मैं इसको 'मगध धर्म' कहता हूँ। जैसा कि मैंने अन्यत्र कहा है। हमें सांख्य, जैन, बौद्ध, और प्राजीवक सिद्धान्तों को आर्य विचारधारा के उपनिषदिक भूमि से अनुक्रमे संग्रहीत स्फुट विचारों की

विकृत संलगता ही कहना उचित नहीं है। इस सबकी भ्रान्तरिक समानता, आर्य [वैदिक और ब्राह्मण] धर्म से इनकी अनिवार्य असमानता को सामने रखते हुए और उन दरारों का विचार करते हुए कि जो वैदिक और उपनिषदिक विचारधाराओं के अपक्षपाती अध्ययन से पाई जाएं, यही बताती है कि यहाँ ऐसी स्वदेशी विचारधारा जिसे हम सुविधा के लिए 'मागध धर्म' कह सकते हैं, पहले से विद्यमान थी ही कि जो सांसारिक दृष्टिकोण में एकदम दुखवादी, आध्यात्मिकता में बहुदेववादी नहीं तो द्वैतवादी, आचार में विरागी, पुनर्जन्म और कर्म के सिद्धान्त में निःसन्देह विश्वास करने वाली, नैतिक दृष्टिकोण में अतिमानवी और सर्वजीव-तत्त्ववादी, वेदों और वैदिक अनुष्ठानों में श्रद्धा जरा भी नहीं रखनेवाली, और निःसकोच रूप से सृष्टिकर्ता का स्वीकार नहीं करनेवाली थी^४। जैन और बौद्ध इस मागध धर्म के अच्छे आदर्शभूत प्रतिनिधि हैं कि जिसकी पृष्ठ-भूमि की रूपरेखा मैंने अन्यत्र इन शब्दों में दी है, 'जैन धर्म के प्रमुख सिद्धान्तों का अन्य भारतीय धर्म-सम्प्रदायों के सिद्धान्तों के साथ यहाँ वहाँ साम्य और वैपम्य बताते हुए जो संक्षिप्त सर्वेक्षण मैंने किया है, उससे मुझे भारतीय दार्शनिक विचारधारा के विकास में जैन-धर्म की स्थिति पर अनिर्णायक रूप से प्रकाश डालने का प्रलोभन होता है। जैन-धर्म को वेद की अधीनता का अस्वीकार, बौद्धों के पूर्ण और साख्यों के आशिक, कदाचित् यह बताता है कि ये तीनों एक ही विचारधारा के हैं। पुनर्जन्म का सिद्धान्त ही नहीं अपितु उससे उद्भूत जीवन-दुःखवाद और कर्म सिद्धान्त कि जो वैदिक साहित्य के उपनिषदों में ही सर्वप्रथम निश्चित रूप से दिखलाई पड़ता है, इन तीनों को समान रूप से मान्य है। दया और नीति का दृष्टिकोण एवम् हिंसा की घोर निन्दा, फिर चाहे वह यज्ञ के अर्थ अथवा व्यक्तिक इच्छा के लिए की जाए, भी तीनों को समान रूप से मान्य है। बौद्धों और साख्यों के सिद्धान्त बहुत से समान हैं, यह भारतीय-विद्याविदों के लिए कोई नई बात या सूचना नहीं है। तार्किक द्वैतवाद, आत्मा-बहुवाद, द्रव्य द्वारा आत्मा का विभ्रमण, साख्य का यह आदिम विश्वास कि

पुरुष जितनी ही प्रकृतियाँ हैं और अनेक विशिष्ट बातें जैनों और साख्यों को समान मान्य है। तीनों ही सम्प्रदायों में सृष्टि-कर्ता या ऐसे अतिमानव को कि जो दण्ड या पुरस्कार वितरण किया करे कोई भी स्थान प्राप्त नहीं है। इन सभी समान मान्यताओं की, वैदिक धर्म की स्वाभाविक विकास के साथ उस समय तक कोई भी संवत्ति नहीं बैठती है जब तक कि उपनिषद्-युग का मध्य-काल नहीं आ जाता है। साख्य ने, कि जिसे उसकी मनोमोहक परिभाषावली के कारण सनातन स्वीकार कर लिया गया है हालांकि वेद-मान्य सनातन से उसमें प्रकट विसंगतियाँ भी हैं, कतिपय उपनिषदों को विशेष रूप से प्रभावित किया है, और फिर आस्तिकवादी योग का बल पाकर साख्य निःसन्देह ही सनातन बन गया है। जैन, साख्य और बौद्धों की इन समान बातों को, उनके ऐसे ही आर्य-वैदिक अनुष्ठानों के समान मत-भेदों को, और आजीवक, पूरण काश्यप आदि सम्प्रदायों से मिलते-जुलते जैनों के कुछ विशेष सिद्धान्तों को दृष्टि में रखते हुए, मैं एक ऐसे महान् मागध-धर्म का, प्रमुख अनुभावों में स्वदेशी, अस्तित्व स्वीकरण के पक्ष में हूँ कि जो मध्य-देश में आर्यों के आगमन के पूर्व ही पूर्वी भारत में गंगा के तटों पर फल-फूल रहा था। बहुत सम्भव है कि इन दोनों धाराओं का ब्राह्मण-युग के अन्त समय में संमिश्रण हुआ हो और उसके परिणाम स्वरूप एक और तो उससे उपनिषदों का उद्भव हुआ जिनमें याज्ञवल्क्य आदि ऋषि आत्म-विद्या का प्रचार पहले पहल कर रहे हैं एवम् दूसरी और जनता द्वारा आचरित वैदिकानुष्ठान रूपी धर्म के विपक्षी रूप में जैन और बौद्ध धर्म प्रचार पाए कि जो मागध-धर्म के महान् वारसे के सुदृढ़ प्रतिनिधि के रूप में शीघ्र स्थानी हुए^५।

विण्टरनिट्ज के अनुसार, प्राचीन भारत में सभी बौद्धिक प्रवृत्तियाँ केवल ब्राह्मणों में ही परिसीमित नहीं थीं। ब्राह्मण शास्त्रों के साथ-साथ परिव्राजक, श्रमण, अथवा विरागी साहित्य भी तब था। प्राचीन भारत के बौद्धिक और आध्यात्मिक जीवन के इन दो प्रतिनिधियों

को, बौद्ध ग्रन्थों में 'श्रमण और ब्राह्मण', अशोक के शिलालेखों में 'समणबंभण', और मंगस्थनीज द्वारा 'ब्रकम-नाह और सरमनाई' कह कर भली प्रकार मान्य किया गया है। अपनी पृथक-पृथक जीवन कथाओं, नैतिक मूल्यों और धार्मिक दृष्टिकोणों से ये दोनों ही भली प्रकार पहचाने जा सकते हैं। ब्राह्मण सिद्ध पुरुषों की जीवनियां वैदिक परम्परा और कथाओं से प्रारम्भ होती हैं। महान् ऋषि, वैदिक मंत्रद्रष्टा और स्मृतिकार प्रायः देवों के समकक्ष ही स्थान पा गए और ब्राह्मणों को उसी प्रकार भेंटें दी जाने लगीं, मानों वे पूर्ण क्षमता प्राप्त देव प्रतिनिधि ही हों। परन्तु श्रमण सिद्ध-पुरुषों की जीवनियां संसार त्याग करने वाले संतों और घोर तप करने वाले तपस्वियों की है। ब्राह्मण नीति और धर्म विश्वास जातिवाद में खूब ही भीजे हुए है। वहाँ संसार-त्याग स्वीकार तो किया गया है, परन्तु जीवन में प्रमुख भाग उसे वहाँ प्राप्त नहीं है। वेद का ज्ञान, यज्ञ और ब्राह्मण की पूजा-प्रतिष्ठा ही को उसमें प्रमुखता दी गई है। नैतिक मूल्यों का वहाँ महत्व लौकिक व्यवहारानुगत है। दान का अर्थ वहाँ है ब्राह्मणों के प्रति ही उदारवृत्ति। और आत्म-बलि का अर्थ है ब्राह्मणों की आज्ञानुवृत्ति। राजा का स्वर्ग गमन भी ब्राह्मण गुरु की एक-निष्ठ भक्ति पर ही निर्भर करता है। परन्तु वैरागी काव्यों के नैतिक लक्ष्य इससे बिलकुल ही भिन्न हैं। नैतिक अनुशासन और संसार-त्याग यहाँ मोक्ष या निर्वाण प्राप्ति के साधन रूप किया जाता है। संत न तो किसी से स्वयम् भयाक्रान्त रहता है और न वह स्वयम् किसी को भयाक्रान्त करता है। आत्म-त्याग और आत्म-निरोध का वह अत्युच्च अवतार ही है। सभी श्रेणियों के ज्ञानी इन ध्येयों का आचरण करते हैं, और अहिंसा एवम् मैत्री ही धार्मिक जीवन के अत्युच्च सिद्धान्त है।

विरागियों की नैतिकता या धर्म का आधार पुनर्जन्म और कर्म में विश्वास है। सर्वत्र संसार की प्रकृति की घोर शिकायत ही शिकायत है। मोक्ष के शाश्वत सुख पर खूब ही बल दिया गया है। ये विचार वेद में कहीं भी नहीं मिलते हैं। छान्दोग्य और बृहदारण्यक उपनिषदों में कर्म-सिद्धांत के कुछ आकस्मिक लक्षण मिल जाते

हैं कि जहाँ इसका ज्ञान क्षत्रियों राजा द्वारा एक ब्राह्मण को दिया जा रहा है। वैरागी काव्य में जो संवाद स्पष्ट है उस दुःखवाद का निर्देश तों एक दम उत्तरकालीन उपनिषदों ही में दिखलाई पड़ता है।

इस वैरागी काव्य का स्पष्ट प्रभाव महाभारत और जैन एवम् बौद्ध शास्त्रों में ही दीख पड़ता है जैसा कि हम महाभारत के पिता-पुत्र संवाद में पाते हैं। इसका ही प्रतिरूप बौद्धजातक और जैन उत्तराध्ययन सूत्र में भी हमें दीख पड़ता है। इस प्रकार के वैरागी अंश महाभारत में अनेक हैं। उदाहरण स्वरूप निम्न अंश गिनाए जा सकते हैं :—विदुरनीतिवाक्य [५, ३२-४०], धृतराष्ट्र शोकापनोदन [स्त्री-पर्व २-७] 'कुएँ में लटक रहे मनुष्य' का दृष्टान्त, जो कि जैन एवम् बौद्ध शास्त्रों में भी पाया जाता है, कर्मव्याघ का उपदेश [वनपर्व, २०७-१६१, तुलाधार-जाजली सम्वाद। शांतिपर्व, २६१-६४], यज्ञ निन्दा प्रकरण [१२, २७२ आदि], गो कपिलीय प्रकरण [वही, २६६-७१], जनक की अनासक्ति [वही, १७८], जो जैन और बौद्ध शास्त्रों में भी है, व्याघ और कबूतर की कथा [शांति, १४३-४६], मुद्गल की कथा [३, २६० आदि], आदि आदि। इन अंशों में प्रतिपादित कुछ सिद्धान्त और नैतिक मूल्यों की ब्राह्मण धर्म से जैसा कि अन्यत्र उसका प्रतिपादन किया गया है, बिलकुल संगति नहीं है।

इस पुरातन भारतीय वैरागी काव्य की ऐतिहासिक स्थिति का जब हम विचार करते हैं तो कहना पड़ता है कि इसका उद्भव स्थान महाभारत तो नहीं ही है क्योंकि इस प्रकार के अंश उसके नवीनतम स्तरों में ही मिलते हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि महाभारत में सम्मिलित किए जाने के पूर्व ही ये सम्वाद स्वतंत्र रूप से अस्तित्व में होंगे। अन्त में विण्टरनिटज कहते हैं कि—मैं ऐसा सोचने को प्रेरित होता हूँ कि वैरागी काव्य और उसमें परिलक्षित जीवन का विशिष्ट दृष्टिकोण, सर्वप्रथम उस योग के पुरातन रूप में उद्भूत हुआ कि जो एक आचारपद्धति और पाप-निष्कृति का व्यवहारिक सिद्धान्त मात्र ही था और जो सांख्य विचारधारा से उतनी ही सरलता से मिलाया जा सकता था जितना कि

जैन और जैन और बौद्ध उपदेशों के साथ । साख्य और योग दोनों ही यद्यपि अब सनातन ब्राह्मण-धर्म के पेटे में समाविष्ट हो गए हैं, परन्तु मूलतः वे ब्राह्मण-धर्म नहीं थे । वे वेद से स्वतंत्र थे । उसने यह स्थिति स्वीकार कर ली है कि वैरागी काव्य के सिद्धों के कुछ जीवनवृत्त्य और उक्तियाँ जो कि महाभारत में मिलती हैं, निःसन्देह जैन और बौद्ध शास्त्रों से लिए गए हैं । जो जीवनवृत्त्य और उक्तियाँ सब में समान रूप से हैं, उनके सम्बन्ध में दो सम्भावनाएँ हो सकती हैं—‘पहली तो यह कि मूलतः वे बौद्ध या जैन ही हो, या फिर यह कि ये सब अनुरूप अश किसी एक ही श्रोत याने इससे भी प्राचीनतर वैरागी साहित्य के हों कि जो सम्भवतया योग अथवा साख्य-योग की शिक्षा के सम्बन्ध में उद्भूत हुआ हो’ ।

यद्यपि यह अभिगमन कुछ भिन्न है, फिर भी वैरागी साहित्य जिसका कि विवेचन ऊपर किया गया है, और मगध-धर्म जिसकी भी रूपरेखा मैने यहाँ दी है, दोनों में बहुत समानता है । मगध के भौगोलिक पक्षपात के सिवा, दोनों ही वाक्य-विशेष प्रायः एक ही प्रकार के भावों को प्रकाश करते हैं । यह एक दुर्भाग्य की ही बात है कि मंखली गोशाल, पूरण काश्यप, आदि आदि ज्ञानियों की कृतियाँ आज हमें कोई प्राप्त नहीं हैं । परन्तु जो प्राचीन भारतीय साहित्य वारसे में हमें प्राप्त हुआ है, उससे विन्टरनिट्ज की कही सिद्धों की जीवनियों की प्रकृति और नैतिक-धार्मिक दृष्टियों को मद्दे नजर रखते हुए यह निःसकोच कहा जा सकता है कि जैन और बौद्ध साहित्य उस वैरागी काव्य के प्रधान रक्षक हैं और जैन धर्म एवं आर्य बौद्ध धर्म ही उस मगध धर्म के अति उत्कृष्ट प्रतिनिधि हैं ।

३ आदि बौद्ध साहित्य :

सारे ही बौद्ध साहित्य में जिसका कि अध्ययन जैन साहित्य की अपेक्षा अधिक पूर्णता और सूक्ष्मता से किया जा रहा है, बुद्ध का व्यक्तित्व प्रायः प्रत्येक संदर्भ में पाठक

पर अत्यधिक प्रभाव डालता है । बुद्ध ऐसे वैराग्य-धर्मवन्तरी हैं कि जो मानव के दुःखों की चिकित्सा अपने ही धार्मिक सिद्धांत रूपी औषधियों को देकर करने के इच्छुक हैं । वे एक सफल उपदेशक थे और इसलिए वे लोगों के शरीर और मन दोनों पर ही शीघ्र अधिकार जमा लेते थे । फलतः हम पढ़ते हैं कि वे अनेक आत्मादाक और मनोरंजक कथाएँ जो कि शिक्षाप्रद और सुश्राव्य दोनों ही होती थीं, कहते और उन्हें सुनकर सब प्राणी इह भव और पर भव दोनों में ही सुखी होते थे । भारतीय विचार पद्धति में दृष्टा ने महत्व का काम किया है और अनुमान वाक्य (सिलोनिज्म) में दृष्टांत तो होते ही हैं । यही कारण था कि बुद्धदेव सभी प्रकार के जीवनियों से अपने को पूर्ण अवगत रखते थे । इसलिए उदाहरण या दृष्टांत वे प्रस्तुत करते थे, श्रोताओं को उनकी बुद्धिमत्ता एवम् उनके उपदेश की प्रामाणिकता में सहज ही विश्वास हो जाता था । यह भी बहुत सम्भव है कि बुद्ध अपने उपदेशों में लोक-कथा का भी समावेश करते थे । पाली साहित्य में इस बात के प्रचुर प्रमाण हैं कि बौद्ध साधुओं और उपदेशकों ने अपनी धर्म-देशनाओं को श्रद्धा, धर्म के लिए तपस्या, या दुःख सहन, सफल प्रायश्चित्त और अर्हंत-पद प्राप्ति सम्बन्धी कथाओं के अनेक दृष्टान्तों द्वारा खूब ही सजाते थे । कभी-कभी वे धर्मप्राण जीवनियों की कल्पना भी कर लेते थे । परन्तु अधिकांशतया वे पशुओं की नीति कथाओं, रूप कथाओं और लोक कथाओं के सम्पन्न भण्डार से या अनाध्यात्मिक साहित्य में से ही चुनी हुई कथाओं को ही थोड़ा सा हेर-फेर कर अपने धार्मिक सिद्धांतों के प्रचार के उपयुक्त और अनुरूप बना लेते थे । लोक या आध्यात्मिक साहित्यिक किसी भी कथामय को बौद्ध रूप देने में बोधिसत्व का सिद्धांत, पुनर्जन्म और कर्म-सिद्धांत की दृष्टि से, एक उत्कृष्ट साधन था । उपमाओं और दृष्टांतों का जनता पर बड़ा ही प्रभाव पड़ता है और उनसे श्रोता विशुद्ध तर्कों की अपेक्षा धर्म का मर्म बहुत शीघ्र समझ जाते हैं । प्रमुख उपदेशों ने इसीलिए अपनी देशनाओं को मनोरंजक और कर्मप्रिय

६. विन्टरनिट्ज के ग्रन्थ सम प्रावलम्स आफ इंडियन लिटरेचर कलकत्ता १९२५ में उत्कृष्ट लेख ऐसेटिक लिटरेचर इन इन्सेन्ट इंडिया का सार संक्षेप में दिया है ।

७. इन्साइक्लोपीडिया आफ एबिस एण्ड रिजिजनः ७, पृ० ४६१ ।

बनाने के लिए सदा ही इनका उपयोग किया है।

हम विनयपिटक को ही लें। उसके खन्दकों में नियमों और उपनियमों का प्रवेश दृष्टांतों द्वारा किया गया है और उनमें उसी समय का चित्रण है जब कि बुद्ध द्वारा उनकी घोषणा की गई थी। वृत्तवग्ग में भी हम अनेक उपदेशप्रद कथानक देखते हैं। उनमें से कुछ तो धर्म-परिवर्तन कथानक हैं तो कुछ ऐसे के जो बुद्ध के या बुद्ध के भिक्षुओं के जीवन के साथ गुंथे हुए हैं। सौरिपुत्त, मोगल्लान, महाप्रजापति, उपासी, जीवक आदि के कथानकों का सामाजिक और मनोवैज्ञानिक सार्वकालिक उपयोग है। सुत्तपिटक के दीर्घनिकाय और मज्झिम-निकाय में भी हमें बुद्ध जीवन की कुछ घटनाएँ मिलती हैं। पयासीसुत्त जैसे संवाद भी उनमें हैं और ऐसी पौराणिक कथाएँ और सिद्ध-पुरुषों की जीवनीयाँ भी कि जो किसी सिद्धांत का प्रदर्शन करती हैं या कोई धर्माचार बताती हैं। छन्न, आस्सलायन आदि की कथाएँ किसी घटना के वास्तविक होने जैसी प्रतीत होती हैं। डाकू अंगुलिमाल का कथानक, कि जो भिक्षु होकर अर्हत् के पद तक पहुँच गया था, राजा मखदेव की जीवनी कि जिसने श्वेत केश के देखते ही प्रव्रज्या ले ली थी और रत्थपाल का संसार-त्याग और सांसारिक सुखों की असारता पर फिर भारी तिरस्कार, ये त्याग के आदर्श को गौरवान्वित करने वाले गेय कथानकों के कुछ उत्तमोत्तम उदाहरण हैं। विमानवत्थू और पेटवत्थू दोनों ही ग्रंथों में एक आदर्श पर ही बनी ऐसी कहानियाँ दी हुई हैं कि जिनमें परभव में सुखी या दुखी जीवन विताने और अमुक अमुक सुख दुःख पाने के कारणों का चित्रण है। इन सब कहानियों का लक्ष्य कर्म सिद्धांत की सार्वभौमिकता और परम प्रभाविकता सिद्ध करना ही है। सम्बन्धित व्यक्ति जब अपने दुर्भाग्य और सौभाग्य के कारणों का विवेचन करता है तो इस प्रकार के वर्णकों का निश्चय ही श्रद्धाशील श्रोताओं पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। उस कथानक में जो भी कमी रह गई हो, टीकाकार उसकी खानापूरी कर देते हैं। थेर और थेरी गाथाएँ उन प्रव्रजित मनुष्यों और स्त्रियों की आत्मा की आध्यात्मिक स्खलनाओं की स्वीकृतियों का संग्रह है कि जो शांति प्राप्ति के उत्कट

आकांक्षी थे। ये सब वैरागी वीर ही थे और इनकी उक्तियों द्वारा दिव्य-प्रकाश और उदाहरणों द्वारा प्रेरणा उन सब लोगों को मिलती है जो कि आध्यात्मिक लक्ष्य की साधना करना चाहते हैं। इन व्यक्तियों में कुछ तो ऐतिहासिक ही प्रतीत होते हैं। उनके वचनों में यद्यपि उनके जीवन की घटनाओं का विवरण कुछ भी नहीं मिलता है, फिर भी तदनुसारी अपदान कथाओं और धर्मपाल की टीका में इन भिक्षु और भिक्षुणियों के विषय में बहुत सा विवरण या व्योरा दिया हुआ है। अधिकांश कथाएँ विलकुल यांत्रिक सी निरस लगती हैं। फिर भी धार्मिक और नैतिक उपदेश की कहानियाँ होने के कारण उनका एक विशेष शहत्व है। नामों में उनका कोई मूल्य नहीं है, परन्तु त्याग की भावना, कर्म-सिद्धांत की क्रिया, धार्मिक और नैतिक मूल्यों की सत्यता और धर्म-परायण जीवन की आवश्यकता की छाप इन कथानकों द्वारा आस्तिकों पर पड़ती ही है। जब विभिन्न सांसारिक स्थिति के स्त्री-पुरुषों की कथाओं पर जिन्होंने धार्मिक दृष्टियों से प्रेरणा प्राप्त कर भिक्षु जीवन स्वीकार कर लिया था, हम दृष्टिपात करते हैं तो सहज ही समझ जाते हैं कि वैराग्य के मूल्यों का इन कथा-लेखकों के दृष्टिकोण का प्रभाव बहुत ही बड़ा पड़ा था। इन कथानकों में से कुछ निःसंदेह यथार्थ उपदेशी कथा और जीवन को वास्तविक चित्रों का मनोरंजक नमूना ही है।

फिर दो बौद्ध वर्णात्मक साहित्य के व्यापक प्राचीन ग्रन्थ हैं कि जो कि कथा द्वारा धार्मिक और वैरागी लक्ष्यों का-सिद्धान्तों का उपदेश देते हैं। इनमें से पहला ग्रन्थ है जातक और दूसरा है अपदान। बौद्ध परिभाषा के अनुसार 'जातक' उस कथा को कहा जाता है कि जिसमें बुद्ध अपने किसी पूर्वजन्म में कुछ न कुछ भाग भजते ही हैं और वह भाग मुख्य नायक का हो या किसी अन्य का भी हो सकता है यहाँ तक कि एक सामान्य साक्षी तक का भी। कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्तों के साथ मिल बोधिसत्त्व का सिद्धान्त, किसी भी कहानी को जातक का

८. वही, जातक पर लेख; बी. सी. ला: ए हिस्ट्री आफ पाली लिटरेचर कलकत्ता १९३० भा० १ पृ. २७१ आदि।

रूप दे सकता है। इन जातकों ने न केवल बुद्ध के व्यक्तित्व की महत्ता को और भी महान बना दिया है अपितु कर्म और पुनर्जन्म की भावनाओं को भी चुपचाप प्रसारित कर दिया है एवम् समाज की सामूहिक भलाई के नैतिक मानक भी स्थापन कर दिये हैं। जातक रूप में प्रस्तुत की जाने वाली कुछ कहानियाँ तो सूत्रों से पहले से ही साधारण कहानियों के रूप में मिलती हैं। यदि उनमें से बोधिसत्व का व्यक्तित्व, और विशिष्ट बौद्ध दृष्टिकोण एवम् परिभाषा निकाल दी जाए तो हम सहज ही में देख सकेंगे कि उनमें रूप कथाएं, पौराणिक गल्पे, आख्यान, साहसी और रोमानी कहानियाँ, नीति की कथाएं और उक्तियाँ और सिद्ध-पुरुषों की जीवनियाँ सभी समाविष्ट हैं। ये सब भारतीय लोक-कथाओं के उस सामान्य भण्डार से ही ली गयी हैं जिनका कि भिन्न भिन्न धार्मिक सम्प्रदायों ने अपनी दृष्टि में अपने लिए उपयोग किया है।

इन जातक कथाओं से दूसरे ही प्रकार की अपदान कथाएं हैं जिसमें नायक के पूर्वभवों की कथा इस दृष्टि से दी गई है कि अच्छे और बुरे कर्मों पर और आगामी भव में उनसे प्राप्त होने वाले परिणामों पर पर्याप्त जोर दिया जा सके। ये साहसी कर्मों की कहानियाँ हैं, याने नर और नारियों के पुण्य और धार्मिक कार्यों की। 'जातक की तरह ही अपदान में' पूर्व भव की कथा और 'वर्तमान भव की कथा' तो होती है, परन्तु जातक में जहाँ सदा

बुद्ध के पूर्व भवों की ही बात कही जाती है, वहाँ अपदान में सामान्य रूप से परन्तु सदा ही नहीं किसी भी अर्हत् के पूर्व भव की बातें कही जाती हैं। अपदान में भी कितने ही सत्त्वों की अच्छी जीवनियाँ हैं। कुछ तो धेर, और धेरी-गाथा के सुप्रसिद्ध भिक्षू और भिक्षुणियों जैसे ही हैं। ये कहानियाँ सामान्यतः प्रथम पुरुष में ही कही गई हैं। इनमें कितने ही नाम तो ऐतिहासिक हैं। इनमें कितने ही नाम तो ऐतिहासिक ही हैं और सारिपुत्र, आनन्द, राहुल, खेमा, किशा-गोतमी, जैसे कुछ व्यक्ति तो बौद्ध परम्परा में दूसरे आधारों से भी सुप्रतिष्ठित और सुख्यात हैं। परन्तु अधिकांश कहानियों का ढाँचा और विषय बिल्कुल वैचित्र्यहीन है। ऐसा लगता है कि उनकी रचना पार-माथिक या और किसी कार्य को गौरवान्वित करने के लिए ही विशिष्ट रूप से की गई है। टीकाकार बुद्धघोष और धर्मपाल दोनों ही ने जातक और अपदान दोनों प्रकार की अनेक कथाएँ अपनी अनेक टीकाओं में उद्धृत की हैं और ये सब मिला कर बौद्ध वर्णनात्मक कथाओं का एक महत्व का समूह या संग्रह है। इन सभी कथाओं में धार्मिक और वैरागिक भावनाओं की रक्षा करने की प्रवृत्ति बिल्कुल ही स्पष्ट है। (क्रमशः)

६. उदाहरणार्थ देखो, हारबर्ड ओ सिरिज भा० २८-३०, केम्ब्रिज मसे. १९२१ में वरलिगम का लेख बुद्धिष्ट लीजेण्ड्स।

भगवान महावीर और छोटा नागपुर

श्री सुबोधकुमार जैन

मगध से उत्कल प्रदेश (उड़ीसा) जाते हुए तीर्थंकर महावीर, विहार के छोटा नागपूर प्रदेश से गुजरे। मान-भूमि और सिंहभूमि का यह इलाका उन सभी यात्रियों को पार करना ही पड़ता था जिन्हें बग देश या मगध से उत्कल जाना हो।

तीर्थंकर महावीर के उपदेशों से इस प्रदेश की जनता अत्यन्त प्रभावित हुई और देखते-देखते जैनधर्म यहाँ प्रथित और पल्लवित हुआ। दो वर्ष पूर्व जब मैं उड़ीसा के भुवनेश्वर नगर पहुँचा और वहाँ के मशहूर जैन तीर्थ

खण्डगिरी और उदयगिरी की यात्रा की, तभी इन सभी क्षेत्रों के महत्व पर दृष्टि अनायास गई। मानभूमि और सिंहभूमि उड़ीसा से सटे हुए स्थल हैं। वर्तमान महावीर की वाणी ने उड़ीसा के जनमानस पर अपार प्रभाव डाला था। जिस प्रकार मगध के ख्यातिप्राप्त जैन सम्राट् चन्द्र-गुप्त, सम्प्रति आदि हुए उसी प्रकार यहाँ के सम्राट् खार-वेल भी अपने काल के महान जैन राजनेता और वीर ऐतिहासिक नरपुंगव हुए थे। आज भी उड़ीसा वाले इस जैन सम्राट् खारवेल का नाम गौरव पूर्वक लेते हैं।

सम्राट् खारवेल के काल में मानभूमि और सिंहभूमि भी उत्कल नरेश के सहयोग से समृद्धि के शिखर पर पहुँच चुके थे। गाँव-गाँव में जैन चैत्यों, मन्दिरों और स्तूपों की शोभा अनोखी थी। श्रावकों की हजारों बस्तियाँ थी। आज भी इन सभी स्थानों के भग्न अवशेष मानभूमि और सिंहभूमि में बिखरे पड़े हैं। सड़कों के किनारों पर जैन मूर्तियाँ जहाँ तहाँ पड़ी मिलती हैं। पिछले १०० वर्षों की लिखित सूचनाओं के आधार पर निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि इनमें से हजारों बहुमूल्य ऐतिहासिक मूर्तियाँ अब लापता हो चुकी हैं। प्राचीन श्रावक परिवारों के सुसंस्कृत एवं सम्य नागरिक लुप्त हो चुके हैं, जो कुछ आज भी बचे हैं वे पिछड़े वर्ग के कहे जाते हैं एवं उन्हें हम श्रावक नहीं 'सराक' कहते हैं। यानी वह हम श्रावकों से मिल 'सराक' जाति के लोग माने जाते हैं।

यह सारे दुर्भाग्य की कहानी जो कि आज है, ई० सं० १३०० के लगभग तक वह ही हमारे गौरव का इतिहास था। इसे हम भूल चुके हैं।

ईसा के ६०० वर्ष पूर्व महावीर के पावन चरण से पवित्र ये भूमियाँ और श्रावकों से भरपूर इनके नगर और गाँव आखिर कैसे बिखर गये ?

सम्राट् अशोक और उनके पौत्र सम्राट् सम्प्रति के काल तक इन स्थलों की हजारों जैन नगरियाँ और गाँव, जैन यति, मुनियों और श्रावक श्राविकाओं द्वारा ससारा के सारे वैभवों से भरपूर थे। जैनधर्म की पताका मगध से उत्कल प्रदेश एवं बंग देश तक फहराती थी। एक कथनानुसार महावीर स्वामी ने अपने तीर्थकाल का प्रथम चौमासा वर्धमान नगरी में बिताया था। यह प्राचीन वर्धमान नगरी ही बंगाल का आधुनिक 'वर्दवान' है। इसके पूर्व प्राचीनतम काल में इस स्थान को अस्थिग्राम के नाम से जाना जाता था। वर्धमान महावीर के प्रथम चौमासे का स्थल होने के कारण ही यह वर्धमान नगरी के नाम से मशहूर हो गया।

विषयान्तर तो हो रहा है, परन्तु इसी सदर्थ में यह सूचना भी कर दूँ कि पिछले ३-४ मास से इस 'वर्दवान' का नाम फिर से 'वर्धमान' स्थापित करने का मैं प्रयास

कर रहा हूँ। मैंने इस विषय में बंगाल के मुख्य मंत्री श्री अजय मुखर्जी से पत्र व्यवहार के द्वारा 'वर्धमान का नाम पुनः स्थापित करने की स्वीकृति ले ली है। अब भारत सरकार से पत्र व्यवहार चल रहा है।

इस प्रकार निश्चय पूर्वक ऐतिहासिक बल पर कहा जा सकता है कि भारतवर्ष का पूर्विय अंचल प्राचीनकाल में श्रमण संस्कृति का केन्द्र रहा है। यही कारण है कि भारत के प्राचीन हिन्दू शास्त्रों में इस प्रदेश को अपवित्र एवं दूषित स्थान घोषित किया है। कहीं पर तो जैनियों को 'दानव' तक कह डाला है। वैसे तो दानव कहने की प्रथा ही ऐसी थी कि विरोधियों को दानव कह देना सहज था। प्राचीन कथाओं में मनुष्यों को दानव बना डालने के उदाहरण भरे पड़े हैं।

मानभूमि और सिंहभूमि की जैन संस्कृति भी उसी धार्मिक वैमनस्य की शिकार हुई। अन्य धर्मावलम्बियों के उत्पीड़न के द्वारा बौद्धधर्म तो बिल्कुल ही इस प्रदेश ही क्या भारत से ही उखड़ गया। जैनधर्म उखड़ा तो नहीं, बिखर अवश्य गया।

भारत के प्रथम सम्राट् चन्द्रगुप्त से लेकर सम्राट् सम्प्रति तक जैनधर्म को राज्याश्रय अखण्ड रूप से मिला। परन्तु इन्हीं मौर्य सम्राटों की शृंखला में अन्तिम मौर्य राजा बृहद्रथ को उनके सेनापति पुष्यमित्र ने मार डाला और स्वयं मगध का शासक बन बैठा। मौर्य सम्राटों द्वारा दण्ड-समता और व्यवहार-समता के ऐसे कड़े नियम बनाये गए थे जिसके द्वारा ब्राह्मणों के लिए विशेष संरक्षण के कानून दूर हो चुके थे। अन्दर ही अन्दर उनमें आग सुलग रही थी परन्तु बलशाली सम्राटों के आगे उनकी कुछ चलती न थी। अवसर खोजने की क्रियाएँ तो चल रही थी, जिसे पुष्यमित्र ने पूरा कर दिया। तदुपरान्त मौर्यों के सर्वधर्म समन्वय और संरक्षण के सिद्धान्तों की बलि दी गई और पुष्यमित्र ने मगध से ही क्या, मानभूमि और सिंहभूमि से भी श्रमणों को मिटा देने में राज्य की सारी शक्ति लगा दी। ब्राह्मण अपनी विजय पर दीवाने हो गये थे और पुष्यमित्र ने अत्याचार एवं दानवीय वृत्तियों द्वारा भीषण सहार किया। कहा जाता है कि उसने पञ्जाब के जलन्धर तक के जैनियों और बौद्धों

के असंख्य मठों और मन्दिरों को मिट्टी में मिला दिया।

उसी समय जब इस संसार की सूचना उत्कल सम्राट खारवेल को मिली तो वह अत्यन्त दुःखी और क्रोधित हुआ। उसने घोषणा की कि 'यद्यपि वह अहिंसा सिद्धान्त का पोषक है फिर भी सत्य की रक्षा के लिए उसे युद्ध करना ही होगा।' 'हाथी-गुम्फा' के पत्थर पर उत्कीर्ण इतिहास से स्पष्ट हो जाता है कि खारवेल ने मगध पर चढ़ाई कर दी। वह मानभूमि के उसी श्रमण प्रदेश से होता हुआ मगध की ओर बढ़ा, जिस जैन भूमि का पुष्यमित्र ने संहार किया था। ज्यों-ज्यों वह पुष्यमित्र के अत्याचार को देखता हुआ मगध की ओर बढ़ा, उसका क्रोध बढ़ता ही गया।

सम्राट खारवेल की वीरता भारत क्या, विदेशों में भी प्रख्यात थी। गया के गोरठ-गिरी के पास ज्यों ही उसकी सेना पहुँची सारे मगध राज्य में खलवली मच गई और मारे डर के पुष्यमित्र मगध छोड़ कर मथुरा की ओर भाग खड़ा हुआ। उस समय मथुरा का शासक ग्रीस देश का डेमेट्रिओस था। महान् सिकन्दर द्वारा मनोनीत गवर्नर था। भयभीत होकर कि सम्राट खारवेल, पुष्यमित्र को खदेड़ता हुआ मथुरा आ पहुँचेगा, सिकन्दर का गवर्नर डेमेट्रिओस भी मथुरा छोड़ कर भागा।

सम्राट खारवेल के शासन का यह १२वाँ साल था। वह इस युद्ध में उत्कल से इतने मारे हाथी लाया था कि अपनी सारी सेना को उसने हाथी पर ही गंगा पार कराया था। 'हाथी-गुम्फा' के लेख में यह भी बताया गया है कि मगध के सेनापति वहसतिमित्र को उसके चरणों में सर नवा कर क्षमा माँगनी पड़ी। उसने सम्राट खारवेल के चरणों पर अपार सुवर्ण एवं जवाहरातों को रखकर उसे प्रसन्न किया। उसी समय जैन सम्राट खारवेल ने वर्षों पूर्व मगध के राजा नन्द के द्वारा अपहरण की हुई उत्कल राजघराने की भगवान आदिनाथ की श्री सम्पन्न मूर्ति मगध राज्य से वापस ली। मगध से उत्कल तक मूर्तिके साथ की गई उसकी शोभा यात्रा कैसी अद्भुत हुई होगी उसका अनुमान सहज लगाया जा सकता है।

सम्राट खारवेल ने मगध की गद्दी पर लोभ नहीं किया। दुश्मन को उसने क्षमा अवश्य कर दिया। इस

प्रकार श्रमण संस्कृति भारत से विनाश होने से बच गई। भारत के इतिहास में खारवेल अमर हो गया। वापसी काल में उसने भग्न जैन चैत्यों और मन्दिरों का पुनर्निर्माण कराया। श्रावकों की वस्तियों को फिर से बसाने और समृद्ध करने में अपार धन लगा दिया। मानभूमि और सिंहभूमि श्री सम्पन्न हो गई।

ई० स० ७०० के निकट श्रावकों द्वारा छोटा नागपुर के इलाकों से व्यापार देश विदेशों में बहुत चलता था। उत्कल (उड़ीसा) और बंगाल के समुद्र तटों से विदेश व्यापार होता था। धीरे धीरे श्रावकों ने ताम्बे की खानों का इस प्रदेश में पता लगाया और सम्भवतः भारत में ये पहले लोग थे जिन्होंने अपने हाथों से ताम्बे का उत्पादन किया और अत्यन्त उच्चकोटि तक अपनी कार्यक्षमता को ले गए।

बंगाल गजेटियर (Vol. XX) सिंहभूमि (१६०६) में अग्नेज ओ. मेले ने लिखा है जिससे स्पष्ट है कि सराक नाम के पिछड़े वर्गों द्वारा (Copper) ताम्बा निकालने का ढग देखकर अत्यन्त आश्चर्य उसे हुआ था बिना मशीन के वे अपने हाथों से ही उच्चकोटि का ताम्बा उत्पादित करते थे।

ओ. मेले के ५० वर्ष पूर्व डा० स्टोहर ने जो कि स्वयं उच्चकोटि के इन्जिनियर थे लिखा है—ये लोग जमीन की बहुत तह में जाकर काम नहीं करते; परन्तु ताम्बा उत्पादन की क्षमता सराको की उत्तम है क्योंकि वे बिना किसी कल-पुर्ज के ही अपना कार्य सिद्धहस्त होकर करते हैं। इनसे पूछने से मालूम होता कि सैकड़ों वर्षों से इनके घर यह धन्धा चला आ रहा था।

सन् १८६८ में डा० बिल ने लिखा है—'सराक नाम की एक जाति जो कि एक जमाने में इस प्रदेश के अधिपति थे, ताम्बा निकालने में अपूर्व क्षमता रखते होगे। उन्होंने इस प्रदेश के उन सभी स्थलों की खोज अत्यन्त बारीकी से की होगी जहाँ भी ताम्बा की खानें हैं क्योंकि ऐसे सारे स्थलों पर ताम्बा निकाले जाने के आघार मिलते हैं। आज भी उन्हीं सराक जाति के अशिक्षित वर्ग द्वारा कहीं-कहीं ताम्बा निकाला जाता है।'।

मेजर टिकेल ने १८४० ई० में लिखा है—सराक

जाति, जो कि आज लगभग बिलकुल मिट चुकी है, एक जमाने में सिंहभूमि के स्वामी थे। उस समय उनकी बड़ी संख्या थी और वे समृद्ध थे। कहा जाता है कि वे सिकरा भूमि के निवासी थे। सरावकों के को आगे चलकर यहाँ से भगा दिया गया।

कनल डानरल ने लिखा है—‘यह सर्व स्वीकृत है कि सिंहभूमि का भाग उन सरावकों द्वारा स्वामित्व में था, जिनकी कलाकृतियाँ उनके गौरव की गाथा आज भी बतलाती है। वे निश्चयपूर्वक उन आदि आर्य्य सन्तति के थे जो कि सिंहभूमि और निकटस्थ मानभूमि में आकर बस गए थे। ये श्रावक जैन थे। सरावकों ने तालाब बहुत बनवाए।’

आज भी हजारों मील के इन सारे इलाकों में ऐसे तालाबों की भरमार है जिन्हे सराक ताल कहते हैं। स्पष्ट है कि सरावकों द्वारा जन समुदाय की सुविधा के लिए तालाबों का निर्माण कराया गया था।

प्राचीन मूर्तियों के आधार पर कोई पुरातत्ववेत्ता तो इन स्थानों की श्रमण संस्कृति को २००० वर्ष पूर्व तक ले जाते हैं यहाँ से प्राप्त बहुत सी पुरातत्व की सामग्रियाँ, पटना और उड़ीसा के म्यूजियम की शोभा बढ़ा रही है। ई० सन् ११०० तक की प्राप्त मूर्तियों में अत्यन्त उच्च-कोटि के शिल्प के दर्शन होते हैं। इसके उपरान्त एक ऐसा अन्तराल आता है जिससे यह लगता है कि श्रावक समुदाय इस स्थान से मिट सा गया। उनके घर द्वार, मन्दिर चैत्यों के विनाश की सम्भावना चोल नरेश राजेन्द्र चोल देव की सेना के द्वारा की जाती है। ई० १०२३ में राजेन्द्र चोलदेव जब बंगदेश के महिपाल को युद्ध में हरा कर छोटानागपुर के मानभूमि प्रदेश से गुजर रहे थे तभी धर्मान्ध विजयी नरेश और उसकी सेना ने श्रमण संस्कृति को गहरी चोट पहुँचाई। पाण्ड्य वंशीय साम्राज्यवादी भी

नहीं चूके। लिगायत शैवों का छोटा नागपुर में उदय और धर्मपरिवर्तन के उनके अभियान ने १३०० ई० में कुछ ऐसे कट्टर श्रमण द्रोही शक्तियों के आगमन का अवसर दिया जिससे देखते-देखते श्रमणों का अधिकार छोटा नागपुर से समाप्त हो गया।

जैन तीर्थंकरों की मूर्तियों को भैरव की मूर्ति के रूप में, धरणेन्द्र-पद्मावति की मूर्ति को हर-पार्वती के रूप में पूजा जाने लगा। तंत्रवादी महायान शैवों ने अपना आतंक फैलाया और इस प्रकार हर तरीके से श्रमण संस्कृति की अद्भुत कला कृतियों, उनके रीति-रिवाजों आदि के समूल विनाश को पूरा किया जाने लगा।

पाकवीर की तीर्थंकर प्रतिमाओं को हिन्दू देवता बनाकर उनके समक्ष पशुओं की बलि कुछ वर्ष पूर्व तक चलती रही थी। बाहुबलि भगवान की एक मूर्ति को आज भी भैरव की मूर्ति के रूप में पूजा जा रहा है। तेल और रोली से उन्हें रंग दिया गया है।

उस काल में पाकवीर, चन्दन क्यारी, बलरामपुर, सिंहगुड आदि ऐसे स्थान थे जो संभवतः धर्म और व्यापार के जैन केन्द्र कहे जा सकते हैं।

आज भी जमीन में गड़े मन्दिर दीखते हैं जिनके शिखर कहीं-कहीं निकले दीखते हैं। भग्न मन्दिर टूटी-फूटी और जहाँ तहाँ बिखरी तीर्थंकरों की प्रतिष्ठित मूर्तियाँ दीखती हैं। नष्ट हुए श्रावक-ताल और श्रावक बिरादरी को उबारने के लिए फिर संभवतः किसी काल में आगामी तीर्थंकर को ही वहाँ जाना होगा या संभवतः कभी किसी खारवेल का उदय हो। आज के भारत में तो कोई ऐसा सामर्थ्यवान और श्रीमान वीर नहीं जो वर्धमान महावीर के श्री चरणों से पवित्र इस जैन भूमि या सिंह-भूमि के बचे खूबे सराकों और उनके प्राचीन गौरव के खण्डहरो की पुनः प्रतिष्ठित करा सके। ★

**सन् १९७१ की जनगणना के समय धर्म के
रखाना नं० १० में “जैन” लिखाकर सही आँकड़े
इकट्ठा करने में सरकार की मदद करें ॥**

जैन तीर्थंकर की कुछ महत्वपूर्ण मृण्मूर्तियाँ

संकटाप्रसाद शुक्ल एम. ए.

राज्य-संग्रहालय, लखनऊ में जैन तीर्थंकर की दो महत्वपूर्ण मृण्मूर्तियाँ संग्रहीत हैं। इनसे जैन कला एवं मूर्तिविद्या (iconography) पर विशेष प्रकाश पड़ता है। इन मृण्मूर्तियों का विवरण निम्न है :—

(अ) संग्रहालय की एक मृण्मूर्ति अभिलिखित है जो खीरी जिले (उ० प्र०) के मोहम्मदी नामक स्थान से उपलब्ध हुई है। इस पर तीन अक्षरों का अभिलेख है जिसमें 'सुपाद्वं:' शब्द उत्कीर्ण है। अभिलेख की लिपि प्रारम्भिक गुप्तकालीन ब्राह्मी है। अतः अभिलेख के आधार पर मृण्मूर्ति की पहिचान जैन तीर्थंकर सुपाद्वनाथ से की जा सकती है (चित्र १)^१। इस मृण्मूर्ति में तीर्थंकर की आकृति चतुर्भुजाकार फलक पर उभरी हुई है। वह ध्यान-मुद्रा में बैठे हैं। मृण्मूर्ति में अंकित उनकी आकृति एक युवक जैसी लगती है। उनका केश-विन्यास सीमन्त से लहरदार (तरंग युक्त) दिखलाया गया है। यह विशेषोल्लेखनीय है कि जैन तीर्थंकर की मूर्तियों में उन्हें प्रायः मुण्डित शिर दिखलाया जाता है। इस मृण्मूर्ति में केश-विन्यास दिखलाया जाना सचमुच महत्व का है। उनके कानों में कुण्डल हैं। जैन तीर्थंकर सुपाद्वनाथ का सिर सर्प फणों से आच्छादित दिखलाया जाता है। इस मृण्मूर्ति में सिर के चारों ओर जो प्रभामण्डल हैं उसकी आकृति एक फण के सदृश है। अतः संभव है कि कलाकार का उद्देश्य प्रभामण्डल न दिखलाकर सर्प-फण दिखलाना ही अभीष्ट रहा हो। उसके साथ ही इस मूर्ति में वक्ष पर श्रीवत्स चिन्ह नहीं है।

(ब) संग्रहालय की दूसरी जैन तीर्थंकर की मृण्मूर्ति के प्राप्ति-स्थान के विषय में जानकारी नहीं है। यह खण्डित मृण्मूर्ति है जो कबन्ध मात्र है। इस कबन्ध की

माप ८" × ६" है। इसमें सिर भुजाएँ एवं अधो-शरीर खण्डित है। तीर्थंकर की इस मूर्ति में श्रीवत्स चिन्ह भी है। यह मृण्मूर्ति मूलतः ध्यान-मुद्रा में रही होगी, क्योंकि भुजाएँ वक्ष से सटी न होकर वक्ष से अलग दिखलायी गई हैं। शैली के आधार पर यह मृण्मूर्ति गुप्तकालीन प्रतीत होती है। (चित्र २)^२।

उपर्युक्त दो मृण्मूर्तियों के अतिरिक्त तीर्थंकर की एक और भी मृण्मूर्ति प्राप्त हुई है। यह तीसरी मृण्मूर्ति मिदनापुर (बंगाल) के तिल्दा नामक स्थान पर मिली थी जो अब आशुतोष संग्रहालय, कलकत्ता के संग्रह में है^३। इसमें तीर्थंकर का कायोत्सर्ग-मुद्रा में अंकन हुआ है।

प्राचीन भारतीय कला में जैन मृण्मूर्तियों का अभाव है। अब तक उपरोक्त तीन मृण्मूर्तियाँ ही उपलब्ध हैं। जैन मृण्मूर्तियों की कमी का उपयुक्त उत्तर पा सकना कठिन है। वैसे जैन तीर्थंकर की मृण्मूर्तियों के निर्माण एवं पूजन के सम्बन्ध में कोई धार्मिक प्रतिबन्ध नहीं था। जैन बृहत्कथा कोष^४ के ज्ञानाचरण कथानक में अहिच्छत्रा के राजा वस्तुपाल द्वारा एक जैन मन्दिर (जिनायतन) निर्मित कराने का उल्लेख मिलता है जो उस मन्दिर में तीर्थंकर पाद्वनाथ की मृण्मूर्ति स्थापित कराना चाहता था। कारीगर उक्त मूर्ति बनाने में असफल रहे। अन्ततः एक जैन उपासक मृण्मूर्ति बनाने में सफल हुआ था। मृण्मूर्ति-कला प्रायः लोक-जीवन की कला मानी जाती है। क्या जैनधर्म की मृण्मूर्तियों का अभाव इस धर्म के प्रति लोगों की उदासीनता का संकेत है?

२. राज्य-संग्रहालय, सं० ६७७ :

३. इन्डियन आर्कैओलोजी १९६०-६१ ए रिब्यू, पृ० ७० Pl. LXXXG.

४. बृहत्कथाकोष, (सं०) डा० ए. एन. उपाध्ये, बम्बई, १९४४, कथानक सं० २०, पृ० ३५।

१. राज्य-संग्रहालय, सं०, ५३-६६ (आकार ५॥" × २॥")।

आधुनिकता—आधुनिक और पुरानी

डा० प्रद्युम्नकुमार जैन

यह सच है कि आधुनिकता स्वयं में कोई मूल्य नहीं है, अपितु मूल्यों का अधिकरण है। वह मूल्यों की वन-स्थली है जो कालक्रम के साथ कभी मुरझाती, कभी खिलती हुई अस्तित्ववान है। या यूँ कहिए आधुनिकता मूल्यों के चुनाव का एक इतिहास और चुने हुए मूल्यों को विभिन्न आयामों में देखने का एक दृष्टि-क्रम है। कुबेर नाथ राय के शब्दों में, “वास्तविकता फैशन से कहीं गहरी और सूक्ष्म चीज है। यह एक दृष्टि-क्रम है, एक बोध-प्रक्रिया एक संस्कार-प्रवाह है..... एक खास तरह का स्वभाव है.....” यह संस्कार-प्रवाह काल-तत्त्व पर तिरता हुआ भी काल-गत सीमाओं से मुक्त अविच्छिन्न है। हाँ, इस प्रवाह के स्फूर्ति-केन्द्र अवश्य यत्र-तत्र बिखरे हैं जो इतिहास क्रम के मील-पट्ट से दृष्टिगत होते हैं। ईसा से छः सौ वर्ष पूर्व का काल उसी आधुनिक भाव-बोध का काल कहा जा सकता है जो आज अपनी पूरी-स्फूर्ति के साथ उभर कर ऊपर आया है। भगवान महावीर तत्कालीन भाव-बोध के कविरमनीषी हैं। प्रस्तुत निबन्ध में उसी महावीर-कालीन एवं वर्तमान-कालीन आधुनिकता का एक तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करने का प्रस्ताव है।

ईसा पूर्व की छठवीं शताब्दी नवीन दृष्टि खोज की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। धर्म तत्कालीन मनीषियों के लिए एक दृष्टि-बोध है। वह कुछ पिटेपिटाये क्रिया-कलापों की नुमायश भर नहीं है। इसी धर्म-रूपी नवीन दृष्टि की खोज में पुराण कश्यप, अजित केशकम्बलि, पकुध कच्छायन, संजय बेलट्टिपुत्त, मक्खलि गोशाल आदि अनेक यथा-कथित तीर्थंकरों ने आधुनिकता की पयस्विनी के स्रोत पर परिश्रम किया। सभी के प्रयासों में एक बात जो सामान्य रूप से मुखर थी, वह थी—पुरातन के प्रति विद्रोह अथवा पुराने मूल्यों के प्रति सम्पूर्णतः मोह-भंग। नात्तपुत्त महावीर ने उक्त तीर्थंकरों के अपूर्ण अभियान अथवा छटपटाती आत्माभिव्यक्ति को एक निश्चितता प्रदान की। महावीर ने एक महत्वपूर्ण घोषणा की, कि धर्म एक दृष्टि-

बोध है। दृष्टि-बाध एक प्रकार से आत्म-बोध का परिचायक है। अस्तु आत्म-बोध ही धर्म का केन्द्रविन्दु है। आत्म-बोध का तात्पर्य है अपने ही अस्तित्व का बोध अथवा सहानुभूति। स्वानिरिक्त किसी अन्य तत्त्व का, चाहे वह कितना ही ऊँचा क्यों न हो, अस्तित्व-बोध उपादेय नहीं है। उपादेयता का प्रतिफलन स्वानुभूति से ही सम्भव है। स्वानुभूति अस्ति का स्वीकार है, अस्ति का स्वीकार ही उपादेय है और जो उपादेय है वही वस्तुतः आनन्दकारी है। इस प्रकार स्वानुभूति अस्तित्व-स्वीकृति के रूप में सत्य, उपादेय रूप में शिव तथा आनन्द रूप में सुन्दर है। स्वानुभूतिपरक धर्म इस प्रकार सत्य, शिव सुन्दरम् का प्रतीक है।

मोक्ष जीवन का चरम मूल्य उद्घाटित हुआ। मूल्य के सामान्य अर्थ-बोध में जीवन की वह स्थिति आती है जो सत्य, शिव और सुन्दर की दृष्ट्या काम्य है। मोक्ष की सम्बोधना है, परन्तु उस चरम काम्यता का तात्पर्य यहां केवल परोपजीवी तुष्टि-स्पृहा से ही नहीं है, अपितु वह कामना अथवा काम्यता से भी अत्यन्त निवृत्ति और निर्वाध, अहेतुक अस्तित्व-बोध की चरम उपलब्धि। उपलब्धि और निवृत्ति के योगस्वरूप ही मोक्ष की स्थापना हुई। उपलब्धि स्वतत्त्व की अस्ति-सूचक भाव-भूमि का स्वीकार है, तथा निवृत्ति स्व में स्व के नास्तित्व अथवा पर के अस्तित्व का इन्कार है। अतः मान्य हुआ, कि स्वोपलब्धि के रूप में जीव या आत्मा का अस्तित्व है तथा निवृत्ति के रूप में जीव या आत्मा का अस्तित्व है तथा निवृत्ति के रूप में अजीव या अनात्मा का नास्तित्व है। अब व्यावहारिक रूप में उपलब्धि की उत्क्रान्ति निवृत्ति की आचारिक भूमिका पर निर्भर करती है, क्योंकि निवृत्ति नास्तित्व के निषेध की एक प्रक्रिया है। चूँकि स्वोपलब्धि के लिए स्वैतर सब कुछ अनुपादेय है, और अनुपादेय का त्याग ही निवृत्ति है। अस्तु निवृत्ति-रूपा स्वोपलब्धि अत्यन्त त्याग की एक स्थिति है। त्याग इसीलिए महावीर से दृष्टि-बोधीय दर्शन में चरम मूल्य के

अर्जन की एक मात्र भूमिका है।

त्याग, यदि वास्तविक रूप में देखा जाए, आत्मान्वेषण की तीव्र यन्त्रणा का अहसास भर है। कोई वस्तु हमसे भौतिकतः कितनी दूर है—त्याग के लिए इसका कोई अधिक मूल्य नहीं, बल्कि हमारे अन्दर किसी वस्तु के कितने दूर होने का अहसास है और उस अहसास में कितनी दृढ़ता है—यह है त्याग का वास्तविक मापदण्ड। त्याग हमारे अस्तित्व के असंसारीकरण की प्रक्रिया है। और मोक्ष त्याग की आत्यन्तिक अवस्था है। मोक्ष की स्थिति इस प्रकार परिपूर्ण असंसार की स्थिति है। व्यावहारिक रूप से मोक्ष स्व के निषेध (अनात्मा) के निषेध की आत्यन्तिक स्थिति है। व्यवहार-धर्म इसी निवृत्ति-प्रधान त्याग और तपस्या का धर्म होता है। मोक्ष रूपी चरम मूल्य के अर्जन हेतु व्यवहार-धर्म के लिए इसके अलावा कोई दूसरा विकल्प सम्भव ही नहीं।

परमार्थ अथवा, जैनों के पदानुसार, निश्चय धर्म स्वोपलब्धि की सम्यक् व्यवस्था है। परन्तु वह स्वोपलब्धि व्यवहार धर्म की निवृत्ति से कोई स्वतन्त्र अवस्था नहीं। निवृत्ति अथवा त्याग, जैसा कि कहा आत्मान्वेषण की तीव्र यन्त्रणा का अहसास है, तो निश्चय स्वोपलब्धि उक्त अहसास का एक अहेतुक अहसास भर है। यहाँ तक कि मोक्षावस्था में जब एक और परिपूर्ण असंसार का अहसास है तो उसी में दूसरी और उक्त अहसास का एक अहेतुक अहसास भी मलगत है। ऐसी अवस्था में असंसार रूपी ज्ञान को क्षायिक ज्ञान और अहसास के अहेतुक अहसास रूपी ज्ञान को केवल-ज्ञान की संज्ञा दी गई। व्यवहार और निश्चय धर्म इस प्रकार एक-दूसरे के परिपूरक है, क्योंकि व्यवहार धर्म में ही असंसार का अहसास है और निश्चय धर्म उसी अहसास का एक अहेतुक अहसास है। बिना अहसास के अहेतुक अहसास सम्भव नहीं और बिना अहेतुक अहसास के असंसार का अहसास कोई मानी नहीं रखता। इसीलिए परिपूर्ण जीवनप्रणाली निश्चय और व्यवहार-धर्म का समन्वय ही कही जाएगी।

आधुनिकता की अ-अनुभूति वस्तुतः निश्चय जीवन-प्रणाली की एप्रोच है। इसमें स्वेतर सम्पूर्ण मान्यताओं, मर्यादाओं और परम्पराओं का निषेध अथवा निवृत्ति भाव निहित है। मोह-भग के रूप में वहाँ असंसारीकरण-

प्रक्रिया का प्राधान्य है। इस परम्परा-मुक्ति आन्दोलन के पीछे स्व की मौलिकता की छटपटाहट है। निश्चय जीवन की यह छटपटाहट व्यवहार के अनेक प्रतिमानों, प्रतीकों और रेखाचित्रों में व्यक्त है। और इस प्रकार यह जीवन के सम्पूर्णत्वादि को जी लेने का एक जीवंत उपक्रम है। महावीर ने भी इसीलिए किसी भी धर्म-ग्रन्थ अथवा ईश्वरादिव्य अस्तित्व को अपने धर्म-प्रवर्तन का आश्रय-दाता नहीं माना। स्वतन्त्र और मौलिक आत्म-प्रक्रिया को अनात्म के सम्पूर्ण त्याग के द्वारा ही सम्भव स्वीकारा। यही से आधुनिक भाव-बोध का इतिहास प्रारम्भ हो जाता है।

आधुनिक भाव-बोध का परम वैशिष्ट्य उसका यथार्थवादी दृष्टि-बोध है। यथार्थवादी दृष्टि-बोध का सीधा-सा तात्पर्य है ज्ञान के विभिन्न आयामों का उचित समादर। ज्ञान के यदि मोटे से दो आयाम यथा, ऐन्द्रिक एवं अतीन्द्रिक मान ले तो स्पष्ट होता है, दोनों ही आयामों की सापेक्षा मूल्यवानता है। कोई भी आयाम ऐकान्तिक रूप से न तो सत्य है और न ही असत्य। प्रत्येक की वैधता जो एक तार्किक प्रक्रिया मात्र है अपनी-अपनी भूमिका पर निर्भर करती है। भूमिका से तात्पर्य उसकी तार्किक आधार-भूमि से है जिससे कोई वैध कहा जाने वाला वचन निःसृत होता है और प्रामाणिक मान्य होता है। इस प्रकार यथार्थ-बोध किसी भी सत्य का सापेक्ष मूल्यांकन मात्र है। इस मूल्यांकन में सत्य की तात्त्विकता का हानि-लाभ नहीं, अपितु उसका निरंतर आयामी-करण होता है। वस्तु-सत्य एक आयाम से एक और गहरे अथवा व्यापक आयाम में अतर्भूत होता जाता है। महावीर ने आत्म-ज्ञान के पांच आयामों का निर्देशन किया—मति, श्रुत, अवधि, मन-पर्यय एवं केवल। पाँचों आयाम उत्तरोत्तर गहरे और व्यापक हैं, जिनमें प्रत्येक पूर्ववर्ती आयास का अपने उत्तरवर्ती आयाम में समाहार है। मति में आत्मानुभूति की जो उपलब्धि होती है श्रुतादि में वह निराकृति नहीं हो जाती है, अपितु उनके व्यापक आयामों का एक अभिन्न अंग बन जाती है। छोटा सा उदाहरण है, कि हमने अपने मति-ज्ञान से सामने पड़े हुए वस्तु-सत्य को समाचार-पत्र मान्य किया। यह

समाचार-पत्र का होना श्रुत से केवल-ज्ञान पर्यंत वंसा ही वैध है जैसा कि मति-ज्ञान में था। हा, यह हो सकता है कि अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान रूपी अतीन्द्रिय ज्ञान में वही वस्तु-सत्य समाचार-पत्र के साथ-साथ कुछ और भी दिखाई पड़ने लगे। उसकी अनेकानेक गुण द्रव्यगत पर्यायों समवेत रूप से विषयगत हो जाये, परन्तु उस सम्पूर्ण जटिल एवं व्यापक दृष्टि-बोध में मति-ज्ञान के एक लघु कण का अस्तित्व नहीं हो सकता। इस प्रकार वस्तु-सत्य के प्रत्येक आयाम में दूसरे आयाम का तात्त्विक समादर यथार्थ दृष्टि-बोध की जान है। जैनो ने इस स्याद्वाद तथा अनेकान्तवाद और आज के भी अनेकानेक मनीषियों ने विभिन्न नामों से आधुनिक भाव-बोध के अन्तर्गत मान्य किया है।

इसी यथार्थवाद के परिणामस्वरूप वस्तु-सत्य की प्रत्येक पर्याय का प्रत्येक क्षण यथार्थतः भोग्य हो गया। इस प्रकार चिन्तक अथवा साहित्यकार के लिए प्रत्येक क्षण एक विशेष महत्व को लिए प्रकट हुआ। वस्तु सत्य अपनी सम्पूर्ण तात्त्विकता के साथ श्रृंखला-बद्ध क्षणों की सारिणी में प्रकट हुआ देखा जाने लगा। क्षण की उप-देयता अथवा अनुपादेयता अलग चीज है, लेकिन प्रत्येक क्षण है...यह मान लेना महत्वपूर्ण हो गया। महावीर ने कहा—धर्म के लिए मान लेना पहले आवश्यक है कि पाप भी है, आत्मा भी है और अनात्मा भी है, ससार भी है और मोक्ष भी है, आदि—ऐसे वैपरित्य युगल के अस्तित्व को स्वीकार कर ही पाप का, आत्म-बोध का, मोक्ष का अंगीकार और विरोधी का निषेध किया जा सकता है। जिसका कोई अस्तित्व ही नहीं, उसका निषेध भी कैसा। महावीर ने इसीलिए तत्कालीन सभी समस्याओं का यथार्थ दर्शन कर उन्हें उपादेयोन्मुखी किया। दास-प्रथा, आर्थिक असमानता, यौन सम्बन्ध, शोषण आदि सभी समस्याओं पर उनका निश्चित दृष्टिकोण है।

आधुनिकता के इस प्रथम दौर में एक महत्वपूर्ण मुद्दा और है—अहिंसा। अहिंसा का साधारणतः अर्थ है 'न मारना'। 'न मारने' में पर के निमित्त अनुराग और करुणा की प्रतीक होती है। क्या करुणा मोह-भंग दर्शन की निस्संगिता से कोई मेल खाती है? क्या तीर्थंकर जो

अहिंसा के सर्वोच्च अवतार हैं पर के अनुराग से त्रम्व हैं? वस्तुतः अहिंसा-तत्त्व को अनुराग और करुणा से संयोजित करना ही भूल है। अहिंसा निस्संगता की ही पर्याय है। क्योंकि हिंसा, यदि वस्तुतः देखा जाये, राग का परिणाम है। बस राग-वृत्ति का निषेधी-करण ही वीतरागता है। और वीतरागता अहिंसा है। न मारना तो उक्त वीतरागता का प्रतिफलन है। वीतरागता आत्म-दृष्टि मात्र है। अहिंसा उसी आत्म-दृष्टि की प्रक्रिया है। अहिंसक के लिए किसी का मरना या जीना दोनों बराबर हैं। अहिंसक के पास तो एक साफ दृष्टि है, जिससे वह वस्तु सत्य के स्वतः होने वाले परिणमन का यथा रूप अवलोकन करता है। वह किसी परिणमित क्षण का कर्ता नहीं, दृष्टा होता है। संसार के प्रत्येक परिणमित क्षण का वंसा ही निदर्शन कर देना और उसे किसी गहरे तात्त्विक निषेध से संयोजित कर देना आधुनिक भाव-बोध का तकनीक है, जो महावीरके अहिंसा-बोधका ही दूसरा नाम है।

अहिंसा-बोध में वस्तु-सत्य का [सम्यक् समादर है। वस्तु-सत्य वही है जो अस्तित्वमय है। अतः अस्तित्व अथवा, जैन पदावली में, सत्ता की प्रत्येक पर्याय समादरणीय है। देश, काल, भाव, द्रव्य आदि अनेक अपेक्षाओं से पर्यायों की विविधता अनन्तरूपा बनती है। ये अनन्तरूप सत्ताणुएं अपने कामिक क्षयोपशम की शक्ति से उत्थित और विलुप्त होती हुई अहिंसा के शुद्ध ज्ञान का विषय बनती है। अहिंसक अपने पूर्ण निस्संग भाव से इन सत्ताणुओं का स्वभाव मात्र अवलोकित कर निज स्वभाव की उपलब्धि में संलग्न रहता है। इस निज स्वभाव की उपलब्धि का व्यावहारिक परिणमन है अतर्जोवीकरण, जो लेखक के दृष्टि-कोण में राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय, मानवीकरण के भी बाद का सोपान है। आज जबकि हम केवल इन प्रारम्भिक सोपानों में ही भटक रहे हैं, महावीरकालीन आधुनिकता इन सबको लांघ चुकी थी, लेकिन कालान्तर में वही पतनग्रस्त होकर केवल सम्प्रदायीकरण के सोपान पर आ बैठी। अब हमारे पास भविष्य में यह आशा करने का यथेष्ट आधार उपलब्ध है, कि आत्म-बोध की इस आधुनिक प्रक्रिया का विकास जीवन के प्रत्येक पहलू में उत्तरोत्तर होता ही चला जाएगा। ●

राजस्थान के जैन सन्त मुनि पद्मनन्दी

परमानन्द जैन

राजस्थान भारतीय जैन संस्कृति का प्राचीन समय से केन्द्र रहा है। राजस्थान में निर्मित अनेक गगनचुम्बी विशाल एवं कलापूर्ण जिन मन्दिर उसकी शोभा को दुगुणित कर रहे हैं। यहां से सहस्रो जिन मूर्तियों का निर्माण और उनका प्रतिष्ठादि कार्य सम्पन्न हुआ है। अनेक महापुरुषों ने यहां जन्म लेकर राजस्थान की कीर्ति को दिगन्त व्यापी बनाने का यत्न किया है। यहां अनेक मुनि पुगव आचार्य, भट्टारक और विद्वान हुए हैं। जिन्होंने जैन धर्म की पताका को उन्नत में पूरा सहयोग प्रदान किया है। राजस्थान में अनेक महानुभाव दीवान जैसे राज्यकीय उच्चपदों पर प्रतिष्ठित रहे हैं। और राज्य-श्रेष्ठी तथा कोषाध्यक्ष भी रहे हैं। जिनमें से कुछ ने आत्म-साधना के साथ जनसाधारण की भलाई करने में अपने जीवन का उत्सर्ग कर दिया है। अनेक सन्तों और विद्वानों के उपदेश से जनसाधारण में आत्म-हित की भावना प्रकट हुई है। जन सन्तों ने विविध प्रकार के साहित्य की सृष्टि कर जैन संस्कृति का विस्तार किया है। और साहित्य का सकलन तथा उसकी सुरक्षा का भी कार्य किया है। जैन विद्वानों ने बिना किसी स्वार्थ के सत् साहित्य की सृष्टि कर तथा संस्कृत-प्राकृत के ग्रंथों का हिन्दी गद्य-पद्य में अनुवादित कर जन मानस में जैन धर्म के अहिंसा तत्त्व का प्रचार व प्रसार किया है। दूसरी ओर अनेक जैन वीरों ने राज्य की सुरक्षा के हित आत्म-बलिदान किया है, और उसकी समृद्धि बढ़ाने में अपने कर्तव्य का पालन किया है। आज इस छोटे से लेख द्वारा राजस्थान के एक जनसेवी सन्त का संक्षिप्त परिचय दे रहा हूँ जिसने अपने जीवन का समग्र बहुभाग जैन संस्कृति के साथ लोक में शिक्षा का आदर्श उपस्थित किया है और अपने विशुद्ध निर्मल आचार द्वारा जनता में नैतिक बल का संचार किया है।

जैन सन्त पद्मनन्दी भट्टारक प्रभाचन्द्र के पट्टघर शिष्य

थे।^१ विशुद्ध सिद्धान्तरत्नाकर और प्रतिभा द्वारा प्रतिष्ठा को प्राप्त हुए थे। उनके शुद्ध हृदय में अभेदभाव से आलङ्घन करती हुई ज्ञान रूपी हंसी आनन्दपूर्वक क्रीड़ा करती है। स्याद्वाद सिन्धुरूप अमृत के वर्णक थे। जिन्होंने जिनदीक्षा धारण कर जिनवाणी और पृथ्वी को पवित्र किया था। महाव्रती पुरन्दर तथा शान्ति से रागाङ्कुर दग्ध करने वाले वे परमहंस, निर्ग्रन्थ पुरुषार्थशाली, अशेष-शास्त्रज्ञ सर्वहित परायण मुनिश्रेष्ठ पद्मनन्दी जयवन्त रहे।^१ इन विशेषणों से पद्मनन्दी की महत्ता का सहज ही बोध हो जाता है। इनकी जाति ब्राह्मण थी। एक बार प्रतिष्ठा महोत्सव के समय व्यवस्थापक गृहस्थ की अविद्यमानता में प्रभाचन्द्र ने उस उत्सव को पट्टाभिषेक का रूप देकर पद्मनन्दी को अपने पट्ट पर प्रतिष्ठित किया था। इनके पट्ट पर प्रतिष्ठित होने का समय पट्टावली में सं० १३८५ पीष शुक्ला सप्तमी बतलाया गया है। वे उस पट्ट पर सं० १४७३ तक तो आसीन रहे ही हैं, इसके अतिरिक्त और कितने समय तक रहे यह कुछ ज्ञात नहीं हुआ, और न यह ही ज्ञात हो सका कि उनका स्वर्गवास कहाँ और

१. श्रीमत्प्रभाचन्द्रमुनीन्द्रपट्टे

शशवत प्रतिष्ठा प्रतिभागरिष्टः।

विशुद्धसिद्धान्तरहस्यरत्न रत्नाकरा नदतु पद्मनन्दी ॥

—शुभन्द्र पट्टावली

हंसो ज्ञान मरालिका सम समाश्लेष प्रभुताद्भुता।

नन्द श्रीद्विती मानसेति विशदे यस्या निशं सर्व्वतः।

स्याद्वादामृत सिन्धु वर्धन विषो श्रीमत्प्रभेन्दु प्रभाः।

पट्टे सूरि मतल्लिका सजयतात श्री पद्मनन्दी मुनिः।

महावत पुरन्दरः प्रशमदग्धरोगाङ्कुरः।

स्फुरत्परम पौरुषः स्थितिरशेष शास्त्रार्थ वित्।

यशोभर मदोहरी कृत समस्त विद्वम्भरः।

परोपकृति तत्परो जयति पद्मनन्दीश्वरः।

—शुभचन्द्र पट्टावली।

कब हुआ है? कुछ विद्वानों की यह मान्यता है कि पद्मनन्दी भट्टारक पद पर १४६५ तक रहे हैं। इस सम्बन्ध में उन्होंने कोई पुष्ट प्रमाण तो नहीं दिया, किन्तु उनका केवल वैसा अनुमान मात्र है। अतएव इस कयास में कोई प्रामाणिकता नहीं है; क्योंकि संवत् १४७३ की पद्मकीर्ति पार्श्वनाथ चरित की लिपि प्रशस्ति से स्पष्ट जाना जाता है कि पद्मनन्दि उस समय तक पट्ट पर विराजमान थे। जैसा कि उक्त प्रशस्ति के निम्न वाक्य से प्रकट है :—

“कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भ० श्री रत्नकीर्तिदेवास्तेषां पट्टे भट्टारक श्री प्रभावचन्द्रदेवा तत्पट्टे भट्टारक श्री पद्मनन्दिदेवास्तेषां पट्टे प्रवर्तमाने ।”

(मुद्रित पार्श्वनाथ चरित्र प्रशस्ति)

इससे यह भी ज्ञात होता है कि वे दीर्घ जीवी थे। पट्टावली में उनकी आयु निम्नान्वये वर्ष अट्ठाईस दिन की बतलाई गई है। और पट्टकाल ६५ वर्ष आठ दिन बतलाया है।

यहाँ इतना और प्रकट कर देना उचित जान पड़ता है कि वि० सं० १४७६ में असवाल कवि द्वारा रचित ‘पासणाह चरित’ में पद्मनन्दि के पद पर प्रतिष्ठित होने वाले शुभचन्द्र का उल्लेख निम्न शब्दों में किया गया है— ‘ततो पट्टंवर ससिणामे, सुहससिमुणियय पंकम चंदहो ।’ चूंकि सं० १४७४ में पद्मनन्दि द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तिलेख उपलब्ध है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि पद्मनन्दि ने सं० १४७४ के बाद और सं० १४७६ से पूर्व किसी समय शुभचन्द्र को अपने पट्ट पर प्रतिष्ठित किया था।

कवि असवाल ने कुशार्तदेश के करहल नगर में सं० १४७१ में कवि हल्ल या जयमित्र हल्ल द्वारा रचित ‘मल्लिणाह’ काव्य की प्रशंसा का भी उल्लेख किया है। उक्त ग्रंथ भ० पद्मनन्दि के पट्ट पर प्रतिष्ठित रहते हुए उनके शिष्य द्वारा रचा गया था। कवि हरिचन्द ने अपना वर्धमान काव्य भी लगभग उसी समय रचा था। इसी से उसमें कवि ने उनका खुला यशोगान किया है— ‘पद्मनन्दि मुणिणाह गणिदहु, चरण सरणु गुरु कइ हरिईदहु ।’ (वर्धमान काव्य)

आपके अनेक शिष्य थे, जिन्हें पद्मनन्दि ने स्वयं शिक्षा देकर विद्वान बनाया था। भ० शुभचन्द्र तो उनके पट्टवर

शिष्य थे ही, किन्तु आपके अन्य तीन शिष्यों से भट्टारक पट्टों की तीन परम्पराएं प्रारम्भ हुई थी, जिनका आगे शाखा प्रशाखा रूप में विस्तार हुआ है। भट्टारक शुभचन्द्र दिल्ली परम्परा के विद्वान थे। इनके द्वारा ‘सिद्धचक्र’ की कथा रची गई है^१। जिसे उन्होंने सम्यग्दृष्टि जालान के लिए बनाई थी : भ० सकलकीर्ति से ईडर की गद्दी की स्थापना हुई थी। चूंकि पद्मनन्दी मूलसंघ के विद्वान थे, अतः इनकी परम्परा में मूलसंघ की परम्परा का विस्तार हुआ। पद्मनन्दि अपने समय के अच्छे विद्वान, विचारक और प्रभावशाली भट्टारक थे। भ० सकलकीर्ति ने इनके पास आठ वर्ष रहकर छन्द, काव्य, व्याकरण, कोष, धर्म दर्शन, साहित्य और कला आदि का ज्ञान प्राप्त किया था और कविता में निपुणता प्राप्त की थी। भट्टारक सकलकीर्ति ने अपनी रचनाओं में उनका सम्मानपूर्वक उल्लेख किया है। पद्मनन्दि केवल गद्दीधारी भट्टारक ही नहीं थे, अपितु जैन सस्कृति के प्रचार एवं प्रसार में सदा तन्मय रहते थे।

पद्मनन्दि प्रतिष्ठचार्य भी थे। इनके द्वारा विभिन्न स्थानों पर अनेक मूर्तियों की प्रतिष्ठा की गई थी। जहाँ वे मन्त्र-तन्त्रवादी थे वहाँ वे अत्यंत विवेकशील और चतुर थे। आपके द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियां विभिन्न स्थानों के मन्दिरों में पाई जाती हैं। पाठकों की जानकारी के लिए दो मूर्तिलेख नीचे दिए जाते हैं :—

१ आदिनाथ—श्री संवत् १४५० वैशाख सुदी १२ गुरो श्री चाहुवाण वंश कुशेशय मार्तण्ड सारवं विक्रमन्य श्रीमत सरूप भूपान्वय कुडदेवात्मजस्य भूषज शक्तस्य श्री सुवसृपथैः राज्ये प्रयतमाने श्री मूलसंघे भ० श्रीप्रभावचन्द्र देव तत्पट्टे श्री पद्मनन्दि देव तद्रूपदेशे गोला राडान्वये ..। (भट्टारक सम्प्रदाय पृ० ६२)

२ अरहंत—हरितवर्ण कृष्णमूर्ति—सं० १४६३ वर्षे माघ सुदि १३ शुके श्री मूलसंघे पट्टाचार्य श्री पद्मनन्दि देवा गोलाराडान्वये साधु नागदेव सुत.....। (इटावा के

३ श्री पद्मनन्दी मुनिराज पट्टे शुभोपदेशी शुभचन्द्र देवः। श्रीसिद्धचक्रस्य कथाज्वतारं चकार भव्यांबुज

भानुमाली ॥

—(जैन ग्रंथ प्रशस्ति सं० भा० १ पृ० ८८)

(जैन मूर्ति लेख) प्राचीन जैन लेख संग्रह पृ० ३८ ।

ऐतिहासिक घटना

भ० पद्मनन्दि के सान्निध्य में दिल्ली का एक संघ गिरनार जी की यात्रा को गया था । उस समय श्वेताम्बर सम्प्रदाय का भी एक संघ उक्त तीर्थ की यात्रार्थ वहाँ आया हुआ था । उस समय दोनों संघों में यह विवाद छिड़ गया कि पहले कौन वन्दना करे । जब विवाद ने तूल पकड़ लिया और कुछ भी निर्णय न हो सका तब उसके शमनार्थ यह युक्ति सोची गई कि जो संघ पापाण की सरस्वती से अपने को 'आद्य' कहला देगा वही संघ पहले यात्रा कर सकेगा । अतः भट्टारक पद्मनन्दि ने पापाण की सरस्वती देवी के मुख से 'आद्य दिगम्बर' कहला दिया, इसमें विवाद के सुलभने में उस समय सहायता मिली । चूँकि इस विवाद का निर्णय मुनि पद्मनन्दि के द्वारा हुआ था । पद्मनन्दि ने पापाण की सरस्वती देवी के मुख से 'आद्य दिगम्बर' शब्द कहला कर दिगम्बर पहले है । अतः वे पहले ऊर्जयन्त गिरि की यात्रा करेंगे । ऐसा निश्चित होने पर दिगम्बरों ने पहले तीर्थ यात्रा की—भगवान् नेमिनाथ की भक्ति पूजा की । उसके बाद श्वेताम्बर सम्प्रदाय ने । उसी समय से बलात्कार गण की प्रसिद्धि मानी जाती है । वे पद्य इस प्रकार है:—

पद्मनन्दि गुरुर्जातो बलात्कारगणाग्रणी ।

पापाणघटिता येन वादिता श्री सरस्वती ॥

ऊर्जयन्तगिरी तेन गच्छः सरस्वतीऽभवत् ।

अतस्त्वस्मै मुनीन्द्राय नमः श्रीपद्मनन्दिन ॥

यह घटना ऐतिहासिक है जो पद्मनन्दि के साथ घटित हुई है । पद्मनन्दि नाम साम्य के कारण कुछ विद्वानों ने कुन्दकुन्दाचार्य से इस घटना का सम्बन्ध जोड़ दिया था । वह गलत है । यह घटना प्रस्तुत पद्मनन्दि के समय घटी है । इससे भ० पद्मनन्दि के मन्त्र-तन्त्रवादी होने की पुष्टि होती है ।

रचनाएँ

भ० पद्मनन्दि की अनेक रचनाएँ होगी, जिनमें देव-शास्त्र, गुरुपूजन सस्कृत, सिद्धपूजा सस्कृत और दो तीन रचनाएँ इन्हीं पद्मनन्दि की हैं या अन्य पद्मनन्दि की, यह विचारणीय है । इन रचनाओं में पद्मनन्दि के अतिरिक्त

प्रभाचन्द्र का कोई उल्लेख नहीं है । जब कि अन्य रचनाओं में प्रभाचन्द्र का भी उल्लेख उपलब्ध होता है । ऐसी रचनाएँ श्रावकाचारसारोद्धार, वर्धमान काव्य, जीरा-पल्लि पार्श्वनाथ स्तोत्र और भावना चतुर्विंशति ।

श्रावकाचार सारोद्धार सस्कृत भाषा का पद्यबद्ध ग्रंथ है उसमें तीन परिच्छेद हैं जिनमें श्रावकधर्म का विवेचन किया गया है । इस ग्रंथ के निर्माण में प्रेरक लंब कचुक कुलान्वयी (लमेचू वंशज) साहू वासाधर^१ है । उनके पितामह का भी नामोल्लेख हुआ है । जिन्होंने 'सूपकारसार' नामक ग्रंथ की रचना की थी । यह ग्रंथ अभी तक अनुपलब्ध है, विद्वानों को उसका अन्वेषण करना चाहिए । इस ग्रंथ की अन्तिम प्रशस्ति में साहू वासाधर के परिवार का अच्छा परिचय कराया गया है । और बतलाया गया है कि गोकर्ण के पुत्र सोमदेव हुए जो राजा अभयचन्द्र और जयचन्द्र के समय प्रधानमन्त्री थे । सोमदेव की पत्नी का नाम प्रेमसिरि था, उससे सात पुत्र उत्पन्न हुए थे । वासाधर, हरिराज, प्रह्लाद, महाराज, भवराज, रतनारव्य, और सतनारव्य । इनमें ज्येष्ठ पुत्र वासाधर सबसे अधिक बुद्धिमान, धर्मात्मा और कर्तव्य-परायण था । इसकी प्रेरणा और आग्रह से ही मुनि पद्मनन्दि ने उक्त श्रावकाचार की रचना की थी । वासाधर ने चन्द्रवाड में एक जिन मन्दिर बनवाया था और उसकी प्रतिष्ठा विधि भी सम्पन्न की थी । कवि धनपाल के शब्दों में वासाधर सम्यक्त्वो, जिन चरणों का भक्त जैन धर्म के पालन में तत्पर, दयालु, बहुलोक मित्र, मिथ्यात्व रहित तथा विशुद्ध चित्त वाला था^१ । भ०

१ श्रीलम्बकेचुकुल पद्य विकासभानुः,

सोमात्मजो दूरितदारुच्यकृशानुः

धर्मैकसाधन परो भुविभव्य बन्धु-

वासाधरो विजयते गुणरत्न सिन्धुः॥

—बाहुवली चरित सधि ४

२. जिणणाह चरण भक्तो जिणधम्मपरो दयालोए ।

सिरि सोमदेव तणओ णंदउ वासद्धरो णिच्च ॥

सम्मत्तजुत्तो जिणपाय भक्तो दयालु रत्तोबहुलोय भित्तो ।

मिच्छत्तवत्तो सुविसुद्ध चित्तो वासाधरो णंदउ पुण्ण-

चित्तो ॥

—बाहुवली चरित सं० ३

प्रभाचन्द्र के शिष्य धनपाल ने भी सं० १४५६ में चन्द्र-वाङ्मनगर में उक्त वासाघर की प्रेरणा से अपभ्रंश भाषा में 'बाहुवली चरित' की रचना की थी।

दूसरी कृति वर्धमान काव्य या जिनरात्रि कथा है। जिसके प्रथम सर्गमें ३५६ और दूसरे सर्ग में २०५ पद्य पाये जाते हैं। जिनमें अन्तिम तीर्थंकर महावीरका चरित अंकित किया गया है। किन्तु ग्रन्थ रचनाकाल नहो दिया, जिससे उसका निश्चित समय बतलाना कठिन है। इस ग्रन्थ की एक प्रति जयपुर के पार्श्वनाथ दि० जैन मन्दिर में अवस्थित है जिसका लिपि काल सं० १५१८ है। और दूसरी प्रति सं० १५२२ की लिखी हुई गोर्पापुरा सूरत के शास्त्र भंडार में सुरक्षित है। इनके अतिरिक्त 'अनंत व्रत कथा' भी भ० प्रभाचन्द्र के शिष्य पद्मनन्दि की बनाई हुई उपलब्ध है, जिसमें ८५ श्लोक हैं।

जीरापल्लि पार्श्वनाथ स्तवन और भावना चतु-

विंशति इन दोनों स्तवनों के कर्ता भी उक्त पद्मनन्दि ही हैं। शेष रचनाएं अन्वेषणीय हैं।

पद्मनन्दि ने अनेक देशों, ग्रामों, नगरों आदि में विहार कर जनकल्याण का कार्य किया है, लोकोपयोगी साहित्य का निर्माण तथा उपदेशों द्वारा सन्मार्ग दिखलाया है। इनके शिष्य-प्रशिष्यों से जैनधर्म की महती सेवा हुई है। वर्षों तक साहित्य का निर्माण, शास्त्र भंडारों का सकलन और प्रतिष्ठादि कार्यों द्वारा जैनधर्म और जैन सस्कृति के प्रचार में बल मिला है। इसी तरह के अन्य अनेक सत हैं जिनका परिचय भी जन साधारण तक नहीं पहुँचा है। इसी दृष्टिकोण को सामने रखकर पद्मनन्दि का परिचय दिया गया है। चूँकि पद्मनन्दि मूलसंघ के विद्वान थे, वे दिगम्बर रहते थे और अपने को मुनि कहते थे। और यथाविधि तथा यथाशक्य आचार विधि का पालन कर जीवन यापन करते थे।

‘अनेकान्त’ के स्वामित्व तथा अन्य व्योरे के विषय में

प्रकाशक का स्थान

प्रकाशन की अवधि

मुद्रक का नाम

राष्ट्रीयता

पता

प्रकाशक का नाम

राष्ट्रीयता

पता

सम्पादक का नाम

राष्ट्रीयता

पता

स्वामिनी संस्था

वीर सेवा मन्दिर भवन, २१ दरियागज दिल्ली

द्विमासिक

प्रेमचन्द

भारतीय

२१, दरियागज, दिल्ली

प्रेमचन्द, मन्त्री वीर सेवा मन्दिर

भारतीय

२१, दरियागज, दिल्ली

डा० आ. ने. उपाध्ये एम. ए. डी. लिट्, कोल्हापुर

डा० प्रेम सागर, बडोत

यशपाल जैन, दिल्ली

परमानन्द जैन शास्त्री, दिल्ली

भारतीय

मार्फत वीर सेवा मन्दिर २१, दरियागज, दिल्ली।

वीर सेवा मन्दिर २१, दरियागज, दिल्ली

मै प्रेमचन्द घोषित करता हूँ कि उपरोक्त विवरण मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सही हैं।

१७-२-७०

ह० प्रेमचन्द

(प्रेमचन्द)

नरेन्द्र सेन

के० भुजबली शास्त्री विद्याभूषण

श्रीमान् प० दरबारीलालजी कोठिया द्वारा सम्पादित 'माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थ माला के ४७वे ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित 'प्रमाण प्रमेयकलिका' नामक संस्कृत न्यायग्रन्थ आचार्य नरेन्द्रसेन के द्वारा रचित है। इस ग्रन्थ की प्रस्तावना में कोठिया जी ने ७ नरेन्द्रसेनो का उल्लेख किया है। इनमें से प्रथम और द्वितीय नरेन्द्रसेन एक व्यक्ति, तृतीय नरेन्द्रसेन एक व्यक्ति, चतुर्थ पंचम षष्ठ नरेन्द्रसेन एक व्यक्ति और सप्तम नरेन्द्रसेन एक व्यक्ति कहे गये हैं। इस प्रकार चार नरेन्द्रसेनो का नामोल्लेख करके इनमें से अन्तिम अर्थात् सप्तम नरेन्द्रसेन को प्रमाण-प्रमेय कलिका का रचयिता मानकर इनका समय शक स० १६७३ वि. सं. १८०८ बतलाते हुए इन्हीं को कोठियाजी ने उपर्युक्त न्यायग्रन्थ का प्रणेता निर्धारित किया है।

कोठियाजी ने प्रथम नरेन्द्रसेन के संबंध में अपनी प्रस्तावना में लिखा है कि वादिराजसूरि रचित 'न्याय-विनिश्चय विवरणातर्गत अन्तिम प्रशस्ति के 'विद्यानन्द-मनतवीर्यसुखदम्' इस द्वितीय पद्य में वादिराज ने विद्यानन्द, अनंतवीर्य, पूज्यपाद, दयापाल, सम्मतिसागर (मतिसागर) कनकसेन और स्वामी समंतभद्र-सदृश समर्थ आचार्यों की पक्ति में नरेन्द्रसेन का नाम उल्लेख करके उनकी निर्दोष नीति को भक्ति से स्मरण किया है। साथ ही साथ इस सम्बन्ध में दूसरा कोई साधन प्राप्त न होने के कारण कोठियाजी ने वादिराज द्वारा ही रचित पादर्वनाथचरिता-र्गत प्रशस्ति में प्रतिपादित शक वर्ष ९४७ (ई० सन् १०२५) को उद्धृत करते हुए न्यायविनिश्चयविवरण की प्रशस्ति में उल्लिखित नरेन्द्रसेन को वादिराजसूरि से पूर्व-वर्ती बतलाया है। पर वादिराज की प्रशस्ति में प्रतिपादित सभी विद्वानों को वादिराज से पूर्ववर्ती मानना युक्तिसंगत नहीं होगा। क्योंकि उनमें से कम से कम कतिपय विद्वान अवश्य उनके समकालीन भी रहे होंगे।

वादिराज के गुरु, कनकसेन के शिष्य दयापाल के

सम्बन्ध में शिवमोगा जिलान्तर्गत नगर तालुका के होंतुज के ३५वे शिलालेख में "राजमल्ल-देवगे गुरुगलेनिसिद कनकसेन भट्टारकर वरशिष्यर् शब्दानुशासनकके प्रक्रियेयेन्दु रूपसिद्धि माडि दयापालदेवरू" यह उल्लेख मिलता है। इस शिलालेख का काल ई० सन् १०५० है। इसमें प्रतिपादित दयापाल और न्यायविनिश्चयविवरण की प्रशस्ति में प्रतिपादित दयापाल एक ही व्यक्ति ज्ञात होते हैं। ऐसी परिस्थिति में दयापाल वादिराज और नरेन्द्रसेन में तीनों समकालीन मालूम होते हैं।

अब नरेन्द्रसेन से सम्बन्ध रखने वाले शिलालेख को देखें। धारवाड जिलान्तर्गत गदग तालुक, भुलगुद के ई० सन् १०५३ का शिलालेख नरेन्द्रसेन के शिष्य नयसेन के सम्मुख लिखवाया गया दानशासन है। इसमें नरेन्द्रसेन को वैयाकरणी बनलाया है। वह पद्य इस प्रकार है :

चाद्र कातत्र जैनंद्र शब्दानुशासन पाणिनी म।

जैन्द्र नरेन्द्रसेनमुनीन्द्रगेकाक्षर पेरगिबु भोगे ॥

इस शिलालेख में गुरु नरेन्द्रसेन के साथ शिष्य नयसेन की बड़ी प्रशंसा है। शिलालेख में नयसेन को 'समस्त-शब्दशास्त्रपारावारपारंगत' बतलाया है। इसमें चालुक्य राजा त्रैलोक्यमल्ल प्रथम रामेश्वर के सधिविग्रही एवं नयसेन के शिष्य बेलदेव के प्रार्थनानुसार शिद कंचरस के द्वारा भुलगुद जिनालय को प्रदत्तदान का विस्तृत वर्णन है। पूर्वोक्त नयसेन ने कन्नड में २४ आश्वासी से युक्त 'धर्मामृत' नामक एक कथा ग्रंथ की रचना की है। बल्कि यह ग्रन्थ हिन्दी में अनुवादित होकर आरा से प्रकाशित भी हो चुका है। नयसेन भी गुरु नरेन्द्रसेन की तरह वैयाकरण थे। पर उनका व्याकरण अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है। नो भी संस्कृत में 'भाषाभूषण' नामक कन्नड व्याकरण को रचने वाले द्वितीय नागवर्म (ई० सन् लगभग १२४५) ने अपने इस व्याकरण ग्रन्थ के ७४वे सूत्र में 'दीर्घोक्तिनय-सेनस्य' इस रूप में नयसेन का उल्लेख अवश्य किया है।

नयसेन के द्वारा धर्माभूत का समाप्तिकाल नदन सवत्सर युक्त 'गिरिशिखिवायुमार्गशशिसख्या' शक वर्ष बतलाया गया है। इस हिसाब से धर्माभूत का समाप्तिकाल शकवर्ष १०३७ सिद्ध होता है। पर इसमें एक बाधा यह है कि नंदन संवत्सर शकवर्ष १०३७ में न आकर शकवर्ष १०३४ में आता है। शकवर्ष १०३४ का ई० सन् १११२ होता है। अस्तु नयसेन ने अपने धर्माभूत में स्वगुरु नरेन्द्रसेन के तप और श्रुत की प्रशंसा करते हुए अपने को समग्र तर्कशास्त्र की शिक्षा प्रदान करनेवाले बतलाया है। साथ ही साथ नयसेन ने गुरु नरेन्द्रसेन को सिद्धांत में आचार्य जिनसेन से शास्त्र पाण्डित्य में पूज्यपाद से और षट्कर्त में समन्तभद्र से बढ़कर बतलाया है।

चालुष्यचक्रवर्ती भुवनेकमल्ल द्वितीय सोमेश्वर से

पूजित गुणचन्द्र पंडितदेव के द्वारा मुनि नरेन्द्रसेन को सवात्सल्य त्रैविद्यचक्रवर्ती की उपाधि दी जाने का उल्लेख करते हुए नयसेन ने अपने धर्माभूत में इन नरेन्द्रसेन को 'महावागीश' बतलाया है। हमें नयसेन का नाम सर्वप्रथम ई० सन् १०५३ के मुलगुद के शिलालेख में ही मिलता है। मुलगुद शिलालेख के इस १०५३ के समय में २५ कम कर देने में ई० सन् १०२८ होता है। ऐसी स्थिति में मुलगुद का यह शिलालेख ही नरेन्द्रसेन की वादिगज का समकालीन सिद्ध करता है। पूर्वोक्त सभी बातों को ध्यान में रखकर विचार करने पर 'प्रमाणप्रमेयकलिका' के रचयिता यही नरेन्द्रसेन मालूम होते हैं। आशा है कि मित्रवर डा० दरबारीलालजी कोठिया इस विषय पर फिर अवश्य विचार करेंगे।



रामपुरा के मंत्री पाथूशाह

डा० विद्याधर जोहरापुरकर

मध्यप्रदेश के मन्दसौर जिले में रामपुरा एक पुरातन शहर है। यहाँ पाथूशाह की बावड़ी नाम का एक कुआरा है। इसकी दीवाल में लगी हुई शिला पर तथा समीप के स्तंभ पर दो संस्कृत शिलालेख हैं। भारत सरकार के पुरातत्त्व विभाग द्वारा प्रकाशित ग्रन्थमाला एपिग्राफिया इण्डिका के भाग ३६ में पृ० १२१ से १३० तक ये लेख छपे हैं। इन्हीं का सक्षिप्त परिचय यहाँ दे रहे हैं।

रामपुरा (जिसे लेख में दूषणारिपुर भी कहा है) में बघेरवाल जाति के ५२ गोत्रों में एक सेठिया गोत्र के संघई नाथू रहते थे। इनके पुत्र सं० जोगा थे (इन्हे लेख में योग भी कहा है)। रामपुरा के चन्द्रावत वंशीय राजा अचलदास ने इन्हे अपनी सेवा में नियुक्त किया था। इन्होंने एक जिन मन्दिर बनवाया था। इनके पुत्र सं० जीवा और जीवा के पुत्र सं० पाथू हुए। (लेख में पाथू का संस्कृत रूप पदार्थ लिखा है)। ये अचलदास के वंशज

दुर्गराज और चन्द्रराज की सेवा में मुख्य मंत्री के पद पर नियुक्त हुए थे। लेख में दुर्गराज की विस्तृत प्रशंसा मिलती है। इन्होंने कई युद्धों में विजय पाई थी, दुर्ग संरक्षित तालाब खुदवाया था तथा पिगलिका नदी पर बांध बनवाया था। चन्द्रराज की वीरता की भी लेख में प्रशंसा मिलती है। लेख का उद्देश पाथूशाह द्वारा उपर्युक्त कुएं के (जिसे लेख में दीघिका कहा है) निर्माण का वर्णन करना है। यह लेख संवत् १६६३ में लिखा गया था। कुएं का निर्माण सूलधार रामा की देखरेख में हुआ था। लेख में पाथूशाह के अन्य धर्मकार्यों का भी वर्णन है। उन्होंने पूजा, प्रतिष्ठा रथ यात्रा आदि का आयोजन किया था तथा इसी लिए राजा ने उनका अभिनन्दन भी किया था। प्रस्तुत लेख का पूर्ण पाठ जैन शिलालेख संग्रह भा० ५ में भी संगृहीत किया है जो शीघ्र ही भारतीय ज्ञानपीठ की ओर से माणिकचन्द्र दि० जैन ग्रन्थमाला में प्रकाशित होने जा रहा है।



अमरकीर्ति नाम के आठ विद्वान

परमानन्द जैन शास्त्री

जैन वाङ्मय का आलोचन करने से यह सुनिश्चित जान पड़ता है कि एक नाम के अनेक विद्वान होते रहे हैं। उदाहरण के लिए अकलक, प्रभाचन्द्र और पद्मनन्दि अदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन नामों के अनेक विद्वान विभिन्न समयों में हुए हैं। इसी तरह अमरकीर्ति नाम के भी कई विद्वान दृष्टिगोचर होते हैं।

एक अमरकीर्ति पट् कर्मोपदेश के कर्ता हैं जो भट्टारक चन्द्रकीर्ति के शिष्य थे। अमरकीर्ति ने महीयड़ देश के 'गोध्रा' नगर के चालुक्य वंशीय कृष्ण (कण्ह) के राज्य का उल्लेख किया है। इसका कारण वे गुजरात के निवासी जान पड़ते हैं। यह माथुर सध के विद्वान अमितमति द्वितीय की परम्परा में हुए हैं। यह अपभ्रंश भाषा के प्रौढ़ विद्वान थे। इनकी अपभ्रंश भाषा की दो कृतियाँ उपलब्ध हैं। इन्होंने अपना नेमिनाथ पुराण स० १२४४ में बना कर समाप्त किया था। उसके तीन वर्ष बाद स० १२४७ में पट्कर्मोपदेश की रचना हुई है। इसमें गृहस्थ के पट्कर्मों का सुन्दर विवेचन दिया हुआ है। १४ सधों और २१५ कड़वक हैं जिनकी श्लोक संख्या २०५० प्रमाण है। दशवी सध में जिन पूजा पुरंदर विधि कथा दी हुई है। पुरंदर विधान कथा, अलग रूप में भी उपलब्ध होती है। इनकी निम्न रचनाएँ—महावीर चरित, जसहर चरित, धर्मचरित टिप्पण, सुभाषित रत्ननिधि, धर्मोपदेश धूडामणि, भाण पईव नाम की रचनाएँ अनुपलब्ध हैं।

दूसरे अमरकीर्ति 'वर्धमान' के प्रगुरु थे। इनकी गुरु परम्परा देवेन्द्र, विशालकीर्ति, शुभकीर्ति, धर्मभूषण, अमरकीर्ति, ... धर्मभूषण और वर्धमान। वर्धमान ने शक स० १२६५ वैशाख सुदी ३ बुधवार को धर्मभूषण की निषद्या बनवाई थी थी। इस शिलालेख के अनुसार अमरकीर्ति का समय शक स० १२५० के आस-पास का जान पड़ता है। इनका समय ईसा की १४वीं शताब्दी

है। इनके समय का समर्थन संवत् १३०७ के एक शिलालेख से भी होता है।

तीसरे अमरकीर्ति वे हैं जिनके शिष्य माघनन्दी ब्रती और प्रशिष्य भोगराज सोदागर थे। भोगराज ने शक स० १२७७ (वि० स० १४१२) में शान्तिनाथ की प्रतिमा प्रतिष्ठित कराई थी।

चौथे अमरकीर्ति—वे हैं जो कलिकाल सर्वज्ञ धर्मभूषण के शिष्य थे और जिनका उल्लेख शक स० १२६५ में लिखे गये श्रवण बेलगोल के शिलालेख नं० १११ (२७४) में आया है।

पाचवे अमरकीर्ति वादी विद्यानन्द के शिष्य थे। जिनका उल्लेख शिलालेख नं० ४६ में हुआ है। इनका रचा हुआ एक यमकाष्टक स्तोत्र अनेकान्त वर्ष १० कि० १ में प्रकाशित हुआ है। इस स्तोत्र के अन्त में कवि ने 'देवागमालकृति' नाम की रचना का भी उल्लेख किया है। इस कृति की कोई उपलब्धि नहीं हुई जिससे उसके सम्बन्ध में कुछ लिखा जा सके। मुख्तार श्री जुगलकिशोर जी ने इनका समय विक्रम की १६वीं शताब्दी बतलाया है।

छठवे अमरकीर्ति भ० मल्लिभूषण के शिष्य थे। मल्लिभूषण मालवा के पट्ट पर आसीन थे। इन्हीं के समकालीन विद्यानन्द और श्रुतसागर थे। इन अमरकीर्ति की एक कृति जिन सहस्रनाम की संस्कृत टीका है, जो भट्टारक विश्वसेन के द्वारा अनुमोदित है। चूकि मल्लिभूषण और

१ अध्येष्टाऽऽगम मध्यगीष्ट परम शब्द च युक्ति विदां।

चक्रे यः परशील-वदि-मदभिद्देवागमालकृतिम्॥

—अनेकान्त वर्ष १० कि० १, पृ. ३

२ मल्लिभूषण शिष्येण भारत्यानन्देन च।

सहस्रनामटीकेयं रचिताऽमरकीर्तिना॥

—जैन ग्रंथ प्रशस्ति संग्रह भा० १, पृ. १४६

श्रुतसागर का समय विक्रम की १६वीं शताब्दी है, अतः इन अमरकीर्ति का समय भी १६वीं शताब्दी होना चाहिए ।

सातवें अमरकीर्ति वे हैं, जिनका उल्लेख दशभक्त्यादि महाशास्त्र के रचयिता वर्धमान ने किया है । जो विद्या-नन्द के पुत्र विशालकीर्ति के सधर्मा अमरकीर्ति थे । जिन्हें शास्त्र कोविद विमलाशय, कामजेता, निर्मल गुण और धर्म के आश्रय तथा जिनमृत के प्रकाशक बतलाया है । जैसा कि ग्रन्थ के निम्न उद्धरण से स्पष्ट है—

जीयावमरकीर्त्याखभट्टारक शिरोमणिः ।

विशालकीर्ति योगीन्द्र सधर्मा शास्त्र कोविदः ॥

अमरकीर्ति मुनि विमलाशयः कुसुमन्यायमदाचलवज्रभूत ।
जिनमतापहृतारितमाश्च यो जयति निर्मल धर्म गुणाश्रयः ॥

विशालकीर्ति के पिता विद्यानन्द का स्वर्गवास शक सं० १४०५ सन् १४८१ मे हुआ था ।

आठवें अमरकीर्ति ऐन्द्र वंश के प्रसिद्ध विद्वान् थे जो 'त्रैविद्य' कहलाते थे । यह अपने समय के अच्छे विद्वान् मान पड़ते हैं । इनका बनाया हुआ धनजय की नाममाला

का भाष्य भारतीय ज्ञारपीठ से प्रकाशित हो चुका है । उस ग्रन्थ की पुष्पिका में उन्हें त्रैविद्य महा पण्डित और शब्द वेधसी बतलाया है । भाष्य को देखने से वे विविध ग्रन्थों के अभ्यासी जात होने हैं ।

‘इति महापण्डित श्रीमदमरकीर्तिना त्रैविद्येन श्री सेन्द्र वंशोत्पन्नेन शब्दवेधसा कृताया धनजय नाम मालायां प्रथमकाण्ड व्याख्यातम् ।’

प्रस्तुत कोष ग्रन्थ का भाष्य लिखते हुए अमरकीर्ति ने परम भट्टारक यशःकीर्ति अमरसिंह, हलायुध, इन्द्रनन्दी, सोमदेव, सोमप्रभ, हेमचन्द्र और आशाधर आदि के नामों का उल्लेख करते हुए, महापुराण, सूक्तमुक्तावली, हंमी-नाममाला यशस्तिलक, इन्द्रनन्दि का नीतिसार और आशाधर के महाभिक्षेक पाठ का नामोल्लेख किया है । इनमें सोमप्रभ १२वीं, हेमचन्द्र १२-१३वीं और आशाधर ने सं० १३०० मे अनगार धर्माभूत की टीका पूर्ण की है । इससे भाष्यकार अमरकीर्ति सं० १३०० के बाद विद्वान् ठहरते हैं ।

★

संस्कृत सुभाषितों में सज्जन-दुर्जन

लक्ष्मीचन्द्र जैन 'सरोज' एम. ए. साहित्यरत्न

चूँकि दुनियां दुरंगी है, अतएव उसमे जहाँ दिन के साथ रात है और फल के साथ शूल है, वहाँ वादी के साथ प्रतिवादी और पक्षी के साथ प्रतिपक्षी भी है । जहाँ मिलन के साथ विरह है और सुख के साथ दुःख है, वहाँ शिष्ट के साथ अशिष्ट है और सज्जन के साथ दुर्जन भी है । यों दुनियां का नाम सार्थक है । कारण, उसमे पग-पग पर दो नीति वाली वृत्ति सक्षित होती है ।

इतिहास, अर्थ और महत्त्व :

संस्कृत और हिन्दी के कतिपय महाकाव्यों में सज्जन-दुर्जन का वर्णन कुछ कवियों ने किया और उसमे लोक-संग्रह की भावना जहाँ रही, वहाँ प्रकारास्तर से सज्जनों के

सत्संग का और दुर्जनों से दूर रहने का भी भाव रहा । सज्जन-दुर्जन के वर्णन की भाँति सुभाषितों का भी प्रयोग काफी मात्रा में संस्कृत और हिन्दी के ग्रन्थों मे पाया जाता है । पर संस्कृत ग्रन्थों के मुभाषित जितने सक्षिप्त सरल सहज ग्राह्य और भाव व्यञ्जक तथा लोकप्रिय हुए हैं, उतने हिन्दी ग्रन्थों के नहीं । वैसे कबीर की साखियाँ, तुलसी-रहीम-खन्द आदि के नीति मूलक दोहे भी जनता की जवान ने काफी कंठस्थ किये हैं ।

संस्कृत के सुभाषित शिष्ट-संयत-भुरुचिपूर्ण हैं । इसलिये मि० वेकटाचलम् के शब्दों में 'पण्डित मडली' मे ऐसे असख्यात अज्ञात कवियों की सैकड़ों-हजारों फुटकर रच-

नाये 'सुभाषित' के नाम से जनश्रुति-प्रवाह में बहती आई है। सुभाषित शब्द का अर्थ है 'सुष्ठु भाषितम्' अर्थात् सुन्दर ढंग से कहा हुआ। अतएव सुभाषित शब्द से उन समस्त रचनाओं का निर्देश होता है, जहाँ एक फुटकर पद्य में किसी विषय का सरस प्रतिपादन किया जाता है। इनमें से अधिकांश नीति के बोधक होते हैं। सुभाषितों के भी सग्रह मिलते हैं। सुभाषितों को स्मरण किये बिना तो संस्कृत भाषा-साहित्य का अध्ययन-अध्यापन अपूर्ण हो रहता है। सच तो यह है कि सुभाषितों में जीवनदायी अनुभूतियों के तत्व विखरे हैं।

इसलिए संस्कृत भाषा और सुभाषितों के सम्बन्ध में एक मुकवि ने जो बात कही है, वह शन प्रतिशत सही है।

भाषासु मुख्या मधुरा दिव्या गीर्वाण भारती ।

तस्माद्भि काव्यं मधुर तस्मादपि सुभाषितम् ॥

भाषाओं में मुख्य और मधुर देव-वाणी (संस्कृत भाषा) है और उसमें भी काव्य मधुर है तथा उससे भी सुभाषित मधुर सुखद है।

सज्जन

सज्जनों में पाये जाने वाले गुणों का समावेश प्रस्तुत श्लोक में हुआ है।

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा,

सदसि वाक्यदृता युधि विक्रमः ।

यशसि चाभिरतिर्धनं श्रुतौ,

प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥

सज्जन पुरुष विपत्ति में धैर्यवान् और सर्वतोमुखी अभिवृद्धि में क्षमाशील होते हैं। वे सभा में उच्चकोटि के देवता होते हैं और युद्ध क्षेत्र में अद्वितीय साहसी। यश के लिए उनकी लालसा होती है और शास्त्र-श्रवण, तत्त्वचर्चा में मुरुचि। यह सज्जनों का जन्म-सिद्ध अविकार है।

सज्जनों का स्वभाव नारियल के समकक्ष होता है। जैसे आरम्भिक अवस्था में पिलाये गये पानी को जटाओं का बोझ धारण करने वाला नारियल नहीं भुला पाता है और बदले में जीवन भर अमृत तुल्य पानी देता है, वैसे ही सज्जन पुरुष भी कभी किसी के उपकार को भूलते नहीं हैं। यह बात संस्कृत के एक मुकवि ने इस प्रकार कही है—

प्रथम वयसि पीत तोयमत्पं स्मरन्तः,

शिरसि निहित भारा नारिकेला नराणाम् ।

उदकममृतकल्प दक्षुराजीवितान्तम्,

न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति ॥

सज्जन पुरुष ही सज्जनों की आपत्ति को दूर करने में समर्थ है। कीचड़ में फँसे हुए हाथियों को निकालने में श्रेष्ठ हाथी ही समर्थ है, अन्य नहीं। इस हृदयस्थ भाव को एक कवि ने यो व्यक्त किया है।

सन्त एव सतां नित्यमापदुद्धरण क्षमाः ।

गजानां पंकमग्नानां गजा एव घुरन्धराः ॥

सज्जनों की सगति का प्रभाव श्रमोघ होता है। वह पुरुषों के लिए क्या नहीं करती? सभी कुछ यथासंभव करती है। सत्सगति, बुद्धि की जड़ता दूर करती है, वाणी में सत्य वा सच्चा करता है। सम्मान और उन्नति को देती है, पाप का दूर करती है, चित्त को प्रसन्न करती है और दशो दिशाओं में कीर्ति का विस्तार करती है। यह बात एक कवि के शब्दों में यो स्मरण कीजियेगा—

जाड्यं धियो हरति, सिञ्चति वाचं सत्यम् ।

मानोन्नतिं दिशति, पापमपाकरोति ॥

चेतः प्रसादयति, दिक्षु तनोति कीर्तिम् ।

सत्सगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ॥

सच तो यह है कि सज्जन पुरुष पुण्य और पीयूष से परिपूर्ण होते हैं। वे तीनों लोकों का उपकार कर प्रसन्न होते हैं। दूसरों के परमाणु जैसे गुणों को पहाड़ों के रूप में देखने का स्वभाव होता है अतएव अपने मन ही मन में अतीव स्वस्थ और सन्तुष्ट रहने वाले सज्जन पुरुष कैसे होते हैं? यह कह सकना अब सम्भव ही नहीं रह गया है। यह बात एक कवि ने यों कही है—

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूष पूर्णः,

त्रिभुवन-उपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः ।

परगुण परमाणून् पर्वतोक्त्य नित्यम्,

निजहृदि विकसन्तस्सन्ति सन्तः । कियन्तः ॥

वुर्जन

सज्जन के विरोधी दुर्जन में कौन-कौन से गुण पाये

जाते हैं। यह जानने के लिए आप संस्कृत के सुकवि का निम्नलिखित श्लोक पढ़िये—

अकरुणत्वमकारणविग्रहः,

परधने परयोषिति च स्पृहा ।

सुजन बन्धु जनेष्वसहिष्णुता,

प्रकृतिसिद्धमिदं हि दुरात्मनाम् ॥

अर्थात् निर्दय होना, बिना कारण लड़ाई-झगडा करना, दूसरे का धन चाहना, दूसरे की स्त्री की इच्छा करना, सज्जन बन्धुओं के प्रति असहनशील होना, यह तो दुर्जनो का जन्म सिद्ध अधिकार है।

यदि आप दुर्जनो को पहिचानना चाहे तो नीचे लिखा श्लोक पढ़े—

मुख पद्मदलाकारं वाचा चन्दनशीतला ।

हृदयं क्रोध संयुक्तं त्रिविधं धूर्तलक्षणम् ॥

कमल के पत्ते जैसा मुख, चन्दन जैसी शीतल वाणी और क्रोधयुक्त हृदय, इत तीन लक्षणों से किसी भी धूर्त या दुर्जन को पहिचाना जा सकता है।

दुर्जन व्यक्ति अपने नहीं दूसरों के ही दोष देखता है। यह बात संस्कृत भाषा के एक संस्कृत कवि ने इस प्रकार कही है।

खलः सर्षपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यति ।

आत्मनो बिल्व मात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति ॥

दुष्ट व्यक्ति दूसरों के तो सरसों के दाने जैसे भी दोष देख लेता है पर अपने बेल जैसे भी बड़े दोष देखता हुआ भी नहीं देखता है।

इसलिए उसकी प्रकृति को बदलना असम्भव है। जैसे नीम का पेड़ घी-दूध से बार-बार सींचे जाने पर भी अपनी कटुता को नहीं छोड़ता है, वैसे दुर्जन व्यक्ति भी बहुत बार सेवा किये जाने पर भी, सज्जनो के सम्पर्क में आने पर भी अपनी दुर्जनता को नहीं छोड़ता है। यह बात आप एक कवि के शब्दों में यों स्मरण रखिए—

न दुर्जनः सज्जनतामुपैति, बहुप्रकारैरपि सेव्यमानः -

भूयोऽपि सिक्तः पयसा घृतेन, न निम्बवृक्षो मधुरत्वमेति ॥

दुर्जन को बदलना असम्भव ही है। यह बात एक दूसरे कवि ने और भी अच्छे ढंग से यों कही है—

बोधितोऽपि बहु सूक्ति विस्तरैः,

किं खलो जगति सज्जनो भवेत् ।

स्नापितो बहुशो नदी जलेः,

गर्भभ. किम् ह्यो भवेत् ॥

बहुत सी सुन्दर सूक्तियों द्वारा समझाये जाने पर क्या दुष्ट व्यक्ति ससार में सज्जन हो सकता है? नहीं, कद पिय नहीं। गधे को कितनी नदियों के जलसे स्नान क्यों न कराया जाय पर वह घोंडा बनने वाला नहीं। गधा तो गधा ही रहेगा।

और तो और—दुर्जन से प्रेरित व्यक्ति सज्जनो का वैसे ही विश्वास नहीं करते हैं, जैसे दूध का जला बालक दही या छाछ को भी फूक-फूक कर पीता है। यह बात एक कवि ने श्लोक में यों ग्रथित की है।

दुर्जन दूषित मनसां पुंसां, सुजनेऽपि नास्ति विश्वासः ।

बालः वायस दग्धो दध्यपि फूत्कृत्य भक्षयति ॥

सज्जन-दुर्जन

सज्जनो और दुर्जनो के कार्य को बतलाने के लिए एक सुन्दर श्लोक है—

अनकुरतः खल सुजनावग्रिम पाश्चात्य भागयोः सूच्याः ।

विदधाति रन्ध्रमेको गणवान्यस्तु विदधाति ॥

अर्थात् सुई के अगले-पिछले भागों के समान दुर्जन और सज्जन काम करते हैं। सुई का अगला भाग दुर्जन जैसा छेद करता है और पिछला भाग सज्जन जैसा उस छेद को बन्द करता है।

दूसरे शब्दों में 'दुर्जन पुरुष वह मिट्टी का घडा है जिसे तोड़ना जितना सरल है जोड़ना उतना ही जटिल है और सज्जन पुरुष वह सोने का घडा है, जिसे तोड़ना कठिन है पर जोड़ना अतीव सरल है।' यह बात आप एक कवि के शब्दों में यों हृदयंगम कीजिये—

सृदुघटवत् सुखभेद्यो दुःस्थानश्च दुर्जनो भवति ।

सुजनस्तु कनक घटवत् दुर्भेद्यश्चाशु सन्धेयः ॥

सज्जनों और दुर्जनों की मित्रता के सम्बन्ध में एक बड़ा ही सुन्दर श्लोक संस्कृत वाङ्मय में मिलता है और वह यह है—

आरम्भ गुर्वी क्षयिणी क्रमेण,
लघ्वी पुरा वृद्धिमुपेति पश्चात् ।
विनस्य पूर्वाधं पराधं भिन्ना,
छायेव मंत्री खल सज्जनानाम् ॥

दुर्जनों की मित्रता प्रातःकालीन छाया सी है, जो आरम्भ में बहुत बड़ी होती है पर कुछ काल बाद बारह बजते ही समाप्त हो जाती है और सज्जनों की मित्रता अपरान्ह कालीन छाया सी होती है, जो आरम्भ में बहुत कम होती है और छह-सात बजे तक बराबर बढ़ती ही जाती है ।

सज्जनों और दुर्जनों के स्वभाव में जो विरोध पाया जाता है तथा उनका प्रत्येक बात को तोलने का, सोचने-समझने का जो दृष्टिकोण रहता है, उसे संस्कृत के सु-कवियों ने अच्छी तरह समझने का प्रयत्न किया है । जदाहरण के लिए एक ने कहा है—‘दुर्जन व्यक्ति की विद्या विवाद के लिए होती है और धन घमड़ करने के लिए तथा शक्ति दूसरो को पीड़ित करने के लिए परन्तु सज्जन की विद्या ज्ञान के लिए होती है और धन परोप-कार के लिए तथा शक्ति दूसरो की रक्षा के लिए’ । और दूसरे ने बताया कि ‘दुर्जन व्यक्ति शरदकालीन बादल के समान है, जो गरजता है पर बरसता नहीं है, वह कहता तो है पर करता नहीं है पर सज्जन व्यक्ति वर्षाकालीन बादल के समान है, जो बिना आवाज किये ही बरस जाता है, वह मुख से कहता नहीं है पर कर अवश्य देता है’ ।

तीसरे ने अपने अनुभव को व्यक्त करते हुए कहा है—
‘बुद्धिमानों का समय काव्य-शास्त्र चर्चा और दिनोदय में

बीतता है पर मूर्खों का समय बुरी आदतो, लड़ाई-भगड़ों और निद्रा में बीतता है’ । चौथे ने अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति करते हुए कहा—‘फल वाले वृक्ष भुक्ते हैं । गुणवान व्यक्ति नम्र होते हैं परन्तु सूखे वृक्ष और मूर्ख कभी भी नहीं भुक्ते हैं’ । सज्जनों और दुर्जनों के सम्बन्ध में जो आकाश और पानाल जैसा अन्तर है, उसे निष्कण्डं स्वरूप पाँचवे कवि के शब्दों में संक्षेप में यों कहा जा सकेगा—‘महापुरुषों के (सज्जनों के) मन-वचन और कार्य में एक रूपता पाई जाती है पर दुराचारियों के (दुर्जनों के) मन-वचन और कार्य में विविधता की ही विशेषता पाई जाती है’ ।

सज्जनों और दुर्जनों के आदि स्रोत जैसे साधनों की हिन्दू धर्मग्रन्थों के आदिदेव भगवान् शंकर ने भी धारण कर रखा है, उनके जीवन दृष्टिकोण से भी हम और आप शिक्षा ले तथा सज्जन-दुर्जन को यथोचित स्थान दे और स्वयं शकर जो जैसे ही निर्विकार निलिप्त होकर रहे—जैसे सज्जनता के प्रतीक चन्द्रमा को शकर जी ने शीर्षस्थ स्थान दिया और दुर्जनता के प्रतीक विष को कण्ठ में स्थान दिया (उसे न जवान पर ग्वा और न पेट में ही स्थान दिया क्योंकि इससे विकृति की सम्भावना थी) वैसे ही समाज के लोग सज्जन-दुर्जन को स्थान दे ।

गुण दोषो बुधो गूहणन्निन्दुष्वेडाविवेश्वरः ।

शिरसा श्लाघते पूर्वं परं कण्ठे नियच्छति ॥

आज इतना ही मुझे आप से निवेदन करना है ।

३ काव्य शास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम् ।

व्यसनेन तु मूर्खाणाम् निद्रया कलहेन वा ॥

४ नमन्ति फलिनो वृक्षाः नमन्ति गुणिनां जनाः ।

शुष्क वृक्षाश्च मूर्खाश्च न नमन्ति कदाचन ॥

५ मनस्येक वचस्येक कर्मण्येक महात्मनाम् ।

मनस्यन्यद् वचस्यन्यद् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम् ॥

१ विद्याविवादाय धन मदाय, शक्ति. परेषां परिपीडनाय ।

खलस्य साधोविपरीतमेतज्ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय ॥

२ शरदि न वर्षति गर्जति, वर्षति वर्षासु नि. स्वर्गो मेघः ।

नीचो वदति न कुरुते, न वदति सुजनः करोत्येव ।

सुभाषितम्—विषयनि सेवत बुद्धि भले, सुख न तुम्हारे जानु ।

अस्थि चवत निज शरिरे ते, ज्यों सुख माने स्वानु ॥

जिनही विषयनि बुद्धि दियो, तिनही लागत घाय ।

माता मारिउ बाल जिम, उठि पुनि पग लपटाय ॥

अनेक स्थान नाम गर्भित भ० पार्श्वनाथ के स्तवन

भंवरलाल नाहटा

वर्तमान चौवीसी मे पुरिसादानीय भगवान पार्श्वनाथ की प्रसिद्धि सर्वाधिक है। उनके जितने तीर्थ, मन्दिर और प्रतिमाएँ भारत मे विद्यमान है, अन्य किसी भी तीर्थकर के नही। प्राचीन मान्यता के अनुसार भ० पार्श्वनाथ के जन्म से पूर्व ही उनके तीर्थ व प्रतिमाएँ पूज्यमान थी। भगवान अरिष्टनेमि के समय मे सखेश्वर तीर्थ यादवपति श्रीकृष्ण की सेना की मूर्छा जो जरासन्ध की जरा से हुई थी—इन्ही सखेश्वर पार्श्वनाथ के प्रभाव से दूर हुई थी। भ० पार्श्वनाथ के अघिष्ठाता शासन देव-देवी पार्श्वयक्ष धरणेन्द्र पद्मावती विशेष जागरूक होने से एव मन्त्र-यन्त्रो मे उनसे सम्बन्धित सामग्रीप्राचुर्य के कारण भ० पार्श्वनाथ की पूजा-अर्चा भी बहुलता से हांती आई है। बीस तीर्थकरो की निर्वाणभूमि सम्मेलनशिखर महातीर्थ जनेतर समाज मे 'पारसनाथ पहाड़' के नाम से ही प्रसिद्ध है। बगल मे तो अन्य तीर्थकरो को कम ही जानते है। कलकत्ते मे भारत प्रसिद्ध कार्तिक महोत्सव की रथयात्रा घर्मनाथ स्वामी की हात हुए भा पार्श्वनाथ की कहलाती है एव रायबद्रीदास कारित शीतलनाथ जिनालय भा 'पार्श्वनाथ' के नाम से प्रसिद्ध है। जितने विविध प्रकार सख्याधिक स्तुति स्तोत्रादि पार्श्वनाथ भगवान के उपलब्ध हैं उतने अन्य तीर्थकरो के नही। प्राकृत, संस्कृत अपभ्रंश, हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती में रचित स्तोत्र-स्तवनादि की सख्या हजारो पर है इनमे से कई स्तोत्रों मे १०८ या इनसे भी अधिक स्थान नामगर्भित स्तवन प्राप्त होते है। श्री विजय घर्मसूरिजी सम्पादित प्राचीन तीर्थमाला सग्रह भाग १ मे ४४ वर्ष पूर्व पार्श्वनाथ संबन्धी ऐसी चार रचनाएँ प्रकाशित हुई थी—

४ गौडी पार्श्वनाथ स्तवन, शान्तिकुशल

इनमे से दो मे तो १०८ स्थानों की नामावली है तथा अन्य दो मे इनसे भी न्यूनाधिक नाम दिये हुए है। हमारे सग्रह मे ऐसी कई अप्रकाशित रचनाएँ है जो १५वी से १८वी शताब्दी के बीच की है। इनमे पार्श्वनाथ के स्थानों के नाम बहुत से तो एक समान है पर कुछ भिन्न-भिन्न भी है। इनसे जिसे जो नाम याद थे उनसे वे अपनी रचना मे सम्मिलित कर लिए, सिद्ध होता है। इन स्थानो में अब पार्श्वनाथ के मन्दिर कहां-कहां है एवं कहा-कहा रहे' इसकी खोज की जानी चाहिए। कुछ स्थान तो तीर्थ रूप मे प्रसिद्ध है, पर कई स्थानो का पता लगाना भी कठिन हो गया है। कई स्थान पाकिस्तान मे चले गये एव कश्यो की प्रतिमाएँ अन्यत्र चली गयी एव नष्ट भी हो गये। पार्श्वनाथ के कई तीर्थों के सम्बन्ध मे स्वतन्त्र ग्रन्थ निकल चुके है, एव उन तीर्थों के सम्बन्ध मे कई चमत्कारिक बाते-प्रवाद रूप से प्रसिद्ध है। ३७ वर्ष पूर्व जैनसंस्ती वाचनमाला से "श्री प्रगट प्रभावी पार्श्वनाथ तथा जैन तीर्थमाल" ग्रंथ प्रकाशित हुआ था जिसमे १११ पार्श्वनाथ सम्बन्धी चमत्कारिक कथाएँ संगृहीत है। यो इस ग्रन्थ में १८४ स्थानो का विवरण दिया है। पार्श्वनाथ के स्थानों सम्बन्धी एक ही ग्रंथ में इतनी सामग्री अन्यत्र नही मिलती। जैनसंस्ती वाचनमाला से सखेश्वर पार्श्वनाथ, स्तभन पार्श्वनाथ सम्बन्धी तीन ग्रंथ स्वतन्त्र भी निकल चुके हैं। विविध तीर्थकल्प, उपदेश सप्ततिका आदि ग्रंथों में भ० पार्श्वनाथ के कई कल्प हैं हीं। स्तभन पार्श्वनाथ सम्बन्धी छोटे-छोटे कल्पों का सग्रह भी संस्कृत मे पन्द्रहवी शताब्दी का प्राप्त होता है।

१ पार्श्वनाथ चैत्यपरिपाटी, कल्याणमागर

२ पार्श्वनाथ नाममाला, मेघविजय

३ पार्श्वनाथ सख्यागर्भितस्तव, रत्नकुशल

कई स्तोत्र ऐसे भी है जिनमे भ० पार्श्वनाथ के गुण-गर्भित १०८ नामों का सग्रह है। संभव है १००८ नाम-गर्भित स्तोत्र भी रचा गया हो। यहां जो रचनाएँ प्रका-

शित की जा रही है उनमें एक अपूर्ण है, उसकी पूरी प्रति कहीं मिलने पर ही रचयिता एवं रचनाकाल का पता लग सकता है। अधिकांश रचनाएं खरतरगच्छीय विद्वानों की हैं एवं हमारे संग्रह में विद्यमान हैं। ऐसे स्थान नामगभित जितनी भी रचनाएं मिलती हों उन सबको सगृहीत कर प्रकाशित कर देना चाहिए, यह प्रेरणा देने के लिए ही वर्षों से हमारे सगृहीत रचनाओं को यहां प्रकाशित किया जाता है। मुनि राजश्री अभयसागरजी भ० पार्श्वनाथ के नामों की विस्तृत तालिका बना रहे हैं, उसके लिए भी यह प्रयास उपयोगी सिद्ध होगा।

१ अष्टोत्तर शत पार्श्वनाथ स्तवन

गा. १५ जितभद्रसूरि (१५वी) १६

२ अष्टोत्तर पार्श्वनाथ स्तोत्र

गा. ८ सुमतिस्निधुर १७०३ ५८

३ अष्टोत्तर शत पार्श्व सूचक स्तवन

गा. १६ सुमतिस्नुन्दर १६६१ ८८

४ अष्टोत्तर शत पार्श्व स्थान स्तवन

गा. ६ सहजकीर्ति (१७वी) ८११

५ अष्टोत्तरसय पार्श्वनाथ स्तवन

गा. १६ समयराजोपाध्याय , ६१३

६ ११७ नाम गभित पार्श्वनाथ स्तवन

गा. १७ रत्नवर्द्धन ,, १७

७ पार्श्वनाथ लघु स्तवन

गा. ६ रत्ननिधान ,, २०

८ श्री पार्श्वनाथ स्तवन

गा. १५ हरिकलस सूरि ,, २१

९ अष्टोत्तर शत पार्श्व स्तवन

गा. १३ क्षेमराज (१६वी) २५

१०

गा. २१॥ अपूर्ण ,, २८

११ पार्श्वनाथ अनेक तीर्थनाम स्तवन

गा. ४ समय सुन्दर (१७वी) ३१

अभी-अभी श्री चापस्मा जैन संघ प्रकाशित "श्री भटेवा पार्श्वनाथ जिनालय अर्ध शताब्दी स्मारक ग्रंथ" प्रकाशित हुआ है उसमें भ० पार्श्वनाथ नामों, स्थानों,

आदि सम्बन्धी महत्वपूर्ण सामग्री प्रकाशित हुई है।

कई वर्ष पूर्व मुनि श्री ताराचन्द्रजी संपादित 'पार्श्व-दर्श' नामक ग्रंथ प्रकाशित हुआ था जिसमें श्री पार्श्वनाथ सम्बन्धी स्तुति स्तोत्र स्तवनादि का बड़ा संग्रह है। सलेश्वर पार्श्वनाथादि एक-एक तीर्थ के स्तवनों का भी संग्रह स्वतंत्र रूप से निकले है।

(श्री जिनभद्र सूरि विरचित)

अष्टोत्तर शत पार्श्वनाथ स्तवनम्

पणमवि पण परमिद्वि पाय पउमावय देवीय,
वयरुट्टा धरणिद पास जय विजया सेवी;
ठाण ठाणद्विय पासनाह हं जणमण मोहण,
समरिस्सु समरिस्सु सामि माल अइसइ मण रोहण ॥१

सिरि बाणारसि नयर राजगूह नयर पचारइ,
थाल नयर सिरि सिद्धलंछ पट्ट सिरि गिरिनारइ;
जोरावल फलवड्ढि नागव्रह महिमा पूरीय,
करहेइई कलिकुंड पास सवि कलि मल चूरिय ॥२

अणहिलवाड नयरि सामि वसरुपइ बीसइ,
थंभणपुर घर पंचरूप पट्ट पास सलीजइ;
मंगलपुरि मंगल निवास नव पल्लव नामिइ,
चित्तह चोरण चित्रकोटि, चितामणि सामि ॥३

॥ वस्तु ॥

पास जिणवर पास जिणवर देवगिरि नयरि ।
सिरि सिरि पुरि पंच पुरि नगरकोटि नागउरि गिरिपुरि ।
अज्जाहर राणपुरि अजयमेरि जावाल पुरवरि ।
जेलमेरि हमोरपुरि हाहणपुरि चिहुरूप ।
कुंभलमेरिह मंडपह पणमीजइ चिहुरूप ॥४

॥ भास ॥

संखेसर समेयगिरि सिरि अससेण मल्हार ।
आरासणि रावण सरण करिस्सु जिणेसर सार ।
पालीताणइ पाप हर घोघापुर नवलंड ।
सेरोसइ सोभणनिधि सामी पास प्रचड ॥५
चतुर्मुखि खरतर जिण भुवण अरबुव गिरिवर श्रुति ।
तिह भूमिद्विय पूजोयइ नवफण सामी रंगि ।

जूनइ गडि जोहारि जिण जनम सफल करि आज।
ऊनय नयरि निहालणीय नयणे तीरथ राज ॥६

॥ वस्तु ॥

कुक्कड़ैसर कुक्कड़ैसर पुरहि अहिछत्त।
छवटणि दीवपुरि सीहदीव देवकइ पाटणि।
वरकाणइ कइंदवणि कइरवाडि कार्कार सुवासणि।
मज्जाउद जाउर जवणउर बीजापुर जोइ।
उज्जेणी जोगिणपुरइ जिण जगि जीव न होइ ॥७

॥ ढाल ॥

धवलकए पास कलिकुंड घृतकल्लोल मेलगपुरह।
सामलउ ए अहमदावाद आसाउलि सलखणपुरह।
वह्यलो ए वसम देव वेलाउल वडली नयारि।
आसीयउ ए आसलकोटि गोपाचलगिरि जोधपुरि ॥८
महुरह ए मगसीय गाम मम्मणवाहण मन रलीए।
तलाज्ज ए भरम दारंभि भन्नूयवाडइ बीजलीए।
वडपद्रइ ए थयराउडि नाडउद्रहि पद्राडपुरि।
हडाद्रई ए हियडलइ हेव पास वहिसु हुं हरस भरे ॥९

॥ वस्तु ॥

मोरवाडइ मोरवाडइ मयण मय हरण।
टोमाणह माणीयइ ए मूलथाण मानिय बिभूषण।
धंभूकइ धरमधुर बाधणउरि पुरि रहाउ दूषण।
पाटउधइ सिद्धा सुयए अणि अंथइ भोहड।
चोरवाड वीसल नयरि जसु सेवइ कोहड ॥१०

॥ भास ॥

सिरि सिणोरइ पुरइ ण चेलण पुरइ।
साहपुरि खारपुरि पास पचासरे।
राजपुरि राजए नयरि पंथाहडे।
कुशल करि सामि कंकोनपुर आहडे ॥११
कंत कतोपुरी डिपुरी चेलण,
गहय गुण गह गउड़ीपुरी मंडण,
वड नयार वड नयणि नाह निराखज्जए।
पारकरि पास पय कमल फल लिज्जए ॥१२

॥ भास ॥

जसु समरणि नासइ सब रोग।
जसु समरणि लाभइ समय जोग।
जसु समरणि सवि आपद टलंति।
जसु समरणि सवि संपवि मिलंति ॥१३
कड पूर्याण सायणि भूय पेय।
अरि हरि करि व्यंतर दुट्ट जेय।
तुह चरण सरण जे करइ नाह।
तिह ते नव पहुवड पास नाह ॥१४
इय सय अट्टोत्तर ठाण सठिय पास जिणवर मानिया।
मह सुद्ध चित्तइ गह्य भत्तइ रासबंधहि गुथिया।
जे कंठ कदल करइ निरमज्ज भाव भविषण ते सया।
जिणभइ सासय सुह समाणय अट्ट सिद्धिहि संपया ॥१५
इति श्री अट्टोत्तर सत पाइवंनाथ स्तवनम् ॥
[अभय जैन ग्रन्थालय गुटका न० ३४ पत्र १३१ से
३४; १७वीं शती लिखित]

अनेकान्त के ग्राहक बनें

‘अनेकान्त’ पुराना ख्यातिप्राप्त शोध-पत्र है। अनेक विद्वानों और समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों का अभिमत है कि वह निरन्तर प्रकाशित होता रहे। ऐसा तभी हो सकता है जब उसमें घाटा न हो और इस लिए ग्राहक संख्या का बढ़ाना अनिवार्य है। हम विद्वानों, प्रोफेसरों, विद्यार्थियों, सेठियों, शिक्षा-संस्थाओं, संस्कृत विद्यालयों कालेजों, विश्वविद्यालयों और जैन भूत की प्रभावना में अट्टा रखने वालों से निवेदन करते हैं कि वे ‘अनेकान्त’ के ग्राहक स्वयं बनें और दूसरों को बनावें। और इस तरह जैन संस्कृति के प्रचार एवं प्रसार में सहयोग प्रदान करें।

व्यवस्थापक ‘अनेकान्त’

पद्मावती

प्रकाशचन्द्र सिंघई एम. ए., बी. टी.

प्रत्येक धर्म में देवी-देवताओं की उपासना की जाती है और उन देवियों का महत्वपूर्ण स्थान रहता है। कुछ देवियाँ जैन, शैव, हिन्दू और बौद्ध धर्म में एक-सी समानता रखती हैं। उनमें पद्मावती एक देवी है जिसका विवरण चारों धर्मों में एक सा मिलता है। इन देवी-देवताओं के कुछ विशिष्ट चिह्न होते हैं और चिह्नों के आधार पर उन देवियों को जान सकते हैं जैसे लक्ष्मी का चिह्न कमल है जिसे धन देवी कहा गया है।

जैन धर्म में पद्मावती को सर्प की देवी कहा गया है और सर्प की देवी बौद्ध, शैव तथा हिन्दू धर्म में भी मिलती है। पद्म पुराण में पद्मावती को हर की पुत्री कहा गया है।^१ भैष्म पुराण में “देवी पद्म महेशम् समधर वदनं ...।” पद्मावती स्तोत्र में महा भैरवी कहा गया है। शैव संप्रदाय में ‘भैरव’ शिव को कहा गया है। ‘हर’ (महादेव) सर्प डाले हुए दिखाये जाते हैं, इसमें ‘हर’ की पुत्री पद्मावती की समानता, पार्श्वनाथ की यक्षिणी पद्मावती जिसके सिर पर सप्त फणी सर्पों का छत्र है, से की जाती है।

जांगुली जो अक्षोभ्या से दूसरी ध्यानी बुद्ध है, सर्प देवी मानी गई है। साधन माला की सगीति के अनुसार यह बुद्ध से भी पहले की है क्योंकि बुद्ध ने अपने शिष्य आनंद को इसकी पूजन का मंत्र बताया था और यही साधनामाला में ‘तारा’ के नाम से जानी जाती है।^१ भय आठ प्रकार के माने गये हैं। सर्प भय भी एक है पर ‘तारा’ का नाम लेते ही सब भय दूर हो जाते हैं। इसी प्रकार जैन धर्म में पद्मावती देवी है जिसका नाम लेते ही सब भय दूर हो जाते हैं जैसा कि पद्मावती स्तोत्र में

१ पद्मपुराण, पृ. २

२ बी. भट्टाचार्य : इन्डियन बुद्धिस्ट आइकोनोग्राफी, पृ. १८५

उल्लेख है।^१ जांगुली के सिर पर पंच फणी छत्र, बायें हाथ में सर्प पकड़े हुए, दायें हाथ में वज्र और कुंडली मारे सर्प पर आसीन है।^२

अमोघ सिद्धि, जो चौथी तथा नेपाली बौद्धों के अनुसार पांचवी ध्यानी बुद्ध है, का वाहन गरुण है। पुराणों के अनुसार गरुड और सर्प एक दूसरे के शत्रु होते हैं। इससे साधनमाला में सप्त फणी सर्प के समान छत्र को धारण किये—बताया गया है।^३

हिन्दू धर्म में सर्प को धारण किये बलराम जी की मूर्ति मिलती है।^४ विष्णु को तो शेष शय्या पर दिखाया गया है तथा विष्णु के सिर पर पंच फणी सर्प छत्र दिखाया जाता है।

सर्पों (नागों) के विषय में जान लेना भी आवश्यक प्रतीत होता है। प्रमुख नाग आठ प्रकार अद्भुत पद्मावती कल्प^५ रघुनदन तिथि तत्त्व^६ तथा मल्लिषेण के भैरव

३ तारात्वं सुगमागमे, भगवती गौरीति शैवागमे।

वज्रा कौलिकशासने जिनमते पद्मावती विश्रुता ॥

गायत्री श्रुतिशालिनी प्रकृति रित्युक्तासि साह्यागमे ॥

मातभरिति ! किं प्रभूत भाषितं व्याप्तं समस्त त्वया ॥

श्लोक २० ॥

पद्मावती स्तोत्र, भैरव पद्मावती कल्प परिशिष्ट ५ पृ.

४ पिवचर गैलरी : बड़ौदा स्टेट म्यूजियम, बड़ौदा।

५ बी. भट्टाचार्य : इन्डियन बुद्धिस्ट आइकोनोग्राफी पृ. ५, फनक ८ (सी)।

६ बड़ौदा ग्वालियर में बलराम की मूर्ति फलक xviii, ए गाइड टू दी आर्का लाजीकल म्यूजियम, ग्वालियर।

७ अनंत, वासुकी, तक्षक, कारवीटक, पद्म, महापद्म, शंख पाल कुलिक। अद्भुत पद्मावती कल्प चतुर्थ ४६; इन्डियन बुद्धिस्ट आइकोनोग्राफी; पृ. ५६।

८ तिथितत्त्व पृ. १२; संप्रदित मधुसूतनाथ शर्मा।

पद्मावती कल्प में है। इसी प्रकार भैरव पद्मावती कल्प में इन नागों की उत्पत्ति तथा वर्ण का उल्लेख मिलता है—वासुकी और शख, क्षत्रिय, अनन्त और कुलिक-ब्राह्मण, तक्षक और महापद्म-वैश्य तथा कारबोटक और पद्म शूद्र वर्ण के। वर्ण के अनुसार रंग भी चित्रित किया गया है—क्षत्रिय वर्ण के सर्प लाल रंग के, ब्राह्मण-मयक, वैश्य-पीले तथा शूद्र वर्ण के सर्प काने रंग के होते हैं।^{१०}

अमिताभ के सेवक के रूप में आठो प्रकार के नामों का उल्लेख किया गया है। इन ध्यानी बुद्ध, शुक्ला, कुरुकुल्ला का निरूपण पद्मावती के रूप में कर सकते हैं ऐसा ब्राह्मण और जैन दर्शन में है।^{११}

इसी प्रकार तीसरी सदी का अभिलेख, जो भरहुत स्तूप के द्वार से प्राप्त हुआ—में नाग राजाओं की राजधानी पद्मावती का उल्लेख है। इस नगर का उल्लेख विष्णु पुराण तथा भवभूति के 'मालती माधव' में भी किया गया है।^{१२}

कुमार स्वामी ने नागों को जल चिह्न भी माना है। पद्मा को घन तथा समृद्धि की देवी कहा गया है तथा इसे 'श्री' से जाना जाता है। इसी आधार पर नव प्रकार की निधि-पद्म, महापद्म, मकर कच्छप, मुकुद, नीम, वच्छ, नंद और शख के रूप में मानी गयी है। इन निधियों का संबंध सर्पों से इसलिए है; क्योंकि प्रत्येक सर्प फण में एक विशेष प्रकार की मणी रहती है। उस मणी को जल में से ही प्राप्त करते हैं। इसीलिए समुद्र को रत्नाकर कहा गया है।^{१३}

नव प्रकार की निधि और आठ प्रकार के सर्प माने

गये हैं। लक्ष्मी का जन्म समुद्र से हुआ जो निधि तथा सर्पों का वास है इससे घन देवी लक्ष्मी को सर्प देवी पद्मा के रूप में माना जाना स्वाभाविक लगता है।

इस प्रकार हिन्दू, शैव, बौद्ध, और जैनधर्म में सर्प देवी के उल्लेख मिलते हैं, पर उसके नाम अलग-अलग हैं। जैनधर्म में पद्मावती सर्प देवी की कथा इस प्रकार है।

“पूर्व जन्म पद्मावती तथा धरणेन्द्र नाग, नागिन थे। ये दोनों एक लकड़ी में थे, उस लकड़ी को एक साधु ने आग में लगा दिया था। उसी समय भगवान् पार्श्वनाथ वहां पहुँच गये और दोनों नाग नागिन की रक्षा की, पर वे भुलुस गये थे। मरते समय पार्श्वनाथ ने दोनों को णमोकार मंत्र सुनाया जिसके प्रभाव से मरकर भवनवासी देव (युगल) के रूप में उत्पन्न हुए।^{१४} जब भगवान् पार्श्वनाथ तप कर रहे थे तब पार्श्वनाथ के शत्रु कमठ ने इनका तप भंग करने के लिए उपसर्ग किया तब दोनों ने मणी मयी फण तान कर भगवान् पार्श्वनाथ की पाहन वर्षा से रक्षा की।^{१५} ये दोनों पार्श्वनाथ के भक्त थे।

पद्मावती का स्वरूप :

पद्मावती देवी के चार हाथ जिनमें दायी और का का एक हाथ वरद मुद्रा में रहता है और दूसरे हाथ में अंकुश। बाँयी और के एक हाथ में दिव्य फल और दूसरे में पाश रहता है।^{१६} अंकुश और पाश से लपटें निकलती रहती है।^{१७} इसके तीन नेत्र होते हैं। तीसरा नेत्र कोष के समय ही खुलता है तथा उसमें से विकराल क्रोधाग्नि निकलने लगती है।^{१८} इसके सिर पर पंच फणी सर्प छत्र रहता है।^{१९} देवी का वाहन कुर्कूट है^{२०} जिसकी एक बूंद

१० भैरव पद्मावती कल्प अ० १० श्लोक १४।

१० वही, १४-१६।

११ पद्मपुराण, पृ. २, भैष्य पुराण, भैरव पद्मावती, कल्प १०-१४।

१२ दी साइट आफ पद्मावती—वाई. एम. बी. ग्रे, आर्कालाजीकल सर्वे आफ इंडिया वार्षिक रिपोर्ट १९१५-१६, पृ. १०४-१०५।

१३ बनर्जी जे. एन : डब्लुपमेंट आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृ. ११६, पाठ टिप्पणी १।

१४ भावदेव सूरि : पार्श्वदेव चरित्र ६, ५०-६८।

१५ गुणभद्र : उत्तर पुराण ७३. ४३६-४४०।

१६ भैरव पद्मावती कल्प २, १२।

१७ “व्याघ्रो रोल्ला सहस्र ज्वलदलल शिखालोलपाशां-कुशाढ्ये।” पद्मावती स्तोत्र, श्लोक १; भैरव पद्मावती कल्प, पृ. ७८।

१८ वही २, १२; २, २।

१९ हेमचन्द्राचार्य : अभिषाण चिंतामणी, पृ. ४३।

२० पाशाङ्कुशौ पद्म वरे रक्तवर्णा चतुर्भुजा।

में समूचे विश्व को समाप्त करने की शक्ति है।^{११} पद्मावती के दो रूप—सौम्य रौद्र । रौद्र रूप से अत्याचारियों का नाश होता है और सौम्य से विश्व कल्याण । सौम्य रूप में होने पर देवी के शरीर से उषा काल के सूर्य की आभा-सी फूटने लगती और चेहरा प्रसन्न हो जाता है तथा हाथ पैरों से कमल की सी सुगन्ध निकलने लगती है।^{१२}

उक्त विवरण ज्ञात करने के बाद पद्मावती देवी के विषय में पुरातात्विक तथा साहित्यिक साक्ष्यों की दृष्टिगत कर लेना आवश्यक है ।

पुरातात्विक :

साहित्य में पद्मावती और अम्बिका को एक ही माना गया है पर पुरातत्त्व में इन दोनों की भिन्न-भिन्न मूर्तियाँ हैं । अम्बिका^{१३} को प्राचीन काल की तथा पद्मावती की मध्यकाल की अनेक मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं ।

खड गिरि की गुफा में चौबीस तीर्थंकरों की मूर्तियाँ हैं उनके नीचे चौबीस जिन शासन देवी हैं इनमें चार हाथ वाली यक्षिणी पद्मावती भी है।^{१४} अक्कनवस्ति नाम का मन्दिर, जो श्रवण बेलगोल में है, का निर्माण शक स० ११०३ ई। उस मन्दिर के गर्भ गृह में पार्श्वनाथ है तथा गर्भ गृह के दरवाजे के दोनों ओर धरणि और पद्मावती की करीबन तीन फुट ऊँची मूर्तियाँ हैं।^{१५} चन्द्रगिरि पर्वत (मैसूर) पर कत्तलेवस्ति नामक मन्दिर के बरामदे में पद्मावती की मूर्ति है।^{१६}

पद्मा कुक्कुटस्था ख्याता पद्मावतीति च। ३७।

अपराजिता पृच्छा २२१।

२१ भावदेव सूरि : पार्श्वनाथ स्तोत्र ८, ७२८।

२२ मल्लिखेण सूरि : भैरव पद्मावती कल्प परिशिष्ट ५, श्लोक २-८, पृ. २६-२७।

२३ हरिद्वर्णी सिंह सस्या द्वि भुजा च फलं वरं।

पुत्रेणोपास्य माना च सुनोत्संगा तथाऽम्बिका ॥३६॥

अपराजिता पृच्छा सू. २२१।

२४ बनर्जी जे. एन. : जैन आइकोनोग्राफी, क्लासीकल एज पृ. ४१४ विद्याभवन बंबई।

२५ जैन शिलालेख सप्तह प्रथम भाग, शिलालेख क, १२४, ३२७, पृ. ४३, ४४।

२६ वही पृ. ५-६।

नालंदा उत्खनन में एक चतुर्भुजी यक्षी की मूर्ति प्राप्त हुई है, जो पद्मावती की है। यह उत्तरी भारत में अपनी समता नहीं रखती।^{१७} नालंदा के एक जैन मन्दिर में प्रवेश करते ही दाँयी ओर के एक भाले में एक सप्त मणी करीबन डेढ़ फुट की पार्श्वनाथ^{१८} प्रतिमा है, उभय पार्श्व में चमरधारी पार्श्वदे खड़े हैं तथा निम्न भाग में चतुर्भुजी देवी पद्मावती हैं।^{१९}

पूना के आदीश्वर मन्दिर में एक पद्मवती मूर्ति है जो फूलों और वस्त्रों से सुसज्जित है सुसज्जित है।^{२०} वर्धा जिले के सिधी ग्राम के मन्दिर में एक सुन्दर भूरे पाषाण की खड्गासन पद्मावती मूर्ति है।^{२१} इसी प्रकार नागपुर के मन्दिर में भी काले पाषाण की देवी की मूर्ति है।^{२२}

साहित्यिक :

देवी पद्मावती का तीसरी सदी के निर्वाण कलिका^{२३} तथा वि० स० छठवीं सदी के तिलोय पण्णत्ति^{२४} में उल्लेख मिलता है। इसके बाद मुनि कुमारसेन के विद्यानु-

२७ आर्कालाजीकल सर्वे आफ इडिया वार्षिक रिपोर्ट १९२५-२६, पृ. १२५, फलक lvi-lvii, रिपोर्ट १९३०-३४ पृ. १६५, फलक cxxxvii व lxxviii; रिपोर्ट १९३५-३६ फलक xvii; गाइड टू राजगिर-कुरेशिया और घोष।

२८ मौलो फणि फणा: सप्त नय श्री भि: कराइव।

धृता: शांत रसास्वादे यस्य पार्श्व: स पातु व: ॥१२६॥
अमरचंद सूरि कृत पद्मानंद महाकाव्य।

२९ मुनि कांतिसागर : खोज की पगडि़याँ, पृ. १९६।

३० जैन एन्टीक्वेरी, जि. १६, क्र. १ जून ५० पृ. २०।

३१ मुनि कांतिसागर : खंडहरों का वैभव, पृ. ४०, पाद टिप्पणी १।

३२ जैन सिद्धांत भास्कर : भाग २०; कि. २, दिसं. ५३, पृ. ५१।

३३ पादलिप्त सूरि : निर्वाणकलिका पृ. ३४, फतेह चंद वेलानी जैन ग्रंथ और ग्रंथकार, जैन सस्कृति मंडल वाराणसी, पृ. २।

३४ यतिवृषभ: तिलोयपण्णत्ति; ; प्र. भा. (४, ६३६) पं० जुगलकिशोर मुख्तार : पुरातन जैनवाक्य सूची सरसाबा; भूमिका पृ. ३४।

शासन ग्रंथ जो लगभग वि० सं० की आठवीं सदी का है, में धरणेन्द्र पद्मावती को मन्त्र के अधिष्ठातृ देवता के रूप में माना है^{१५}। वि० सं० ९वीं सदी में भगवज्जिनसेनाचार्य ने 'पार्श्वाम्बुदय' का निर्माण किया जिसमें धरणेन्द्र पद्मावती का वर्णन है। वादिराज सूरि ने वि० सं० १०८२ में पार्श्वनाथ चरित्र की रचना की। इसमें कमठ उपसर्ग का वर्णन है तथा धरणेन्द्र पद्मावती का उल्लेख है। श्वेताम्बर आचार्य भावदेव सूरि ने भी पार्श्वनाथ चरित्र की रचना की जिसमें धरणेन्द्र पद्मावती का जीवन परिचय दिया^{१६}। मल्लिखेण सूरि ने भैरव पद्मावती कल्प की रचना की जिसमें देवी पद्मावती का वर्णन किया^{१७}। जिनप्रभ सूरि ने विविध तीर्थ कल्प की रचना की, जिसके पद्मावती कल्प में देवी के चमत्कारों की कथा का वर्णन है^{१८}। साथ ही पद्मावती चतुष्पदी प्राकृत काव्य की रचना की जिसमें ४६ गाथाएँ हैं^{१९}।

'मुनि वंशाम्बुदय' कन्नड़ी भाषा के काव्य ग्रंथ की पाँचवीं संधि में देवी का उल्लेख है। इसके अलावा माणिक्यचन्द्र, सकल कीर्ति, पद्मसुन्दर और उदयवीर गणि द्वारा रचित पार्श्वनाथ चरित्रों में कमठ कथा और देवी की भक्ति का उल्लेख मिलता है।

महत्त्व :

जैनधर्म में २४ तीर्थंकरों की निर्धारित शासन देवियाँ हैं^{२०}। इन सब में अधिक महत्त्व तेइसवे तीर्थंकर पार्श्वनाथ की शासन देवी पद्मावती को दिया गया है।

भगवान् पार्श्वनाथ के समय में जैनधर्म को अधिक

उन्नत करने में पद्मावती का योग रहा है तथा इनके पति धरणेन्द्र ने कमठ उपसर्ग से पार्श्वनाथ की रक्षा की, इससे गुणों के संग्रह में 'दक्ष' और जिन शासन की रक्षा में निपुण होने के कारण 'यक्ष' की सजा दी गई^{२१}।

ब्र० नेमिदत्त कृत आराधना कथाकोष और देव चन्द्र कृत 'राजा बलि कथे' में उल्लेख है कि भट्टाकलंक का विवाद बौद्धों के साथ वि० सं० सातवीं सदी में हुआ था तब देवी के द्वारा बताये गये उपाय से ही तारा, जो बौद्धों की देवी है, को हराया था। 'राजा बलि कथे' कन्नड़ी ग्रंथ है जिसका अग्नेजी अनुवाद रायस महोदय ने किया है।

आराधना कथाकोष से ज्ञात होता है कि आचार्य पात्र केसरी की शंका का समाधान पद्मावती ने किया था जिसका समर्थन श्री वादिराजसूरि के न्यायविनिश्चयालंकार से होता है^{२२}। इस घटना का उल्लेख श्रवण बेलगोला के शिलालेख न० ५४ से होता है—“देवी पद्मावती सीमधर स्वामी के समवशरण में गयी और गणधर के प्रसाद से एक ऐसा श्लोक लायी जो त्रिलक्षण के कदर्थन का मूलधार बना^{२३}।

भट्टबाहु स्वामी ने 'उवसग्गहर स्तोत्र' का प्रारम्भ भगवान् पार्श्वनाथ और पार्श्वयक्ष स्तुति से किया है इस स्तोत्र से यह स्पष्ट है कि मुनि भट्टबाहु स्वामी के सब की रक्षा धरणेन्द्र पद्मावती ने एक व्यतर के उपसर्ग से की थी^{२४}। इसी कारण यह स्तोत्र धरणेन्द्र पद्मावती की भक्ति से परिपूर्ण है। भगवती सूत्र में भी देवी का उल्लेख है^{२५}।

३५ मुनि सुकुमार जैन : विद्यानुशासन प्रथम कल्प 'भैरव पद्मावती कल्प'।

३६ यह ग्रंथ हरगोविंद दास और बेचरदास द्वारा संपादित तथा प्रकाशित सन् १९१२।

३७ मल्लिखेण सूरि : भैरव पद्मावती कल्प अध्या० ३।

३८ जिनप्रभ सूरि : विविध तीर्थ कल्प; सिंधी जैन ग्रन्थ-माला वि. सं. १९९० पृ. ६८-६९।

३९ बेलनकर : जैन रत्नकोष, जि. १, भंडारकर रिसचं इन्स्टीट्यूट पुना, १२४४, पृ. २३५।

४० वनर्जी जे. एन. जैन आइकोनोग्राफी : पृ. ४२५, एच आफ इम्पीरियल यूनिटी, विद्या भवन बंबई।

४१ तस्याः पतिरतु गुणसंग्रहदक्षचेता यक्षो ब भूव जिन-शासन रक्षणज्ञः। राजसूरि पार्श्वनाथ चरित्र १२, ४२ पृ. ४१५।

४२ महिमास पात्रकेसरिगुरो; परं भवति यस्य भक्त्या-सीत् पद्मावती सहाया त्रिलक्षणं कदर्थनं कर्तुम्। न्यायविनिश्चयालंकार।

४३ जैन शिलालेख संग्रह : प्रथम भाग पृ. १०१।

४४ भट्टबाहु स्वामी : 'उवसग्गहर स्तोत्र' जैन स्तोत्र संदोह, भा. २ पृ. १-१३ डा. जे.सी. जैन : लाइफ इन एन्सीयण्ट इंडिया एज डिपेक्टेड इन जैन केनन्स पृ. २२६।

प० जिनदास ने होली रेणुका चरित्र की रचना की जिससे ज्ञात होता है कि उसके पूर्वज हरपति को देवी का वर प्राप्त था^{५५} ।

‘भैरव पद्मावती कल्प’ में पद्मावती की १००८ नामों से स्तुति की गई है। इसी प्रकार उसमें पद्मावती कवच, स्तोत्र, स्तुति आदि दी गई हैं^{५६} ।

श्रीमती काउभे ने ‘एन्सियण्ट जैन हिस्म’ में पार्श्वनाथ स्तवन संकलित किया। इस स्तवन के श्लोक श्री नय विमल सूरि के हैं। इसके नवमे और दसवे श्लोक में पद्मावती की स्तुति की गई है। दशवे श्लोक की आलोचना करते हुए श्रीमती काउभे ने कहा ‘दशवा श्लोक देवी पद्मावती के मंत्र की महत्ता को बताता है यह पार्श्वनाथ की शासन देवी है। इसकी अत्यधिक पूजा अर्चना की गई है’^{५७} । इसी प्रकार जैन स्तोत्र समुच्चय में धोधामंडन पार्श्व

जिन का नवमा श्लोक और पार्श्व जिन स्तवन का पद्महवां श्लोक पद्मावती की भक्ति के लिए ही रचे गये हैं^{५८} ।

इस प्रकार पद्मावती का महत्त्व प्राचीनकाल से रहा है और इस कारण प्रत्येक जैन क्षेत्र पर पद्मावती देवी की मूर्ति की स्थापना की जाने लगी है। श्री महावीर जी में नव निमित्त शांति नगर में चौबीसी के बाद पद्मावती देवी की मूर्ति प्रतिष्ठापित है।

पद्मावती सम्बन्धित साहित्यिक तथा पुरातात्विक साक्ष्य अधिक प्राचीन प्राप्त होते हैं। इससे यह कहा जा सकता है कि जैन वाङ्मय में पद्मावती देवी की परि-कल्पना सबसे पहले की गई। उसके बाद बौद्धों ने उसी को तारा तथा अन्य ध्यानी बुद्ध के रूप में साहित्य में लाये और बाद में हिन्दू तथा शैव में भी। इस प्रकार पद्मावती सर्प देवी को ही अन्य रूपों में प्रदर्शित किया होगा। वही परम्परागत चली आ रही है।

आज पुनः इस देवी की महत्ता बढ़ी और उसे तीर्थ स्थानों पर तथा पार्श्वनाथ मन्दिरों में स्थापित की जाने लगी है।



४५ भगवती सूत्र पृ. २२१ ।

४६ पूर्व हरिपतिर्नाम्नलिख्य पद्मावती वरः। होली रेणुका चरित्र प्रशस्ति, अग्रभाग जैन प्रशस्ति संग्रह वीर सेवा मंदिर दिल्ली, पृ. ६४, श्लो. २६ ।

४७ भैरव पद्मावती कल्प पृ. ६६-१२७ ।

४८ काउजे : ‘एन्सियण्ट जैन हिस्म’ पृ. ४६ ।

४९ जैन स्तोत्र समुच्चय पृ. ४७, श्लो. ६ और पृ. ५७, श्लो. १५ ।

कांचन का निवेदन

अपनी मानसिक व्यथा सुनाते हुए कांचन ने स्वर्णकार से कहा—इस समय आपके अतिरिक्त मेरा कोई भी स्वामी नहीं है। मैं आपके अधिकार में हूँ। स्वामिन् ! मेरा जन्म स्थान पृथ्वी का निम्नतम स्थान था। मिट्टी मिश्रित होने से मैं हत-प्रभ-सा हो रहा था। मुझे अब यह विश्वास तक नहीं था कि मैं आपकी शरण में आकर भी अपने मूल स्वरूप को प्राप्त कर सकूंगा। मैं बहुत ही सौभाग्यशाली हूँ कि ऐसे समय में भी मुझे आपके दर्शनों का सुअवसर प्राप्त हुआ। आपके उपकार से मैं कभी भी उच्छ्रान्त नहीं हो सकता। आपके अनुग्रह से ही संसार में मेरा अत्यधिक महत्त्व बढ़ा है।

मेरा एक विनम्र निवेदन है कि आप मेरा उपयोग जो चाहें, करें। अनल की प्रचंडतम ज्वाला में मुझे भोक सकते हैं। विभिन्न तोक्षणतम अस्त्र-शस्त्रों से मेरा छेदन-भेदन कर सकते हैं। लोहे के कठोर हथौड़ों से मुझे ताड़ित भी कर सकते हैं। आपका मेरे पर पूर्ण अधिकार है। किन्तु स्वामिन् ! भूल-चूक कर भी आप मुझे कभी तुच्छ गुंजा के साथ मत तोलना। उस अनमोली के साथ मुझे बैठाकर अपनी कृति का अपमान न कराएँ। उसमें सहनशीलता का नाम तक नहीं है। इसलिए कष्टों के भय से उसका मुख काला हो गया है और शेष भाग दूसरों के गुणों को देखकर जलने के कारण लाल हो गया है। ऐसे निम्न व्यक्तियों की संगति मेरे लिए कभी सुखावह नहीं हो सकती। एक बार पुनः प्रार्थना है कि मुझे अब कभी इस अधमा से मत तोलना।

—मुनि कन्हैयालाल

शीलव्रती सुदर्शन

परमानन्द जैन

भारत के पूर्वी अंचल में अग देश की राजधानी चम्पा थी। वहाँ राजा धाड़ी वाहन राज्य करता था। उसकी रानी का नाम अभया था। उसी नगर में सुदर्शन नाम का अत्यन्त रूपवान और दयालु एक नगरसेठ रहता था। वह धर्मात्मा, सच्चरित्र और औदार्य आदि सद्गुणों से भूषित था। उसका आचार-विचार अत्यन्त सीधा-सादा था, वह दीन-दुखियों के दुख को दूर करना अपना कर्तव्य मानता था। उसका शरीर तेजपुंज से आलोकित था। उसके विचारों में स्थिरता और करुणा की झलक मिलती थी। श्रावक अर्थों का अनुष्ठाता, गभीर, वाणी में मधुरता, सत्यता एवं स्नेह और क्षमा का भंडार था। उसकी मनोरमा नाम की धर्मपत्नी अत्यन्त रूपवान, सुशीला, विदुषी तथा कर्तव्यपरायणा थी। वह अपने पति के समान ही उच्च विचारों और सद्गुणों से भूषित थी। उसके चार पुत्र थे जो सुन्दर, गुणग्राही, आज्ञाकारी और अपने माता पिता के समान ही धार्मिक, समुदार एवं परोपकारी थे। ज्येष्ठ पुत्र सुकान्त बड़ा ही धर्मात्मा और कर्तव्यपरायण था। सेठ सुदर्शन का घर उस समय स्वर्ण-तुल्य बना हुआ था।

सुदर्शन का मित्र कपिल नाम का एक प्रोहित था। एक दिन वह प्रयोजनवश कपिल के घर गया। कपिल ने उसका आदर सत्कार किया, और कुशल वार्ता होने के पश्चात् दोनों मित्र सौहार्द वश किसी विषय में विचार-विनिमय करने लगे। उसी समय प्रोहितजी की धर्मपत्नी कपिला ने कमरे में प्रवेश किया, कमरे में प्रविष्ट होते ही उसकी नजर सुदर्शन पर पड़ी। वह सुदर्शन की रूप-राशि को देखकर उनके रूप पर मुग्ध हो गई। थोड़ी देर में सुदर्शन अपने घर वापिस चला गया। कपिला सुदर्शन की चाह में व्याकुल एवं खेद-खिन्न होने लगी, उसे खाना-पीना आदि सभी कार्य विरस हो गये, उसका जी अब किसी

कार्य में नहीं लगता था। क्योंकि उसका अन्तर्मानस कामकी दाहक अग्नि से प्रज्वलित हो रहा था। शरीर अशान्त और ताप-ज्वर से विकल हो रहा था। काम-ज्वर ने उसे इस जो लिया था, वह विवेकशून्य हो गई। रात्रि में प्रयत्न करने पर भी उसे नीद नहीं आती थी। उसका मन वासना से अधिकृत हो गया था। वह निरन्तर इसी सोच-विचार में निमग्न रहती थी कि किसी तरह उसकी भेट सुदर्शन से हो जाय, परन्तु ऐसा अवसर मिलना कठिन ही था।

कुछ दिनों बाद कपिल ब्राह्मण कार्यवश ग्रामान्तर चला गया। कपिला ने सोचा आज का दिन शुभ है, मेरी अभिलाषा उपायान्तर से फलवती हो सकती है। कोई त्रिया चरित्र खेलना चाहिए, जिससे सुदर्शन को अपनी चंगुल में फसाया जा सके। ऐसा विचार कर एक चतुर दासी सुदर्शन के पास भेजी, उसने जाकर सुदर्शन से कहा कि आपके मित्र कपिल प्रोहित सख्त बीमार है, जब कभी होश में आते हैं तब सुदर्शन की रट लगाते हैं। अतः आप तत्काल चले और उन्हें सान्त्वना दें, जिससे उनकी अभिलाषा कम हो। सुदर्शन ने जब अपने मित्र की बीमारी का हाल सुना तो वह उससे मिलने के लिए उत्सुक हो उठा और तुरन्त ही उठकर पुरोहित के मकान की ओर चल दिया। घर पहुँचते ही दासी ने एक कमरे की ओर संकेत किया, वह वहाँ चले गए। वहाँ सेठ ने दूर से ही सफेद चादर ओढ़े हुए मित्र को पलंग पर सोते हुए देखा, अन्दर से सिसकियाँ भरने की आवाज आ रही थी, सुदर्शन ने उसके सर्माप पहुँच कर चादर को जरा हटाया तो वहाँ मित्र की वजाय मित्रपत्नी के सोनेका आभास मिला। सुदर्शन तत्काल समझ गया कि यह कोई मायाजाल रचा गया है। वह तत्काल वहाँ से मुड़ा तो देखा कि बाहर से किवाड़ बन्द हैं, पीछे की ओर झाँका तो मनोहर वेश-भूषा में सामने कपिला खड़ी है। सुदर्शन ने डाँट कर कहा मुझे

यहाँ क्यों बुला रखा है ? उसने कहा आप इन्द्र के समान सुन्दर ओजस्वी हैं, इतने दिनों से मैं आपकी चाह में थी। बड़ी कठिनता से आज यह योग मिला है। सुदर्शन ने उसे अनेक प्रकार से समझाया तो भी उसके मदन का नशा न उतरा, प्रत्युत् वह कहने लगी कि या तो आप मेरा कहना माने अन्यथा मैं होहल्ला मचा कर आपको बदनाम कर दूंगी। घर्मनिष्ठ सुदर्शन दोनों ओर सकट में फस तो गया, किन्तु ऐसे विषम अवसर पर भी उसने विवेक और धीरता से काम लिया। वह घबड़ाया नहीं, प्रत्युत् दृढ़ता के साथ असत्य का आश्रय लेकर बोला—तू तो पगली हो रही है। मैं पुरुष नहीं हूँ, सन्तान भी मेरी नहीं है, और न मेरे में पुरुषत्व है। बात भरोसा करने लायक जैसी तो नहीं थी, किन्तु सेठ सुदर्शन ने अपने वाक् चातुर्य से उसे भरोसा करा दिया। वह खिन्न होकर ज्यों की त्यों खड़ी रह गई, सुदर्शन ने कहा, जो भी हुआ मेरी इस गुप्त बात को प्रकट मत करना। कपिला बोली, आप भी मेरी इस बात को आगे न बढ़ाना। बस किर क्या था, यह सन्धि दोनों को स्वीकृत हो गई। कपिला का संकेत पाकर बाहर से दासी ने दरवाजा खोल दिया। सेठ सुदर्शन वहाँ से इस तरह निकला जैसे बन्धन में पड़ा हुआ कोई बन्दी अप्रत्याशित मौका पाकर निकल जाता है। घर पहुँचकर उसने सदा के लिए यह नियम कर लिया कि मैं किसी स्त्री के आमन्त्रण पर कहीं नहीं जाऊंगा।

× × ×

वसन्त ऋतु की मोहक छटा उपवन में भर गई थी, आम्र-मजरी पर कोयलों की कुहक उठ रही थी। उद्यानों में पुष्पों की बहार घा रही थी। उद्यान-पुष्पों की पावन सुरभि से सुवासित हो रहे थे। वसन्तोत्सव के दिन राजा और रंक सभी वन-क्रीड़ा में रत हो रहे थे। सेठ सुदर्शन भी अपनी घर्मपत्नी मनोरमा और अपने पुत्रों के साथ वन-क्रीड़ा के लिए आया था। उसी उपवन में एक और रानी अभया और पुरोहित पत्नी कपिला भी बंठी हुई वसन्त की चर्चा कर रही थी। रानी अभया ने सुदर्शन और उसके परिवार को देखा, वह विस्मय में मोते खाने लगी। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि मेरे नगर में इतने सुन्दर लोग भी रहते हैं। हम राजा और रानी भी

जिनके सामने कुछ भी नहीं है। मानों तीन लोक का सौंदर्य इनमें भरा है। रानी ने तत्काल कपिला से उनके सम्बन्ध में पूछा। कपिला ने कहा—दुनिया बड़ी रंगबिरंगी है, बाहर से कुछ लगती है और अन्दर से कुछ होती है। देखने में तो यह पुरुष कितना सुन्दर और मनमोहक है। इसका नाम सुदर्शन है, यह नगर का धनीमानी सेठ है। इसके चार पुत्र हैं, यह सुन्दरी इसकी पत्नी है, पर वास्तव में यह हिजड़ा है।

रानी बोली ! कपिला तू किस सनक में बह गई, जो तू बहकी हुई अप्रिय बातें कर रही है। ऐसा होना संभव नहीं। कपिला बोली ! रानी जी मैंने जो कुछ कहा है वह सब यथार्थ है। रानी ! इतना सुन्दर कामदेव-सा रूप-वाला तेजस्वी पुरुष और हिजड़ा यह संभव नहीं जचता। यह इतना सुन्दर और मोहक है, मन को अपनी ओर खींचनेवाला ऐसा पुरुष तो मैंने आज तक देखा ही नहीं, यह तो कहीं स्वर्ग के देवों से भी बढ़कर है।

कपिला ! यही तो बात है जो मन को आश्चर्य में डाल देती है।

रानी ! आश्चर्य तो इस बात का है कि तुझे इस बात का पता कैसे चला ?

कपिला ! बस, यह मत पूछो।

रानी को यह बात लग गई, नरमी-नरमी से उसे पटाया और सारी बात उससे पूछ ली। घटना सुनते ही रानी जोरों से हँस पड़ी और कहने लगी, तेरी जैसी मूर्ख औरत दुनिया में कोई नहीं है। और उसके जैसा चतुर पुरुष नहीं है। एक पुरुष से ठगी जाकर तूने नारी जाति को ही नीचा कर दिया। नारी की बुद्धि तो बड़ी पैनी होती है, पर आश्चर्य है उस समय तेरी बुद्धि कहाँ चली गई।

कपिला ! ताना मार कर लज्जित हो गई और उत्तर में ताना कस भी डाला। अच्छा मैं तो मूर्ख ही रही, पर आप तो चतुर हैं कुछ कर दिखाएंगी, तभी मैं आग का लोहा मानूंगी। व्यर्थ की बातों में क्या घरा है ? वह पुरुष हो भी, तो उसे कोई पथभ्रष्ट नहीं कर सकता। वह पर स्त्री के विषय में कामविज्ञता बीतरागी है, वासना और प्रलोभन उसे अपने पद से जरा भी विचलित नहीं

कर सकते। वह इंद्रियजयी ओजस्वी नर है।

रानी सुदर्शन के रूप पर तो मोहित थी ही, और उस पर यह ताना तीर का काम कर गया। वह चट बोल पड़ी, अच्छा कभी देख लेना मेरा चातुर्य।

रानी! राजमहल में जाकर उपाय खोजने लगी। महलों पर रात और दिन कड़ा पहरा रहता था, उस पर राजा का भय खाये जा रहा था, प्रतिष्ठा भी उसे रह रह कर रोकती थी। वह अनजान पुरुष मेरे पास कैसे पहुँचे, दिन-रात इसी उधेड़ धुन में लगी रहती थी। कामवासना ने उसे अन्धा जो बना दिया था। वासना कितनी बुरी चीज है, यह सब नहीं जानने, वासना का संस्कार मानव को पतन की ओर ले जाता है, कामी लोक, लज्जा, कुल एवं प्रतिष्ठा सभी को तिलाजलि दे देता है। जिस तरह मदाध पुरुष को मार्ग नहीं दिखलाई देता, उसी तरह कामांध को भी सत्य नहीं सूझता।

रानी का हृदय वासना का शिकार बन चुका था, सुदर्शन कब मिले? इसी चिन्ता में उसका समय बीतता था। एक दिन उसने विश्वासपात्र अपनी पड़िता नामक घाय को एकान्त में अपने पास बुलाया, और अपने मन की सारी व्यथा उससे कही। पड़िता घाय बहुत चतुर थी, उसने पहले तो रानी को बहुत समझाया, और कहा कि ऐसा जघन्य कार्य करना तुम्हें उचित नहीं है। पर इसका रानी पर रस्ती भर असर नहीं हुआ।

रानी बोली—तू क्यों भय खाती है, मैं तुम्हें मुहमागा इनाम दूंगी, तू किसी तरह भी उस पुरुष को यहाँ ला दे। यह कार्य तेरे बिना अन्य किसी के द्वारा संभव नहीं है। रानी ने घाय को बहुत समझाया, डराया धमकाया और लालच भी दिया। पड़िता घाय लालच में आ गई, और उसने उसे गुरुतर कार्य करने की स्वीकृति प्रदान कर दी।

यह तथ्य है कि असभ्य और दुष्ट स्त्रियाँ कौन सा बुरा काम नहीं कर सकतीं। रानी ने कहा जा मेरा तेरे पर पूर्ण विश्वास है।

पड़िता ने विचार किया, कि राजमहल के आगे एक-एक करके सात चौकियाँ हैं। प्रत्येक पर एक एक सिपाही पहरेदार है। पहले आने जाने का रास्ता खोलना चाहिए। एक दिन वह किसी शिल्पी के पास गई और मनुष्य

आकार की उसने अनेक मूर्तियाँ बनवाईं।

विशाल विभूति का स्वामी होने पर भी सुदर्शन एक धर्मात्मा श्रावक था। वह घर में भी वैरागी था, विभूति पर उसे ममता नहीं थी, वह उसे अपनी नहीं मानता था। संसार में रहता हुआ भी उससे सदा उदासीन रहता था, वह संसार से छुटकारा पाने के प्रयत्न में सदा लगा रहता था। अष्टमी चतुर्दशी को उपवास करता था और कर्मनिर्जरा करने के लिए रात्रि में श्मशान भूमि में अष्टमी चतुर्दशी के दिन ध्यान लगाता था। इस गति-विवि को पड़िता जानती थी। उसने सुदर्शन को राजमहल में ले जाने का षडयंत्र रचा।

पड़िता विशालकाय और हृष्टपुष्ट थी। शारीरिक बल में भी वह कम नहीं थी। किसी श्रोसतन आदमी को वह कंधो पर बिठा कर आसानी से ले जा सकती थी। उसने मनुष्याकार की एक मूर्ति को कपड़े से ढककर तथा उसे सिर पर रख कर राजमहल की ओर आई। पहली चौकी के चौकीदार ने उसे रोका और कहा, मैं किसी चीज को बिना देखे अन्दर नहीं ले जाने दूंगा।

घाय ने कहा—किसी को दिखलाने की रानीजी ने सख्त मनाही कर दी है।

सिपाही बोला—मेरा जो नियम है उसे निभाना ही पड़ेगा। यह कह कर वह उस मूर्ति का कपड़ा हटा कर उसे देखने का प्रयत्न करने लगा, पड़िता बलपूर्वक आगे बढ़ने लगी। इसी वाद-विवाद में पड़िता ने वह मूर्ति नीचे गिरा दी और चिल्ला चिल्ला कर उच्च स्वर से कहने लगी—सिपाही तेरी मौत ही आ गई, तूने रानीजी की देव-पूजा में भयंकर विघ्न उपस्थित कर दिया है, मैं तुम्हारी शिकायत महारानी जी से करूंगी। वे तुम्हारी दुष्टता का फल मृत्युदण्ड दिलावेगी। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

उसे सुन सिपाही घबरा गया और पड़िता के पैरों में पड कर गिड़गिड़ाने लगा, रानी से मत कहना। मैं अब तुम्हें कभी भी नहीं रोकूंगा। कुछ भी लेते जाना। पड़िता ने चलसे-चलते घीरे से उसके कान में कुछ कहा, भाई! रानी जी पुत्र कामना से कंदर्प पूजा में लगी हैं। यह बात किसी से कहने-सुनने की थोड़े ही होती है। तुमने तो उस पुत्रले:

को तुड़वा दिया। अब वे अपना व्रत कैसे पूरा करेंगी। बिना पूजा के वे भोजन भी नहीं करती हैं। अच्छा तो यही है, कि अब तुम मुझे कभी नहीं रोकना, चाहे मैं कुछ ले जाऊँ। इसी तरह उसने क्रम से अन्य छह पहरेदारों को भी वश में कर लिया।

सुदर्शन अष्टमी का उपवास कर सूर्यास्त हो जाने पर रात्रि के समय श्मशान भूमि में प्रतिमायोग से स्थित था। उसी समय रात्रि में वह पंडिता वहाँ गई और उससे बोली, तुम धन्य हो जो तुम पर रानी अभया अनुरक्त हुई है। तुम चलकर उसके साथ दिव्य भोगों का अनुभव करो। इस तरह पंडिता ने अनेक मधुर वचनों द्वारा आकृष्ट करने का प्रयत्न किया; किन्तु सुदर्शन अपनी समाधि में निश्चल रहा। लाचार हो उसने उसे अपने कंधे पर रख लिया और महल में लाकर अभया के शयनागार में रख दिया। तब अभयमती ने उसके समक्ष अनेक प्रकार की स्त्रीसुलभ कामोद्दीपक चेष्टाये की, किन्तु वह उसके चित्त को विचलित करने में समर्थ न हो सकी। अन्त में निराशा और उद्विग्न होकर उसने पंडिता से कहा, इसे वहीं ले जाकर छोड़ आओ।

पंडिता ने बाहर निकल कर देखा तो प्रातःकाल हो चुका था, तब उसने कहा कि अब तो सबेरा हो चुका है। उसे ले जाना संभव नहीं है। अब क्या किया जाय।

यह देखकर अभयमती कि कर्तव्यविमूढ़ हो गई। अन्त में उसने उसे शयनागार में कायोत्सर्ग से रखकर अपने शरीर को अपने ही नखों से नोच डाला और रोती हुई चिल्ला कर कहने लगी, हाय, हाय, इस दुष्ट ने मुझ शीलवती के शरीर को क्षत-विक्षत कर डाला है। दौड़ो, लोगो दौड़ो, मेरी इससे रक्षा करो। इतने में किसी ने जाकर राजा में कह दिया कि सुदर्शन ने ऐसा अकार्य किया है।

राजा ने बिना कुछ विचार किये ही सेवकों को आज्ञा दी कि श्मशान में ले जाकर इसे सूली पर चढ़ा दो।

सेवक सुदर्शन को श्मशान भूमि में ले गए। सेवकों ने सुदर्शन पर तलवार के कई वार किये, किन्तु वे सब प्रहार पुष्पहार में परिणत हो गए। किसी कवि ने ठीक ही कहा है कि पुष्पवानों का दुःख भी सुख में परिणत हो जाता है। सुदर्शन अपनी सच्चरित्रता और अखंड शीलव्रत के प्रभाव से संरक्षित हो गया।

जब यह समाचार राजा को ज्ञात हुआ तो वह भी दौड़ा चला आया। राजा ने देखा कि सुदर्शन दिव्य सिंहासन में विराजमान है, और देवगण उसकी पूजा कर रहे हैं। और प्रजा सुदर्शन की जय के नारे लगा रही है। राजा को वस्तुस्थिति का ज्ञान करते देर न लगी। राजा ने अपने अपराध की क्षमा मांगी, और सुदर्शन से कहा कि आप नगर में चलिए और आधा राज्य लीजिए।

किन्तु सुदर्शन ने कहा, श्मशान भूमि से जाते समय ही मैंने यह विचार किया था कि यदि इस उपसर्ग से मेरी रक्षा हो जायगी तो मैं पाणिपात्र में आहार बरुंगा—दिग्म्बर मुनि हो जाऊंगा। उसने सुकान्त को विधिवत् संपत्ति का स्वामित्व प्रदान कर विमलवाहन मुनि के समीप दीक्षा ले ली। जब यह समाचार अभया को ज्ञात हुआ तो उसने भी वृक्ष से लटक कर आत्महत्या कर ली। दासी पंडिता वहा से भाग गई।

मुनि सुदर्शन कठोर तपस्वी थे, उन्होंने आत्म-साधना द्वारा स्वात्मोलब्धि को प्राप्त करने का प्रयत्न किया। उन्होंने समताभाव का आश्रय लिया और अनेक उपसर्ग परीषद् आने पर भी उनका मनसुमेर जरा भी न डिगा और कर्मबन्धन का विनाश कर वे अविनाशी पद को प्राप्त हुए।

एकता

हम सबको अपने हाथ की पाँचों अंगुलियों की तरह रहना चाहिए। हाथ की अंगुलियाँ सब एक सी नहीं होती, कोई छोटी, कोई बड़ी; किन्तु जब हम हाथ से किसी वस्तु को उठाते हैं तब हमें पाँचों ही अंगुलियाँ इकट्ठी होकर सहयोग देती हैं। हैं पाँच, किन्तु काम हजारों का करती हैं, उनमें एकता जो है।

—विनोबा

भाग्यशाली लकड़हारा

परमानन्द जैन शास्त्री

कम्पिल नगर में राजा रिपुवर्द्धन राज्य कर था। वह राजनीति में अत्यन्त निपुण था और सदैव प्रजा का पुत्रवत् पालन करता था। उसी राज्य में अकिंचन नाम का एक लकड़हारा भी रहता था, दीनता के कारण वह अपने साथियों के साथ जंगल में लकड़ियाँ काट कर लाता और उन्हें बेचकर अपना निर्वाह करता था। एक दिन उसे जंगल में सौम्य मुद्रा के धारक साधु मिले। उसने हाथ जोड़ कर साधु को प्रणाम किया। साधु ने उसे मानव जीवन की महत्ता बतलाई और उसे सत्संग में रहने की प्रेरणा दी। लकड़हारा बोला महाराज उपदेश सुनने और सत्संग में रहने को जी तो बहुत चाहता करता है। परन्तु निर्धनतावश इस पापी पेट को भरने के लिए सुबह से शाम तक प्रयत्न करना पड़ता है। इससे सत्संग का लाभ उठाया नहीं जा सकता। सोचता तो जरूर हूँ पर उसके कारण धर्म-कर्म की कोई बात नहीं सूझती परन्तु दरिद्रता का अभिशाप खाएँ जा रहा है। आप जैसे सन्त पुरुष ही उससे मुक्ति दिला सकते हैं ?

साधु ने कहा, मानव जीवन की महानता सद्गुणों के विकास से होती है। उसके लिए उसे धर्मानुष्ठान और व्रताचरण करना आवश्यक होता है। धर्म का साधन केवल धर्म स्थानों में ही नहीं होता, किन्तु घर में उद्यानों और जंगलों में भी हो सकता है। धर्म त्याग और तपानुष्ठान में है। जीवन का प्रत्येक कार्य धर्म के साथ जुड़ा हुआ है। जहाँ मानवता, उदारता, परोपकार वृत्ति और क्षमा आदि सद्गुण पल्लवित होते हैं, वहाँ धर्म रहता है। धर्म का परिणाम अमृत्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति है। उसका सम्बन्ध अन्दर की निर्मल भावना से है। यह ठीक है कि तुम्हें समय कम मिलता है, पर यह भी ठीक है कि कुछ समय व्यर्थ भी गवां दिया जाता है। रात-दिन पेट की ही चिन्ता रहती है फिर भी जीवन की कुछ न कुछ व्रत-नियम तो कर ही सकता है।

अकिंचन ने कुछ सोच-विचार कर कहा। महाराज ! मैं इस समय तो एक ही नियम कर सकता हूँ। मेरा लकड़ी काटने का ही काम है। पर आज से मैं हरे वृक्ष को नहीं काटूँगा। सूखी लकड़ी जहाँ से मिलेगी लाऊँगा और अपनी आजीविका चलाऊँगा।

साधु ने कहा, वत्स ! जाओ, और नियम का दृढ़ता से पालन करना।

वह प्रतिदिन अपने साथी लकड़हारों के साथ जंगल जाता और नियमपूर्वक लकड़ियाँ लाता, और उन्हें बेच कर अपना जीवर निर्वाह करता। यह ध्यान अवश्य रखता कि मेरे नियम पालन में असावधानी न हो जाय। इस तरह ग्रीष्म ऋतु पूरी हो गई और वर्षा ऋतु आ गई। सूखा हुआ जंगल हरा-भरा हो गया। सभी वृक्षों में नई कोपले फूट आईं। जंगल में सर्वत्र हरियाली ही हरियाली दिखाई देने लगी। सूखी लकड़ी मिलना कठिन हो गया। बहुत दूर और बहुत परिश्रम करने पर सूखी लकड़ी मिल पाती। साथी लकड़हारे इससे परेशान थे। एक दिन प्रयत्न करने पर भी उसे सूखी लकड़ियाँ न मिली। अतः उसके साथियों ने उसे वहीं छोड़ दिया। भादों, आश्विन मास की कड़ी धूप और जंगल ऊबड़-खाबड़ का बीहड़ रास्त, भूखापेट, सूखी लकड़ियाँ न मिलने की परेशानी होते हुए भी अकिंचन ने हिम्मत न हारी। वह अपनेकदम आगे बढ़ाता गया। मानो वह अपनी मजिल की ओर ही बढ़ रहा हो। बहुत दूर चले जाने के बाद कहीं उसे सूखी लकड़ियों का एक ढेर दिखाई दिया, वह खुशी से छलांगें भरने लगा। और यह सोचने लगा कि अब मुझे कई दिन तक सूखी लकड़ियाँ नहीं ढूँढने पड़ेंगी। सीधा ही यहाँ चला आऊँगा, अपना गट्टा बांध कर सीधा चला जाया करूँगा। उस दिन उसे गट्टा लेकर पहुँचते-पहुँचते सूर्य अस्त हो चुका था। उसने सोच निकल ही

बाजार जाऊंगा। और सीदा बेचूंगा, वह भट-पट अपना खाना पकाने बैठ गया।

घनदत्त सेठ ने अपने मित्रों को इसीदिन नगर के बाहर के एक उद्यान में दावत दी। सभी मित्र बड़े उत्साह से पधारे। एक मित्र को आने में कुछ विलम्ब हो गया। जब वह उस उद्यान की ओर जा रहा था, अकिचन का घर भी बीच में आ गया। उसे सुरभि की मस्त गंध ने अपनी ओर आकर्षित कर लिया, वह उससे खिचकर अकिचन के घर आ गया। वहाँ उसने लकड़ियों का एक गट्टर देखा जिसकी गंध से उसे बड़ा आश्चर्य हुआ था। उसने आते ही एक रुपया अकिचन की ओर फेंका और कहा—इसकी एक लकड़ी मुझे दे दो। लकड़हारा बड़ा चतुर था, उसके मन में विचार आया कि जब एक लकड़ी का एक रुपया सहज ही मिल रहा है, तो अवश्य ही इस लकड़ी में कोई न कोई चमत्कार है, वह तुरन्त बोल पड़ा—मुझे नहीं वेचना है, आगन्तुक व्यक्ति, क्यों नहीं बेच रहा है, क्या तेरे मन में कुछ लोभ समा गया है?

लकड़हारा—लकड़ियाँ मेरी अपनी हैं। मैं ही अपनी इच्छा का स्वामी हूँ, मुझे आप बेचने के लिए बाध्य नहीं कर सकते। आप यदि एक रुपया के बजाय अपना सारा धन ही मुझे सौंप दें, तो भी मैं देने के लिए तैयार नहीं हूँ। यदि आपकी मेहरबानी हो तो आप इस लकड़ी के गुण अवश्य बतलाएं। आपकी बात से इतना तो मुझे स्पष्ट हो गया है कि लकड़ी बहुमूल्य है।

आगन्तुक व्यक्ति ने कहा—यह तो बावना चन्दन है, लाखों रुपये में भी इसका मिलना दुर्लभ है।

अकिचन ने हँसते हुए कहा—लाखों रुपये की मेरी सम्पत्ति क्या आप एक ही रुपये में खरीद रहे थे?

अकिचन ने आगन्तुक सज्जन को लकड़ी का एक टुकड़ा बिना कुछ दिए ही प्रदान किया। और कहा—आपने तो मुझे इसके गुण बतलाकर बहुत उपकृत किया है। अन्यथा यह मेरी बहुमूल्य सम्पदा यों ही चली जाती।

प्रातः होते ही अकिचन एक लकड़ी लेकर बाजार में गया। साथियों ने उसका मजाक उड़ाया और व्यंग्य कसते हुए कहा—हाँ, यह एक लकड़ी तेरा पेट अवश्य ही भर देगी? अकिचन ने किसी की एक न सुनी, वह एक बड़े सेठ की दुकान पर पहुँचा और उसने उसे बेच कर सवा लाख रुपया ले लिये। अकिचन के घर में अब किसी वस्तु की कमी नहीं थी, सांसारिक सुख के सारे प्रसाधन हो गए उसका विवाह भी हो गया। वह अच्छे से अच्छा व्यवसाय करने लगा, दिन पर दिन धन की वृद्धि होने लगी। उसे अपने नियम की महत्ता का मूल्य प्रतिभासित हुआ, उसे लगा कि नियम के बिना जीवन भारस्वरूप है। वह अब सत्समागम में प्रतिदिन जाने लगा, जब उसे किसी महापुरुष का समागम मिल जाता तो वह उसका उपदेश सुनता और अपने जीवन की सफलता की कामना करता। इस तरह उसने धर्म के अनुष्ठान में अपना सारा जीवन अर्पित कर दिया।



मनराम

चेतन यह घर नहीं तेरी ।

घट-पटावि नैननिगोचर जो, नाटक पुद्गल केरी ॥टेका॥
तात मात कामनि सुत बंधू, करमबध को घेरी ।
करि है गीन आन गति को जब, कोई नहीं आवत नेरी ॥१॥
भ्रमत भ्रमत संसार गहन बन, कीयो आनि बसेरी ।
मिथ्या मोह उर्व ते समझो इह सवन है मेरी ॥२॥
सदगुरु वचन जोइ घट दीपक, मिटे अलोक अंधेरी ।
असंख्यात परवेश ग्यानमय, जो जानउ निज डेरी ॥३॥
ताल विष्य लय त्यागि आपको, आप आपमहि हेरी ।
जो 'मनराम' अचेतन परसों, सहजें होय निवेरी ॥४॥

भगवान् महावीर का सन्देश

डा० भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु', एम. ए., पी-एच. डी., शास्त्री

विश्व के इतिहास में ईसा पूर्व छठवीं शती सांस्कृतिक क्रान्ति का युग माना जाता है। इस युग में सम्पूर्ण ससार में अनेक प्रकार की उथल-पुथल हुई है। परिणाम स्वरूप अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन सामने आये। धर्म और दर्शन के क्षेत्र भी इससे अछूते नहीं रहे। इस क्रान्ति में भारत और विशेष रूप से बिहार प्रान्त (तत्कालीन मगध) की गौरवान्वित वसुन्धरा भला कैसे पीछे रह सकती थी। महामहिम महावीर और गौतमबुद्ध जैसे महापुरुषों का प्रादुर्भाव उसी समय का सुपरिणाम है।

वंशाली (वर्तमान बसाढ़, जिला मुजफ्फरपुर) की गणतन्त्र परम्परा के उन्नायक, जातृवंशीय राजा सिद्धार्थ और महारानी त्रिशला से ईसापूर्व ५६६ में चैत्र शुक्ला १३ को जनमे बालक वर्द्धमान को शाही शान-शौकत और चमक-दमक तनिक भी प्रभावित नहीं कर सकी। उस समय हिंसा, पशुबलि और जातिपाति के भेदभाव चरम सीमा का स्पर्श कर चुके थे। वर्द्धमान बहुत साहसी, निर्भीक और विवेक सम्पन्न थे। उनके साहस, धैर्य और पराक्रम की बहुत सी कथाएँ प्रसिद्ध हैं। वह परम्परा और परिस्थिति के अनुसार नहीं चला, बल्कि उसने परिस्थितियों को अपने अनुरूप बनाया। उसने क्रमशः परिस्थितियों पर ऐसा नियन्त्रण किया कि थोड़े ही समय में 'महावीर' कहलाने लगा। उसकी विभिन्न गतिविधियों के कारण उसे सन्मति, महति, वीर, महावीर, अन्त्यकाश्यप, नाथान्वय आदि नामों से भी सम्बोधित किया जाता है। उसने अपने व्यक्तित्व का कैसा विकास किया जिससे कि वह सामान्य मानव न रहकर 'महामानव', 'महापुरुष' और 'महात्मा' की कोटि में अधिष्ठित हो गया।

अपने विकास के मार्ग में महावीर ने आत्मसाधना के अतिरिक्त चिन्तन, मनन, प्राणि-मात्र की हितैषिता एवं सर्वप्राणि-समभाव की उदात्त प्रवृत्तियों को भी आत्मसात्

किया। साधना और ज्ञानोपलब्धि के पश्चात् उन्होंने सम्पूर्ण विश्व को बिना किसी भेद भाव के कल्याण के प्रशस्त मार्ग का निर्देश किया। 'मिस्त्रि मे सव्वभएमु' (सब प्राणियों से मेरी मित्रता है) यह था भगवान् महावीर का आदर्श। वे अहिंसा के मूर्तमान प्रतीक थे। उनका जीवन त्याग और तपस्या से ओत-प्रोत था। उन्हें रचमात्र भी परिग्रह और ममता नहीं थी। सत्य का जिज्ञासु और अन्वेषक प्रत्येक मानव उनके सच के नियमों को स्वीकार कर सकता था या संघ में सम्मिलित हो सकता था। आगम ग्रन्थों में इस प्रकार के उदाहरण प्रचुरता से मिलते हैं। जिनके अनुसार कोई भी प्राणी किसी भी कुल या जाति में क्यों न उत्पन्न हुआ हो, यदि उसके कर्म उच्च प्रकार के हैं तो वह उच्च कुल या उच्च वर्ण का बन सकता था और यदि उसके कार्य निम्न कोटि के या निन्दनीय हैं, भले ही उसका जन्म उच्चकुल में हुआ हो, तो वह निम्नतर वर्ण में पहुँच जाता था। इस प्रकार की सार्वजनिक प्रवृत्तियों ने सामाजिक सश्लिष्टता और सर्वोदय की भावनाओं को बल तो दिया ही, आत्म-विकास एवं अमृतदय के लिए सभी प्रकार के सीमा बन्धनों का अभाव भी कर दिया।

भगवान् महावीर ने अपनी दिव्य देशना के द्वारा प्राणिमात्र को सबोधित किया। पशु-पक्षी तथा विविध योनियों के प्राणी भी उनके उपदेश सुन सकते थे। उपदेश का माध्यम था—जन सामान्य की भाषा अर्द्धमागधी प्राकृत। उन्होंने कहा कि—सुख और दुःख की अनुभूति सभी को एक जैसी होती है। अतः कोई ऐसा कार्य मत कीजिए जो आपको और दूसरों को अप्रिय हो। इसी सन्दर्भ में उनका सन्देश है :—

समया सव्वभएमु सत्तु मिस्सेसु वा जगे ।

पाणाइवाय विरई, जावज्जीवाए दुक्करा ॥

—उत्तराध्ययन सूत्र १६-२५

‘सभी प्राणियों पर समभाव रखें, चाहे वह आपका शत्रु हो अथवा मित्र । सभी को अपने समान समझे । यही अहिंसा (प्राणतिपात-विरति) है’ ।

उन्होंने दया को धर्म का मूल बताया है :—

‘इष्टं यथात्मनो देह, सर्वेषां प्राणिनां तथा ।
एवं ज्ञात्वा सदा कार्या, दया सर्वा-सुधारिणाम् ॥’

—पद्मपुराण, १४-१८६

भगवान् महावीर ने कहा कि सृष्टि में जितने प्राणी हैं सभी को जीने का हक है । अतः जानते हुए अथवा नहीं जानते हुए उनकी हिंसा न तो स्वयं करे और न दूसरों से ही करवायें ।

सर्वे प्राणा पियाउया,
सुहसाया दुःखपडिकूला अप्पियवहा ।
पियजीविणो जीविउकामा,
सर्व्वेसि जीवियं पियं ॥

—आचाराग सूत्र १-२-३

सभी प्राणियों को अपने-अपने प्राण प्रिय है, सब सुख चाहते हैं, दुःख पसन्द नहीं करते । हिंसा नहीं चाहते । जीने की इच्छा सभी में है । अतः सबको रक्षा करना मानव का कर्तव्य है ।

प्रमाद सभी प्रकार के अनर्थों की जड़ है उससे व्यक्ति का भविष्य अशुभकार के गर्त में पड़ता है । भगवान् महावीर ने समाज से आग्रह किया है कि वह प्रमाद को छोड़ कर अपने कर्तव्यों का निर्वहण करे ।

रिक्कं न सक्केइ विवेगमेउं
तम्हा समुट्ठाप पहाय कामे ।
समिच्च लोय समया महेवी,
अप्पाण-रक्खी-रक्खी चरमप्पमत्तो ॥

उत्तराध्ययन सूत्र-४-१०

विवेक की उपलब्धि जल्दी नहीं हो जाती । उसके लिए महती साधना आवश्यक है । साधक का यह कर्तव्य है कि वह काम-भोगों का परित्याग कर समता भाव से ससार की यथार्थ स्थिति का अनुभव करे, आत्मा को पाप से बचावे और पूरी तरह से प्रमाद को छोड़ कर विचरण करे ।

वे बाह्याङ्ग और प्रदर्शन को अनावश्यक तथा हेय मानते हैं । उन्होंने कहा—

न वि मुंदिण समणो, न ओंकारेण बभणो ।
न मुणी रण्णवासेणं, कुसचीरेण न तावसो ॥

उत्तरा २५-२६

शिर मुड़ा लेने से ही कोई ‘श्रमण’ नहीं बन जाता । केवल ‘ओंकार’ का जप कर लेने से कोई ‘ब्राह्मण’ नहीं हो जाता । केवल जगलवास करने से ही कोई ‘मुनि’ नहीं बन जाता और न वल्कल वस्त्र पहनने मात्र से कोई तपस्वी ही हो जाता है । बल्कि—

समयाए समणो होइ, बभचेरेण बभणो ।

नाणेण य मुणी होइ, तवेणं होइ तावसो ॥

उत्तराध्ययन, २५-३०

समता पालने से ‘श्रमण’, ब्रह्मचर्य का पालन करने से ‘ब्राह्मण’ चिन्तन, मनन और ज्ञान के कारण ‘मुनि’ तथा तपस्या करने के कारण ‘तपस्वी’ होता है ।

महावीर स्वामी ने क्रोध, मान, माया, और लोभ जैसे विकारी भावों को अपना अहित और अपयश कराने वाले बताकर उन्हें सभी अनर्थों के जड़ के रूप में निरूपित किया है । उन्होंने कहा—क्रोध को शान्ति से जीतो । क्रोध से मनुष्य नीचे गिरता है, अभिमान से अधम गति को पाता है । माया से सद्गति का नाश होता है और लोभ से इस लोक तथा परलोक—उभयत्र भय एव निन्दा होती है ।

भ० महावीर समाज में राष्ट्रीय जागृति लाना चाहते थे । इसके लिए उन्होंने ‘विवेक’ को जागृत करना आवश्यक बताया । विवेक होने पर ही उपदेश की सार्थकता है ।

उद्दमो पासगस्स णत्थि,

बाले पुण णिहे कामसमणुणे ।

असिम दुक्खे दुक्खी,

दुक्खाणमेव आवह अणुपरिहृइ ।

आचाराग सूत्र ।

उपदेश की आवश्यकता सामान्य व्यक्ति को होती है, विवेकी के लिए कदापि नहीं । अज्ञानी राग-द्वेष से ग्रस्त और कषायों से पीड़ित तथा विषय-भोगों को कल्याणकारी

भावकर उसमें आसक्त रहने वाला मनुष्य, उनसे उत्पन्न होने वाले दुखों को शान्त नहीं कर पाता है। अतः शारीरिक और मानसिक दुखों से पीड़ित वह दुख चक्र में ही भटकता रहता है।

‘जो लोगस्सेसजं चरे।’ आचारांग सूत्र।

मानव बिबेकी बने। बेखा-बेखी नहीं करे।

उन्होंने कहा—

‘अप्पाणमेव अप्पाण, जइत्ता सुहमेह ए।’

(उत्तराध्ययन सूत्र ६-३५)

स्वयं ही स्वयं को जीतने से सच्चे सुख की उपलब्धि हो सकती है। अतएव आत्मनिग्रह के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

‘बहुयं मा य आलपेत्।’

आवश्यकता से अधिक नहीं बोलें। क्योंकि बहुत से विवाद, कलह आदि ज्यादा और अनावश्यक बोलने से ही होते हैं। यदि, इस सदर्म में भ० महावीर के इस सन्देश पर विचार करें तो सहज ही वैर-भाव, विद्वेष और कलह आदि के कारणों का विनाश हो सकता है।

अपुच्छिओ न भासेज्जा, भासभाणस्स अन्तरा।

चिट्ठमंस न लाएज्जा, मायाभोस विक्कज्जे।।

—दशवेकालिक ८-४६

बिना पूछे उत्तर न दे। दूसरों के बीच में नहीं बोले। पीठ पीछे किसी की निन्दा न करे। और बात करते समय छल कपट भरे और झूठे शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

अदत्तादान (चोरी की वस्तु) अनेक प्रकार के कष्टों की जड़ है। निन्दनीय है। मरण, भय, अपयश आदि का कारण तो है ही। अतः मालिक की आज्ञा के बिना किसी दूसरे की वस्तुएं ग्रहण न करें। उन्होंने सामाजिक सल-

ष्टता, श्रेष्ठ तपस्या, नियम, ज्ञान, दर्शन, संयम और विनय के लिए ब्रह्मचर्य को अपनाया आवश्यक बताया है।

महावीर स्वामी ने संसार के प्राणियों की मनोदशा का अवलोकन कर कहा ‘मैं और मेरा’ इस मन्त्र ने सम्पूर्ण विश्व को अन्धा बना दिया है, जब कि यह मन्त्र स्वयं बहुत कष्टदायी और अशान्ति का कारण है। अनासक्त भाव रखने से प्रत्येक स्थिति में सुख मिलता है।

म० महावीर ने धर्म का सार्वभौम रूप विश्व के समक्ष प्रस्तुत किया। उन्होंने समझाया कि—धर्म वह है जिससे अपना और सबका कल्याण हो, विकास हो, उत्कर्ष हो। मानव अपनी इच्छाओं को वश में रखे। उससे स्वयं सुखी होवे और दूसरों को भी सुखी होने का अवसर प्रदान करे। उन्होंने बताया कि भोगों का उपभोग करना दुरा नहीं है, बुरा है उनमें आसक्त हो जाना। मिठाई खाने से मुह अवश्य मीठा होता है किन्तु मात्रा से अधिक खाने से अजीर्ण के साथ साथ कीड़े भी पड़ने लगते हैं। भोगों पर नियंत्रण रखने से जीवन, सुखी, स्वस्थ और समृद्ध हो सकता है। उनके सन्देश में विष्व-कल्याण की सामर्थ्य है। उनका जीवन, उनकी वाणी और सन्देश युग-युगों तक जनता का कल्याण करते रहेंगे।

भगवान महावीर ने अपने सन्देश में अहिंसा, सत्य, अचीर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह पर बहुत बल दिया। त्याग और संयम, प्रेम और करुणा, शील और सदाचार उनके प्रवचनों का सार है। आज का संव्रस्त विश्व धन्य हो जावे यदि वह भगवान् महावीर के इस छोटे-से सन्देश को अपना ले, जिसके अनुसार संसार के छोटे-बड़े सभी प्राणी हमारे ही समान है।

उहरे व पाणे बुद्धे व पाणे।

ते आन्धो पासइ सबलोए।।

संतोषी सुखी है

अनन्त आशालताओं से बाग सरसज्ज हो रहा है। असीमित इच्छाएँ आ-आ कर अपनी-अपनी कामनाओं का ढेर लगा रही हैं। बेचारा पशिक उनकी पूर्ति में जीवन की बाजी लगा रहा है। पर, इच्छा पूर्ति न होने से दुखी है। जो सन्तोषी है वह सुखी है, जो आशाओं के दास हैं वे संसार के दास हैं।

अखिल भारतीय जैन जनगणना समिति

मान्यवर,

भारत में जैनो की संख्या एक करोड़ से अधिक है, किन्तु पिछली जनगणना के अनुसार मात्र बीस लाख बनाई गई है, क्योंकि धर्म के कालम में हम में से अधिकांश ने जैन न लिखाकर गोत्र या विरादगी आदि लिखा दिया।

जनसंख्या की गणना सही सही हो, इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने को जैन लिखाये।

आगामी जनगणना फरवरी १९७१ में होगी। आप से अनुरोध है कि आप अपने नगर तथा आस पास को सम्पूर्ण जैन समाज के प्रत्येक व्यक्ति को यह अग्रगण्य करा दे कि जनगणना के अवसर पर धर्म (Religion) के बसवे खाने (कालम) में अपने को मात्र जैन ही लिखाये।

इसके लिए उचित यह होगा कि एक स्थानीय जैन जनगणना समिति बना ले, जिसके कार्यकर्ता अपने नगर तथा ग्राम पास के क्षेत्र में इस बात को प्रचारित-प्रसारित करें तथा जनगणना के समय सूचना बुलानेवाले अधिकाधिक कारियों के साथ जाकर सही सही गणना करा दे। जैन धर्म और जैन संस्कृति के लिए यह महत्वपूर्ण कार्य होगा :

भवदीय—

सेठ शीतल प्रसाद जैन, अध्यक्ष

सकुमारचन्द जैन, मंत्री

अ० भा० जैन जनगणना समिति

भगवान महावीर जयन्ती समारोह के शुभावसर पर जैन समाज से अपील

भारत में भगवान महावीर का जन्म दिवस व्यापक रूप से मनाया जाता है। इस अवसर पर हमारी जैन समाज के आचार्य महाराजों, मुनिगणों, व्यागी वर्ग तथा विद्वानों से सविनय निवेदन है कि वे इस शुभ अवसर पर अपने शुभ सन्देशों, विचारों द्वारा जैन समाज को यह सन्देश पहुँचाएँ कि सरकार द्वारा होने वाली जनगणना, जो फरवरी सन् १९७१ में होने जा रही है उसमें अपनी सम्प्रदाय, जाति गोत्र आदि न लिखा कर केवल जैन ही लिखाएँ। यह जानकारी गाँव-गाँव, स्त्री पुरुष एवं बच्चों तक पहुँचनी आवश्यक है। यह एक महान् कार्य है। इसमें सफलता प्राप्त करने हेतु जैन समाज के प्रत्येक शुभ चिन्तक को जुट कर कार्य करने की प्रार्थना है।

महावीर जयन्ती पर होने वाले आयोजनों के कार्यकर्ताओं एवं सयोजकों से भी यह निवेदन है कि इस अवसर पर अपने पोस्टरों, हैण्डबिलों, निमन्त्रण-पत्रों व सभाओं के माध्यम से जन-गणना में जैन लिखाने का व्यापक प्रचार करें।

निवेदक

भगतराम जैन

मंत्री

अ० भा० जैन जनगणना समिति

- (१) पुरातन-जैनवाक्य-सूची—प्राकृत के प्राचीन ४६ मूल-ग्रन्थों की पद्यानुक्रमणी, जिसके साथ ४८ टीकादिग्रन्थों से उद्धृत दूसरे पद्यों की भी अनुक्रमणी लगी हुई है। सब मिलाकर २५३५३ पद्य-वाक्यों की सूची। संपादक मुख्तार श्री जुगलकिशोर जी की गवेषणापूर्ण महत्व की ७० पृष्ठ की प्रस्तावना से अलंकृत, डा० कालीदास नाग, एम. ए. डी. लिट् के प्राक्कथन (Foreword) और डा० ए. एन. उपाध्ये एम. ए. डी. लिट् की भूमिका (Introduction) से भूषित है, शोध-स्वोज के विद्वानोंके लिए अनीव उपयोगी, बड़ा साइज, सजिल्द १५-००
- (२) आप्त परीक्षा—श्री विद्यानन्दाचार्य की स्वोपज मटीक अपूर्व कृति, आप्तों की परीक्षा द्वारा ईश्वर-विषयक सुन्दर, विवेचन को लिए हुए, न्यायाचार्य प. दरबारीलालजी के हिन्दी अनुवाद में युक्त, सजिल्द। ८-००
- (३) स्वयम्भूस्तोत्र—समन्तभद्रभारती का अपूर्व ग्रन्थ, मुख्तार श्री जुगलकिशोरजी के हिन्दी अनुवाद, तथा महत्व की गवेषणापूर्ण प्रस्तावना में सुशीलित। ... २-००
- (४) स्तुतिविद्या—स्वामी समन्तभद्र की अनोखी कृति, पापों के जीतने की कला, मटीक, मानुवाद और श्री जुगल किशोर मुख्तार की महत्व की प्रस्तावनादि में अलंकृत सुन्दर जिल्द-महित। १-५०
- (५) अध्यात्मकमलमार्तण्ड—पद्याध्यायीकार कवि राजमल की सुन्दर आध्यात्मिकरचना, हिन्दी-अनुवाद-महित १-५०
- (६) युक्त्यनुशासन—तत्त्वज्ञान में परिपूर्ण समन्तभद्र की असाधारण कृति, जिसका अभी तक हिन्दी अनुवाद नहीं हुआ था। मुख्तार श्री के हिन्दी अनुवाद और प्रस्तावनादि में अनकृत, सजिल्द। ... १-२५
- (७) श्रीपुत्रपाश्वनाथस्तोत्र—आचार्य विद्यानन्द रचित, महत्व की स्तुति, हिन्दी अनुवादोदि महित। ७५
- (८) शासनचतुस्त्रिंशिका—(तीर्थपरिचय) मुनि मदनकीर्ति की १३वीं शताब्दी की रचना, हिन्दी-अनुवाद महित ७५
- (९) समीचीन धर्मशास्त्र—स्वामी समन्तभद्र का गृहस्थाचार-विषयक अत्युत्तम प्राचीन ग्रन्थ, मुख्तार श्री जुगलकिशोर जी के विवेचनात्मक हिन्दी भाष्य और गवेषणात्मक प्रस्तावना में युक्त, सजिल्द। ... ३-००
- (१०) जैनग्रन्थ-प्रशस्ति संग्रह भा० १ संस्कृत और प्राकृत के १७१ अप्रकाशित ग्रन्थों की प्रशस्तियों का मंगलाचरण सहित अपूर्व संग्रह उपयोगी ११ परिशिष्टों और प० परमानन्द शास्त्री की इतिहास-विषयक साहित्य परिचयात्मक प्रस्तावना में अलंकृत, सजिल्द। ... ४-००
- (११) समाधितन्त्र और इष्टोपदेश—अध्यात्मकृति परमानन्द शास्त्री की हिन्दी टीका सहित ४-००
- (१२) अनित्यभावना—आ० पद्मनन्दीकी महत्वकी रचना, मुख्तार श्री के हिन्दी पद्यानुवाद और भावार्थ सहित २५
- (१३) तत्त्वार्थसूत्र—(प्रभाचन्द्रोद्य) —मुख्तार श्री के हिन्दी अनुवाद तथा व्याख्या में युक्त। ... २५
- (१४) श्रवणबेलगोल और दण्डि के अन्य जैनतीर्थ। १-२५
- (१५) महावीर का सर्वोदय तीर्थ १६ पैमे, १६ समन्तभद्र विचार-दीपिका १६ पैमे, (१७) महावीर पूजा १६
- (१८) अध्यात्म रहस्य—प० आशाधर की सुन्दर कृति मुख्तार जी के हिन्दी अनुवाद सहित। १-००
- (१९) जैनग्रन्थ-प्रशस्ति संग्रह भा० २ अपभ्रंश के १२२ अप्रकाशित ग्रन्थोंकी प्रशस्तियों का महत्वपूर्ण संग्रह। पचपन ग्रन्थकारों के ऐतिहासिक ग्रन्थ-परिचय और परिशिष्टों सहित। स. प० परमानन्द शास्त्री। सजिल्द १२-००
- (२०) न्याय-दीपिका—आ० अभिनव धर्मभूषण की कृति का प्रो० दरबारीलालजी न्यायाचार्य द्वारा स० अनु० ७-००
- (२१) जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश, पृष्ठ संख्या ७४० सजिल्द (द्वार शासन-संघ प्रकाशन ५-००
- (२२) कसायपाहुड सुत्त—मूलग्रन्थ की रचना आज में दो हजार वर्ष पूर्व श्री गुणधराचार्य ने की, जिस पर श्री यतिवृषभाचार्य ने पन्द्रह सौ वर्ष पूर्व छह हजार श्लोक प्रमाण चूर्णिसूत्र लिखे। सम्पादक प. हीरालालजी सिद्धान्त शास्त्री, उपयोगी परिशिष्टों और हिन्दी अनुवाद के साथ बड़े साइज के १००० से भी अधिक पृष्ठों में। पृष्ठ कागज और कपड़े की पक्की जिल्द। ... २०-००
- (२३) Reality आ० पूज्यपाद की सर्वार्थसिद्धि का अंग्रेजी में अनुवाद बड़े आकार के ३०० पृ. पक्की जिल्द ६-००

